ॐ अर्हं

जिनागम ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क १८

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति में आयोजित]

पंचम गणधर भगवत्सुधर्मस्वामी प्रणीत पञ्चम अंग

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

[भगवतीसूत्र-द्वितीयखण्ड, शतक ६-१०]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, टिप्पणयुक्त]

☐

प्रेरणा

उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

☐

आद्य संयोजक तथा प्रधान सम्पादक

स्व० युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

☐

अनुवादक—विवेचक—सम्पादक

श्री अमर मुनि

[भण्डारी श्री पदमचन्दजी महाराज के सुशिष्य]

श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐

प्रकाशक

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

☐ निर्देशन
महासती श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना'

☐ सम्पादक मण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

☐ द्वितीय संस्करण
वीरनिर्वाण संवत २५१९
विक्रम संवत २०५०, भाद्रपद (द्वितीय)
सितम्बर, १९९३

☐ प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन समिति
ब्रजमधुकर स्मृति-भवन,
पीपलिया बाजार, ब्यावर—३०५९०१ (राजस्थान)

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य 130/-

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Compiled by Fifth Ganadhara Sudharma Swami
FIFTH ANGA

VYAKHYĀ PRAJNAPTI

[Bhagawati Sutra II Part, Shatak 6-10]
[Original Text, Hindi Version, Notes Annotations and Appendices etc]

☐
Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi (Late) Swami Shri Brijlalji Maharaj

☐
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

☐
Translator & Annotator
Shri Amar Muni
Sri Chand Surana 'Saras

☐
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

☐ Direction
Mahasati Shri Umravkunwarji 'Archana'

☐ Board of Editors
Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni

☐ Promotor
Munishri Vinayakumar 'Bhima'

☐ Second Edition
Vir-Nirvana Samvat 2519
Vikram Samvat 2050, Sept 1993

☐ Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti,
Brij Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj)—305 901

☐ Printer
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj Ajmer

☐ Price ~~Rs/100/~~ 130/-

समर्पण

जिन पूर्वज महापुरुषों के असीम
उपकार के लोकोत्तर ऋण से समग्र स्थानक-
वासी जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा
जिनकी उग्र तपश्चर्या और ज्ञान
गरिमा से जन जन भलीभाँति परिचित है
जिनशासन की महिमा-वृद्धि के लिए
जिन्होंने अनेकानेक उपसर्ग सहन किए
जिनकी प्रशस्य शिष्य परम्परा आज भी
शासन की शोभा को वृद्धिगत कर रही है
उन इतिहास-पुरुष परममहनीय महर्षि
आचार्यवर

श्री जीवराजजी महाराज

की पावन स्मृति में
सादर सविनय सभक्ति समर्पित ।

—मधुकर मुनि

(प्रथम संस्करण से)

प्रकाशकीय

समिति की ओर से प्रकाशित आगम बत्तीसी के अनुपलब्ध ग्रथो के द्वितीय सस्करण प्रकाशित करने के क्रम मे व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का यह द्वितीय खण्ड प्रस्तुत कर रहे हैं।

यह ग्रन्थ द्वादशागी के पचमस्थान पर है। अन्य आगम ग्रथो की अपेक्षा यह विशालकाय है और वर्ण्य विषयो की बहुलता एव विविधता के कारण गभीर भी है। इतना होने पर भी सक्षेप मे कहा जाये तो यह ग्रन्थ जैन-दर्शन-धर्म-आचार-विचार के सिद्धान्तो का प्ररूपक होने से कोष जैसा है। इसीलिये पूर्व मे चार खडो मे प्रकाशित किया गया था। प्रथम खड मे शतक १ से ५ और द्वितीय खड मे शतक ६ से १० तक का समावेश है। आगे के दो खडो में शेष समग्र वर्ण्य विषयो को समाहित कर लिया है।

स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म के चिन्तन का यह सुफल है कि मूल जैन वाङ्मय के पठन पाठन के प्रति पाठको की रुचि मे वृद्धि हुई है। एतदर्थ समिति एव हम आपश्री को शत-शत वदन करते हैं तथा अपना कर्त्तव्य पालन कर मूल जैन साहित्य को प्रकाशित करने के लिये तत्पर हैं।

प्रस्तुत ज्ञान प्रचार के पवित्र अनुष्ठान मे जिन-जिन महानुभावो का जिस किसी भी रूप मे सहयोग प्राप्त हुआ और हो रहा है, उन सभी का सधन्यवाद आभार मानते हैं।

रतनचद मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष

सायरमल चोरडिया
महामत्री

अमरचद मोदी
मत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

श्री सेठ अनराजजी चोरड़िया

जीवन-परिचय

(प्रथम संस्करण से)

आगमप्रकाशन के इस परम पावन प्रयास में नोखा (चान्दावतों) के बृहत् चोरड़िया-परिवार के विशिष्ट योगदान के विषय में पूर्व में भी लिखा जा चुका है। वास्तव में यह योगदान इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी ही है। श्री व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र, जो अंगभूत आगमों में परिगणित है, श्री अनराजजी सा. चोरड़िया के विशेष अर्थ साहाय्य से प्रकाशित हो रहा है।

श्री चोरड़िया जी का जन्म वि. सं. १९८१ में नोखा में हुआ। आप श्रीमान् जोरावरमलजी सा. के सुपुत्र हैं। आपकी माता श्रीमती फूलकुंवर बाई हैं। श्रीमान् हरखचन्दजी, दुलीचन्दजी और हुक्मीचन्दजी आपके भ्राता हैं। आप जैसे आर्थिक समृद्धि से सम्पन्न हैं, उसी प्रकार पारिवारिक समृद्धि से भी धनी हैं। आपके प्रथम सुपुत्र श्री पृथ्वीराज के राजेन्द्रकुमार और दिनेशकुमार नामक दो पुत्र हैं और द्वितीय पुत्र श्री सुमेरचन्दजी के भी सुरेन्द्रकुमार तथा नरेन्द्रकुमार नाम के दो पुत्र हैं। आपकी दो सुपुत्रियाँ हैं—श्रीमती गुलाबकुंवर बाई एवं श्रीमती प्रेमलता बाई। दोनों विवाहित हैं।

चोरड़ियाजी ने १५ वर्ष की लघुवय में ही व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश किया और अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय से प्रशंसनीय सफलता अर्जित की। आज आप मद्रास में जे. अनराज चोरड़िया फाइनेंसियर के नाम से विख्यात पेढी के अधिपति हैं।

आर्थिक समृद्धि की वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में भी आपकी गहरी अभिरुचि है। यही कारण है कि अनेक शैक्षणिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं के साथ आप जुड़े हुए हैं और उनके सुचारु संचालन में अपना योग दे रहे हैं। निम्नलिखित संस्थाओं के साथ आपका सम्बन्ध है—

जैनभवन, मद्रास	भूतपूर्व मंत्री
एस. एस. जैन एज्युकेशनल सोसाइटी, मद्रास	सदस्य कार्यकारिणी
स्वामीजी श्री हजारीमलजी म. जैन ट्रस्ट, नोखा	ट्रस्टी
भगवान् महावीर अहिंसा प्रचार संघ	संरक्षक
श्री राजस्थानी श्वे. स्था. जैन सेवासंघ	संरक्षक
श्री श्वे. स्था. जैन महिला विद्यालय	भू. पू. अध्यक्ष, मंत्री एवं कोषाध्यक्ष
श्री आनन्द फाउंडेशन	सदस्य

हार्दिक कामना है कि श्री चोरड़ियाजी चिरजीवी हों और समाज, साहित्य एवं धर्म के अभ्युदय में अपना योग प्रदान करते रहें।

मन्त्री

श्री आगम-प्रकाशन समिति, ब्यावर

आदि-वचन

(प्रथम-सस्करण से)

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओ/चितको ने "आत्मसत्ता" पर चितन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधना तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग-द्वेष आदि को साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तिया ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उदघाटित-उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, सघीय जीवन पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत हैं।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग में समाहित होते हैं और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशागी में भी बारहवाँ अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तब आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य गुरुपरम्परा का विच्छेद दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चितन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुतः आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक प्रवणनीय उपकार सिद्ध हुआ। संस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) में आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमों की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रों का अन्तिम स्वरूप-संस्कार इसी वाचना में सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-संघों के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता प्रमाद एवं भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणों के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारों का विध्वंस आदि अनेकानेक कारणों से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विछिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव में, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नहीं होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणों से आगम की धारा संकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में वीर लोंकाशाह ने इस दिशा में क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमें भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धांतिक विग्रह तथा लिपिकारों का अत्यल्प ज्ञान आगमों की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियों को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठकों को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे धीरे विद्वत्-प्रयासों से आगमों की प्राचीन चूर्णियाँ, नियुक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश में आईं और उनके आधार पर आगमों का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा में प्रकाशित हुआ। इसमें आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनों को सुविधा हुई। फलतः आगमों के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढ़ी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कहीं अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है, जनता में आगमों के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण में अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानों तथा भारतीय जैनेतर विद्वानों की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा में अनेक समर्थ श्रमणों एवं पुरुषार्थी विद्वानों का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नींव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हों, पर विस्मरणीय तो कदापि नहीं। स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखों के अभाव में हम अधिक विस्तृत रूप में उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरों का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेंगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष १५ दिन में पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एवं आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का सकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचाय अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिए दुरूह तो हैं ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी का अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्यज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचाय श्री जवाहरलालजी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचाय जैनधम दिवाकर आचाय श्री आत्मारामजी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का काय प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा किन्तु उनके स्वगवास के पश्चात उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का काय आज भी चल रहा है।

वतमान मे तेरापथी सम्प्रदाय मे आचाय श्री तुलसी एव युवाचाय महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का काय चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निणय मे काफी मतभेद की गुजाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशिष्टता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी काय कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दशन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब काय-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्यायें की जा रही है। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूवक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम-माग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा सस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ५-६ वष पूव इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. सं. २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ़ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय में गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरों तथा सद्गृहस्थों का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किए बिना मन सन्तुष्ट नहीं होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म. 'कमल', प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एवं प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुंवरजी म० की सुशिष्याएं महासती दिव्यप्रभाजी, एम. ए., पी-एच. डी. महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् पं० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, स्व० पं० श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एवं श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियों का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एवं महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसंग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिंहजी लोढ़ा, स्व० श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप में हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा प्रयत्नों से आगम समिति अपने कार्य में इतनी शीघ्र सफल हो रही है। चार वर्ष के अल्पकाल में ही पन्द्रह आगम ग्रन्थों का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमों का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियों की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओं के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसंघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-संत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनि-जनों के सद्भाव-सहकार के बल पर यह संकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

वियाहपण्णत्तिसुत्तं (भगवईसुत्तं)

विषय-सूची

दु षमकाल म भारतवष, भारतभूमि एव भारत वे मनुष्या के आचार (आकार) और भाव का स्वरूप-निरूपण १५७, छठे आरे के मनुष्यो के आहार तथा मनुष्य-पशु-पक्षिया के आचारादि के अनुसार मरणोपरान्त उत्पत्ति का वणन १६१।

सप्तम उद्देशक—अनगार (सूत्र १-२८) १६४-१७३

सवत एव उपयोगपूवव प्रवत्ति करने वाले अनगार को लगन वाली क्रिया की प्ररूपणा १६४, विविध पहलुओ से काम-भोग एव कामी-भोगी मे स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व की प्ररूपणा १६५, क्षीणभोगी छद्मस्थ अधोऽवधिक परमावधिक एव केवली मनुष्यो म भोगित्व-प्ररूपणा १६९, भोग भोगने मे असमथ होने से ही भोगत्यागी नही, १७०, असज्ञी और समथ (सज्ञी) जीवा द्वारा अकामनिकरण और प्रकामनिकरण वेदन का सयुक्तिक निरूपण १७१, असज्ञी और सज्ञी द्वारा अकाम-प्रकाम निकरण वेदन क्यो और कसे ? १७३।

अष्टम उद्देशक—छद्मस्थ (सूत्र १-९) १७४-१७८

सयमादि से छद्मस्थ के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का निषेध १७४, हाथी और कुथुए के समान जीवत्व की प्ररूपणा १७४, राजप्रश्नीयसूत्र मे समान जीवत्व की सदृष्टान्त प्ररूपणा १७५, चौवीस दण्डकवर्ती जीवा द्वारा कृत पापकम दु खरूप और उसकी निजरा सुखरूप १७५, सज्ञाओ के दस प्रकार—चौवीस दण्डका मे १७५, सज्ञा की परिभाषाएँ १७६, सज्ञाओ की व्याख्या १७६, नैरयिको को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ १७६, हाथी और कुथुए का समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा १७७, आधाकमसेवी साधु को कमबधादि निरूपणा १७७।

नवम उद्देशक—असवृत (सूत्र १-२४) १७९-१९४

असवृत अनगार द्वारा इहगत बाह्यपुद्गलग्रहणपूवक विकुवण-सामथ्य-निरूपण १७९ 'इहगए' 'तत्थगए' एव 'अन्नत्थगए' का तात्पय १८०, महाशिलाकण्टकसग्राम मे जय-पराजय का निणय १८०, महाशिलाकण्टकसग्राम के लिये कूणिक राजा की तयारी और अठारह गणराजाओ पर विजय का वणन १८१, महाशिलाकण्टकसग्राम उपस्थित होन का कारण १८३ महाशिलाकण्टकसग्राम मे कूणिक की जीत कैसे हुई ? १८३, महाशिलाकण्टक-सग्राम के स्वरूप, उसमे मानवविनाश और उनकी मरणोत्तर गति का निरूपण १८४, रथमूसलसग्राम मे जय-पराजय का उसके स्वरूप का तथा उसमे मृत मनुष्या की सख्या, गति आदि का निरूपण १८५, ऐसे युद्धो मे सहायता क्यो ? १८७, सग्राम मे मृत मनुष्य देवलोक मे जाता है, इस मान्यता का खण्डनपूवक स्वसिद्धान्त-मडन १८७, वरुण की देवलोक मे और उसके मित्र की मनुष्यलोक मे उत्पत्ति और अत मे दोनो की महाविदेह म सिद्धि का निरूपण १९३।

दशम उद्देशक—अन्ययूथिक (सूत्र १-२२) १९५-२०४

अन्यतीर्थिक कालोदायी की पचास्तिकाय-चर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या स्वीकार १९५, कालोदायी के जीवन-परिवर्तन का घटनाचक्र १९९, जीवो के पापकम और कल्याणकर्म क्रमश पाप-कल्याण-फल-विपाक सयुक्त होने का सदृष्टान्त निरूपण १९९, अग्निकाय को जलाने और बुझाने वाला मे से महाकम आदि और अल्पकर्मादि से सयुक्त कौन और क्या ? २०१, अग्नि जलाने वाला महाकम आदि से युक्त क्या ? २०३, प्रकाश और ताप देन वाले अचित्त प्रकाशमान पुद्गलो की प्ररूपणा २०३, सचित्तवत् अचित्त तेजस्काय के पुदगल २०४, कालोदायी द्वारा तपश्चरण सल्लेखना और समाधिपूवक निर्वाणप्राप्ति २०४।

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

१	श्रीमान्	सागरमलजी बेताला	अध्यक्ष	इन्दौर
२	,,	रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३	,,	धनराजजी विनायकिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
४	,,	एम० पारसमलजी चोरडिया	उपाध्यक्ष	मद्रास
५	,,	हुक्मीचन्दजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
६	,,	दुलीचन्दजी चोरडिया	उपाध्यक्ष	मद्रास
७	,,	जसराजजी पारख	उपाध्यक्ष	दुर्ग
८	,,	जी० सायरमलजी चोरडिया	महामन्त्री	मद्रास
९	,,	अमरचन्दजी मोदी	मन्त्री	ब्यावर
१०	,,	ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
११	,,	ज्ञानचन्दजी विनायकिया	सहमन्त्री	ब्यावर
१२	,,	जवरीलालजी शिशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१३	,,	आर० प्रसन्नचन्द्रजी चोरडिया	कोषाध्यक्ष	मद्रास
१४	,,	श्री माणकचन्दजी संचेती	परामर्शदाता	जोधपुर
१५	,,	एस० सायरमलजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
१६	,,	मोतीचन्दजी चोरडिया	,,	मद्रास
१७	,,	मूलचन्दजी सुराणा	,,	नागौर
१८	,,	तेजराजजी भण्डारी	,,	महामन्दिर
१९	,,	भंवरलालजी गोठी	,,	मद्रास
२०	,,	प्रकाशचन्दजी चोपड़ा	,,	ब्यावर
२१	,,	जतनराजजी मेहता	,,	मेड़तासिटी
२२	,,	भंवरलालजी श्रीश्रीमाल	,,	दुर्ग
२३	,,	चन्दनमलजी चोरड़िया	,,	मद्रास
२४	,,	सुमेरमलजी मेड़तिया	,,	जोधपुर
२५	,,	आसूलालजी बोहरा	,,	महामन्दिर

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं पंचमं अंगं

वियाहपण्णत्तिसुत्तं

[भगवई]

द्वितीय खण्ड

पञ्चमगणधर श्रीसुधर्मस्वामिविरचित पञ्चमम् अङ्गम्

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रम्

[भगवती]

छट्ठं सयं : छठा शतक

प्राथमिक

- ☐ व्याख्याप्रज्ञप्ति—भगवतीसूत्र के इस शतक मे वेदना, आहार, महाश्रव, सप्रदेश, तमस्कार्य, भव्य, शाली, पृथ्वी, कम एव अन्ययूथिकवक्तव्यता आदि विषयो पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है।
- ☐ इस छठे शतक मे भी पूर्ववत् दस उद्देशक है।
- ☐ प्रथम उद्देशक मे महावेदना और महानिर्जरा मे प्रशस्तनिर्जरा वाले जीव को विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है, तत्पश्चात् चतुर्विधकरण की अपेक्षा जीवो के साता असाता वेदन की प्ररूपणा की गई है और अ त मे जीवो मे वेदना और निजरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी की प्ररूपणा की गई है।
- ☐ द्वितीय उद्देशक मे जीवो के आहार के सम्बन्ध मे प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक वणन किया गया है।
- ☐ तृतीय उद्देशक मे महाकम आदि से युक्त जीव के साथ पुद्गलो के बन्ध, चय, उपचय और अशुभ रूप मे परिणमन का तथा अल्पकम आदि से युक्त जीव के साथ पुद्गलो के भेद-छेद, विध्वस आदि का तथा शुभरूप मे परिणमन का दृष्टान्तद्वयपूवक निरूपण है, द्वितीय द्वार मे वस्त्र मे पुद्गलोपचयवत् प्रयोग से समस्त जीवो के कम-पुद्गलोपचय का, तृतीय द्वार मे जीवो के कर्मोपचय की सादि-सान्तता का, जीवा की सादि-सान्तता आदि चतुभगी का, चतुथ द्वार मे अष्टकर्मों की ब धस्थिति आदि का, पाचवे से उन्नीसवे द्वार तक स्त्री-पुरुप-नपु सक आदि विभिन्न विशिष्ट कमब धक जीवो की अपेक्षा से अष्टकर्म प्रकृतियो के ब ध-अबन्ध का विचार किया गया है और अन्त मे पूर्वोक्त १५ द्वारो मे उक्त जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण है।
- ☐ चतुथ उद्देशक मे कालादेश की अपेक्षा सामा य चौवीस दण्डकवर्ती जीव, आहारक, भव्य, सज्ञी, लेश्यावान्, दृष्टि, सयत, सकषाय, सयोगी, उपयोगी, सवेदक, सशरीरी, पर्याप्तक आदि विशिष्ट जीवो मे १४ द्वारो के माध्यम से सप्रदेशत्व-अप्रदेशत्व का निरूपण किया गया है। अ त मे समस्त जीवो के प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी होने, जानने, करने और आयुष्य बाधने के सम्ब ध मे प्रश्नोत्तर हैं।
- ☐ पचम उद्देशक मे विभिन्न पहलुओ से तमस्काय और कृष्णराजिया के सम्ब ध मे सागोपाग वणन है, अन्त मे लोकान्तिक देवो से सम्ब धित विमान, देवपरिवार, विमानसस्थान आदि का वर्णन है।

- ☐ छठे उद्देशक में चौबीस दण्डकों के आवास, विमान आदि की संख्या का तथा मारणान्तिक समुद्घातसमवहत जीव के आहारादि से सम्बन्धित निरूपण किया गया है।

- ☐ सातवें उद्देशक में कोठे आदि में रखे हुए शालि आदि विविध धान्यों की योनि, स्थिति की तथा मुहूर्त से लेकर शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त गणितयोग्य कालपरिमाण की और पल्योपम, सागरोपमादि औपमिक काल की प्ररूपणा की गई है। अन्त में सुषमसुषमाकालीन भारत में जीव अजीवों के भावादि का वर्णन किया गया है।

- ☐ आठवें उद्देशक में रत्नप्रभादि पृथ्वियों तथा सर्वदेवलोकों में गृह ग्राम मेघादि के अस्तित्व-कर्तृत्व की, जीवों के आयुष्यबन्ध एवं जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डकों की, लवणादि असंख्य द्वीप-समुद्रों के स्वरूप एवं प्रमाण की तथा द्वीप-समुद्रों के शुभ नामों की प्ररूपणा की गई है।

- ☐ नौवें उद्देशक में ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध के साथ अन्यकर्मों के बन्ध का, बाह्यपुद्गल ग्रहण पूर्वक महर्द्धिकादि देव के द्वारा एकवर्णादि के पुद्गलों के अन्यवर्णादि में विकुर्वण-परिणमन-सम्बन्धी सामर्थ्य का तथा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवों द्वारा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यावाले देवादि को जानने-देखने के सामर्थ्य का निरूपण किया गया है।

- ☐ दसवें उद्देशक में अन्यतीर्थिकमत-निराकरणपूर्वक सम्पूर्ण लोकवर्ती सर्वजीवों के सुख दुःख को अणुमात्र भी दिखाने की असमर्थता की स्वमतप्ररूपणा, जीव के स्वरूपनिर्णय से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर, एकान्त दुःखवेदनरूप अन्यतीर्थिकमत निराकरणपूर्वक अनेकान्तशैली से सुखदुःखादि-वेदनप्ररूपणा तथा जीवों द्वारा आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ पुद्गलाहार की प्ररूपणा की गई है। अन्त में केवली के आत्मा द्वारा ही ज्ञान-दर्शन-सामर्थ्य की प्ररूपणा की गई है।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद टिप्पणयुक्त) खण्ड १ 'अनुक्रमणिका' पृ. ४ से ७ तक
(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १ 'विषयानुक्रमो' पृ. ४० से ४४ तक

छट्ठं सयं : छठा शतक

छठे शतक की संग्रहणीगाथा

१ वेयण १ आहार २ महस्सवे य ३ सपदेस ४ तमुयए ५ भविए ६ ।
साली ७ पुढवी ८ कम्मऽन्नउत्थि ९-१० दस छट्ठगम्मि सते ॥ १ ॥

[१ गाथा का अर्थ—] १ वेदना, २ आहार, ३ महाश्रव, ४ सप्रदेश, ५ तमस्काय, ६ भव्य ७ शाली, ८ पृथ्वी, ९ कर्म और १० अन्ययूथिक-वक्तव्यता, इस प्रकार छठे शतक मे ये दस उद्देशक है।

पढमो उद्देसओ : 'वेयण'

प्रथम उद्देशक वेदना

महावेदना एव महानिर्जरायुक्त जीवो का निर्णय विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा

२ से नूण भते ! जे महावेदणे से महानिज्जरे ? जे महानिज्जरे से महावेदणे ? महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए ?

हता, गोयमा ! जे महावेदणे एव चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या यह निश्चित है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है और जो महानिर्जरावाला है, वह महावेदना वाला है ? तथा क्या महावेदना वाला और अल्पवेदना वाला, इन दोनो मे वही जीव श्रेयान् (श्रेष्ठ) है, जो प्रशस्तनिर्जरा वाला है ?

[२ उ] हा, गौतम ! जो महावेदना वाला है, इत्यादि जैसा ऊपर कहा है, इसी प्रकार समझना चाहिए।

३ [१] छट्ठी सत्तमासु ण भते ! पुढवीसु नेरइया महावेदणा ?
हता, महावेदणा ।

[३-१ प्र] भगवन् ! क्या छठी और सातवी (नरक-) पृथ्वी के नैरयिक महावेदना वाले हैं ?
[३-१ उ] हा गौतम ! वे महावेदना वाले हैं।

[२] ते ण भते ! समणेहितो निग्गथेहितो महानिज्जरतरा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[३-२ प्र.] भगवन्! तो क्या वे (छठी-सातवीं नरकभूमि के नैरयिक) श्रमण-निर्ग्रन्थों की अपेक्षा भी महानिर्जरा वाले हैं?

[३-२ उ.] गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात्—छठी-सातवीं नरक भूमि के नैरयिक श्रमण-निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा वाले नहीं हैं।)

४ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जे महावेदणे जाव पसत्थनिज्जराए (सु. २)?

गोयमा! से जहानामए दुवे वत्थे सिया, एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते, एगे वत्थे खंजणरागरत्ते। एतेसि णं गोयमा! दोण्हं वत्थाणं कतरे वत्थे दुधोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुपरिकम्मतराए चेव? कतरे वा वत्थे सुधोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव, जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते? जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते?

भगवं! तत्थ णं जे से वत्थे कद्दमरागरत्ते से णं वत्थे दुधोयतराए चेव, दुवामतराए चेव, दुपरिकम्मतराए चेव ? ।

एवामेव गोयमा! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकताइं चिक्कणीकताइं सिलिट्ठीकताइं खिलीभूताइं भवंति, संपगाढं पि य णं ते वेदणं वेदेमाणा नो महानिज्जरा, णो महापज्जवसाणा भवंति। से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणिं आकोडेमाणे महता महता सद्देणं महता महता घोसेणं महता महता परंपराघातेणं नो संचाएति तीसे अहिगरणीए अहाबायरे वि पोग्गले परिसाडित्तए। एवामेव गोयमा! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं जाव नो महापज्जवसाणा भवंति।

भगवं! तत्थ जे से वत्थे खंजणरागरत्ते से णं वत्थे सुधोयतराए चेव, सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव ? ।

एवामेव गोयमा! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकताइं निट्ठिताइं कडाइं विप्परिणामिताइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति जावतियं तावतियं पि णं ते वेदणं वेदेमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति। से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जति?

हंता, मसमसाविज्जति।

एवामेव गोयमा! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं जाव महापज्जवसाणा भवंति। से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदगबिंदू जाव हंता, विद्धंसमागच्छति। एवामेव गोयमा! समणाणं निग्गंथाणं जाव महापज्जवसाणा भवंति। से तेणट्ठेणं जे महावेदणे से महानिज्जरे जाव निज्जराए।[1]

[४ प्र.] भगवन्! यह किस कारण से कहा जाता है कि जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला है?

---

१ यहाँ 'जाव' शब्द से 'जे महानिज्जरे से महावेदणे, महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए' यह पाठ समझना चाहिए।

[४ उ] गौतम ! (मान लो,) जैसे दो वस्त्र हैं। उनमे से एक कदम (कीचड) के रग से रगा हुआ है और दूसरा वस्त्र खजन (गाडी के पहिये के कीट) के रग से रगा हुआ है । गौतम ! इन दोनो वस्त्रो मे कौन सा वस्त्र दुर्धौततर (मुश्किल से धुल सकने योग्य), दुर्वाम्यतर (बडी कठिनाई से काले धब्बे उतारे जा सक, ऐसा) और दुष्परिकर्मतर (जिस पर मुश्किल से चमक लाई जा सके तथा चित्रादि बनाये जा सकें, ऐसा) है और कौन सा वस्त्र सुधौततर (जो सरलता से धोया जा सके), सुवाम्यतर (आसानी से जिसके दाग उतारे जा सकें) तथा सुपरिकर्मतर (जिस पर चमक लाना और चित्रादि बनाना सुगम) है, कदमराग-रक्त या खजनराग-रक्त ? (गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—) भगवन् ! उन दोनो वस्त्रो मे जो कदम रग से रगा हुआ है, वही (वस्त्र) दुर्धौततर, दुर्वाम्यतर एव दुष्परिकमतर है।

(भगवान् ने इस पर फरमाया—) 'हे गौतम ! इसी तरह नैरयिकों के पाप-कम गाढीकृत (गाढ बधे हुए), चिक्कणीकृत (चिकने किये हुए), श्लिष्ट (निधत्त) किये हुए एव खिलीभूत (निकाचित किये हुए) है, इसलिए वे सम्प्रगाढ वेदना को वेदते हुए भी महानिजरा वाले नही है तथा महापयवसान वाले भी नही हैं ।

अथवा जैसे कोई व्यक्ति जोरदार आवाज के साथ महाघोष करता हुआ लगातार जोर-जोर से चोट मार कर एरण को (हथौडे से) कूटता-पीटता हुआ भी उस एरण (अधिकरणी) के स्थूल पुदगलो को परिशटित (विनष्ट) करने मे समर्थ नही हो सकता, इसी प्रकार हे गौतम ! नैरयिको के पापकर्म गाढ किये हुए हैं, यावत् इसलिए वे महानिजरा एव महापयवसान वाले नही हैं।

(गौतमस्वामी ने पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर पूण किया—) 'भगवन् ! उन दोनो वस्त्रो मे जो खजन के रग से रगा हुआ है, वह वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुपरिकर्मतर है।' (इस पर भगवान् ने कहा—) हे गौतम ! इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थो के यथाबादर (स्थूलतर स्कन्धरूप) कम, शिथिलीकृत (मन्द विपाक वाले), निष्ठितकृत (सत्तारहित किए हुए), विपरिणामित (विपरिणाम वाले) होते हैं। (इसलिए वे) शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। जितनी कुछ (जैसी-कैसी) भी वेदना को वेदते हुए श्रमण-निग्रन्थ महानिर्जरा और महापयवसान वाले होते है।'

(भगवान् ने पूछा—) हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पूले (तृणहस्तक) को धधकती अग्नि मे डाल दे तो क्या वह सूखे घास का पूला धधकती आग मे डालते ही शीघ्र जल उठता है ?

(गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—) हाँ भगवन् ! वह शीघ्र ही जल उठता है। (भगवान् ने कहा—) हे गौतम ! इसी तरह श्रमण-निर्ग्रन्थो के यथाबादर कर्म शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं, यावत् वे श्रमण-निग्रन्थ महानिजरा एव महापयवसान वाले होते हैं।

(अथवा) जैसे कोई पुरुष अत्यन्त तपे हुए लोहे के तवे (या कडाह) पर पानी की बूद डाले तो वह यावत् शीघ्र ही विनष्ट हो जाती है इसी प्रकार, हे गौतम ! श्रमण-निर्ग्रन्थो के यथाबादर कर्म भी शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते ह और वे यावत् महानिजरा एव महापयवसान वाले होते हैं।

इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि जो महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है, यावत् वही श्रेष्ठ है जो प्रशस्तनिजरा वाला है।

विवेचन—महावेदना एवं महानिर्जरा वाले जीवों के विषय में विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा निर्णय—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. २ से ४ तक) में महावेदनायुक्त एवं महानिर्जरायुक्त कौन-से जीव हैं और व क्या हैं? इस विषय में विविध साधक-बाधक दृष्टान्तों द्वारा निर्णय दिया गया है।

महावेदना और महानिर्जरा की व्याख्या—उपसर्ग आदि के कारण उत्पन्न हुई विशेष पीड़ा महावेदना और कर्मों का विशेष रूप से क्षय होना महानिर्जरा है। महानिर्जरा और महापर्यवसान का भी महावेदना और महानिर्जरा की तरह कार्य कारणभाव है। जो महानिर्जरा वाला नहीं होता, वह महापर्यवसान (कर्मों का विशेष रूप से सभी ओर से अन्त करने वाला) नहीं होता।

क्या नारक महावेदना और महानिर्जरा वाले नहीं होते?—मूल पाठ में इस प्रश्न को उठा कर समाधान मांगा है कि नैरयिक महावेदना वाले होते हुए महानिर्जरा वाले होते हैं या श्रमण निर्ग्रन्थ? भगवान् ने कीचड से रंगे और खंजन से रंगे, वस्त्रद्वय के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि जो महावेदना वाले होते हैं, वे सभी महानिर्जरा वाले नहीं होते। जैसे नारक महावेदना वाले होते हैं, उन्हें अपने पूर्वकृत गाढबन्धनबद्ध निधत्त-निकाचित कर्मों के फलस्वरूप महावेदना होती है, परन्तु वे उसे समभाव से न सहकर रो-रो-कर, विलाप करते हुए सहते हैं, जिससे वह महावेदना महानिर्जरा रूप नहीं होती, बल्कि अल्पतर, अप्रशस्त, अकामनिर्जरा होकर रह जाती है। इसके विपरीत भ. महावीर जैसे श्रमण-निर्ग्रन्थ बड़े-बड़े उपसर्गों व परीषहों को समभाव से सहन करने के कारण महानिर्जरा और वह भी प्रशस्त निर्जरा कर लेते हैं। इस कारण वेदना महती हो या अल्प, उसे समभाव से सहने वाला ही भगवान् महावीर की तरह प्रशस्त महानिर्जरा एवं महापर्यवसान वाला हो जाता है। श्रमण निर्ग्रन्थों के कर्म शिथिलबन्धन वाले होते हैं, जिन्हें वे शीघ्र ही स्थितिघात और रसघात आदि के द्वारा विपरिणाम वाले कर देते हैं। अतएव वे शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में दो दृष्टान्त दिये गए हैं—सूखे घास का पूला अग्नि में डालते ही तथा तपे हुए तवे पर पानी की बूंद डालते ही ये दोनों शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं, वैसे ही श्रमणों के कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

निष्कर्ष—यहाँ उल्लिखित कथन—'जो महावेदना वाला होता है, वह महानिर्जरा वाला होता है' किसी विशिष्ट जीव की अपेक्षा से समझना चाहिए, नैरयिक आदि क्लिष्ट कर्म वाले जीवों की अपेक्षा से नहीं। तथा जो महानिर्जरा वाला होता है, वह महावेदनावाला होता है, यह कथन भी प्रायिक समझना चाहिए क्योंकि सयोगीकेवली नामक तेरहवें गुणस्थान में महानिर्जरा होती है, परन्तु महावेदना नहीं भी होती, उसकी वहाँ भजना है।

निष्कर्ष यह है कि जिनके कर्म सुधौतवस्त्रवत् सुविशोध्य होते हैं, वे महानुभाव कैसी भी वेदना को भोगते हुए महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

दुर्विशोध्य कर्म के चार विशेषणों की व्याख्या—गाढीकयाइं—जो कर्म डोरी से मजबूत बांधी हुई सुइयों के ढेर के समान आत्मप्रदेशों के साथ गाढ़ बंधे हुए हैं, वे गाढीकृत हैं। चिक्कणीकयाइं—मिट्टी के चिकने बर्तन के समान सूक्ष्म-कर्मस्कन्धों के रूप में साथ परस्पर गाढ़ बन्ध वाले, दुर्भेद्य कर्मों को चिकने किए हुए कर्म कहते हैं। सिलिट्ठीकयाइं—रस्सी से दृढतापूर्वक बांध कर आग में तपाई हुई सुइयों का ढेर जैसे परस्पर चिपक जाता है, वे सुइयाँ एकमेक हो जाती हैं, उसी तरह

जो कर्म परस्पर एकमेक—विलष्ट हो (चिपक) गए हैं, ऐसे निधत्त कर्म। खिलीभूयाइ—खिलीभूत कर्म, वे निकाचित कर्म होते है, जो बिना भोगे, किसी भी अन्य उपाय से क्षीण नहीं होते।[1]

चौबीस दण्डकों में करण की अपेक्षा साता-असाता-वेदन की प्ररूपणा

५. कतिविहे णं भंते! करणे पण्णत्ते ?

गोयमा! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे।

[५ प्र.] भगवन्! करण कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[५ उ.] गौतम! करण चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—मन करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

६. णेरइयाणं भंते! कतिविहे करणे पण्णत्ते ?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। एवं पंचेंदियाणं सव्वेसिं चउव्विहे करणे पण्णत्ते। एगिंदियाणं दुविहे-कायकरणे य कम्मकरणे य। विगलेंदियाणं वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे।

[६ प्र.] भगवन्! नैरयिक जीवों के कितने प्रकार के करण कहे गए हैं ?

[६ उ.] गौतम! नैरयिक जीवों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—मन करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। इसी प्रकार समस्त पंचेन्द्रिय जीवों के ये चार प्रकार के करण कहे गए हैं। एकेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार के करण होते हैं—काय-करण और कर्म-करण। विकलेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार के करण होते हैं, यथा—वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

७. [१] नेरइया णं भंते! किं करणतो वेदणं वेदेंति ? अकरणतो वेदणं वेदेंति ?

गोयमा! नेरइया णं करणओ वेदणं वेदेंति, नो अकरणओ वेदणं वेदेंति।

[७-१ प्र.] भगवन्! नैरयिक जीव करण से (असाता) वेदना वेदते हैं अथवा अकरण से (असाता) वेदना वेदते हैं ?

[७-१ उ.] गौतम! नैरयिक जीव करण से (असाता) वेदना वेदते हैं, अकरण से (असाता) वेदना नहीं वेदते।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा! नेरइयाणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। इच्चेएणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणतो असायं वेदणं वेदेंति नो अकरणतो, से तेणट्ठेणं०।

---

१. (क) भगवती अ. वृत्ति पत्रांक २५१ (ख) भगवती, हिन्दी विवेचन भा. २ पृ. ९३६ से ९३८ तक

[७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[७-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीवों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं, जैसे—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। उनके ये चारों ही प्रकार के करण अशुभ होने से वे (नैरयिक जीव अशुभ) करण द्वारा असातावेदना वेदते हैं, अकरण द्वारा नहीं। इस कारण से ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं।

८ [१] असुरकुमारा णं किं करणतो, अकरणतो ?

गोयमा ! करणतो, नो अकरणतो।

[८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या करण से (साता) वेदना वेदते हैं, अथवा अकरण से?

[८-१ उ] गौतम ! असुरकुमार करण से (साता) वेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे। इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमारा णं करणतो सायं वेयणं वेदेंति, नो अकरणतो।

[८-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[८-२ उ] गौतम ! असुरकुमारों के चार प्रकार के करण कहे गए हैं। यथा—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। असुरकुमारों के ये चारों करण शुभ होने से वे (असुरकुमार) करण से सातावेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण से नहीं।

९ एवं जाव थणियकुमारा।

[९] इसी तरह (नागकुमार से लेकर) यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए।

१० पुढविकाइयाणं एवामेव पुच्छा। नवरं इच्चेएणं सुभासुभेणं करणेणं पुढविकाइया करणतो वेमायाए वेयणं वेदेंति, नो अकरणतो।

[१० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के लिए भी इसी प्रकार प्रश्न है (क्या पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, या अकरण द्वारा ?)

[१० उ] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण द्वारा नहीं।) विशेष यह है कि इनके ये करण शुभाशुभ होने से ये करण द्वारा विमात्रा से (विविध प्रकार से) वेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण द्वारा नहीं। अर्थात्—पृथ्वीकायिक जीव शुभकरण होने से सातावेदना वेदते हैं और कदाचित् अशुभकरण होने से असातावेदना वेदते हैं।

११ ओरालियसरीरा सव्वे सुभासुभेणं वेमायाए।

[११] औदारिक शरीर वाले सभी जीव (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य) शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना (कदाचित् सातावेदना और कदाचित् असातावेदना) वेदते हैं।

१२ देवा सुभेण सात।

[१२] देव (चारा प्रकार के देव) शुभकरण द्वारा सातावेदना वेदते है।

विवेचन—चौवीस दण्डको मे करण को अपेक्षा साता असातावेदन की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ५ से १२ तक) मे करण के चार प्रकार वता कर समस्त समारी जीवो मे इन्ही शुभाशुभ करणो के द्वारा साता-असातावेदना के वेदन की प्ररूपणा की गई है।

चार करणो का स्वरूप—वेदना का मुख्य कारण करण है, फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ। मनसम्बन्धी, वचनसम्बन्धी कायसम्बन्धी, और कर्मविपयक, ये चार करण होते हैं। कर्म के बन्धन, सक्रमण आदि के निमित्तभूत जीव के वीर्य को कर्मकरण कहते है।[1]

जीवो मे वेदना और निर्जरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी का निरूपण

१३ [१] जीवा ण भते! किं महावेदणा महानिज्जरा? महावेदणा अप्पनिज्जरा? अप्पवेदणा महानिज्जरा? अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा?

गोयमा! अत्थेगइया जीवा महावेदणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा महावेदणा अप्पनिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।

[१३-१ प्र] भगवन्! जीव, (क्या) महावेदना और महानिजरा वाले हैं, महावेदना और अल्पनिजरा वाले है, अल्पवेदना और महानिजरा वाले है, अथवा अल्पवेदना और अल्पनिजरा वाले है?

[१३-१ उ] गौतम! कितने ही जीव महावेदना और महानिजरा वाले है, कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिजरा वाले हैं, कई जीव अल्पवेदना और महानिजरा वाले है तथा कई जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले है।

[२] से केणट्ठेण ०?

गोयमा! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे। छट्ठ सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा। सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे। अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।

सेवं भते! सेवं भते! त्ति०।

[१३-२ प्र] भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है?

[१३-२ उ] गौतम! प्रतिमा-प्रतिपन्न (प्रतिमा अगीकार किया हुआ) अनगार महावेदना और महानिर्जरा वाला होता है। छठी-सातवी नरक पृथ्वियो के नरयिक जीव महावेदना वाले, किन्तु अल्पनिजरा वाले होते हैं। शलेशी-अवस्था को प्राप्त अनगार अल्पवेदना और महानिजरा

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति पत्राक २५२

[७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[७-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीवो के चार प्रकार के करण कहे गए हैं, जैसे—मन-करण, वचन-करण, काय करण और कर्म करण । उनके ये चारो ही प्रकार के करण अशुभ होने से वे (नैरयिक जीव अशुभ) करण द्वारा असातावेदना वेदते है, अकरण द्वारा नही । इस कारण से ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव करण से असातावेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं ।

८ [१] असुरकुमारा ण कि करणतो, अकरणतो ?

गोयमा ! करणतो, नो अकरणतो ।

[८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या करण से (साता) वेदना वेदते हैं, अथवा अकरण से?

[८-१ उ] गौतम ! असुरकुमार करण से (साता) वेदना वेदते हैं, अकरण से नही ।

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! असुरकुमाराण चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे वइकरणे कायकरणे कम्मकरणे । इच्चेएण सुभेण करणेण असुरकुमारा ण करणतो साय वेयण वेदेंति, नो अकरणतो ।

[८-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[८-२ उ] गौतम ! असुरकुमारो के चार प्रकार के करण कहे गए हैं । यथा—मन करण, वचन-करण, काय करण और कर्म-करण । असुरकुमारो के ये चारो करण शुभ होने से वे (असुरकुमार) करण से सातावेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण से नही ।

९ एव जाव थणियकुमारा ।

[९] इसी तरह (नागकुमार से लेकर) यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए ।

१० पुढविकाइयाण एस चेव पुच्छा । नवर इच्चेएण सुभासुभेण करणेण पुढविकाइया करणतो वेमायाए वेयण वेदेंति, नो अकरणतो ।

[१० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के लिए भी इसी प्रकार प्रश्न है (क्या पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, या अकरण द्वारा ?)

[१० उ] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, किन्तु अकरण द्वारा नही ।) विशेष यह है कि इनके ये करण शुभाशुभ होने से ये करण द्वारा विमात्रा से (विविध प्रकार से) वेदना वेदते है, किन्तु अकरण द्वारा नही । अर्थात्—पृथ्वीकायिक जीव शुभकरण होने से सातावेदना वेदते हैं और कदाचित् अशुभकरण होने से असातावेदना वेदते है ।

११ ओरालियसरीरा सव्वे सुभासुभेण वेमायाए ।

[११] औदारिक शरीर वाले सभी जीव (पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य) शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना (कदाचित् सातावेदना और कदाचित असातावेदना) वेदते है ।

१२ देवा सुभेण सात ।

[१२] देव (चारों प्रकार के देव) शुभकरण द्वारा सातावेदना वेदते हैं।

विवेचन—चौबीस दण्डकों में करण की अपेक्षा साता असातावेदन की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ५ से १२ तक) में करण के चार प्रकार बता कर समस्त संसारी जीवों में इन्हीं शुभाशुभ करणों के द्वारा साता-असातावेदना के वेदन की प्ररूपणा की गई है।

चार करणों का स्वरूप—वेदना का मुख्य कारण करण है, फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ। मनसम्बन्धी, वचनसम्बन्धी कायसम्बन्धी, और कर्मविषयक, ये चार करण होते हैं। कर्म के बन्धन, संक्रमण आदि के निमित्तभूत जीव के वीर्य को कर्मकरण कहते हैं।[1]

जीवों में वेदना और निर्जरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी का निरूपण

१३ [१] जीवा णं भंते ! किं महावेदणा महानिज्जरा ? महावेदणा अप्पनिज्जरा ? अप्पवेदणा महानिज्जरा ? अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ?

गोयमा ! अत्थेगइया जीवा महावेदणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा महावेदणा अप्पनिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा, अत्थेगइया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।

[१३-१ प्र.] भगवन् ! जीव, (क्या) महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं, अथवा अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

[१३-१ उ.] गौतम ! कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं, कई जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं तथा कई जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

[२] से केणट्ठेणं ० ?

गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे। छट्ठ-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा। सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे। अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

[१३-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

[१३-२ उ.] गौतम ! प्रतिमा-प्रतिपन्न (प्रतिमा अंगीकार किया हुआ) अनगार महावेदना और महानिर्जरा वाला होता है। छठी-सातवीं नरक पृथ्वियों के नैरयिक जीव महावेदना वाले, किन्तु अल्पनिर्जरा वाले होते हैं। शैलेशी-अवस्था को प्राप्त अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा

१. भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २५२

वाले होते हैं और अनुत्तरौपपातिक देव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले होते हैं।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कहकर यावत् गौतम स्वामी विचरण करते हैं।

विवेचन—जीवो मे वेदना और निर्जरा से सम्बन्धित चतुर्भंगी का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे जीवो मे वेदना और निर्जरा की चतुर्भंगी की सहेतुक प्ररूपणा की गई है।

चतुर्भंगी—(१) महावेदना—महानिर्जरा वाले, (२) महावेदना-अल्पनिर्जरा वाले, (३) अल्पवेदना-महानिर्जरा वाले और (४) अल्पवेदना-अल्पनिर्जरा वाले जीव।[१]

प्रथम उद्देशक की संग्रहणी गाथा

१४ महावेदणे य वत्थे कद्दम खंजणमए य अधिकरणी।
तणहत्थेऽयकवल्ले करण महावेदणा जीवा ॥१॥

॥ छट्ठसयस्स पढमो उद्देसो समत्तो ॥

[१४ गाथा का अर्थ—] महावेदना, कर्दम और खंजन के रंग से रंगे हुए वस्त्र अधिकरणी (एरण), घास का पूला (तृणहस्तक), लोहे का तवा या कड़ाह, करण और महावेदना वाले जीव, इतने विषयो का निरूपण इस प्रथम उद्देशक मे किया गया है।

॥ छठा शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा-१, पृ. २३३

बीओ उद्देसओ . 'आहार'

द्वितीय उद्देशक 'आहार'

जीवो के आहार के सम्बन्ध मे अतिदेशपूर्वक निरूपण

१ रायगिह नगर जाव एव वदासी—आहारुद्देसो जो पण्णवणाए सो सव्वो निरवसेसो नेयव्वो ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति ।

॥ छट्ठे सए बीओ उद्देसो समत्तो ॥

[१] राजगृह नगर मे यावत भगवान् महावीर ने इस प्रकार फरमाया—यहाँ प्रज्ञापना सूत्र (के २८वें आहारपद) मे जो (प्रथम) आहार—उद्देशक कहा है, वह सम्पूर्ण (निरवशेष) जान लेना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', (यो कह कर यावत गौतम स्वामी विचरण करने लगे ।)

विवेचन—जीवों के आहार के सम्बन्ध मे अतिदेशपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत उद्देशक मे इसी सूत्र के द्वारा प्रज्ञापनासूत्रवर्णित आहारपद के प्रथम उद्देशक का अतिदेश करके जीवो के आहार-सम्बन्धी वर्णन करने का निरूपण किया है ।

प्रज्ञापना मे वर्णित आहारसम्बन्धी वर्णन की सक्षिप्त झाकी—प्रज्ञापनासूत्र के २८वें आहार पद के प्रथम उद्देशक म क्रमश ११ अधिकारो मे वर्णित विषय ये हैं—

१ पृथ्वीकाय आदि जीव जो आहार करते हैं, वह सचित्त है, अचित्त है या मिश्र है ?

२ नैरयिक आदि जीव आहारार्थी है या नही ? इस पर विचार ।

३ किन जीवो को कितने-कितने काल से, कितनी-कितनी बार आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

४ कौन से जीव किस प्रकार के पुद्गलो का आहार करते हैं ?

५ आहार करने वाला अपने समग्र शरीर द्वारा आहार करता है, या अन्य प्रकार से ? इत्यादि प्रश्न ।

६ आहार के लिये ग्रहण किये हुए पुद्गलो मे कितने भाग का आहार किया जाता है ? इत्यादि चर्चा ।

७ मुह मे खाने के लिए रखे हुए सभी पुद्गल खाये जाते हैं या कितने ही गिर जाते हैं । इसका स्पष्टीकरण ।

८ खायी हुई वस्तुएँ किस किस रूप मे परिणत होती है ? इसकी चर्चा ।

९ एकेन्द्रियादि जीवो के शरीरो को खाने वाले जीवो से सम्बन्धित वर्णन ।

१० रोमाहार से सम्बन्धित विवेचन ।

११ मन द्वारा तृप्त हो जाने वाले मनोभक्षी देवो से सम्बन्धित तथ्यो का निरूपण ।[1]

प्रज्ञापना सूत्र के २८वें पद के प्रथम उद्देशक मे इन ग्यारह अधिकारो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है विस्तार भय से यहाँ सिर्फ सूचना मात्र दी है, जिज्ञासु उक्त स्थल देखें ।

॥ छठा शतक द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) प्रज्ञापना सूत्र के २८वें आहारपद के प्रथम उद्देशक मे वर्णित ११ अधिकारो की संग्रहणी गाथाएँ—

सचित्ताऽऽहारट्ठी केवति-किं वाऽवि सव्वओ चेव ।
कतिभाग सव्व खलु-परिणामे चेव बोद्धव्वे ॥१॥
एगिंदियसरीरादी-लोमाहारा तहेव मणभक्खी ।
एतेसिं तु पदाणं विभावणा होति कातव्वा ॥२॥

(ख) भगवती सूत्र टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त खण्ड २, पृ २६० से २६८ तक ।

(ग) विशेष जिज्ञासुओ को इस विषय का विस्तृत वर्णन प्रज्ञापनासूत्र के २८वें पद के प्रथम उद्देशक मे देखना चाहिए । —स

तइओ उद्देसओ 'महासव'

तृतीय उद्देशक : 'महाश्रव'

तृतीय उद्देशक की संग्रहणी गाथाएँ

१ बहुकम्म १ वत्थपोग्गल पयोगसा वीससा य २ सादीए ३ ।
कम्मट्ठिति-त्थि ४-५ संजय ६ सम्मद्दिट्ठी ७ य सण्णीय ॥१॥
भविए ९ दसण १० पज्जत्त ११ भासय १२ परित्त १३ नाण १४ जोगे १५ य ।
उवओगा-ऽऽहारग १६ १७ सुहुम १८ चरिम बंधे १९ य, अप्पबहुं २० ॥२॥

[१] १ बहुकर्म, २ वस्त्र मे प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से (विस्रसा) पुद्गल, ३ सादि (आदि सहित), ४ कर्मस्थिति, ५ स्त्री, ६ संयत, ७ सम्यग्दृष्टि, ८ संज्ञी, ९ भव्य, १० दर्शन, ११ पर्याप्त, १२ भाषक, १३ परित्त, १४ ज्ञान, १५ योग, १६ उपयोग, १७ आहारक, १८ सूक्ष्म, १९ चरम बन्ध और २० अल्पबहुत्व, (इन बीस विषयों का वर्णन इस उद्देशक में किया गया है।

प्रथमद्वार—महाकर्मा और अल्पकर्मा जीव के पुद्गल-बन्ध-भेदादि का दृष्टान्तद्वयपूर्वक निरूपण

२ [१] से नूणं भंते ! महाकम्मस्स महाकिरियस्स महासवस्स महावेदणस्स सव्वओ पोग्गला बज्झति, सव्वओ पोग्गला चिज्जति, सव्वओ पोग्गला उवचिज्जति, सया समितं च णं पोग्गला बज्झंति, सया समितं पोग्गला चिज्जति, सया समितं पोग्गला उवचिज्जति, सया समितं च णं तस्स आया दुरूवत्ताए दुवण्णत्ताए दुगंधत्ताए दुरसत्ताए दुफासत्ताए अणिट्ठत्ताए अकंतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए, अहत्ताए, नो उड्ढत्ताए, दुक्खत्ताए, नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ ?

हंता, गोयमा ! महाकम्मस्स तं चेव ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या निश्चय ही महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाश्रव वाले और महावेदना वाले जीव के सर्वतः (सब दिशाओं से, अथवा सभी ओर से और सभी प्रकार से) पुद्गलों का बन्ध होता है ? सर्वतः (सब ओर से) पुद्गलों का चय होता है ? सर्वतः पुद्गलों का उपचय होता है ? सदा सतत पुद्गलों का बन्ध होता है ? सदा सतत पुद्गलों का चय होता है ? सदा सतत पुद्गलों का उपचय होता है ? क्या सदा निरन्तर उसका आत्मा (सशरीर जीव) दुरूपता में, दुवर्णता में, दुर्गन्धता में, दुःरसता में, दुःस्पर्शता में, अनिष्टता (इच्छा से विपरीतरूप) में, अकान्तता (असुन्दरता), अप्रियता, अशुभता (अमंगलता) अमनोज्ञता और अमनोगमता (मन से भी अस्मरणीय

रूप) मे, अनिच्छनीयता (अनीप्सित रूप) मे, अनभिध्यितता (प्राप्त करने हेतु अलोभता) मे, अधमता मे, अनूर्ध्वता मे, दु खरूप मे,—असुखरूप मे बार-बार परिणत होता है ?

[२-१ उ] हा, गौतम ! महाकम वाले जीव के यावत् ऊपर कहे अनुसार ही यावत् परिणत होता है।

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स अहतस्स वा धोतस्स वा ततुगतस्स वा आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सव्वओ पोग्गला बज्झति, सव्वओ पोग्गला चिज्जति जाव परिणमति, से तेणट्ठेण०।

[२-२ प्र] (भगवन् !) किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[२-२ उ] गौतम ! जैसे कोई अहत (जो पहना गया—परिभुक्त न हो), धौत (पहनने के बाद धोया हुआ), त तुगत (हाथ करघे से ताजा बुन कर उतरा हुआ) वस्त्र हो, वह वस्त्र जब क्रमश उपयोग मे लिया जाता है, तो उसके पुद्गल सब ओर से बधत (सलग्न होते) है, सब ओर से चय होते है, यावत् काला तर मे वह वस्त्र मसोते जैसा अत्यन्त मैला और दुर्गन्धित रूप मे परिणत हो जाता है, इसी प्रकार महाकम वाला जीव उपयु क्त रूप से यावत् असुखरूप मे बार-बार परिणत होता है।

३ [१] से नूण भते ! अप्पकम्मस्स अप्पकिरियस्स अप्पासयस्स अप्पवेदणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जति, सव्वओ पोग्गला छिज्जति, सव्वओ पोग्गला विद्धसति, सव्वओ पोग्गला परिविद्धसति, सया समित पोग्गला भिज्जति छिज्जति विद्धसति परिविद्धसति, सया समित च ण तस्स आया सुरूवत्ताए पसत्य नेयव्व जाव[१] सुहत्ताए, नो दुक्खत्ताए भुज्जो २ परिणमति ?

हता, गोयमा ! जाव परिणमति।

[३-१ प्र] भगवन् ! क्या निश्चय ही अल्पकर्म वाले, अल्पक्रिया वाले, अल्प आश्रव वाले और अल्पवेदना वाले जीव के सर्वत (सब ओर से) पुद्गल भिन्न (पूर्व सम्बन्धविशेष को छोडकर अलग) हो जाते है ? सवत पुद्गल छिन्न होते (टूटते) जाते हैं ? सवत पुद्गल विध्वस्त होते जाते हैं ? सवत पुद्गल समग्ररूप से ध्वस्त हो जाते हैं ?, क्या सदा सतत पुद्गल भिन्न, छिन्न, विध्वस्त और परिविध्वस्त होते हैं ? क्या उसका आत्मा (बाह्य आत्मा=शरीर) सदा सतत सुरूपता मे यावत सुखरूप मे और अदु खरूप मे बार-बार परिणत होता है ? (पूर्वसूत्र मे अप्रशस्त पदो का कथन किया है, किन्तु यहाँ सब प्रशस्त-पदो का कथन करना चाहिए।)

[३-१ उ] हाँ, गौतम ! अल्पकम वाले जीव का यावत् ऊपर कहे अनुसार ही यावत् परिणत होता है।

---

१ 'जाव' पद यहाँ निम्नलिखित पदो का सूचक है—'सुवण्णत्ताए सुगधत्ताए सुरसत्ताए सुफासत्ताए इट्ठत्ताए कतत्ताए पियत्ताए सुभत्ताए मणुण्णत्ताए मणामत्ताए इच्छियत्ताए अणभिज्झियत्ताए उड्ढत्ताए, नो अहत्ताए, सुहत्ताए' ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स जल्लियस्स वा पंकितस्स वा मइलियस्स वा रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स सुद्धेण वारिणा धोव्वमाणस्स सव्वतो पोग्गला भिज्जंति जाव परिणमंति, से तेणट्ठेणं० ।

[३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[३-२ उ] गौतम ! जैसे कोई मैला (जल्लित), पंकित (कीचड से सना), मैलसहित अथवा धूल (रज) से भरा वस्त्र हो और उसे शुद्ध (साफ) करने का क्रमशः उपक्रम किया जाए, उसे पानी से धोया जाए तो उस पर लगे हुए मैले—अशुभ पुद्गल सब ओर से भिन्न (अलग) होने लगते हैं, यावत् उसके पुद्गल शुभरूप में परिणत हो जाते हैं, (इसी तरह अल्पकर्म वाले जीव के विषय में भी पूर्वोक्त रूप से सब कथन करना चाहिए।)

इसी कारण (हे गौतम ! अल्पकर्म वाले जीव के लिए कहा गया है कि वह यावत् बारबार परिणत होता है।)

विवेचन—महाकर्मी और अल्पकर्मी जीव के पुद्गल-बंध-भेदादि का दृष्टान्तद्वयपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों में क्रमशः महाकर्म आदि से युक्त जीव के सर्वतः सर्वदा-सतत पुद्गलों के बंध, चय, उपचय एवं अशुभरूप में परिणमन का तथा अल्पकर्म आदि से युक्त जीव के पुद्गलों का भेद, छेद, विध्वंस आदि का तथा शुभरूप में परिणमन का दो वस्त्रों के दृष्टान्तपूर्वक निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष एवं आशय—जो जीव महाकर्म, महाक्रिया, महाश्रव और महावेदना से युक्त होता है, उस जीव के सभी ओर से सभी दिशाओं अथवा प्रदेशों से कर्मपुद्गल संकलनरूप से बंधते हैं, बंधनरूप से चय को प्राप्त होते हैं, कर्मपुद्गलों की रचना (निषेक) रूप से उपचय को प्राप्त होते हैं। अथवा कर्मपुद्गल बंधनरूप में बंधते हैं, निधत्तरूप से उनका चय होता है और निकाचितरूप से उनका उपचय होता है।

जैसे नया और नहीं पहना हुआ स्वच्छ वस्त्र भी बार-बार इस्तेमाल करने तथा विभिन्न अशुभ पुद्गलों के संयोग से मसौते जैसा मलिन और दुर्गन्धित हो जाता है, वैसे ही पूर्वोक्त प्रकार के दुष्कर्मपुद्गलों के संयोग से आत्मा भी दुरूप के रूप में परिणत हो जाती है। दूसरी ओर—जो जीव अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पाश्रव और अल्पवेदना से युक्त होता है, उस जीव के कर्मपुद्गल सब ओर से भिन्न, छिन्न, विध्वस्त और परिविध्वस्त होते जाते हैं और जैसे मलिन, पंकयुक्त, गंदा और धूल से भरा वस्त्र क्रमशः साफ करते जाने से, पानी से धोये जाने से उस पर संलग्न मलिन पुद्गल छूट जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं और अन्त में वस्त्र साफ, स्वच्छ, चमकीला हो जाता है, इसी प्रकार कर्मों के संयोग से मलिन आत्मा भी तपश्चरणादि द्वारा कर्मपुद्गलों के झड़ जाने, विध्वस्त हो जाने से सुखादिरूप में प्रशस्त बन जाती है।

महाकर्मादि की व्याख्या—जिसके कर्मों की स्थिति आदि लम्बी हो, उसे महाकर्म वाला, जिसकी कायिकी आदि क्रियाएँ महान् हो, उसे महाक्रिया वाला, कर्मबंध के हेतुभूत मिथ्यात्वादि

जिसके महान् (गाढ एव प्रचुर) हो उसे, महाश्रववाला, तथा महापीडा वाले को महावेदना वाला कहा गया है ।[1]

द्वितीय द्वार–वस्त्र मे पुद्गलोपचयवत् समस्त जीवो के कर्मपुद्गलोपचय प्रयोग से या स्वभाव से ? एक प्रश्नोत्तर–

४ वत्थस्स ण भते ! पोग्गलोवचए किं पयोगसा, वीससा ?

गोयमा ! पयोगसा वि, वीससा वि ।

[४ प्र] भगवन् ! वस्त्र मे जो पुद्गलो का उपचय होता है, वह क्या प्रयोग (पुरुष प्रयत्न) से होता है, अथवा स्वाभाविक रूप से (विस्रसा) ?

[४ उ] गौतम ! वह प्रयोग से भी होता है, स्वाभाविक रूप मे भी होता है ।

५ [१] जहा ण भते ! वत्थस्स ण पोग्गलोवचए पयोगसा वि, वीससा वि तहा ण जीवाण कम्मोवचए किं पयोगसा, वीससा ?

गोयमा ! पयोगसा, नो वीससा ।

[५-१ प्र] भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र मे पुद्गलो का उपचय प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से होता है, तो क्या उसी प्रकार जीवो के कमपुद्गलो का उपचय भी प्रयोग से और स्वभाव स होता है ?

[५-१ उ] गौतम ! जीवो के कमपुद्गलों का उपचय प्रयोग से होता है, किन्तु स्वाभाविक रूप से नही होता ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! जीवाण तिविहे पयोगे पण्णत्ते, त जहा—मणप्पयोगे वइप्पयोगे कायप्पयोगे य । इच्चेतेण तिविहेण पयोगेण जीवाण कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा । एव सव्वेसि पचेंदियाण तिविहे पयोगे भाणियव्वे । पुढविक्काइयाण एगविहेण पयोगेण, एव जाव वणस्सतिकाइयाण । विगलिंदियाण दुविहे पयोगे पण्णत्ते, त जहा—वइप्पयोगे य, कायप्पयोगे य । इच्चेतेण दुविहेण पयोगेण कम्मोवचए पयोगसा, नो वीससा । से एएणट्ठेण जाव नो वीससा । एव जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाण ।

[५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[५-२ उ] गौतम ! जीवो के तीन प्रकार के प्रयोग कहे गए है—मन प्रयोग, वचनप्रयोग और कायप्रयोग । इन तीन प्रकार के प्रयोगो से जीवो के कर्मों का उपचय कहा गया है । इस प्रकार समस्त पचेन्द्रिय जीवो के तीन प्रकार का प्रयोग कहना चाहिए । पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पति-

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २५३

(ख) भगवती (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, पृ २७० से २७२ तक

कायिक (एकेन्द्रिय पचस्थावर) जीवो तक के एक प्रकार के (काय) प्रयोग से (कमपुद्गलोपचय होता है।) विकलेन्द्रिय जीवा के दो प्रकार के प्रयोग होते है, यथा—वचन-प्रयोग और काय प्रयोग। इस प्रकार उनके इन दो प्रयोगो से कर्म (पुद्गलो) का उपचय होता है। अत समस्त जीवो के कर्मोपचय प्रयोग से होता है, स्वाभाविक-रूप से नही। इसी कारण से कहा गया है कि यावत् स्वाभाविक रूप से नही होता। इस प्रकार जिस जीव का जो प्रयोग हो, वह कहना चाहिए। यावत् वैमानिक तक (यथायोग्य) प्रयोगो से कर्मोपचय का कथन करना चाहिए।

विवेचन—वस्त्र मे पुद्गलोपचय की तरह, समस्त जीवो के कमपुद्गलोपचय प्रयोग से या स्वभाव से ? प्रस्तुत सूत्रद्वय मे वस्त्र मे पुद्गलोपचय की तरह जीवो के कर्मोपचय उभयविध न होकर प्रयोग से ही होता है, इसकी सकारण प्ररूपणा की गई है।

'पयोगसा'—प्रयोग से—जीव के प्रयत्न से और वीससा – विस्रसा का अर्थ है—विना ही प्रयत्न के–स्वाभाविक रूप से।

निष्कर्ष—ससार के समस्त जीवो के कमपुद्गलो का उपचय प्रयोग—स्वप्रयत्न से होता है, स्वाभाविकरूप (काल, स्वभाव, नियति आदि) से नही। अगर ऐसा नही माना जाएगा तो सिद्ध जीव योगरहित हैं, उनके भी कर्मपुद्गलो का उपचय होने लगेगा, परन्तु यह सम्भव नही। अत कमपुदगलोपचय मन, वचन और काया इन तीनो प्रयोगो मे से किसी एक, दो या तीनो से होता है यही युक्तियुक्त सिद्धान्त है।[1]

तृतीय द्वार—वस्त्र के पुद्गलोपचयवत् जीवो के कर्मोपचय की सादि-सान्तता आदि का विचार—

६ वत्थस्स ण भते ! पोग्गलोवचए कि सादीए सपज्जवसिते ? सादीए अपज्जवसिते ? अणादीए सपज्जवसिते ? अणादीए अपज्जवसिते ?

गोयमा ! वत्थस्स ण पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिते, नो सादीए अपज्जवसिते, नो अणादीए सपज्जवसिते, नो अणादीए अपज्जवसिते।

[६ प्र] भगवन् ! वस्त्र मे पुद्गलो का जो उपचय होता है वह सादि-सान्त है, सादि-अनन्त है, अनादि-सान्त है, अथवा अनादि-अनन्त है ?

[६ उ] गौतम ! वस्त्र मे पुदगलो का जो उपचय होता है, वह सादि सान्त होता है, किन्तु न तो वह सादि-अनन्त होता है, न अनादि-सान्त होता है और न अनादि-अनन्त होता है।

७ [१] जहा ण भते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिते, नो सादीए अपज्जवसिते, नो अणादीए सपज्जवसिते, नो अणादीए अपज्जवसिते तहा ण जीवाण कम्मोवचए पुच्छा।

गोयमा ! अत्येगइयाण जीवाण कम्मोवचए साईए सपज्जवसिते, अत्ये० अणाईए सपज्जवसिए, अत्ये० अणाईए अपज्जवसिए, नो चेव ण जीवाण कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिते।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २५४
(ख) भगवती (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २ पृ २७८

[७-१ प्र] हे भगवन् ! जिस प्रकार वस्त्र में पुद्गलोपचय सादि सान्त है, किन्तु सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त नहीं है, क्या उसी प्रकार जीवों का कर्मोपचय भी सादि-सान्त है, सादि-अनन्त है, अनादि-सान्त है, अथवा अनादि-अनन्त है ?

[७-१ उ] गौतम ! कितने ही जीवों का कर्मोपचय सादि-सान्त है, कितने ही जीवों का कर्मोपचय अनादि-सान्त है और कितने ही जीवों का कर्मोपचय अनादि अनन्त है, किन्तु जीवों का कर्मोपचय सादि-अनन्त नहीं है।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! इरियावहियाबंधयस्स कम्मोवचए साईए सप०। भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिते। अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणाईए अपज्जवसिते। से तेणट्ठेणं०।[1]

[७-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है ?

[७-२ उ] गौतम ! ईर्यापथिक-बन्धक का कर्मोपचय सादि-सान्त है, भवसिद्धिक जीवों का कर्मोपचय अनादि-सान्त है, अभवसिद्धिक जीवों का कर्मोपचय अनादि-अनन्त है। इसी कारण से हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

विवेचन—जीवों के कर्मोपचय की सादि-सान्तता का विचार—प्रस्तुत सूत्रद्वय में द्वितीय द्वार के माध्यम से वस्त्र के पुद्गलोपचय की सादि-सान्तता आदि के विचारपूर्वक जीवों के कर्मोपचय की सादि-सान्तता आदि का विचार प्रस्तुत किया गया है।

जीवों का कर्मोपचय सादि सान्त अनादि-सान्त एवं अनादि-अनन्त क्यों और कैसे ?—मूलपाठ में ईर्यापथिकबन्धकर्ता जीव की अपेक्षा से उक्त जीव का कर्मोपचय सादि-सान्त बताया गया है। ज्ञातव्य है कि ईर्यापथिकबन्ध क्या है ? और उसका बन्धकर्ता जीव कौन है ? कर्मबन्ध में मुख्य दो कारण हैं—एक तो क्रोधादि कषाय और दूसरा—मन-वचन-काया की प्रवृत्ति। जिन जीवों का कषाय सर्वथा उपशान्त या क्षीण नहीं हुआ है, उनको जो कर्मबन्ध होता है वह सब साम्परायिक (काषायिक) कहलाता है, और जिन जीवों का कषाय सर्वथा उपशान्त या क्षीण हो चुका है, उनकी हलन-चलन आदि सारी प्रवृत्तियाँ यौगिक (मन-वचन-काययोग से जनित) होती हैं। योगजन्य कर्म को ही ऐर्यापथिक कर्म कहते हैं अर्थात् ईर्यापथ (गमनादि क्रिया) से बन्धनेवाला कर्म ऐर्यापथिक कर्म है। दूसरे शब्दों में जो कर्म केवल हलन-चलन आदि शरीरादियोगजन्य प्रवृत्ति से बंधता है जिसके बन्ध में कषाय कारण नहीं होता वह ऐर्यापथिक कर्म है। ऐर्यापथिक कर्म का बन्धकर्ता ऐर्यापथिकबन्धक कहलाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगीकेवली को ऐर्यापथिक कर्म बन्ध होता है। यह कर्म इस अवस्था से पहले नहीं बंधता इस अवस्था की अपेक्षा से इस कर्म की आदि है, अतएव इसका सादित्व है किन्तु अयोगी (आत्मा की अक्रिय) अवस्था में अथवा उपशमश्रेणी से गिरने पर इस कर्म का बन्ध नहीं होता, इस कर्म का अन्त हो जाता है इस दृष्टि से इसका सान्तत्व है। भवसिद्धिक जीवों की अपेक्षा से कर्मोपचय अनादि सान्त है। भवसिद्धिक कहते हैं—सिद्ध (मुक्त) होने

---

१ यहाँ का पूरा पाठ इस प्रकार है—'तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अत्थे० जीवाणं कम्मोवचए सादीए [जाव] नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए।'

योग्य भव्यजीव को। भव्यजीवों के सामूहिक दृष्टि से कर्मबन्ध की कोई आदि नहीं है—प्रवाहरूप से उनके कर्मोपचय अनादि हैं, किन्तु एक न एक दिन वे कर्मों का सर्वथा अन्त करके सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करेंगे, इस अपेक्षा से उनका कर्मोपचय सान्त है।

अभवसिद्धिक जीवों की अपेक्षा से कर्मोपचय अनादि-अनन्त है। अभवसिद्धिक कहते हैं—अभव्य जीवों को, जिनके कर्मों का कभी अन्त नहीं होगा ऐसे अभव्य जीवों के कर्मोपचय की प्रवाहरूप से न तो आदि है और न अन्त है।[1]

तृतीयद्वार—वस्त्र एवं जीवों की सादि-सान्तता आदि चतुर्भंगीप्ररूपणा—

८ वत्थे णं भंते! किं सादीए सपज्जवसिते? चतुभंगो।

गोयमा! वत्थे सादीए सपज्जवसिते, अवसेसा तिण्णि वि पडिसेहेयव्वा।

[८ प्र.] भगवन्! क्या वस्त्र सादि-सान्त है? इत्यादि पूर्वोक्त रूप से चार भंग करके प्रश्न करना चाहिए।

[८ उ.] गौतम! वस्त्र सादि-सान्त है, शेष तीन भंगों का वस्त्र में निषेध करना चाहिए।

९ [१] जहा णं भंते! वत्थे सादीए सपज्जवसिए० तहा णं जीवा किं सादीया सपज्जवसिया? चतुभंगो, पुच्छा।

गोयमा! अत्थेगतिया सादीया सप०, चत्तारि वि भाणियव्वा।

[९-१ प्र.] भगवन्! जैसे वस्त्र सादि-सान्त है किन्तु सादि-अनन्त नहीं है, अनादि-सान्त नहीं है और न अनादि अनन्त है, वैसे जीवों के लिए भी चारों भंगों को लेकर प्रश्न करना चाहिए—अर्थात् (भगवन्! क्या जीव सादि सान्त हैं, सादि-अनन्त है अनादि-सान्त हैं अथवा अनादि-अनन्त हैं?)

[९-१ उ.] गौतम! कितने ही जीव सादि-सान्त है कितने ही जीव सादि-अनन्त है, कई जीव अनादि-सान्त हैं और कितनेक अनादि-अनन्त है। (इस प्रकार जीव में चारों ही भंग कहने चाहिए।)

[२] से केणट्ठेणं०?

गोयमा! नेरतिया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा गतिरागतिं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया। सिद्धा गतिं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया। भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया। अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया भवंति। से तेणट्ठेणं०।

[९-२ प्र.] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है?

[९-२ उ.] गौतम! नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य तथा देव गति और आगति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं, सिद्धगति की अपेक्षा से सिद्धजीव सादि-अनन्त हैं, लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि-सान्त है और संसार की अपेक्षा अभवसिद्धिक जीव अनादि-अनन्त हैं।

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक २५५
(ख) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त), खण्ड २, पृ. २७४

विवेचन—वस्त्र एवं जीवों की सादि-सान्तता आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्रद्वय में वस्त्र की सादि-सान्तता बता कर जीवों की सादि-सान्तता आदि चतुर्भंगी का प्ररूपण किया गया है।

नरकादि गति की सादि-सान्तता—नरकादि गति में गमन की अपेक्षा उसकी सादिता है और वहाँ से निकलने रूप आगमन की अपेक्षा उसकी सान्तता है।

सिद्धजीवों की सादि-अनन्तता—यों तो सिद्धों का सद्भाव सदा से है। कोई भी काल या समय ऐसा नहीं था और न है तथा न रहेगा कि जिस समय एक भी सिद्ध न हो, सिद्ध-स्थान सिद्धों से सर्वथा शून्य रहा हो। अतएव सामूहिक रूप से तो सिद्ध अनादि है, रोह अनगार के प्रश्न के उत्तर में यही बात बताई गई है। किन्तु एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सिद्धगति में प्रथम प्रवेश के कारण सभी सिद्ध सादि हैं। प्रत्येक सिद्ध ने किसी नियत समय में भवभ्रमण का अन्त करके सिद्धत्व प्राप्त किया है। इस दृष्टि से सिद्धों का सादिपन सिद्ध होता है। इसी तरह प्रत्येक जीव पहले संसारी था, भव का अन्त करने के पश्चात् वह सिद्ध हुआ है, किन्तु सिद्धपर्याय का कभी अन्त न होने के कारण सिद्धों को अनन्त भी कहा जा सकता है। यों सिद्धों की अनन्तता सिद्ध होती है।

भवसिद्धिक जीवों की अनादिसान्तता—भवसिद्धिक जीवों के भव्यत्वलब्धि होती है, जो सिद्धत्व प्राप्ति तक रहती है। इसके बाद छूट जाती है। इस दृष्टि से भवसिद्धिकों को अनादि-सान्त कहा है।[1]

चतुर्थद्वार—अष्ट कर्मों की बन्धस्थिति आदि का निरूपण—

१० कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ।

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं जाव[2] अंतराइयं।

[१० प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?

[१० उ] गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय यावत् अन्तराय।

११ [१] णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतियं कालं बंधठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मनिसेओ।

[११-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म की बन्धस्थिति कितने काल की कही गई है ?

[११-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेधकाल जानना चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति (ख) भगवती (टीकानुवाद टिप्पणयुक्त), खण्ड २, पृ. ९७५
(ग) देखो, भगवती, टीकानुवाद प्रथमखण्ड शतक १ उ. ६ में रोह अनगार के प्रश्न।

२ 'जाव' शब्द वेदनीय से गोत्र कर्मों तक का सूचक है।

[२] एवं दरिसणावरणिज्जं पि ।

[११-२] इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के विषय में भी जानना चाहिए ।

[३] वेदणिज्जं जह० दो समया, उक्को० जहा नाणावरणिज्जं ।

[११-३] वेदनीय कर्म की जघन्य (बन्ध-) स्थिति दो समय की है, उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरणीय कर्म के समान तीस कोडाकोडी सागरोपम की जाननी चाहिए ।

[४] मोहणिज्जं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्को० सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साणि अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो ।

[११-४] मोहनीय कर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी सागरोपम की है। सात हजार वर्ष का अबाधाकाल है। अबाधाकाल की स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेककाल जानना चाहिए ।

[५] आउगं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि, कम्मट्ठिती कम्मनिसेओ ।

[११-५] आयुष्यकर्म की बन्धस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक तेतीस सागरोपम की है। इसका कर्मनिषेक काल (तेतीस सागरोपम का तथा शेष) अबाधाकाल जानना चाहिए ।

[६] नाम-गोयाणं जह० अट्ठ मुहुत्ता, उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मनिसेओ ।

[११-६] नामकर्म और गोत्र कर्म की बन्धस्थिति जघन्य आठ मुहूर्त की और उत्कृष्ट २० कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका दो हजार वर्ष का अबाधाकाल है। उस अबाधाकाल की स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति कर्मनिषेककाल होता है ।

[७] अंतराइयं जहा नाणावरणिज्जं ।

[११-७] अन्तरायकर्म के विषय में ज्ञानावरणीय कर्म की तरह (बन्धस्थिति आदि) समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—आठ कर्मों की बन्धस्थिति आदि का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय में आठ कर्मों की जघन्य-उत्कृष्ट बन्धस्थिति, अबाधाकाल एवं कर्मनिषेककाल का निरूपण किया गया है।

बन्धस्थिति—कर्मबन्ध होने के बाद वह जितने काल तक रहता है, उसे बन्धस्थिति कहते हैं। **अबाधाकाल**—बाधा का अर्थ है—कर्म का उदय। कर्म का उदय न होना, 'अबाधा' कहलाता है। कर्मबन्ध से लेकर जब तक उस कर्म का उदय नहीं होता, तब तक के काल को अबाधाकाल कहते हैं। अर्थात् कर्म का बन्ध और कर्म का उदय इन दोनों के बीच के काल को अबाधाकाल कहते हैं। **कर्मस्थिति-कर्मनिषेक काल**—प्रत्येक कर्म बंधने के पश्चात् उस कर्म के उदय में आने पर अर्थात् उस कर्म का अबाधाकाल पूरा होने पर कर्म को वेदन (अनुभव) करने के प्रथम समय से लेकर बंधे हुए कर्म-

दलिको मे से वेदनयोग्य—भोगनेयोग्य कमदलिको की एक प्रकार की रचना होती है उसे कम निषेक कहते हैं। प्रथम समय मे बहुत अधिक कमनिषेक होता है, द्वितीय, तृतीय आदि समय मे उत्तरोत्तर क्रमश विशेष हीन विशेष हीन होता जाता है। निषेक तब तक होता रहता है, जब तक वह बधा हुआ कर्म आत्मा के साथ (कमबधस्थिति तक) टिकता है।[1]

कम की स्थिति दो प्रकार की—एक कर्म के रूप मे रहना, और दूसरी अनुभव (वेदा) योग्य कमरूप मे रहना। कम जब से अनुभव (वेदन) मे आता है, उस समय की स्थिति को अनुभव योग्य कमस्थिति जानना। अर्थात् कम की कुल स्थिति मे से अनुदय का काल (अबाधाकाल) बाद करने पर जो स्थिति शेष रहती है, उसे अनुभवयोग्य कर्मस्थिति समझना। कम की स्थिति जितने कोडाकोडी सागरोपम की होती है, उतने सौ वर्ष तक वह कम, अनुभव (वेदन) मे आए बिना आत्मा के साथ अकिंचित्कर रहता है। जैसे—मोहनीय कम की ७० कोडाकोडी सागरोपम का उत्कृष्ट स्थिति हैं, उसमे से ७० सौ (७०००) वर्ष तक तो वह कर्म यो ही अकिंचित्कर पडा रहता है। *यही कम का अबाधाकाल है।* उसके पश्चात् वह मोहनीयकम उदय मे आता है, तो ७ हजार वर्ष कम ७० कोडाकोडी सागरोपम तक अपना फल भुगताता रहता है, उस काल को कमनिषेककाल कहते हैं। निष्कर्ष यह है—कम की सम्पूर्ण स्थिति में से अबाधाकाल को निकाल देने पर बाकी जितना काल बचता है, वह उसका निषेक (बाधा) काल है।

आयुष्यकर्म के निषेककाल और अबाधाकाल मे विशेषता—सिर्फ आयुष्यकम का निषेककाल ३३ सागरोपम का और अबाधाकाल पूर्वकोटि का त्रिभागकाल है।

वेदनीयकम की स्थिति—जिस वेदनीयकम के बध मे कषाय कारण नही होता, केवल योग निमित्त है, वह वेदनीयकर्म बध की अपेक्षा दो समय की स्थिति वाला है। वह प्रथम समय म बधता है, दूसरे समय मे वेदा जाता है, किन्तु सकषाय बध की स्थिति की अपेक्षा वेदनीय कम की जघन्य स्थिति १२ मुहूर्त की होती है।[2]

पाचवें से उन्नीसवें तक पन्द्रह द्वारो मे उक्त विभिन्न विशिष्ट जीवो की अपेक्षा से कर्म-बन्ध-अबन्ध का निरूपण—

१२ [१] णाणावरणिज्ज ण भते! कम्म किं इत्थी बधति, पुरिसो बधति, नपु सम्रो बधति, णोइत्थी-नोपुरिसो नोनपु सम्रो बधइ ?

गोयमा! इत्थी वि बधइ, पुरिसो वि बधइ, नपु सम्रो वि बधइ, नोइत्थी-नोपुरिसो-नोनपु सम्रो सिय बधइ, सिय नो बधइ।

[१२-१ प्र] भगवन्! ज्ञानावरणीय कम क्या स्त्री बाधती है? पुरुष बाधता है, अथवा नपु सक बाधता है? अथवा नो स्त्री नोपुरुष-नोनपु सक (जो स्त्री, पुरुष या नपु सक न हो, वह) बाधता है?

---

१ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, प २७६-२७७

(ख) शिवशर्माचार्य कृत कमप्रकृति (उपा यशोविजयकृत टीका) निषेकप्ररूपणा पृ ८०

२ (क) पचसग्रह गा ३१-३२ भा भा पृ १७६

(ख) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद टिप्पणयुक्त) खण्ड २, पृ २७७-२७८

[१२-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकम को स्त्री भी बाधती है, पुरुष भी बाधता है और नपु सक भी बाधता है, परन्तु जो नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक होता है, वह कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता ।

[२] एव श्राउगवज्जाश्रो सत्त कम्मप्पगडीश्रो ।

[१२-२] इस प्रकार श्रायुष्यकम को छोड कर शेष सातो कमप्रकृतियो के विषय मे समझना चाहिए ।

१३ श्राउग ण भते ! कम्म कि इत्थी बधइ, पुरिसो बधइ, नपु सश्रो बधइ ?० पुच्छा ।

गोयमा ! इत्थी सिय बधइ, सिय नो बधइ, एव तिण्णि वि भाणियव्वा । नोइत्थी-नोपुरिसो-नोनपु सश्रो न बधइ ।

[१३ प्र] भगवन् ! श्रायुष्यकम को क्या स्त्री बाधती है, पुरुष बाधता है, नपु सक बाधता है श्रथवा नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक बाधता है ?

[१३ उ] गौतम ! श्रायुष्यकम स्त्री कदाचित् बाधती है श्रौर कदाचित् नही बाधती । इसी प्रकार पुरुष श्रौर नपु सक के विषय मे भी कहना चाहिए । नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक श्रायुष्यकर्म को नही बाधता ।

१४ [१] णाणावरणिज्ज ण भते ! कम्म कि सजते बधइ, श्रसजते०, सजयासजए बधइ, नोसजए नोश्रसजए-नोसजयासजए बधति ?

गोयमा ! सजए सिय बधति सिय नो बधति, श्रसजए बधइ, सजयासजए वि बधइ, नोसजए-नोश्रसजए नोसजयासजए न बधति ।

[१४-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म क्या सयत बाधता है, श्रसयत बाधता है, सयतासयत बाधता है श्रथवा नोसयत-नोश्रसयत-नोसयतासयत बाधता है ?

[१४ १ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकम को) सयत कदाचित् बाधता है श्रौर कदाचित् नही बाधता, किन्तु श्रसयत बाधता है, सयतासयत भी बाधता है, परन्तु नोसयत-नोश्रसयत-नोसयतासयत नही बाधता ।

[२] एव आउगवज्जाश्रो सत्त वि ।

[१४-२] इस प्रकार श्रायुष्यकर्म को छोड कर शेष सातो कर्मप्रकृतियो के विषय मे समझना चाहिए ।

[३] श्राउगे हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बधइ ।

[१४ ३] श्रायुष्यकम के सम्बन्ध मे नीचे के तीन—सयत, श्रसयत श्रौर सयतासयत के लिए भजना समझनी चाहिए । (श्रर्थात्—कदाचित् बाधते हैं श्रौर कदाचित् नही बाधते) नोसयत-नोश्रसयत-नासयतासयत श्रायुष्यकर्म को नही बाधते ।

१५ [१] णाणावरणिज्ज ण भते ! कम्म किं सम्मद्दिट्ठी बधइ, मिच्छद्दिट्ठी बधइ, सम्मामिच्छद्दिट्ठी बधइ ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी सिय बधइ सिय नो बधइ, मिच्छद्दिट्ठी बधइ, सम्मामिच्छद्दिट्ठी बधइ ।

[१५-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म क्या सम्यग्दृष्टि बाधता है, मिथ्यादृष्टि बाधता है अथवा सम्यग्-मिथ्यादृष्टि बाधता है ?

[१५-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीय कर्म को) सम्यग्दृष्टि कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता, मिथ्यादृष्टि बाधता है और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि भी बाधता है ।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त वि ।

[१५-२] इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सातो कर्मप्रकृतियो के विषय मे समझना चाहिए ।

[३] आउगे हेट्ठिल्ला दो भयणाए, सम्मामिच्छद्दिट्ठी न बधइ ।

[१५-३] आयुष्यकर्म को नीचे के दो—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि—भजना से बाधते हैं (अर्थात्—कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही बाधते ।) सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (सम्यग् मिथ्यादृष्टि अवस्था मे) नही बाधते ।

१६ [१] णाणावरणिज्ज किं सण्णी बधइ, असण्णी बधइ, नोसण्णीनोअसण्णी बधइ ?

गोयमा ! सण्णी सिय बधइ सिय नो बधइ, असण्णी बधइ, नोसण्णीनोअसण्णी न बधइ ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या सज्ञी बाधता है, असज्ञी बाधता है अथवा नोसज्ञी-नोअसज्ञी बाधता है ।

[१६-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकर्म को) सज्ञी कदाचित् बाधता है और कदाचित् नही बाधता । असज्ञी बाधता है और नोसज्ञी-नोअसज्ञी नही बाधता ।

[२] एव वेदणिज्जाऽऽउगवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ ।

[१६-२] इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड कर शेष छह कर्मप्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला दो बधति, उवरिल्ले भयणाए । आउग हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न बधइ ।

[१६-३] वेदनीयकर्म को आदि के दो (सज्ञी भी और असज्ञी भी) बाधते हैं, किन्तु अन्तिम के लिए भजना है अर्थात् नोसज्ञी-नोअसज्ञी कदाचित् बाधता है और कदाचित् नही बाधता । आयुष्यकर्म को आदि के दो—सज्ञी और असज्ञी जीव भजना से (कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही) बाधते हैं । नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव आयुष्यकर्म को नही बाधते ।

१७ [१] णाणावरणिज्जं कम्मं किं भवसिद्धीए बंधइ, अभवसिद्धीए बंधइ, नोभवसिद्धीए-नोअभवसिद्धीए बंधति ?

गोयमा ! भवसिद्धीए भयणाए, अभवसिद्धीए बंधति, नोभवसिद्धीए नोअभवसिद्धीए ण बंधइ ।

[१७-१ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या भवसिद्धिक बांधता है, अभवसिद्धिक बांधता है अथवा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक बांधता है ?

[१७-१ उ.] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकर्म को) भवसिद्धिक जीव भजना से (कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं) बांधता है। अभवसिद्धिक जीव बांधता है और नोभवसिद्धिक नोअभव-सिद्धिक जीव नहीं बांधता ।

[२] एवं आउगवज्जाओ सत्त वि ।

[१७-२] इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्लो न बंधइ ।

[१७-३] आयुष्यकर्म को नीचे के दो (भवसिद्धिक—भव्य और अभवसिद्धिक—अभव्य) भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं। ऊपर का (नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक) नहीं बांधता ।

१८ [१] णाणावरणिज्जं किं चक्खुदंसणी बंधति, अचक्खुदंस०, ओहिदंस०, केवलदं० ?

गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ ।

[१८-१ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या चक्षुदर्शनी बांधता है, अचक्षुदर्शनी बांधता है, अवधिदर्शनी बांधता है अथवा केवलदर्शनी बांधता है ?

[१८-१ उ.] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकर्म को) नीचे के तीन (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं किन्तु—केवलदर्शनी नहीं बांधता ।

[२] एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि ।

[१८-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोड़ कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए ।

[३] वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला तिण्णि बंधति, केवलदंसणी भयणाए ।

[१८-३] वेदनीयकर्म को निचले तीन (चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी) बांधते हैं, किन्तु केवलदर्शनी भजना से (कदाचित् बांधते हैं और कदाचित नहीं) बांधते हैं ।

१९ [१] णाणावरणिज्जं कम्मं किं पज्जत्तओ बंधइ, अपज्जत्तओ बंधइ, नोपज्जत्तए-नोअपज्जत्तए बंधइ ?

गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए, अपज्जत्तए बंधइ, नोपज्जत्तए नोअपज्जत्तए न बंधइ ।

[१९-१ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म को पर्याप्तक जीव बांधता है, अपर्याप्तक जीव बांधता है अथवा नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव बांधता है ?

[१९-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकर्म को) पर्याप्तक जीव भजना से बांधता है, (कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं) अपर्याप्तक जीव बांधता है और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव नहीं बांधता ।

[२] एवं आउगवज्जाओ ।

[१९-२] इस प्रकार आयुष्यकर्म के सिवाय शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले ण बंधइ ।

[१९-३] आयुष्यकर्म को निचले दो (पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव) भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं । अंत का (नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक) नहीं बांधता ।

२० [१] नाणावरणिज्जं किं भासए बंधइ, अभासए० ?
गोयमा ! दो वि भयणाए ।

[२०-१ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म को भाषक जीव बांधता है या अभाषक जीव बांधता है ?

[२०-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को दोनों—भाषक और अभाषक—भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं ।

[२] एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त ।

[२०-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोड़ कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] वेदणिज्जं भासए बंधइ, अभासए भयणाए ।

[२०-३] वेदनीयकर्म को भाषक जीव बांधता है, अभाषक जीव भजना से (कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं) बांधता है ।

२१ [१] णाणावरणिज्जं किं परित्ते बंधइ, अपरित्ते बंधइ, नोपरित्ते-नोअपरित्ते बंधइ ?
गोयमा ! परित्ते भयणाए, अपरित्ते बंधइ, नोपरित्ते-नोअपरित्ते न बंधइ ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! क्या परित्त जीव ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता है, अपरित्त जीव बांधता है, अथवा नोपरित्त-नोअपरित्त जीव बांधता है ?

[२१-१ उ] गौतम ! परित्त जीव ज्ञानावरणीय कर्म को भजना से (कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं) बांधता, अपरित्त जीव बांधता है और नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नहीं बांधता।

[२] एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ।

[२१-२] इस प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए।

[३] आउए परित्तो वि, अपरित्तो वि भयणाए। नोपरित्तो नोअपरित्तो न बंधइ।

[२१-३] आयुष्यकर्म को परित्त जीव भी और अपरित्त जीव भी भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं, नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नहीं बांधते।

२२ [१] णाणावरणिज्जं कम्मं किं आभिणिबोहियनाणी बंधइ, सुयनाणी० ओहिनाणी०, मणपज्जवनाणी०, केवलनाणी ब० ?

गोयमा ! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए, केवलनाणी न बंधइ।

[२२ १ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म क्या आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी बांधता है, श्रुतज्ञानी बांधता है, अवधिज्ञानी बांधता है, मन पर्यवज्ञानी बांधता है अथवा केवलज्ञानी बांधता है ?

[२२-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को निचले चार (आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी) भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं, केवलज्ञानी नहीं बांधता।

[२] एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि।

[२२-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोडकर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए।

[३] वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारि बंधंति, केवलनाणी भयणाए।

[२२-३] वेदनीयकर्म को निचले चारों (आभिनिबोधिकज्ञानी से लेकर मन पर्यवज्ञानी तक) बांधते हैं, केवलज्ञानी भजना से (कदाचित् बांधता है, कदाचित् नहीं) बांधता है।

२३ णाणावरणिज्जं किं मतिअण्णाणी बंधइ, सुय०, विभंग० ?

गोयमा ! आउगवज्जाओ सत्त वि बंधंति। आउगं भयणाए।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म को मति-अज्ञानी बांधता है, श्रुत-अज्ञानी बांधता है या विभंगज्ञानी बांधता है ?

[२३ उ] गौतम ! आयुष्यकर्म को छोडकर शेष सातों कर्मप्रकृतियों को ये (तीनों प्रकार के अज्ञानी) बांधते हैं। आयुष्यकर्म को ये तीनों भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं।

२४ [१] णाणावरणिज्जं किं मणजोगी बंधइ, वय०, काय०, अजोगी बंधइ ?

गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, अजोगी न बंधइ ।

[२४-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को क्या मनोयोगी बांधता है, वचनयोगी बांधता है, काययोगी बांधता है या अयोगी बांधता है ?

[२४-१ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकर्म को) निचले तीन—(मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी) भजना से (कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं, अयोगी नहीं बांधता ।

[२] एवं वेदणिज्जवज्जाओ ।

[२४-२] इसी प्रकार वेदनीय को छोडकर शेष सातों कर्मप्रकृतियों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति, अजोगी न बंधइ ।

[२४-३] वेदनीय कर्म को निचले (मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी) बांधते हैं, अयोगी नहीं बांधता ।

२५. णाणावरणिज्जं किं सागारोवउत्ते बंधइ, अणागारोवउत्ते बंधइ ?

गोयमा ! अट्ठसु वि भयणाए ।

[२५ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय (आदि अष्टविध) कर्म को क्या साकारोपयोग वाला बांधता है या अनाकारोपयोग वाला बांधता है ?

[२५ उ] गौतम ! (साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त दोनों प्रकार के जीव) भजना से (आठों कर्म-प्रकृतियों को कदाचित् बांधते हैं, कदाचित् नहीं) बांधते हैं ।

२६. [१] णाणावरणिज्जं किं आहारए बंधइ, अणाहारए बंधइ ?

गोयमा ! दो वि भयणाए ।

[२६-१ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीयकर्म आहारक जीव बांधता है या अनाहारक जीव बांधता है ?

[२६-१ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म को आहारक और अनाहारक, दोनों प्रकार के जीव भजना से (कदाचित् बांधते हैं और कदाचित्) नहीं बांधते हैं ।

[२] एवं वेदणिज्जं आउगवज्जाणं छण्हं ।

[२६-२] इसी प्रकार वेदनीय और आयुष्यकर्म को छोड कर शेष छहों कर्मप्रकृतियों के विषय में समझ लेना चाहिए ।

[३] वेदणिज्जं आहारए बंधंति, अणाहारए भयणाए । आउगं आहारए भयणाए, अणाहारए न बंधंति ।

[२६-३] आहारक जीव वेदनीय कर्म को बांधता है, अनाहारक के लिए भजना है अर्थात कदाचित् बाधता है और कदाचित् नही बाधता। (इसी प्रकार) आयुष्यकम को आहारक कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता, अनाहारक नही बाधता।

२७ [१] णाणावरणिज्ज किं सुहुमे बधइ, बादरे बधइ, नोसुहुमे नोबादरे बधइ ?

गोयमा ! सुहुमे बधइ, बादरे भयणाए नोसुहुमे-नोबादरे न बधइ।

[२७-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकम को क्या सूक्ष्म जीव बाधता है, बादर जीव बाधता है, अथवा नोसूक्ष्म-नोबादर जीव बाधता है ?

[२७ १ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकम को सूक्ष्मजीव बाधता है, बादर जीव भजना से (कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही) बाधता है, किन्तु नोसूक्ष्म नोबादर जीव नही बाधता।

[२] एव आउगवज्जाओ सत्त वि।

[२७ २] इसी प्रकार आयुष्यकम को छोड कर शेष सातो कम-प्रकृतियो के विषय मे कहना चाहिए।

[३] आउए सुहुमे बादरे भयणाए, नोसुहुमेनोबादरे ण बधइ।

[२७-३] आयुष्यकम को सूक्ष्म और बादरजीव भजना से (कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही) बाधते, नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नही बाधता।

२८ णाणावरणिज्ज किं चरिमे बधति, अचरिमे ब० ?

गोयमा ! अट्ठ वि भयणाए।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय (आदि अष्टविध) कम को चरमजीव बाधता है, अथवा अचरमजीव बाधता है ?

[२८ उ] गौतम ! चरम और अचरम, दोनो प्रकार के जीव, आठो कमप्रकृतियो को (कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही) बाधते है।

विवेचन—विभिन्न विशिष्ट जीवो की अपेक्षा से अष्टकर्मप्रकृतियों के बध अबध की प्ररूपणा—प्रस्तुत १७ सूत्रो (सू १२ से २८ तक) मे पाचवे द्वार से उन्नीसवे द्वार तक के माध्यम से स्त्री, पुरुष, नपु सक, नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक आदि विविध विशिष्ट जीवो की अपेक्षा से अष्ट कर्मों के बध-अबध के विषय मे सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है।

अष्टविधकमबन्धक-विषयक प्रश्न क्रमश पन्द्रह द्वारों मे—प्रस्तुत पन्द्रह द्वारो मे जिन जीवो के विषय मे जिस-जिस द्वार मे कमबधविषयक प्रश्न पूछा गया है, वे क्रमश इस प्रकार हैं—(१) पचम द्वार मे—स्त्री, पुरुष, नपु सक और नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक जीव, (२) छठे द्वार मे—सयत, असयत, सयतासयत और नोसयत नोअसयत-नोसयतासयत जीव, (३) सप्तम द्वार मे—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, (४) अष्टम द्वार मे—सज्ञी, असज्ञी, नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव, (५) नवम द्वार मे-भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव,

(६) दशम द्वार मे–चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव, (७) ग्यारहवें द्वार मे–पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव, (८) बारहवें द्वार मे– भाषक और अभाषक जीव, (९) तेरहवें द्वार मे—परित्त, अपरित्त और नोपरित्त नोअपरित्त जीव, (१०) चौदहवें द्वार मे—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी और केवलज्ञानी जीव तथा मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभगज्ञानी जीव, (११) पन्द्रहवें द्वार मे—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीव, (१२) सोलहवें द्वार मे—साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी जीव, (१३) सत्रहवें द्वार मे—आहारक और अनाहारक जीव, (१४) अठारहवें द्वार मे—सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर जीव, (१५) उन्नीसवें द्वार मे—चरम और अचरम जीव।[1]

पन्द्रह द्वारो मे प्रतिपादित जीवों के कर्म-बन्ध-अबन्धविषयक समाधान का स्पष्टीकरण—(१) स्त्रीद्वार—स्त्री, पुरुष और नपु सक ये तीनो ज्ञानावरणीयकर्म को बाधते है। जिस जीव के स्त्रीत्व, पुरुषत्व और नपु सकत्व से सम्बन्धित वेद (कामविकार) का उदय नही होता, किन्तु केवल स्त्री, पुरुष या नपु सक का शरीर है, उसे अपगतवेद या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपु सक जीव कहते हैं। यह अनिवृत्तिबादरसम्परायादि गुणस्थानवर्ती होता है। इनमे से अनिवृत्तिबादरसम्पराय और सूक्ष्म-सम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव ज्ञानावरणीयकम का बन्धक होता है, क्योकि वह सात या छह कर्मो का बन्धक होता है। उपशान्तमोहादि गुणस्थानवर्ती (नोस्त्री नोपुरुष-नोनपु सक) जीव ज्ञानावरणीय कम के अबन्धक होते हैं, क्योकि ये चारो (उपशान्तमोह से अयोगीकेवली) गुणस्थान वाले जीव केवल एकविध वेदनीयकर्म के बधक होते हैं। इसीलिए कहा गया है—नोस्त्री-नोपुरुष नोनपु सक ज्ञानावरणीय कर्म को भजना (विकल्प) से बाधता है और यह (वेदरहित) जीव आयुष्यकम को तो बाधता ही नही है, क्योकि निवृत्तिबादरसम्पराय से लेकर अयोगीकेवली गुणस्थान तक म आयुष्यबन्ध का व्यवच्छेद हो जाता है। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपु सकवेदी जीव आयुष्यकम को एक भव मे एक ही बार बाधता है, वह भी आयुष्य का बन्धकाल होता है, तभी आयुष्यकम बाधता है। जब आयुष्य बन्धकाल नही होता, तब आयुष्य नही बाधता। इसलिए कहा गया है—ये तीनो प्रकार के जीव आयुष्यकम को कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही बाधते।

(२) सयतद्वार—सामायिक, छेदोपस्थापनिक, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसम्पराय, इन चार सयमो मे रहने वाला सयत जीव ज्ञानावरणीय को बाधता है, किन्तु यथाख्यातसयमवर्ती सयत जीव उपशान्तमोहादि वाला होने से ज्ञानावरणीयकम को नही बाधता, इसीलिए कहा गया है—सयत भजना से ज्ञानावरणीय कम को बाधता है, किन्तु असयत (मिथ्यादृष्टि आदि जीव) और सयतासयत (पचमगुणस्थानवर्ती देशविरत) जीव, ज्ञानावरणीयकर्म को बाधते हैं। जबकि नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत (अर्थात्-सिद्ध) जीव न तो ज्ञानावरणीयकम बाधते हैं और न ही आयुष्यादि अन्य कम। क्योकि उनके कमबध का कोई कारण नही रहता। सयत, असयत और सयतासयत, ये तीनो पूर्ववत् आयुष्यबन्धकाल मे आयुष्य बाधते हैं, अन्यथा नही बाधते।

(३) सम्यग्दृष्टिद्वार—सम्यग्दृष्टि के दो भेद हैं—सराग-सम्यग्दृष्टि और वीतराग सम्यग्-दृष्टि। जो वीतराग-सम्यग्दृष्टि हैं, वे ज्ञानावरणीयकम को नही बाधते, क्योकि वे तो केवल एकविध वेदनीयकर्म के बन्धक हैं, जबकि सराग-सम्यग्दृष्टि ज्ञानावरणीयकर्म को बाधते हैं। इसीलिए कहा

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २३७ से २४२ तक

हैं—सम्यग्दृष्टि ज्ञानावरणीयकर्म कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि तो ज्ञानावरणीयकर्म को बाधते ही हैं। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव आयुष्यकर्म को कदाचित् बाधते हैं, कदाचित् नही बाधते, इस कथन का आशय यह है कि अपूर्वकरणादि सम्यग्दृष्टि जीव आयुष्य को नही बाधते, जबकि इनमे भिन्न चतुर्थ आदि गुणस्थानो वाले सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि जीव पूर्ववत् आयुष्यबन्धकाल मे आयुष्य को बाधते हैं, दूसरे समय मे नही बाधते। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो मे (मिश्रदृष्टि अवस्था मे) आयुष्य बाधने के अध्यवसाय-स्थानो का अभाव होने से आयुष्य बाधते ही नही है।

(४) **सज्ञीद्वार**—मनपर्याप्ति वाले जीवो को सज्ञी कहते हैं। वीतरागसज्ञी जीव ज्ञानावरणीयकर्म को नही बाधते, जबकि सरागसज्ञी जीव इसे बाधते है, इसीलिए कहा गया है—सज्ञी जीव ज्ञानावरणीयकर्म को कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बाधता, किन्तु मन पर्याप्ति से रहित असज्ञी जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बाधते ही हैं। नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीवो के तीन भेद होते है—सयोगी केवली, अयोगी केवली और सिद्ध भगवान्, इनके ज्ञानावरणीयकर्म के बन्ध के कारण न होने से ज्ञानावरणीयकर्म नही बाधते। अयोगी केवली और सिद्ध भगवान् के सिवाय शेष सभी सज्ञी जीव एव असज्ञी जीव वेदनीयकर्म को बाधते है। इसलिए यह कहना युक्तिसगत है कि नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव वेदनीयकर्म भजना से बाधते है तथा पूर्वोक्त आशयानुसार सज्ञी और असज्ञी, ये दोनों आयुष्यकर्म को भजना से बाधते है। नोसज्ञी नोअसज्ञी जीव आयुष्यकर्म को बाधते ही नही है।

(५) **भवसिद्धिकद्वार**—जो भवसिद्धिक वीतराग होते हैं, वे ज्ञानावरणीयकर्म नही बाधते, किन्तु जो भवसिद्धिक सराग होते है, वे इस कर्म को बाधते है, इसीलिए कहा गया है—भवसिद्धिक जीव ज्ञानावरणीयकर्म को भजना से बांधते हैं। अभवसिद्धिक तो ज्ञानावरणीयकर्म बाधते ही हैं, जबकि नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) जीव ज्ञानावरणीय कर्म एव आयुष्यकर्मादि को नही बाधते। भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक ये दोनो आयुष्यकर्म को पूर्वोक्त आशयानुसार कदाचित् बाधते है, कदाचित् नही बाधते।

(६) **दर्शनद्वार**—चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी, यदि छद्मस्थवीतरागी हो तो ज्ञानावरणीयकर्म को नही बाधते, क्योंकि वे केवल वेदनीयकर्म के बन्धक होते है। ये यदि सरागी-छद्मस्थ हो तो इसे बाधते हैं। इसीलिए कहा गया है कि ये तीनो ज्ञानावरणीयकर्म को भजना से बाधते हैं। भवस्थकेवलदर्शनी और सिद्धकेवलदर्शनी, इन दोनो के ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध का हेतु न होने से, ये दोनो इसे नही बाधते। चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी छद्मस्थ वीतरागी और सरागी वेदनीयकर्म को बाधते ही है। केवलदर्शनियो मे जो सयोगी केवली हैं, वे वेदनीयकर्म बाधते हैं, किन्तु अयोगी केवली नही बाधते। इसीलिए कहा गया है कि केवलदर्शनी वेदनीयकर्म को भजना से बाधते हैं।

(७) **पर्याप्तकद्वार**—जिस जीव ने उत्पन्न होने के बाद अपने योग्य आहार-शरीरादि पर्याप्तियां पूर्ण कर ली हो, वह पर्याप्तक और जिसने पूर्ण न की हो, वह अपर्याप्तक कहलाता है। अपर्याप्तक जीव ज्ञानावरणीयादि सात कर्म बाधते हैं। पर्याप्तक जीवो के दो भेद—वीतराग और सराग। इनमे से वीतरागपर्याप्तक ज्ञानावरणीयकर्म को नही बाधते, सरागपर्याप्तक बाधते हैं, इसीलिए कहा गया है कि पर्याप्तक भजना से ज्ञानावरणीयकर्म बाधते हैं। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक

यानो सिद्ध जीव ज्ञानावरणीयादि आठो कर्मों को नही बाधते। पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोना आयुष्यबन्ध के काल मे आयुष्य बाधते हैं, दूसरे समय मे नही, इसीलिए कहा गया है कि ये दोना आयुष्य बन्ध भजना से करते है।

(८) भाषकद्वार—भाषालब्धि वाले को भाषक और भाषालब्धि से विहीन को अभाषक कहते हैं। भाषक के दो भेद—वीतरागभाषक और सरागभाषक। वीतरागभाषक ज्ञानावरणीयकर्म नही बाधते, सरागभाषक बाधते हैं। इसीलिए कहा गया कि भाषक जीव भजना से ज्ञानावरणीयकर्म बाधते हैं। अभाषक के चार भेद—अयोगी केवली, सिद्ध भगवान्, विग्रहगतिसमापन्न और एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिकादि के जीव। इनमे से आदि के दो तो ज्ञानावरणीयकर्म नही बाधते, किन्तु पिछले दो बाधते हैं। आदि के दोनो अभाषक वेदनीयकर्म को नही बाधते, जबकि पिछले दोना वेदनीयकर्म बाधते है। इसीलिए कहा गया है कि अभाषक जीव ज्ञानावरणीय और वेदनीयकर्म भजना से बाधते हैं। भाषक जीव (सयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय तक के भाषक भी) वेदनीयकर्म बाधते हैं।

(९) परित्तद्वार—एक शरीर मे एक जीव हो उसे परित्त कहते हैं, अथवा अल्प सीमित ससार वाले को भी परित्त जीव कहते हैं। परित्त के दो प्रकार—वीतरागपरित्त और सरागपरित्त। वीतरागपरित्त ज्ञानावरणीयकर्म नही बाधता, सरागपरित्त बाधता है। इसीलिए कहा गया है कि परित्तजीव भजना से ज्ञानावरणीयकर्म को बाधता है। जो जीव अनन्त जीवो के साथ एक शरीर में रहता है, ऐसे साधारण कायवाले जीव को अपरित्त कहते हैं, अथवा अनन्त ससारी को अपरित्त कहते हैं। दोनो प्रकार के अपरित्त जीव ज्ञानावरणीयकर्म बाधते हैं। नोपरित्त-नोअपरित्त अर्थात् सिद्ध जीव, ज्ञानावरणीयादि अष्टकर्म नही बाधते। परित्त और अपरित्त जीव आयुष्यबन्ध काल मे आयुष्य बाधते हैं, किन्तु दूसरे समय मे नही, इसीलिए कहा गया है—परित्त और अपरित्त भजना से आयुष्य बाधते हैं।

(१०) ज्ञानद्वार—प्रथम चारो ज्ञान वाले वीतराग-अवस्था मे ज्ञानावरणीयकर्म नही बाधते, सराग अवस्था मे बाधते हैं। इसीलिए इन चारो के ज्ञानावरणीयकर्मबन्ध के विषय मे भजना कही गई है। आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानो वाले वेदनीयकर्म को बाधते हैं, क्योकि छद्मस्थ-वीतराग भी वेदनीयकर्म के बन्धक होते हैं। केवलज्ञानी वेदनीयकर्म को भजना से बाधते हैं, क्योंकि सयोगी केवली वेदनीय के बन्धक तथा अयोगी केवली और सिद्ध वेदनीय के अबन्धक होते हैं।

(११) योगद्वार—मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी, ये तीनो सयोगी जब ११वें, १२वें, १३वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, तब ज्ञानावरणीयकर्म को नही बाधते, इनके अतिरिक्त अन्य सभी सयोगी जीव ज्ञानावरणीयकर्म बाधते हैं। इसीलिए कहा गया कि सयोगी जीव भजना से ज्ञानावरणीय कर्म बाधते हैं। अयोगी के दो भेद—अयोगी केवली और सिद्ध। ये दोनो ज्ञानावरणीय, वेदनीयादि कर्म नही बाधते, किन्तु सभी सयोगी जीव वेदनीयकर्म के बधक होते हैं, क्योकि सयोगी केवली गुणस्थान तक सातावेदनीय का बध होता है।

(१२) उपयोगद्वार—सयोगी जीव और अयोगी जीव, इन दोनो के साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) ये दोनो उपयोग होते हैं। इन दोना उपयोगो मे वर्तमान सयोगी जीव, ज्ञानावरणी-यादि आठो कर्मप्रकृतियो को यथायोग्य बाँधता है और अयोगी जीव नही बाधता, क्योकि अयोगी

जीव आठों कर्मप्रकृतियों का अबंधक होता है। इसीलिए साकारोपयोगी और निराकारोपयोगी दोनों में अष्टकर्मबंध की भजना कही है।

(१३) आहारकद्वार—आहारक के दो प्रकार—वीतरागी और सरागी। वीतरागी आहारक ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते, जबकि सरागी आहारक इसे बांधते हैं। इसी प्रकार अनाहारक के चार भेद होते हैं—विग्रहगति-समापन्न, समुद्घातप्राप्त केवली, अयोगीकेवली और सिद्ध। इनमें से प्रथम बांधते हैं, शेष तीनों ज्ञानावरणीयकर्म को नहीं बांधते। इसीलिए कहा गया है—आहारक की तरह अनाहारक भी ज्ञानावरणीयकर्म को भजना से बांधते हैं। आहारक जीव (सयोगी केवली तक) वेदनीयकर्म को बांधते हैं, जबकि अनाहारकों में से विग्रहगतिसमापन्न और समुद्घातप्राप्त केवली ये दोनों अनाहारक वेदनीय कर्म को बांधते हैं, अयोगी केवली और सिद्ध अनाहारक इसे नहीं बांधते। इसीलिए कहा गया है कि अनाहारकजीव वेदनीयकर्म को भजना से बांधते हैं। सभी प्रकार के अनाहारक जीव आयुष्यकर्म के अबंधक हैं, जबकि आहारक जीव आयुष्यबन्धकाल में आयुष्य बांधते हैं, दूसरे समय में नहीं बांधते।

(१४) सूक्ष्मद्वार—सूक्ष्मजीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंधक है। बादर जीवों के दो भेद—वीतराग और सराग। वीतराग बादरजीव ज्ञानावरणीयकर्म के अबंधक हैं, जबकि सराग बादर जीव इसके बन्धक हैं। नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात्—सिद्ध ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मों के अबन्धक हैं। सूक्ष्म और बादर दोनों आयुष्यबंधकाल में आयुष्यकर्म बांधते हैं, दूसरे समय में नहीं। इसीलिए इनका आयुष्य कर्मबंध भजना से कहा गया है।

(१५) चरमद्वार—चरम का अर्थ है—जिसका अन्तिम भव है या होने वाला है। यहाँ 'भव्य' को 'चरम' कहा गया है। अचरम का अर्थ है—जिसका अन्तिम भव नहीं होने वाला है अथवा जिसने भवों का अन्त कर दिया है। इस दृष्टि से अभव्य और सिद्ध को यहाँ 'अचरम' कहा गया है। चरम जीव यथायोग्य आठ कर्मप्रकृतियों को बांधता है और जब चरम जीव अयोगी-अवस्था में हो, तब नहीं भी बांधता। इसीलिए कहा गया है कि चरम जीव आठों कर्मप्रकृतियों को भजना से बांधता है। जिसका कभी चरमभाव नहीं होगा—ऐसा अभव्य-अचरम तो आठों प्रकृतियों को बांधता है, और सिद्ध अचरम (भवों का अन्तकर्ता) तो किसी भी कर्मप्रकृति को नहीं बांधता। इसीलिए कहा गया कि अचरम जीव आठों कर्मप्रकृतियों को बांधता है।[1]

पन्द्रह द्वारों में उक्त जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२९. [१] एएसि णं भंते! जीवाणं इत्थिवेदगाणं पुरिसवेदगाणं नपुंसगवेदगाणं अवेदगाण य कयरे २ अप्पा वा ४?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा, इत्थिवेदगा संखेज्जगुणा, अवेदगा अणंतगुणा, नपुंसगवेदगा अणंतगुणा।

[२९-१ प्र.] हे भगवन्! स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक, इन जीवों में से कौन किससे अल्प है, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं?

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २५६ से २५९ तक

[२९-१ उ] गौतम ! सबसे थोडे जीव पुरुषवेदक है, उनसे सख्येयगुणा स्त्रीवेदक जीव है, उनसे अनन्तगुणा अवेदक ह और उनसे भी अनन्तगुणा नपु सकवेदक हैं ।

[२] एतेसिं सव्वेसिं पदाण अप्पबहुगाइ उच्चारेयव्वाइ जाव[1] सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा, चरिमा अणतगुणा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ छट्ठसए तइओ उद्देसो समत्तो ॥

[२९-२] इन (पूर्वोक्त) सर्व पदा (सयतादि से लेकर चरम तक चतुर्दश द्वारो मे उक्त पदो) का (सयत पद से लेकर) यावत् सबसे थोडे अचरम जीव है और उनसे चरमजीव अनन्तगुणा हैं पर्यन्त अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरने लगे ।

विवेचन—पन्द्रह द्वारों मे उक्त जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—तीसरे उद्देशक के अन्तिम सूत्र मे सवप्रथम स्त्रीवेदकादि (पचमद्वार) जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण करके इसी प्रकार से अन्य १४ द्वारो मे उक्त चरमादिपर्यन्त जीवो के अल्पबहुत्व का अतिदेशपूवक निरूपण किया गया है ।

वेदको के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—यहा पुरुषवदक जीवा की अपेक्षा स्त्रीवदक जीवो को सख्यातगुणा अधिक बताने का कारण यह है कि देवो की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक हैं नर मनुष्य की अपेक्षा नारी सत्ताईस गुणी और सत्ताईस अधिक हैं और तिर्यञ्च नर की अपेक्षा तिर्यञ्चनी तीन गुणी और तीन अधिक है । स्त्रीवेदका की अपेक्षा अवेदको को अनन्त गुणा बताने का कारण यह कि अनिवृत्तिबादरसम्परायादि वाले जीव और सिद्ध जीव अनन्त हैं, इसलिए व स्त्रीवेदको की अपेक्षा अनन्तगुणा हैं । अवेदका से नपु सकवेदी अनन्तगुणा इसलिए हैं कि सिद्धा की अपेक्षा अनन्तकायिक जीव अनन्तगुणा है, जो सब नपु सक हैं ।

सयतद्वार से चमरद्वार तक का अल्पबहुत्व—उपर्युक्त अल्पबहुत्व की तरह ही सयतद्वार से चरमद्वार तक १४ ही द्वारो का अल्पबहुत्व प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय पद मे उक्त वणन की तरह कहना चाहिए ।[2]

यहाँ अचरम का अथ सिद्ध-अभव्यजीव लिया गया है और चरम का अथ भव्य । अतएव अचरम जीवो की अपेक्षा चरम जीव अनन्तगुणित कहे गए है ।

॥ छठा शतक तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ 'जाव' पद यहाँ २९-१ सू त्र प्रश्न की तरह 'सजय' से लेकर चरिम अचरिम तक प्रश्न और उत्तर की सयोजना कर लेने का सूचक है ।

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २६० (ख) प्रज्ञापना, ततीयपद, ८१ से १११ पृ तक

चउत्थो उद्देसओ : 'सपएस'

चतुर्थ उद्देशक सप्रदेश

कालादेश से चौबीस दण्डक के एक-अनेक जीवो की सप्रदेशता-अप्रदेशता की प्ररूपणा

१ जीवे ण भते ! कालादेसेण किं सपदेसे, अपदेसे ?

गोयमा ! नियमा सपदेसे ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या जीव कालादेश (काल की अपेक्षा) से सप्रदेश है या अप्रदेश है ?

[१ उ] गौतम ! कालादेश से जीव नियमत (निश्चित रूप से) सप्रदेश है ।

२ [१] नेरतिए ण भते ! कालादेसेण किं सपदेसे, अपदेसे ?

गोयमा ! सिय सपदेसे, सिय अपदेसे ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कालादेश से सप्रदेश है या अप्रदेश है ?

[२-१ उ] गौतम ! एक नैरयिक जीव कालादेश से कदाचित सप्रदेश है और कदाचित अप्रदेश है ।

[२] एव जाव[1] सिद्धे ।

[२-२ प्र] इस प्रकार यावत् एक सिद्ध-जीव पर्यन्त कहना चाहिए ।

३ जीवा ण भते ! कालादेसेण किं सपदेसा, अपदेसा ?

गोयमा ! नियमा सपदेसा ।

[३ प्र] भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा बहुत जीव (अनेक जीव) सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

[३ उ] गौतम ! अनेक जीव कालादेश की अपेक्षा नियमत सप्रदेश हैं ।

४ [१] नेरइया ण भते ! कालादेसेण किं सपदेसा, अपदेसा ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्ज सपदेसा, अहवा सपदेसा य अपदेसे य, अहवा सपदेसा य अपदेसा य ।

[४-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव (बहुत-से नैरयिक) कालादेश की अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

---

१ 'जाव' पद यहाँ भवनपति से लेकर वैमानिकदेवपर्यन्त दण्डकों का सूचक है ।

[४-१ उ] गौतम ! (नैरयिकों के तीन विभाग हैं—) १ सभी (नैरयिक) सप्रदेश हैं, २ बहुत-से सप्रदेश और एक अप्रदेश है, और ३ बहुत-से सप्रदेश और बहुत-से अप्रदेश हैं।

[२] एवं जाव[1] थणियकुमारा।

[४-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए।

५ [१] पुढविकाइया णं भंते ! किं सपदेसा, अपदेसा ?
गोयमा ! सपदेसा वि, अपदेसा वि।

[५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

[५-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश भी हैं, अप्रदेश भी हैं।

[२] एवं जाव[2] वणप्फतिकाइया।

[५-२] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए।

६ सेसा जहा नेरइया तहा जाव[3] सिद्धा।

[६] जिस प्रकार नैरयिक जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार सिद्धपर्यन्त शेष सभी जीवों के लिए कहना चाहिए।

आहारक आदि से विशेषित जीवों में सप्रदेश-अप्रदेश-वक्तव्यता

७ [१] आहारगाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

[७-१] जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष सभी आहारक जीवों के लिए तीन भंग कहने चाहिए, यथा—(१) सभी सप्रदेश, (२) बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, और (३) बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश।

[२] अणाहारगाणं जीवेगिंदियवज्जा छब्भंगा एवं भाणियव्वा—सपदेसा वा, अपएसा वा, अहवा सपदेसे य अपदेसे य, अहवा सपदेसे य अपदेसा य, अहवा सपदेसा य अपदेसे य, अहवा सपदेसा य अपदेसा य। सिद्धेहिं तियभंगो।

[७-२] अनाहारक जीवों के लिए एकेन्द्रिय को छोड़कर छह भंग इस प्रकार कहने चाहिए, यथा—(१) सभी सप्रदेश, (२) सभी अप्रदेश, (३) एक सप्रदेश और एक अप्रदेश, (४) एक सप्रदेश और बहुत अप्रदेश, (५) बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश और (६) बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश।

सिद्धों के लिए तीन भंग कहने चाहिए।

---

१ 'जाव' पद यहाँ 'असुरकुमार' से लेकर स्तनितकुमार तक का सूचक है।
२ 'जाव' पद से यहाँ 'अप्कायिक' से लेकर 'वनस्पतिकायिक तक समझना।
३ 'जाव' पद से वैमानिक पर्यन्त के दण्डकों का ग्रहण समझ लेना चाहिए।

८ [१] भवसिद्धीया अभवसिद्धीया जहा ओहिया ।

[८-१] भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवों के लिए औधिक (सामान्य) जीवों की तरह कहना चाहिए ।

[२] नोभवसिद्धिय नोअभवसिद्धिया जीव-सिद्धेहिं तियभंगो ।

[८-२] नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्धों में (पूर्ववत्) तीन भंग कहने चाहिए ।

९ [१] सण्णीहिं जीवादिओ तियभंगो ।

[९-१] संज्ञी जीवों में जीव आदि तीन भंग कहने चाहिए ।

[२] असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो । नेरइय-देव-मणूएहिं छब्भंगा ।

[९-२] असंज्ञी जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए । नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए ।

[३] नोसण्णि नोअसण्णिणो जीव मणुय-सिद्धेहिं तियभंगो ।

[९-३] नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए ।

१० [१] सलेसा जहा ओहिया । कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा जहा आहारओ, नवरं जस्स अत्थि एयाओ । तेउलेस्साए जीवादिओ तियभंगो, नवरं पुढविकाइएसु आउ-वणप्फतीसु छब्भंगा । पम्हलेस-सुक्कलेस्साए जीवाइओ तियभंगो ।

[१०-१] सलेश्य (लेश्या वाले) जीवों का कथन, औधिक जीवों की तरह करना चाहिए । कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या वाले जीवों का कथन आहारक जीव की तरह करना चाहिए । किन्तु इतना विशेष है कि जिसके जो लेश्या हो, उसके वह लेश्या कहनी चाहिए । तेजोलेश्या में जीव आदि तीन भंग कहने चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में छह भंग कहने चाहिए । पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में जीवादिक तीन भंग कहने चाहिए ।

[२] अलेसेहिं जीव सिद्धेहिं तियभंगो, मणुएसु छब्भंगा ।

[१० २] अलेश्य (लेश्यारहित) जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए तथा अलेश्य मनुष्यों में (पूर्ववत्) छह भंग कहने चाहिए ।

११ [१] सम्मद्दिट्ठीहिं जीवाइओ तियभंगो । विगलिंदिएसु छब्भंगा ।

[११-१] सम्यग्दृष्टि जीवों में जीवादिक तीन भंग कहने चाहिए । विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिए ।

[२] मिच्छद्दिट्ठीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो ।

[११-२] मिथ्यादृष्टि जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग कहने चाहिए ।

[३] सम्मामिच्छद्दिट्ठीहिं छब्भंगा ।

[११-३] सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो मे छह भंग कहने चाहिए ।

१२ [१] संजतेहिं जीवाइओ तियभंगो ।

[१२-१] संयतो मे जीवादि तीन भंग कहने चाहिए ।

[२] असंजतेहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो ।

[१२-२] असंयतो मे एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भंग कहने चाहिए ।

[३] संजतासंजतेहिं तियभंगो जीवादिओ ।

[१२-३] संयतासंयत जीवो मे जीवादि तीन भंग कहने चाहिए ।

[४] नोसंजय-नोअसंजय नोसंजतासंजत जीव-सिद्धेहिं तियभंगो ।

[१२-४] नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्धो मे तीन भंग कहने चाहिए ।

१३ [१] सकसाईहिं जीवादिओ तियभंगो । एगिंदिएसु अभंगकं । कोहकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो । देवेहिं छब्भंगा । माणकसाई मायाकसाई जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो । नेरतिय-देवेहिं छब्भंगा । लोभकसायीहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो । नेरतिएसु छब्भंगा ।

[१३-१] सकपायी (कषाययुक्त) जीवो मे जीवादि तीन भंग कहने चाहिए । एकेन्द्रिय (सकपायी) मे अभंगक (तीन भंग नही, किन्तु एक भंग) कहना चाहिए । क्रोधकपायी जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भंग कहने चाहिए । मानकपायी और मायाकपायी जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोड कर तीन भंग कहने चाहिए । नैरयिको और देवो मे छह भंग कहने चाहिए । लोभकपायी जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भंग कहने चाहिए । नैरयिक जीवो मे छह भंग कहने चाहिए ।

[२] अकसाई जीव-मणुएहिं सिद्धेहिं तियभंगो ।

[१३-२] अकपायी जीवो, जीव, मनुष्य और सिद्धो में तीन भंग कहने चाहिए ।

१४ [१] ओहियनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे जीवादिओ तियभंगो । विगलिंदिएहिं छब्भंगा । ओहिनाणे मणपज्जवणाणे केवलनाणे जीवादिओ तियभंगो ।

[१४-१] औधिक (समुच्चय) ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान मे जीवादि तीन भंग कहने चाहिए । विकलेन्द्रियो मे छह भंग कहने चाहिए । अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान मे जीवादि तीन भंग कहने चाहिए ।

[२] ओहिए अण्णाणे मतिअण्णाणे सुयअण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभंगो । विभंगणाणे जीवादिओ तियभंगो ।

[१४-२] औधिक (समुच्चय) अज्ञान, मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान मे एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए। विभगज्ञान मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए।

१५ [१] सजोगी जहा ओहिओ। मणजोगी वयजोगी कायजोगी जीवादिओ तियभगो, नवर कायजोगी एगिंदिया तेसु अभगक।

[१५-१] जिस प्रकार औधिक जीवो का कथन किया, उसी प्रकार सयोगी जीवो का कथन करना चाहिए। मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए। विशेषता यह है कि जो काययोगी एकेन्द्रिय होते है, उनमे अभगक (अधिक भग नही, केवल एक भग) होता है।

[२] अजोगी जहा अलेसा।

[१५-२] अयोगी जीवो का कथन अलेश्यजीवो के समान कहना चाहिए।

१६ सागारोवउत्त अणागारोवउत्तेहि जीवेगिंदियवज्जो तियभगो।

[१६] साकार-उपयोग वाले और अनाकार-उपयोग वाले जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए।

१७ [१] सवेयगा य जहा सकसाई। इत्थिवेयग-पुरिसवेदग-नपु सगवेदगेसु जीयादिओ तियभगो, नवर नपु सगवेदे एगिंदिएसु अभगय।

[१७-१] सवेदक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान करना चाहिए। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपु सकवेदी जीवो मे जीवादि तीन भग कहने चाहिए। विशेष यह है कि नपु सकवेद मे जो एकेन्द्रिय होते है, उनमे अभगक (अधिक भग नही, किन्तु एक भग) है।

[२] अवेयगा जहा अकसाई।

[१७-२] जसे अकषायी जीवो के विषय मे कथन किया, वैसे ही अवेदक (वेदरहित) जीवो के विषय मे कहना चाहिए।

१८ [१] ससरीरी जहा ओहिओ। ओरालिय-वेउव्वियसरीरीण जीवएगिंदियवज्जो तियभगो। आहारगसरीरे जीव मणुएसु छब्भगा। तेयग कम्मगाण जहा ओहिया।

[१८-१] जसे औधिक जीवो का कथन किया, वैसे ही सशरीरी जीवो के विषय मे कहना चाहिए। औदारिक और वैक्रियशरीर वाले जीवो मे जीव और एकेन्द्रिय को छोडकर तीन भग कहने चाहिए। आहारक शरीर वाले जीवो मे जीव और मनुष्य मे छह भग कहने चाहिए। तैजस और कार्मण शरीर वाले जीवो का कथन औधिक जीवो के समान करना चाहिए।

[२] असरीरेहि जीव सिद्धेहि तियभगो।

[१८-२] अशरीरी, जीव और सिद्धो के लिये तीन भग कहने चाहिए।

१९ [१] आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाणपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। भासामणपज्जत्तीए जहा सण्णी।

[१९-१] आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए। भाषापर्याप्ति और मन:पर्याप्ति वाले जीवों का कथन संज्ञीजीवों के समान कहना चाहिए।

[२] आहारअपज्जत्तीए जहा अणाहारगा। सरीरअपज्जत्तीए इंदियअपज्जत्तीए आणापाणअपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा। भासामणअपज्जत्तीए जीवादिओ तियभंगो, णेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा।

[१९-२] आहारअपर्याप्ति वाले जीवों का कथन अनाहारक जीवों के समान कहना चाहिए। शरीर-अपर्याप्ति, इन्द्रिय-अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास-अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ तीन भंग कहने चाहिए। (अपर्याप्तक) नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए। भाषा-अपर्याप्ति और मन:अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव आदि तीन भंग कहने चाहिए। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग जानने चाहिए।

२० गाहा—सपदेसाऽऽहारग भविय सण्णि लेस्सा दिट्ठी संजय कसाए।
णाणे जोगुवओगे वेदे य सरीर पज्जत्ती ॥१॥

[२० संग्रहणी गाथा का अर्थ—] सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति, इन चौदह द्वारों का कथन ऊपर किया गया है।

विवेचन—आहारक आदि जीवों में सप्रदेश अप्रदेश वक्तव्यता—प्रस्तुत बीस सूत्रों में (सू. १ से २० तक) आहारक आदि १४ द्वारों में सप्रदेश-अप्रदेश की दृष्टि से विविध भंगों की प्ररूपणा की गई है।

सप्रदेश आदि चौदह द्वार—(१) सप्रदेशद्वार—कालादेश का अर्थ है—काल की अपेक्षा से। विभागरहित को अप्रदेश और विभागसहित को सप्रदेश कहते हैं। समुच्चय में जीव अनादि है, इसलिए उसकी स्थिति अनन्त समय की है, इसलिए वह सप्रदेश है। जो जिस भाव (पर्याय) में प्रथम समयवर्ती होता है, वह काल की अपेक्षा अप्रदेश और एक समय से अधिक दो तीन-चार आदि समयों में वर्तने वाला काल की अपेक्षा सप्रदेश होता है।[1]

कालादेश की अपेक्षा जीवों के भंग—जिस नैरयिक जीव को उत्पन्न हुए एक समय हुआ है, वह कालादेश से अप्रदेश है और प्रथम समय के पश्चात् द्वितीय-तृतीयादिसमयवर्ती नैरयिक सप्रदेश है। इसी प्रकार औधिक जीव, नैरयिक आदि २४ और सिद्ध के मिलाकर २६ दण्डकों में एकवचन की

१ जो जस्स पढमसमए वट्टइ भावस्स सो उ अपएसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो ॥ १ ॥
—भगवती अ. वृत्ति, पत्रांक २६१ में उद्धृत

ोकर कदाचित् अप्रदेश, कदाचित् सप्रदेश, ये दो-दो भग होते हैं। इन्ही २६ दण्डको मे बहुवचन को ोकर विचार करने पर तीन भग होते ह—

(१) उपपातविरहकाल मे पूर्वोत्पन्न जीवो की सख्या असख्यात होने से सभी सप्रदेश होते है, अत वे सब सप्रदेश है।

(२) पूर्वोत्पन्न नैरयिको मे जब एक नया नरयिक उत्पन्न होता है, तब उसकी प्रथम समय की उत्पत्ति की अपेक्षा से वह 'अप्रदेश' कहलाता है। इसके सिवाय बाकी नैरयिक जिनकी उत्पत्ति को दो-तीन-चार आदि समय हो गए है, वे 'सप्रदेश' कहलाते हैं।

(३) एक-दो तीन आदि नरयिकजीव एक समय मे उत्पन्न भी होते ह, उसी प्रमाण मे मरते भी है,[१] इसलिए वे सब 'अप्रदेश' कहलाते है तथा पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान जीव बहुत होने से वे सब सप्रदेश भी कहलाते है। इसीलिए मूलपाठ मे नैरयिको के क्रमश तीन भगो का सकेत है। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियजीवो मे दो भग होते हैं—वे कदाचित सप्रदेश भी होते हैं और कदाचित् अप्रदेश भी। द्वीन्द्रियो से लेकर सिद्धपर्यन्त पूर्ववत् (नरयिको की तरह) तीन तीन भग होते है।

२ आहारकद्वार—आहारक और अनाहारक शब्दो से विशेषित दोनो प्रकार के जीवो के प्रत्येक के एकवचन और बहुवचन को लेकर क्रमश एक-एक दण्डक यानी दो दो दण्डक कहने चाहिए। जो जीव विग्रहगति मे या केवलीसमुद्घात मे अनाहारक होकर फिर आहारकत्व को प्राप्त करना है वह आहारककाल के प्रथम समय वाला जीव 'अप्रदेश' और प्रथम समय के अतिरिक्त द्वितीय-तृतीयादि समयवर्ती जीव सप्रदेश कहलाता है। इसीलिए मूलपाठ मे कहा गया है—कदाचित् कोई सप्रदेश और कदाचित् कोई अप्रदेश होता है। इसी प्रकार सभी आदिवाले (शुरू होने वाले) भावो मे एकवचन मे जान लेना चाहिए। अनादि वाले भावो मे तो सभी नियमत सप्रदेश होते हैं। बहुवचन वाले दण्डक मे भी इसी प्रकार—कदाचित् सप्रदेश भी और कदाचित् अप्रदेश भी होते हैं। जसे—आहारकपने म रहे हुए बहुत जीव होने से उनका सप्रदेशत्व है तथा बहुत से जीव विग्रहगति के पश्चात प्रथम समय मे तुरन्त ही अनाहारक होने से उनका अप्रदेशत्व भी है। इस प्रकार आहारक जीवो मे सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व ये दोनो पाये जाते है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय (पृथ्वीकायिक आदि) जीवो के लिए भी कहना चाहिए। सिद्ध अनाहारक होने मे उनमे आहारकत्व नही होता है। अत सिद्ध पद और एकेन्द्रिय को छोडकर नैरयिकादि जीवो मे मूलपाठोक्त तीन भग (१ सभी सप्रदेश, अथवा २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, अथवा ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहने चाहिए। अनाहारक के भी इसी प्रकार एकवचन बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। विग्रहगतिसमापन्न जीव, समुद्घातगत केवली, अयोगी केवली और सिद्ध, ये सब अनाहारक होते हैं। ये जब अनाहारकत्व के प्रथम समय मे होते है तो 'अप्रदेश' और द्वितीय-तृतीय आदि समय मे होते ह तो 'सप्रदेश' कहलाते ह। बहुवचन के दण्डक मे जीव और एकेन्द्रिय को नही लेना चाहिए क्योकि इन दोनो पदो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश,' यह एक ही भग पाया जाता है, क्योकि इन दोनो पदो मे विग्रहगति-समापन्न अनेक जीव सप्रदेश और अनेक जीव अप्रदेश मिलते है। नरयिकादि तथा द्वीन्द्रिय आदि जीवो मे थोडे जीवो की उत्पत्ति होती है। अतएव

१ एगो व दो व तिण्णि व सखमसखा व एगसमएण।
उववज्जन्तेवइया, उव्वट्टता वि एमेव ॥ २ ॥ भगवती अ वृत्ति पत्राक २६१ मे उद्धृत

उनमे एक दो आदि अनाहारक होने से छह भंग सम्भवित होते है, जिनका मूलपाठ मे उल्लेख है। यहाँ एकवचन की अपेक्षा दो भंग नहीं होते, क्योंकि यहा बहुवचन का अधिकार चलता है। सिद्धों मे तीन भंग होते है, उनमें सप्रदेशपद बहुवचनान्त ही सम्भवित है।

३ भव्यद्वार—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, इन दोनो के प्रत्येक के दो दो दण्डक हैं जो औधिक (सामान्य) जीव-दण्डक की तरह है। इनमे भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीव नियमत सप्रदेश होता है। क्योंकि भव्यत्व और अभव्यत्व का प्रथम समय कभी नही होता। ये दोनों भाव अनादिपारिणामिक है। नैरयिक आदि जीव, सप्रदेश भी होता है, अप्रदेश भी। बहुत जीव तो सप्रदेश ही होते हैं। नैरयिक आदि जीवो मे तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रिय जीवो में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भंग होता है। क्योंकि ये बहुत सख्या मे ही प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं। यहाँ भव्य और अभव्य के प्रकरण मे सिद्धपद नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सिद्ध जीव न तो भव्य कहलाते है, न अभव्य। ये नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक होते हैं। अत नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो मे एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। इसमे जीवपद और सिद्धपद, ये दो पद ही कहने चाहिए, क्योंकि नैरयिक आदि जीवों के साथ 'नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक' विशेषण लग नहीं सकता। इस दण्डक के बहुवचन की अपेक्षा तीन भंग मूलपाठ मे बताए हैं।

४ सज्ञीद्वार—सज्ञी जीवो के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक होते हैं। बहुवचन के दण्डक मे जीवादि पदो मे तीन भंग होते है, यथा—(१) जिन सज्ञी जीवो को बहुत-सा समय उत्पन्न हुए हो गया है, वे कालादेश से सप्रदेश हैं (२) उत्पादविरह के बाद जब एक जीव की उत्पत्ति होती है, तब उसकी प्रथम समय की अपेक्षा 'बहुत जीव सप्रदेश और एक जीव अप्रदेश' कहा जाता है और (३) जब बहुत जीवो की उत्पत्ति एक ही समय मे होती है, तब 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यो कहा जाता है। इस प्रकार ये तीन भंग सभी पदो मे जान लेने चाहिए। किन्तु इन दो दण्डको मे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्ध पद नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इनमे 'सज्ञी' विशेषण सम्भव ही नहीं है। असज्ञी-जीवो मे एकेन्द्रियपदो को छोडकर दूसरे दण्डक मे ये ही तीन भंग कहने चाहिए। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियो मे सदा बहुत जीवो की उत्पत्ति होती है, इसलिए उन पदो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भंग सम्भव है। नैरयिको से लेकर व्यन्तर देवो तक असज्ञी जीव उत्पन्न होते है, वे जब तक सज्ञी न हो, तब तक उनका असज्ञीपन जानना चाहिए। नैरयिक आदि मे असज्ञीपन कादाचित्क होने से एकत्व एव बहुत्व की सम्भावना होने के कारण मूलपाठ मे ६ भंग बताए गए हैं। असज्ञी प्रकरण मे ज्योतिष्क, वैमानिक और सिद्ध का कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनमे असज्ञीपन सम्भव नहीं है। नोसज्ञी-नोअसज्ञी विशेषण वाले जीवो के दो दण्डक कहने चाहिए। उसमे बहुवचन को लेकर द्वितीय दण्डक मे जीव, मनुष्य और सिद्ध मे उपर्युक्त तीन भंग कहने चाहिए, क्योंकि उनमें बहुत-से अवस्थित मिलते है। उनमे उत्पद्यमान एकादि सम्भव हैं। नोसज्ञी-नोअसज्ञी के इन दो दण्डको मे जीव, मनुष्य और सिद्ध, ये तीन पद ही कहने चाहिए, क्योंकि नैरयिकादि जीवो के साथ 'नोसज्ञी-नोअसज्ञी' विशेषण घटित नहीं हो सकता।

५ लेश्याद्वार—सलेश्य जीवो के दो दण्डको मे जीव और नैरयिको का कथन औधिक दण्डक के समान करना चाहिए, क्योंकि जीवत्व की तरह सलेश्यत्व भी अनादि है, इसलिए इन दोनो मे

किसी प्रकार की विशेषता नही है, किन्तु इतना विशेष है कि सलेश्य प्रकरण मे सिद्ध पद नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्ध अलेश्य होते है। कृष्ण नील-कापोतलेश्यावान जीव और नैरयिको के प्रत्येक के दो दो दण्डक आहारक जीव की तरह कहने चाहिए। जिन जीव एव नैरयिकादि मे जो लेश्या हो वही कहनी चाहिए। जैसे कि 'कृष्णादि तीन लेश्याएँ ज्योतिष्क एव वैमानिक देवो मे नही होती। सिद्धो मे तो कोई भी लेश्या नही होती। तेजोलेश्या के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। बहुवचन की अपेक्षा द्वितीय दण्डक मे जीवादिपदो के तीन भग होते है। पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय मे ६ भग होते है, क्योकि पृथ्वीकायादि जीवो मे तेजोलेश्यावाले एकादिदेव—(पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान दोनो प्रकार के) पाए जाते है। इसलिए सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व के एकत्व और बहुत्व का सम्भव है। तेजोलेश्याप्रकरण मे नरयिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, विकलेन्द्रिय और सिद्ध, ये पद नही कहने चाहिए, क्योकि इनमे तेजोलेश्या नही होती। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के दो दो दण्डक कहने चाहिए। दूसरे दण्डक मे जीवादि पदो मे तीन भग कहने चाहिए। पद्म-शुक्ललेश्याप्रकरण मे पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और वैमानिक देव ही कहने चाहिए, क्योकि इनके सिवाय दूसरे जीवो मे ये लेश्याएँ नही होती। अलेश्य जीव के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डको मे जीव, मनुष्य और सिद्ध पद का ही कथन करना चाहिए, क्योकि दूसरे जीवो मे अलेश्यत्व सभव नही है। इनमे जीव और सिद्ध मे तीन भग और मनुष्य मे छह भग कहने चाहिए, क्योकि अलेश्यत्व प्रतिपन्न (प्राप्त किये हुए) और प्रतिपद्यमान (प्राप्त करते हुए) एकादि मनुष्यो का सम्भव होने से सप्रदेशत्व मे और अप्रदेशत्व मे एकवचन और बहुवचन सम्भव है।

६ दृष्टिद्वार—सम्यग्दृष्टि के दो दण्डको मे सम्यग्दर्शनप्राप्ति के प्रथम समय मे अप्रदेशत्व है, और बाद के द्वितीय-तृतीयादि समयो मे सप्रदेशत्व है। इनमे दूसरे दण्डक मे जीवादिपदो मे पूर्वोक्त तीन भग कहने चाहिए। विकलेन्द्रियो मे पूर्वोत्पन्न और उत्पद्यमान एकादि सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव पाए जाते है, इस कारण इनमे ६ भग जानने चाहिए। अत सप्रदेशत्व और अप्रदेशत्व मे एकत्व और बहुत्व सभव है। एकेन्द्रिय सर्वथा मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनमे सम्यग्दर्शन न होने से सम्यग्दृष्टिद्वार मे एकेन्द्रियपद का कथन नही करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि के एकवचन और बहुवचन से दो दण्डक कहने चाहिए। उनमे से दूसरे दण्डक मे जीवादि पदो के तीन भग होते हैं, क्योकि मिथ्यात्व-प्रतिपन्न (प्राप्त) जीव बहुत हैं और सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने के बाद मिथ्यात्व को प्रतिपद्यमान एक जीव भी सभव है। इस कारण तीन भग होते हैं। मिथ्यादृष्टि के प्रकरण मे एकेन्द्रिय जीवो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग पाया जाता है, क्योकि एकेन्द्रिय जीवो मे अवस्थित और उत्पद्यमान बहुत होते हैं। इस (मिथ्यादृष्टि) प्रकरण मे सिद्धो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनमे मिथ्यात्व नही होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो के एकवचन और बहुवचन, ये दो दण्डक कहने चाहिए। उनमे से बहुवचन के दण्डक मे ६ भग होते हैं, क्योकि सम्यगमिथ्यादृष्टित्व को प्राप्त और प्रतिपद्यमान एकादि जीव भी पाए जाते हैं। इस सम्यगमिथ्यादृष्टिद्वार मे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रि और सिद्ध जीवो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनमे सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व असम्भव है।

७ सयतद्वार—'सयत' शब्द से विशेषित जीवो मे तीन भग कहने चाहिए, क्योकि सयम को प्राप्त बहुत जीव होते है, सयम को प्रतिपद्यमान एकादि जीव होते हैं, इसलिए तीन भग घटित होते हैं। सयतद्वार मे केवल दो ही पद कहने चाहिए—जीवपद और मनुष्यपद, क्योकि दूसरे जीवो मे

संयतत्व का अभाव है। असंयत जीवों के एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। उनमें से बहुवचन सम्बन्धी द्वितीय दण्डक में तीन भंग होते हैं, क्योंकि असंयतत्व को प्राप्त बहुत जीव होते हैं तथा संयतत्व से भ्रष्ट होकर असंयतत्व को प्राप्त करते हुए एकादि जीव होते हैं, इसलिए उनमें तीन भंग घटित हो सकते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—यह एक ही भंग पाया जाता है। इस असंयतप्रकरण में 'सिद्धपद' नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सिद्धों में असंयतत्व नहीं होता। 'संयतासंयत' पद में भी एकवचन-बहुवचन को लेकर दो दण्डक कहने चाहिए। उनमें से दूसरे दण्डक में बहुवचन की अपेक्षा पूर्वोक्त तीन भंग कहने चाहिए, क्योंकि संयतासंयतत्व—देशविरतिपन को प्राप्त बहुत जीव होते हैं और उससे भ्रष्ट होकर या असंयम का त्याग कर संयतासंयतत्व को प्राप्त होते हुए एकादि जीव होते हैं। अतः तीन भंग घटित होते हैं। इस संयतासंयतद्वार में भी जीव, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य, ये तीन पद ही कहने चाहिए, क्योंकि इन तीन पदों के अतिरिक्त अन्य जीवों में संयतासंयतत्व नहीं पाया जाता। नोसंयत—नोअसंयत—नोसंयतासंयतद्वार में जीव और सिद्ध, ये दो पद ही कहने चाहिए, भंग भी पूर्वोक्त तीन होते हैं।

■ कषायद्वार—सकषायी जीवों में तीन भंग पाए जाते हैं, यथा—(१) सकषायी जीव सदा अवस्थित होने से 'सप्रदेश' होते हैं, यह प्रथम भंग, (२) उपशमश्रेणी से गिर कर सकषायावस्था को प्राप्त होते हुए एकादि जीव पाए जाते हैं इसलिए 'बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश' यह दूसरा भंग तथा 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह तीसरा भंग। नैरयिकादि में तीन भंग पाए जाते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में अभंग है—अर्थात् उनमें अनेक भंग नहीं, किन्तु 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भंग पाया जाता है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों में बहुत जीव 'अवस्थित' और बहुत जीव 'उत्पद्यमान' पाए जाते हैं। सकषायी द्वार में सिद्ध पद नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सिद्ध कषायरहित होते हैं। इसी तरह क्रोधादि कषायों में कहना चाहिए। क्रोधकषाय के एकवचन बहुवचन दण्डकद्वय में से दूसरे दण्डक में बहुवचन से जीवपद में और पृथ्वीकायादि पदों में 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक भंग ही कहना चाहिए, क्योंकि मान, माया और लोभ से निवृत्त हो कर क्रोधकषाय को प्राप्त होते हुए जीव अनन्त होने से यहाँ एकादि का सम्भव नहीं है इसलिए सकषायी जीवों की तरह तीन भंग नहीं हो सकते। शेष (एकवचन) में तीन भंग कहने चाहिए।

देवपद में दसों सम्बन्धी तेरह ही दण्डकों में छह भंग कहने चाहिए, क्योंकि उनमें क्रोधकषाय के उदय वाले जीव अल्प होने से एकत्व और बहुत्व, दोनों सम्भव हैं, अतः सप्रदेशत्व अप्रदेशत्व दोनों सम्भव हैं। मानकषाय और मायाकषाय वाले जीवों में भी एकवचन बहुवचन को लेकर दण्डकद्वय क्रोधकषाय की तरह कहने चाहिए। उनमें से दूसरे दण्डक में नैरयिकों और देवों में ६ भंग होते हैं, क्योंकि मान और माया के उदय वाले जीव थोड़े ही पाए जाते हैं। लोभकषाय का कथन क्रोधकषाय की तरह करना चाहिए। लोभकषाय के उदय वाले नैरयिक अल्प होने से उनमें ६ भंग पाए जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि देवों में लोभ बहुत होता है और नैरयिकों में क्रोध अधिक। इसलिए क्रोध, मान और माया में देवों के ६ भंग और मान, माया और लोभ में नैरयिकों के ६ भंग कहने चाहिए। अकषायीद्वार के भी एकवचन और बहुवचन, ये दण्डकद्वय होते हैं। उनमें से दूसरे दण्डक में जीव, मनुष्य और सिद्ध पद में तीन भंग कहने चाहिए। इन तीन पदों के सिवाय अन्य दण्डकों का कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि दूसरे जीव अकषायी नहीं हो सकते।

९ ज्ञानद्वार—मत्यादि भेद से अविशेषित औधिक (सामान्य) ज्ञान मे तथा मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मे एकवचन और बहुवचन को लेकर दो दण्डक होते हैं। दूसरे दण्डक मे जीवादि पदो के तीन भग कहने चाहिए। यथा—औधिकज्ञानी, मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी सदा अवस्थित होने से वे सप्रदेश हैं, यह एक भग, मिथ्याज्ञान से निवृत्त होकर मात्र मत्यादिज्ञान को प्राप्त होने वाले एव श्रुत-अज्ञान से निवृत्त होकर श्रुतज्ञान को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाए जाते है, इसलिए तथा मति-अज्ञान से निवृत्त होकर मतिज्ञान को प्राप्त होने वाले 'बहुत सप्रदेश और एकादि अप्रदेश', यह दूसरा भग तथा 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह तीसरा भग होता है। विकलेन्द्रियो मे सास्वादन सम्यक्त्व होने से मत्यादिज्ञान वाले एकादि जीव पाए जाते है, इसलिए उनम ६ भग घटित हो जाते हैं। यहाँ पृथ्वीकायादि जीव तथा सिद्ध पद का कथन नही करना चाहिए, क्योकि उनम मत्यादिज्ञान नही होते। इसी प्रकार अवधिज्ञान आदि मे भी तीन भग सम्भव हैं। विशेषता यह है कि अवधिज्ञान के एकवचन-बहुवचन-दण्डकद्वय मे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धो का कथन नही करना चाहिए। मन पर्यवज्ञान के उक्त दण्डकद्वय मे जीव और मनुष्य का ही कथन करना चाहिए, क्योकि इनके सिवाय अन्यो को मन पर्यवज्ञान नही होता। केवलज्ञान के उक्त दोनो दण्डको मे भी मनुष्य और सिद्ध का ही कथन करना चाहिए, क्योकि दूसरे जीवो को केवलज्ञान नही होता।

मति आदि अज्ञान से अविशेषित सामान्य (औधिक) अज्ञान, मति अज्ञान और श्रुत-अज्ञान, इनमे जीवादि पदो मे तीन भग घटित हो जाते हैं, यथा—(१) ये सदा अवस्थित होते हैं। इसलिए 'सभी सप्रदेश' यह प्रथम भग हुआ, (२-३) अवस्थित के सिवाय जब दूसरे जीव, ज्ञान को छोड कर मति अज्ञानादि को प्राप्त होते हैं, तब उनके एकादि का सम्भव होने से दूसरा और तीसरा भग भी घटित हो जाता है। एकेन्द्रिय जीवो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश' यह एक ही भग पाया जाता है। सिद्धो मे तीनो अज्ञान असम्भव होने से उनमे अज्ञानो का कथन नही करना चाहिए। विभगज्ञान मे जीवादि पदो मे मति-अज्ञानादि की तरह तीन भग कहने चाहिए। इसमे एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सिद्धो का कथन नही करना चाहिए।

१० योगद्वार—सयोगी जीवो के एक-बहुवचन-दण्डकद्वय औधिक जीवादि की तरह कहने चाहिए। यथा—सयोगी जीव नियमत सप्रदेशी होते हैं। नैरयिकादि सयोगी तो सप्रदेश और अप्रदेश दोनो होते हैं, किन्तु बहुत जीव सप्रदेश ही होते हैं। इस प्रकार नैरयिकादि सयोगी मे तीन भग होते हैं, एकेन्द्रियादि सयोगी जीवो मे केवल तीसरा ही भग पाया जाता है। यहाँ सिद्ध का कथन नही करना चाहिए, क्योकि वे अयोगी होते हैं। मनोयोगी, अर्थात् तीनो योगो वाले सज्ञी जीव, वचनयोगी, अर्थात् एकेन्द्रियो को छोड कर शेष सभी जीव और काययोगी, अर्थात् एकेन्द्रियादि सभी जीव। इनमे जीवादि पद म तीन भग होते हैं। जब मनोयोगी आदि जीव अवस्थित होते हैं, तब उनमे 'सभी सप्रदेश', यह प्रथम भग पाया जाता है। और जब अमनोयोगीपन छोडकर मनोयोगीपन आदि म उत्पत्ति होती है, तब प्रथमसमयवर्ती अप्रदेशत्व की दृष्टि से दूसरे दो भग पाए जाते हैं। विशेष यह है—काययोगी मे एकेन्द्रियो मे अभगक है, अर्थात्—उनमे अनेक भग न होकर सिर्फ एक ही भग होता है—'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'। तीनो योगो के दण्डको मे यथासम्भव जीवादि पद कहने चाहिए, किन्तु सिद्ध पद का कथन नही करना चाहिए। अयोगीद्वार का कथन अलेश्यद्वार के समान कहना चाहिए। अत इसके दूसरे दण्डक मे अयोगी जीवो मे, जीव और सिद्ध पद मे तीन भग और अयोगी मनुष्य म छह भग कहने चाहिए।

११ उपयोगद्वार- साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी नैरयिक आदि मे तीन भग तथा जीवपद और पृथ्वीकायादि पदो मे एक ही भग (बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहना चाहिए। इन दोनो उपयोगो मे से किसी एक मे से दूसरे उपयोग मे जाते हुए प्रथम समय मे अप्रदेशत्व और इतर समयो मे सप्रदेशत्व स्वय घटित कर लेना चाहिए। सिद्धो मे तो एकसमयोपयोगीपन होता है, तो भी साकार और अनाकार उपयोग की बारबार प्राप्ति होने से सप्रदेशत्व और एक बार प्राप्ति होने से अप्रदेशत्व होता है। इस प्रकार साकार-उपयोग को बारबार प्राप्त ऐसे बहुत सिद्धो की अपेक्षा एक भग (सभी सप्रदेश), उन्ही सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार साकारोपयोग को प्राप्त एक सिद्ध की अपेक्षा -'बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश', यह दूसरा भग तथा बारबार साकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा एक बार साकारोपयोगप्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा- 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'- -यह तृतीय भग समझना चाहिए। अनाकार उपयोग मे बारबार अनाकारोपयोग को प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा प्रथम भग, उन्ही सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार अनाकारोपयोग प्राप्त एक सिद्ध जीव की अपेक्षा द्वितीय भग और बारबार अनाकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धों की अपेक्षा तथा एक बार अनाकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा तृतीय भग समझ लेना चाहिए।

१२ वेदद्वार—सवेदक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान करना चाहिए। सवेदक जीवो मे भी जीवादि पद मे वेद को प्राप्त बहुत जीवो और उपशमश्रेणी से गिरने के बाद सवेद अवस्था को प्राप्त होने वाले एकादि जीवो की अपेक्षा तीन भग घटित होते हैं। एकेन्द्रियो मे एक ही भग तथा स्त्रीवेदक आदि मे तीन भग पाए जाते हैं। जब एक वेद से दूसरे वेद मे सक्रमण होता है, तब प्रथम समय मे अप्रदेशत्व और द्वितीय आदि समयो मे सप्रदेशत्व होता है, यो तीन भग घटित होते हैं। नपुसकवेद के एकवचन-बहुवचन रूप दण्डकद्वय मे तथा एकेन्द्रियो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक भग पाया जाता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेद के दण्डको मे देव, पचेन्द्रिय तिर्यंच एव मनुष्य ही कहने चाहिए। सिद्धपद का कथन तीनो वेदो मे नही करना चाहिए। अवेदक जीवो का कथन अकषायी की तरह करना चाहिए। इसमे जीव, मनुष्य और सिद्ध ये तीन पद ही कहने चाहिए। इनमे तीन भग पाए जाते हैं।

१३ शरीरद्वार—सशरीरी के दण्डकद्वय मे औधिकदण्डक के समान जीवपद मे सप्रदेशत्व ही कहना चाहिए। क्योकि सशरीरीपन अनादि है। नरयिकादि मे सशरीरत्व का बाहुल्य होने से तीन भग और एकेन्द्रियो मे केवल तृतीय भग ही कहना चाहिए। औदारिक और वैक्रिय शरीर वाले जीवो मे जीवपद और एकेन्द्रिय पदो मे बहुत्व के कारण केवल तीसरा भग ही पाया जाता है, क्योकि जीवपद और एकेन्द्रिय पदो मे प्रतिक्षण प्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान जीव बहुत पाए जाते हैं। शेष जीवो मे तीन भग पाए जाते है, क्योकि उनमे प्रतिपन्न बहुत पाए जाते हैं। एक औदारिक या एक वैक्रिय शरीर को छोड कर दूसरे औदारिक या दूसरे वैक्रिय शरीर को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाए जाते हैं। औदारिक शरीर के दण्डकद्वय मे नैरयिको और देवो का कथन तथा वैक्रिय-शरीर के दण्डकद्वय मे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीवो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि नारकों और देवो के औदारिक तथा (वायुकाय के सिवाय) पृथ्वीकायादि मे वैक्रियशरीर नही होता। ... एकेन्द्रिय पद में तो तृतीय भग- (बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश)। ... जीवो मे प्रतिक्षण होने वाली ... तिर्यंच और मनुष्य ... वैक्रियशरीर की ...

होते हैं, तथापि उनमे जो तीन भग कहे गए हैं, वे वैक्रियावस्था वाले अधिक सख्या मे है, इस अपेक्षा से सम्भवित हैं। इसके अतिरिक्त पचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यो मे एकादि जीवो को वैक्रियशरीर की प्रतिपद्यमानता जाननी चाहिए। इसी कारण तीन भग घटित होगे। आहारकशरीर की अपेक्षा जीव और मनुष्यो मे पूर्वोक्त छह भग होते है, क्योकि आहारकशरीर जीव और मनुष्य पदो के सिवाय अन्य जीवो मे न होने से आहारकशरीरी थोडे होते है। तैजस और कार्मण शरीर का कथन औधिक जीवो के समान करना चाहिए। औधिक जीव सप्रदेश होते हैं, क्योकि तैजस-कार्मणशरीर-सयोग अनादि है। नैरयिकादि मे तीन भग और एकेन्द्रियो मे केवल तृतीय भग कहना चाहिए। इन सशरीरादि दण्डको मे सिद्धपद का कथन नही करना चाहिए। (सप्रदेशत्वादि मे कहने योग्य) अशरीर जीवादि मे जीवपद और सिद्धपद ही कहना चाहिए, क्योकि इनके सिवाय दूसरे जीवो मे अशरीरत्व नही पाया जाता। इस तरह अशरीरपद मे तीन भग कहने चाहिए।

१४ **पर्याप्तिद्वार**—जीवपद और एकेन्द्रियपदो मे **आहारपर्याप्ति आदि को प्राप्त** तथा आहारादि की अपर्याप्ति मे मुक्त होकर आहारादिपर्याप्ति द्वारा पर्याप्तभाव को प्राप्त होने वाले जीव बहुत हैं, इसलिए इनमे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग होता है, शेष जीवो मे तीन भग पाए जाते हैं। यद्यपि भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति, ये दोनो पर्याप्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं, तथापि बहुश्रुत महापुरुषो द्वारा सम्मत होने से ये दोनो पर्याप्तिया एक-रूप मान ली गई हैं। अतएव भाषा-**मन पर्याप्ति द्वारा पर्याप्त** जीवो का कथन सज्ञी जीवो की तरह करना चाहिए। इन सब पदो मे तीन भग कहने चाहिए। यहाँ केवल पचेन्द्रिय पद ही लेना चाहिए। आहार-अपर्याप्ति दण्डक मे जीवपद और पृथ्वीकायिक आदि पदो मे 'बहुत सप्रदेश-बहुत अप्रदेश'—यह एक ही भग कहना चाहिए। क्योकि आहारपर्याप्ति से रहित विग्रहगतिसमापन्न बहुत जीव निरन्तर पाये जाते हैं। शेष जीवो मे पूर्वोक्त ६ भग होते है, क्योकि शेष जीवो मे आहारपर्याप्तिरहित जीव थोडे पाए जाते हैं। शरीर-अपर्याप्तिद्वार मे जीवो और एकेन्द्रियो मे एक भग एव शेष जीवो मे तीन भग कहने चाहिए, क्योकि शरीरादि से अपर्याप्त जीव कालादेश की अपेक्षा सदा सप्रदेश ही पाये जाते हैं, अप्रदेश तो कदाचित् एकादि पाये जाते हैं। नैरयिक, देव और मनुष्यो मे छह भग कहने चाहिए। भाषा और मन की पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव वे हैं, जिनको जन्म से भाषा और मन की योग्यता तो हो, किन्तु उसकी सिद्धि न हुई हो। ऐसे जीव पचेन्द्रिय ही होते है। अत इन जीवो मे और पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे भाषा-मन-अपर्याप्ति को प्राप्त बहुत जीव होते हैं, और इसकी अपर्याप्ति को प्राप्त होते हुए एकादि जीव ही पाए जाते हैं। इसलिए उनमे पूर्वोक्त तीन भग घटित होते हैं। नैरयिकादि मे भाषा-मन अपर्याप्तको की अल्पतरता होने से उनमे एकादि सप्रदेश और अप्रदेश पाये जाने से पूर्वोक्त ६ भग होते हैं। इन पर्याप्ति अपर्याप्ति के दण्डको मे सिद्धपद नहीं कहना चाहिए, क्योकि सिद्धो मे पर्याप्ति और अपर्याप्ति नही होती।

इस प्रकार १४ द्वारो को लेकर प्रस्तुत सूत्रो पर वृत्तिकार ने सप्रदेश-अप्रदेश का विचार प्रस्तुत किया है।[१]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६१ से २६६ तक

(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचनयुक्त) भा २ पृष्ठ ९८४ से ९९१ तक

११ उपयोगद्वार—साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी नैरयिक आदि मे तीन भग तथा जीवपद और पृथ्वीकायादि पदो मे एक ही भग (बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहना चाहिए। इन दोनो उपयोगो मे से किसी एक मे से दूसरे उपयोग मे जाते हुए प्रथम समय मे अप्रदेशत्व और इतर समयो मे सप्रदेशत्व स्वय घटित कर लेना चाहिए। सिद्धो मे तो एकसमयोपयोगीपन होता है, तो भी साकार और अनाकार उपयोग की बारबार प्राप्ति होने से सप्रदेशत्व और एक बार प्राप्ति होने से अप्रदेशत्व होता है। इस प्रकार साकार-उपयोग को बारबार प्राप्त ऐसे बहुत सिद्धो की अपेक्षा एक भग (सभी सप्रदेश), उन्ही सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार साकारोपयोग को प्राप्त एक सिद्ध की अपेक्षा—'बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश', यह दूसरा भग तथा बारबार साकारोपयोग-प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा एव एक बार साकारोपयोगप्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा—'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश'—यह तृतीय भग समझना चाहिए। अनाकार उपयोग मे बारबार अनाकारोपयोग को प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा प्रथम भग, उन्ही सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार अनाकारोपयोग प्राप्त एक सिद्ध जीव की अपेक्षा द्वितीय भग और बारबार अनाकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा तथा एक बार अनाकारोपयोग प्राप्त बहुत सिद्धो की अपेक्षा तृतीय भग समझ लेना चाहिए।

१२ वेदद्वार—सवेदक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान करना चाहिए। सवेदक जीवो मे भी जीवादि पद मे वेद को प्राप्त बहुत जीवो और उपशमश्रेणी से गिरने के बाद सवेद अवस्था को प्राप्त होने वाले एकादि जीवो की अपेक्षा तीन भग घटित होते हैं। एकेन्द्रियो मे एक ही भग तथा स्त्रीवेदक आदि मे तीन भग पाए जाते हैं। जब एक वेद से दूसरे वेद मे सक्रमण होता है, तब प्रथम समय मे अप्रदेशत्व और द्वितीय आदि समयो मे सप्रदेशत्व होता है, यो तीन भग घटित होते हैं। नपु सकवेद के एकवचन-बहुवचन रूप दण्डकद्वय मे तथा एकेन्द्रियो मे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक भग पाया जाता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेद के दण्डको मे देव, पचेन्द्रिय तिर्यंच एव मनुष्य ही कहने चाहिए। सिद्धपद का कथन तीनो वेदो मे नही करना चाहिए। अवेदक जीवो का कथन अकषायी की तरह करना चाहिए। इसमे जीव, मनुष्य और सिद्ध ये तीन पद ही कहने चाहिए। इनमे तीन भग पाए जाते हैं।

१३ शरीरद्वार—सशरीरी के दण्डकद्वय मे औधिकदण्डक के समान जीवपद मे सप्रदेशत्व ही कहना चाहिए। क्योकि सशरीरीपन अनादि है। नैरयिकादि मे सशरीरत्व का बाहुल्य होने से तीन भग और एकेन्द्रियो मे केवल तृतीय भग ही कहना चाहिए। औदारिक और वैक्रिय शरीर वाले जीवो मे जीवपद और एकेन्द्रिय पदो मे बहुत्व के कारण केवल तीसरा भग ही पाया जाता है, क्योकि जीवपद और एकेन्द्रिय पदो मे प्रतिक्षण प्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान जीव बहुत पाए जाते हैं। शेष जीवो मे तीन भग पाए जाते है, क्योकि उनमे प्रतिपन्न बहुत पाए जाते हैं। एक औदारिक या एक वैक्रिय शरीर को छोड कर दूसरे औदारिक या दूसरे वैक्रिय शरीर को प्राप्त होने वाले एकादि जीव पाए जाते हैं। औदारिक शरीर के दण्डकद्वय मे नैरयिको और देवो का कथन तथा वैक्रिय-शरीर के दण्डकद्वय मे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीवो का कथन नही करना चाहिए, क्योकि नारको और देवो के औदारिक तथा (वायुकाय के सिवाय) पृथ्वी-कायादि मे वैक्रियशरीर नही होता। वैक्रियदण्डक मे एकेन्द्रिय पद मे जो तृतीय भग—(बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश) कहा गया है, वह असख्यात वायुकायिक जीवो मे प्रतिक्षण होने वाली वैक्रियक्रिया की अपेक्षा से कहा गया है। यद्यपि वैक्रियलब्धिवाले पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य अल्प

होते है, तथापि उनमे जो तीन भग कहे गए हैं, वे वैक्रियावस्था वाले अधिक सख्या मे है, इस अपेक्षा से सम्भवित हैं। इसके अतिरिक्त पचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यो मे एकादि जीवो को वक्रियशरीर की प्रतिपद्यमानता जाननी चाहिए। इसी कारण तीन भग घटित होगे। आहारकशरीर की अपेक्षा जीव और मनुष्यो मे पूर्वोक्त छह भग होते हैं, क्योकि आहारकशरीर जीव और मनुष्य पदो के सिवाय अन्य जीवो मे न होने से आहारकशरीरी थोडे होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर का कथन औधिक जीवो के समान करना चाहिए। औधिक जीव सप्रदेश होते हैं, क्योकि तैजस-कार्मणशरीर सयोग अनादि है। नैरयिकादि मे तीन भग और एकेन्द्रियो मे केवल तृतीय भग कहना चाहिए। इन सशरीरादि दण्डको मे सिद्धपद का कथन नही करना चाहिए। (सप्रदेशत्वादि से कहने योग्य) अशरीर जीवादि मे जीवपद और सिद्धपद ही कहना चाहिए, क्योकि इनके सिवाय दूसरे जीवो मे अशरीरत्व नही पाया जाता। इस तरह अशरीरपद मे तीन भग कहने चाहिए।

१४ **पर्याप्तिद्वार**—जीवपद और एकेन्द्रियपदो मे **आहारपर्याप्ति आदि को प्राप्त** तथा आहारादि की अपर्याप्ति से मुक्त होकर आहारादिपर्याप्ति द्वारा पर्याप्तभाव को प्राप्त होने वाले जीव बहुत हैं, इसलिए इनमे 'बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश', यह एक ही भग होता है, शेष जीवो मे तीन भग पाए जाते हैं। यद्यपि भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति, ये दोनो पर्याप्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं, तथापि बहुश्रुत महापुरुषो द्वारा सम्मत होने से ये दोनो पर्याप्तिया एक-रूप मान ली गई हैं। अतएव भाषा-**मन पर्याप्ति द्वारा पर्याप्त** जीवा का कथन सज्ञी जीवो की तरह करना चाहिए। इन सब पदो मे तीन भग कहने चाहिए। यहाँ केवल पचेन्द्रिय पद ही लेना चाहिए। **आहार-अपर्याप्ति** दण्डक मे जीवपद और पृथ्वीकायिक आदि पदो मे 'बहुत सप्रदेश-बहुत अप्रदेश'—यह एक ही भग कहना चाहिए। क्योकि आहारपर्याप्ति से रहित विग्रहगतिसमापन्न बहुत जीव निरन्तर पाये जाते हैं। शेष जीवो मे पूर्वोक्त ६ भग होते हैं, क्योकि शेष जीवो मे आहारपर्याप्तिरहित जीव थोडे पाए जाते हैं। शरीर-अपर्याप्तिद्वार में जीवा और एकेन्द्रियो मे एक भग एव शेष जीवो मे तीन भग कहने चाहिए, क्योकि शरीरादि से अपर्याप्त जीव कालादेश की अपेक्षा सदा सप्रदेश ही पाये जाते हैं, अप्रदेश तो कदाचित् एकादि पाये जाते हैं। नैरयिक, देव और मनुष्यो मे छह भग कहने चाहिए। भाषा और मन की पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव वे है, जिनको जन्म से भाषा और मन की योग्यता तो हो, किन्तु उसकी सिद्धि न हुई हो। ऐसे जीव पचेन्द्रिय ही होते है। अत इन जीवो मे और पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे भाषा-मन-अपर्याप्ति को प्राप्त बहुत जीव होते हैं, और इसकी अपर्याप्ति को प्राप्त होते हुए एकादि जीव ही पाए जाते हैं। इसलिए उनमे पूर्वोक्त तीन भग घटित होते है। नैरयिकादि मे भाषा-मन अपर्याप्तको की अल्पतरता होने से उनमे एकादि सप्रदेश और अप्रदेश पाये जाने से पूर्वोक्त ६ भग होते हैं। इन पर्याप्ति अपर्याप्ति के दण्डको मे सिद्धपद नही कहना चाहिए, क्योकि सिद्धो मे पर्याप्ति और अपर्याप्ति नही होती।

इस प्रकार १४ द्वारो को लेकर प्रस्तुत सूत्रो पर वृत्तिकार ने सप्रदेश-अप्रदेश का विचार प्रस्तुत किया है।[१]

---

१ (क) भगवतीसूत्र ■ वृत्ति, पत्राक २६१ से २६६ तक
(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दीविवेचनयुक्त) भा २ पृष्ठ ९८४ से ९९५ तक

समस्त जीवों में प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान के होने, जानने, करने तथा आयुष्यबन्ध के सम्बन्ध में प्ररूपणा

२१ [१] जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणाऽपच्चक्खाणी वि।

[२१-१ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्याना प्रत्याख्यानी हैं ?

[२१-१ उ] गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्याना प्रत्याख्यानी भी हैं।

[२] सव्वजीवाणं एवं पुच्छा।

गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी जाव चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा। पंचेंदियतिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि। मणुस्सा तिण्णि वि। सेसा जहा नेरतिया।

[२१-२ प्र] इसी तरह सभी जीवों के सम्बन्ध में प्रश्न है (कि वे प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं ?)

[२१-२ उ] गौतम ! नैरयिकजीव (अप्रत्याख्यानी हैं) यावत् चतुरिन्द्रिय जीव अप्रत्याख्यानी हैं, इन जीवों (नैरयिक से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवों तक) में शेष दो भंगों (प्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी) का निषेध करना चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च प्रत्याख्यानी नहीं हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं। मनुष्य तीनों भंग के स्वामी हैं। शेष जीवों का कथन नैरयिकों की तरह करना चाहिए।

२२ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं जाणंति, अपच्चक्खाणं जाणंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणंति ?

गोयमा ! जे पंचेंदिया ते तिण्णि वि जाणंति, अवसेसा पच्चक्खाणं न जाणंति।

[२२-प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान को जानते हैं, अप्रत्याख्यान को जानते हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को जानते हैं ?

[२२-उ] गौतम ! जो पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, वे तीनों को जानते हैं। शेष जीव प्रत्याख्यान को नहीं जानते, (अप्रत्याख्यान को नहीं जानते और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को भी नहीं जानते।)

२३ जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं कुव्वंति अपच्चक्खाणं कुव्वंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं कुव्वंति ?

जहा ओहिया तहा कुव्वणा।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान करते हैं, अप्रत्याख्यान करते हैं, प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यान करते हैं ?

[२३ उ] गौतम ! जिस प्रकार औधिक दण्डक कहा है, उसी प्रकार प्रत्याख्यान करने के विषय मे कहना चाहिए।

२४ जीवा ण भते ! कि पच्चक्खाणनि०वत्तियाउया, अपच्चक्खाणनि०, पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणनि० ?

गोयमा ! जीवा य वेमाणिया य पच्चक्खाणणिव्वत्तियाउया तिण्णि वि । अवसेसा अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ।

[२४ प्र] भगवन् ! क्या जीव, प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं अथवा प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ? (अर्थात्—क्या जीवों का आयुष्य प्रत्याख्यान से बधता है अप्रत्याख्यान से बधता है या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से बधता है ?)

[२४ उ] गौतम ! जीव और वैमानिक देव प्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं, और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं। शेष सभी जीव अप्रत्याख्यान से निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं।

विवेचन—समस्त जीवों के प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी एव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी होने, जानने और आयुष्य बाधने के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत ८ सूत्रो मे समस्त जीवों के प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान एव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से सम्बन्धित पाच तथ्यो का निरूपण क्रमश इस प्रकार किया गया है—

(१) जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी है, प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी भी हैं।

(२) नैरयिको से लेकर चतुरिन्द्रिय जीव तक तथा भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अप्रत्याख्यानी हैं। तिर्यञ्च पचेन्द्रिय अप्रत्याख्यानी, और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं तथा मनुष्य प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी तीनों है।

(३) पचेन्द्रिय के सिवाय कोई भी जीव प्रत्याख्यानादि को नही जानते हैं।

(४) समुच्चय जीव और मनुष्य प्रत्याख्यानादि तीनो ही करते है, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान करते है और शेष २२ दण्डक के जीव सिर्फ अप्रत्याख्यान करते हैं (प्रत्याख्यान नही करते)।

(५) समुच्चय जीव और वैमानिक देवो मे उत्पन्न होने वाले जीव प्रत्याख्यान आदि तीनो भगो मे आयुष्य बाधते है, शेष २३ दण्डक के जीव अप्रत्याख्यान से आयुष्य बाधते हैं।[1]

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ २४६

(ख) भगवतीसूत्र के थोकडे, द्वितीय भाग, थो न ५०, पृ ७०-७१

विशेषार्थ—प्रत्याख्यानी = सर्वविरत, प्रत्याख्यानवाला। अप्रत्याख्यानी = अविरत, प्रत्याख्यान-रहित। प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी = देशविरत (किसी अंश मे प्राणातिपातादि पाप स निवृत्त और किसी अंश मे अनिवृत्त।

प्रत्याख्यान ज्ञानसूत्र का आशय—प्रत्याख्यानादि तीनो का सम्यग्ज्ञान तभी हो सकता है, जब उस जीव मे सम्यग्दर्शन हो। इसलिए नारक, चारो निकाय के देव, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और मनुष्य, इन १६ दण्डको के समनस्क सज्ञी एव सम्यग्दृष्टि पचेन्द्रिय जीव ही ज्ञपरिज्ञा से प्रत्याख्यानादि—तीनो को सम्यक् प्रकार से जानते है, शेष अमनस्क—असज्ञी एव मिथ्यादृष्टि (पचेन्द्रिय मिथ्यात्वी, एकेन्द्रिय एव विकलेन्द्रिय) प्रत्याख्यानादि तीनो को नही जानते। यही इस सूत्र का आशय है।

प्रत्याख्यानकरणसूत्र का आशय—प्रत्याख्यान तभी होता है, जबकि वह किया—स्वीकार किया जाता है। सच्चे अर्थों मे प्रत्याख्यान या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान वही करता है, जो प्रत्याख्यान एव प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को जानता हो। शेष जीव तो अप्रत्याख्यान ही करते हैं। यह इस सूत्र का आशय है।

प्रत्याख्यानादि निर्वर्तित आयुष्यबन्ध का आशय—प्रत्याख्यान आदि से आयुष्य बाधे हुए को प्रत्याख्यानादि निर्वर्तित आयुष्यबन्ध कहते हैं। प्रत्याख्यानादि तीनो आयुष्यबन्ध मे कारण होते है। वैसे तो जीव और वैमानिक देवो मे प्रत्याख्यानादि तीनो वाले जीवो की उत्पत्ति होती है किन्तु प्रत्याख्यान वाले जीवो की उत्पत्ति प्राय वैमानिको मे एव अप्रत्याख्यानी अविरत जीवो की उत्पत्ति प्राय नैरयिक आदि मे होती है।[1]

प्रत्याख्यानादि से सम्बन्धित सग्रहणी गाथा

२५ गाथा—

पच्चक्खाण १ जाणइ २ कुव्वति ३ तेणेव आउनिव्वत्ती ४।
सपदेसुद्देसम्मि य एमेए दडगा चउरो ॥२॥

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ छट्ठे सए चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥

[२५ गाथार्थ—] प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान का जानना, करना, तीनो का (जानना, करना), तथा आयुष्य की निर्वृत्ति, इस प्रकार ये चार दण्डक सप्रदेश (नामक चतुर्थ) उद्देशक में कहे गए हैं।

॥ छठा शतक चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २६६-२६७
(ख) भगवती हिन्दी विवेचन भा २, पृ ९९७-९९९

पंचमो उद्देसओ : 'तमुए'

पचम उद्देशक : तमस्काय

तमस्काय के सम्बन्ध मे विविध पहलुओ से प्रश्नोत्तर

१ [१] किमिय भते ! तमुक्काए त्ति पवुच्चइ ? कि पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चति, आऊ तमुक्काए त्ति पवुच्चति ?

गोयमा ! नो पुढवी तमुक्काए त्ति पवुच्चति, आऊ तमुक्काए त्ति पवुच्चति ।

[१-१ प्र] भगवन् ! 'तमस्काय' किसे कहा जाता है ? क्या 'तमस्काय' पृथ्वी को कहते हैं या पानी को ?

[१-१ उ] गौतम ! पृथ्वी तमस्काय नही कहलाती, किन्तु पानी 'तमस्काय' कहलाता है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! पुढविकाए ण अत्थेगइए सुभे देस पकासेति, अत्थेगइए देस नो पकासेइ, से तेणट्ठेण० ।

[१-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से पृथ्वी तमस्काय नही कहलाती, किन्तु पानी तमस्काय कहलाता है ?

[१ २ उ] गौतम ! कोई पृथ्वीकाय ऐसा शुभ है, जो देश (अश या भाग) को प्रकाशित करता है और कोई पृथ्वीकाय ऐसा है, जो देश (भाग) को प्रकाशित नही करता । इस कारण से पृथ्वी तमस्काय नही कहलाती, पानी ही तमस्काय कहलाता है ।

२ तमुक्काए ण भते ! कहि समुट्ठिए ? कहि सन्निट्ठिते ?

गोयमा ! जबुद्दीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेतियताओ अरुणोदय समुद्द बायालीस जोयणसहस्साणि ओगाहित्ता उवरिल्लाओ जलताओ एकपदेसियाए सेढीए इत्थ ण तमुक्काए समुट्ठिए, सत्तरस एक्कवीसे जोयणसते उड्ढ उप्पतित्ता तओ पच्छा तिरिय पवित्थरमाणे पवित्थरमाणे सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ताण उड्ढ पि य ण जाव बभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थड सपत्ते, एत्थ ण तमुक्काए सन्निट्ठिते ।

[२ प्र] भगवन् ! तमस्काय कहाँ से समुत्थित (उत्पन्न—प्रारम्भ) होता है और कहाँ जाकर सन्निष्ठित (स्थित या समाप्त) होता है ?

[२ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर तिरछे असख्यात द्वीप-समुद्रो को लाघने

के बाद अरुणवरद्वीप की बाहरी वेदिका के अन्त मे अरुणोदयसमुद्र मे ४२,००० योजना अवगाहन करने (जाने) पर वहा के ऊपरी जलान्त से एक प्रदेश वाली श्रेणी आती है, यहीं से तमस्काय समुत्थित (उठा—प्रादुर्भूत हुआ) है। वहा से १७२१ योजन ऊचा जाने के बाद तिरछा विस्तृत-से विस्तृत होता हुआ, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र, इन चार देवलोको (कल्पो) को आवृत (आच्छादित) करके उनसे भी ऊपर पचम ब्रह्मलोककल्प के रिष्टविमान नामक प्रस्तट (पाथडे) तक पहुचा है और यहीं तमस्काय सन्निष्ठित (समाप्त या सस्थित) हुआ है।

३ तमुक्काए ण भते ! किसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! अहे मल्लगमूलसठिते, उप्पि कुक्कुडगपजरगसठिए पण्णत्ते।

[३ प्र] भगवन् ! तमस्काय का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! तमस्काय नीचे तो मल्लक (शराव या सिकोरे) के मूल के आकार का है और ऊपर कुक्कुटपजरक अर्थात् मुर्गे के पिंजरे के आकार का कहा गया है।

४ तमुक्काए ण भते केवतिय विक्खभेण ? केवतिय परिक्खेवेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सखेज्जवित्थडे य असखेज्जवित्थडे य। तत्थ ण जे से सखेज्जवित्थडे से ण सखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ परिक्खेवेण प०। तत्थ ण जे से असखिज्जवित्थडे से असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयण सहस्साइ परिक्खेवेण।

[४ प्र] भगवन् ! तमस्काय का विष्कम्भ (विस्तार) और परिक्षेप (घेरा) कितना कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! तमस्काय दो प्रकार का कहा गया है—एक तो सख्येयविस्तत और दूसरा असख्येयविस्तृत। इनमे से जो सख्येयविस्तृत है, उसका विष्कम्भ सख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असख्येय हजार योजन है। जो तमस्काय असख्येयविस्तृत है, उसका विष्कम्भ असख्येय हजार योजन है और परिक्षेप भी असख्येय हजार योजन है।

५ तमुक्काए ण भते ! केमहालए प० ?

गोयमा ! अय ण जबुद्दीवे २ जाव[1] परिक्खेवेण पण्णत्ते। देवे ण महिड्ढीए जाव[2] 'इणामेव इणामेव' त्ति कट्टु केवलकप्प जबुद्दीव दीव तिहि अच्छरानिवाएहि[3] तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताण

---

१ जाव पद यहाँ इस पाठ का सूचक है—"अय जबुद्दीवे णाम दीवे दीव समुद्दाण, सब्भतरिए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्ला पूयसठाणसठिते, वट्टे रहचक्कवालसठाणसठिते, वट्टे पुक्खरकण्णियासठाणसठिते, वट्टे पडिपुण्णचदसठाणसठिते एक्क जोयणसयसहस्स आयामविक्खभेण, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस य सहस्साइ दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीस च धणुसय तेरस अगुलाइ अद्ध गुलक च किंचिविसेसाहिय परिक्खेवेण"।
—जीवा जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, जम्बूद्वीपप्रमाण वर्णन प १७७५

२ 'जाव' पद यहाँ—'महज्जुईए महाबले महाजसे महेसक्खे महाणुभागे' इन पदो का सूचक है।

३ अच्छरानिवाएहि—चुटकी बजाने जितने समय मे।

हव्वमागच्छिज्जा । से ण देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जाव एकाह वा दुयाह वा तियाह वा उक्कोसेण छम्मासे वीतीवएज्जा, अत्थेगइय तमुक्काय वीतीवएज्जा, अत्थेगइय तमुक्काय नो वीतीवएज्जा । एमहालए ण गोतमा ! तमुक्काए पन्नत्ते ।

[५ प्र] भगवन् ! तमस्काय कितना बडा कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! समस्त द्वीप-समुद्रो के सर्वाभ्यन्तर अर्थात्— बीचोबीच यह जम्बूद्वीप है, यावत यह एक लाख योजन का लम्बा-चौडा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है। कोई महाऋद्धि यावत् महानुभाव वाला देव—'यह चला, यह चला', यो करके तीन चुटकी बजाए, उतने समय मे सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र वापस आ जाए, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरायुक्त यावत् देव की गति से चलता हुआ देव यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन चले, यावत उत्कृष्ट छह महीने तक चले तब जाकर कुछ तमस्काय को उल्लघन कर पाता है, और कुछ तमस्काय को उल्लघन नही कर पाता । हे गौतम ! तमस्काय इतना बडा (महालय) कहा गया है ।

६ अत्थि ण भते ! तमुक्काए गेहा ति वा, गेहावणा ति वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

[६ प्र] भगवन् ! तमस्काय मे गृह (घर) है, अथवा गृहापण (दुकाने) है ?

[६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

७ अत्थि ण भते ! तमुक्काय गामा ति वा जाव सन्निवेसा ति वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

[७ प्र] भगवन् ! तमस्काय मे ग्राम हैं यावत् अथवा सन्निवेश हैं ?

[७ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

८ [१] अत्थि ण भते ! तमुक्काए ओराला बलाहया ससेयति, सम्मुच्छति, वास वासति ?
हता, अत्थि ।

[८-१ प्र] भगवन् ! क्या तमस्काय मे उदार (विशाल) मेघ सस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं और वर्षा वरसाते हैं ?

[८-१ उ] हा, गौतम ! ऐसा है ।

[२] त भते ! किं देवो पकरेति, असुरो पकरेति ? नागो पकरेति ?
गोयमा ! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, णागो वि पकरेति ।

[८-२ प्र] भगवन् ! क्या उसे (मेघ-सस्वेदन सम्मूच्छन-वर्षण) देव करता है, असुर करता है या नाग करता है ?

[८ २ उ] हां, गौतम ! (ऐसा) देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है ।

आकाश-प्रदेश की श्रेणीरूप नही। फिर तमस्काय का सस्थान मिट्टी के सकोरे के (मूल का) आकार सा या ऊपर मुर्गे के पिंजरे सा है। वह दो प्रकार का है - सख्येय विस्तृत और असख्येय विस्तृत। पहला जलान्त से प्रारम्भ होकर सख्येय योजन तक फैला हुआ है, दूसरा असख्येय योजन तक विस्तृत और असख्येय द्वीपो को घेरे हुए है। तमस्काय इतना अत्यधिक विस्तृत है कि कोई देव ६ महीने तक अपनी उत्कृष्ट शीघ्र दिव्यगति से चले तो भी वह सख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक पहुँचता है, असख्येय योजन विस्तृत तक पहुँचना बाकी रह जाता है।

तमस्काय मे न तो घर है, और न गृहापण हैं और न ही ग्राम, नगर, सन्निवेशादि हैं, किन्तु वहा बडे-बडे मेघ उठते हैं, उमडते है, गजते हैं, बरसते हैं। बिजली भी चमकती है। देव, असुर या नागकुमार ये सब कार्य करते हैं, विग्रहगतिसमापन्न बादर पृथ्वी या अग्नि को छोड कर तमस्काय मे न बादर पृथ्वीकाय है, न बादर अग्निकाय। तमस्काय मे चन्द्र-सूर्यादि नही हैं, किन्तु उसके आस पास मे हैं, उनकी प्रभा तमस्काय मे पडती भी है, किन्तु तमस्काय के परिणाम मे परिणत हो जाने के कारण नही-जैसी है। तमस्काय काला, भयकर काला और रोमहर्षक तथा त्रासजनक है। देवता भी उसे देखकर घबरा जाते हैं। यदि कोई देव साहस करके उसमे घुस भी जाय तो भी वह भय के मारे कायगति से अत्यन्त तेजी से और मनोगति से अतिशीघ्र बाहर निकल जाता है। तमस्काय के तम आदि तेरह सार्थक नाम है। तमस्काय पानी, जीव और पुद्गलो का परिणाम है। जलरूप होने के कारण वहा बादर वायु, वनस्पति और त्रसजीव उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य जीवो का स्वस्थान न होने के कारण उनकी उत्पत्ति तमस्काय मे सम्भव नही है।[1]

कठिन शब्दो की व्याख्या—बलाहया ससेयति सम्मुच्छति, वास वासति = महामेघ सस्वेद को प्राप्त होते हैं, अर्थात्—तज्जनित पुद्गलो के स्नेह से सम्मूच्छित होते (उठते-उमडते) हैं, क्योंकि मेघ के पुद्गलो के मिलने से ही उनकी तदाकाररूप से उत्पत्ति होती है और फिर वर्षा होती है **'बादर विद्युत्'** यहाँ तेजस्कायिक नही है, अपितु देव के प्रभाव से उत्पन्न भास्वर (दीप्तिमान्) पुद्गलो का समूह है। पलिपस्सतो = परिपार्श्व मे—आसपास मे। उत्तासणए = उग्र त्रास देने वाला। खुभाएज्जा = क्षुब्ध हो जाता है, घबरा जाता है। अभिसमागच्छेज्जा = प्रवेश करता है। उववण्णपुव्वा = पहले उत्पन्न हो चुके। असइ अदुवा अणतक्खुत्तो = अनेक बार अथवा अनन्त बार। देववहे = चक्रव्यूहवत देवो लिए भी दुर्भेद्य व्यूहसम। देवपरिघ = देवो के गमन मे बाधक परिघ-परिखा की तरह।[2]

विविध पहलुओ से कृष्णराजियो से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

१७ कति ण भते ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ।

[१७ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं ?

[१७ उ] गौतम ! कृष्णराजिया आठ हैं।

१८ कहि ण भते ! एयाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६८ स २७० तक

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ २४७ से २५० तक

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २६८ से २७० तक

गोयमा ! उप्पिं सणकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं, हव्विं बंभलोगे कप्पे रिट्ठे विमाणपत्थडे, एत्थ णं अक्खाडग समचउरससंठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं दो, उत्तरेणं दो। पुरत्थिमब्भंतरा कण्हराई दाहिणबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा दाहिणब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिमबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा, पच्चत्थिमब्भंतरा कण्हराई उत्तरबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा, उत्तरऽब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिमबाहिरं कण्हराइं पुट्ठा। दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हराईओ छलंसाओ, दो उत्तरदाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ, दो पुरत्थिमपच्चत्थिमाओ अब्भितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ, दो उत्तरदाहिणाओ अब्भितराओ कण्हराईओ चउरंसाओ।

पुव्वावरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा।
अब्भंतर चउरंसा सव्वा वि य कण्हराईओ ॥ १ ॥

[१८ प्र.] भगवन् ! ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ हैं ?

[१८ उ.] गौतम ! ऊपर सनत्कुमार (तृतीय) और माहेन्द्र (चतुर्थ) कल्पों (देवलोकों) से ऊपर और ब्रह्मलोक (पंचम) देवलोक के अरिष्ट नामक विमान के (तृतीय) प्रस्तट (पाथडे) से नीचे (अर्थात्) इस स्थान में, अखाड़ा (प्रेक्षास्थल) के आकार की समचतुरस्र (सम-चौरस) संस्थानवाली आठ कृष्णराजियाँ हैं। यथा—पूर्व में दो, पश्चिम में दो, दक्षिण में दो और उत्तर में दो। पूर्वाभ्यन्तर अर्थात्—पूर्वदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिणदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की हुई (सटी) है। दक्षिण-दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने पश्चिमदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है। पश्चिमदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने उत्तरदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है और उत्तरदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्वदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की हुई है। पूर्व और पश्चिम दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षडंश (षट्कोण) हैं, उत्तर और दक्षिण की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्र्यस्र (त्रिकोण) हैं, पूर्व और पश्चिम की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुरस्र (चतुष्कोण चौकोन) हैं, इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ भी चतुष्कोण हैं।

[गाथार्थ—] "पूर्व और पश्चिम की कृष्णराजि षट्कोण हैं, तथा दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण हैं। शेष सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं।"

१ हव्विं का स्पष्ट अर्थ है—नीचे। कुछ प्रतियों में परिवर्तित पाठ 'हेट्ठिं' 'हिट्ठिं' भी मिलता है।

१९ कण्हराईओ णं भंते ! केवतियं आयामेणं, केवतियं विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णताओ ?

गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ ।

[१९ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियों का आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (विस्तार-चौड़ाई) और परिक्षेप (घेरा = परिधि) कितना है ।

[१९ उ] गौतम ! कृष्णराजियों का आयाम असंख्येय हजार योजन है, विष्कम्भ संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन कहा गया है ।

२० कण्हराईओ णं भंते ! केमहालियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे जाव अद्धमासं वीतीवएज्जा । अत्थेगतियं कण्हराइं वीतीवएज्जा, अत्थेगइयं कण्हराइं णो वीतीवएज्जा । एमहालियाओ णं गोयमा ! कण्हराईओ पण्णत्ताओ ।

[२० प्र] भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी बड़ी कही गई हैं ?

[२० उ] गौतम ! तीन चुटकी बजाए, उतने समय में इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके आ जाए—इतनी शीघ्र दिव्यगति से कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन, यावत् अर्द्धमास तक चले, तब कहीं वह देव किसी कृष्णराजि को पार कर पाता है और किसी कृष्णराजि को पार नहीं कर पाता । हे गौतम ! कृष्णराजियाँ इतनी बड़ी हैं ।

२१ अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहा ति वा, गेहावणा ति वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में गृह हैं अथवा गृहापण हैं ?

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नहीं है ।

२२ अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गामा ति वा० ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में ग्राम आदि हैं ?

[२२ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नहीं है । (अर्थात्—कृष्णराजियों में ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश नहीं हैं ।)

२३ [१] अत्थि णं भंते ! कण्ह० ओराला बलाहया सम्मुच्छंति ३ ?

हंता, अत्थि ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में उदार (विशाल) महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

[२३-१ उ] हाँ गौतम ! कृष्णराजियों में ऐसा होता है ।

[२] त भंते ! किं देवो पकरेति ३ ?

गोयमा ! देवो पकरेति, नो असुरो, नो नागो य ।

[२३-२ प्र] भगवन् ! क्या इन सबको देव करता है, असुर (कुमार) करता है अथवा नाग (कुमार) करता है ?

[२३-२ उ] गौतम ! (वहा यह सब) देव ही करता है, किन्तु न असुर (कुमार) करता है और न नाग (कुमार) करता है ।

२४ अत्थि ण भंते ! कण्हराईसु बादरे थणियसद्दे ?

जहा ओराला (सु २३) तहा ।

[२४ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे बादर स्तनितशब्द है ?

[२४ उ] गौतम ! जिस प्रकार से उदार मेघा के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार इनका भी कथन करना चाहिए । (अर्थात्—कृष्णराजियो मे बादर स्तनितशब्द है और उसे देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नही करता ।)

२५ अत्थि ण भंते ! कण्हराईसु बादरे आउकाए बादरे अगणिकाए बायरे वणप्फतिकाए ?

णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएण ।

[२५ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय है ?

[२५ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । यह निषेध विग्रहगतिसमापन्न जीवो के सिवाय दूसरे जीवो के लिये है ।

२६ अत्थि ण भंते ! ० चंदिमसूरिय० ४ प० ?

णो इण० ।

[२६ प्र] भगवन ! क्या कृष्णराजियो मे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

[२६ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । (अर्थात्—ये वहाँ नही हैं ।)

२७ अत्थि ण कण्ह० चंदाभा ति वा २ ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२७ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे चन्द्र की कान्ति या सूर्य की कान्ति (आभा) है ?

[२७ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

२८ कण्हराईओ ण भंते ! केरिसियाओ वण्णेण पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! कालाओ जाव[1] खिप्पामेव वीतीवएज्जा ।

---

१ 'जाव' पद यहाँ सू १३ के निम्नोक्त पाठ का सूचक है—'कालावभासाओ गभीरलोमहरिसजणणाओ भीमाओ उत्तासणाओ परमकिण्हाओ वण्णेण पण्णत्ताओ, देवे वि अत्थेगतिए जे ण तप्पढमयाए पासित्ताण खुभाएज्जा, अह ण अभिसमागच्छेज्जा, तओ पच्छा सीहं सीहं तुरियं तुरियं तत्थ खिप्पामेव वीतीवएज्जा ।'

[२८ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियो का वर्ण कैसा है ?

[२८ उ] गौतम ! कृष्णराजियो का वर्ण काला है, यह काली कान्ति वाला है, यावत् परमकृष्ण (एकदम काला) है। तमस्काय की तरह अतीव भयंकर होने से इसे देखते ही देव क्षुब्ध हो जाता है, यावत् अगर कोई देव (साहस करके इनमे प्रविष्ट हो जाए, तो भी वह) शीघ्रगति से झटपट इसे पार कर जाता है।

२९ कण्हराईण भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—कण्हराई ति वा, मेहराई ति वा, मघा इ वा, माघवती ति वा, वातफलिहे ति वा, वातपलिक्खोभे इ वा, देवफलिहे इ वा, देवपलिक्खोभे ति वा।

[२९ प्र] भगवन् ! कृष्णराजियो के कितने नाम कहे गए हैं ?

[२९ उ] गौतम ! कृष्णराजियो के आठ नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) कृष्णराजि, (२) मेघराजि, (३) मघा, (४) माघवती, (५) वातपरिघा, (६) वातपरिक्षोभा, (७) देवपरिघा और (८) देवपरिक्षोभा।

३० कण्हराईओ णं भंते ! किं पुढविपरिणामाओ, आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ, पुग्गलपरिणामाओ ?

गोयमा ! पुढविपरिणामाओ, नो आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ वि, पुग्गलपरिणामाओ वि।

[३० प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजिया पृथ्वी के परिणामरूप हैं, जल के परिणामरूप हैं, या जीव के परिणामरूप है, अथवा पुद्गलो के परिणामरूप है ?

[३० उ] गौतम ! कृष्णराजिया पृथ्वी के परिणामरूप है, किन्तु जल के परिणामरूप नही है, वे जीव के परिणामरूप भी हैं और पुद्गलों के परिणामरूप भी हैं।

३१ कण्हराईसु णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता उववन्नपुव्वा ?

हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, नो चेव णं बादरआउकाइयत्ताए, बादरअगणिकाइयत्ताए, बादरवणस्सतिकाइयत्ताए वा।

[३१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णराजियो मे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

[३१ उ] हाँ, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व कृष्णराजियो मे अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु बादर अप्कायरूप से, बादर अग्निकायरूप से और बादर वनस्पतिकायरूप से उत्पन्न नही हुए है।

विवेचन—विभिन्न पहलुओ से कृष्णराजियों से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत पन्द्रह सूत्रो (सू. १७ से ३१ तक) मे तमस्काय की तरह कृष्णराजियो के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रश्न उठाकर उनके समाधान प्रस्तुत कर दिये गए हैं।

तमस्काय और कृष्णराजि के प्रश्नोत्तरो मे कहां सादृश्य, कहां अन्तर ?—तमस्काय और कृष्णराजि के प्रश्नो मे लगभग सादृश्य है, किन्तु उनके उत्तरो मे तमस्कायसम्बन्धी उत्तरो से कहीं-कहीं अन्तर है। यथा—कृष्णराजिया ८ बताई गई हैं। इनके सस्थान मे अन्तर है। इनका आयाम और परिक्षेप असख्येय हजार योजन है, जबकि विष्कम्भ (चौडाई=विस्तार) सख्येय हजार योजन है। ये तमस्काय से विशालता मे कम है, किन्तु इनकी भयकरता तमस्काय जितनी ही है।

कृष्णराजियो मे ग्रामादि या गृहादि नही हैं। वहाँ बडे-बडे मेघ हैं, जिन्हे देव बनाते हैं, गर्जाते व बरसाते हैं। वहा विग्रहगतिसमापन्न बादर अप्काय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय के सिवाय कोई बादर अप्काय, अग्निकाय या वनस्पतिकाय नही है। वहाँ न तो चन्द्रादि हैं, और न चन्द्र, सूर्य की प्रभा है। कृष्णराजियो का वर्ण तमस्काय के सदृश ही गाढ काला एव अन्धकारपूर्ण है। कृष्णराजियो के ८ सार्थक नाम हैं। ये कृष्णराजियाँ अप्काय के परिणामरूप नही हैं, किन्तु सचित्त और अचित्त पृथ्वी के परिणामरूप हैं, इसलिए कहा जा सकता है कि ये जीव और पुद्गल, दोनो के विकाररूप हैं। बादर अप्काय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय को छोडकर अन्य सब जीव एक बार ही नही, अनेक बार और अनन्त बार कृष्णराजियो मे उत्पन्न हो चुके हैं।[1]

कृष्णराजियों के आठ नामों की व्याख्या—कृष्णराजि=काले वर्ण की पृथ्वी और पुद्गलो के परिणामरूप होने से काले पुद्गलो की राजि=रेखा। मेघराजि=काले मेघ की रेखा के सदृश। मघा=छठी नरक के समान अन्धकार वाली। माघवती=सातवी नरक के समान गाढान्धकार वाली। वातपरिघा=आधी के समान सघन अन्धकार वाली और दुलंघ्य। वातपरिक्षोभा=आधी के समान अन्धकार वाली और क्षोभजनक। देवपरिघा=देवो के लिए दुर्लंघ्य। देवपरिक्षोभा=देवो के लिए क्षोभजनक।[2]

लोकान्तिक देवो से सम्बन्धित विमान, देव-स्वामी, परिवार, सस्थान, स्थिति, दूरी आदि का विचार

३२ एयासि ण अट्ठण्ह कण्हराईण अट्ठसु ओवासतरेसु अट्ठ लोगतियविमाणा पण्णत्ता, त जहा— अच्ची अच्चिमाली वइरोयणे पभकरे चदाभे सूराभे सुक्काभे सुपतिट्ठाभे, सज्झे रिट्ठाभे।

[३२] इन (पूर्वोक्त) आठ कृष्णराजियो के आठ अवकाशान्तरो मे आठ लोकान्तिक विमान हैं। यथा—(१) अर्चि, (२) अर्चिमाली, (३) वैरोचन, (४) प्रभकर, (५) चन्द्राभ, (६) सूर्याभ, (७) शुक्राभ, और (८) सुप्रतिष्ठाभ। इन सबके मध्य मे रिष्टाभ विमान है।

३३ कहि ण भते ! अच्ची विमाणे प० ?

गोयमा ! उत्तरपुरत्थिमेण।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भाग १ पृ २५१ से २५३
(ख) भगवती अ वृत्ति पत्राक २७१

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७१

[३३ प्र] भगवन् ! अर्चि विमान कहाँ है ?

[३३ उ] गौतम ! अर्चि विमान उत्तर और पूर्व के बीच मे है ।

३४ कहि ण भ ते ! अच्चिमाली विमाणे प० ?

गोयमा ! पुरत्थिमेण ।

[३४ प्र] भगवन् ! अर्चिमाली विमान कहा है ?

[३४ उ] गौतम ! अर्चिमाली विमान पूर्व मे है ।

३५ एव परिवाडीए नेयव्व जाव[1] कहि ण भ ते ! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुमज्झदेसभागे ।

[३५ प्र] इसी क्रम (परिपाटी) से सभी विमानो के विषय मे जानना चाहिए यावत्–हे भगवन् ! रिष्ट विमान कहाँ बताया गया है ?

[३५ उ] गौतम ! रिष्ट विमान बहुमध्यभाग, (सबके मध्य) मे बताया गया है ।

३६ एतेसु ण अट्ठसु लोगतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगतिया देवा परिवसति, त जहा—

सारस्सयमादिच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ।।२।।

[३६] इन आठ लोकान्तिक विमानो मे अष्टविध (आठ जाति के) लोकान्तिक देव निवास करते हैं । वे (आठ प्रकार के लोकान्तिक देव) इस प्रकार हैं—(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) आग्नेय और (८) रिष्ट देव (बीच मे) ।

३७ कहि ण भ ते ! सारस्सता देवा परिवसति ?

गोयमा ! अच्चिम्मि विमाणे परिवसति ।

[३७ प्र] भगवन् ! सारस्वत देव कहाँ रहते है ?

[३७ उ] गौतम ! सारस्वत देव अर्चि विमान मे रहते है ।

३८ कहि ण भ ते ! आदिच्चा देवा परिवसति ?

गोयमा ! अच्चिमालिम्मि विमाणे० ।

[३८ प्र] भगवन् ! आदित्य देव कहाँ रहते हैं ?

[३८ उ] गौतम ! आदित्य देव अर्चिमाली विमान मे रहते हैं ।

३९ एव नेयव्व जहाणुपुव्वीए जाव कहि ण भते ! रिट्ठा देवा परिवसति ?

गोयमा ! रिट्ठम्मि विमाणे ।

---

१ 'जाव' पद से यहाँ वरोचन से लेकर सुप्रतिष्ठाभ विमान तक की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए ।

[३९ प्र] इस प्रकार अनुक्रम से रिष्ट विमान तक जान लेना चाहिए कि भगवन्! रिष्ट देव कहाँ रहते हैं?

[३९ उ] गौतम! रिष्ट देव रिष्ट विमान मे रहते हैं।

४० [१] सारस्सय मादिच्चाण भंते! देवाण कति देवा, कति देवसता पण्णत्ता?

गोयमा! सत्त देवा, सत्त देवसया परिवारो पण्णत्तो।

[४०-१ प्र] भगवन्! सारस्वत और आदित्य, इन दो देवो के कितने देव हैं और कितने सौ देवो का परिवार कहा गया है?

[४०-१ उ] गौतम! सारस्वत और आदित्य, इन दो देवो के सात देव (स्वामी—अधिपति) हैं और इनके ७०० देवो का परिवार है।

[२] वण्ही-वरुणाण देवाण चउद्दस देवा, चउद्दस देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो।

[४० २] वह्नि और वरुण, इन दो देवो के १४ देव स्वामी हैं और १४ हजार देवो का परिवार कहा गया है।

[३] गद्दतोय-तुसियाण देवाण सत्त देवा, सत्त देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो।

[४० ३] गदतोय और तुषित देवो के ७ देव स्वामी हैं और ७ हजार देवो का परिवार कहा गया है।

[४] अवसेसाण नव देवा, नव देवसया परिवारो पण्णत्ता।

पढमजुगलम्मि सत्त उ सयाणि बीयम्मि चोद्दस सहस्सा।
ततिए सत्त सहस्सा नव चेव सयाणि सेसेसु॥३॥

[४०-४] शेष (अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट, इन) तीनो देवो के नौ देव स्वामी और ९०० देवो का परिवार कहा गया है।

(गाथार्थ—) प्रथम युगल मे ७००, दूसरे युगल मे १४,००० देवो का परिवार, तीसरे युगल मे ७,००० देवो का परिवार और शेष तीन देवो के ९०० देवो का परिवार है।

४१ [१] लोगंतिगविमाणा ण भंते! किंपतिट्ठिता पण्णत्ता?

गोयमा! वाउपतिट्ठिया पण्णत्ता।

[४१-१ प्र] भगवन्! लोकान्तिकविमान किसके आधार पर प्रतिष्ठित (रहे हुए) हैं?

[४१-१ उ] गौतम! लोकान्तिकविमान वायुप्रतिष्ठित (वायु के आधार पर रहे हुए) हैं।

[२] एव नेयव्व—'विमाणाण पतिट्ठाण बाहल्लुच्चत्तमेव सठाण।' बमलोयवत्तव्वया नेयव्वा जाव हता गोयमा! असति अदुवा अणतखुत्तो, नो चेव ण देवत्ताए।

[४१-२] इस प्रकार—जिस तरह विमानो का प्रतिष्ठान, विमानो का बाहल्य, विमानो की ऊँचाई और विमानो के सस्थान आदि का वणन जीवाजीवाभिगमसूत्र के देव-उद्देशक मे ब्रह्मलोक की वक्तव्यता मे कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत्—हा, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ अनेक बार और अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु लोकान्तिकविमानो मे देवरूप मे उत्पन्न नही हुए ।

४२ लोगंतिगविमाणेसु लोगंतियदेवाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! अट्ठ सागरोवमाइ ठिती पण्णत्ता ।

[४२ प्र] भगवन् ! लोकान्तिकविमानो मे लोकान्तिकदेवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४२ उ] गौतम ! (लोकान्तिकविमानो मे लोकान्तिकदेवो की) आठ सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

४३ लोगंतिगविमाणेहिं ण भते ! केवतिय अबाहाए लोगते पण्णत्ते ?
गोयमा ! असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ अबाहाए लोगते पण्णत्ते ।
सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ छट्ठ सए पचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[४३ प्र] भगवन् ! लोकान्तिकविमानो से लोकान्त कितना दूर है ?

[४३ उ] गौतम ! लोकान्तिकविमानो से असख्येय हजार योजन दूर लोकान्त कहा गया है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' इस प्रकार कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे ।

विवेचन—लोकान्तिक देवो से सम्बन्धित विमान, देवस्वामी, परिवार, सस्थान, स्थिति, दूरी आदि का वर्णन—प्रस्तुत बारह सूत्रो (सू ३२ से ४३ तक) मे लोकान्तिकदेवो से सम्बन्धित विमानादि का वणन किया गया है ।

विमानो का अवस्थान—पूर्व विवेचन मे लोकान्तिकदेवो के विमानो के अवस्थान का रेखाचित्र दिया गया है ।

लोकान्तिकदेवों का स्वरूप—ये देव ब्रह्मलोक नामक पचम देवलोक के पास रहते हैं, इसलिए इन्हें लोकान्तिक कहते हैं । अथवा ये उदयभावरूप लोक के अन्त (करने मे) रहे हुए हैं, क्योंकि ये सब स्वामी देव एकभवावतारी (एक भव के पश्चात् मोक्षगामी) होते हैं, इसलिए भी इन्हे लोकान्तिक कहते हैं । लोकान्तिक विमानो से असख्यात हजार योजन दूरी पर लोक का अन्त है और सभी जीव लोकान्तिकविमानो मे पृथ्वीकायादि रूप मे अनेक बार, यहाँ तक कि अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु देवरूप से तो वहाँ एक बार ही उत्पन्न होते हैं, क्योकि लोकान्तिकविमानो मे देवरूप से उत्पन्न

होने वाले जीव नियमत भव्य होते है और एक भव पश्चात् मोक्षगामी होते हैं । इसलिए देवरूप से यहाँ अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न नही हुए ।[1]

लोकान्तिकविमानो का संक्षिप्त निरूपण—जीवाजीवाभिगमसूत्र एव प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार इनके विमान वायुप्रतिष्ठित है । इनका बाहल्य (मोटाई) २५०० योजन व ऊँचाई ७०० योजन होती है । जो विमान आवलिकाप्रविष्ट होते हैं, वे वृत्त (गोल) त्र्यस (त्रिकोण) या चतुरस्र (चतुष्कोण) होते हैं, किन्तु ये विमान आवलिकाप्रविष्ट नही होते, इसलिए इनका आकार नाना प्रकार का होता है । इन विमानो का वर्ण लाल, पीला और श्वेत होता है, ये प्रकाशयुक्त, इष्ट वर्ण-गन्धयुक्त एव सर्वरत्नमय होते हैं । इन विमानो के निवासी देव समचतुरस्र-सस्थानवाले, पद्मलेश्यायुक्त एव सम्यग्दृष्टि होते है ।[2]

॥ छठा शतक पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राङ्क २७२

२ (क) जीवाजीवाभिगमसूत्र द्वितीय वैमानिक उद्देशक पृ ३९४ से ४०६ तक (द सा)

(ख) प्रज्ञापनासूत्र दूसरा स्थानपद, ब्रह्मलोकस्थानाधिकार पृ १०३ (आ स)

(ग) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राङ्क २७२

छट्ठो उद्देसओ : 'भविए'

छठा उद्देशक : भव्य

चौबीस दण्डको के आवास, विमान आदि की सख्या का निरूपण

१ [१] कति ण भते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा जाव[1] तमतमा ।

[१-१ प्र] भगवन ! पृथ्विया कितनी कही गई हैं ?

[१-१ उ] गौतम ! पृथ्विया सात कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा यावत् [शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा] तमस्तम प्रभा ।

[२] रयणप्पभादीण आवासा भाणियव्वा जाव[2] अहेसत्तमाए। एव जे जत्तिया आवासा ते भाणियव्वा ।

[१-२] रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर अध सप्तमी (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी तक, जिस पृथ्वी के जितने आवास हो, उतने कहने चाहिए ।

२ जाव[3] कति ण भते ! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता, त जहा—विजए जाव सव्वट्ठसिद्धे ।

[२ प्र] भगवन् ! यावत (भवनवासी से लेकर अनुत्तरविमान तक) अनुत्तरविमान कितने कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! पाच अनुत्तरविमान कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—विजय, यावत् (वजयन्त, जयन्त, अपराजित) सर्वार्थसिद्ध विमान ।

विवेचन—चौबीस दण्डको के आवास, विमान आदि की सख्या का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे से प्रथम सूत्र मे नरकपृथ्वियो की सख्या तथा उस उस पृथ्वी के आवासो की सख्या का अतिदेश-पूर्वक निरूपण किया गया है। द्वितीय सूत्र मे अध्याहृतरूप मे भवनवासी से लेकर नौ ग्रवेयक तक के आवासो व विमानो की सख्या का तथा प्रकटरूप मे अनुत्तरविमानो की सख्या का निरूपण किया गया है।[4]

---

१ यहाँ 'जाव' पद सक्करप्पभा इत्यादि शेष पृथ्विया तक का सूचक है।

२ यहाँ भी 'जाव' पद रत्नप्रभा से लेकर सप्तम पृथ्वी ([illegible]) तक का सूचक [illegible]

३ यहाँ 'जाव' पद से 'भवनवासी' से अनुत्तरविमान त [illegible] समझना चा [illegible]

४ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा -१, पृ [illegible]

चौवीस दण्डको के समुद्घात-समवहत जीव की आहारादि प्ररूपणा

३ [१] जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहते, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नतरसि निरयावाससि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भते ! तत्थगते चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगते चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा, अत्थेगइए ततो पडिनियत्तति, इहमागच्छति, आगच्छित्ता दोच्च पि मारणतियसमुग्घाएण समोहणति, समोहणित्ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नयरसि निरयावाससि नेरइयत्ताए उववज्जित्ता ततो पच्छा आहारेज्ज वा परिणामेज्ज वा सरीर वा बधेज्जा ।

[३-१ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासो मे से किसी एक नारकावास मे नैरयिक रूप मे उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन् ! क्या वह वहा जा कर आहार करता है ? आहार को परिणमाता है ? और शरीर बाधता है ?

[३-१ उ] गौतम ! कोई जीव वहा जा कर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है या शरीर बाधता है, और कोई जीव वहाँ जा कर वापस लौटता है, वापस लौट कर यहाँ आता है। यहाँ आ कर वह फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होता है। समवहत हो कर इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासो मे से किसी एक नारकावास मे नैरयिक रूप से उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् आहार ग्रहण करता है, परिणमाता है और शरीर बाधता है।

[२] एव जाव अहेसत्तमा पुढवी ।

[३-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमी (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी तक कहना चाहिए ।

४ जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, २ जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावास-सयसहस्सेसु अन्नतरसि असुरकुमारावाससि असुरकुमारत्ताए उववज्जित्तए० ।

जहा नेरइया तहा भाणियव्वा जाव[1] थणियकुमारा ।

[४ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर असुरकुमारो के चौसठ लाख आवासो मे से किसी एक आवास मे उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव वहाँ जा कर आहार करता है ? उस आहार को परिणमाता है और शरीर बाँधता है ?

[४ उ] गौतम ! जिस प्रकार नरयिको के विषय मे कहा, उसी प्रकार असुरकुमारो से स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

५ [१] जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, २ जे भविए असखेज्जेसु पुढविकाइ-यावाससयसहस्सेसु अन्नयरसि पुढविकाइयावाससि पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भते ! मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेण केवतिय गच्छेज्जा, केवतिय पाउणेज्जा ?

---

१ यहाँ 'जाव' पद से असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार पर्यन्त सभी भवनवासियो के नाम कहने चाहिए ।

गोयमा ! लोयंत गच्छेज्जा, लोयंत पाउणिज्जा ।

[५-१ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर असंख्येय लाख पृथ्वीकायिक आवासों में से किसी एक पृथ्वीकायिक-आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने के योग्य है, भगवन् ! वह जीव मंदर (मेरु) पर्वत से पूर्व में कितनी दूर जाता है ? और कितनी दूरी को प्राप्त करता है ?

[५-१ उ] हे गौतम ! वह लोकान्त तक जाता है और लोकान्त को प्राप्त करता है ।

[२] से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगते चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा, अत्थेगइए ततो पडिनियत्तति, २ त्ता इहमागच्छइ, २ त्ता दोच्चं पि मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणति, २ त्ता मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागमेत्तं वा संखेज्जतिभागमेत्तं वा, वालग्गं वा, वालग्गपुहत्तं वा एवं लिक्खं जूयं जवं अंगुलं जाव[1] जोयणकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिं वा, संखेज्जेसु वा असंखेज्जेसु वा जोयणसहस्सेसु, लोगंते वा एगपदेसियं सेढिं मोत्तूण असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जेत्ता तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ।

[५-२ प्र] भगवन् ! क्या उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीव, वहाँ जा कर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है ?

[५-२ उ] गौतम ! कोई जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है, उस आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है, और कोई जीव वहाँ जा कर वापस लौटता है, वापस लौट कर यहाँ आता है, यहाँ आकर फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर मेरुपर्वत के पूर्व में अंगुल के असंख्येयभागमात्र, या संख्येयभागमात्र, या बालाग्र अथवा बालाग्र पृथक्त्व (दो से नौ तक बालाग्र), इसी तरह लिक्षा, यूका, यव, अंगुल यावत् करोड़ योजन, कोटा-कोटि योजन, संख्येय हजार योजन और असंख्येय हजार योजन में, अथवा एक प्रदेश श्रेणी को छोड़ कर लोकान्त में पृथ्वीकाय के असंख्य लाख आवासों में से किसी आवास में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होता है और उसके पश्चात् आहार करता है, उस आहार को परिणमाता है और शरीर बांधता है ।

[३] **जहा पुरत्थिमेणं मंदरस्स पव्वयस्स आलावगो भणिओ एवं दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं, उड्ढे, अहे ।**

[५-३] जिस प्रकार मेरुपर्वत की पूर्वदिशा के विषय में कथन किया (आलापक कहा) गया है, उसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशा के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

---

१ यहाँ 'जाव' पद 'विहत्थिं वा रयणिं वा कुच्छिं वा धणुं वा कोसं वा जोयणं वा जोयणसयं वा जोयणसहस्सं वा जोयणसयसहस्सं वा' पाठ का सूचक है ।

६ जहा पुढविकाइया तहा एगिंदियाण सव्वेसिं एक्केक्कस्स छ आलावगा भाणियव्वा ।

[६] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार से सभी एकेन्द्रिय जीवो के विषय मे एक-एक के छह-छह आलापक कहने चाहिए ।

७ जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घातेण समोहते, २ त्ता जे भविए असखेज्जेसु बेइदियावास-सयसहस्सेसु अन्नतरसि बेइदियावाससि बेइदियत्ताए उववज्जित्तए से ण भते !

तत्थगते चेव० जहा नेरइया । एव जाव अणुत्तरोववातिया ।

[७ प्र] भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर द्वीन्द्रिय जीवो के असख्येय लाख आवासो मे से किसी एक आवास मे द्वीन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! क्या वह जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है, उस आहार को परिण-माता है, और शरीर बाधता है ?

[७ उ] गौतम ! जिस प्रकार नैरयिको के लिए कहा गया, उसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवो से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवो तक सब जीवो के लिए कथन करना चाहिए ।

८ जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घातेण समोहते, २ जे भविए एव पचसु अणुत्तरेसु महति-महालएसु महाविमाणेसु अन्नयरसि अनुत्तरविमाणसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववज्जित्तए, से ण भते ।

तत्थगते चेव जाव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ छट्ठे सए छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥

[८ प्र] हे भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत हो कर महान् से महान् महाविमानरूप पच अनुत्तरविमानो मे से किसी एक अनुत्तरविमान मे अनुत्तरौपपातिक-देव रूप मे उत्पन्न होने वाला है, क्या वह जीव वहाँ जा कर ही आहार करता है, आहार को परिणमाता है और शरीर बाधता है ?

[८ उ] गौतम ! पहले कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् आहार करता है, उसे परिणमाता है और शरीर बाधता है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करते हैं ।

विवेचन—चौवीस दण्डको मे मारणान्तिकसमुद्घातसमवहत जीव की आहारादि प्ररूपणा— प्रस्तुत छह सूत्रो मे यह शका प्रस्तुत की गई है कि नारकदण्डक से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवो तक मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत होकर जिस गति—योनि मे जाना हो, तो वहाँ जाकर आहार करता है, परिणमाता है, शरीर बाधता है या और तरह से ? इसका समाधान किया गया है ।

आशय—जो जीव मारणान्तिक समुद्घात करके नरकावासादि उत्पत्तिस्थान पर जाते हैं, उस दौरान उनमे से कोई एक जीव, जो समुद्घात-काल मे ही मरणशरण हो जाता है, वह वहां जाकर वहां से अथवा समुद्घात से निवृत्त होकर वापस अपने शरीर मे आता है और दूसरी बार मारणान्तिक समुदघात करके पुन उत्पत्तिस्थान पर आता है, फिर आहारयोग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, तत्पश्चात् ग्रहण किये हुए उन पुद्गलो को पचा कर उनका खलरूप और रसरूप विभाग करता है। फिर उन पुद्गलो से शरीर की रचना करता है।

जीव लोकान्त मे जाकर उत्पत्तिस्थान के अनुसार अगुल के असख्येयभागमात्र आदि क्षेत्र मे समुद्घात द्वारा उत्पन्न होता है। यद्यपि जीव लोकाकाश के असख्येयप्रदेशो मे अवगाहन करने के स्वभाव वाला है, तथापि एकप्रदेशश्रेणी के असख्येयप्रदेशो मे उसका अवगाहन सभव नही है, क्योंकि जीव का ऐसा ही स्वभाव है। इसीलिए यहां मूलपाठ मे कहा गया है—'**एगपदेसियं सेढिं मोत्तूण**' अर्थात्—एकप्रदेशवाली श्रेणी को छोड कर।[1]

कठिन शब्दों के अर्थ—पडिनियत्तति—वापस लौटता है। **लोयंत**—लोक के अन्त मे जाकर। **पाउणिज्जा**—प्राप्त करता है।[2]

॥ छठा शतक छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचन) भा २, पृ १०३०
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्राक २७३-२७४

२ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७३

सत्तमो उद्देसओ 'साली'

सप्तम उद्देशक 'शाली'

कोठे आदि मे रखे हुए शाली आदि विविध धान्यो की योनि-स्थिति-प्ररूपणा

१ अह ण भते ! सालीण वीहीण गोधूमाण जवाण जवजवाण एतेसि ण धन्नाण कोट्ठाउत्ताण पल्लाउत्ताण मचाउत्ताण मालाउत्ताण ओलित्ताण लित्ताण पिहिताण मुद्दियाण लछियाण केवतिय काल जोणी सचिट्ठति ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण तिण्णि सवच्छराइ, तेण पर जोणी पमिलाति, तेण पर जोणी पविद्धसति, तेण पर बीए अबीए भवति, तेण पर जोणिवोच्छेदे पन्नत्ते समणाउसो ! ।

[१ प्र] भगवन् ! शालि (कमल आदि जातिसम्पन्न चावल), व्रीहि (सामान्य चावल), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ) तथा यवयव (विशिष्ट प्रकार का जौ), इत्यादि धान्य कोठे मे सुरक्षित रखे हो, बास के पल्ले (छबडे) से रखे हो, मच (मचान) पर रखे हो, माल मे डालकर रखे हो, (बर्तन मे डाल कर) गोबर से उनके मुख उल्लिप्त (विशेष प्रकार से लीपे हुए) हो, लिप्त हो, ढँके हुए हो, (मिट्टी आदि से उन बर्तनो के मुख) मुद्रित (छदित किये हुए) हो, (उनके मुह बद करके) लाछित (सील लगाकर चिह्नित) किये हुए हो, (इस प्रकार सुरक्षित किये हुए हो) तो उन (धान्यो) की योनि (अकुरोत्पत्ति मे हेतुभूत शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

[१ उ] हे गौतम ! उनकी योनि कम से कम अन्तर्मुहूर्त तक और अधिक से अधिक तीन वर्ष तक कायम रहती है । उसके पश्चात् उन (धान्यो) की योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस को प्राप्त हो जाती है, फिर वह बीज अबीज हो जाता है । इसके पश्चात् हे श्रमणायुष्मन् ! उस योनि का विच्छेद हुआ कहा जाता है ।

२ अह भते ! कलाय मसूर-तिल मुग्ग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसदग-सईण-पलिमथगमाईण एतेसि ण धन्नाण० ?

जहा सालीण तहा एयाण वि, नवर पच सवच्छराइ । सेस त चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूग, उडद, वाल (वालोर), कुलथ, आलिसदक (एक प्रकार का चौला), तुअर (सतीण—अरहर), पलिमथक (गोल चना या काला चना) इत्यादि (धान्य पूर्वोक्त रूप से कोठे आदि मे रखे हुए हो तो इन) धान्यो की (योनि कितने काल तक कायम रहती है ?)

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्य के लिए कहा, उसी प्रकार इन धान्यो के लिए भी कहना चाहिए । विशेषता इतनी ही है कि यहाँ उत्कृष्ट पाच वर्ष कहना चाहिए । शेष सारा वर्णन उसी तरह समझना चाहिए ।

३ अह भंते ! अयसि कुसु भग कोद्दव कगु-वरग रालग कोदूसग-सण-सरिसव मूलगबीयमा दीण एतेसि ण धन्नाण० ?

एताणि वि तहेव, नवर सत्त सवच्छराइ । सेस त चेव ।

[३ प्र] हे भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव (कोदो), कागणी, वरट (बटी), राल, सण, सरसो, मूलकबीज (एक जाति के शाक के बीज) आदि धान्यो की योनि कितने काल तक कायम रहती है ?

[३ उ] (हे गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्य के लिए कहा,) उसी प्रकार इन धान्यो के लिए भी कहना चाहिए । विशेषता इतनी है कि इनकी योनि उत्कृष्ट सात वर्ष तक कायम रहती है । शेष वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—कोठे आदि मे रखे हुए शाली आदि विविध धान्यो की योनि स्थिति प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे शालि आदि, कलाय आदि, तथा अलसी आदि विविध धान्यो की योनि के कायम रहने के काल का निरूपण किया गया है ।

निष्कर्ष—तीनो सूत्रो मे उल्लिखित शालि आदि धान्यो की योनि की जघन्य स्थिति अन्त मुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति शालि आदि की तीन वर्ष है, कलाय आदि द्वितीय सूत्रोक्त धान्यो की पाच वर्ष है और अलसी आदि तृतीय सूत्रोक्त धान्यो की सात वर्ष है ।

कठिन शब्दो के अर्थ—पल्लाउत्ताण—पल्य यानी बास के छबडे मे रखे हुए, मचाउत्ताण—मच पर रखे हुए, माला-उत्ताण—माल मजिल पर रखे हुए, मुद्दियाण—मुद्रित—छाप कर बद किये हुए ।[२]

मुहूर्त से लेकर शीर्ष-प्रहेलिका-पर्यन्त गणितयोग्य काल-परिमाण

४ एगमेगस्स ण भते ! मुहुत्तस्स केवतिया ऊसासद्धा वियाहिया ?

गोयमा ! असखेज्जाण समयाण समुदयसमितिसमागमेण सा एगा आवलिय त्ति पवुच्चइ, सखेज्जा आवलिया ऊसासो, सखेज्जा आवलिया निस्सासो ।

हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जतुणो ।
एगे ऊसासनीसासे, एस पाणु त्ति वुच्चति ॥१॥

सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाइ से लवे ।
लवाण सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिते ॥२॥

तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइ तेवत्तरिं च ऊसासा ।
एस मुहुत्तो दिट्ठो सव्वेहिं अणतनाणीहिं ॥३॥

[४ प्र] भगवन् ! एक-एक मुहूर्त के कितने उच्छवास कहे गये हैं ?

---

1 वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा-१, पृ २५८-२५९

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २७४

[४ उ.] गौतम ! असंख्येय समयों के समुदाय की समिति के समागम से अर्थात् असंख्यात समय मिलकर जितना काल होता है, उसे एक 'आवलिका' कहते हैं। संख्येय आवलिका का एक 'उच्छ्वास' होता है और संख्येय आवलिका का एक 'निःश्वास' होता है।

[गाथाओं का अर्थ—] हृष्टपुष्ट, वृद्धावस्था और व्याधि से रहित प्राणी का एक उच्छ्वास और एक निःश्वास—(ये दोनों मिल कर) एक 'प्राण' कहलाते हैं॥ १॥ सात प्राणों का एक 'स्तोक' होता है। सात स्तोकों का एक 'लव' होता है। ७७ लवों का एक मुहूर्त कहा गया है॥२॥ अथवा ३७७३ उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है, ऐसा समस्त अनन्तज्ञानियों ने देखा है॥३॥

५. एतेणं मुहुत्तपमाणेणं तीसमुहुत्तो अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा उऊ, तिण्णि उऊ अयणे, दो अयणा संवच्छरे, पंचसंवच्छरिए जुगे, वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससयाइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साइं वाससतसहस्सं, चउरासीतिं वाससतसहस्साणि से एगे पुव्वंगे, चउरासीतिं पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे, एवं तुडिअंगे तुडिए, अडडंगे अडडे, अववंगे अववे, हूहूअंगे हूहूए, उप्पलंगे उप्पले, पउमंगे पउमे, नलिणंगे नलिणे, अत्थनिउरंगे अत्थनिउरे, अउअंगे अउए, पउअंगे पउए य, नउअंगे नउए य, चूलिअंगे चूलिआ य, सीसपहेलिअंगे सीसपहेलिया। एताव ताव गणिए। एताव ताव गणियस्स विसए। तेण परं ओवमिए।

[५] इस मुहूर्त के अनुसार तीस मुहूर्त का एक 'अहोरात्र' होता है। पन्द्रह 'अहोरात्र' का एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षों का एक 'मास' होता है। दो 'मासों' की एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओं का एक 'अयन' होता है। दो अयन का एक 'संवत्सर' (वर्ष) होता है। पांच संवत्सर का एक 'युग' होता है। बीस युग का एक वर्षशत (सौ वर्ष) होता है। दस वर्षशत का एक 'वर्षसहस्र' (एक हजार वर्ष) होता है। सौ वर्ष सहस्रों का एक 'वर्षशतसहस्र' (एक लाख वर्ष) होता है। चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है। चौरासी लाख पूर्वांग का एक 'पूर्व' होता है। ८४ लाख पूर्व का एक त्रुटितांग होता है और ८४ लाख त्रुटितांग का एक 'त्रुटित' होता है। इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियाँ बनती हैं। वे इस प्रकार हैं—अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका। इस संख्या तक गणित है। यह गणित का विषय है। इसके बाद औपमिक काल है (उपमा का विषय है—उपमा द्वारा जाना जाता है, गणित (गणना) का नहीं)।

विवेचन—मुहूर्त से लेकर शीर्षप्रहेलिकापर्यन्त गणितयोग्य काल परिमाण—प्रस्तुत सूत्रद्वय में ४६ भेद वाले गणनीय काल का परिमाण बतलाया गया है।

गणनीय काल—जिस काल की संख्या के रूप में गणना हो सके, उसे गणनीय या गणितयोग्य काल कहते हैं। काल का सूक्ष्मतम भाग समय होता है। असंख्यात समय की एक आवलिका होती है। २५६ आवलिका का एक क्षुल्लकभवग्रहण होता है। १७ से कुछ अधिक क्षुल्लकभवग्रहण का एक उच्छ्वास निःश्वासकाल होता है। इसके आगे की संख्या स्पष्ट है। सबसे अन्तिम गणनीय काल 'शीर्षप्रहेलिका' है, और जो १९४ अंकों की संख्या है, यथा—७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९

७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इन ५४ अंकों पर १४० बिन्दियाँ लगाने से शीर्षप्रहेलिका संख्या का प्रमाण होता है। यहाँ तक का काल गणित का विषय है। इसके आगे का काल औपमिक है। अतिशय ज्ञानी के अतिरिक्त साधारण व्यक्ति उस को गिनती करके उपमा के बिना ग्रहण नहीं कर सकते, इसलिए उसे 'उपमेय' या 'औपमिक' काल कहा गया है।[1]

पल्योपम, सागरोपम आदि औपमिककाल का स्वरूप और परिमाण

६. से किं तं ओवमिए ?

ओवमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पलिओवमे य, सागरोवमे य।

[६ प्र.] भगवन् ! वह औपमिक (काल) क्या है ?

[६ उ.] गौतम ! औपमिक (काल) दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—पल्योपम और सागरोपम।

७. से किं तं पलिओवमे ? से किं तं सागरोवमे ?

सत्थेण सुतिक्खेण वि छेत्तुं भेत्तुं च जं किर न सक्का।
तं परमाणुं सिद्धा वयंति आदिं पमाणाणं ॥४॥

अणंताणं परमाणुपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया ति वा, सण्हसण्हिया ति वा, उड्ढरेणू ति वा, तसरेणू ति वा, रहरेणू ति वा, वालग्गे ति वा, लिक्खा ति वा, जूया ति वा, जवमज्झे ति वा, अंगुले ति वा। अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया, अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू, अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरु-उत्तरकुरुगाणं मणूसाणं वालग्गे, एवं हरिवास रम्मग हेमवत एरण्णवताणं पुव्वविदेहाणं मणूसाणं अट्ठ वालग्गा सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया, अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झा से एगे अंगुले, एतेणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाणि पादो, बारस अंगुलाइं विहत्थी, चउव्वीसं अंगुलाणि रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी, छण्णउतिं अंगुलाणि से एगे दंडे ति वा, धणू ति वा, जूए ति वा, नालिया ति वा, अक्खे ति वा, मुसले ति वा, एतेणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं, एतेणं जोयणप्पमाणेणं जे पल्ले जोयणं आयामविक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं तं तिउणं सविसेसं परिरएणं। से णं एगाहिय-बेयाहिय-तेयाहिय उक्कोसं सत्तरत्तप्परूढाणं ससट्ठे सन्निचिते भरिते वालग्गकोडीणं, ते णं वालग्गे नो अग्गी दहेज्जा, नो वातो हरेज्जा, नो कुत्थेज्जा, नो परिविद्धंसेज्जा, नो पूतित्ताए हव्वमागच्छेज्जा। ततो णं वाससते वाससते गते एगमेगं वालग्गं अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निम्मले निट्ठिते निल्लेवे अवहडे विसुद्धे भवति। से तं पलिओवमे। गाहा—

---

1 भगवतीसूत्र (टीकानुवाद युक्त) भा-२ पृ. १०३४-१०३६

एतेसिं पल्लाण कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
तं सागरोवमस्स उ एक्कस्स भवे परीमाणं ॥५॥

[७ प्र] भगवन्! 'पल्योपम' (काल) क्या है? तथा 'सागरोपम' (काल) क्या है?

[७ उ] हे गौतम! जो सुतीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा भी छेदा-भेदा न जा सके ऐसे परम-अणु (परमाणु) को सिद्ध (ज्ञानसिद्ध केवली) भगवान् समस्त प्रमाणों का आदिभूत प्रमाण कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणुपुद्गलों के समुदाय की समितियों के समागम से एक उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु बालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अंगुल होता है। आठ उच्छ्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका के मिलने से एक श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका के मिलने से एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु मिलने से एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं के मिलने से एक रथरेणु और आठ रथरेणुओं के मिलने से देवकुरु—उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है, तथा देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से हैमवत और ऐरावत के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से पूर्वविदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। पूर्वविदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्रों से एक लिक्षा (लीख), आठ लिक्षा से एक यूका (जूं), आठ यूका से एक यवमध्य और आठ यवमध्य से एक अंगुल होता है। इस प्रकार के छह अंगुल का एक पाद (पैर), बारह अंगुल की एक वितस्ति (बेंत), चौबीस अंगुल का एक हाथ, अड़तालीस अंगुल की एक कुक्षि, छियानवे अंगुल का दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है। दो हजार धनुष का एक गाऊ होता है और चार गाऊ का एक योजन होता है।

इस योजन के परिमाण से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा (ऊपर से ऊँचा), तिगुणी से अधिक परिधि वाला एक पल्य हो, उस पल्य में एक दिन के उगे हुए, दो दिन के उगे हुए, तीन दिन के उगे हुए, और अधिक से अधिक सात दिन के उगे हुए करोड़ों बालाग्र किनारे तक ऐसे ठूस-ठूस कर भरे हों, सन्निचित (इकट्ठे) किये हों, अत्यन्त भरे हों, कि उन बालाग्रों को अग्नि न जला सके और हवा उन्हें उड़ा कर न ले जा सके, वे बालाग्र सड़ें नहीं, न ही परिध्वस्त (नष्ट) हों, और न ही वे शीघ्र दुर्गन्धित हों। इसके पश्चात् उस पल्य में से सौ-सौ वर्ष में एक एक बालाग्र को निकाला जाए। इस क्रम से तब तक निकाला जाए, जब तक कि वह पल्य क्षीण हो, नीरज हो, निर्मल हो, निष्ठित (पूर्ण) हो जाए, निर्लेप हो, अपहृत हो और विशुद्ध (पूरी तरह खाली) हो जाए। उतने काल को एक 'पल्योपमकाल' कहते हैं। (सागरोपमकाल के परिमाण को बताने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है—) इस पल्योपम काल का जो परिमाण ऊपर बतलाया गया है, वैसे दस कोटाकोटि (गुणे) पल्योपमों का एक सागरोपम-कालपरिमाण होता है।

८. एएणं सागरोवमपमाणेणं चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा १ तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा २, दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदूसमा ३, एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसमसुसमा ४, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमा ५, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमदूसमा ६। पुणरवि उस्सप्पिणीए एक्कवीसं

वाससहस्साइं कालो दूसमदूसमा १ । एक्कवीसं वाससहस्साइं जाव[1] चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६ । दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी । दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी । वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी य उस्सप्पिणी य ।

[८] इस सागरोपम-परिमाण के अनुसार (अवसर्पिणीकाल में) चार कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषम-सुषमा आरा होता है, तीन कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषमा आरा होता है, दो कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक सुषमदुःषमा आरा होता है, बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक दुःषमसुषमा आरा होता है, इक्कीस हजार वर्ष का एक दुःषम आरा होता है और इक्कीस हजार वर्ष का एक दुःषमदुःषमा आरा होता है।

इसी प्रकार उत्सर्पिणीकाल में पुनः इक्कीस हजार वर्ष परिमित काल का प्रथम दुःषमदुःषमा आरा होता है। इक्कीस हजार वर्ष का द्वितीय दुःषम आरा होता है, बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम-काल का तीसरा दुःषम-सुषमा आरा होता है, दो कोटाकोटि सागरोपम-काल का चौथा सुषम-दुःषमा आरा होता है। तीन कोटाकोटि सागरोपम-काल का पांचवां सुषम आरा होता है और चार कोटाकोटि सागरोपम-काल का छठा सुषम-सुषमा आरा होता है।

इस प्रकार (कुल) दस कोटाकोटि सागरोपम-काल का एक अवसर्पिणीकाल होता है और दस कोटाकोटि सागरोपम-काल का ही उत्सर्पिणीकाल होता है। यों बीस कोटाकोटि सागरोपमकाल का एक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-कालचक्र होता है।

विवेचन—औपमिककाल का परिमाण—प्रस्तुत दो सूत्रों में से प्रथमसूत्र में पल्योपम एवं सागरोपम काल का परिमाण तथा द्वितीय सूत्र में अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी रूप द्वादश आरे सहित कालचक्र का परिमाण बताया गया है।

पल्योपम का स्वरूप और प्रकार—यहाँ जो पल्योपम का स्वरूप बतलाया गया है, वह व्यवहार अद्धापल्योपम का स्वरूप बताया गया है। पल्योपम के मुख्य तीन भेद हैं—(१) उद्धार पल्योपम, (२) अद्धापल्योपम और (३) क्षेत्रपल्योपम। उद्धारपल्योपम आदि के प्रत्येक के दो प्रकार हैं—व्यवहार उद्धारपल्योपम एवं सूक्ष्म उद्धारपल्योपम, व्यवहार अद्धापल्योपम एवं सूक्ष्म अद्धापल्योपम, तथा व्यवहार क्षेत्रपल्योपम एवं सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम।

उद्धारपल्योपम—उत्सेधांगुल परिमाण से एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े और एक योजन ऊँचे—गहरे गोलाकार कुए में देवकुरु-उत्तरकुरु के यौगलिकों के मुण्डित मस्तक पर एक दिन के, दो दिन के यावत् ७ दिन के उगे हुए करोड़ों बालाग्रों से उस कूप को या ठूस-ठूस कर भरा जाए कि वे बालाग्र न तो आग से जल सकें और न ही हवा से उड़ सकें। फिर उनमें से प्रत्येक को एक-एक समय में निकालते हुए जितने समय में वह कुआ सर्वथा खाली हो जाए, उस कालमान को 'व्यावहारिक उद्धारपल्योपम' कहते हैं। यह पल्योपम संख्यात समयपरिमित होता है। इसी तरह उक्त बालाग्र के असंख्यात अदृश्य खण्ड किए जाएँ, जो कि विशुद्ध नेत्र वाले छद्मस्थ पुरुष के दृष्टि-गोचर होने वाले सूक्ष्म पुद्गलद्रव्य के असंख्यातवें भाग एवं सूक्ष्म पनक के शरीर से असंख्यातगुणा

---

१ 'जाव' पद यहाँ अवसर्पिणीकाल की गणना की तरह ही उत्सर्पिणीकाल-गणना का बोधक है।

हो। उन सूक्ष्म बालाग्रखण्डो से वह कूप ठूस-ठूस कर भरा जाए और उनमे से एक-एक बालाग्रखण्ड प्रतिसमय निकाला जाये। यो निकालते निकालते जितने काल मे वह कुआ खाली हो जाएँ, उसे 'सूक्ष्म उद्धारपल्योपम' कहते हैं। इसमे सख्यातवर्षकोटिपरिमित काल होता है।

अद्धापल्योपम—उपर्युक्त रीति से भरे हुए उपर्युक्त परिमाण वाले कूप मे से एक-एक बालाग्र सौ-सौ वर्ष मे निकाला जाए। इस प्रकार निकालते निकालते जितने काल मे वह कुआ सर्वथा खाली हो जाए, उसे 'व्यवहार अद्धापल्योपम' कहते हैं। यह अनेक सख्यातवर्षकोटिप्रमाण होता है। यदि यही कुआ उपर्युक्त सूक्ष्म बालाग्रखण्डो से भरा हो और उनमे से प्रत्येक बालाग्रखण्ड को सौ-सौ वर्ष मे निकालते-निकालते जितने काल मे यह कुआ खाली हो जाए, उसे 'सूक्ष्म अद्धापल्योपम' कहते हैं। इसमे असख्यातवर्षकोटिप्रमाण काल होता है।

क्षेत्रपल्योपम—उपर्युक्त परिमाण का कूप उपर्युक्त रीति से बालाग्रो से भरा हो, उन बालाग्रो को जितने आकाशप्रदेश स्पर्श किये हुए हैं, उन स्पर्श किये हुए आकाशप्रदेशो मे से प्रत्येक को (बौद्धिक कल्पना से) प्रति समय निकाला जाए। इस प्रकार उन छुए हुए आकाशप्रदेशो को निकालने मे जितना समय लगे वह 'व्यवहार क्षेत्रपल्योपम' है। इसमें असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीपरिमाण काल होता है। यदि यही कुआ बालाग्र के सूक्ष्मखण्डो से ठूस-ठूस कर भरा जाए, तथा उन बालाग्रखण्डो से छुए हुए एव नही छुए हुए सभी आकाशप्रदेशो मे से प्रत्येक आकाशप्रदेश को प्रतिसमय निकालते हुए सभी को निकालने मे जितना काल लगे, वह 'सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम' है। इसमे भी असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीपरिमाणकाल होता है, किन्तु इसका काल व्यवहार क्षेत्रपल्योपम से असख्यात गुणा है।

सागरोपम के प्रकार—पल्योपम की तरह सागरोपम के तीन भेद हैं और प्रत्येक भेद के दो-दो प्रकार हैं।

उद्धारसागरोपम—के दो भेद हैं—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोटाकोटि व्यवहार उद्धारपल्योपम का एक 'व्यवहार उद्धारसागरोपम' होता है। दस कोटाकोटि सूक्ष्म उद्धारपल्योपम का एक 'सूक्ष्म उद्धारसागरोपम' होता है। ढाई सूक्ष्म उद्धारसागरोपम या २५ कोडाकोडी सूक्ष्म उद्धारपल्योपम मे जितने समय होते हैं, उतने ही लोक मे द्वीप और समुद्र हैं।

अद्धासागरोपम के भी दो भेद हैं—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोडाकोडी व्यवहार अद्धापल्योपम का एक 'व्यवहार अद्धासागरोपम' होता है और दस कोडाकोडी सूक्ष्म अद्धापल्योपम का एक 'सूक्ष्म अद्धासागरोपम' होता है जीवो की कर्मस्थिति, कायस्थिति और भवस्थिति तथा आरो का परिमाण सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से मापा जाता है।

क्षेत्रसागरोपम के भी दो भेद हैं—व्यवहार और सूक्ष्म। दस कोडाकोडी व्यवहार क्षेत्रपल्योपम का एक 'व्यवहार क्षेत्रसागरोपम' होता है, और दस कोडाकोडी सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का एक 'सूक्ष्म सागरोपम' होता है। सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम एव सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम से दृष्टिवाद मे उक्त द्रव्य मापे जाते हैं।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७३
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचनायुक्त) भाग-२, १०४०-१०४१

सुषमसुषमाकालीन भारतवर्ष के भाव-आविर्भाव का निरूपण

९. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए उत्तमट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे होत्था ?

गोतमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहानामए आलिंगपुक्खरे ति वा, एवं उत्तरकुरुवत्तव्वया[1] नेयव्वा जाव आसयंति सयंति । तोसे णं समाए भारहे वासे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे उराला कुद्दाला जाव[2] कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव छव्विहा मणूसा अणुसज्जित्था, तं०—पम्हगंधा १ मियगंधा २ अममा ३ तेयली ४ सहा ५ सणिचारी ६ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ छट्ठे सए सत्तमो सालिउद्देसो समत्तो ॥

[९ प्र.] भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्तमार्थ-प्राप्त इस अवसर्पिणीकाल के सुषम-सुषमा नामक आरे में भरतक्षेत्र (भारतवर्ष) के आकार (आचार-) भाव प्रत्यवतार (आचारों और पदार्थों के भाव-पर्याय-अवस्था) किस प्रकार के थे ?

[९ उ.] गौतम ! (उस समय) भूमिभाग बहुत सम होने से अत्यन्त रमणीय था। जैसे कोई मुरज (आलिंग-तबला) नामक वाद्य का चर्ममण्डित मुखपट हो, वैसा बहुत ही सम भरतक्षेत्र का भूभाग था। इस प्रकार उस समय के भरतक्षेत्र के लिए उत्तरकुरु की वक्तव्यता के समान, यावत् बैठते हैं, सोते हैं, यहाँ तक वक्तव्यता कहनी चाहिए। उस काल (अवसर्पिणी के प्रथम आरे) में भारतवर्ष में उन-उन देशों के उन-उन स्थलों में उदार (प्रधान) एवं कुद्दालक यावत् कुश और विकुश से विशुद्ध वृक्षमूल थे, यावत् छह प्रकार के मनुष्य थे। यथा—(१) पद्मगन्ध वाले, (२) मृग (कस्तूरी के समान) गन्ध वाले, (३) अमम (ममत्वरहित), (४) तेजतली (तेजस्वी एवं रूपवान्), (५) सहा (सहनशील) और शनैश्चर (उत्सुकतारहित होने से धीरे-धीरे गजगति से चलने वाले) थे।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यों कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरने लगे।

---

१ जीवाजीवाभिगम सूत्र में उक्त उत्तरकुरुवक्तव्यता इस प्रकार है—'मुइंगपुक्खरे इ वा, सरतले इ वा-सरस्तले इत्यर्थः एवं, करतले इ वा-करतलं करः एव, इत्यादीति। एवं भूमिसमतायाः भूमिभागगततृण मणीनां वर्णपञ्चकस्य, सुरभिगन्धस्य, मृदुस्पर्शस्य, शुभशब्दस्य, वाप्यादीनां वाप्याद्यनुगतोत्पातपर्वतादीनामुत्पातपर्वताद्याश्रितानां हंसासनादीनां लतागृहादीनां शिलापट्टकादीनां च वर्णको वाच्य'। तदन्ते चैतद् दृश्यम-तत्थ णं बहवे भारया मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति निसीयंति तुयट्टंति। इत्यादि'—जीवाभिगम वृत्ति।

२ 'जाव' शब्द से कयमाला नट्टमाला इत्यादि तथा वृक्षों के नाम—'उद्दाला कोद्दाला मोद्दाला कृतमाला नृत्तमाला वृत्तमाला दन्तमाला श्रृङ्गमाला शङ्खमाला श्वेतमाला नाम द्रुमगणा" समझ लें। (पत्र २६४-२)। जाव शब्द मूलमंतो कंदमंतो इत्यादि का सूचक है।

विवेचन—सुषमसुषमाकालीन भारतवर्ष के जीवों अजीवों के भाव-निरूपण—प्रस्तुत सूत्र में सुषमसुषमा नामक अवसर्पिणीकालिक प्रथम आरे में मनुष्यों एवं पदार्थों की उत्कृष्टता का वर्णन किया गया है।[1]

कठिन शब्द—उत्तमट्ठपत्ताए—आयुष्यादि उत्तम अवस्था को प्राप्त। तेयंसि—तेजवाले और रूप वाले।

॥ छठा शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्रांक २७७-२७८

(ख) जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३ उत्तरकुरुवर्णन पृ. २६३ से २८४ तक

अट्ठमो उद्देसओ : 'पुढवी'

अष्टम उद्देशक : 'पृथ्वी'

रत्नप्रभादि पृथ्वियो तथा सर्वदेवलोको मे गृह–ग्राम-मेघादि के अस्तित्व और कर्तृत्व की प्ररूपणा

१ कइ ण भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा जाव ईसीपब्भारा ।

[१ प्र] भगवन् ! कितनी पृथ्वियाँ कही गई हैं ?

[१ उ] गौतम ! आठ पृथ्वियाँ कही गई हैं। वे इस प्रकार—(१) रत्नप्रभा यावत् (२) शर्करा प्रभा, (३) वालुकाप्रभा, (४) पकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तम प्रभा, (७) महातम प्रभा (८) ईषत्प्राग्भारा ।

२ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा ति वा गेहावणा ति वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे गृह (घर) अथवा गृहापण (दुकानें) हैं ?

[२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । (अर्थात्—रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे गृह या गृहापण नही हैं ।)

३ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे गामा ति वा जाव सन्निवेसा ति वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[३ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे ग्राम यावत सन्निवेश है ?

[३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । (अर्थात्—रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश नही हैं ।)

४ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उराला बलाहया ससेयति, सम्मुच्छति, वास वासति ?

हता, अत्थि ।

[४ प्र] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे महान् (उदार) मेघ सस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छिन होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

[४ उ] हाँ गौतम ! (वहाँ महामेघ सस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा भी बरसाते) हैं ।

५ तिण्णि वि पकरेंति—देवो वि पकरेति, असुरो वि प०, नागो वि प०।

[५] ये सब कार्य (महामेघों को संस्वेदित एवं सम्मूर्च्छिम करने तथा वर्षा बरसाने का कार्य) ये तीनों करते हैं—देव भी करते हैं, असुर भी करते हैं और नाग भी करते हैं।

६ अत्थि णं भंते ! इमीसे रयण० बादरे थणियसद्दे ?

हंता, अत्थि।

[६ प्र.] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी में बादर (स्थूल) स्तनितशब्द (मेघगर्जना की आवाज) है ?

७ तिण्णि वि पकरेंति।

[६-७ उ.] हाँ, गौतम ! बादर स्तनितशब्द है, जिसे (उपर्युक्त) तीनों ही करते हैं।

८ अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे बादरे अगणिकाए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं।

[८ प्र.] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे बादर अग्निकाय है ?

[८ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रहगतिसमापन्नक जीवों के सिवाय (दूसरे जीवों के लिए समझना चाहिए।)

९ अत्थि णं भंते ! इमीसे रयण० अहे चंदिम जाव तारारूवा ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

[९ प्र.] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे क्या चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा-रूप हैं ?

[९ उ.] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१० अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चंदाभा ति वा २।

णो इणट्ठे समट्ठे।

[१० प्र.] भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी में चन्द्राभा (चन्द्रमा का प्रकाश), सूर्याभा (सूर्य का प्रकाश) आदि हैं ?

[१० उ.] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नहीं है।

११ एवं दोच्चाए वि पुढवीए भाणियव्वं।

[११] इसी प्रकार (पूर्वोक्त सभी बातें) दूसरी पृथ्वी (शर्कराप्रभा) के लिए भी कहना चाहिए।

१२ एवं तच्चाए वि भाणियव्वं, नवरं देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, णो णागो पकरेति।

[१२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त सब बातें) तीसरी पृथ्वी (बालुकाप्रभा) के लिए भी कहना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ देव भी (ये सब) करते हैं, असुर भी करते हैं, किन्तु नाग (कुमार) नहीं करते।

१३ चउत्थीए वि एवं, नवरं देवो एक्को पकरेति, नो असुरो०, नो नागो पकरेति।

[१३] चौथी पृथ्वी में भी इसी प्रकार सब बातें कहनी चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ देव ही अकेले (यह सब) करते हैं, किन्तु असुर और नाग नहीं करते।

१४ एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को पकरेति।

[१४] इसी प्रकार नीचे की सब (पांचवीं, छठी और सातवीं) पृथ्वियों में केवल देव ही (यह सब कार्य) करते हैं, (असुरकुमार और नागकुमार नहीं करते।)

१५ अत्थि णं भंते! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे गेहा इ वा २?

नो इणट्ठे समट्ठे।

[१५ प्र] भगवन्! क्या सौधर्म और ईशान कल्पों (देवलोकों) के नीचे गृह अथवा गृहापण हैं?

[१५ उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

१६ अत्थि णं भंते! ० उराला बलाहया?

हंता, अत्थि।

[१६ प्र] भगवन्! क्या सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे महामेघ (उदार बलाहक) हैं?

[१६ उ] हाँ, गौतम! (वहाँ महामेघ) हैं।

१७ देवो पकरेति, असुरो वि पकरेइ, नो नाओ पकरेइ।

[१७] (सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे पूर्वोक्त सब कार्य (बादलों का छाना, मेघ उमडना, वर्षा बरसाना आदि) देव करते हैं, असुर भी करते हैं, किन्तु नागकुमार नहीं करते।

१८ एवं थणियसद्दे वि।

[१८] इसी प्रकार वहाँ स्तनितशब्द के लिए भी कहना चाहिए।

१९ अत्थि णं भंते! ० बादरे पुढविकाए, बादरे अगणिकाए?

नो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं।

[१९ प्र] भगवन्! क्या वहाँ (सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे) बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय है?

[१९ उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। यह निषेध विग्रहगतिसमापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए जानना चाहिए।

२० अत्थि णं भंते ! चंदिम० ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२० प्र] भगवन् ! क्या वहां चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

[२० उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

२१ अत्थि णं भंते ! गामाइ वा० ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१ प्र] भगवन् ! क्या वहां ग्राम यावत् सन्निवेश है ?

[२१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

२२ अत्थि णं भंते ! चंदाभा ति वा २ ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२२ प्र] भगवन् ! क्या वहां चन्द्राभा, सूर्याभा आदि हैं ?

[२२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

२३ एवं सणंकुमार-माहिंदेसु, नवरं देवो एगो पकरेति ।

[२३] इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकों में भी कहना चाहिए । विशेष यह है कि वहां (यह सब) केवल देव ही करते हैं ।

२४ एवं बंभलोए वि ।

[२४] इसी प्रकार ब्रह्मलोक (पंचम देवलोक) में भी कहना चाहिए ।

२५ एवं बंभलोगस्स उवरिं सव्वहिं देवो पकरेति ।

[२५] इसी तरह ब्रह्मलोक से ऊपर (पंच अनुत्तरविमान देवलोक तक) सबस्थलों में पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए । इन सब स्थानों में केवल देव ही (पूर्वोक्त कार्य) करते हैं ।

२६ पुच्छियव्वे य बादरे आउकाए, बादरे तेउकाए, बायरे वणस्सतिकाए । अन्नं तं चेव । गाहा—

> तमुकाए कप्पपणए अगणी पुढवी य, अगणि पुढवीसु ।
> आऊ-तेउ-वणस्सति कप्पुवरिम-कण्हराईसु ॥१॥

[२६ प्र उ] इन सब स्थलों में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय के विषय में प्रश्न (पृच्छा) करना चाहिए । उनका उत्तर भी पूर्ववत् कहना चाहिए । अन्य सब बातें पूर्ववत् कहनी चाहिए ।

[गाथा का अर्थ—] तमस्काय में और पांच देवलोकों तक में अग्निकाय और पृथ्वीकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए । रत्नप्रभा आदि नरकपृथ्वियों में अग्निकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करना

चाहिए। इसी तरह पचम कल्प—देवलोक से ऊपर सब स्थानो मे तथा कृष्णराजियो मे अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध मे प्रश्न करना चाहिए।

विवेचन—रत्नप्रभादि पृथ्वियो तथा सर्व देवलोको मे गृह-ग्राम-मेघादि के अस्तित्व आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत २६ सूत्रों मे रत्नप्रभादि सातो पृथ्वियो तथा सौधर्मादि सब देवलोको के नीचे तथा परिपार्श्व मे गृह, गृहापण, महामेघ, वर्षा, मेघगर्जन, बादर अग्निकाय, चन्द्रादि पाचो ज्योतिष्क, चन्द्र-सूर्याभा, बादर अप्काय, बादर पृथ्वीकाय, बादर वनस्पतिकाय आदि के अस्तित्व एव वर्षादि के कर्तृत्व से सम्बन्धित विचारणा की गई है।

वायुकाय, अग्निकाय आदि का अस्तित्व कहाँ है, कहाँ नहीं?—रत्नप्रभादि पृथ्वियो के नीचे बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय नही है, किन्तु वहाँ घनोदधि आदि होने से अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय है। सौधर्म, ईशान आदि देवलोको मे बादर पृथ्वीकाय नही है, क्योकि वहाँ उसका स्वस्थान न होने से उत्पत्ति नही है तथा सौधर्म, ईशान उदधिप्रतिष्ठित होने से वहाँ बादर अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का सद्भाव है। इसी तरह सनत्कुमार और माहेन्द्र मे तमस्काय होने से वहाँ बादर अप्काय और वनस्पतिकाय का होना सुसगत है। तमस्काय मे और पाचवें देवलोक तक बादर अग्निकाय और बादर पृथ्वीकाय का अस्तित्व नही है। शेष तीन का सद्भाव है। बारहवें देवलोक तक इसी तरह जान लेना चाहिए। पाचवें देवलोक से ऊपर के स्थानो मे तथा कृष्णराजियो मे भी बादर अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय का सद्भाव नही है, क्योकि उनके नीचे वायुकाय का ही सद्भाव है।

महामेघ-सस्वेदन-वर्षणादि कहा, कौन करते हैं? दूसरी पृथ्वी की सीमा से आगे नागकुमार नही जाते, तथा तीसरी पृथ्वी की सीमा से आगे असुरकुमार नही जाते, इसलिए दूसरी नरकपृथ्वी के नीचे तक महामेघ-सस्वेदन-वर्षण-गर्जन आदि सब कार्य देव और असुरकुमार करते हैं, तथा चौथी पृथ्वी के नीचे-नीचे सब कार्य केवल देव ही करते हैं। सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे तक तो चमरेन्द्र की तरह असुरकुमार जा सकते है, किन्तु नागकुमार नही जा सकते, इसलिए इन दो देवलोको के नीचे देव और असुरकुमार ही करते हैं, इससे आगे सनत्कुमार से अच्युत देवलोक तक मे केवल देव ही करते हैं। इससे आगे देव की जाने की शक्ति नही है और न ही वहाँ मेघ आदि का सद्भाव है।[1]

जीवो के आयुष्यबन्ध के प्रकार एव जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डकों की चौबीस दण्डकीय जीवो मे प्ररूपणा

२७ कतिविहे ण भते! आउयबधे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे आउयबधे पण्णत्ते, त जहा—जातिनामनिहत्ताउए गतिनामनिहत्ताउए ठितिनामनिहत्ताउए ओगाहणानामनिहत्ताउए पदेसनामनिहत्ताउए अणुभागनामनिहत्ताउए।

---

१ (क) भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्राक २७९

(ख) भगवतीसूत्र (टीकानुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड २, पृ ३२९

(ग) तत्त्वार्थसूत्र अ ३ सू १ से ६ तक भाष्यसहित, पृ ६४ से ७८ तक

(घ) सूत्रकृताग श्रु-१, अ-५, निरयविभक्ति

[२७ प्र] भगवन् ! आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२७ उ] गौतम ! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार (१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभागनामनिधत्तायु।

२८ एवं दंडओ[1] जाव वेमाणियाणं।

[२८] यावत् वैमानिकों तक दण्डक कहना चाहिए।

२९ जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिहत्ता गतिनामनिहत्ता जाव अणुभागनामनिहत्ता ?

गोतमा ! जातिनामनिहत्ता वि जाव[2] अणुभागनामनिहत्ता वि।

[२९ प्र] भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त हैं ? गतिनामनिधत्त हैं ? यावत् अनुभागनामनिधत्त हैं ?

[२९ उ] गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्त भी हैं।

३० दंडओ जाव वेमाणियाणं।

[३०] यह दण्डक यावत वैमानिक तक कहना चाहिए।

३१ जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिहत्ताउया जाव अणुभागनामनिहत्ताउया ?

गोयमा ! जातिनामनिहत्ताउया वि जाव अणुभागनामनिहत्ताउया वि।

[३१ प्र] भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्तायुष्क हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्तायुष्क हैं ?

[३१ उ] गौतम ! जीव जातिनामनिधत्तायुष्क भी हैं, यावत अनुभागनामनिधत्तायुष्क भी हैं।

३२ दंडओ जाव वेमाणियाणं।

[३२] यह दण्डक यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

३३ एवमेए दुवालस दंडगा भाणियव्वा—जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिहत्ता १, जातिनामनिहत्ताउया० २, जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिउत्ता ३, जातिनामनिउत्ताउया० ४, जातिगोयनिहत्ता ५, जातिगोयनिहत्ताउया ६, जातिगोत्तनिउत्ता ७, जातिगोत्तनिउत्ताउया ८, जातिणामगोत्तनिहत्ता ९ जातिणामगोयनिहत्ताउया १०, जातिणामगोयनिउत्ता ११, जीवा णं भंते ! किं जातिनामगोत्तनिउत्ताउया जाव अणुभागनामगोत्तनिउत्ताउया १२ ?

गोतमा ! जातिनामगोयनिउत्ताउया वि जाव अणुभागनामगोत्तनिउत्ताउया वि।

---

१ 'जाव' पद से नरयिक से लेकर वैमानिकपर्यन्त दण्डक समझें।

२ 'जाव' पद से 'ठिति-ओगाहणा-पएस' आदि पद 'निहत्त' पदान्त समझने चाहिए।

[३३ प्र] इस प्रकार ये बारह दण्डक कहने चाहिए -

[प्र] भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त हैं ? जातिनामनिधत्तायु है ?, क्या जीव, जातिनामनियुक्त हैं ?, जातिनामनियुक्तायु हैं ?, जातिगोत्रनिधत्त हैं ?' जातिगोत्रनिधत्तायु हैं ?, जातिगोत्रनियुक्त हैं ?, जातिगोत्रनियुक्तायु हैं ?, जातिनामगोत्र निधत्त हैं ?, जातिनामगोत्रनिधत्तायु हैं ?, भगवन् ! क्या जीव जातिनामगोत्रनियुक्तायु हैं ? यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु हैं ?

[३३ उ] गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु भी हैं।

३४ दण्डओ जाव वेमाणियाण।

[३४] यह दण्डक यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए।

विवेचन—जीवो के आयुष्यबन्ध के प्रकार एव जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डको की चौवीस दण्डकीय जीवो मे प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू २७ से ३४ तक) मे जीवो के आयुष्यबन्ध के ६ प्रकार तथा चौवीस ही दण्डक के जीवो मे जातिनामनिधत्तादि बारह दण्डको—आलापको की प्ररूपणा की गई है।

षड्विध आयुष्यबन्ध की व्याख्या– (१) **जातिनामनिधत्तायु**—एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक पाच प्रकार की जाति है, तद्रूप जो नाम (अर्थात् जातिनाम रूप नामकर्म की एक उत्तर-प्रकृति अथवा जीव का एक प्रकार का परिणाम), वह जातिनाम है। उसके साथ निधत्त (निषिक्त या निषेक को—प्रतिसमय अनुभव मे आने के लिए कर्मपुद्गलो की रचना को—प्राप्त) जो आयु, उसे जातिनामनिधत्तायु कहते हैं। (२) **गतिनामनिधत्तायु** एव (३) **स्थितिनामनिधत्तायु**—नरयिक आदि चार प्रकार की 'गति' कहलाती है। अमुक भव मे विवक्षित समय तक जीव का रहना 'स्थिति' कहलाती है। इस रूप आयु को क्रमश 'गतिनामनिधत्तायु' और 'स्थितिनामनिधत्तायु' कहते हैं। अथवा प्रस्तुत सूत्र मे जातिनाम, गतिनाम और अवगाहननाम का ग्रहण करने से केवल जाति, गति और अवगाहनारूप नामकर्मप्रकृति का कथन किया गया है तथा स्थिति, प्रदेश और अनुभाग का ग्रहण होने से पूर्वोक्त प्रकृतियो की स्थिति आदि कही गई है। यह स्थिति जात्यादिनाम से सम्बन्धित होने से नामकर्म रूप ही कहलाती है। इसलिए यहाँ सर्वत्र 'नाम' का अर्थ 'नामकर्म' ही घटित होता है, अर्थात्—स्थितिरूप नाम-कर्म जो हो, वह **'स्थितिनाम'** उसके साथ जो निधत्तायु, उसे **'स्थितिनामनिधत्तायु'** कहते हैं। (४) **अवगाहननामनिधत्तायु**—जीव जिसमे अवगाहित होता—रहता—है, उसे 'अवगाहना' कहते हैं, वह है—औदारिक आदि शरीर। उसका नाम—अवगाहननाम, अथवा अवगाहनारूप जो परिणाम। उसके साथ निधत्तायु **'अवगाहननामनिधत्तायु'** कहलाती है। (५) **प्रदेशनामनिधत्तायु**—प्रदेशो का अथवा आयुष्यकर्म के द्रव्यो का उस प्रकार का नाम—परिणमन, वह प्रदेशनाम, अथवा प्रदेशरूप एक प्रकार का नामकर्म, वह है—प्रदेशनाम, उसके साथ निधत्तायु, **'प्रदेशनामनिधत्तायु'** कहलाती है। (६) **अनुभागनामनिधत्तायु**—अनुभाग अर्थात् आयुष्यकर्म के द्रव्यो का विपाक, तद्रूप जो नाम (परिणाम), वह है—अनुभागनाम अथवा अनुभागरूप जो नामकर्म वह है—अनुभागनाम। उसके साथ निधत्त जो आयु वह **'अनुभागनामनिधत्तायु'** कहलाती है।

आयुष्य जात्यादिनामकर्म से विशेषित क्यों ?—यहाँ आयुष्यबन्ध को विशेष्य और जात्यादि नामकर्म को विशेषण रूप से व्यक्त किया गया है, उसका कारण यह है कि जब नारकादि आयुष्य

का उदय होता है, तभी जात्यादि नामकर्म का उदय होता है। अकेला आयुकर्म ही नैरयिक आदि का भवोपग्राहक है। इसीलिए यहाँ आयुष्य की प्रधानता बताई गई है।

आयुष्य और बंध दोनों में अभेद—यद्यपि प्रश्न यहाँ आयुष्यबंध के प्रकार के विषय में है, किन्तु उत्तर है - आयुष्य के प्रकार का, तथापि आयुष्यबंध इन दोनों में अव्यतिरेक—अभेदरूप है। जो बंधा हुआ हो, वही आयुष्य, इस प्रकार के व्यवहार के कारण यहाँ आयुष्य के साथ बंध का भाव सम्मिलित है।

नामकर्म से विशेषित १२ दण्डकों की व्याख्या—(१) **जातिनामनिधत्त आदि**—जिन जीवों ने जातिनाम निषिक्त किया है अथवा विशिष्ट बंधवाला किया है, वे जीव 'जातिनामनिधत्त' कहलाते हैं। इसी प्रकार गतिनामनिधत्त, स्थितिनामनिधत्त, अवगाहनानामनिधत्त, प्रदेशनामनिधत्त, और अनुभागनामनिधत्त, इन सबकी व्याख्या जान लेनी चाहिए। (२) **जातिनामनिधत्तायु**—जिन जीवों ने जातिनाम के साथ आयुष्य को निधत्त किया है, उन्हें 'जातिनामनिधत्तायु' कहते हैं। इसी तरह दूसरे पदों का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। (३) **जातिनामनियुक्त**—जिन जीवों ने जातिनाम को नियुक्त (सम्बद्ध—निकाचित) किया है, अथवा वेदन प्रारम्भ किया है, वे। इसी तरह दूसरे पदों का अर्थ जान लेना चाहिए। (४) **जातिनामनियुक्त-आयु**—जिन जीवों ने जातिनाम के साथ आयुष्य नियुक्त किया है, अथवा उसका वेदन प्रारम्भ किया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिए। (५) **जातिगोत्रनिधत्त**—जिन जीवों ने एकेन्द्रियादिरूप जाति तथा गोत्र—एकेन्द्रियादि जाति के योग्य नीचगोत्रादि को निधत्त किया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदों का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। (६) ***जातिगोत्रनिधत्तायु**—जिन जीवों ने जाति और गोत्र के साथ आयुष्य को निधत्त* किया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदों का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। (७) **जातिगोत्रनियुक्त**—जिन जीवों ने जाति और गोत्र को नियुक्त किया है, वे। (८) **जातिगोत्रनियुक्तायु**—जिन जीवों ने जाति और गोत्र के साथ आयुष्य को नियुक्त कर लिया है, वे। इसी तरह अन्य पदों का अर्थ भी समझ लें। (९) **जातिनाम-गोत्र निधत्त**—जिन जीवों ने जाति, नाम और गोत्र को निधत्त किया है, वे। इसी प्रकार दूसरे पदों का अर्थ भी जान लें। (१०) **जाति-नाम-गोत्रनिधत्तायु**—जिन जीवों ने जाति नाम और गोत्र के साथ आयुष्य को निधत्त कर लिया है, वे। इसी प्रकार अन्य पदों का अर्थ भी जान लेना चाहिए (११) **जाति-नाम-गोत्र नियुक्त**—जिन जीवों ने जाति, नाम और गोत्र को नियुक्त किया है वे। इसी प्रकार दूसरे पदों का अर्थ भी समझ लें। (१२) **जाति नाम-गोत्र नियुक्तायु**—जिन जीवों ने जाति, नाम और गोत्र के साथ आयुष्य को नियुक्त किया है वे। इसी तरह अन्य पदों का अर्थ भी समझ लेना चाहिए।[1]

लवणादि असंख्यात-द्वीप-समुद्रों का स्वरूप और प्रमाण

३५. लवणे णं भंते ! समुद्दे किं उस्सिओदए, पत्थडोदए, खुभियजले, अखुभियजले ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे उस्सिओदए, नो पत्थडोदए, खुभियजले, नो अखुभियजले। एत्तो

---

१ (क) भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २८०-२८१

(ख) भगवती० (हिन्दीविवेचन) भा-२, पृ. १०२३ से १०२६ तक।

आढत्त जहा जीवाजीवाभिगमे जाव[1] से तेण० गोयमा ! बाहिरया ण दीव-समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठति, सठाणतो एगविहिविहाणा, वित्थरओ अणेगविहिविहाणा, दुगुणा दुगुणप्पमाणतो जाव अस्सि तिरियलोए असखेज्जा दीव समुद्दा सयभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[३५ प्र] भगवन् ! क्या लवणसमुद्र, उच्छ्रितोदक (उछलते हुए जल वाला) है, प्रस्तृतोदक (सम जलवाला) है, क्षुब्ध जल वाला है अथवा अक्षुब्ध जल वाला है ?

[३५ उ] गौतम ! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक है, किन्तु प्रस्तृतोदक नही है, वह क्षुब्ध जल वाला है, किन्तु अक्षुब्ध जलवाला नही है । यहां से प्रारम्भ करके जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र मे कहा है, इसी प्रकार से जान लेना चाहिए, यावत् इस कारण, हे गौतम ! बाहर के (द्वीप-) समुद्र पूर्ण, पूर्णप्रमाण वाले, छलाछल भरे हुए, छलकते हुए और समभर घट के रूप मे, (अर्थात्—परिपूर्ण भरे हुए घडे के समान), तथा सस्थान से एक ही तरह के स्वरूप वाले, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले है, द्विगुण द्विगुण विस्तार वाले हैं, (अर्थात्—अपने पूर्ववर्ती द्वीप से दुगुन प्रमाण वाले हैं) यावत इस तिर्यक्लोक मे असख्येय द्वीप-समुद्र है । सबसे अन्त मे 'स्वयम्भूरमण-समुद्र' है । हे श्रमणायुष्मन् ! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गए है ।

विवेचन– लवणादि असख्यात द्वीप-समुद्रों का स्वरूप और प्रमाण—प्रस्तुत सूत्र मे लवणसमुद्र से लेकर असख्य द्वीपो एव समुद्रो के स्वरूप एव प्रमाण का निरूपण किया गया है ।

लवणसमुद्र का स्वरूप—लवणसमुद्र की जलवृद्धि ऊर्ध्वदिशा मे १६००० योजन से कुछ अधिक होती है, इसलिए यह उछलते हुए जल वाला है, समजल वाला (प्रस्तृतोदक) नही तथा उसमे महापातालकलशो मे रही हुई वायु के क्षोभ से वेला (ज्वार) आती है, इस कारण लवणसमुद्र का पानी क्षुब्ध होता है अतएव वह अक्षुब्धजल वाला नही है ।[2]

अढाई द्वीप और दो समुद्रा से बाहर के समुद्र—बाहर के समुद्रो के वर्णन के लिए मूलपाठ मे जीवाजीवाभिगमसूत्र का निर्देश किया है । सक्षेप मे, वे समुद्र क्षुब्धजल वाले नही, अक्षुब्धजल वाले हैं, तथा वे उछलते हुए जल वाले नही, अपितु समजल वाले हैं, पूर्ण, पूर्णप्रमाण, यावत् पूर्ण भरे हुए घडे के समान है । लवणसमुद्र मे महामेघ सस्वेदित, सम्मूच्छित होते हैं, वर्षा बरसाते हैं, किन्तु बाहर के समुद्रों मे ऐसा नही होता । बाहरी समुद्रा मे बहुत-से उदकयोनि के जीव और पुद्गल उदकरूप मे अपक्रमते है, व्युत्क्रमते हैं, च्यवते हैं और उत्पन्न होते हैं । इन सब समुद्रा का सस्थान समान है किन्तु विस्तार की अपेक्षा ये पूर्व-पूर्व द्वीप से दुगने-दुगने होते चले गए हैं ।[3]

---

१ 'जाव' पद से यह पाठ जानना चाहिए—"पवित्थरमाणा २ बहुउप्पलपउमकुमुयनलिणसुभगसोगधियपुडरीय महापुडरीयसतपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवइया उब्भासमाणवीइया ।"

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८२

३ (क) भगवतीसूत्र (टीकानुवादटिप्पणयुक्त) खण्ड-२, पृ ३३४-३३५

(ख) जीवाजीवाभिगमसूत्र वृत्तिसहित प्रतिपत्ति ३, पत्रांक ३२०-३२१

(ग) तत्त्वार्थसूत्र सभाष्य, अ ३, सू ८ से १३ तक

द्वीप-समुद्रों के शुभ नामों का निर्देश

३६ दीव-समुद्दा ण भंते ! केवतिया नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावतिया लोए सुभा नामा, सुभा रूवा, सुभा गंधा, सुभा रसा, सुभा फासा एवतिया ण दीव-समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता। एवं नेयव्वा सुभा नामा, उद्धारो परिणामो सव्व-जीवाण।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ छट्ठे सए अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥

[३६ प्र] भगवन् ! द्वीप-समुद्रों के कितने नाम कहे गए हैं ?

[३६ उ] गौतम ! इस लोक में जितने भी शुभ नाम, शुभ रूप, शुभ रस, शुभ गन्ध और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही नाम द्वीप-समुद्रों के कहे गए हैं। इस प्रकार सब द्वीप-समुद्र शुभ नाम वाले जानने चाहिए तथा उद्धार, परिणाम और सब जीवों का (द्वीपों एवं समुद्रों में) उत्पाद जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर यावत् श्री गौतम स्वामी विचरण करने लगे।

विवेचन—द्वीपों-समुद्रों के शुभ नामों का निर्देश प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। द्वीप-समुद्रों के शुभ नाम—ये समुद्र बहुत-से उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुन्दर एवं सुगन्धित पुण्डरीक, महापुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, केशर एवं विकसित पद्मों आदि से युक्त हैं। स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि शुभनाम, पीतादि सुन्दर रूपवाचक शब्द, कपूर आदि सुगन्धवाचक शब्द, मधुररसवाचक शब्द तथा नवनीत आदि मृदुस्पर्शवाचक शब्द जितने भी इस लोक में हैं उतने ही शुभ नामों वाले द्वीप-समुद्र हैं।

ये द्वीप-समुद्र उद्धार, परिणाम और उत्पाद वाले—ढाई सूक्ष्म उद्धार सागरोपम या २५ कोड़ा-कोड़ी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम में जितने समय होते हैं, उतने लोक में द्वीप-समुद्र हैं। ये द्वीप-समुद्र पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गलों के परिणाम वाले हैं, इनमें जीव पृथ्वीकायिक से यावत् त्रसकायिक रूप में अनेक या अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं।[3]

॥ छठा शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

---

३ (क) भगवती अ. वृत्ति पत्रांक २८३
(ख) जीवाजीवाभिगम सवृत्तिक पत्र-३०२-३०३
(ग) तत्त्वार्थ अ. ३ सू. ॥

नवमो उद्देसओ : 'कम्म'

नवम उद्देशक : कर्म

ज्ञानावरणीयबंध के साथ अन्य कर्मबंध-प्ररूपणा

१ जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मप्पगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा। बंधुद्देसो पण्णवणाए नेयव्वो।

[१ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

[१ उ.] गौतम ! सात प्रकृतियों को बांधता है, आठ प्रकार को बांधता है अथवा छह प्रकृतियों को बांधता है। यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का बंध-उद्देशक कहना चाहिए।

विवेचन—ज्ञानावरणीय-बंध के साथ अन्यकर्मबंध प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीय कर्म के बंध के साथ-साथ अन्य कर्म प्रकृतियों के बंध की प्ररूपणा की गई है।

स्पष्टीकरण—जिस समय जीव का आयुष्यबन्धकाल नहीं होता, उस समय वह ज्ञानावरणीय को बांधते समय आयुष्यकर्म को छोड़कर सात कर्मों को बांधता है, आयुष्य के बंधकाल में आठ कर्म प्रकृतियों को बांधता है, किन्तु सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान की अवस्था में मोहनीयकर्म और आयुकर्म को नहीं बांधता, इसलिए वहाँ ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ जीव छह कर्मप्रकृतियों को बांधता है।[1]

बाह्यपुद्गलों के ग्रहणपूर्वक महर्द्धिकादि देव की एक वर्णादि के पुद्गलों को अन्य वर्णादि में विकुर्वण एवं परिणमन-सामर्थ्य

२ देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव[2] महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २८३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र पद २४ बंधोद्देशक (मू. पा. टि.) विभाग १, पृ. ३८५ से ३८७ तक

(ग) प्रज्ञापनासूत्रीय बंधोद्देशक का सारांश—

(प्र.) भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता हुआ नैरयिक ज्ञानावरणीयकर्म को बांधता हुआ कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

(उ.) गौतम ! वह या तो आठ प्रकार के कर्म को बांधता है या सात प्रकार के कर्म बांधता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना। विशेष यह है कि जैसे समुच्चय जीव के लिए कहा, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए कहना कि वह आठ, सात या छह प्रकृतियों को बांधता है।

—प्रज्ञापना पद २४, बंधोद्देशक

२ 'जाव' पद से सूचित पाठ—"महज्जुइए महाबले महाजसे महसक्खे (महासोक्खे-महामक्खे) महाणुभागे"

—जीवाभिगमसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक १०९

गोयमा ! नो इणट्ठे० ।

[२ प्र.] भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महानभाग देव बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले और एक रूप (एक आकार वाले) (स्वशरीरादि) की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[२ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

३ देवे ण भंते ! बाहिरए पोग्गले परियादिइत्ता पभू ?

हंता, पभू ।

[३ प्र.] भगवन् ! क्या वह देव बाहर के पुद्गलो को ग्रहण करके (उपर्युक्त रूप से) विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[३ उ.] हाँ गौतम ! (वह ऐसा करने मे) समर्थ है।

४ से ण भंते ! किं इहगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति, तत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वति, अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति ?

गोयमा ! नो इहगते पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति, तत्थगते पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वति, नो अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वति ।

[४ प्र.] भगवन् ! क्या वह देव इहगत (यहाँ रहे हुए) पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है अथवा तत्रगत (वहाँ—देवलोक मे रहे हुए) पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है या अन्यत्रगत (किसी दूसरे स्थान मे रहे हुए) पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ?

[४ उ.] गौतम ! वह देव यहाँ रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा नही करता, वह वहाँ (देवलोक मे रहे हुए तथा जहाँ विकुर्वणा करता है, वहाँ) के पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, किन्तु अन्यत्र रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा नही करता।

५ एवं एतेणं गमेणं जाव एगवण्णं एगरूवं, एगवण्णं अणेगरूवं, अणेगवण्णं एगरूवं, अणेगवण्णं अणेगरूवं, चउभंगो ।

[५] इस प्रकार इस गम (आलापक) द्वारा विकुर्वणा के चार भंग कहने चाहिए (१) एक वर्ण वाला और एक आकार (रूप) वाला, (२) एक वर्ण वाला और अनेक आकार वाला, (३) अनेक वर्ण और एक आकार वाला तथा (४) अनेक वर्ण वाला और अनेक आकार वाला। (अर्थात्—वह इन चारो प्रकार के रूपो को विकुर्वित करने मे समर्थ है।)

६ देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियादिइत्ता पभू कालगपोग्गलं नीलगपोग्गलत्ताए परिणामित्तए ? नीलगपोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामित्तए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, परियादिइत्ता पभू ।

[६ प्र.] भगवन् ! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये बिना काले पुद्गल को नील पुद्गल के रूप मे और नील पुद्गल को काले पुद्गल के रूप मे परिणत करने मे समर्थ है ?

[६ उ] गौतम ! (बाहर के पुद्गलो को ग्रहण किये विना) यह श्रथ समथ नहीं है, किन्तु वाहरी पुद्गलो को ग्रहण करके देव वसा करने मे समथ है।

७ से ण भते ! कि इहगए पोग्गले० त चेव, नवर परिणामेति त्ति भाणियव्व ।

[७ प्र] भगवन् ! वह देव इहगत, तत्रगत या श्रयत्रगत पुद्गलो (मे से किन) को ग्रहण करके वैसा करने मे समर्थ है ?

[७ उ] गौतम ! वह इहगत और श्रन्यत्रगत पुद्गलो को ग्रहण करके वसा नही कर सकता, किन्तु तत्र (देवलोक) गत पुद्गलो को ग्रहण करके वैसा परिणत करने मे समर्थ है। [विशेष यह है कि यहाँ 'विकुर्वित करने मे' के बदले 'परिणत करने मे' कहना चाहिए ।]

८ [१] एव कालगपोग्गल लोहियपोग्गलत्ताए ।

[२] एव कालएण जाव[1] सुक्किल ।

[८-१] इसी प्रकार काले पुद्गल को लाल पुद्गल के रूप मे (परिणत करने मे समर्थ है।)

[८-२] इसी प्रकार काले पुद्गल के साथ शुक्ल पुद्गल तक समझना ।

९ एव णीलएण जाव सुक्किल ।

[९] इसी प्रकार नीले पुद्गल के साथ शुक्ल पुद्गल तक जानना ।

१० एव लोहिएण जाव सुक्किल ।

[१०] इसी प्रकार लाल पुद्गल को शुक्ल तक (परिणत करने मे समथ है।)

११ एव हालिद्दएण जाव सुक्किल ।

[११] इसी प्रकार पीले पुद्गल को शुक्ल तक (परिणत करने मे समथ है, या कहना चाहिए।)

१२ एव एताए परिवाडीए गध रस-फास० कक्खडफासपोग्गल मउयफासपोग्गलत्ताए । एव दो दो गरुय-लहुय २, सीय-उसिण २, णिद्ध-लुक्ख २, वण्णाइ सव्वत्थ परिणामेइ । आलावगा य दो दो पोग्गले अपरियादिइत्ता, परियादिइत्ता ।

[१२] इसी प्रकार इस क्रम (परिपाटी) के अनुसार गन्ध, रस और स्पर्श के विषय में भी समझना चाहिए। यथा—(यावत्) कर्कश स्पर्शवाले पुद्गल को मृदु (कोमल) स्पर्शवाले (पुद्गल मे परिणत करने मे समथ है।)

इसी प्रकार दो-दो विरुद्ध गुणो को अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, वर्ण आदि को वह सवत्र परिणमाता है। 'परिणमाता है' इस क्रिया के साथ यहाँ इस प्रकार दो-दो आलापक कहने चाहिए, यथा—(१) पुद्गलो को ग्रहण करके परिणमाता है, (२) पुद्गलों को ग्रहण किये विना नही परिणमाता ।

---

१ 'जाव' पद से यहाँ सवत्र आगे आगे के सभी वर्ण जान लेने चाहिए ।

विवेचन—बाह्य पुद्गलों के ग्रहणपूर्वक महर्द्धिकादि देव को एक वर्ण गन्ध-रस स्पर्श के पुद्गलो को अन्य वर्णादि मे विकुर्वण एव परिणमन-सामर्थ्य—प्रस्तुत ११ सूत्रो मे महर्द्धिक देव के द्वारा बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके एक वर्णादि के पुद्गलो को एक या अनेक अन्य वर्णादि के रूप मे विकुर्वित अथवा परिणमित करने के सामर्थ्य के सम्बन्ध मे निरूपण किया गया।

निष्कर्ष—महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव देवलोक मे रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके उत्तरवैक्रियरूप बना सकता (विकुर्वणा करता) है और फिर दूसरे स्थान मे जाता है, किन्तु इहगत अर्थात्—प्रश्नकार के समीपस्थ क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो को तथा अन्यत्रगत—प्रज्ञापक के क्षेत्र और देव के स्थान से भिन्न क्षेत्र से रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा नही कर सकता।[1]

विभिन्न वर्णादि के २५ आलापकसूत्र—मूलपाठ मे उक्त अतिदेशानुसार वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के आलापकसूत्र इस प्रकार बनते हैं—

(१) पाच वर्णों के १० द्विकसयोगी आलापकसूत्र—(१) काले को नीलरूप मे, (२) काले को लोहितरूप मे, (३) काले को हारिद्ररूप मे, (४) काले को शुक्लरूप मे, (५) नीले को लोहित-रूप मे, (६) नीले को हारिद्ररूप मे, (७) नीले को शुक्लरूप मे, (८) लोहित को हारिद्ररूप मे, (९) लोहित को शुक्लरूप मे तथा (१०) हारिद्र को शुक्लरूप मे परिणमा सकता है।

(२) दो गध का एक आलापकसूत्र—(१) सुगन्ध को दुर्गन्धरूप मे, अथवा दुर्गन्ध को सुगन्धरूप मे।

(३) पाच रस के दस आलापकसूत्र—(१) तिक्त को कटुरूप में, (२) तिक्त को कषायरूप मे, (३) तिक्त को अम्लरूप मे, (४) तिक्त को मधुररूप मे, (५) कटु को कषायरूप मे, (६) कटु को अम्लरूप मे, (७) कटु को मधुररूप मे, (८) कषाय को अम्लरूप मे, (९) कषाय को मधुररूप मे और (१०) अम्ल को मधुररूप मे परिणमा सकता है।

(४) आठ स्पर्श के चार आलापकसूत्र—(१) गुरु को लघुरूप मे अथवा लघु को गुरुरूप मे, (२) शीत को उष्णरूप मे या उष्ण को शीतरूप मे, (३) स्निग्ध को रूक्षरूप मे या रूक्ष को स्निग्धरूप मे और (४) कर्कश को कोमलरूप मे या कोमल को कर्कशरूप मे परिणमा सकता है।[2]

अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवों द्वारा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यावाले देवादि को जानने-देखने की प्ररूपणा

१३ [१] अविसुद्धलेसे णं भंते ! देवे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं देविं अन्नयरं जाणति पासति ?

णो इणट्ठे समट्ठे १।

[१३-१ प्र] भगवन् ! क्या अविशुद्ध लेश्यावाला देव असमवहत—(उपयोगरहित) आत्मा

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक २८३

२ भगवतीसूत्र (टीकानुवाद टिप्पणयुक्त) खण्ड-२, पृ. २३९

से अविशुद्ध लेश्यावाले देव को या देवी को या अन्यतर को (इन दोनो मे से किसी एक को) जानता और देखता है ?

[१३-१ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है।

१[२] एव अविसुद्धलेसे० असमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे २। अविसुद्धलेसे० समोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ३। अविसुद्धलेसे देवे समोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ४। अविसुद्धलेसे० समोहयासमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देव० ? णो इणट्ठे समट्ठे ५। अविसुद्धलेसे समोहयासमोहतेण० विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ६। विसुद्धलेसे० असमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ७। विसुद्धलेसे० असमोहएण विसुद्धलेस देव० ? नो इणट्ठे समट्ठे ८। विसुद्धलेसे० ण भते ! देवे समोहएण अविसुद्धलेस देव० जाणइ० ? हता, जाणइ० ९। एव विसुद्धलेसे० समोहएण० विसुद्धलेस देव जाणइ० ? हता, जाणइ० १०। विसुद्धलेसे० समोहयासमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस देव जाणइ २ ? हता, जाणइ० ११। विसुद्धलेसे० समोहयासमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस देव० ? हता, जाणइ० १२।२ एव हेट्ठिल्लएहि अट्ठहि न जाणइ न पासइ, उवरिल्लएहि चउहि जाणइ पासइ। सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ छट्ठ सए नवमो उद्देसो समत्तो ॥

[१३-२] २—इसी तरह अविशुद्ध लेश्यावाला देव अनुपयुक्त (असमवहत) आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव को, देवी को या अन्यतर को जानता-देखता है ?

३ अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता देखता है ?

४ अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता देखता है ?

५ अविशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

६ अविशुद्ध लेश्यावाला देव अनुपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

७ विशुद्ध लेश्यावाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा, अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

१-२ इन दो चिह्नो के अन्तर्गत पाठ इस वाचना की प्रति मे नही है, वाचनान्तर की प्रति मे है ऐसा वृत्तिकार का मत है। —स

८ विशुद्ध लेश्यावाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[आठो प्रश्नो का उत्तर] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। (अर्थात्—नही जानता-देखता।)

[९ प्र] भगवन् ! विशुद्ध लेश्यावाला देव क्या उपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[९ उ] हा गौतम ! ऐसा देव जानता-देखता है।

[१० प्र] इसी प्रकार क्या विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[१० उ] हाँ गौतम ! वह जानता-देखता है।

[११ प्र] विशुद्ध लेश्यावाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता-देखता है ?

[१२ प्र] विशुद्ध लेश्यावाला देव, उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से, विशुद्ध लेश्यावाले देव, देवी या अन्यतर को जानता देखता है ?

[११-१२ उ] हाँ गौतम ! वह जानता-देखता है। यो पहले (निचले) कहे गए आठ भगो वाले देव नही जानते-देखते। किन्तु पीछे (ऊपर के) कहे गए चार भगो वाले देव जानते-देखते हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर श्री गौतम स्वामी यावत् विचरण करने लगे।

विवेचन—अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यायुक्त देवो द्वारा अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्यावाले देवादि को जानने-देखने सम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे मुख्यतया १२ विकल्पो द्वारा देवो द्वारा देव, देवी एव अन्यतर को जानने-देखने के सम्बन्ध मे प्ररूपणा की गई है।

तीन पदो के बारह विकल्प—

(१) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से अशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(२) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(३) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(४) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(५) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को "
(६) अविशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(७) विशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(८) विशुद्धलेश्यायुक्त देव अनुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(९) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को
(१०) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को

(११) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से अविशुद्धलेश्यावाले देवादि को

(१२) विशुद्धलेश्यायुक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा से विशुद्धलेश्यावाले देवादि को

अविशुद्धलेश्यावाले देव विभंगज्ञानी होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त ६ विकल्पों में उक्त देव मिथ्यादृष्टि होने के कारण देव, देवी आदि को नहीं जान देख सकते तथा सातवें-आठवें विकल्प में उक्त देव अनुपयुक्तता के कारण जान-देख नहीं पाते। किन्तु अन्तिम चार विकल्पों में उक्त देव एक तो, सम्यग्दृष्टि हैं, दूसरे उनमें से ९वें, १०वें विकल्पों में उक्त देव उपयुक्त भी हैं तथा ११वें, १२वें विकल्प में उक्त देव उपयुक्तानुपयुक्त में उपयुक्तपन सम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्ज्ञान का कारण है। इसलिए अन्तिम चारों विकल्प वाले देव देवादि को जानते देखते हैं।[1]

॥ छठा शतक : नवम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २८४

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचनयुक्त) भा. २, पृ. १०९६

दसमो उद्देसओ : 'अन्नउत्थी'

दशम उद्देशक अन्यतीर्थी

अन्यतीर्थिकमतनिराकरणपूर्वक सम्पूर्ण लोक मे सर्वजीवो के सुखदु ख को अणुमात्र भी दिखाने की असमर्थता की प्ररूपणा

१ [१] अन्नउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति जाव परूवेति-जावतिया रायगिहे नयरे जीवा एवतियाण जीवाण नो चक्किया केइ सुह वा दुह वा जाव कोलट्ठिगमातमवि निप्फावमातमवि कलम मायमवि मासमायमवि मुग्गमातमवि जूयामायमवि लिक्खामायमवि अभिनिवट्टेत्ता उवदसित्तए, से कहमेय भते ! एव ?

गोयमा ! ज ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति जाव मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि सव्वलोए वि य ण सव्वजीवाण णो चक्किया केइ सुह वा त चेव जाव उवदसित्तए ।

[१-१ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि राजगृह नगर म जितने जीव हैं, उन सबके दु ख या सुख को बेर की गुठली जितना भी, बाल (निष्पाव नामक धान्य) जितना भी, कलाय (गुवार के दाने या काली दाल अथवा मटर या चावल) जितना भी, उडद जितना भी, मू ग-प्रमाण, यूका (जू) प्रमाण, लिक्षा (लीख) प्रमाण भी बाहर निकाल कर नही दिखा सकता । भगवन् ! यह बात यो कैसे हो सकती है ?

[१-१ उ] गौतम ! जो अन्यतीर्थिक उपयु क्त प्रकार से कहते हैं, यावत प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत प्ररूपणा करता हूँ कि (केवल राजगृह नगर म ही नही) सम्पूर्ण लोक मे रहे हुए सब जीवो के सुख या दु ख को कोई भी पुरुष उपयु क्तरूप से यावत् किसी भी प्रमाण मे बाहर निकालकर नही दिखा सकता ।

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! अय ण जबुद्दीवे २ जाव विसेसाहिए परिक्खेवेण पन्नत्ते । देवे ण महिड्ढीए जाव महाणुभागे एग मह सविलेवण गधसमुग्गग गहाय त अवदालेति, त अवदालित्ता जाव इणामेव कट्टु केवलकप्प जबुद्दीव २ तिहि अच्छरानिवातेहि तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, से नूण गोयमा ! से केवलकप्पे जबुद्दीवे २ तेहि घाणपोग्गलेहि फुडे ?

हता, फुडे । चक्किया ण गोयमा ! केइ तेसि घाणपोग्गलाण कोलट्ठियमायमवि जाव उवदसित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे । से तेणट्ठेण जाव उवदसेत्तए ।

[३ उ] गौतम ! नैरयिक तो नियमत जीव है और जीव तो कदाचित् नैरयिक भी हो सकता है, कदाचित् नैरयिक से भिन्न भी हो सकता है।

४ जीवे ण भंते ! असुरकुमारे ? असुरकुमारे जीवे ?

गोतमा ! असुरकुमारे ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय असुरकुमारे, सिय णो असुरकुमारे।

[४ प्र] भगवन् ! क्या जीव, असुरकुमार है या असुरकुमार जीव है ?

[४ उ] गौतम ! असुरकुमार तो नियमत जीव है, किन्तु जीव तो कदाचित् असुरकुमार भी होता है, कदाचित् असुरकुमार नही भी होता।

५ एव दडओ णेयव्वो जाव वेमाणियाण।

[५] इसी प्रकार यावत् वमानिक तक सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

६ जीवति भते ! जीवे ? जीवे जीवति ?

गोयमा ! जीवति ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय जीवति, सिय नो जीवति।

[६ प्र] भगवन् ! जो जीता—प्राण धारण करता है, वह जीव कहलाता है, या जो जीव है, वह जीता—प्राण धारण करता है ?

[६ उ] गौतम ! जो जीता—प्राण धारण करता है, वह तो नियमत जीव कहलाता है, किन्तु जो जीव होता है, वह प्राण धारण करता (जीता) भी है और कदाचित् प्राण धारण नही भी करता।

७ जीवति भते ! नेरतिए ? नेरतिए जीवति ?

गोयमा ! नेरतिए ताव नियमा जीवति, जीवति पुण सिय नेरतिए, सिय अनेरइए।

[७ प्र] भगवन् ! जो जीता है, वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है, वह जीता—प्राण धारण करता—है ?

[७ उ] गौतम ! नैरयिक तो नियमत जीता है, किन्तु जो जीता है, वह नैरयिक भी होता है, और अनैरयिक भी होता है।

८ एव दडओ नेयव्वो जाव वेमाणियाण।

[८] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

९ भवसिद्धीए ण भंते ! नेरइए ? नेरइए भवसिद्धीए ?

गोयमा ! भवसिद्धीए सिय नेरइए, सिय अनेरइए। नेरतिए वि य सिय भवसिद्धीए, सिय अभवसिद्धीए।

[९ प्र] भगवन् ! जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है ?

[९ उ] गौतम ! जो भवसिद्धिक (भव्य) होता ह, वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है तथा जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक भी होता है और अभवसिद्धिक भी होता है।

१० एव दडमो जाव वेमाणियाण।

[१०] इसी प्रकार यावत् वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

विवेचन—जीव का निश्चित स्वरूप और उसके सम्बन्ध मे अनेकान्तशैली मे प्रश्नोत्तर— प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू २ से १०) मे जीव के सम्बन्ध मे निम्नोक्त अंकित किये गए है—

१ जीव नियमत चैतन्यरूप है और चैतन्य भी नियमत जीव-स्वरूप है।

२ नैरयिक नियमत जीव है, किन्तु जीव कदाचित् नैरयिक और कदाचित् अनैरयिक भी हो सकता है।

३ असुरकुमार से लेकर वैमानिक देव तक नियमत जीव हैं, किन्तु जीव कदाचित् असुरकुमारादि होता है, कदाचित् नही भी होता।

४ जो जीता (प्राण धारण करता) है, वह निश्चय ही जीव है, किन्तु जो जीव होता है, वह (द्रव्य-) प्राण धारण करता है और नही भी करता।

५ नैरयिक नियमत जीता है, किन्तु जो जीता है, वह नैरयिक भी हो सकता है, अनैरयिक भी, यावत् वैमानिक तक यही सिद्धान्त है।

६ जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक भी होता है, अनैरयिक भी तथा जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है, अभवसिद्धिक भी।[1]

दो बार जीव शब्दप्रयोग का तात्पर्य—दूसरे प्रश्न मे दो बार जीवशब्द का प्रयोग किया गया है, उसमे से एक जीव शब्द का अर्थ 'जीव' (चेतन-धर्मीद्रव्य) है, जबकि दूसरे जीवशब्द का अर्थ चैतन्य (धर्म) है। जीव और चैतन्य मे अविनाभावसम्बन्ध बताने हेतु यह समाधान दिया गया है। अर्थात्—जो जीव है, वह चैतन्यरूप है और जो चैतन्यरूप है, वह जीव है।

'जीव' कदाचित् जीता है, कदाचित् नहीं जीता, इसका तात्पर्य—अजीव के तो आयुष्यकर्म न होने से वह प्राणो को धारण नही करता, किन्तु जीवो मे भी जो ससारी जीव ह, वे ही प्राणो को धारण करते हैं, किन्तु जो सिद्ध जीव है, वे जीव होते हुए भी द्रव्यप्राणो को धारण नही करते। इस अपेक्षा से कहा गया है—जो जीव होता है, वह जीता (प्राण धारण करता) भी है, नही भी जीता।[2]

एकान्तदुःखवेदनरूप अन्यतीर्थिकमतनिराकरणपूर्वक अनेकान्तशैली से सुखदुःखादिवेदन-प्ररूपणा

११ [१] अन्नउत्थिया ण भंते ! एवमाइक्खति जाव परूवेति—"एव खलु सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एगतदुक्ख वेदण वेदेंति से कहमेत भंते ! एव ?

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त [मूलपाठ टिप्पणयुक्त] भाग १, पृ २७०-२७१
(ख) भगवती० अ वृत्ति, पत्राक २८६

गोतमा ! ज ण ते अन्नउत्थिया जाव मिच्छ ते एवमाहसु । अह पुण गोतमा ! एवमाइक्खामि जाव परुवेमि--अत्येगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगतदुक्ख वेदण वेदेंति, आहच्च सात । अत्येगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगतसात वेदण वेदेंति, आहच्च असाय वेयण वेदेंति । अत्येगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमाताए वेयण वेयति, आहच्च सायमसाय ।

[११-१ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है, यावत् प्ररूपणा करते है कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तदु खरूप वेदना को वेदते (भोगते- अनुभव करते) हैं, तो भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ?

[११-१ उ] गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ—कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तदु खरूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् साता (सुख) रूप वेदना भी वेदते हैं, कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्तसाता (सुख) रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् असाता (दु ख) रूप वेदना भी वेदते हैं तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं, (अर्थात्) कदाचित् सातारूप और कदाचित् असातारूप (वेदना वेदते हैं ।)

[२] से केणट्ठेण० ?

गोयमा ! नेरइया एगतदुक्ख वेयण वेयति, आहच्च सात । भवणवति-वाणमतर-जोइस-वेमाणिया एगतसात वेदण वेदेंति, आहच्च असाय । पुढविक्काइया जाव मणुस्सा वेमाताए वेदण वेदेंति, आहच्च सातमसात । से तेणट्ठेण० ।

[११-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कथन किया जाता है ?

[११-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीव, एकान्तदु खरूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सातारूप वेदना भी वेदते हैं । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एकान्तसाता (सुख) रूप वेदना वेदते हैं, किन्तु कदाचित् असातारूप वेदना भी वेदते हैं तथा पृथ्वीकायिक जीवो से लेकर मनुष्यो पर्यन्त विमात्रा से (विविध रूपो मे) वेदना वेदते हैं (अर्थात्) कदाचित् सुख और कदाचित् दु ख वेदते हैं । इसी कारण से हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है ।

विवेचन—एकान्तदु खवेदनरूप अन्यतीर्थिकमत-निराकरणपूर्वक अनेकान्तशैली से सुख दु खादिवेदना प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे अन्यतीर्थिको की सब जीवो द्वारा एकान्तदु खवेदन की मान्यता का खण्डन करते हुए अनेकान्तशैली से दु खबहुल सुख, सुखबहुल दु ख एव सुख-दु खमिश्र के वेदन का निरूपण किया गया है ।

समाधान का स्पष्टीकरण- नैरयिक जीव एकान्तदु ख वेदते हैं, किन्तु तीर्थंकर भगवान् के जन्मादि कल्याणको के अवसर पर कदाचित् सुख भी वेदते हैं । देव एकान्तसुख वेदते हैं, किन्तु पारस्परिक आहनन (संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष आदि) मे तथा प्रिय वस्तु के वियोगादि मे असाता वेदना भी वेदते हैं । पृथ्वीकायिक जीवो से लेकर मनुष्यो तक के जीव किसी समय सुख और किसी समय दु ख कभी सुख-दु ख—मिश्रित वेदना वेदते हैं ।[1]

1 भगवती अ वृत्ति, पत्राक २८६

चौवीस दण्डको मे आत्म-शरीरक्षेत्रावगाढपुद्गलाहार प्ररूपणा

१२ नेरतिया ण भते ! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ते कि आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ? अणतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ? परपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?

गोतमा ! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, नो अणतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, नो परपरखेत्तोगाढे ।

[१२ प्र] भगवन् ! नरयिक जीव जिन पुद्गलो का आत्मा (अपने) द्वारा ग्रहणते—आहार करते है, क्या वे आत्म-शरीरक्षेत्रावगाढ (जिन आकाशप्रदेशो मे शरीर है, उन्ही प्रदेशो मे स्थित) पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ? अथवा परम्परक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ?

[१२ उ] गौतम ! वे आत्म-शरीरक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं, किन्तु न तो अनन्तरक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं और न ही परम्परक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ।

१३ जहा नेरइया तहा जाव वेमाणियाण दडओ ।

[१३] जिस प्रकार नरयिको के लिए कहा, उसी प्रकार वैमानिको पर्यन्त दण्डक (आलापक) कहना चाहिए ।

विवेचन—चौवीस दण्डकों मे आत्मशरीरक्षेत्रावगाढपुद्गलाहार प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रों द्वारा शास्त्रकार ने समस्त ससारी जीवो के द्वारा आहाररूप मे ग्रहणयोग्य पुद्गलो के सम्बन्ध मे प्रश्न उठा कर स्वसिद्धान्तसम्मत निर्णय प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्ष—जीव स्वशरीरक्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं, किन्तु स्वशरीर मे अनन्तर और परम्पर क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो का आत्मा द्वारा आहार नही करता ।[1]

केवली भगवान् का आत्मा द्वारा ज्ञान-दर्शनसामर्थ्य

१४ [१] केवली ण भते ! आयाणेहि जाणति पासति ?

गोतमा ! नो इणट्ठे० ।

[१४-१ प्र] भगवन् ! क्या केवली भगवान् इन्द्रियो द्वारा जानते-देखते हैं ?

[१४-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] से केणटठेण० ?

गोयमा ! केवली ण पुरत्थिमेण मित पि जाणति अमित पि जाणति जाव निव्वुडे दसणे केवलिस्स, से तेणट्ठेण० ।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८६

[१४-१ प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[१४-२ उ.] गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशा मे मित (परिमित) को भी जानते हैं और अमित को भी जानते हैं, यावत् केवली का (ज्ञान और) दर्शन निर्वृत्त, (परिपूर्ण, कृत्स्न और निरावरण) होता है। हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है।

विवेचन—केवली भगवान् का आत्मा द्वारा ही ज्ञान दर्शन-सामर्थ्य—इस सम्बन्ध मे इसी शास्त्र के पचम शतक, चतुर्थ उद्देशक मे विशेष विवेचन दिया गया है।

दसवें उद्देशक की सग्रहणी गाथा

१५ गाहा—

जीवाण सुह दुक्ख जीवे जीवति तहेव भविया य।
एगतदुक्खवेदण अत्तमायाय केवली ॥१॥

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ छट्ठे सए दसमो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ छट्ठ सत समत्त ॥

[१५ गाथार्थ—] जीवो का सुख-दुःख, जीव, जीव का प्राणधारण, भव्य, एकान्तदुःखवेदना, आत्मा द्वारा पुद्गलो का ग्रहण और केवली, इतने विषयो पर इस दसवें उद्देशक मे विचार किया गया है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरने लगे।

॥ छठा शतक दशम उद्देशक समाप्त ॥

छठा शतक सम्पूर्ण

सत्तमं सयं : सप्तम शतक

प्राथमिक

- ☐ व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के सप्तम शतक मे आहार, विरति, स्थावर, जीव आदि कुल दश उद्देशक हैं।

- ☐ प्रथम उद्देशक मे जीव के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल का, लोकसस्थान का, श्रमणोपाश्रय मे बठे हुए सामायिकस्थ श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया का, श्रमणोपासक के व्रत म अतिचार लगने के शकासमाधान का, श्रमण-माहन को प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ का, नि सगतादि कारणो से कर्मरहित जीव की उर्ध्वगति का, दु खी को दु ख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तो का, अनुपयुक्त अनगार को लगने वाली क्रिया का, अगारादि आहार दोषो के अर्थ का निरूपण किया गया है।

- ☐ द्वितीय उद्देशक मे सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी के स्वरूप का, प्रत्याख्यान के भेद-प्रभेदो का, जीव और चौवीस दण्डको मे मूल-उत्तरगुण प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी का, मूलगुण-प्रत्याख्यानी आदि मे अल्पबहुत्व का, सयत और देशत मूल-उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी के चौवीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व का, सयत आदि एव प्रत्याख्यानी आदि के अस्तित्व तथा अल्पबहुत्व का एव जीवो की शाश्वतता—अशाश्वतता का निरूपण किया गया है।

- ☐ तृतीय उद्देशक मे वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहार एव सर्वमहाहार के काल की, वनस्पतिकायिक मूल जीवादि से स्पष्ट मूलादि की, आलू आदि अनन्तकायत्व एव पृथक्कायत्व की, जीवो मे लेश्या की अपेक्षा अल्प-महाकर्मत्व की, जीवो मे वेदना और निर्जरा के पृथक्त्व की और अन्त मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की शाश्वतता अशाश्वतता की प्ररूपणा की गई है।

- ☐ चतुर्थ उद्देशक मे ससारी जीवो के सम्बन्ध मे जीवाजीवाभिगम के अतिदेशपूर्वक वर्णन है।

- ☐ पचम उद्देशक मे पक्षियो के विषय मे योनिसग्रह, लेश्या आदि ११ द्वारो के माध्यम से विचार किया गया है।

- ☐ छठे उद्देशक मे जीवो के आयुष्यबन्ध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध मे, जीवो की महावेदना—अल्पवेदना के सम्बन्ध मे, जीवो के अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य तथा कर्कश-अकर्कश वेदनीय, साता असातावेदनीय के सम्बन्ध मे प्रतिपादन किया गया है, अन्त मे छठे आरे म भारत, भारतभूमि, भारतवासी मनुष्यो तथा पशु पक्षियो के आचार-विचार एव भाव स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

- ☐ सातवें उद्देशक मे उपयोगपूर्वक गमनादि करने वाले अनगार की क्रिया की, कामभोग एव कामीभोगी के स्वरूप की, छद्मस्थ, अवधिज्ञानी एव केवली आदि मे भोगित्व की, असज्ञी व समर्थ जीवो द्वारा अकाम एव प्रकामनिकरण की प्ररूपणा की गई है।

- ☐ आठवें उद्देशक मे केवल सयमादि से सिद्ध होने के निषेध की, हाथी और कुथुए के समान जीवत्व की, नैरयिको की १० वेदनाओं की, हाथी और कुथुए मे अप्रत्याख्यान-क्रिया की समानता की प्ररूपणा है।
- ☐ नौवें उद्देशक मे असवृत अनगार द्वारा विकुर्वणासामर्थ्य का तथा महाशिलाकण्टक एव रथ-मूसल सग्राम का सागोपाग विवरण प्रस्तुत किया गया है।
- ☐ दशवें उद्देशक मे कालोदायी द्वारा पचास्तिकायचर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या स्वीकार से लेकर सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण तक का वर्णन है।[1]

---

1 वियाहपण्णत्ति सुत्त, विसयाणुक्कमो ४४ से ४८ तक

सत्तमं सयं : सप्तम शतक

सप्तम शतक की संग्रहणी गाथा

१ आहार १ विरति २ थावर ३ जीवा ४ पक्खी ५ य आउ ६ अणगारे ७ ।
छउमत्थ ८ असंवुड ९ अन्नउत्थि १० दस सत्तमम्मि सते ॥ १ ॥

[१ गाथा का अर्थ—] १ आहार, २ विरति, ३ स्थावर, ४ जीव, ५ पक्षी, ६ आयुष्य, ७ अनगार, ८ छद्मस्थ, ९ असंवृत और १० अन्यतीर्थिक, ये दश उद्देशक सातवें शतक में हैं।

पढमो उद्देसओ : 'आहार'

प्रथम उद्देशक 'आहार'

जीवों के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल की प्ररूपणा

२ तेण कालेण तेण समएण जाव एव वदासी—

[२] उस काल और उस समय में, यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान महावीर से) इस प्रकार पूछा—

३ [१] जीवे ण भंते ! क समयमणाहारए भवति ?

गोयमा ! पढमे समए सिय आहारए, सिय अणाहारए । बितिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए । ततिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए । चउत्थे समए नियमा आहारए ।

[३-१ प्र] भगवन् ! (परभव में जाता हुआ) जीव किस समय में अनाहारक होता है ?

[३-१ उ] गौतम ! (परभव में जाता हुआ) जीव, प्रथम समय में कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है, द्वितीय समय में भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है, तृतीय समय में भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है, परन्तु चौथे समय में नियमत (अवश्य) आहारक होता है ।

[२] एव दडओ । जीवा य एगिंदिया य चउत्थे समए । सेसा ततिए समए ।

[३-२] इसी प्रकार नैरयिक आदि चौबीस ही दण्डकों में कहना चाहिए । सामान्य जीव और एकेन्द्रिय ही चौथे समय में आहारक होते हैं । इनके सिवाय शेष जीव, तीसरे समय में आहारक होते हैं ।

४ [१] जीवे ण भंते ! कं समयं सव्वप्पाहारए भवति ?

गोयमा ! पढमसमयोववन्नए वा, चरमसमयभवत्थे वा, एत्थ णं जीवे सव्वप्पाहारए भवति।

[४-१ प्र] भगवन् ! जीव किस समय में सबसे अल्प आहारक होता है ?

[४-१ उ] गौतम ! उत्पत्ति के प्रथम समय में अथवा भव (जीवन) के अन्तिम (चरम) समय में जीव सबसे अल्प आहार वाला होता है।

[२] दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं।

[४-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डकों में कहना चाहिए।

विवेचन—जीवों के अनाहार और सर्वाल्पाहार के काल की प्ररूपणा—द्वितीय सूत्र से चतुर्थ सूत्र तक जीव के अनाहारकत्व और सर्वाल्पाहारकत्व की प्ररूपणा चौवीस ही दण्डकों की अपेक्षा से की गई है।

परभवगमनकाल में आहारक-अनाहारक रहस्य—सैद्धान्तिक दृष्टि से एक भव का आयुष्य पूर्ण करके जीव जब ऋजुगति से परभव में (उत्पत्तिस्थान में) जाता है, तब परभवसम्बन्धी आयुष्य के प्रथम समय में ही आहारक होता है, किन्तु जब (वक्र) विग्रहगति से जाता है, तब प्रथम समय में वक्र मार्ग में चलता हुआ वह अनाहारक होता है, क्योंकि उत्पत्तिस्थान पर न पहुँचने से उसके आहरणीय पुद्गलों का अभाव होता है तथा जब एक वक्र (मोड) में दो समय में उत्पन्न होता है, तब पहले समय में अनाहारक और द्वितीय समय में आहारक होता है, जब दो वक्रों (मोडों) से तीन समय में उत्पन्न होता है, तब प्रारम्भ के दो समयों तक अनाहारक रहता है, तीसरे में आहारक होता है और जब तीन वक्रों से चार समय में उत्पन्न होता है, तब तीन समय तक अनाहारक और चौथे में नियमतः आहारक होता है। तीन मोडों का क्रम इस प्रकार होता है—त्रसनाडी से बाहर विदिशा में रहा हुआ कोई जीव, जब अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में त्रसनाडी से बाहर की दिशा में उत्पन्न होता है, तब वह अवश्य ही प्रथम एक समय में विश्रेणी से समश्रेणी में आता है। दूसरे समय में त्रसनाडी में प्रविष्ट होता है, तृतीय समय में ऊर्ध्वलोक में जाता है और चौथे समय में लोकनाडी से बाहर निकलकर उत्पत्तिस्थान में उत्पन्न होता है। इनमें से पहले के तीन समयों में तीन वक्र समश्रेणी में जाने से हो जाते हैं। जब त्रसनाडी से निकल कर जीव बाहर विदिशा में ही उत्पन्न हो जाता है, तो चार समय में चार वक्र भी हो जाते हैं, पांचवें समय में वह उत्पत्तिस्थान को प्राप्त करता है। ऐसा कई आचार्य कहते हैं।

जो नारकादि त्रस, त्रसजीवों में ही उत्पन्न होता है, उसका गमनागमन त्रसनाडी से बाहर नहीं होता, अतएव वह तीसरे समय में नियमतः आहारक हो जाता है। जैसे—कोई मत्स्यादि भरतक्षेत्र के पूर्वभाग में स्थित है, वह वहाँ से मरकर ऐरवतक्षेत्र के पश्चिम भाग में नीचे नरक में उत्पन्न होता है, तब एक ही समय में भरतक्षेत्र के पूर्व भाग से पश्चिम भाग में जाता है, दूसरे समय में ऐरवत क्षेत्र के पश्चिम भाग में जाता है और तीसरे समय में नरक में उत्पन्न होता है। इन तीन समयों में से प्रथम दो में वह अनाहारक और तीसरे समय में आहारक होता है।

सर्वाल्पाहारता दो समयों में—उत्पत्ति के प्रथम समय में आहार ग्रहण करने का हेतुभूत शरीर अल्प होता है, इसलिए उस समय जीव सर्वाल्पाहारी होता है तथा अन्तिम समय में प्रदेशों के

सकुचित हो जाने एव जीव के शरीर के अल्प अवयवो मे स्थित हो जाने के कारण जीव सर्वाल्पाहारी होता है ।

अनाभोगनिर्वर्तित आहार की अपेक्षा से यह कथन किया गया है। क्योकि अनाभोगनिर्वर्तित आहार बिना इच्छा के अनुपयोगपूर्वक ग्रहण किया जाता है । वह उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक प्रतिसमय सतत होता है, किन्तु आभोगनिर्वर्तित आहार नियत समय पर और इच्छापूर्वक ग्रहण किया हुआ होता है ।[1]

लोक के सस्थान का निरूपण

५ किसठिते ण भते ! लोए पण्णत्ते ?

गोयमा ! सुपतिट्ठगसठिते लोए पण्णत्ते, हेट्ठा वित्थिण्णे जाव उप्पि उड्ढमुइगाकारसठिते । तसि च ण सासयसि लोगसि हेट्ठा वित्थिण्णसि जाव उप्पि उड्ढमुइगाकारसठितसि उप्पन्ननाणदसणधरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणति पासति, अजीवे वि जाणति पासति । ततो पच्छा सिज्झति जाव अत करेति ।

[५ प्र] भगवन् ! लोक का सस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! लोक का सस्थान सुप्रतिष्ठिक (सकोरे) के आकार का कहा गया है। वह नीचे विस्तीर्ण (चौडा) है और यावत् ऊपर ऊर्ध्व मृदग के आकार का है । ऐसे नीचे से विस्तृत यावत् ऊपर ऊर्ध्वमृदगाकार इस शाश्वत लोक मे उत्पन्नकेवलज्ञान दर्शन के धारक, अर्हन्त, जिन, केवली जीवो को भी जानते और देखते हैं तथा अजीवो को भी जानते और देखते हैं। इसके पश्चात् वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होते हैं, यावत् सब दु खो का अन्त करते हैं ।

विवेचन—लोक के सस्थान का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे लोक के आकार का उपमा द्वारा निरूपण किया गया है ।

लोक का सस्थान—नीचे एक उलटा सकोरा (शराव) रखा जाए, फिर उस पर एक सीधा और उस पर एक उलटा सकोरा रखा जाए तो लोक का सस्थान बनता है। लोक का विस्तार नीचे सात रज्जू परिमाण है । ऊपर क्रमश घटते हुए सात रज्जू की ऊँचाई पर एक रज्जू विस्तृत है। तत्पश्चात् उत्तरोत्तर क्रमश बढ़ते हुए साढे दस रज्जू की ऊँचाई पर ५ रज्जू और शिरोभाग में १ रज्जू का विस्तार है । मूल (नीचे) से लेकर ऊपर तक की ऊँचाई १४ रज्जू है ।

लोक की आकृति को यथार्थरूप से समझाने के लिए लोक के तीन विभाग किए गए हैं—अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक । अधोलोक का आकार उलटे सकोरे (शराव) जसा है, तिर्यक्लोक का आकार झालर या पूर्ण चन्द्रमा जसा है और ऊर्ध्वलोक का आकार ऊर्ध्व मृदग जैसा है ।[2]

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८७-२८८

२ भगवती (हिन्दीविवेचन युक्त) भाग-३, पृ १०८२

श्रमणोपाश्रय मे बैठकर सामायिक किये हुए श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया

६ [१] समणोवासगस्स ण भते ! समाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स तस्स ण भते ! किं ईरियावहिया किरिया कज्जइ ? सपराइया किरिया कज्जति ?

गोतमा ! नो ईरियावहिया किरिया कज्जति, सपराइया किरिया कज्जति ।

[६-१ प्र] भगवन् ! श्रमण के उपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक किये हुए श्रमणोपासक (निग्रन्थ साधुओ के उपासक=श्रावक) को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[६-१ उ] गौतम ! उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती ।

[२] से केणट्ठेण जाव सपराइया० ?

गोयमा ! समणोवासयस्स ण सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स आया अहिकरणी भवति । आयहिगरणवत्तिय च ण तस्स नो ईरियावहिया किरिया कज्जति, सपराइया किरिया कज्जति । से तेणट्ठेण जाव सपराइया० ।

[६-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है ?

[६ २ उ] गौतम ! श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक किए हुए श्रमणोपासक की आत्मा अधिकरणी (कषाय के साधन से युक्त) होती है । जिसकी आत्मा अधिकरण का निमित्त होती है, उसे ऐर्यापथिकी क्रिया नही लगती, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है । हे गौतम ! इसी कारण से (कहा गया है कि उसे) यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

विवेचन—श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए सामायिक किए हुए श्रमणोपासक को लगने वाली क्रिया-प्रस्तुत सूत्र मे श्रमणोपाश्रयासीन सामायिकधारी श्रमणोपासक को साम्परायिक क्रिया लगने की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है ।

साम्परायिक क्रिया लगने का कारण—जो व्यक्ति सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे नही बैठा हुआ है, उसे तो साम्परायिक क्रिया लग सकती है, किन्तु इसके विपरीत जो सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे बैठा है, उसे ऐर्यापथिक क्रिया न लग कर साम्परायिक क्रिया लगने का कारण है उक्त श्रावक मे कषाय का सद्भाव । जब तक आत्मा मे कषाय रहेगा, तब तक तन्निमित्तक साम्परायिक क्रिया लगेगी, क्योकि साम्परायिक क्रिया कषाय के कारण लगती है ।

आया अहिकरणी भवति—उसका आत्मा=जीव अधिकरण—हल, शकट आदि, कषाय के आश्रयभूत अधिकरण वाला है ।[1]

श्रमणोपासक के व्रत-प्रत्याख्यान मे अतिचार लगने की शका का समाधान

७ समणोवासगस्स ण भते ! पुव्वामेव तसपाणसमारभे पच्चक्खाते भवति, पुढविसमारभे

---

1 भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८९

श्रपच्चक्खाते भवति, से य पुढविं खणमाणे अन्नयर तस पाण विहिंसेज्जा, से ण भते ! त वत अतिचरति ?

णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवाताए आउट्टति ।

[७ प्र] भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले से ही त्रस-प्राणियो के समारम्भ (हनन) का प्रत्याख्यान कर लिया हो, किन्तु पृथ्वीकाय के समारम्भ (वध) का प्रत्याख्यान नही किया हो, उस श्रमणोपासक से पृथ्वी खोदते हुए किसी त्रसजीव की हिंसा हो जाए, तो भगवन् ! क्या उसके व्रत (त्रसजीववध-प्रत्याख्यान) का उल्लघन होता है ?

[७ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही, क्योंकि वह (श्रमणोपासक) त्रस जीव के अतिपात (वध) के लिए प्रवृत्त नही होता ।

८ समणोवासगस्स ण भते ! पुव्वामेव वणस्सतिसमारभे पच्चक्खाते, से य पुढविं खणमाणे अन्नयरस्स रुक्खस्स मूल छिंदेज्जा, से ण भते ! त वत अतिचरति ?

णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवाताए आउट्टति ।

[८ प्र] भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले से ही वनस्पति के समारम्भ का प्रत्याख्यान किया हो, (किन्तु पृथ्वी के समारम्भ का प्रत्याख्यान न किया हो,) पृथ्वी को खोदते हुए (उसके हाथ से) किसी वृक्ष का मूल छिन्न हो (कट) जाए, तो भगवन् ! क्या उसका व्रत भग होता है ?

[८ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, क्योकि वह श्रमणोपासक उस (वनस्पति) के अतिपात (वध) के लिए प्रवृत्त नही होता ।

विवेचन—श्रमणोपासक के व्रतप्रत्याख्यान मे दोष लगने की शका का समाधान—प्रस्तुत सूत्र द्वय मे त्रसजीवो या वनस्पतिकायिक जीवो की हिंसा का त्याग किये हुए व्यक्तियो को पृथ्वी खोदते समय किसी त्रस जीव का या वनस्पतिकाय का हनन हो जाने से स्वीकृत व्रतप्रत्याख्यान मे अतिचार लगने का निषेध प्रतिपादित किया गया है ।

अहिंसाव्रत मे अतिचार नहीं लगता—त्रसजीववध का या वनस्पतिकायिक-जीववध का प्रत्याख्यान किये हुए श्रमणोपासक से यदि पृथ्वी खोदते समय किसी त्रसजीव की हिंसा हो जाए अथवा किसी वृक्ष की जड कट जाए तो उसके द्वारा गृहीत व्रत प्रत्याख्यान मे दोष नही लगता, क्योंकि सामान्यत देशविरति श्रावक के सकल्पपूर्वक आरम्भी हिंसा का त्याग होता है, इसलिए जिन जीवो की हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया है, उन जीवो की सकल्पपूर्वक हिंसा करने मे जब तक वह प्रवृत्त नही होता, तब तक उसका व्रतभग नही होता ।[1]

श्रमण या माहन को आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ

९ समणोवासए ण भते ! तहारूव समण वा माहण वा फासुएण एसणिज्जेण असण पाण खाइम साइमेण पडिलाभेमाणे किं लभति ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक २८९

गोयमा ! समणोवासए ण तहारूव समण वा माहण वा जाव पडिलाभेमाणे तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पाएति, समाहिकारए ण तमेव समाहिं पडिलभति ।

[९ प्र] भगवन् ! तथारूप (उत्तम) श्रमण और माहन को प्रासुक (अचित्त), एपणीय (भिक्षा मे लगने वाले दोषो से रहित) अशन, पान, खादिम और स्वादिम (चतुर्विध आहार) द्वारा प्रतिलाभित करने (बहराते—विधिपूर्वक देते) हुए श्रमणोपासक को क्या लाभ होता है ?

[९ उ] गौतम ! तथारूप श्रमण या माहन को यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक तथारूप श्रमण या माहन को समाधि उत्पन्न करता है । उन्हे समाधि प्राप्त कराने वाला श्रमणोपासक उसी समाधि को स्वय भी प्राप्त करता है ।

१० समणोवासए ण भते ! तहारूव समण वा माहण वा जाव पडिलाभेमाणे किं चयति ?

गोयमा ! जीविय चयति, दुच्चय चयति, दुक्कर करेति, दुल्लभ लभति, बोहिं बुज्झति ततो पच्छा सिज्झति जाव अत करेति ।

[१० प्र] भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक क्या त्याग (या सचय) करता है ?

[१० उ] गौतम ! वह श्रमणोपासक जीवित (जीवननिर्वाह के कारणभूत जीवितवत् अन्नपानादि द्रव्य) का त्याग करता—(देता) है, दुस्त्यज वस्तु का त्याग करता है, दुष्कर कार्य करता है दुर्लभ वस्तु का लाभ लेता है, बोधि (सम्यग्दर्शन) का बोध प्राप्त (अनुभव) करता है, उसके पश्चात् वह सिद्ध (मुक्त) होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ।

विवेचन—श्रमण या माहन को आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को लाभ— प्रस्तुत सूत्रद्वय मे श्रमण या माहन को आहार देने वाले श्रमणोपासक को प्राप्त होने वाले लाभ एव विशिष्ट त्याग—सचय लाभ का निरूपण किया गया है ।

चयति क्रिया के विशेष अर्थ—मूलपाठ मे आए हुए 'चयति' क्रिया पद के फलितार्थ के रूप मे शास्त्रकार ने श्रमणोपासक को होने वाले ८ लाभो का निरूपण किया है—

१ अन्नपानी देना—जीवनदान देना है, अत वह जीवन का दान (त्याग) करता है ।
२ जीवित की तरह दुस्त्याज्य अन्नादि द्रव्य का दुष्कर त्याग करता है ।
३ त्याग का अर्थ अपने से दूर करना—विरहित करना भी है । अत जीवित की तरह जीवित को अर्थात् कर्मों की दीर्घ स्थिति को दूर करता—ह्रस्व करता—है ।
४ दुष्ट कर्म द्रव्यो का सचय=दुश्चय है, उसका त्याग करता है ।
५ फिर अपूर्वकरण के द्वारा ग्रन्थिभेदरूप दुष्कर कार्य को करता है ।
६ इसके फलस्वरूप दुर्लभ—अनिवृत्तिकरणरूप दुर्लभ वस्तु को उपलब्ध करता है अर्थात् चय=उपार्जन करता है ।
७ तत्पश्चात् बोधि का लाभ चय=उपार्जन=अनुभव करता है ।

८ तदनन्तर परम्परा से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् समस्त कर्मों—दुःखो का अन्त (त्याग) कर देता है।[1]

दान विशेष से बोधि और सिद्धि की प्राप्ति—अन्यत्र भी अनुकम्पा, अकामनिर्जरा, बालतप दानविशेष एवं विनय से बोधिगुण प्राप्ति का तथा कई जीव उसी भव मे सर्वकर्मविमुक्त होकर मुक्त हो जाते हैं और कई जीव महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर तीसरे भव में सिद्ध हो जाते हैं यह उल्लेख मिलता है।[2]

निःसगतादि कारणो से कर्मरहित (मुक्त) जीव की (ऊर्ध्व) गति-प्ररूपणा

११ अत्थि ण भंते! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

हता, अत्थि।

[११ प्र] भगवन्! क्या कर्मरहित जीव की गति होती (स्वीकृत की जाती) है ?

[११ उ] हाँ गौतम! अकर्म जीव की गति होती—स्वीकार की जाती—है।

१२ कह ण भंते! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

गोयमा! निस्संगताए १ निरंगणताए २ गतिपरिणामेण ३ बंधणछेयणताए ३ निरिंधणताए ५ पुव्वपओगेण ६ अकम्मस्स गती पण्णायति।

[१२ प्र] भगवन्! अकर्म जीव की गति कैसे होती है ?

[१२ उ] गौतम! निःसगता से, नीरागता (निरजनता) से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद (विच्छेद) हो जाने से, निरिन्धनता—(कर्मरूपी इन्धन से मुक्ति) होने से और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है।

१३ [१] कह ण भंते! निस्संगताए १ निरंगणताए २ गतिपरिणामेण ३ बंधणछेयणताए ४ निरिंधणताए ५ पुव्वप्पओगेण ६ अकम्मस्स गती पण्णायति ?

गो०! से जहानामए केइ पुरिसे सुक्क तुंब निच्छिद्दं निरुवहतं आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे परिकम्मेमाणे दब्भेहि य कुसेहि य वेढेति, वेढित्ता अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपति, २ उण्हे दलयति, भूइं भूइं सुक्कं समाण अत्थाहमतारमपोरिसियसि उदगसि पक्खिवेज्जा, से नूण गोयमा! से तुबे तेसिं अट्ठण्ह मट्टियालेवाण गुरुयत्ताए भारियत्ताए सलिलतलमतिवतित्ता अहे धरणितलपतिट्ठाणे भवति ?

हता, भवति। अहे ण से तुबे तेसिं अट्ठण्ह मट्टियालेवाण परिक्खएण धरणितलमतिवतित्ता उप्पि सलिलतलपतिट्ठाणे भवति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राव २८९

२ 'अणुकंपऽकामणिज्जरबालतवे दाण विणए' इत्यादि तथा—

'केई तेणेव भवेण निव्वुया सव्वकम्मओ मुक्का।

केई तइयभवेण सिज्झिस्सति जिणसगासे' ॥१॥—भगवती अ वृत्ति, प २८९ मे उद्धृत

हता भवति । एव खलु गोयमा ! निस्संगताए निरंगणताए गतिपरिणामेण अकम्मस्स गती पण्णायति ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! नि संगता से, नीरागता से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद होने से, निरिन्धनता से और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है ?

[१३-१ उ] गौतम ! जैसे, कोई पुरुष एक छिद्ररहित और निरुपहत (बिना फटे-टूटे) सूखे तुम्बे पर क्रमश परिकर्म (संस्कार) करता-करता उस पर डाभ (नारियल की जटा) और कुश लपेटे। उन्हे लपेट कर उस पर आठ बार मिट्टी के लेप लगा दे, फिर उसे (सूखने के लिए) धूप मे रख दे। बार-बार (धूप मे देने से) अत्यन्त सूखे हुए उस तुम्बे को अथाह, अतरणीय (जिस पर तैरा न जा सके), पुरुष-प्रमाण से भी अधिक जल मे डाल दे, तो हे गौतम ! वह तुम्बा मिट्टी के उन आठ लेपो से अधिक भारी हो जाने से क्या पानी के उपरितल (ऊपरी सतह) को छोड कर नीचे पृथ्वीतल पर (पैंदे मे) जा बैठता है ?

(गौतम स्वामी—) हाँ, भगवन् ! वह तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है। (भगवान् ने पुन पूछा—) गौतम ! (पानी मे पडा रहने के कारण) आठो ही मिट्टी के लेपो के (गलकर) नष्ट हो (उतर) जाने से क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड कर पानी के उपरितल पर आ जाता है ?

(गौतम स्वामी—) हाँ, भगवन् ! वह पानी के उपरितल पर आ जाता है। (भगवान्) हे गौतम ! इसी तरह नि संगता (कर्ममल या लेप हट जाने) से, नीरागता से एव गतिपरिणाम से कर्मरहित जीव की भी (ऊर्ध्व) गति होती (जानी या मानी) जाती है।

[२] कह ण भते ! बंधणछेदणत्ताए अकम्मस्स गती पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहानामए कलसिंबलिया ति वा, मुग्गसिंबलिया ति वा, माससिंबलिया ति वा, सिंबलिसिंबलिया ति वा, एरंडमिंजिया ति वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी फुडित्ताण एगंतमंत गच्छइ एव खलु गोयमा ! ० ।

[१३-२ प्र] भगवन् ! बन्धन का छेद हो जाने से अकर्मजीव की गति कैसे होती है ?

[१३ २ उ] गौतम ! जैसे कोई मटर की फली, मूग की फली, उडद की फली, शिम्बलि—सेम की फली, और एरण्ड के फल (बीज) को धूप मे रख कर सुखाए तो सूख जाने पर फटता है और उसमे का बीज उछल कर दूर जा गिरता है, हे गौतम ! इसी प्रकार कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने पर कर्मरहित जीव की गति होती है।

[३] कह ण भते । निरिंधणताए अकम्मस्स गती० ?

गोयमा ! से जहानामए धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढ वीससाए निव्वाघातेण गती पवत्तति एव खलु गोतमा ! ० ।

[१३-३ प्र] भगवन् ! इन्धनरहित होने (निरिन्धनता) से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

■ तदनन्तर परम्परा से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है, यावत् समस्त कर्मों—दु खो का अन्त (त्याग) कर देता है।[1]

दान विशेष से बोधि और सिद्धि की प्राप्ति—अन्यत्र भी अनुकम्पा, अकामनिर्जरा, बालतप दानविशेष एव विनय से बोधिगुण प्राप्ति का तथा कई जीव उसी भव मे सर्वकर्मविमुक्त होकर मुक्त हो जाते हैं और कई जीव महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर तीसरे भव मे सिद्ध हो जाते हैं, यह उल्लेख मिलता है।[2]

नि सगतादि कारणो से कर्मरहित (मुक्त) जीव की (ऊर्ध्व) गति-प्ररूपणा

११ अत्थि ण भते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

हता, अत्थि।

[११ प्र] भगवन् ! क्या कर्मरहित जीव की गति होती (स्वीकृत की जाती) है ?

[११ उ] हाँ गौतम ! अकर्म जीव की गति होती—स्वीकार की जाती—है।

१२ कह ण भते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

गोयमा ! निस्सगताए १ निरगणताए २ गतिपरिणामेण ३ बधणछेयणताए ३ निरिंधणताए ५ पुव्वपओगेण ६ अकम्मस्स गती पण्णायति।

[१२ प्र] भगवन् ! अकर्म जीव की गति कैसे होती है ?

[१२ उ] गौतम ! नि सगता से, नीरागता (निरजनता) से, गतिपरिणाम से, बन्धन के छेद (विच्छेद) हो जाने से, निरिन्धनता—(कर्मरूपी इन्धन से मुक्ति) होने से और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है।

१३ [१] कह ण भते ! निस्सगताए १ निरगणताए २ गतिपरिणामेण ३ बधणछेयणताए ४ निरिंधणताए ५ पुव्वप्पओगेण ६ अकम्मस्स गती पण्णायति ?

गो० ! से जहानामए केइ पुरिसे सुक्क तु ब निच्छिद्द निरुवहत आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे परिकम्मेमाणे दब्भेहि य कुसेहि य वेढेति, वेढित्ता अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिपति, २ उण्हे दलयति, भूइ भूइ सुक्क समाण अत्थाहमतारमपोरिसियसि उदगसि पक्खिवेज्जा, से नूण गोयमा ! से तु बे तेसिं अट्ठण्ह मट्टियालेवाण गुरुयत्ताए भारियत्ताए सलिलतलमतिवतित्ता अहे धरणितलपतिट्ठाणे भवति ?

हता, भवति। अहे ण से तु बे तेसिं अट्ठण्ह मट्टियालेवाण परिक्खएण धरणितलमतिवतित्ता उप्पि सलिलतलपतिट्ठाणे भवति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २८९

२ 'अणुकपऽकामणिज्जरबालतवे दाण विणए' इत्यादि तथा—
'केई तेणेव भवेण निव्वुया सव्वकम्मओ मुक्का।
केई तइयभवेण सिज्झिस्सति जिणसगासे' ॥१॥—भगवती अ वृत्ति, प २८९ म उद्धृत

हता भवति। एव खलु गोयमा ! निस्संगताए निरंगणताए गतिपरिणामेण अकम्मस्स गती पण्णायति।

[१३-१ प्र] भगवन् ! नि संगता से, नीरागता से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद होने से, निरिन्धनता से और पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति कैसे होती है ?

[१३-१ उ] गौतम ! जैसे, कोई पुरुष एक छिद्ररहित और निरुपहत (बिना फटे-टूटे) सूखे तुम्बे पर क्रमश परिकर्म (संस्कार) करता-करता उस पर डाभ (नारियल की जटा) और कुश लपेटे। उन्हे लपेट कर उस पर आठ बार मिट्टी के लेप लगा दे, फिर उसे (सूखने के लिए) धूप मे रख दे। बार-बार (धूप मे देने से) अत्यन्त सूखे हुए उस तुम्बे को अथाह, अतरणीय (जिस पर तैरा न जा सके), पुरुष-प्रमाण से भी अधिक जल मे डाल दे, तो हे गौतम ! वह तुम्बा मिट्टी के उन आठ लेपो से अधिक भारी हो जाने से क्या पानी के उपरितल (ऊपरी सतह) को छोड कर नीचे पृथ्वीतल पर (पैदे मे) जा बैठता है ?

(गौतम स्वामी—) हाँ, भगवन् ! वह तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है। (भगवान् ने पुन पूछा—) गौतम ! (पानी मे पड़ा रहने के कारण) आठो ही मिट्टी के लेपो के (गलकर) नष्ट हो (उतर) जाने से क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड कर पानी के उपरितल पर आ जाता है ?

(गौतम स्वामी—) हाँ, भगवन् ! वह पानी के उपरितल पर आ जाता है। (भगवान्—) हे गौतम ! इसी तरह नि संगता (कर्ममल का लेप हट जाने) से, नीरागता से एव गतिपरिणाम से कर्मरहित जीव की भी (ऊर्ध्व) गति होती (जानी या मानी) जाती है।

[२] कहं णं भंते ! बंधणछेदणत्ताए अकम्मस्स गती पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहानामए कलसिंबलिया ति वा, मुग्गसिंबलिया ति वा, माससिंबलिया ति वा, सिंबलिसिंबलिया ति वा, एरंडमिंजिया ति वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी फुडित्ताणं एगंतमंतं गच्छइ एवं खलु गोयमा ! ०।

[१३-२ प्र] भगवन् ! बन्धन का छेद हो जाने से अकर्मजीव की गति कैसे होती है ?

[१३-२ उ] गौतम ! जैसे कोई मटर की फली, मूंग की फली, उडद की फली, शिम्बलि—सेंम की फली, और एरण्ड के फल (बीज) को धूप मे रख कर सुखाए तो सूख जाने पर फटता है और उसमें का बीज उछल कर दूर जा गिरता है, हे गौतम ! इसी प्रकार कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने पर कर्मरहित जीव की गति होती है।

[३] कहं णं भंते ! निरिंधणताए अकम्मस्स गती० ?

गोयमा ! से जहानामए धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघातेणं गती पवत्तति एवं खलु गोतमा ! ०।

[१३-३ प्र] भगवन् ! इन्धनरहित होने (निरिन्धनता) से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

[१३-३ उ] गौतम ! जैसे इन्धन से छूट (मुक्त) हुए धूए की गति किसी प्रकार की रुकावट (व्याघात) न हो तो स्वाभाविक रूप से (विस्रसा) ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! कर्मरूप इन्धन से रहित होने से कर्मरहित जीव की गति (ऊपर की ओर) होती है।

[४] कहं णं भंते ! पुव्वप्पयोगेणं अकम्मस्स गती पण्णत्ता ?

गोतमा ! से जहानामए कंडस्स कोदंडविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही निव्वाघातेणं गती पवत्तति एवं खलु गोयमा ! नीसंगयाए निरंगणयाए पुव्वप्पयोगेणं अकम्मस्स गती पण्णत्ता।

[१३-४ प्र] भगवन् ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

[१३-४ उ] गौतम ! जैसे—धनुष से छूटे हुए बाण की गति बिना किसी रुकावट के लक्ष्याभिमुखी (निशान की ओर) होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की गति होती है।

इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि निःसंगता से, नीरागता से यावत् पूर्वप्रयोग से कर्मरहित जीव की (ऊर्ध्व) गति होती है।

विवेचन—निःसंगतादि कारणों से कर्मरहित (मुक्त) जीव की (ऊर्ध्व) गति प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ११ से १३ तक) में असंगता आदि हेतुओं से दृष्टान्तपूर्वक कर्मरहित जीव की गति की प्ररूपणा की गई है।

अकर्मजीव की गति के छह कारण—(१) निःसंगता=निर्लेपता। जैसे तुम्बे पर डाभ और कुश को लपेट कर मिट्टी के आठ गाढे लेप लगाने के कारण जल पर तैरने के स्वभाव वाला तुम्बा भी भारी होने से पानी के तले बैठ जाता है किन्तु मिट्टी के लेप हट जाने पर वह तुम्बा पानी के ऊपरी तल पर आ जाता है, वैसे ही आत्मा कर्मों के लेप से भारी हो जाने से नरकादि अधोगमन करता रहता है, किन्तु कर्मलेप से रहित हो जाने पर स्वतः ही ऊर्ध्वगति करता है। (२) नीरागता—मोहरहितता। मोह के कारण कर्मयुक्त जीव भारी होने से ऊर्ध्वगति नहीं कर पाता, मोह सर्वथा दूर होते ही वह कर्मरहित होकर ऊर्ध्वगति करता है। (३) गतिपरिणाम—जिस प्रकार तिर्यग्वहन स्वभाव वाले वायु के सम्बन्ध से रहित दीपशिखा स्वभाव से ऊपर की ओर गमन करती है, वैसे ही मुक्त (कर्मरहित) आत्मा भी नानागतिरूप विकार के कारणभूत कर्म का अभाव होने से ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से ऊपर की ओर ही गति करता है। (४) बन्धछेद—जिस प्रकार बीजकोष के बन्धन के टूटने से एरण्ड आदि के बीज की ऊर्ध्वगति देखी जाती है, वैसे ही मनुष्यादि भव में बांधे रखने वाले गति-जाति नाम आदि समस्त कर्मों के बन्ध का छेद होने से मुक्त जीव की ऊर्ध्वगति जानी जाती है। (५) निरिन्धनता—जैसे इन्धन से रहित होने से धुआं स्वभावतः ऊपर की ओर गति करता है, वैसे ही कर्मरूप इन्धन से रहित होने से अकर्म जीव की स्वभावतः ऊर्ध्वगति होती है। (६) पूर्वप्रयोग—मूल में धनुष से छूटे हुए बाण की निराबाध लक्ष्याभिमुख गति का दृष्टान्त दिया गया है। दूसरा दृष्टान्त यह भी है—जैसे कुम्हार के प्रयोग से किया गया हाथ, दण्ड और चक्र के संयोगपूर्वक जो चाक घूमता है, वह चाक उस प्रयत्न (प्रयोग) के बन्द होने पर भी पूर्वप्रयोगवश संस्कारक्षय होने तक घूमता है, इसी प्रकार संसारस्थित आत्मा ने मोक्ष प्राप्ति के लिए जो अनेक

बार प्रणिधान किया है, उसका अभाव होने पर भी उसके आवेशपूर्वक मुक्त (कर्मरहित) जीव का गमन निश्चित होता है।[1]

दुःखी को दुःख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तों की प्ररूपणा

१४ दुक्खी भंते ! दुक्खेण फुडे ? अदुक्खी दुक्खेण फुडे ?

गोयमा ! दुक्खी दुक्खेण फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेण फुडे।

[१४ प्र.] भगवन् ! क्या दुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट (बद्ध या व्याप्त) होता है अथवा अदुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट होता है ?

[१४ उ.] गौतम ! दुःखी जीव ही दुःख से स्पृष्ट होता है, किन्तु अदुःखी (दुःखरहित) जीव दुःख से स्पृष्ट नहीं होता।

१५ [१] दुक्खी भंते ! नेरतिए दुक्खेण फुडे ? अदुक्खी नेरतिए दुक्खेण फुडे ?

गोयमा ! दुक्खी नेरतिए दुक्खेण फुडे, नो अदुक्खी नेरतिए दुक्खेण फुडे।

[१५-१ प्र.] भगवन् ! क्या दुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है या अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट होता है ?

[१५-१ उ.] गौतम ! दुःखी नैरयिक ही दुःख से स्पृष्ट होता है, अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पृष्ट नहीं होता।

[२] एवं दंडओ जाव वेमाणियाणं।

[१५-२] इसी तरह वैमानिक पर्यन्त (चौबीस ही) दण्डकों में कहना चाहिए।

[३] एवं पंच दंडगा नेयव्वा—दुक्खी दुक्खेण फुडे १ दुक्खी दुक्खं परियादियति २ दुक्खी दुक्खं उदीरेति ३ दुक्खी दुक्खं वेदेति ४ दुक्खी दुक्खं निज्जरेति ५।

[१५-३] इसी प्रकार के पांच दण्डक (आलापक) कहने चाहिए यथा—(१) दुःखी दुःख से स्पृष्ट होता है (२) दुःखी दुःख का परिग्रहण करता है, (३) दुःखी दुःख की उदीरणा करता है, (४) दुःखी दुःख का वेदन करता है और (५) दुःखी दुःख की निर्जरा करता है।

विवेचन—दुःखी को दुःख की स्पृष्टता आदि सिद्धान्तों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्रद्वय में दुःखी जीव ही दुःख का स्पर्श, ग्रहण, उदीरण, वेदन और निर्जरण करता है, अदुःखी नहीं, इस सिद्धान्त की मीमांसा की गई है।

दुःखी और अदुःखी की मीमांसा—यहाँ दुःख के कारणभूत कर्म को दुःख कहा गया है। इस दृष्टि से कर्मवान् जीव को दुःखी और अकर्मवान् (सिद्ध भगवान्) को अदुःखी कहा गया है। अतः जो दुःखी (कर्मयुक्त) है, वही दुःख (कर्म) से स्पृष्ट-बद्ध होता है, वही दुःख (कर्म) को ग्रहण (निधत्त)

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक २९० (ख) तत्त्वार्थभाष्य, अ. १० सू. ६ पृ. २२८-२२९

(ग) 'पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च तद्गतिः।' तत्त्वार्थ-सर्वार्थसिद्धि, अ. १०, सू. ६

करता है, दु ख (कर्म) की उदीरणा करता है, वेदन भी करता है और वह (कर्मवान्) स्वय ही स्व दु ख (कर्म) को निर्जरा करता है। अत अकर्मवान् (अदु खी-सिद्ध) मे ये ५ बातें नहीं होती।[1]

उपयोगरहित गमनादि प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगने का सयुक्तिक निरूपण

१६ [१] अणगारस्स ण भंते ! अणाउत्त गच्छमाणस्स वा, चिट्ठमाणस्स वा, निसीय-माणस्स वा, तुयट्टमाणस्स वा, अणाउत्त वत्थ पडिग्गह कबल पायपु छण गेण्हमाणस्स वा, निक्खिव माणस्स वा, तस्स ण भंते ! कि इरियावहिया किरिया कज्जति ? सपराइया किरिया कज्जति ?

गो० ! नो इरियावहिया किरिया कज्जति, सपराइया किरिया कज्जति ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! उपयोगरहित (अनायुक्त) गमन करते हुए, खडे होते (ठहरते) हुए, बैठते हुए या सोते (करवट बदलते) हुए और इसी प्रकार बिना उपयोग के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोछन (प्रमाजनिका या रजोहरण) ग्रहण करते (उठाते) हुए या रखते हुए अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[१६-१ उ] गौतम ! ऐसे (पूर्वोक्त) अनगार को ऐर्यापथिक क्रिया नही लगती, साम्परायिक क्रिया लगती है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! जस्स ण कोह-माण माया-लोभा वोच्छिन्ना भवति तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जति, नो सपराइया किरिया कज्जति । जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिन्ना भवति तस्स ण सपराइया किरिया कज्जति, नो इरियावहिया । अहासुत्त रियं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जति । उस्सुत्त रीयमाणस्स सपराइया किरिया कज्जति, से ण उस्सुत्तमेव रियति । से तेणट्ठेणं० ।

[१६-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ?

[१६-२ उ] गौतम ! जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (अनुदित-उदयावस्थारहित) हो गए, उस को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नही लगती । किन्तु जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ, (ये चारो) व्युच्छिन्न (अनुदित) नहीं हुए, उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती । सूत्र (आगम) के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है और उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है । उपयोगरहित गमनादि प्रवृत्ति करने वाला अनगार, सूत्रविरुद्ध प्रवृत्ति करता है । हे गौतम ! इस कारण से कहा गया है कि उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

विवेचन—उपयोगरहित गमनादि प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगने का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत १६वें सूत्र मे उपयोगशून्य होकर गमनादि क्रिया करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी नही, साम्परायिकी क्रिया लगती है, इसका युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है ।

---

१ भगवती सूत्र अ वृत्ति, पत्रांक २९१

'वोच्छिन्ना' शब्द का तात्पर्य—मूलपाठ मे जो 'वोच्छिन्ना' शब्द है, उसके 'अनुदित' और 'क्षीण' ये दोनो अर्थ युक्तिसगत हैं, क्योकि ऐर्यापथिकी क्रिया ११वे, १२वें और १३वें गुणस्थान मे पायी जाती है और १२वें १३वे गुणस्थान मे कषाय का सर्वथा क्षय हो जाता है। जबकि ११वे गुणस्थान मे कषाय का क्षय नही होकर उसका उपशम होता है, अर्थात्—कषाय उदयावस्था मे नही रहता। इस दृष्टि से 'वोच्छिन्न' शब्द के यहा 'क्षीण और अनुदित' दोनो अर्थ लेने चाहिए।[1]

'अहासुत्त' और 'उस्सुत्त' का तात्पर्यार्थ—'अहासुत्त' का सामान्य अर्थ है—'सूत्रानुसार', परन्तु यहा ऐर्यापथिक क्रिया की दृष्टि से विचार करते समय 'अहासुत्त' का अर्थ होगा—यथाख्यात चारित्र-पालन की विधि के सूत्रों (नियमो) के अनुसार क्योकि ११वें से १३वे गुणस्थानवर्ती यथाख्यातचारित्री को ही ऐर्यापथिक क्रिया लगती है। इसलिए यथाख्यातचारित्री अनगार ही 'अहासुत्त' प्रवृत्ति करने वाले कहे जा सकते है। १०वें गुणस्थान तक के अनगार सूक्ष्मसम्परायी (सकषायी) होने के कारण अहासुत्त (यथाख्यात—क्षायिक चारित्रानुसार) प्रवृत्ति नही करते, इसलिए उन्हे क्षयोपशमजन्य चारित्र के अनुसार कषायभावयुक्त प्रवृत्ति करने के कारण साम्परायिक क्रिया लगती है। अत यहा[2] 'उत्सूत्र' का अर्थ श्रुतविरुद्ध प्रवृत्ति करना नही, अपितु, यथाख्यातचारित्र के अनुरूप प्रवृत्ति न करना होता है।

अगारादि दोष से युक्त और मुक्त तथा क्षेत्रातिक्रान्तादि दोषयुक्त एव शस्त्रातीतादि-युक्त पान-भोजन का अर्थ

१७ अह भते! सइगालस्स सधूमस्स सजोयणादोसदुट्ठस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा! जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण पाण खाइम साइम पडिगाहित्ता मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववन्ने आहार आहारेति एस ण गोयमा! सइगाले पाण-भोयणे। जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण पाण खाइम-साइम पडिगाहित्ता महयाअप्पत्तिय कोह-किलाम करेमाणे आहारमाहारेति एस ण गोयमा! सधूमे पाणभोयणे। जे ण निग्गथे वा २ जाव पडिगाहित्ता गुणुप्पायणहेतु अन्नदव्वेण सद्धि सजोएत्ता आहारमाहारेति एस ण गोयमा! सजोयणा-दोसदुट्ठे पाण-भोयणे। एस ण गोयमा! सइगालस्स सधूमस्स सजोयणादोसदुट्ठस्स पाण भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

[१७ प्र] भगवन्! अगारदोष, धूमदोष और सयोजनादोष से दूषित पान भोजन (आहार-पानी) का क्या अर्थ कहा गया है ?

[१७ उ] गौतम! जो निर्ग्रन्थ (साधु) अथवा निर्ग्रन्थी (साध्वी) प्रासुक और एषणीय अशन पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके उसमे मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त (अध्युपपन्न=एकाग्रचित्त) होकर आहार करते है, हे गौतम! यह अगारदोष से दूषित आहार-पानी कहलाता है। जो निग्रन्थ अथवा निग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप आहार ग्रहण करके, उसके प्रति अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक, क्रोध से खिन्नता करते हुए आहार

---

१ भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचन) भाग-३, पृ १०९५

२ श्री भगवती उपक्रम, पृष्ठ ५९

करते हैं, तो हे गौतम ! यह धूमदोष से दूषित आहार-पानी कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक यावत् आहार ग्रहण करके गुण (स्वाद) उत्पन्न करने हेतु दूसरे पदार्थों के साथ संयोग करके आहार-पानी करते हैं, हे गौतम ! वह आहार-पानी संयोजना दोष से दूषित कहलाता है। हे गौतम ! यह अंगार दोष, धूमदोष और संयोजना दोष से दूषित पान भोजन का अर्थ कहा गया है।

१८ अह भंते ! वीतिंगालस्स वीयधूमस्स संजोयणादोसविप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जे ण णिग्गथे वा २ जाव पडिगाहेत्ता अमुच्छिते जाव आहारेति एस ण गोयमा ! वीतिंगाले पाण भोयणे । जे ण निग्गथे वा २ जाव पडिगाहेत्ता णो महताअप्पत्तिय जाव आहारेति, एस ण गोयमा ! वीतधूमे पाण-भोयणे । जे ण निग्गथे वा २ जाव पडिगाहेत्ता जहा लद्ध तहा आहार आहारेति एस ण गोतमा ! संजोयणादोसविप्पमुक्के पाण भोयणे । एस ण गोतमा ! वीतिंगालस्स वीतधूमस्स संजोयणादोसविप्पमुक्कस्स पाण भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते ।

[१८ प्र] भगवन् अंगार, धूम और संयोजना, इन तीन दोषों से मुक्त (रहित) पानी-भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ?

[१८ उ] गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप चतुर्विध आहार को ग्रहण करके मूर्च्छारहित यावत् आसक्तिरहित होकर आहार करते हैं, हे गौतम ! यह अंगारदोषरहित पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् अशनादि को ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक यावत आहार नहीं करता है, हे गौतम ! यह धूम-दोषरहित पान-भोजन है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत अशनादि को ग्रहण करके, जैसा मिला है, वैसा ही आहार कर लेते हैं, (स्वादिष्ट बनाने के लिए उसमें दूसरे पदार्थों का संयोग नहीं करते,) तो हे गौतम ! यह संयोजनादोषरहित पान-भोजन कहलाता है। हे गौतम ! यह अंगारदोष-रहित, धूमदोषरहित एवं संयोजनादोषविमुक्त पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

१९ अह भंते ! खेत्तातिक्कतस्स कालातिक्कतस्स मग्गातिक्कतस्स पमाणातिक्कतस्स पाण भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण पाण-खाइम साइम अणुग्गते सूरिए पडिगाहित्ता उग्गते सूरिए आहार आहारेति एस ण गोतमा ! खेत्तातिक्कते पाण-भोयणे । जे ण निग्गथे वा २ जाव० साइम पढमाए पोरिसीए पडिगाहेत्ता पच्छिम पोरिसिं उवायणावेत्ता आहार आहारेति एस ण गोयमा ! कालातिक्कते पाण-भोयणे । जे ण निग्गथे वा २ जाव० सातिम पडिगाहित्ता पर अद्धजोयणमेराए वीतिक्कमावेत्ता आहारमाहारेति एस ण गोयमा ! मग्गातिक्कते पाण भोयणे । जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज जाव सातिम पडिगाहित्ता पर बत्तीसाए कुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ताण कवलाण आहारमाहारेति एस ण गोतमा ! पमाणातिक्कते पाण भोयणे । अट्ठकुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अप्पाहारे, दुवालसकुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अवड्ढोमोयरिया, सोलसकुक्कुडिअडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे दुभागप्पत्ते,

चउव्वीस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते जाव आहारमाहारेमाणे ओमोदरिया, बत्तीस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे पमाणपत्ते, एत्तो एक्केण वि गासेण ऊणग आहारमाहारेमाणे समणे निग्गंथे नो पकामरसभोई इति वत्तव्व सिया। एस ण गोयमा ! खेत्तातिक्कतस्स कालातिक्कतस्स मग्गातिक्कतस्स पमाणातिक्कतस्स पाण भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

[१९ प्र] भगवन् ! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का क्या अर्थ है ?

[१९ उ] गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप चतुर्विध आहार को सूर्योदय से पूर्व ग्रहण करके सूर्योदय के पश्चात् उस आहार को करते हैं, तो हे गौतम ! यह क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् चतुर्विध आहार को प्रथम प्रहर (पौरुषी) मे ग्रहण करके अन्तिम प्रहर (पौरुषी) तक रख कर सेवन करते हैं, तो हे गौतम ! यह कालातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी यावत् चतुर्विध आहार को ग्रहण करके आधे योजन (दो कोस) की मर्यादा (सीमा) का उल्लंघन करके खाते हैं, तो हे गौतम ! यह मार्गातिक्रान्त पान भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एव एषणीय यावत् आहार को ग्रहण करके कुक्कुटीअण्डक (मुर्गी के अडे के) प्रमाण बत्तीस कवल (कौर या ग्रास) की मात्रा से अधिक (ऊपरान्त) आहार करता है, तो हे गौतम ! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है।

कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण आठ कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु 'अल्पाहारी' कहलाता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण बारह कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु अपार्द्ध अवमोदरिका (किंचित् न्यून अर्ध ऊनोदरी) वाला होता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण सोलह कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु द्विभागप्राप्त आहार वाला (अर्धाहारी) कहलाता है। कुक्कुटी-अण्डकप्रमाण चौबीस कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु ऊनोदरिका वाला होता है। कुक्कुटी अण्डकप्रमाण बत्तीस कवल की मात्रा मे आहार करने वाला साधु प्रमाणप्राप्त (प्रमाणोपेत) आहारी कहलाता है। इस (बत्तीस कवल) से एक भी ग्रास कम आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ 'प्रकामरसभोजी' (अत्यधिक मधुरादिरसभोक्ता) नही है, यह कहा जा सकता है। हे गौतम ! यह क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

२० अह भंते ! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामितस्स एसियस्स वेसियस्स सामुदाणियस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जे ण निग्गंथे वा निग्गंथी वा निक्खित्तसत्थमुसले ववगतमाला वण्णगविलेवणे ववगतचुय-चइय चत्तदेह जीवविप्पजढ अकयमकारियमसकप्पियमणाहूतमकीतकडमणुद्दिट्ठ नवकोडी-परिसुद्ध दसदोसविप्पमुक्क उग्गम-उप्पायणेसणासुपरिसुद्ध वीतिंगाल वीतधूम सजोयणादोस विप्पमुक्क असुरसुर अचवचव अदुतमविलबित अपरिसाडि अक्खोव जण-वणाणुलेवणभूत सयमजाता-मायावत्तिय सजमभारवहणट्ठयाए बिलमिव पन्नगभूएण अप्पाणेण आहारमाहारेति, एस ण गोतमा ! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामितस्स जाव पाण भोयणस्स अट्ठे पन्नत्ते।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए पढमो उद्देसो समत्तो ॥

[२० प्र.] भगवन् ! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, व्येषित, सामुदायिक भिक्षारूप पान भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ?

[२० उ.] गौतम ! जो निग्रन्थ या निर्ग्रन्थी शस्त्र और मूसलादि का त्याग किये हुए हैं, पुष्प माला और चन्दनादि (वणक) के विलेपन से रहित हैं, वे यदि उस आहार को करते हैं, जो (भोज्य वस्तु मे पैदा होने वाले) कृमि आदि जन्तुओ से रहित, जीवच्युत और जीवविमुक्त (प्रासुक), है, जो साधु के लिए नही बनाया गया है, न बनवाया गया है, जो असकल्पित (आधाकर्मादि दोष रहित) है, अनाहूत (आमत्रणरहित) है, अक्रीतकृत (नही खरीदा हुआ) है, अनुद्दिष्ट (औद्देशिक दोष से रहित) है, नवकोटिविशुद्ध है, (शकित आदि) दस दोषो से विमुक्त है, उद्गम (१६ उद्गम-दोष) और उत्पादना (१६ उत्पादन) सम्बन्धी एषणा दोषो से रहित सुपरिशुद्ध है, अगारदोषरहित है, धूमदोषरहित है, सयोजनादोषरहित है तथा जो सुरसुर और चपचप शब्द से रहित, बहुत शीघ्रता और अत्यन्त विलम्ब से रहित, आहार का लेशमात्र भी छोडे बिना, नीचे न गिराते हुए, गाडी की धुरी के अजन अथवा घाव पर लगाए जाने वाले लेप (मल्हम) की तरह केवल सयमयात्रा के निर्वाह के लिए और सयम-भार को वहन करने के लिए, जिस प्रकार सर्प बिल मे (सीधा) प्रवेश करता है, उसी प्रकार जो आहार करते हैं, तो हे गौतम ! वह शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित यावत् पान-भोजन का अर्थ है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर यावत् गौतम-स्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—अगारादि दोष से युक्त और मुक्त, तथा क्षेत्रातिक्रान्तादि दोषयुक्त एव शस्त्रातीतादियुक्त पान-भोजन का अर्थ—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १७ से २० तक) मे अगार, धूम और सयोजनादोष से युक्त तथा मुक्त पान-भोजन का क्षेत्र, काल, मार्ग और प्रमाण को अतिक्रान्त पान भोजन का एव शस्त्रातीतादि पान भोजन का अर्थ प्ररूपित किया गया है ।

अगारादि दोषों का स्वरूप—साधु के द्वारा गवेषणैषणा और ग्रहणैषणा से लाए हुए निर्दोष आहार को साधुओ के मण्डल (माडले) मे बैठकर सेवन करते समय ये दोष लगते है, इसलिए इन्हें ग्रासैषणा (माडला या मडल) के पाच दोष कहते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) अगार—सरस स्वादिष्ट आहार मे आसक्त एव मुग्ध होकर आहार की या दाता की प्रशसा करते हुए खाना । इस प्रकार आहार पर मूर्च्छा रूप अग्नि से सयम रूप ईन्धन कोयले (अगार) की तरह दूषित हो जाता है । (२) धूम—नीरस या अमनोज्ञ आहार करते हुए आहार या दाता की निन्दा करना। (३) सयोजना—स्वादिष्ट एव रोचक बनाने के लिए रसलोलुपतावश एव द्रव्य के साथ दूसरे द्रव्यो को मिलाना । (४) अप्रमाण—शास्त्रोक्तप्रमाण से अधिक आहार करना और (५) अकारण—साधु के लिए ६ कारणो मे आहार करने और ६ कारणों मे छोडने का विधान है, किन्तु उक्त कारणो के बिना केवल बलवीयवृद्धि के लिए आहार करना । इन ५ दोषो मे से १७-१८वें सूत्रो मे अगार, धूम और

सयोजना दोषो से युक्त और रहित की व्याख्या की गई है। शेष दो १९ और २०वे सूत्र मे प्रमाणातिक्रात और सयमयात्रार्थ तथा सयमभारवहनार्थ के रूप मे गतार्थ कर दिया है।

क्षेत्रातिक्रान्त का भावार्थ—यहा क्षेत्र का अर्थ सूर्यसम्बन्धी तापक्षेत्र अर्थात्—दिन है, इसका अतिक्रमण करना क्षेत्रातिक्रान्त है।

कुक्कुटी अण्डप्रमाण का तात्पर्य—आहार का प्रमाण बताने के लिए 'कुक्कुटी अण्डकप्रमाण' शब्द दिया है। इसके दो अर्थ होते हैं—(१) कुक्कुटी के अडे के जितने प्रमाण का एक कवल, तथा (२) जीवरूपी पक्षी के लिए आश्रयरूप होने से यह गदी अशुचिप्राय काया 'कुकुटी' है, इस कुकुटी के उदरपूरक पर्याप्त आहार को कुकुटी-अण्डकप्रमाण कहते हैं।[२]

शस्त्रातीतादि की शब्दश व्याख्या—**शस्त्रातीत**=अग्नि आदि शस्त्र से उत्तीर्ण। **सत्थपरिणामित**=शस्त्रो से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श अन्यरूप मे परिणत किया हुआ, अर्थात्—अचित्त किया हुआ। **एसियस्स**=एषणीय—गवेषणा आदि से गवेषित। **वेसियस्स**=विशेष या विविध प्रकार से गवेषणा, ग्रहणषणा एव ग्रासैषणा से विशोधित अथवा वैषिक अर्थात् मुनिवेष-मात्र देखने से प्राप्त। **सामुदाणियस्स**=गृहसमुदायो से उत्पादनादोष से रहित भिक्षाजीविता।

नवकोटिविशुद्ध का अर्थ—(१) किसी जीव की हिंसा न करना, (२) न कराना, (३) न ही अनुमोदन करना, (४) स्वय न पकाना, (५) दूसरो से न पकवाना, (६) पकानेवालो का अनुमोदन न करना, (७) स्वय न खरीदना, (८) दूसरो से न खरीदवाना और (९) खरीदनेवाले का अनुमोदन न करना। इन दोषो से रहित आहारादि नवकोटिविशुद्ध कहलाते है।[३]

उद्गम, उत्पादना और एषणा के दोष—शास्त्र मे आधाकर्म आदि १६ उद्गम के, धात्री, दूती आदि १६ उत्पादना के एव शकित आदि १० एषणा के दोष बताए हैं। उनमे से प्रथम वर्ग के दोष दाता से, द्वितीय वर्ग के साधु से और तृतीय वर्ग के दोनो से लगते हैं।[४]

॥ सप्तम शतक प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति पत्राक २९२ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ३, पृ १०९८
२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २९२
३ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २९३ (ख) भगवती हिन्दी विवेचन पृ ११०३
४ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक २९४ (ख) पिण्डनिर्युक्ति प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रन्थ।

बीओ उद्देसओ : 'विरति'

द्वितीय उद्देशक : विरति

सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी का स्वरूप

१ [१] से नूण भंते ! सव्वपाणेहिं सव्वभूतेहिं सव्वजीवेहिं सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स सुपच्चक्खाय भवति ? दुपच्चक्खाय भवति ?

गोतमा ! सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स सिय सुपच्चक्खात भवति, सिय दुपच्चक्खात भवति ।

[१-१ प्र] हे भगवन् ! 'मैंने सब प्राण, सब भूत, सब जीव और सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है', इस प्रकार कहने वाले के सुप्रत्याख्यान होता है या दुष्प्रत्याख्यान होता है ?

[१-१ उ] गौतम ! 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है', इस प्रकार कहने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'सव्वपाणेहिं जाव सिय दुपच्चक्खात भवति ?,

गोतमा ! जस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स णो एव अभिसमन्नागत भवति 'इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा' तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स नो सुपच्चक्खाय भवति, दुपच्चक्खाय भवति । एव खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणो नो सच्च भास भासति, मोस भास भासइ, एव खलु से मुसावाती सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेण असजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असवुडे एगतदडे एगतबाले यावि भवति । जस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स एव अभिसमन्नागत भवति 'इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा' तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वदमाणस्स सुपच्चक्खाय भवति, नो दुपच्चक्खाय भवति । एव खलु से सुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं 'पच्चक्खाय' इति वयमाणे सच्च भास भासति, नो मोस भास भासति, एव खलु से सच्चवादी सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेण सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे अकिरिए सवुडे [एगतअदडे] एगतपडिते यावि भवति । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ जाव सिय दुपच्चक्खाय भवति ।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान—उच्चारण करने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ?

[१-२ उ] गौतम ! 'मैंने समस्त प्राण यावत् सब सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाले जिस पुरुष को इस प्रकार (यह) अभिसमन्वागत (ज्ञात=अवगत) नही होता कि 'ये जीव है, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं', उस पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नही होता, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान होता है। साथ ही, 'मैंने सभी प्राण यावत सभी सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाला वह दुष्प्रत्याख्यानी पुरुष सत्यभाषा नही बोलता, किन्तु मृषाभाषा बोलता है। इस प्रकार वह मृषावादी सब प्राण यावत समस्त सत्त्वो के प्रति तीन करण, तीन योग से असयत (सयमरहित), अविरत (हिंसादि से अनिवृत्त या विरतिरहित), पापकर्म से अप्रतिहत(नही रुका हुआ) और पापकर्म का अप्रत्याख्यानी (जिसने पापकर्म का प्रत्याख्यान—त्याग नहीं किया है), (कायिकी आदि) क्रियाओं से युक्त (सक्रिय), असवृत (सवररहित), एकान्तदण्ड (हिंसा) कारक एव एकान्तबाल (अज्ञानी) है।

'मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' यो कहने वाले जिस पुरुष को यह ज्ञात होता है कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस है और ये स्थावर हैं,' उस (सब प्राण, यावत् सब सत्त्वो की हिंसा का मैंने त्याग किया है, यो कहने वाले) पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान नही है। 'मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहता हुआ वह सुप्रत्याख्यानी सत्यभाषा बोलता है, मृषाभाषा नही बोलता। इस प्रकार वह सुप्रत्याख्यानी सत्यभाषी, सब प्राण यावत् सत्त्वो के प्रति तीन करण, तीन योग से सयत, विरत है। (अतीतकालीन) पापकर्मों को (पश्चात्ताप-आत्मनिन्दा से) उसने प्रतिहत (घात) कर (या रोक) दिया है, (अनागत पापो को) प्रत्याख्यान से त्याग दिया है, वह अक्रिय (कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओ से रहित) है, सवृत (आस्रवद्वारो को रोकने वाला, सवरयुक्त) है, (एकान्त अदण्डरूप है) और एकान्त पण्डित है। इसीलिए, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि यावत् कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है।

विवेचन—सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी का स्वरूप—प्रस्तुत सूत्र मे सुप्रत्याख्यानी और दुष्प्रत्याख्यानी का रहस्य बताया गया है। **सुप्रत्याख्यान और दुष्प्रत्याख्यान का रहस्य**—किसी व्यक्ति के केवल मुह से ऐसा बोलने मात्र से ही प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नही हो जाता कि 'मैंने समस्त प्राणियो की हिंसा का प्रत्याख्यान (त्याग) कर दिया है,' किन्तु इस प्रकार बोलने के साथ-साथ अगर वह भलीभाति जानता है कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस है, ये स्थावर हैं' तो उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है और वह सत्यभाषी, सयत, विरत आदि भी होता है, किन्तु अगर उसे जीवाजीवादि के विषय मे समीचीन ज्ञान नही होता तो केवल प्रत्याख्यान के उच्चारण से वह न तो सुप्रत्याख्यानी होता है, न ही सत्यभाषी, सयत, विरत आदि। इसीलिए दशवैकालिक मे कहा गया है—'पढम नाण, तओ दया।' ज्ञान के अभाव मे कृत प्रत्याख्यान का यथावत् परिपालन न होने से वह दुष्प्रत्याख्यानी रहता है, सुप्रत्याख्यानी नही होता।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक २९५

(ख) देखिये इसके समर्थन मे दशवैकालिक सू , अ ४ गाथा—१० से १३ तक

प्रत्याख्यान के भेद-प्रभेदों का निरूपण

२ कतिविहे ण भंते ! पच्चक्खाणे पण्णत्ते ।

गोयमा ! दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, त जहा—मूलगुणपच्चक्खाणे य उत्तरगुणपच्चक्खाणे य ।

[२ प्र] भगवन् ! प्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है—(१) मूलगुण प्रत्याख्यान और (२) उत्तरगुणप्रत्याख्यान ।

३ मूलगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे य देसमूलगुणपच्चक्खाणे य ।

[३ प्र] भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! (मूलगुणप्रत्याख्यान) दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान और (२) देशमूलगुणप्रत्याख्यान ।

४ सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—सव्वातो पाणातिवातातो वेरमण जाव सव्वातो परिग्गहातो वेरमण ।

[४ प्र] भगवन् ! सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! (सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान) पाच प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है—(१) सर्व-प्राणातिपात से विरमण, (२) सर्व-मृषावाद से विरमण, (३) सर्व अदत्तादान से विरमण, (४) सर्व-मैथुन से विरमण और (५) सर्व-परिग्रह से विरमण ।

५ देसमूलगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—थूलातो पाणातिवातातो वेरमण जाव थूलातो परिग्गहातो वेरमण ।

[५ प्र] भगवन् ! देशमूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! (देशमूलगुणप्रत्याख्यान) पाच प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—स्थूल-प्राणातिपात से विरमण यावत् स्थूल-परिग्रह से विरमण ।

६ उत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त०—सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे य, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे य ।

[६ प्र] भगवन् ! उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! (उत्तरगुणप्रत्याख्यान) दो प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान और (२) देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान ।

७ सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते, त जहा—

अणागत १ अतिक्कत २ कोडीसहित ३ नियंटिय ४ चेव ।

सागारमणागारं ५-६ परिमाणकडं ७ निरवसेसं ८ ॥१॥

साकेय ९ चेव अद्धाए १०, पच्चक्खाण भवे दसहा ।

[७ प्र] भगवन ! सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[७ उ] गौतम ! सर्व उत्तरगुणप्रत्याख्यान दस प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार— (१) अनागत, (२) अतिक्रान्त, (३) कोटिसहित, (४) नियन्त्रित, (५) साकार (सागार), (६) अनाकार (अनागार), (७) परिमाणकृत, (८) निरवशेष, (९) सकेत और (१०) अद्धाप्रत्याख्यान । इस प्रकार (सर्वोत्तरगुण-) प्रत्याख्यान दस प्रकार का होता है ।

८ देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, त जहा—दिसिव्वयं १ उवभोग परीभोगपरिमाण २ अणत्थदंड-वेरमण ३ सामाइय ४ देसावगासिय ५ पोसहोववासो ६ अतिहिसंविभागो ७ अपच्छिममारणंतिय-सलेहणा झूसणाऽऽराहणता ।

[८ प्र] भगवन् ! देश उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! (देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यान) सात प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) दिग्व्रत (दिशापरिमाणव्रत), (२) उपभोग-परिभोगपरिमाण, (३) अनर्थदण्डविरमण, (४) सामायिक, (५) देशावकाशिक, (६) पौषधोपवास और (७) अतिथि संविभाग तथा अपश्चिम मारणान्तिक-सलेखना जोषणा-आराधना ।

विवेचन—प्रत्याख्यान के भेद प्रभेदो का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू २ से ८ तक) मे प्रत्याख्यान के मूल और उत्तर भेदो-प्रभेदो का निरूपण किया गया है ।

परिभाषाएँ—चारित्ररूप कल्पवृक्ष के मूल के समान प्राणातिपातविरमण आदि 'मूलगुण' कहलाते है, मूलगुणविषयक प्रत्याख्यान (त्याग विरति) '**मूलगुणप्रत्याख्यान**' कहलाता है । वृक्ष की शाखा के समान मूलगुणो की अपेक्षा, जो उत्तररूप गुण हो, वे 'उत्तरगुण' कहलाते हैं और तद्-विषयक प्रत्याख्यान '**उत्तरगुण प्रत्याख्यान**' कहलाता है । सर्वथा मूलगुणप्रत्याख्यान '**सर्वमूलगुण-प्रत्याख्यान**' और देशत (अशत) मूलगुणप्रत्याख्यान '**देशमूलगुणप्रत्याख्यान**' कहलाता है । सर्व विरत मुनियो के सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान और देशविरत श्रावको के देशमूलगुणप्रत्याख्यान होता है ।[1]

दशविध सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान का स्वरूप—(१) **अनागत**—भविष्य मे जो तप, नियम या प्रत्याख्यान करना है, उसमे भविष्य म बाधा पडती देखकर उसे पहले ही कर लेना । (२) **अतिक्रान्त**—

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक २९६।९

पहले जिस तप, नियम, व्रत-प्रत्याख्यान को करना था, उसमे गुरु, तपस्वी, एव रुग्ण की सेवा आदि कारणों मे बाधा पडने के कारण उस तप, व्रत-प्रत्याख्यान आदि को बाद में करना, (३) कोटिसहित—जहाँ एक प्रत्याख्यान की समाप्ति तथा दूसरे प्रत्याख्यान की आदि एक ही दिन में हो जाए। जैसे—उपवास के पारणे मे आयम्बिल आदि तप करना। (४) नियन्त्रित—जिस दिन जिस प्रत्याख्यान को करने का निश्चय किया है, उस दिन रोगादि बाधाओ के आने पर भी, उसे नही छोडना, नियमपूर्वक करना। (५) साकार (सागार)—जिस प्रत्याख्यान मे कुछ आगार (छूट या अपवाद) रखा जाय। उन आगारो मे से किसी आगार के उपस्थित होने पर त्यागी हुई वस्तु के त्याग का काल पूरा होने से पहले ही उसे सेवन कर लेने पर भी प्रत्याख्यान भग नही होता। जैसे—नवकारसी, पोरसी आदि। (६) अनाकार (अनागार)—जिस प्रत्याख्यान मे 'महत्तरागार' आदि कोई आगार न हो। 'अनाभोग' और 'सहसाकार' तो उनमे होते ही हैं। (७) परिमाणकृत—दत्ति, कवल (ग्रास), घर, भिक्षा या भोज्यद्रव्यो की मर्यादा करना। (८) निरवशेष—अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चारो प्रकार के आहार का सर्वथा प्रत्याख्यान त्याग करना। (९) सकेतप्रत्याख्यान—अगूठा, मुट्ठी, गाठ आदि किसी भी वस्तु के सकेत को लेकर किया जाने वाला प्रत्याख्यान। (१०) अद्धा प्रत्याख्यान—अद्धा अर्थात् कालविशेष का नियत करके जो प्रत्याख्यान किया जाता है।[1] जैसे—पोरिसी, दो पोरिसी, मास, अर्द्धमास आदि। सप्तविध देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान का स्वरूप—(१) दिग्व्रत—पूर्वादि छहो दिशाओ की गमनमर्यादा करना, नियमित दिशा से आगे आस्रव-सेवन का त्याग करना। (२) उपभोग परिभोगपरिमाणव्रत—उपभोग्य (एक बार भोगने योग्य भोजनादि) और परिभोग्य (बार-बार भोगे जाने योग्य वस्त्रादि) वस्तुओ (२६ बोलो) की मर्यादा करना। (३) अनर्थदण्डविरमणव्रत—अपध्यान, प्रमाद, हिंसाकारीशस्त्रप्रदान, पापकर्मोपदेश, आदि निरर्थक-निष्प्रयोजन हिंसादिजनक कार्य अनर्थदण्ड हैं, उनमे निवृत्त होना। (४) सामायिकव्रत—सावद्य व्यापार (प्रवृत्ति) एव आर्त्त-रौद्रध्यान को त्याग कर धर्मध्यान मे तथा समभाव मे मनोवृत्ति या आत्मा को लगाना। एक सामायिक की मर्यादा एक मुहूर्त की है। सामायिक में बत्तीस दोषो से दूर रहना चाहिए। (५) देशावकाशिकव्रत—दिग्व्रत मे जो दिशाओं की मर्यादा का तथा पहले के स्वीकृत सभी व्रतों की मर्यादा का दैनिक सकोच करना, मर्यादा के उपरान्त क्षेत्र मे आस्रवसेवन न करना, मर्यादितक्षेत्र मे जितने द्रव्यो की मर्यादा की है, उसके उपरान्त सेवन न करना। (६) पौषधोपवासव्रत—एक दिन-रात (आठ पहर तक) चतुर्विध आहार, मैथुन, स्नान, शृगार आदि का तथा समस्त सावद्य व्यापार का त्याग करके धर्मध्यान मे लीन रहना, पौषध के अठारह दोषों का त्याग करना। (७) अतिथिसविभागव्रत—उत्कृष्ट अतिथि महाव्रती साधुओ को उनके लिए कल्पनीय अशनादि चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोछन, पीठ (चौकी), फलक (पट्टा), शय्या, सस्तारक, औषध, भेषज, ये १४ प्रकार की वस्तुएँ निष्कामबुद्धिपूर्वक आत्मकल्याण की भावना से देना, दान का सयोग न मिलने पर भी भावना रखना तथा मध्यम एव जघन्य अतिथि को भी देना।[2]

दिग्व्रत आदि तीन को गुणव्रत और सामायिक आदि ४ व्रतो को शिक्षाव्रत भी कहते हैं।

---

१ देखिये इन दस प्रत्याख्यानो के लक्षण को सूचित करने वाली गाथाएँ—भगवती अ वृत्ति, पृ २९६, २९७

२ (क) उपासकदशाग अ वृत्ति, (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा-३, पृ १११८ से ११२० तक

अपश्चिम-मारणान्तिक-सल्लेखना जोषणा आराधनता की व्याख्या—यद्यपि प्राणियो का आवीचिमरण प्रतिक्षण होता है, परन्तु यहाँ उस मरण की विवक्षा नही की गई है, किन्तु समग्र आयु की समाप्तिरूप मरण की विवक्षा है। अपश्चिम अर्थात् जिसके पीछे कोई सल्लेखनादि काय करना शेष नही, ऐसी अंतिम मारणान्तिक (आयुष्यसमाप्ति के अन्त—मरणकाल मे) की जाने वाली शरीर और कषाय आदि को कृश करने वाली तपस्याविशेष 'अपश्चिम-मारणान्तिक सल्लेखना' है। उसकी जोषणा—स्वीकार करने की आराधना अखण्डकाल (आयु समाप्ति) तक करना अपश्चिम-मारणान्तिक-सल्लेखना जोषणा आराधना है। यहा दिग्व्रतादि सात गुण अवश्य देशोत्तर-गुणरूप हैं, किन्तु सल्लेखना के लिए नियम नही है, क्योकि यह देशोत्तरगुणवाले के लिए देशोत्तर-गुणरूप और सर्वोत्तरगुण वाले के लिए सर्वोत्तरगुणरूप है। तथापि देशोत्तरगुणवाले को भी अन्तिम समय मे यह अवश्यकरणीय है, यह सूचित करने के लिए देशोत्तरगुण के साथ इसका कथन किया गया है।[1]

जीव और चौवीस दण्डको मे मूलगुण-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-वक्तव्यता

९ जीवा ण भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी वि, उत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि।

[९ प्र] भगवन् ! क्या जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी है, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं अथवा अप्रत्याख्यानी हैं ?

[९ उ] गौतम ! जीव (समुच्चयरूप मे) मूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

१० नेरइया ण भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी० ? पुच्छा।

गोयमा ! नेरइया नो मूलगुणपच्चक्खाणी, नो उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी।

[१० प्र] भगवन् ! क्या नैरयिकजीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ?

[१० उ] गौतम ! नैरयिक जीव न तो मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और न उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी है।

११ एव जाव चउरिंदिया।

[११] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो पर्यन्त कहना चाहिए।

१२ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा जीवा (सु ९)।

[१२] पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो के विषय मे (समुच्चय-औघिक) जीवो की तरह कहना चाहिए।

१३ वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरइया (सु १०)।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक २९७

[१३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के सम्बन्ध में नरयिक जीवों की तरह कथन करना चाहिए।—ये सब अप्रत्याख्यानी हैं।

विवेचन—जीव और चौबीस दण्डकों में मूलगुण उत्तरगुणप्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी वक्तव्यता—प्रस्तुत ५ सूत्रों (९ से १३ तक) में समुच्चय जीवों तथा नैरयिकों से लेकर वैमानिक तक के जीवों में मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी के अस्तित्व की पृच्छा करके उसका समाधान किया गया है।

निष्कर्ष—नैरयिकों, पंचस्थावरों, तीन विकलेन्द्रिय जीवों तथा वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिकों में मूलगुणप्रत्याख्यानी या उत्तरगुणप्रत्याख्यानी नहीं होते, वे सर्वथा अप्रत्याख्यानी होते हैं। तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों में तीनों ही विकल्प पाए जाते हैं। किन्तु तिर्यंचों में मात्र देशप्रत्याख्यानी ही हो सकते हैं।

मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी जीव, पंचेन्द्रियतिर्यंचों और मनुष्यों में अल्प-बहुत्व

१४ एतेसि णं भंते! जीवाणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं जाव अपच्चक्खाणीण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा।

[१४ प्र] भगवन्! मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी, इन जीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

[१४ उ] गौतम! सबसे थोड़े जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी है, (उनसे) उत्तरगुणप्रत्याख्यानी असंख्येय गुणा हैं और (उनसे) अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणा हैं।

१५ एतेसि णं भंते! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं० पुच्छा।

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

[१५ प्र] भगवन्! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि (पूर्वोक्त) जीवों में पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीव कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

[१५ उ] गौतम! मूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे उत्तरगुण प्रत्याख्यानी असंख्यगुणा हैं, और उनसे अप्रत्याख्यानी असंख्यगुणा हैं।

१६ एतेसि णं भंते! मणुस्साणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं० पुच्छा।

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी संखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

[१६ प्र] भगवन् ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि जीवो मे मनुष्य कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

[१६ उ] गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोडे हैं, उनसे उत्तरगुणप्रत्याख्यानी सख्यातगुणा हैं और उनसे अप्रत्याख्यानी मनुष्य असख्यातगुणा है।

विवेचन—मूलगुण—उत्तरगुणप्रत्याख्यानी एव अप्रत्यख्यानी जीवो, पचेन्द्रियतिर्यंचो और मनुष्यो मे अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (१४ से १६ तक) मे मूलगुणप्रत्याख्यानी आदि समुच्चयजीवो, तिर्यंचपचेन्द्रियो और मनुष्यो मे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक का विचार किया गया है।

निष्कर्ष—अप्रत्याख्यानी ही सबसे अधिक है, समुच्चय जीवो मे वे अनन्तगुणे हैं, तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो और मनुष्यो मे असख्यातगुणे हैं।

सर्वत और देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा अप्रत्याख्यानी का जीवो तथा चौबीस दण्डको मे अस्तित्व तथा अल्पबहुत्व

१७ जीवा ण भते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी ? देशमूलगुणपच्चक्खाणी ? अपच्च क्खाणी ?

गोयमा ! जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि।

[१७ प्र] भगवन ! क्या जीव सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी है ?

[१७ उ] गौतम ! जीव (समुच्चय मे) सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी भी है और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

१८ नेरइयाण पुच्छा। गोयमा ! नेरतिया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, नो देसमूलगुण-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी।

[१८ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो के विषय मे भी यही प्रश्न है।

[१८ उ] गौतम ! नैरयिक जीव न तो सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और न ही देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी हैं, वे अप्रत्याख्यानी हैं।

१९ एव जाव चउरिंदिया।

[१९] इसी तरह चतुरिन्द्रियपर्यन्त कहना चाहिए।

२० पचेंदियतिरिक्खपुच्छा।

गोयमा ! पचेंदियतिरिक्खा नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्च क्खाणी वि।

[२० प्र] पचेन्द्रियतिर्यञ्च जीवो के विषय मे भी यही प्रश्न है।

[२० उ] गौतम ! पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी नहीं हैं, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

२१ मणुस्सा जहा जीवा।

[२१] मनुष्यों के विषय में (औधिक) जीवों की तरह कथन करना चाहिए।

२२ वाणमंतर-जोतिस-वेमाणिया जहा नेरइया।

[२२] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिकों की तरह कहना चाहिए।

२३ एतेसि णं भंते ! जीवाणं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणीणं देसमूलगुणपच्चक्खाणीणं अपच्चक्खाणीण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी। एवं अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमिल्लए दंडए (सु. १४-१६), नवरं सव्वत्थोवा पचेंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

[२३ प्र] भगवन् ! इन सर्वमूलप्रत्याख्यानी, देशमूलप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किन से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

[२३ उ] गौतम ! सबसे थोड़े सर्वमूलप्रत्याख्यानी जीव हैं, उनसे असंख्यातगुणे देशमूल-प्रत्याख्यानी जीव हैं और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार तीनों—औधिक जीवों, पंचेन्द्रियतिर्यंचों और मनुष्यों—का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डक में कहे अनुसार कहना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च सबसे थोड़े हैं और अप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यंच उनसे असंख्येयगुण हैं।

२४ जीवा णं भंते ! किं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, तिण्णि वि।

[२४ प्र] भगवन् ! जीव क्या सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं। अथवा अप्रत्याख्यानी हैं ?

[२४ उ] गौतम ! जीव सर्व-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देश-उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी है। (अर्थात्—) तीनों प्रकार के हैं।

२५ पचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एवं चेव।

[२५] पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों और मनुष्यों का कथन भी इसी तरह करना चाहिए।

२६ सेसा अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

[२६] वैमानिकपर्यन्त शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

२७ एतेसि ण भंते ! जीवाण सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी०, अप्पाबहुगाणि ।

तिण्णि वि जहा पढमे दडए (सु १४-१६) जाव मणूसाण ।

[२७ प्र] भगवन् ! इन सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी एव अप्रत्याख्यानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[२७ उ] गौतम ! इन तीनो का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डक (सू १४-१६) मे कहे अनुसार यावत् मनुष्यो तक जान लेना चाहिए ।

विवेचन—सर्वत और देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा अप्रत्याख्यानी जीवो का तथा चौबीस दण्डको मे अस्तित्व एव अल्पबहुत्व- प्रस्तुत ११ सूत्रो (सू १७ से २७ तक) मे सर्वत देशत मूलोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी समुच्चय जीवा तथा चौबीस दण्डकवर्ती जीवो के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है ।

निष्कर्ष—सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान केवल मनुष्य मे ही होता है, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच दोनो ही हो सकते हैं तथा शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी होते हैं । मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय कदाचित अप्रत्याख्यानी भी होते हैं । सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी तथा देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय हो सकते है । शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी है । अत सबसे थोडे सर्वमूलप्रत्याख्यानी है, उनसे अधिक देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव हैं और सबसे अधिक अप्रत्याख्यानी हैं ।[1]

जीवो और चौबीस दण्डको मे सयत आदि तथा प्रत्याख्यानी आदि के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२८ जीवा ण भंते ! किं सजता ? असजता ? सजतासजता ?

गोयमा ! जीवा सजया वि०, तिण्णि वि, एव जहेव पण्णवणाए तहेव भाणियव्व जाव वेमाणिया । अप्पाबहुग तहेव (सु १४-१६) तिण्ह वि भाणियव्व ।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या जीव सयत है, असयत हैं, अथवा सयतासयत हैं ?

[२८ उ] गौतम ! जीव सयत भी हैं, असयत भी हैं और सयतासयत भी हैं । इस तरह प्रज्ञापनासूत्र ३२वे पद मे कहे अनुसार यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिए और अल्पबहुत्व भी तीनो का पूर्ववत् (सू १४ से १६ तक मे उक्त) कहना चाहिए ।

२९ जीवा ण भंते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, एव तिण्णि वि ।

[२९ प्र] भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं, अथवा प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २८१ स २८३ तक

[२९ उ] गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्याना प्रत्याख्यानी भी हैं। अर्थात् तीनों प्रकार के ह।

३० एव मणुस्साण वि।

[३०] इसी प्रकार मनुष्य भी तीनो ही प्रकार के है।

३१ पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आइल्लविरहिया।

[३१] पचेन्द्रिय तियञ्चयोनिक जीव प्रारम्भ के विकल्प से रहित है, (अर्थात् वे प्रत्याख्यानी नही हैं), किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी है।

३२ सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

[३२] शेष सभी जीव यावत् वैमानिक तक अप्रत्याख्यानी हैं।

३३ एतेसि ण भते ! जीवाण पच्चक्खाणीण जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणतगुणा।

[३३ प्र] भगवन् ! इन प्रत्याख्यानी आदि जीवो मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

[३३ उ] गौतम ! सबसे अल्प जीव प्रत्याख्यानी हैं, उनसे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी असख्येयगुणे हैं और उनसे अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणे ह।

३४ पचेंदियतिरिक्खजोणिया सव्वत्थोवा पच्चक्खाणापच्चक्खाणी अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा।

[३४] पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो मे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोडे हैं, और उनसे असख्यातगुणे अप्रत्याख्यानी हैं।

३५ मणुस्सा सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी सखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा।

[३५] मनुष्यो मे प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोडे हैं, उनसे सख्येयगुणे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं और उनसे भी असख्येयगुणे अप्रत्याख्यानी हैं।

विवेचन—सयत आदि तथा प्रत्याख्यानी आदि के जीवों तथा चौबीस दण्डकों मे अस्तित्व एवं अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू २८ से ३५ तक) मे जीवा तथा चौबीस दण्डकों में सयत-असयत-सयतासयत तथा प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी के अस्तित्व एव अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

जीवो की शाश्वतता-अशाश्वतता का अनेकान्तशैली से निरूपण

३६ [१] जीवा ण भंते ! किं सासता ? असासता ?

गोयमा ! जीवा सिय सासता, सिय असासता ।

[३६-१ प्र] भगवन् ! क्या जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत है ?

[३६-१ उ] गौतम ! जीव कथचित् शाश्वत हैं और कथचित् अशाश्वत हैं ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ 'जीवा सिय सासता, सिय असासता' ?

गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासता, भावट्ठयाए असासता । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ जाव सिय असासता ।

[३६-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीव कथचित् शाश्वत हैं, कथचित् अशाश्वत हैं ?

[३६-२ उ] गौतम ! द्रव्य की दृष्टि से जीव शाश्वत है और भाव (पर्याय) की दृष्टि से जीव अशाश्वत है । हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा गया है कि जीव कथचित् शाश्वत हैं, कथचित् अशाश्वत हैं ।

३७ नेरइया ण भंते ! किं सासता ? असासता ?

एव जहा जीवा तहा नेरइया वि ।

[३७ प्र] भगवन् ! क्या नरयिक जीव शाश्वत है या अशाश्वत हैं ?

[३७ उ] जिस प्रकार (औघिक) जीवो का कथन किया गया, उसी प्रकार नैरयिको का कथन करना चाहिए ।

३८ एव जाव वेमाणिया जाव सिय असासता ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए बितिओ उद्देसओ समत्तो ॥

[३८] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौवीस ही दण्डको के विषय मे कथन करना चाहिए कि वे जीव कथचित् शाश्वत है, कथचित् अशाश्वत हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरने लगे ।

विवेचन—जीवो की शाश्वतता अशाश्वतता का अनेकान्तशैली से प्ररूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे जीवो एव चौवीस दण्डको के विषय मे शाश्वतता-अशाश्वतता का विचार स्याद्वादशैली मे प्रस्तुत किया गया है ।

आशय—द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से जीव (जीवद्रव्य) शाश्वत है, किन्तु विभिन्न गतियो एव योनियो मे परिभ्रमण करने और विभिन्न पर्याय धारण करने के कारण पर्यायार्थिकनय की दृष्टि स वह अशाश्वत है।[1]

यद्यपि कोई एक नैरयिक शाश्वत नही है, क्योकि तेतीस सागरोपम से अधिक काल तक कोई भी जीव नैरयिक पर्याय मे नही रहता, किन्तु जगत् नरयिक जीवो से शून्य कभी नहीं होता, अतएव सतति की अपेक्षा से उन्हें शाश्वत कहा गया है।

॥ सप्तम शतक द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक २९९

तइओ उद्देसओ : 'थावर'

तइओ उद्देशक : 'स्थावर'

वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहारकाल एव सर्वमहाकाल की वक्तव्यता

१ वणस्सतिकाइया ण भते ! क काल सव्वप्पहारगा वा सव्वमहाहारगा वा भवति ?

गोयमा ! पाउस वरिसारत्तेसु ण एत्थ ण वणस्सतिकाइया सव्वमहाहारगा भवति, तदाणतर च ण सरदे, तयाणतर च ण हेमते, तदाणतर च ण वसते, तदाणतर च ण गिम्हे । गिम्हासु ण वणस्सतिकाइया सव्वप्पहारगा भवति ।

[१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव किस काल मे सर्वाल्पाहारी (सबसे थोडा आहार करने वाले) होते और किस काल मे सवमहाहारी (सबसे अधिक आहार करने वाले) होते है ?

[१ उ] गौतम ! प्रावट्-(पावस) ऋतु (श्रावण और भाद्रपद मास) मे तथा वर्षाऋतु (आश्विन और कार्तिक मास) मे वनस्पतिकायिक जीव सवमहाहारी होते है । इसके पश्चात् शरद्ऋतु मे, तदनन्तर हेमन्तऋतु मे इसके बाद वसन्तऋतु मे और तत्पश्चात् ग्रीष्मऋतु मे वनस्पतिकायिक जीव क्रमश अल्पाहारी होते हैं । ग्रीष्मऋतु मे वे सर्वाल्पाहारी होते है ।

२ जति ण भते ! गिम्हासु वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवति, कम्हा ण भते ! गिम्हासु बहवे वणस्सतिकाइया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरितगरेरिज्जमाणा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठति ?

गोयमा ! गिम्हासु ण बहवे उसिणजोणिया जीवा य पुग्गला य वणस्सतिकाइयत्ताए वक्कमति विउक्कमति चयति उववज्जति एव खलु गोयमा ! गिम्हासु बहवे वणस्सतिकाइया पत्तिया पुप्फिया जाव चिट्ठति ।

[२ प्र] भगवन् ! यदि ग्रीष्मऋतु मे वनस्पतिकायिक जीव सर्वाल्पाहारी होते है, तो बहुत-से वनस्पतिकायिक ग्रीष्मऋतु मे पत्तो वाले, फूलो वाले, फलो वाले, हरियाली से देदीप्यमान (हरेभरे) एव श्री (शोभा) से अतीव सुशोभित कैसे होते हैं ?

[२ उ] हे गौतम ! ग्रीष्मऋतु मे बहुत-से उष्णयोनि वाले जीव और पुद्गल वनस्पतिकाय के रूप मे उग (उत्पन्न हो) जाते हैं, विशेषरूप से उत्पन्न होते है, वृद्धि को प्राप्त होते है और विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं । हे गौतम ! इस कारण ग्रीष्मऋतु मे बहुत से वनस्पतिकायिक पत्तो वाले, फूलो वाले, फलो वाले यावत सुशोभित होते है ।

विवेचन—वनस्पतिकायिक जीवो के सर्वाल्पाहारकाल एव सर्वमहाहारकाल की वक्तव्यता—उद्देशक के प्रारम्भिक इन दो सूत्रो मे वनस्पतिकायिक जीव किस ऋतु मे सर्वमहाहारी और किस ऋतु मे सर्वाल्पाहारी होते है और क्यो ? यह सयुक्तिक निरूपण किया गया है ।

प्रावट और वर्षा ऋतु मे वनस्पतिकायिक सर्वमहाहारी क्यों ?—छह ऋतुओ मे से इन दो ऋतुओ मे वनस्पतिकायिक जीव सर्वाधिक आहारी होते हैं, इसका कारण यह है कि इन ऋतुओ मे वर्षा अधिक बरसती है, इसलिए जलस्नेह की अधिकता के कारण वनस्पति को अधिक आहार मिलता है।

ग्रीष्म ऋतु मे सर्वाल्पाहारी होते हुए भी वनस्पतियाँ पत्रित पुष्पित क्यों ?—ग्रीष्मऋतु मे जो वनस्पतियाँ पत्र, पुष्प, फलो से युक्त हरीभरी दिखाई देती हैं, इसका कारण उस समय उष्णयोनिक जीवो और पुद्गलो के उत्पन्न होने, बढने आदि का सिलसिला चालू हो जाना है।[1]

वनस्पतिकायिक मूलजीवादि से स्पृष्ट मूलादि के आहार के सम्बन्ध मे सयुक्तिक समाधान

३ से नूण भते ! मूला मूलजीवफुडा, कदा कदजीयफुडा जाव बीया बीयजीवफुडा ?

हता, गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा[2] जाय बीया बीयजीवफुडा।

[३ प्र] भगवन् ! क्या वनस्पतिकायिक के मूल, निश्चय ही मूल के जीवो से स्पृष्ट (व्याप्त) होते हैं, कन्द, कन्द के जीवो से स्पृष्ट होते हैं, यावत् बीज, बीज के जीवो से स्पृष्ट होते हैं ?

[३ उ] हाँ गौतम ! मूल, मूल के जीवो से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज, बीज के जीवो से स्पृष्ट होते है।

४ जति ण भते ! मूला मूलजीवफुडा जाव[3] बीया बीयजीवफुडा, कम्हा ण भते ! वणस्सतिकाइया आहारेंति ? कम्हा परिणामेति ?

गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा पुढविजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति। कदा कदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति। एव जाव बीया बीयजीवफुडा फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति।

[४ प्र] भगवन् ! यदि मूल, मूल के जीवो से स्पृष्ट होते है यावत् बीज, बीज के जीवो से स्पृष्ट होते हैं, तो फिर भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार से (कैसे) आहार करते हैं और किस तरह से उसे परिणमाते हैं ?

[४ उ] गौतम ! मूल, मूल के जीवो से व्याप्त (स्पृष्ट) हैं और वे पृथ्वी के जीव के साथ सम्बद्ध (सयुक्त जुडे हुए) होते हैं, इस तरह से वनस्पतिकायिक जीव आहार करते हैं और उसे परिणमाते है। इसी प्रकार कन्द, कन्द के जीवो के साथ स्पृष्ट (व्याप्त) होते हैं और मूल के जीवो से

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३००

२ 'मूलजीवफुडा' का अर्थ—मूल के जीवों से स्पृष्ट—व्याप्त है।

३ 'जाव' शब्द कन्द से लेकर बीज तक के पाठ का सूचक है। यथा—'खंधा, खधजीवफुडा, तया साला, पवाला, पत्ता, पुप्फा, फला, बीया।'

सम्बद्ध जुडे हुए) रहते हैं, इसी प्रकार यावत् बीज, बीज के जीवो से व्याप्त (स्पृष्ट) होते है और वे फल के जीवा के साथ सम्बद्ध रहते है, इससे वे आहार करते और उसे परिणमाते है।

विवेचन—वनस्पतिकायिक मूलजीवादि से स्पृष्ट मूलादि के आहार के सम्बन्ध मे सयुक्तिक समाधान—प्रस्तुत सूत्रद्वय (सू ३ और ४) मे वनस्पतिकाय के मूल आदि अपने-अपने जीव के साथ स्पृष्ट—व्याप्त होते हुए कैसे आहार करते है ? इसका युक्तिसगत समाधान प्रस्तुत किया गया है।

वृक्षादिरूप वनस्पति के दस प्रकार—मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

मूलादि जीवो से व्याप्त मूलादि द्वारा आहारग्रहण—मूलादि अपने-अपने जीवो से व्याप्त होते हुए भी परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध रहते है—जसे मूल पृथ्वी से, कन्द मूल से, स्कन्ध कन्द से, त्वचा स्कन्ध से, शाखा त्वचा से, प्रवाल शाखा से, पत्र प्रवाल स, पुष्प पत्र से, फल पुष्प मे और बीज फल से सम्बद्ध परिबद्ध होता है, इस कारण परम्परा से मूलादि सब एक दूसरे से जुडे हुए होन से अपना-अपना आहार ले लेते हैं और उसे परिणमाते है।[1]

आलू, मूला आदि वनस्पतियो मे अनन्तजीवत्व और विभिन्नजीवत्व की प्ररूपणा

५ अह भते ! आलुए मूलए सिंगबेरे हिरिली सिरिली सिस्सिरिली किट्ठिया छिरिया छीरविरालिया कण्हकदे वज्जकदे सूरणकदे खिलूडे भद्दमुत्था पिंडहलिद्दा लोहीणी हूथिहमगा (थिरुगा) मुग्गकण्णी अस्सकण्णी सीहकण्णी सीहंढी मुसु ढी, जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते अणतजीवा विविहसत्ता ?

हता, गोयमा ! आलुए मूलए जाव अणतजीवा विविहसत्ता।

[५ प्र] अब प्रश्न यह है 'भगवन् ! आलू मूला, शृगवेर (अदरख), हिरिली, सिरिली, सिस्सिरिली, किट्टिका, छिरिया, छीरविदारिका, वज्रकन्द, सूरणकद, खिलूडा, (आर्द्र-) भद्रमोथा, पिंडहरिद्रा (हल्दी की गाठ), रोहिणी, हुथीहू, थिरुगा, मुद्गपर्णी, अश्वकर्णी सिंहकर्णी, सिहण्डी, मुसुण्डी, ये और इसी प्रकार की जितनी भी दूसरी वनस्पतिया है, क्या वे सब अनन्त जीववाली और विविध (पृथक्-पृथक्) जीववाली हैं ?

[५ उ] हां गौतम ! आलू, मूला, यावत् मुसुण्डी, ये और इसी प्रकार की जितनी भी दूसरी वनस्पतियां हैं, वे सब अनन्तजीव वाली और विविध (भिन्न-भिन्न) जीववाली है।

विवेचन—आलू, मूला आदि वनस्पतियो मे अनन्त जीवत्व और विभिन्न जीवत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत पचम सूत्र मे आलू, मूला आदि तथा इसी प्रकार की भूमिगत मूलवाली अनन्तकायिक वनस्पतिया मे अनन्त जीवत्व तथा पृथक् जीवत्व की प्ररूपणा की गई है।

'अनन्तजीवा विविहसत्ता' की व्याख्या—आलू आदि अनन्तकाय के प्रकार लोकरूढिगम्य हैं, (भिन्न भिन्न) देशो मे ये उन-उन नामो से प्रसिद्ध हैं, इनमे अनन्त जीव हैं, तथा विविध सत्त्व (पृथक् चेतनावाले) हैं, अथवा वर्णादि के भेद से ये विविध प्रकार के हैं, अथवा एक स्वरूप या एककायिक होते हुए भी इन मे अनन्त जीवत्व है, इस दृष्टि से विविध यानी विचित्र कर्मो के कारण

[1] भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३००

इनकी पृथक्-पृथक् सत्ता-चेतना है, अथवा जिनके विविध अर्थात् विचित्र विधा=प्रकार या भेद हैं, वे भी विविध सत्त्व हैं।[1]

चौवीस दण्डकों में लेश्या की अपेक्षा अल्पकर्मत्व और महाकर्मत्व की प्ररूपणा

६ [१] सिय भंते ! कण्हलेसे नेरतिए अप्पकम्मतराए, नीललेसे नेरतिए महाकम्मतराए ?
हंता, गोयमा ! सिया।

[६-१ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला और नील लेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[६-१ उ] हाँ, गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'कण्हलेसे नेरतिए अप्पकम्मतराए, नीललेसे नेरतिए महाकम्मतराए' ?

गोयमा ! ठितिं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव महाकम्मतराए।

[६-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[६-२ उ] गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि यावत् (नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित्) महाकर्म वाला होता है।

७ [१] सिय भंते ! नीललेसे नेरतिए अप्पकम्मतराए, काउलेसे नेरतिए महाकम्मतराए ?
हंता, सिया।

[७-१ प्र] भगवन् ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[७-१ उ] हाँ गौतम ! कदाचित् ऐसा होता है।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'नीललेसे अप्पकम्मतराए, काउलेसे नेरतिए महाकम्मतराए ?'

गोयमा ! ठितिं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा जाव महाकम्मतराए।

[७-२ प्र] भगवन् ! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्मवाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्मवाला होता है ?

[७-२ उ] गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहता हूँ कि यावत् (कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित्) महाकर्मवाला होता है।

८ एवं असुरकुमारे वि, नवरं तेउलेसा अब्भहिया।

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३००

[८] इसी प्रकार असुरकुमारो के विषय मे भी कहना चाहिए, परन्तु उनमे एक तेजोलेश्या अधिक होती है। (अर्थात—उनमे कृष्ण, नील, कापोत और तेजो, ये चार लेश्याएँ होती है।)

९ एव जाव वेमाणिया, जस्स जति लेसाओ तस्स तति भाणियव्वाओ। जोतिसियस्स न भण्णति। जाव सिय भते ! पम्हलेसे वेमाणिए अप्पकम्मतराए, सुक्कलेसे वेमाणिए महाकम्मतराए ?

हता, सिया। से केणट्ठेण० सेस जहा नेरइयस्स जाव महाकम्मतराए।

[९] इसी तरह यावत् वैमानिक देवो तक कहना चाहिए। जिसमे जितनी लेश्याएँ हो, उतनी कहनी चाहिए, किन्तु ज्योतिष्क देवो के दण्डक का कथन नही करना चाहिए। (प्रश्नोत्तर की सयोजना इस प्रकार यावत् वैमानिक तक कर लेनी चाहिए, यथा—)

[प्र] भगवन् ! क्या पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्पकर्म वाला और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

[उ] हाँ, गौतम ! कदाचित् होता है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं ?

[उ] (इसके उत्तर मे) शेष सारा कथन नैरयिक की तरह यावत् 'महाकर्मवाला होता है', यहा तक करना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डको मे लेश्या की अपेक्षा अल्पकर्मत्व-महाकर्मत्व प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ६ से ९ तक) मे नैरयिको से लेकर वैमानिक दण्डक तक के जीवो मे लेश्या के तारतम्य का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

सापेक्ष कथन का आशय—सामान्यतया कृष्णलेश्या वाला जीव महाकर्मी और नीललेश्यावाला जीव उससे अल्पकर्मी होता है, किन्तु आयुष्य की स्थिति की अपेक्षा से कृष्णलेश्यी जीव अल्पकर्मी और नीललेश्यी जीव महाकर्मी भी हो सकता है। उदाहरणार्थ—सप्तम नरक में उत्पन्न कोई कृष्णलेश्यी नैरयिक है, जिसने अपने आयुष्य की बहुत-सी स्थिति क्षय कर दी है, इस कारण उसने बहुत-से कर्म भी क्षय कर दिये हैं, किन्तु उसकी अपेक्षा कोई नीललेश्यी नैरयिक दस सागरोपम की स्थिति से पचम नरक मे अभी तत्काल उत्पन्न हुआ है, उसने अपने आयुष्य की स्थिति अभी अधिक क्षय नही की। इस कारण पूर्वोक्त कृष्णलेश्यी नैरयिक की अपेक्षा इस नीललेश्यी के कर्म अभी बहुत बाकी हैं। इस दृष्टि से नीललेश्यी कृष्णलेश्यी की अपेक्षा महाकर्मवाला है।

ज्योतिष्क दण्डक मे निषेध का कारण—ज्योतिष्क देवो मे यह सापेक्षता घटित नहीं हो सकती, क्योकि उनमे केवल एक तेजोलेश्या होती है। दूसरी लेश्या न होने से उसे दूसरी लेश्या की अपेक्षा अल्पकर्मी या महाकर्मी नही कहा जा सकता।[1]

चौबीस दण्डकवर्ती जीवो मे वेदना और निर्जरा के तथा इन दोनो के समय के पृथक्त्व का निरूपण

१० [१] से नूण भते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

[1] भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०१

[१०-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव में जो वेदना है, वह निर्जरा कही जा सकती है ? और जो निर्जरा है, वह वेदना कही जा सकती है ?

[१०-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा' ?

गोयमा ! कम्मं वेदणा, णोकम्मं निज्जरा । से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव न सा वेदणा ।

[१०-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि जो वेदना है, वह निर्जरा नहीं कही जा सकती और जो निर्जरा है, वह वेदना नहीं कही जा सकती ?

[१०-२ उ] गौतम ! वेदना कर्म है और निर्जरा नोकर्म है । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् जो निर्जरा है, वह वेदना नहीं कही जा सकती ।

११ [१] नेरतियाणं भंते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेयणा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[११-१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिकों की जो वेदना है, उसे निर्जरा कहा जा सकता है, और जो निर्जरा है, उसे वेदना कहा जा सकता है ?

[११-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति नेरइयाणं जा वेयणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेयणा ?

गोयमा ! नेरइयाणं कम्मं वेदणा, णोकम्मं निज्जरा । से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव न सा वेयणा ।

[११-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि नैरयिकों की जो वेदना है, उसे निर्जरा नहीं कहा जा सकता और जो निर्जरा है, उसे वेदना नहीं कहा जा सकता ?

[११-२ उ] गौतम ! नैरयिकों की जो वेदना है, वह कर्म है और जो निर्जरा है, वह नोकर्म है । इस कारण से हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि यावत् जो निर्जरा है, उसे वेदना नहीं कहा जा सकता ।

१२ एवं जाव वेमाणियाणं ।

[१२] इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त (चौबीस ही दण्डकों में) कहना चाहिए ।

१३ [१] से नूणं भंते ! जं वेदेंसु तं निज्जरिंसु ? जं निज्जरिंसु तं वेदेंसु ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! जिन कर्मों का वेदन कर (भोग) लिया, क्या उनको निर्जीर्ण कर लिया और जिन कर्मों को निर्जीर्ण कर लिया, क्या उनका वेदन कर लिया ?

[१३-१ उ] गौतम ! यह बात (अर्थ) समर्थ (शक्य) नही है ।

**[२] से केणटठेण भते ! एव वुच्चति 'ज वेदेंसु नो त निज्जरेंसु, ज निज्जरेंसु नो त वेदेंसु' ?
गोयमा ! कम्म वेदेंसु, नोकम्म निज्जरिंसु, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो त वेदेंसु ।**

[१३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि जिन कर्मों का वेदन कर लिया, उनको निर्जीण नही किया और जिन कर्मों को निर्जीण कर लिया, उनका वेदन नही किया ?

[१३ २ उ] गौतम ! वेदन किया गया कर्मों का, किन्तु निर्जीण किया गया है—नोकर्मों को, इस कारण से हे गौतम ! मैंने कहा कि यावत् उनका वेदन नही किया ।

१४ नेरतिया ण भते ! ज वेदेंसु त निज्जरिंसु ? एव नेरइया वि ।

[१४ प्र] भगवन् ! नरयिक जीवो ने जिस कम का वेदन कर लिया, क्या उसे निर्जीण कर लिया ?

[१४ उ] पहले कहे अनुसार नैरयिको के विषय मे भी जान लेना चाहिए ।

१५ एव जाव वेमाणिया ।

[१५] इसी प्रकार वमानिको पयन्त चौवीस ही दण्डक मे कथन करना चाहिए ।

१६ [१] से नूण भते ! ज वेदेंति त निज्जरिंति, ज निज्जरेंति त वेदेंति ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

[१६-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे जिस कर्म को वेदते हैं, उसकी निजरा करते है और जिसकी निजरा करते हैं, उसको वेदते है ?

[१६-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समथ नही है ।

**[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जाव 'नो त वेदेंति' ?
गोतमा ! कम्म वेदेंति, नोकम्म निज्जरेंति । से तेणटठेण गोयमा ! जाव नो त वेदेंति ।**

[१६-२ प्र] भगवन् ! यह आप किस कारण से कहते है कि जिसको वेदते हैं, उसकी निजरा नही करते और जिसकी निजरा करते हैं, उसको वेदते नही हैं ?

[१६-२ उ] गौतम ! कम को वेदते हैं और नोकम को निर्जीण करते है । इस कारण से हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि यावत् जिसको निर्जीण करते हैं, उसका वेदन नही करते ।

१७ एव नेरइया वि जाव वेमाणिया ।

[१७] इसी तरह नैरयिको के विषय मे जानना चाहिए । वमानिका पयन्त चौवीम ही दण्डका मे इसी तरह कहना चाहिए ।

**१८ [१] से नूण भते ! ज वेदिस्सति त निज्जरिस्सति ? ज निज्जरिस्सति त वेदिस्सति ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।**

[१८-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे, जिस कर्म का वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा करेंगे, और जिस कर्म की निर्जरा करेंगे, उसका वेदन करेंगे ?

[१८-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] से केणट्ठेणं जाव 'णो तं वेदिस्सति ?'

गोयमा ! कम्मं वेदिस्सति, नोकम्मं निज्जरिस्सति। से तेणट्ठेणं जाव नो तं निज्जरि (वेदि) स्सति।

[१८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि यावत् उसका वेदन नही करेंगे ?

[१८-२ उ] गौतम ! कर्म का वेदन करेंगे, नोकर्म की निर्जरा करेंगे। इस कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि जिसका वेदन करेंगे, उसकी निर्जरा नही करेंगे, और जिसकी निर्जरा करेंगे, उसका वेदन नही करेंगे।

१९. एवं नेरतिया वि जाव वेमाणिया।

[१९] इसी तरह नैरयिको के विषय मे जान लेना चाहिए। वैमानिकपर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे इसी तरह कहना चाहिए।

२०. [१] से नूणं भंते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए से वेदणासमए ?

गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

[२०-१ प्र] भगवन् ! जो वेदना का समय है, क्या वही निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वही वेदना का समय है ?

[२०-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'जे वेदणासमए न से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेदणासमए' ?

गोयमा ! जं समयं वेदेंति नो तं समयं निज्जरेंति, जं समयं निज्जरेंति नो तं समयं वेदेंति, अन्नम्मि समए वेदेंति, अन्नम्मि समए निज्जरेंति, अन्ने से वेदणासमए, अन्ने से निज्जरासमए। से तेणट्ठेणं जाव न से वेदणासमए।

[२०-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नही है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं है ?

[२०-२ उ] गौतम ! जिस समय मे वेदते हैं, उस समय निर्जरा नहीं करते और जिस समय निर्जरा करते हैं, उस समय वेदन नही करते। अन्य समय मे वेदन करते हैं और अन्य समय मे निर्जरा करते हैं। वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है। इसी कारण हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि यावत् निर्जरा का जो समय है, वह वेदना का समय नही है।

२१ [१] नेरतियाण भते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए ? जे निज्जरासमए से वेदणासमए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१-१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीवो का जो नेदना का समय है, वह निजरा का समय है और जो निजरा का समय है, वह वेदना का समय है ?

[२१-१ उ] गौतम ! यह अथ समथ नही है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'नेरइयाण जे वेदणासमए न से निज्जरासमए, जे निज्जरासमए न से वेदणासमए ?'

गोयमा ! नेरइया ण ज समय वेदेंति णो त समय निज्जरेंति, ज समय निज्जरेंति, नो त समय वेदेंति, अन्नम्मि समए वेदेंति, अन्नम्मि समए निज्जरेंति, अन्ने से वेदणासमए, अन्ने से निज्जरासमए । से तेणट्ठेण जाव न से वेदणासमए ।

[२१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि नरयिको के जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नही है और जो निजरा का समय है, वह वेदना का समय नही है ?

[२१-२ उ] गौतम ! नैरयिक जीव जिस समय मे वेदन करते है, उस समय मे निजरा नही करते और जिस समय मे निजरा करते है, उस समय मे वेदन नही करते । अन्य समय मे वे वदन करते हैं और अन्य समय मे निजरा करते हैं । उनके वेदना का समय दूसरा है और निजरा का समय दूसरा है । इस कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि यावत जो निजरा का समय है, वह वदना का समम नही है ।

२२ एव जाव वेमाणियाण ।

[२२] इसी प्रकार वैमानिको पर्यन्त चौवीस ही दण्डको मे कहना चाहिए ।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे वेदना और निजरा के तथा इन दोनो के समय के पृथक्त्व का निरूपण—प्रस्तुत १३ सूत्रो (सू १० से २२ तक) मे विभिन्न पहलुओ से सामान्य जीव मे चौवीसदण्डकवर्ती जीवो मे वेदना और निजरा के पृथक्त्व का तथा इन दोनो के समय के पृथक्त्व का निरूपण किया गया है ।

वेदना और निर्जरा की व्याख्या के अनुसार दोनो के पृथक्त्व की सिद्धि—उदयप्राप्त कम को भोगना 'वेदना' कहलाती है और जो कम भोग कर क्षय कर दिया गया है, उसे निजरा कहते हैं । वेदना कम की होती है । इसी कारण वेदना को (उदयप्राप्त) कम कहा गया है [१] और निजरा को नोकम (कर्माभाव) । तात्पय यह है कि कामण वगणा के पुद्गल सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे सदा कम नही कहलाते । कषाय और योग के निमित्त से जीव के साथ बद्ध होने पर ही उन्हे 'कम' सज्ञा प्राप्त होती है और वेदन के अन्तिम समय तक वह सज्ञा रहती है । निजरा होने पर वे पुद्गल 'कम' नही रहते, अकर्म हो जाते हैं ।

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०२

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों की शाश्वतता-अशाश्वतता का निरूपण

२३ [१] नेरतिया भंते ! किं सासया, असासया ?

गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ?

[२३-१ उ] गौतम ! नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'नेरतिया सिय सासया, सिय असासया ?'

गोयमा ! अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए सासया, वोच्छित्तिणयट्ठयाए, असासया । से तेणट्ठेणं जाव सिय असासया ।

[२३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि 'नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं ?'

[२३-२ उ] गौतम ! अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव शाश्वत हैं और व्युच्छित्ति (पर्यायार्थिक) नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव अशाश्वत हैं । इस कारण से हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं ।

२४ एवं जाव वेमाणियाणं जाव सिय असासया ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए तइयो उद्देसओ समत्तो ॥

[२४] इसी प्रकार वैमानिकों-पर्यन्त कहना चाहिये कि वे कथञ्चित् शाश्वत हैं और कथञ्चित् अशाश्वत हैं । यावत् इसी कारण मैं कहता हूँ कि वैमानिक देव कथञ्चित् शाश्वत हैं, कथञ्चित् अशाश्वत है ।

भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवों की शाश्वतता-अशाश्वतता का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (२३ और २४) में चौवीस दण्डकवर्ती जीवों की शाश्वतता और अशाश्वतता का सापेक्ष कथन किया गया है

अव्युच्छित्तिनयार्थता-व्युच्छित्तिनयार्थता का अर्थ—अव्युच्छित्ति (ध्रुवता) प्रधान नय अव्युच्छित्तिनय है, उसका अर्थ है—द्रव्य, अर्थात्—द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा और व्युच्छित्ति प्रधान जो नय है, उसका अर्थ है—पर्याय, अर्थात्—पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा । द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सभी पदार्थ शाश्वत हैं और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा सभी पदार्थ अशाश्वत हैं ।[1]

॥ सप्तम शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

1 भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३०२

चउत्थो उद्देसओ 'जीवा'

चतुर्थ उद्देशक : 'जीव'

षड्विध ससारसमापन्नक जीवो के सम्बन्ध मे वक्तव्यता

१ रायगिहे नगरे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् (श्री गौतमस्वामी ने) श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार पूछा—

२ कतिविहा ण भते ! ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ? छव्विहा ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया एव जहा जीवाभिगमे जाव सम्मत्तकिरिय वा मिच्छत्तकिरिय वा ।

[सग्रहणी गाथा —जीवा छव्विह पुढवी जीवाण ठिती, भवट्ठिती काए ।

निल्लेवण अणगारे किरिया सम्मत्त मिच्छत्ता ॥][1]

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए चउत्थो उद्देसम्रो समत्तो ॥

[२ प्र] भगवन् ! ससारसमापन्नक (ससारी) जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! ससारसमापन्नक जीव छह प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—(१) पृथ्वीकायिक, (२) अप्कायिक, (३) तेजस्कायिक, (४) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक एव (६) त्रसकायिक ।

इस प्रकार यह समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र के तिर्यञ्चसम्बन्धी दूसरे उद्देशक मे कहे अनुसार सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया पर्यन्त कहना चाहिए ।

[सग्रहणी गाथा का अर्थ—जीव के छह भेद, पृथ्वीकायिक जीवो के छह भेद, पृथ्वीकायिक आदि जीवो की स्थिति, भवस्थिति, सामान्यकायस्थिति, निर्लेपन, अनगारसम्बन्धी वर्णन सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया ।]

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

---

१ यह सग्रहणी गाथा वाचनान्तर मे है वृत्तिकार ने वृत्ति मे इसे उद्धृत करके इसकी व्याख्या भी की है ।
—देखें—भगवती अ वृत्ति पत्राक ३०२-३०५

विवेचन—षड्विध संसारसमापन्नक जीवों के सम्बन्ध में जीवाजीवाभिगमसूत्रानुसार वक्तव्यता—प्रस्तुत चतुर्थ उद्देशक के दो सूत्रों में संसारी जीवों के भेद तथा जीवाजीवाभिगमसूत्रोक्त उनसे सम्बन्धित वर्णन का निर्देश किया है।

संसारी जीवों के सम्बन्ध में जीवाजीवाभिगमसूत्रोक्त तथ्य—जीवाजीवाभिगमसूत्र में तिर्यञ्च के दूसरे उद्देशक में जो बातें हैं, उनको यहाँ दो संग्रहणीगाथा में दे दी है। (१) संसारी जीवों के ६ भेदों का उल्लेख कर दिया है। तत्पश्चात् (२) पृथ्वीकायिक जीवों के ६ भेद—श्लक्ष्णा, शुद्धपृथ्वी, वालुकापृथ्वी, मनःशिला, शर्करापृथ्वी, और खरपृथ्वी। इन सबकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति श्लक्ष्णा की १ हजार वर्ष, शुद्धपृथ्वी की १२ हजार वर्ष, वालुका की १४ हजार वर्ष, मनःशिला की १६ हजार वर्ष, शर्करापृथ्वी की १८ हजार वर्ष और खरपृथ्वी की २२ हजार वर्ष की है। (३) स्थिति—नारकों और देवों की जघन्य १० हजार वर्ष, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है। तिर्यंच और मनुष्य की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३ पल्योपम की। इसी तरह अन्य जीवों की भवस्थिति प्रज्ञापनासूत्र के चतुर्थ स्थितिपदानुसार जान लें। (४) निर्लेपन—तत्काल उत्पन्न पृथ्वीकायिक जीवों को प्रतिसमय एक एक निकालें तो जघन्य असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल में और उत्कृष्ट भी असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकाल में निर्लेप (रिक्त) होते हैं, इत्यादि प्रकार से सभी जीवों का निर्लेपन कहना चाहिए। (५) अनगार—जो कि अविशुद्ध लेश्यावाला अवधिज्ञानी है, उसके देव देवी को जानने सम्बन्धी १२ आलापक कहने चाहिए। (६) अन्यतीर्थिकों—द्वारा एक समय में सम्यक्त्व मिथ्यात्व क्रियाद्वय करने की प्ररूपणा का खण्डन, एक समय में इन परस्पर विरोधी दो क्रियाओं में से एक ही क्रिया का मण्डन है। इस प्रकार सांसारिक जीव सम्बन्धी वक्तव्यता है।[1]

॥ सप्तम शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१. (क) भगवती सू. वृत्ति पत्रांक ३०२-३०३, (ख) जीवाजीवाभिगमसूत्र, तिर्यञ्च सम्बन्धी उद्देशक २ पृ. १३९ सू. १०० से १०४ तक (ग) प्रज्ञापनासूत्र चतुर्थ स्थितिपद

पंचमो उद्देसओ : 'पक्खी'

पचम उद्देशक : 'पक्षी'

खेचर-पचेन्द्रिय जीवो के योनिसग्रह आदि तथ्यो का अतिदेशपूर्वक निरूपण

१ रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—

२ खहचरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! कतिविहे जोणीसगहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे जोणीसगहे पण्णत्ते, त जहा—अडया पोयया सम्मुच्छिमा । एव जहा जीवाभिगमे जाव नो चेव ण ते विमाणे वोतीवएज्जा । एमहालया ण गोयमा ! ते विमाणा पण्णत्ता ।
[सग्रहगाथा—'जोणीसगह लेसा दिट्ठी णाणे य जोग उवओगे ।
उववाय ट्ठिइ-समुग्घाय-चयण जाइ-कुल-विहोओ ॥]१

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए पचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[२ प्र] हे भगवन् ! खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो का योनिसग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! (खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो का) योनिसग्रह तीन प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है—अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम । इस प्रकार (आगे का सारा वणन) जीवाजीवाभिगमसूत्र मे कहे अनुसार यावत् 'उन विमानो का उल्लघन नही किया जा सकता, हे गौतम ! वे विमान इतने महान् (बडे) कहे गए हैं,' यहाँ तक कहना चाहिए ।

[सग्रहगाथा का अथ—योनिसग्रह, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन और जाति-कुलकोटि ।]

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', या कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरने लगे ।

---

१ यह सग्रहगाथा वाचनान्तर म है वृत्तिकार न इसे वत्ति म उद्धृत किया है और इसकी व्याख्या भी की है ।
—देखें—भगवती अ वृत्ति पत्रांक ३०३

विवेचन—खेचर तिर्यञ्च पचेन्द्रियजीवो के योनिसग्रह आदि तथ्यों का अतिदेशपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत पचम उद्देशक के दो सूत्रो मे खेचर पचेन्द्रियजीवो के योनिसग्रह तथा जीवाजीवाभिगमसूत्र के निर्देशानुसार इनसे सम्बन्धित अन्य तथ्यो का निरूपण किया गया है।

खेचर पचेन्द्रिय जीवो के योनिसग्रह के प्रकार—उत्पत्ति के हेतु को योनि कहते हैं तथा अनेक का कथन एक शब्द द्वारा कर दिया जाए, उसे सग्रह कहते हैं। खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अनेक होते हुए भी उक्त तीन प्रकार के योनिसग्रह द्वारा उनका कथन किया गया है। अण्डज—अडे से उत्पन्न होने वाले मोर, कबूतर, हस आदि। पोतज—जरायु (जड-जेर) बिना उत्पन्न होने वाले चिमगादड आदि। सम्मूर्च्छिम—माता-पिता के सयोग के बिना उत्पन्न होने वाले मेढक आदि जीव।[1]

जीवाजीवाभिगमोक्त तथ्य—जीवाजीवाभिगमसूत्रानुसार खेचर पचेन्द्रिय तिर्यंच मे लेश्या ६, दृष्टि ३, ज्ञान ३ (भजना से), अज्ञान ३ (भजना से), योग ३, उपयोग २ पाये जाते हैं। सामान्यत ये चारो गति से आते है और चारो गतियो मे जाते है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग है। केवलीसमुद्घात और आहारकसमुद्घात को छोडकर इनमे पाच समुद्घात पाए जाते है। इनकी बारह लाख कुलकोडी हैं। इस प्रकरण मे अन्तिम सूत्र विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित का है। इन चारो का विस्तार इतना है कि यदि कोई देव नौ आकाशान्तर प्रमाण (८५०७४०३⁄६० योजन) का एक डग भरता हुआ छह महीने तक चले तो किसी विमान के अन्त को प्राप्त करता है, किसी विमान के अन्त को नहीं। जीवाजीवाभिगम से विस्तृत वर्णन जान लेना चाहिए।[2]

॥ सप्तम शतक पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०२

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३०३, (ख) जीवाजीवाभिगमसूत्र सू ९६ से ९९ तक पत्राक १३१ से १३८ तक

छट्ठो उद्देसओ : 'आउ'

छठा उद्देशक आयु

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के आयुष्यबध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध मे प्ररूपणा

१ रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] राजगृह नगर मे (गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) यावत इस प्रकार पूछा—

२ जीवे ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! किं इहगते नेरतियाउय पकरेति ? उववज्जमाणे नेरतियाउय पकरेति ? उववन्ने नेरतियाउय पकरेति ?

गोयमा ! इहगते नेरतियाउय पकरेइ, नो उववज्जमाणे नेरतियाउय पकरेइ, नो उववन्ने नेरतियाउय पकरेइ ।

[२ प्र] भगवन् ! जो जीव नारको (नैरयिको) मे उत्पन्न होने योग्य है, भगवन ! क्या वह इस भव मे रहता हुआ नारकायुष्य बाधता है, अथवा वहाँ (नरक मे) उत्पन्न होता हुआ नारकायुष्य बाधता है या फिर (नरक मे) उत्पन्न होने पर नारकायुष्य बाधता है ?

[२ उ] गौतम ! वह (नरक मे उत्पन्न होने योग्य जीव) इस भव मे रहता हुआ ही नारकायुष्य बाध लेता है, परन्तु नरक मे उत्पन्न हुआ नारकायुष्य नही बाधता और न नरक मे उत्पन्न होने पर नारकायुष्य बाधता है ।

३ एव असुरकुमारेसु वि ।

[३] इसी प्रकार असुरकुमारो के (आयुष्यबन्ध के) विषय मे कहना चाहिए ।

४ एव जाव वेमाणिएसु ।

[४] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

५ जीवे ण भते ! जे भविए नेरतिएसु उववज्जित्तए से ण भते ! किं इहगते नेरतियाउय पडिसवेदेति ? उववज्जमाणे नेरतियाउय पडिसवेदेति ? उववन्ने नेरतियाउय पडिसवेदेति ?

गोयमा ! णो इहगते नेरतियाउय पडिसवेदेइ, उववज्जमाणे नेरतियाउय पडिसवेदेति, उववन्ने वि नेरतियाउय पडिसवेदेति ।

[५ प्र] भगवन् ! जो जीव नारको मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! क्या वह इस भव मे रहता हुआ नारकायुष्य का वेदन (प्रतिसवेदन) करता है, या वहाँ उत्पन्न होता हुआ नारकायुष्य का वेदन करता है, अथवा वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् नारकायुष्य का वेदन करता है ?

[५ उ] गौतम ! वह (नरक मे उत्पन्न होने योग्य जीव) इस भव मे रहता हुआ नारकायुष्य का वेदन नहीं करता, किन्तु वहाँ उत्पन्न होता हुआ वह नारकायुष्य का वेदन करता है और उत्पन्न होने के पश्चात् भी नारकायुष्य का वेदन करता है।

६ एव जाव वेमाणिएसु।

[६] इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त चोवीस दण्डकों मे (आयुष्यवेदन का) कथन करना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के आयुष्यबन्ध और आयुष्यवेदन के सम्बन्ध मे प्ररूपणा—नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवों में से जो जीव जिस गति मे उत्पन्न होने वाला है, वह यहाँ रहा हुआ ही उस भव का आयुष्यवेदन कर लेता है, या वहाँ उत्पन्न होता हुआ करता है, अथवा वहाँ उत्पन्न होने के बाद आयुष्यबन्ध या आयुष्यवेदन करता है ? इस विषय मे सैद्धान्तिक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के महावेदना-अल्पवेदना के सम्बन्ध मे प्ररूपणा

७ जीवे ण भंते ! जे भविए नेरतिएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! किं इहगते महावेदणे ? उववज्जमाणे महावेदणे ? उववन्ने महावेदणे ?

गोयमा ! इहगते सिय महावेयणे, सिय अप्पवेदणे, उववज्जिमाणे सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे, अहे ण उववन्ने भवति ततो पच्छा एगंतदुक्खं वेदणं वेदेति, आहच्च सातं।

[७ प्र] भगवन् ! जो जीव नारकों में उत्पन्न होने वाला है, भगवन् ! क्या वह यहाँ (इस भव मे) रहता हुआ ही महावेदना वाला हो जाता है, या नरक में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला होता है, अथवा नरक मे उत्पन्न होने के पश्चात् महावेदना वाला होता है ?

[७ उ] गौतम ! वह (नरक मे उत्पन्न होने वाला जीव) इस भव मे रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है, कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है। नरक मे उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, किन्तु जब नरक मे उत्पन्न हो जाता है, तब वह एकान्तदुःखरूप वेदना वेदता है, कदाचित् सुख (साता) रूप (वेदना वेदता है।)

८ [१] जीवे ण भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए पुच्छा।

गोयमा ! इहगते सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे, उववज्जमाणे सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे, अहे ण उववन्ने भवति ततो पच्छा एगंतसातं वेदणं वेदेति, आहच्च असातं।

[८-१ प्र] भगवन् ! जो जीव असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाला है, (उसके सम्बन्ध मे भी) यही प्रश्न है।

[८-१ उ] गौतम ! (जो जीव असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाला है,) वह यहाँ (इस भव मे) रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह कदाचित् महावेदना वाला और कदाचित् अल्पवेदना वाला होता है, किन्तु जब

वह वहाँ उत्पन्न हो जाता है, तब एकान्तसुख (साता) रूप वेदना वेदता है, कदाचित दुःख (असाता) रूप वेदना वेदता है।

[२] एवं जाव थणियकुमारेसु।

[८-२] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए।

९ जीवे णं भंते ! जे भविए पुढविकाएसु उववज्जित्तए पुच्छा।

गोयमा ! इहगए सिय महावेदणे, सिय अप्पवेदणे, एवं उववज्जमाणे वि, अहे णं उववन्ने भवति ततो पच्छा वेमाताए वेदणं वेदेति।

[९ प्र] भगवन् ! जो जीव पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने योग्य है, (उसके सम्बन्ध में भी) यही पृच्छा है।

[९ उ] गौतम ! वह (पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने योग्य) जीव इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदनायुक्त और कदाचित अल्पवेदनायुक्त होता है, इसी प्रकार वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह कदाचित् महावेदना और कदाचित् अल्पवेदना से युक्त होता है और जब वहाँ उत्पन्न हो जाता है, तत्पश्चात् वह विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदता है।

१० एवं जाव मणुस्सेसु।

[१०] इसी प्रकार का कथन मनुष्य पर्यन्त करना चाहिए।

११ वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिएसु जहा असुरकुमारेसु (सु ८ [१])।

[११] जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में (अल्पवेदना महावेदना सम्बन्धी) कथन किया है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए भी कहना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के महावेदना अल्पवेदना के सम्बन्ध में प्ररूपणा— नारकादि दण्डकों में उत्पन्न होने योग्य जीव क्या यहाँ रहता हुआ, वहाँ उत्पन्न होता हुआ या वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात महावेदना वाला होता है ? इस प्रकार के प्रश्नों का सापेक्षशैली से प्रस्तुत पंचसूत्री (सू ७ से ११ तक) में समाधान किया गया है।

निष्कर्ष—नारकोत्पन्नयोग्य जीव यहाँ रहा हुआ कदाचित् महावेदना और कदाचित् अल्पवेदना से युक्त होता है, वहाँ उत्पन्न होता भी इसी तरह होता है, किन्तु वहाँ उत्पन्न होने के बाद नरकपालादि के असंयोगकाल में या तीर्थंकरों के कल्याणक अवसरों पर कदाचित् सुख के सिवाय एकान्त दुःख ही भोगता है। दस भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव पूर्वोक्त दोनों अवस्थाओं में पूर्ववत होते हैं, किन्तु वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् प्रहारादि के आ पडने के सिवाय कदाचित दुःख के सिवाय एकान्तसुख ही भोगते हैं, पृथ्वीकाय से लेकर मनुष्यों तक के जीव पूर्वोक्त दोनों अवस्थाओं के पूर्ववत् ही होते हैं, किन्तु उस-उस भव में उत्पन्न होने के पश्चात् विविध प्रकार (विमात्रा) से वेदना वेदते हैं।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ २९०-२९१

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों मे अनाभोगनिर्वतित आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा

१२ जीवा ण भते ! कि ग्राभोगनिव्वत्तियाउया ? ग्रणाभोगनिव्वत्तियाउया ?

गोयमा ! नो आभोगनिव्वत्तियाउया, ग्रणाभोगनिव्वत्तियाउया।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या जीव ग्राभोगनिर्वतित ग्रायुष्य वाले हैं या ग्रनाभोगनिर्वतित ग्रायुष्य वाले हैं ?

[१२ उ] गौतम ! जीव ग्राभोगनिर्वतित ग्रायुष्य वाले नही हैं, किन्तु ग्रनाभोगनिर्वतित ग्रायुष्य वाले हैं।

१३ एव नेरइया वि।

[१३] इसी प्रकार नैरयिकों के (ग्रायुष्य के) विषय में भी कहना चाहिए।

१४ एव जाव वेमाणिया।

[१४] वैमानिकों पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवों मे ग्रनाभोगनिर्वतित ग्रायुष्यबन्ध की प्ररूपणा—प्रस्तुत त्रिसूत्री मे चतुर्विशति दण्डकों के जीवो मे ग्राभोगनिर्वतित ग्रायुष्य बन्ध का निषेध करके ग्रनाभोगनिर्वतित ग्रायुष्य-बन्ध की प्ररूपणा की गई है।

ग्राभोगनिर्वतित ग्रौर ग्रनाभोगनिर्वतित ग्रायुष्य—समस्त सासारिक जीव ग्रनाभोगपूर्वक (ग्रजानपने मे = न जानते हुए) ग्रायुष्य बाधते हैं, वे ग्राभोगपूर्वक (जानपने मे = जानते हुए) ग्रायुष्य-बध नही करते।

समस्त जीवों के कर्कश-अकर्कश-वेदनीय कर्मबध का हेतुपूर्वक निरूपण

१५ ग्रत्थि ण भते ! जीवा ण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

हता, ग्रत्थि।

[१५ प्र] भगवन् ! क्या जीवो के कर्कश वेदनीय (ग्रत्यन्त दुःख से भोगने योग्य—कठोर वेदना वाले) कर्म (का ग्रर्जन) करते (बाधते) हैं ?

[१५ उ] हाँ, गौतम ! बाधते हैं।

१६ कह ण भते ! जीवा ण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! पाणातिवातेण जाव मिच्छादसणसल्लेण, एव खलु गोयमा ! जीवाण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति।

[१६ प्र] भगवन् ! जीव कर्कशवेदनीय कर्म कैसे बाधते हैं ?

[१६ उ] गौतम ! प्राणातिपात से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से जीव कर्कशवेदनीय कर्म बाधते हैं।

१७ अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

एवं चेव ।

[१७ प्र.] ! क्या नैरयिक जीव कर्कशवेदनीय कर्म बांधते हैं ?

[१७ उ.] हाँ, गौतम ! पहले कहे अनुसार बांधते हैं ।

१८ एवं जाव वेमाणियाणं ।

[१८] इसी प्रकार वैमानिकों तक कहना चाहिए ।

१९ अत्थि णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता, अत्थि ।

[१९ प्र.] भगवन् ! क्या जीव अकर्कशवेदनीय (सुखपूर्वक भोगने योग्य) कर्म बांधते हैं ?

[१९ उ.] हाँ गौतम ! बांधते हैं ।

२० कहं णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

गोयमा ! पाणातिवातवेरमणेणं जाव परिग्गहवेरमणेणं कोहविवेगेणं जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अकक्कसवेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ।

[२० प्र.] भगवन् ! जीव अकर्कशवेदनीय कर्म कैसे बांधते हैं ?

[२० उ.] गौतम ! प्राणातिपातविरमण से यावत् परिग्रह-विरमण से, इसी तरह क्रोध-विवेक से (लेकर) यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक से (जीव अकर्कशवेदनीय कर्म बांधते हैं।) हे गौतम ! इस प्रकार से जीव अकर्कशवेदनीय कर्म बांधते हैं ।

२१ अत्थि णं भंते ! नेरतियाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२१ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव अकर्कशवेदनीय कर्म बांधते हैं ?

[२१ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । (अर्थात्—नैरयिकों के अकर्कशवेदनीय कर्मों का बंध नहीं होता ।)

२२ एवं जाव वेमाणिया । नवरं मणुस्साणं जहा जीवाणं (सु. १९) ।

[२२] इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए । परन्तु मनुष्यों के विषय में इतना विशेष है कि जैसे औधिक जीवों के विषय में कहा गया है, वैसा ही सारा कथन करना चाहिए ।

विवेचन—समस्त जीवों के कर्कश अकर्कश वेदनीय कर्मबंध का हेतुपूर्वक निरूपण—प्रस्तुत ८ सूत्रों (सू. १५ से २२ तक) में समुच्चय जीवों और चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के कर्कशवेदनीय और अकर्कशवेदनीय कर्मबंध के सम्बन्ध में सहेतुक निरूपण किया गया है ।

कर्कशवेदनीय और अकर्कशवेदनीय कर्मबंध कैसे, और कब ?—जीवों के कर्कशवेदनीय कर्म बंध जाते हैं, उनका पता तब लगता है, जब वे उदय में आते हैं, भोगने पड़ते हैं, क्योंकि कर्कशवेदनीय कर्म भोगते समय अत्यन्त दुःखरूप प्रतीत होते हैं। जैसे स्कन्दक आचार्य के शिष्यों ने पहले किसी भव में कर्कशवेदनीय कर्म बांधे थे। अकर्कशवेदनीय कर्म भोगने में सुखरूप प्रतीत होते हैं, जैसे कि भरत चक्री आदि ने बांधे थे। कर्कशवेदनीय को बांधने का कारण १८ पापस्थानों का सेवन और अकर्कशवेदनीय-कर्मबन्ध का कारण इन्हीं १८ पापस्थानों का त्याग है। नरकादि जीवों में प्राणातिपात आदि पापस्थानों से विरमण न होने से वे अकर्कशवेदनीय-कर्मबंध नहीं कर सकते।[1]

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के साता-असाता वेदनीय कर्मबंध और उनके कारण

२३ अत्थि णं भंते ! जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता, अत्थि।

[२३ प्र.] भगवन् ! क्या जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं ?

[२३ उ.] हाँ, गौतम ! बांधते हैं।

२४ कहं णं भंते ! जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

गोयमा ! पाणाणुकंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए अपरितावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति।

[२४ प्र.] भगवन् ! जीव सातावेदनीय कर्म कैसे बांधते हैं ?

[२४ उ.] गौतम ! प्राणों पर अनुकम्पा करने से, भूतों पर अनुकम्पा करने से, जीवों के प्रति अनुकम्पा करने से और सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से, तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख न देने से, उन्हें शोक (दैन्य) उत्पन्न न करने से, (शरीर को सुखा देने वाली) चिन्ता (विषाद या खेद) उत्पन्न न कराने से, विलाप एवं रुदन करा कर आंसू न बहवाने से, उनको न पीटने से, उन्हें परिताप न देने से (जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं।) हे गौतम ! इस प्रकार से जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं।

२५ एवं नेरतियाण वि।

[२५] इसी प्रकार नैरयिक जीवों के (भी सातावेदनीय कर्मबंध के) विषय में कहना चाहिए।

२६ एवं जाव वेमाणियाणं।

[२६] इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

२[illegible] अत्थि णं भंते ! जीवाणं असातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

[२७ प्र] भगवन् ! क्या जीव असातावेदनीय कर्म बांधते है ?

[२७ उ] हा गौतम ! बांधते हैं।

२८ कह ण भते ! जीवाण अस्सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! परदुक्खणयाए परसोयणयाए परजूरणयाए परतिप्पणयाए परपिट्टणयाए परपरिता वणयाए, बहूण पाणाण जाव सत्ताण दुक्खणताए सोयणयाए जाव परितावणयाए, एव खलु गोयमा ! जीवाण असातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति।

[२८ प्र] भगवन् ! जीव असातावेदनीय कर्म कैसे बांधते हैं ?

[२८ उ] गौतम ! दूसरो को दु ख देने से, दूसरे जीवो को शोक उत्पन्न करने से, जीवो को विषाद या चिन्ता उत्पन्न करने से, दूसरो को रुलाने या विलाप कराने से, दूसरो को पीटने से और जीवो को परिताप देने से तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव एव सत्त्वो को दु ख पहुँचाने से, शोक उत्पन्न करने से यावत् उनको परिताप देने से (जीव असातावेदनीय कर्मबन्ध करते हैं।) हे गौतम इस प्रकार से जीव असातावेदनीय कर्म बांधते है।

२९ एव नेरतियाण वि।

[२९] इसी प्रकार नैरयिक जीवो के (असातावेदनीय कर्मबन्ध के) विषय मे समझना चाहिए।

३० एव जाव वेमाणियाण।

[३०] इसी प्रकार वैमानिको पर्यन्त (असातावेदनीयबन्धविषयक) कथन करना चाहिए।

विवेचन—चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के साता असातावेदनीय कर्मबध और उनके कारण— प्रस्तुत आठ सूत्रो (२३ से ३० तक) मे समस्त जीवो के सातावेदनीय एव असातावेदनीय कर्मबध तथा इनके कारणो का निरूपण किया गया है।

कठिन शब्दो के अर्थ—असोयणयाए—शोक उत्पन्न न करने से। **अजूरणयाए**—जिसमे शरीर छीजे, ऐसा विषाद या शोक पैदा न करने से। **अतिप्पणयाए**—आसू बहे, इस प्रकार का विलाप या रुदन न कराने से। **अपिट्टणयाए**—मारपीट न करने से।[1]

दुषमदुषमकाल मे भारतवर्ष, भारतभूमि एव भारत के मनुष्यो के आचार (आकार) और भाव का स्वरूप-निरूपण

३१ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए दुस्समदुस्समाए समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सति ?

गोयमा ! काले भविस्सति हाहाभूते भभाभूए कोलाहलभूते, समयाणुभावेण य ण खरफरुस-धूलिमइला दुव्विसहा वाउला भयकरा वाता सवट्टगा य वाइति, इह अभिक्ख धूमाहिति य दिसा

1 भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३०५

कर्कशवेदनीय और अकर्कशवेदनीय कर्मबंध कैसे, और कब ?—जीवों के कर्कशवेदनीय कर्म बंध जाते हैं, उनका पता तब लगता है, जब वे उदय में आते हैं, भोगने पड़ते हैं, क्योंकि कर्कशवेदनीय कर्म भोगते समय अत्यन्त दुःखरूप प्रतीत होते हैं। जैसे स्कन्दक आचार्य के शिष्यों ने पहले किसी भव में कर्कशवेदनीय कर्म बांधे थे। अकर्कशवेदनीय कर्म भोगने में सुखरूप प्रतीत होते हैं, जैसे कि भरत चक्री आदि ने बांधे थे। कर्कशवेदनीय को बांधने का कारण १८ पापस्थानक सेवन और अकर्कशवेदनीय-कर्मबन्ध का कारण इन्हीं १८ पापस्थानों का त्याग है। नरकादि जीवों में प्राणातिपात आदि पापस्थानों से विरमण न होने से वे अकर्कशवेदनीय-कर्मबंध नहीं कर सकते।[1]

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के साता-असाता वेदनीय कर्मबंध और उनके कारण

२३ अत्थि णं भंते ! जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता, अत्थि।

[२३ प्र.] भगवन् ! क्या जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं ?

[२३ उ.] हाँ, गौतम ! बांधते हैं।

२४ कहं णं भंते ! जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

गोयमा ! पाणाणुकंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए अपरितावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति।

[२४ प्र.] भगवन् ! जीव सातावेदनीय कर्म कैसे बांधते हैं ?

[२४ उ.] गौतम ! प्राणों पर अनुकम्पा करने से, भूतों पर अनुकम्पा करने से, जीवों के प्रति अनुकम्पा करने से और सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से, तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख न देने से, उन्हें शोक (दैन्य) उत्पन्न न करने से, (शरीर को सुखा देने वाली) चिन्ता (विषाद या खेद) उत्पन्न न कराने से, विलाप एवं रुदन करा कर आंसू न बहवाने से, उनको न पीटने से, उन्हें परिताप न देने से (जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं।) हे गौतम ! इस प्रकार से जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं।

२५ एवं नेरतियाण वि।

[२५] इसी प्रकार नैरयिक जीवों के (भी सातावेदनीय कर्मबंध के) विषय में कहना चाहिए।

२६ एवं जाव वेमाणियाणं।

[२६] इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

२७ अत्थि णं भंते ! जीवाणं असातावेदणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता, अत्थि।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३०५

[२७ प्र] भगवन् ! क्या जीव असातावेदनीय कम बाधते है ?

[२७ उ] हा गौतम ! बाधते है।

२८ कह ण भते ! जीवाण अस्सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?

गोयमा ! परदुक्खणयाए परसोयणयाए परजूरणयाए परतिप्पणयाए परपिट्टणयाए परपरिता वणयाए, बहूण पाणाण जाव सत्ताण दुक्खणताए सोयणयाए जाव परितावणयाए, एव खलु गोयमा ! *जीवाण असातावेदणिज्जा कम्मा कज्जति।*

[२८ प्र] भगवन् ! जीव असातावेदनीय कम कैसे बाधते हैं ?

[२८ उ] गौतम ! दूसरा को दु ख देने से, दूसरे जीवा को शोक उत्पन्न करने से, जीवो को विषाद या चिन्ता उत्पन्न करने से, दूसरो को रुलाने या विलाप करान से, दूसरो को पीटने से और जीवा को परिताप देने से तथा बहुत-से प्राण, भूत, जीव एव सत्त्वो को दु ख पहुँचाने स, शाक उत्पन्न करने से यावत उनका परिताप देने से (जीव असातावेदनीय कमबन्ध करते हैं।) हे गौतम इस प्रकार से जीव असातावेदनीय कम बाधते हैं।

२९ एव नेरतियाण वि।

[२९] इसी प्रकार नैरयिक जीवो के (असातावेदनीय कमबन्ध के) विषय मे समझना चाहिए।

३० एव जाव वेमाणियाण।

[३०] इसी प्रकार वमानिको पर्यन्त (असातावेदनीयबन्धविषयक) कथन करना चाहिए।

विवेचन—चौबीस दण्डकवर्ती जीवो के साता असातावेदनीय कमबध और उनके कारण— प्रस्तुत आठ सूत्रो (२३ से ३० तक) म समस्त जीवा के सातावेदनीय एव असातावेदनीय कमबध तथा इनके कारणो का निरूपण किया गया है।

कठिन शब्दो के अथ—असोयणयाए—शोक उत्पन्न न करने से। **अजूरणयाए**—जिसमे शरीर छीजे, एसा विषाद या शोक पैदा न करने से। **अतिप्पणयाए**—आसू बहें, इस प्रकार का विलाप या रुदन न कराने से। **अपिट्टणयाए**—मारपीट न करने से।[1]

दु षमदु षमकाल मे भारतवर्ष, भारतभूमि एव भारत के मनुष्यो के आचार (आकार) और भाव का स्वरूप-निरूपण

३१ जवुद्दीवे ण भते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए दुस्समदुस्समाए समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सति ?

गोयमा ! काले भविस्सति हाहाभूते भभाभूए कोलाहलभूते, समयाणुभावेण य ण खरफरुस-धूलिमइला दुव्विसहा वाउला भयकरा वाता सवट्टगा य वाइति, इह अभिक्ख धूमाहिति य दि-

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक ३०५

समता रयसला रेणुकलुसतमपडलनिरालोगा, समयलुक्खयाए य ण अहिय चदा सीत मोच्छति, अहिय सूरिया तवइस्सति, अदुत्तर च ण अभिक्खण बहवे अरसमेहा विरसमेहा खारमेहा खत्तमेहा (खट्टमेहा) अग्गिमेहा विज्जुमेहा विसमेहा असणिमेहा अपिवणिज्जोदगा वाहिरोगवेदणोदीरणापरिणामसलिला अमणुण्णपाणियगा चडानिलपहयतिक्खधारानिवायपउर वास वासिहिति। जेण भारहे वासे गामागर नगर-खेड कब्बड मडब-दोणमुह-पट्टणाऽऽसमगत जणवय, चउप्पयगवेलए खहयरे य पक्खिसघे, गामाऽरण्णपयारनिरए तसे य पाणे बहुप्पगारे, रुक्ख गुच्छ गुम्म लय वल्लि तण पव्वग-हरितोसहि पवाल कुरमादीए य तणवणस्सतिकाइए विद्धसेहिति। पव्वय-गिरि-डोगरुत्थल-भट्टिमादीए य वेयड्ढगिरिवज्जे विरावेहिति। सलिलबिल गड्ड-दुग्ग विसमनिण्णुन्नताइ गगा-सिधू वज्जाइ समीकरेहिति।

[३१ प्र] भगवन्! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल का दु खमदु षम नामक छठा आरा जब अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त होगा, तब भारतवर्ष का आकारभाव-प्रत्यवतार (आकार या आचार और भावो का आविर्भाव) कैसा होगा?

[३१ उ] गौतम! वह काल हाहाभूत (मनुष्यो के हाहाकार से युक्त), भभाभूत (दु खार्त्त पशुओ के भा-भा शब्दरूप आर्त्तनाद से युक्त) तथा कोलाहलभूत (दु खपीडित पक्षियो के कोलाहल से युक्त) होगा। काल के प्रभाव से अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन (धूमिल), असह्य, व्याकुल (जीवो को व्याकुल कर देने वाली), भयकर वात (हवाएँ) एव सवर्त्तक वात (हवाएँ) चलेंगी। इस काल मे यहा बारबार चारो ओर से धूल उडने से दिशाएँ रज (धूल) से मलिन और रेत से कलुषित, अन्धकारपटल से युक्त एव आलोक से रहित होगी। समय (काल) की रूक्षता के कारण चन्द्रमा अत्यन्त शीतलता (ठडक) फेकेगा, सूर्य अत्यन्त तपेंगे। इसके अनन्तर बारम्बार बहुत से खराब रसवाले मेघ, विपरीत रसवाले मेघ, खारे जलवाले मेघ, खत्तमेघ (खाद के समान पानी वाले मेघ), (अथवा खट्टमेघ = खट्टे पानी वाले बादल), अग्निमेघ (अग्नि के समान गर्मजल वाले मेघ), विद्युत्मेघ (बिजली सहित मेघ), विषमेघ (जहरीले पानी वाले मेघ), अशनिमेघ (ओले—गडे बरसाने वाले या वज्र के समान पर्वतादि को चूर-चूर कर देने वाले मेघ), अपेय (न पीने योग्य) जल से पूर्ण मेघ (अथवा तृषा शान्त न कर सकने वाले पानी से युक्त मेघ), व्याधि, रोग और वेदना को उत्पन्न करने (उभाडने) वाले जल से युक्त तथा अमनोज्ञ जल वाले मेघ, प्रचण्ड वायु के थपेडो (आघात) से आहत हो कर तीक्ष्ण धाराओ के साथ गिरते हुए प्रचुर वर्षा बरसाएँगे, जिसमे भारतवर्ष के ग्राम, आकर (खान), नगर, खेडे, कबट, मडम्ब, द्रोणमुख (बन्दरगाह), पट्टण (व्यापारिक मडिया) और आश्रम मे रहने वाले जनसमूह, चतुष्पद (चौपाये जानवर), खग (आकाश-चारी पक्षीगण), ग्रामो और जगलो मे सचार मे रत त्रसप्राणी तथा अनेक प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लताएँ, बेल, घास, दूब, पर्वक (गन्ने आदि), हरियाली, शालि आदि धान्य, प्रवाल और अकुर आदि तृणवनस्पतियाँ, ये सब विनष्ट हो जाएँगी। वैताढ्यपर्वत को छोड कर शेष सभी पर्वत, छोटे पहाड, टीले, डूगर, स्थल, रेगिस्तान बजरभूमि (भाठा-प्रदेश) आदि सबका विनाश हो जायगा। गगा और सिन्धु, इन दो नदियो को छोड कर शेष नदियाँ, पानी के झरने, गड्ढे (सरोवर, झील आदि), (नष्ट हो जाएँगे) दुर्गम और विषम (ऊँची-नीची) भूमि मे रहे हुए सब स्थल समतल क्षेत्र (सपाट मैदान) हो जाएँगे।

३२ तीसे ण भते! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सति?

गोयमा ! भूमी भविस्सति इंगालभूया मुम्मुरभूया छारियभूया तत्तकवेल्लयभूया तत्तसमजोइभूया धूलिबहुला रेणुबहुला पंकबहुला पणगबहुला चलणिबहुला, बहूणं धरणिगोयराणं सत्ताणं दुन्निक्कमा यावि भविस्सति ।

[३२ प्र.] भगवन् ! उस समय भारतवर्ष की भूमि का आकार और भावों का आविर्भाव (स्वरूप) किस प्रकार का होगा ।

[३२ उ.] गौतम ! उस समय इस भरतक्षेत्र की भूमि अंगारभूत (अंगारों के समान), मुर्मुरभूत (गोबर के उपलों की अग्नि के समान), भस्मीभूत (गर्म राख के समान), तपे हुए लोह के कडाह के समान, तप्तप्राय अग्नि के समान, बहुत धूल वाली, बहुत रज वाली बहुत कीचड वाली, बहुत शैवाल (अथवा पांच रंग की काई) वाली, चलने जितने बहुत कीचड वाली होगी, जिस पर पृथ्वीस्थित जीवों का चलना बडा ही दुष्कर हो जाएगा ।

३३. तीसे णं भंते ! समाए भारहे वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सति ?

गोयमा ! मणुया भविस्सति दुरूवा दुव्वण्णा दुगंधा दूरसा दूफासा, अणिट्ठा अकंता जाव अमणामा, हीणस्सरा दीणस्सरा अणिट्ठस्सरा जाव अमणामस्सरा, अणादिज्जवयण पच्चायाता निल्लज्जा कूड कवड कलह वह-बंध वेर-निरया मज्जादातिक्कमप्पहाणा अकज्जनिच्चुज्जता गुरुनियोगविणयरहिता य विकलरूवा परूढनह केस मंसुरोमा काला खरफरुससामवण्णा फुट्टसिरा कविलपलियकेसा बहुण्हारुसंपिणद्धदुद्दसणिज्जरूवा संकुडियवलीतरंगपरिवेढियंगमंगा जरापरिणत व्व थेरगनरा पविरलपरिसडियदंतसेढी उब्भडघडमुहा विसमनयणा वंकनासा वंकवलीविगतभेसणमुहा कच्छूकसराभिभूता खरतिक्खनक्खकंडूइय-विक्खयतणू दद्दु-किडिभ-सिज्झफुडियफरुसच्छवी चित्तलंगा टोलगति-विसम संधिबंधणउक्कुडुअट्ठिगविभत्तदुब्बलाकुसंघयणकुप्पमाणकुसंठिता कुरूवा कुट्ठाणासणकुसेज्जकुभोइणो असुइणो अणेगवाहिपरिपीलियंगमंगा खलंतविब्भलगती निरुच्छाहा सत्तपरिवज्जिया विगतचेट्ठनट्ठतेया अभिक्खणं सीय-उण्ह खर फरुस-वातविज्झडियमलिणपंसुरउगुंडितंगमंगा बहुकोह-माण-माया बहुलोभा असुहदुक्खभागी ओसन्नं धम्मसण्णा सम्मत्तपरिब्भट्ठा उक्कोसेणं रयणिपमाणमेत्ता सोलसवीसतिवासपरमाउसा पुत्त णत्तुपरियालपणयबहुला गंगा-सिंधूओ महानदीओ वेयड्ढं च पव्वयं निस्साए बावत्तरिं णिगोदा बीयंबीयामेत्ता बिलवासिणो भविस्सति ।

[३३ प्र.] भगवन् ! उस समय (दुःषमदुःषम नामक छठे आरे) में भारतवर्ष के मनुष्यों का आकार या आचार और भावों का आविर्भाव (स्वरूप) कैसा होगा ?

[३३ उ.] गौतम ! उस समय में भारतवर्ष के मनुष्य अति कुरूप, कुवर्ण, कुगन्ध, कुरस और कुस्पर्श से युक्त, अनिष्ट, अकान्त (कान्तिहीन या अप्रिय) यावत् अमनोगम, हीनस्वर वाले, दीनस्वर वाले, अनिष्टस्वर वाले यावत् अमनाम स्वर वाले, अनादेय और अप्रतीतियुक्त वचन वाले, निर्लज्ज, कूट-कपट, कलह, वध (मारपीट), बंध और वैरविरोध में रत, मर्यादा का उल्लंघन करने में प्रधान (प्रमुख), अकार्य करने में नित्य उद्यत, गुरुजनों (माता पिता आदि पूज्यजनों) के आदेशपालन और विनय से रहित, विकलरूप (बेडौल सूरत शक्ल) वाले, बढे हुए नख, केश दाढी, मूंछ और रोम वाले,

कालेकलूटे, अत्यन्त कठोर श्यामवर्ण के निखरे हुए बालो वाले, पीले और सफेद केशो वाले, बहुत सी नसो (स्नायुओ) से शरीर बधा हुआ होने से दुर्दर्शनीय रूप वाले, सकुचित (सिकुडे हुए) और वलीतरगो (झुर्रियो) से परिवेष्टित, टेढे मेढे अगोपाग वाले, इसलिए जरापरिणत वृद्धपुरुषो के समान प्रविरल (थोडे-से) टूटे और सडे हुए दातो वाले, उद्भट घट के समान भयकर मुख वाले, विषम नेत्रो वाले, टेढी नाक वाले तथा टेढे-मेढे एव झुर्रियो से विकृत हुए भयकर मुख वाले, एक प्रकार की भयकर खुजली (पाव=पामा) वाले, कठोर एव तीक्ष्ण नखो से खुजलाने के कारण विकृत बने हुए, दाद, एक प्रकार के कोढ (किडिभ), सिध्म (एक प्रकार के भयकर कोढ) वाले, फटी हुई कठोर चमडी वाले, विचित्र अग वाले, ऊट आदि सी गति (चाल) वाले, (बुरी आकृति वाले), शरीर के जोडो के विषम बधन वाले, ऊँची-नीची विषम हड्डियो एव पसलियो से युक्त, कुगठनयुक्त, कुसहनन वाले, कुप्रमाणयुक्त, विषम सस्थानयुक्त, कुरूप, कुस्थान मे बढे हुए शरीर वाले, कुशय्या वाले (खराब स्थान मे शयन करने वाले), कुभोजन करने वाले, विविध व्याधियो से पीडित, स्खलित गति (लडखडाती चाल) वाले, उत्साहरहित, सत्त्वरहित, विकृत चेष्टा वाले, तेजोहीन, बारबार शीत, उष्ण, तीक्ष्ण और कठोर वात से व्याप्त (सत्रस्त), रज आदि से मलिन अग वाले, अत्यन्त क्रोध, मान माया और लोभ से युक्त अशुभ दु ख के भागी, प्राय धर्मसज्ञा और सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होगे। उनकी अवगाहना उत्कृष्ट एक रत्निप्रमाण (एक मु ड हाथ भर) होगी। उनका आयुष्य (प्राय) सोलह वर्ष का और अधिक-से अधिक बीस वर्ष का (परमायुष्य) होगा। वे बहुत से पुत्र-पौत्रादि परिवार वाले होगे और उन पर उनका अत्यन्त स्नेह (ममत्व या मोहयुक्त प्रणय) होगा। इनके ७२ कुटुम्ब (निगोद) बीजभूत (आगामी मनुष्यजाति के लिए बीजरूप) तथा बीजमात्र होगे। ये गगा और सिन्धु महानदियो के बिलो मे और वैताढ्य पर्वत की गुफाओ का आश्रय लेकर निवास करेंगे।

विवेचन—दु षमदु षमकाल मे भारतवर्ष, भारत भूमि एव भारत के मनुष्यों के आचार (आकार) और भाव का स्वरूप निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे विस्तार मे अवसर्पिणी के छठे आरे के दु षमदु षमकाल मे भारतवर्ष के, भारत भूमि की, एव भारत के मनुष्यो के आचार विचार एव आकार तथा भावो के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—छठे आरे मे भरतक्षेत्र की स्थिति अत्यन्त सकटापन्न, भयकर, हृदय-विदारक, अनेक रोगोत्पादक, अत्यन्त शीत, ताप, वर्षा आदि से दु सह्य एव वनस्पतिरहित नीरस सूखी रूखी भूमि पर निवास के कारण असह्य होगी। भारतभूमि अत्यन्त गर्म, धूलभरी, कीचड से लथपथ एव जीवो के चलने मे दु सह होगी। भारत के मनुष्यो की स्थिति तो अत्यन्त दु खद, असह्य, कषाय से रजित होगी। विषम-बेडौल अगो से युक्त होगी।[1]

कठिन शब्दों के विशेष अर्थ—उत्तमकट्ठपत्ताए=उत्कट अवस्था—पराकाष्ठा या परमकष्ट को प्राप्त। **दुव्विसहा**=दु सह, कठिनाई से सहन करने योग्य। **वाउल**=व्याकुल। **वाया सवट्टगा य वाहिति**=सवर्तक हवाएँ चलेगी। **धूमाहिति**=धूल उडती होने से। **रेणुकलुसतमपडलनिरालोगा**=रज से मलिन होने से अन्धकार के पटल जमी, नही दिखाई देने वाली। **चडानिलपहयतिक्खधारानिवाय पउर वास वासिहिति**=प्रचण्ड हवाओ से टकराकर अत्यन्त तीक्ष्ण धारा के साथ गिराने से प्रचुर

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भाग-१, पृ २९३-२९४

वर्षा बरसाएँगे। डोगर=छोटे पर्वत। दुण्णिक्कमा=दुर्निक्रम—मुश्किल से चलने योग्य। अणादेज्जवयणा=जिनके वचन स्वीकार करने योग्य न हो। मज्जायातिक्कमप्पहाणा=मर्यादा का उल्लंघन करने मे अग्रणी। गुरुनियोगविणयरहिता=गुरुजनो के आदेश पालन एव विनय से रहित। फुट्टसिरा खडे या बिखरे केशो वाले। कविल पलियकेसा=कपिल (पीले) एव पलित (सफेद) केशो वाले। उब्भडघडमुहा=उदभट- (विकराल) घटमुख जैसे मुखवाले। वकवलीविगतभेसणमुहा=टेढे-मेढे झुर्रियो से व्याप्त (विकृत) भीषण मुख वाले। कच्छूकसराभिभूता=कच्छू (पाव) के कारण खाज-खुजली से आक्रान्त। टोलगति=ऊँट के समान गति वाले, अथवा ऊँट के समान बेडौल आकृति वाले। खलतविब्भलगती=स्खलनयुक्त विह्वल गति वाले। ओसन्न=बहुलता से, प्राय। णिगोदा=कुटुम्ब। पुत्त णत्तुपरियालपणयबहुला=पुत्र-नाती आदि परिवार वाले एव उनके परिपालन मे अत्यन्त ममत्व वाले।

छठे आरे के मनुष्यो के आहार तथा मनुष्य-पशु-पक्षियो के आचारादि के अनुसार मरणोपरान्त उत्पत्ति का वर्णन

३४ ते ण भते ! मणुया कमाहारमाहारेहिंति ?

गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण गगा-सिंधूओ महानदीओ रहपहवित्थाराओ अक्खसोतप्पमाणमित्त जल वोज्झिहिति से वि य ण जले बहुमच्छ कच्छभाइण्णे णो चेव ण आउबहुले भविस्सति। तए ण ते मणुया सूरोग्गमणमुहुत्तसि य सूरत्थमणमुहुत्तसि य बिलेहितो निद्धाहिति, बिलेहितो निद्धाइत्ता मच्छ कच्छभे थलाइ गाहेहिंति, मच्छ कच्छभे थलाइ गाहेत्ता सीतातवतत्तएहि मच्छकच्छएहि एक्कवीस वाससहस्साइ वित्ति कप्पेमाणा विहरिस्सति।

[३४ प्र] भगवन्! (उस दु षमदु षमकाल के) मनुष्य किस प्रकार का आहार करेंगे?

[३४ उ] गौतम! उस काल और उस समय मे गगा और सिन्धु महानदियाँ रथ के मार्गप्रमाण विस्तार वाली होगी। उनमे अक्षस्रोतप्रमाण (रथ की धुरी के प्रवेश करने के छिद्र जितने भाग मे आ सके उतना) पानी बहेगा। वह पानी भी अनेक मत्स्य, कछुए आदि से भरा होगा और उसमे भी पानी बहुत नही होगा। वे बिलवासी मनुष्य सूर्योदय के समय एक मुहूर्त और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त (अपने अपने) बिलो से बाहर निकलेंगे। बिलो से बाहर निकल कर वे गगा और सिन्धु नदियो मे से मछलियो और कछुओ आदि को पकड कर जमीन मे गाडेंगे। इस प्रकार गाडे हुए मत्स्य-कच्छपादि (रात की) ठड और (दिन की) धूप से सिक जाएँगे। (तब वे शाम को गाडे हुए मत्स्य आदि को सुबह और सुबह के गाडे हुए मत्स्य आदि को शाम को निकाल कर खाएँगे।) इस प्रकार शीत और आतप से पके हुए मत्स्य-कच्छपादि से इक्कीस हजार वर्ष तक जीविका चलाते हुए (जीवननिर्वाह करते हुए) वे विहरण (जीवनयापन) करेंगे।

३५ ते ण भते ! मणुया निस्सीला णिग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा उस्सन्न मसाहारा मच्छाहारा खोद्दाहारा कुणिमाहारा कालमासे काल किच्चा कहि गच्छिहिति ? कहि उववज्जिहिति ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक ३०६ से ३०९ तक

गोयमा ! ओसन्नं नरग-तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जिहिंति ।

[३५ प्र] भगवन् ! वे (उस समय के) शीलरहित, गुणरहित, मर्यादाहीन, प्रत्याख्यान (त्याग-नियम) और पोषधोपवास से रहित, प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी (अथवा मधु का आहार करने वाले अथवा भूमि खोद कर कन्दमूलादि का आहार करने वाले) एवं कुणिमाहारी (मृतक का मांस खाने वाले) मनुष्य मृत्यु के समय मर (काल) कर कहाँ जाएँगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ?

[३५ उ] गौतम ! वे (पूर्वोक्त प्रकार के) मनुष्य मर कर प्रायः नरक एवं तिर्यञ्च योनियों में उत्पन्न होंगे ।

३६. ते णं भंते ! सीहा वग्घा विगा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा णिस्सीला तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?

गोयमा ! ओसन्नं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति ।

[३६ प्र] भगवन् ! (उस काल और उस समय के) निःशील यावत् कुणिमाहारी सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िये), द्वीपिक (चीते, अथवा गेंडे), रीछ (भालू), तरक्ष (जरख) और शरभ (गेंडा) आदि (हिंस्र पशु) मृत्यु के समय मर कर कहाँ जाएँगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ?

[३६ उ] गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्चयोनि में उत्पन्न होंगे ।

३७. ते णं भंते ! ढंका कंका विलका मद्दुगा सिही णिस्सीला ?

तहेव जाव ओसन्नं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तम सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

[३७ प्र] भगवन् ! (उस काल और उस समय के) निःशील आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त ढंक (एक प्रकार के कौए), कंक, विलक, मद्दुक (जलकाक-जलकौए), शिखी (मोर) (आदि पक्षी मर कर कहाँ उत्पन्न होंगे ?)

[३७ उ] गौतम ! (वे उस काल के पूर्वोक्त पक्षीगण मर कर) प्रायः नरक एवं तिर्यंच योनियों में उत्पन्न होंगे ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर श्री गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन—छठे आरे के मनुष्यों के आहार तथा मनुष्य पशुपक्षियों के आचार आदि के अनुसार मरणोपरान्त उत्पत्ति का वर्णन—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ३४ से ३७ तक) में से प्रथम में छठे आरे के मनुष्यों की आहारपद्धति का तथा आगे के तीन सूत्रों में क्रमशः उस काल के निःशीलादि मानवों, पशुओं एवं पक्षियों की मरणोपरान्त गति-योनि का वर्णन किया गया है ।

निष्कर्ष—उस समय के मनुष्यों का आहार प्रायः मांस, मत्स्य और मृतक का होगा । मांसाहारी होने से वे शील, गुण, मर्यादा, त्याग-प्रत्याख्यान एवं व्रत-नियम आदि धर्म-पुण्य से नितान्त

विमुख होंगे। मत्स्य आदि को जमीन में गाड कर, फिर उन्हें सूर्य के ताप और चन्द्रमा की शीतलता से सिकने देना ही उनकी आहार पकाने की पद्धति होगी। इस प्रकार की पद्धति से २१ हजार वर्ष तक जीवनयापन करने के पश्चात् वे मानव अथवा वे पशु-पक्षी आदि मर कर नरक या तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे।[1]

कठिन शब्दों के विशेषार्थ—अक्खसोतप्पमाणमेत्त=रथ की धुरी टिकने के छिद्र जितने प्रमाणभर। वोज्झिहिंति=वहेंगे। निद्धाहिंति=निकलेंगे। णिम्मेरा=कुलादि की मर्यादा से हीन, नंगधडंग रहने वाले।[2]

॥ सप्तम शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. १ पृ. २९५-२९६

२ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३०९

सत्तमो उद्देसओ : अणगार

सप्तम उद्देशक : अनगार

संवृत एवं उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले अनगार को लगने वाली क्रिया की प्ररूपणा

१ संवुडस्स णं भंते अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स जाव आउत्तं तुयट्टमाणस्स, आउत्तं *वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिण्हमाणस्स वा निक्खिवमाणस्स वा, तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया* किरिया कज्जति ? संपराइया किरिया कज्जति ?

गोतमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स जाव तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जति, णो संपराइया किरिया कज्जति।

[१-१ प्र] भगवन् ! उपयोगपूर्वक चलते-उठते यावत् उपयोगपूर्वक करवट बदलते (सोते) तथा उपयोगपूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन (रजोहरण) आदि ग्रहण करते और रखते हुए उस संवृत (संवरयुक्त) अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[१-१ उ] गौतम ! उपयोगपूर्वक गमन करते हुए यावत् रखते हुए उस संवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'संवुडस्स णं जाव नो संपराइया किरिया कज्जति' ?

गोयमा ! जस्स णं कोह-माण माया लोभा वोच्छिन्ना भवंति, तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जति तहेव जाव उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जति, से णं अहासुत्तमेव रीयति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव नो संपराइया किरिया कज्जति।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि यावत् उस संवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ?

[१-२ उ] गौतम ! (वास्तव में) जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न (अनुदयप्राप्त अथवा सर्वथा क्षीण) हो गए हैं, उस (११-१२-१३वें गुणस्थानवर्ती अनगार) को ही ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, क्योंकि वही यथासूत्र (यथाख्यात-चारित्र, सूत्रों-नियमों के अनुसार) प्रवृत्ति करता है। इस कारण हे गौतम ! उसको यावत् साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती।

विवेचन—संवृत एवं उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले अनगार को लगने वाली क्रिया की प्ररूपणा—पूर्ववत् (शतक ७, उद्दे. १ के सूत्र १६ के अनुसार) यहाँ भी संवृत एवं उपयोगपूर्वक

यथासूत्र प्रवृत्ति करने वाले अकषायी अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगने की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

विविध पहलुओ से काम-भोग एव कामी-भोगी के स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२ रूवी भते ! कामा ? अरूवी कामा ?

गोयमा ! रुवी कामा समणाउसो !, नो अरूवी कामा।

[२ प्र.] भगवन् ! काम रूपी हैं या अरूपी ह ?

[२ उ.] आयुष्मन् श्रमण ! काम रूपी हैं, अरूपी नही हैं।

३ सचित्ता भते ! कामा ? अचित्ता कामा ?

गोयमा ! सचित्ता वि कामा, अचित्ता वि कामा।

[३ प्र.] भगवन् ! काम सचित्त हैं अथवा अचित्त हैं ?

[३ उ.] गौतम ! काम सचित्त भी है और काम अचित्त भी हैं।

४ जीवा भते ! कामा ? अजीवा कामा ?

गोयमा ! जीवा वि कामा, अजीवा वि कामा।

[४ प्र.] भगवन् ! काम जीव है अथवा अजीव हैं ?

[४ उ.] गौतम ! काम जीव भी हैं और काम अजीव भी हैं।

५ जीवाण भते ! कामा ? अजीवाण कामा ?

गोयमा ! जीवाण कामा, नो अजीवाण कामा।

[५ प्र.] भगवन् ! काम जीवो के होते हैं या अजीवो के होते हैं ?

[५ उ.] गौतम ! काम जीवो के होते हैं, अजीवो के नही होते।

६ कतिविहा ण भते ! कामा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा कामा पण्णत्ता, त जहा— सद्दा य, रूवा य।

[६ प्र.] भगवन् ! काम कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[६ उ.] गौतम ! काम दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) शब्द और (२) रूप।

७ रूवी भते ! भोगा ? अरूवी भोगा ?

गोयमा ! रूवी भोगा, नो अरूवी भोगा।

[७ प्र] भगवन् ! भोग रूपी है अथवा अरूपी है ?

[७ उ] गौतम भोग रूपी होते हैं, व (भोग) अरूपी नही होते ।

८ सचित्ता भंते ! भोगा ? अचित्ता भोगा ?

गोयमा ! सचित्ता वि भोगा, अचित्ता वि भोगा ।

[८ प्र] भगवन ! भोग सचित्त होते है या अचित्त होते ह ?

[८ उ] गौतम ! भोग सचित्त भी होते हैं और भोग अचित्त भी होते हैं ।

९ जीवा भंते ! भोगा ? पुच्छा ।

गोयमा ! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा ।

[९ प्र] भगवन् ! भोग जीव होते हैं या अजीव होते हैं ?

[९ उ] गौतम ! भोग जीव भी होते हैं, और भोग अजीवो भो होते हैं ।

१० जीवाण भंते ! भोगा ? अजीवाण भोगा ?

गोयमा ! जीवाण भोगा, नो अजीवाण भोगा ।

[१० प्र] भगवन ! भोग जीवा के होते ह या अजीवो के होते हैं ?

[१० उ] गौतम ! भोग जीवो के होते है, अजीवो के नही होते ।

११ कतिविहा ण भंते ! भोगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा भोगा पण्णत्ता, त जहा—गधा, रसा, फासा ।

[११ प्र] भगवन ! भोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[११ उ] गौतम ! भोग तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) गन्ध, (२) रस और (३) स्पर्श ।

१२ कतिविहा ण भंते ! कामभोगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पचविहा कामभोगा पण्णत्ता, त जहा—सद्दा रूवा गधा रसा फासा ।

[१२ प्र] भगवन् ! काम-भोग कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१२ उ] गौतम ! काम-भोग पाच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार —शब्द, रूप गन्ध, रस और स्पश ।

१३ [१] जीवा ण भंते ! किं कामी ? भोगी ?

गोयमा ! जीवा कामी वि, भोगी वि ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! जीव कामी हैं अथवा भोगी है ?

[१३-१ उ] गौतम ! जीव कामी भी है और भोगी भी हैं।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति 'जीवा कामी वि, भोगी वि' ?

गोयमा ! सोइंदिय-चक्खिंदियाइं पडुच्च कामी, घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी। से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव भोगी वि।

[१३ २ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि जीव कामी भी है और भोगी भी हैं ?

[१३ २ उ] गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा जीव कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा जीव भोगी हैं। इस कारण, हे गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

१४ नेरइया णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?

एवं चेव।

[१४ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव कामी हैं अथवा भोगी हैं ?

[१४ उ] गौतम ! नैरयिक जीव भी पूर्ववत् कामी भी हैं, भोगी भी है।

१५ एवं जाव थणियकुमारा।

[१५] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए।

१६ [१] पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! पुढविकाइया नो कामी, भोगी।

[१६ १ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो के सम्बन्ध मे भी यही प्रश्न है।

[१६-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव कामी नही हैं, किन्तु भोगी हैं।

[२] से केणट्ठेण जाव भोगी ?

गोयमा ! फासिंदियं पडुच्च, से तेणट्ठेण जाव भोगी।

[१६-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि पृथ्वीकायिक जीव कामी नही, किन्तु भोगी है ?

[१६-२ उ] गौतम ! स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीव भोगी हैं। इस कारण हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव यावत् भोगी हैं।

[३] एवं जाव वणस्सइकाइया।

[१६-३] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो तक कहना चाहिए।

१७ [१] बेइंदिया एवं चेव। नवरं जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च।

[१७-१] इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीव भी भोगी हैं, किन्तु विशेषता यह है कि वे जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।

[२] तेइंदिया वि एवं चेव। नवरं घाणिंदिय जिब्भिदिय-फासिंदियाइं पडुच्च।

[१७-२] त्रीन्द्रिय जीव भी इसी प्रकार भोगी हैं, किन्तु विशेषता यह है कि वे घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।

[३] चउरिंदियाण पुच्छा।

गोयमा! चउरिंदिया कामी वि भोगी वि।

[१७-३ प्र] भगवन्! चतुरिन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में भी प्रश्न है (कि वे कामी हैं अथवा भोगी हैं)।

[१७-३ उ] गौतम! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी है और भोगी भी है।

[४] से केणट्ठेणं जाव भोगी वि?

गोयमा! चक्खिंदियं पडुच्च कामी, घाणिंदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी। से तेणट्ठेणं जाव भोगी वि।

[१७-४ प्र] भगवन् ऐसा किस कारण से कहते हैं कि चतुरिन्द्रिय जीव यावत् (कामी भी हैं और) भोगी भी हैं?

[१७-४ उ] गौतम! (चतुरिन्द्रिय जीव) चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

१८ अवसेसा जहा जीवा जाव वेमाणिया।

[१८] शेष वैमानिकों पर्यन्त सभी जीवों के विषय में औधिक जीवों की तरह कहना चाहिए (कि वे कामी भी हैं, भोगी भी हैं)।

१९ एतेसि णं भंते! जीवाणं कामभोगीणं नोकामीणं, नोभोगीणं, भोगीण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा कामभोगी, नोकामी नोभोगी अणंतगुणा, भोगी अणंतगुणा।

[१९ प्र] भगवन्! काम-भोगी, नोकामी नोभोगी और भोगी, इन जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

[१९ उ] गौतम! कामभोगी जीव सबसे थोड़े हैं नोकामी-नोभोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं और भोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—विविध पहलुओ से काम-भोग एव कामी-भोगी के स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व की प्ररूपणा—प्रस्तुत अठारह सूत्रो (सू २ से १९ तक) मे विविध पहलुओ से काम, भोग, कामी-भोगी जीवो के स्वरूप और उनके अल्पबहुत्व से सम्बन्धित सिद्धान्तसम्मत प्रश्नोत्तर प्रस्तुत हैं।

निष्कर्ष—जिनकी कामना अभिलाषा तो की जाती हो किन्तु जो विशिष्ट शरीरस्पश के द्वारा भोगे न जाते हो, वे काम है, जसे—मनोज्ञ शब्द, सस्थान तथा वण काम है। रूपी का अथ है—जिनमे रूप या मूर्तता हो। इस दृष्टि से काम रूपी ह, क्योकि उनमे पुद्गलधमता होने से वे मूत है। समनस्क प्राणी के रूप की अपेक्षा से काम सचित्त हैं और शब्दद्रव्य की अपेक्षा तथा असज्ञी जीवो के शरीर के रूप को अपेक्षा से अचित्त भी है। यह सचित्त और अचित्त शब्द विशिष्ट चेतना अथवा सज्ञित्व तथा विशिष्टचेतनाशून्यता अथवा असज्ञित्व का बोधक है। जीवो के शरीर के रूपो की अपेक्षा से काम जीव ह और शब्दो तथा चित्रित पुतली, चित्र आदि की अपेक्षा से काम अजीव भी है। कामसेवन के कारणभूत होने से वे जीवो के ही होते है, अजीवा मे काम का अभाव है। जो शरीर से भोगे जाएँ, वे गन्ध, रस और स्पश 'भोग' कहलाते हैं। वे भोग पुद्गलधर्मी होने से मूत है, अत रूपी है, अरूपी नही। किन्ही सज्ञी जीवो के गन्धादिप्रधान शरीरो की अपेक्षा से भोग सचित्त हैं और असज्ञी जीवो के गन्धादिविशिष्ट शरीरो की अपेक्षा अचित्त भी हैं। जीवो के शरीर तथा अजीव द्रव्य विशिष्टगन्धादि की अपेक्षा भोग जीव भी है, अजीव भी।

चतुरिन्द्रिय और सभी पचेन्द्रिय जीव काम-भोगी है, वे सबसे थोडे है। उनसे नोकामी नोभोगी अर्थात् सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं और भोगी जीव—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीव उनसे अनन्तगुणे हैं क्योकि वनस्पतिकाय के जीव अनन्त हैं।[1]

क्षीणभोगी छद्मस्थ, अधोऽवधिक, परमावधिक एव केवली मनुष्यो मे भोगित्व-प्ररूपणा

२० छउमत्थे ण भते! मणूसे जे भविए अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए, से नूण भते! से खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेण कम्मेण बलेण वीरिएण पुरिसक्कारपरक्कमेण विउलाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए, से नूण भते! एयमट्ठ एव वयह?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, पभू ण से उट्ठाणेण वि कम्मेण वि बलेण वि वीरिएण वि पुरिसक्कारपरक्कमेण वि अन्नयराइ विपुलाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए, तम्हा भोगी, भोगे परिच्चयमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

[२० प्र] भगवन्! ऐसा छद्मस्थ मनुष्य, जो किसी देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होने वाला है, भगवन्! वास्तव मे वह क्षीणभोगी (अन्तिम समय मे दुर्बल शरीर वाला होने से) उत्थान, कम, बल, वीय और पुरुषकार-पराक्रम के द्वारा विपुल और भोगने योग्य भोगो को भोगता हुआ विहरण (जीवनयापन) करने मे समथ नही है? भगवन्! क्या आप इस अथ (तथ्य) को इसी तरह कहते हैं?

[२० उ] गौतम! यह अथ समथ नही है, क्योकि वह (देवलोक मे उत्पत्तियोग्य क्षीणशरीरी भी) उत्थान, कम, बल, वीय और पुरुषकार-पराक्रम द्वारा किन्ही विपुल एव भोग्य भोगो को

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३१०-३११

(यत्किंचित् रूप म, मन से भी) भोगने मे समर्थ है। इसलिए वह भोगी भोगो का (मन से) परित्याग करता हुआ ही महानिजरा और महापयवसान (महान् शुभ अन्त) वाला होता है।

२१ आहोहिए ण भते ! मणुस्से जे भविए अन्नयरेसु देवलोएसु०, ।

एव चेव जहा छउमत्थे जाव महापज्जवसाणे भवति।

[२१ प्र] भगवन् ! ऐसा अधोऽवधिक (नियत क्षेत्र का अवधिज्ञानी) मनुष्य, जो किसी देवलोक मे उत्पन्न होने योग्य है, क्या वह क्षीणभोगी उत्थान यावत् पुरुषकारपराक्रम द्वारा विपुल एव भोग्य भोगो को भोगने मे समथ है।

[२१ उ] (हे गौतम !) इसके विषय मे उपयुक्त छद्मस्थ के समान ही कथन जान लेना चाहिए, यावत् (भोगो का परित्याग करता हुआ ही वह महानिजरा और) महापयवसान वाला होता है।

२२ परमाहोहिए ण भते ! मणुस्से जे भविए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झित्तए जाव अत करेत्तए, से नूण भते ! से खीणभोगी० ।

सेस जहा छउमत्थस्स ।

[२२ प्र] भगवन् ! ऐसा परमावधिक (परम अवधिज्ञानी) मनुष्य जो उसी भवग्रहण से (जन्म मे) सिद्ध होने वाला यावत् सव-दु खो का अन्त करने वाला है, क्या वह क्षीणभोगी यावत् भोगने योग्य विपुल भोगो को भोगने मे समथ है ?

[२२ उ] (हे गौतम !) इसका उत्तर भी छद्मस्थ के लिए दिए हुए उत्तर के समान समझना चाहिए।

२३ केवली ण भते ! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेण० ।

एव चेव जहा परमाहोहिए जाव महापज्जवसाणे भवति ।

[२३ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्य भी, जो उसी भव मे सिद्ध होने वाला है, यावत सभी दु खो का अन्त करने वाला है, क्या वह विपुल और भोग्य भोगो को भोगने मे समथ है ?

[२३ उ] (हे गौतम !) इसका कथन भी परमावधिज्ञानी की तरह करना चाहिए यावत वह महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है।

विवेचन—क्षीणभोगी छद्मस्थ, अधोऽवधिक, परमावधिक, एव केवली मनुष्यों मे भोगित्व प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू २० से २३ तक) मे अतिम समय मे क्षीणदेह छद्मस्थादि मनुष्य भोग भोगने मे असमथ होने मे भोगी कैसे कहे जा सकते हैं ? इस प्रश्न का सिद्धान्तसम्मत समाधान प्रतिपादित किया गया है।

भोग भोगने मे असमथ होने से ही भोगत्यागी नहीं—भोग भोगने का साधन शरीर होने से उसे यहाँ भोगी कहा गया है। तपस्या या रोगादि से जिसका शरीर अशक्त और क्षीण हो गया है, उसे 'क्षीणभोगी' कहते हैं। देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न होने वाला छद्मस्थ मरणासन्न अवस्था

मे अत्यन्त क्षीणभोगी दुर्बल होने से अन्तिम समय मे जीता हुआ भी उत्थानादि द्वारा किन्ही भोगो को भोगने मे जब असमर्थ है, तब वह भोगी कैसे कहलाएगा ? उसे भोगत्यागी कहना चाहिए, यह २१ वें सूत्र के प्रश्न का आशय है। इसका सिद्धान्तसम्मत उत्तर दिया गया है कि ऐसा दुर्बल मानव भी अन्तिम अवस्था मे जीता हुआ भी (मन एव वचन से) भोगो को भोगने मे समर्थ होता है। अतएव वह भोगी ही कहलाएगा, भोगत्यागी नही। भोगत्यागी तो वह तब कहलाएगा जब भोगो (स्वाधीन अथवा अस्वाधीन समस्त भोग्य भोगो) का मन-वचन काय, तीनो से परित्याग कर देगा। ऐसी स्थिति मे वह भोग त्यागी मनुष्य निर्जरा करता है, उससे भी देवलोकगति प्राप्त करता है, अथवा महानिर्जरा एव महापर्यवसान वाला होता है।

नियतक्षेत्रविषयक अवधिज्ञान वाला अधोऽवधिक कहलाता है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान वाला परमावधिज्ञानी चरमशरीरी होता है और केवलज्ञानी तो चरमशरीरी है ही। इन की भोगित्व एव भोगत्यागित्व सम्बन्धी प्ररूपणा छद्मस्थ की तरह ही है।[1]

असज्ञी और समर्थ (सज्ञी) जीवो द्वारा अकामनिकरण और प्रकामनिकरण वेदन का सयुक्तिक निरूपण

२४ जे इमे भंते ! असण्णिणो पाणा, त जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सतिकाइया छट्ठा य एगइया तसा, एते ण अधा मूढा तम पविट्ठा तमपडलमोहजालपलिच्छन्ना अकामनिकरण वेदण वेदेंतीति वत्तव्व सिया ?

हता, गोयमा ! जे इमे असण्णिणो पाणा जाव वेदण वेदेंतीति वत्तव्व सिया।

[२४ प्र] भगवन् ! ये जो असज्ञी (अमनस्क) प्राणी है, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् (अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक) ये पाच (स्थावर) तथा छठे कई त्रसकायिक (सम्मूर्च्छिम) जीव है, जो अन्ध (अन्धा की तरह अज्ञानान्ध) है, मूढ (मोहयुक्त होने से तत्त्वश्रद्धान के अयोग्य) है, तामस (अज्ञानरूप अन्धकार) मे प्रविष्ट की तरह है, (ज्ञानावरणरूप) तम पटल और (मोहनीयरूप) मोहजाल से प्रतिच्छन्न (आच्छादित) है, वे अकामनिकरण (अज्ञान रूप मे) वेदना वेदते है, क्या ऐसा कहा जा सकता है ?

[२४ उ] हां गौतम ! जो ये असज्ञी प्राणी (पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक और छठे कई त्रसकायिक (सम्मूर्च्छिम) जीव है यावत् ये सब अकामनिकरण वेदना वेदते हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

२५ अत्थि ण भंते ! पभू वि अकामनिकरण[2] वेदण वेदेति ?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक

(ख) तुलना कीजिए—

वत्थ-गधमलकार, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुजति, न से 'चाइ' त्ति वुच्चई ॥ २ ॥
जे य कते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठिकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए से हु 'चाइ' त्ति वुच्चई ॥ ३ ॥—दशवैकालिक सूत्र अ २, गा २-३

२ अकामनिकरण—जिसमे अकाम अर्थात् वेदना के अनुभव मे अमनस्क होने से अनिच्छा हो निकरण=कारण है, वह अकामनिकरण है यह अज्ञानकारणक है।

हंता, गोयमा ! अत्थि ।

[२५ प्र] भगवन् ! क्या ऐसा होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण (अज्ञानपूर्वक-अनिच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ?

[२५ उ] हाँ, गौतम ! वेदते हैं।

२६ कहं णं भंते ! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ?

गोयमा ! जे णं णो पभू विणा पदीवेणं अंधकारंसि रूवाइं पासित्तए, जे णं नो पभू पुरतो रूवाइं अणिज्झाइत्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू मग्गतो रूवाइं अणवयक्खित्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू पासतो रूवाइं अणवलोएत्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू उड्ढं रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए, जे णं नो पभू अहे रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए, एस णं गोयमा ! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।

[२६ प्र] भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण वेदना को कैसे वेदते हैं ?

[२६ उ] गौतम ! जो जीव समर्थ होते हुए भी अन्धकार में दीपक के बिना रूपों (पदार्थों) को देखने में समर्थ नहीं होते, जो अवलोकन किये बिना सम्मुख रहे हुए रूपों (पदार्थों) को देख नहीं सकते, अवेक्षण किये बिना पीछे (पीठ के पीछे) के भाग को नहीं देख सकते, अवलोकन किये बिना अगल-बगल के (पार्श्वभाग के दोनों ओर के) रूपों को नहीं देख सकते, आलोकन किये बिना ऊपर के रूपों को नहीं देख सकते और न आलोकन किये बिना नीचे के रूपों को देख सकते हैं इसी प्रकार हे गौतम ! ये जीव समर्थ होते हुए भी अकामनिकरण वेदना वेदते हैं।

२७ अत्थि णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।

हंता, अत्थि ।

[२७ प्र] भगवन् ! क्या ऐसा भी होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ?

[२७ उ] हाँ, गौतम ! वेदते हैं।

२८ कहं णं भंते ! पभू वि पकामनिकरणं[1] वेदणं वेदेंति ?

गोयमा ! जे णं नो पभू समुद्दस्स पारं गमित्तए, जे णं नो पभू समुद्दस्स पारगताइं रूवाइं पासित्तए, जे णं नो पभू देवलोगं गमित्तए, जे णं नो पभू देवलोगगताइं रूवाइं पासित्तए एस णं गोयमा ! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तमसए सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥

---

१ पकामनिकरण —प्रकाम—अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति न होने से प्रकृष्ट अभिलाषा ही जिसमें निकरण—कारण है, वह प्रकामनिकरण है।

[२८ प्र.] भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण वेदना को किस प्रकार वेदते हैं ?

[२८ उ.] गौतम ! जो समुद्र के पार जाने में समर्थ नहीं हैं, जो समुद्र के पार रहे हुए रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, जो देवलोक में जाने में समर्थ नहीं हैं और जो देवलोक में रहे हुए रूपों को देख नहीं सकते, हे गौतम ! वे समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना को वेदते हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—असंज्ञी और समर्थ (संज्ञी) जीवों द्वारा अकामनिकरण एवं प्रकामनिकरणवेदन का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. २४ से २८ तक) में असंज्ञी एवं समर्थ जीवों द्वारा अकामनिकरण वेदन का तथा समर्थ जीवों द्वारा प्रकामनिकरणवेदन का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

असंज्ञी और संज्ञी द्वारा अकाम प्रकामनिकरण वेदन क्यों और कैसे ?—असंज्ञी जीवों के मन न होने से वे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति या विचारशक्ति के अभाव में सुख-दुःख रूप वेदना अकामनिकरण रूप में (अनिच्छा से, अज्ञानतापूर्वक) भोगते हैं। संज्ञी जीव समनस्क होने से देखने-जानने में अथवा ज्ञानशक्ति और इच्छाशक्ति में समर्थ होते हुए भी अनिच्छापूर्वक (अकामनिकरण) अज्ञानदशा में सुखदुःखरूप वेदन करते हैं। जैसे—देखने की शक्ति होते भी अन्धकार में रहे हुए पदार्थों को दीपक के बिना मनुष्य नहीं देख सकता, इसी प्रकार आगे पीछे, अगल-बगल, ऊपर-नीचे रहे हुए पदार्थों को देखने की शक्ति होते हुए भी मनुष्य उपयोग के बिना नहीं देख सकता, वैसे ही समर्थ जीव के विषय में समझना चाहिए। संज्ञी (समनस्क) जीवों में इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति होते हुए भी उसे प्रवृत्त करने का सामर्थ्य नहीं है, केवल उसकी तीव्र अभिलाषा है, इस कारण वे प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं। जैसे—समुद्रपार जाने की, समुद्रपार रहे हुए रूपों को देखने की, देवलोक में जाने की तथा वहाँ के रूपों को देखने की शक्ति न होने से जीव तीव्र अभिलाषापूर्वक वेदना वेदते हैं, वैसे ही यहाँ समझना चाहिए।

निष्कर्ष—असंज्ञी जीव इच्छा और ज्ञान की शक्ति के अभाव में अनिच्छा से अज्ञानपूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं। संज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति से युक्त होते हुए भी उपयोग के बिना अनिच्छा से और अज्ञानपूर्वक सुख दुःख वेदते हैं, और ज्ञान एवं इच्छाशक्ति से युक्त होते हुए भी प्राप्तिरूप सामर्थ्य के अभाव में मात्र तीव्र कामनापूर्वक वेदना वेदते हैं।[1]

॥ सप्तम शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्रांक ३१२ (ख) भगवती (गुजराती अनुवाद-टिप्पणयुक्त) खण्ड ३, पृ. २६

अट्ठमो उद्देसओ : 'छउमत्थ'

अष्टम उद्देशक : 'छद्मस्थ'

संयमादि से छद्मस्थ के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का निषेध

१ छउमत्थे ण भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं० ?

एवं जहा पढमसते चउत्थे उद्देसए (सु० १२-१८) तहा भाणियव्वं जाव अलमत्थु ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य, अनन्त और शाश्वत अतीतकाल में केवल संयम द्वारा, केवल संवर द्वारा, केवल ब्रह्मचर्य से तथा केवल अष्टप्रवचनमाताओं के पालन से सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् उसने सब दुःखों का अन्त किया है ?

[१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इस विषय में प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक (सू १२-१८) में जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार यह, यावत् 'अलमत्थु' पाठ तक कहना चाहिए।

विवेचन—संयमादि से छद्मस्थ के सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का निषेध—प्रस्तुत प्रथम सूत्र में भगवतीसूत्र के प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक में उक्त पाठ के अतिदेशपूर्वक निषेध किया गया है कि केवल संयम आदि से अतीत में कोई छद्मस्थ सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं हुआ, अपितु केवली होकर ही सिद्ध होते हैं, यह निरूपण है।

फलितार्थ—प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशकोक्त पाठ का फलितार्थ यह है कि भूत, वर्तमान और भविष्य में जितने जीव सिद्ध, बुद्ध मुक्त हुए हैं, होते हैं, होंगे, वे सभी उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक अरिहन्त, जिन, केवली होकर ही हुए हैं, होते हैं, होंगे। उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारक अरिहन्त, जिन केवली को ही अलमत्थु (पूर्ण) कहना चाहिये।[1]

हाथी और कुंथुए के समानजीवत्व की प्ररूपणा

२ से णूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य एवं जहा रायपसेणइज्जे जाव खुड्डियं वा, महालियं वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव समे चेव जीवे ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव में हाथी और कुंथुए का जीव समान है ?

[२ उ] हाँ गौतम ! हाथी और कुन्थुए का जीव समान है। इस विषय में राजप्रश्नीयसूत्र में कहे अनुसार 'खुड्डियं वा महालियं वा' इस पाठ तक कहना चाहिए।

हे गौतम ! इसी कारण से हाथी और कुंथुए का जीव समान है।

---

१ भगवती (हिन्दीविवेचन) भाग ३, पृ ११८३

विवेचन—**हाथी और कुथुए के समान जीवत्व की प्ररूपणा**—प्रस्तुत द्वितीय सूत्र मे राजप्रश्नीय सूत्रपाठ के अतिदेशपूर्वक हाथी और कुथुए के समजीवत्व की प्ररूपणा की गई है।

राजप्रश्नीय सूत्र मे समान जीवत्व की सदृष्टान्त प्ररूपणा—हाथी का शरीर बडा और कुथुए का छोटा होते हुए भी दानो मे मूलत आत्मा (जीव) समान है, इसे सिद्ध करने के लिए राजप्रश्नीय सूत्र मे दीपक का दृष्टान्त दिया गया है। जसे—एक दीपक का प्रकाश एक कमरे मे फैला हुआ है, यदि उसे किसी बर्तन द्वारा ढक दिया जाए तो उसका प्रकाश बर्तन परिमित हो जाता है, इसी प्रकार जब जीव हाथी का शरीर धारण करता है तो वह (आत्मा) उतने बडे शरीर मे व्याप्त रहता है और जब कुथुए का शरीर धारण करता है तो उसके छोटे से शरीर मे (आत्मा) व्याप्त रहता है। इस प्रकार केवल छोटे-बडे शरीर का ही अन्तर रहता है जीव मे कुछ भी अन्तर नही है। सभी जीव समान रूप से असख्यात प्रदेशो वाले है। उन प्रदेशो का सकोच-विस्तार मात्र होता है।

चौबीस दण्डकवर्ती जीवो द्वारा कृत पापकर्म दुखरूप और उसकी निर्जरा सुखरूप

३ नेरइयाण भते ! पावे कम्मे जे य कडे, जे य कज्जति, जे य कज्जिस्सति सव्वे से दुक्खे ? जे निज्जिण्णे से ण सुहे ?

हता, गोयमा ! नेरइयाण पावे कम्मे जाव सुहे।

[३ प्र] भगवन् ! नैरयिको द्वारा जो पापकर्म किया गया है, किया जाता है और किया जायेगा, क्या वह सब दुखरूप है और (उनके द्वारा) जिसकी निर्जरा की गई है, क्या वह सुखरूप है ?

[३ उ] हाँ, गौतम ! नैरयिक द्वारा जो पापकर्म किया गया है, यावत् वह सब दुखरूप है और (उनके द्वारा) जिन (पापकर्मो) की निर्जरा की गई है, वह सब सुखरूप है।

४ एव जाव वेमाणियाण।

[४] इस प्रकार वैमानिको पर्यन्त चौबीस दण्डको को जान लेना चाहिए।

विवेचन—**चौबीस दण्डकवर्ती जीवो द्वारा कृत पापकर्म दुखरूप और उसकी निर्जरा सुखरूप**—प्रस्तुत सूत्रद्वय मे नैरयिको से वैमानिको पर्यन्त सब जीवो के लिए पापकर्म दुखरूप और उसकी निर्जरा सुखरूप बताई गई है।

निष्कर्ष—पापकर्म ससार-परिभ्रमण का कारण होने से दुखरूप है और पापकर्मो की निर्जरा सुखस्वरूप मोक्ष का हेतु होने से सुखरूप है।[1]

सुख और दुख के कारण को यहा सुख-दुख कहा गया है।

सज्ञाओ के दस प्रकार—चौबीस दण्डको मे

कति ण भते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३१३, (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ३, पृ ११८७

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आहारसण्णा १, भयसण्णा २, मेहुणसण्णा ३, परिग्गहसण्णा ४, कोहसण्णा ५, माणसण्णा ६, मायासण्णा ७, लोभसण्णा ८, ओहसण्णा ९, लोगसण्णा १० ।

[५ प्र] भगवन् ! सज्ञाएँ कितने प्रकार की कही गई हैं ?

[५ उ] गौतम ! सज्ञाएँ दस प्रकार की कही गई हैं । वे दस प्रकार हैं—(१) आहारसज्ञा, (२) भयसज्ञा, (३) मथुनसज्ञा, (४) परिग्रहसज्ञा, (५) क्रोधसज्ञा, (६) मानसज्ञा, (७) मायासज्ञा, (८) लोभसज्ञा, (९) लोकसज्ञा और (१०) ओघसज्ञा ।

६ एव जाव वेमाणियाण ।

[६] वैमानिको पयन्त चौबीस दण्डको मे ये दस सज्ञाएँ पाई जाती है ।

विवेचन—सज्ञाओ के दस प्रकार चौवीस दण्डको मे—प्रस्तुत पचम सूत्र मे आहारसज्ञा आदि १० प्रकार की सज्ञाएँ चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे बताई गई हैं ।

सज्ञा की परिभाषाएँ—सज्ञान या आभोग अर्थात्—एक प्रकार की धुन को या मोहनीयादि कर्मोदय से आहारादि प्राप्ति की इच्छाविशेष को सज्ञा कहते है, अथवा जीव का आहारादि विषयक चिन्तन या मानसिक ज्ञान भी सज्ञा है, अथवा जिस क्रिया से जीव की इच्छा जानी जाए, उस क्रिया को भी सज्ञा कहते हैं ।

सज्ञाओ की व्याख्या (१) **आहारसज्ञा**—क्षुधावेदनीय के उदय से कवलादि आहाराथ पुद्गल-ग्रहणेच्छा, (२) **भयसज्ञा**—भयमोहनीय के उदय से व्याकुलचित्त पुरुष का भयभीत होना, कापना, रोमाचित होना, घबराना आदि, (३) **मैथुनसज्ञा**—पुरुषवेदादि (नोकषायरूप वेदमोहनीय) के उदय से स्त्री आदि के अगो को छूने, देखने आदि की तथा तज्जनित कम्पनादि, जिससे मथुनेच्छा अभिव्यक्त हो, (४) **परिग्रहसज्ञा**—लोभरूप कषायमोहनीय के उदय से आसक्तिपूवक सचित्त अचित्त द्रव्यग्रहणेच्छा, (५) **क्रोधसज्ञा**—क्रोध के उदय से आवेश, दोष रूप परिणाम एव नेत्र लाल होना, कापना, मुह सूखना आदि क्रियाये, (६) **मानसज्ञा**—मान के उदय से अहकारादिरूप परिणाम, (७) **मायासज्ञा**—माया के उदय से दुर्भावनावश दूसरो को ठगना, धोखा देना आदि, (८) **लोभसज्ञा**—लोभ के उदय से सचित्त-अचित्त पदाथ प्राप्ति की लालसा, (९) **ओघसज्ञा**—मतिज्ञानावरण आदि के क्षयोपशम से शब्द और अथ का सामान्यज्ञान, अथवा धुन ही धुन मे बिना उपयोग के की गई प्रवृत्ति और (१०) **लोकसज्ञा**—सामान्य रूप से ज्ञात वस्तु को विशेष रूप से जानना अथवा लोकरूढि या लोकदृष्टि के अनुसार प्रवृत्ति करना लोकसज्ञा है ।[1] ये दसो सज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप से सभी छद्मस्थ ससारी जीवो मे पाई जाती हैं ।

नैरयिको को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ

६ नेरइया दसविह वेयण पच्चणुभवमाणा विहरति, त जहा—सीत उसिण खुह पिवास कडु परज्झ जर दाह भय सोग ।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३३४

[७] नैरयिक जीव दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए रहते है। वह इस प्रकार—(१) शीत, (२) उष्ण, (३) क्षुधा, (४) पिपासा, (५) कण्डू (खुजली), (६) पराधीनता, (७) ज्वर, (८) दाह, (९) भय और (१०) शोक।

विवेचन—नरयिको को सतत अनुभव होने वाली दस वेदनाएँ—प्रस्तुत सूत्र मे शीत आदि दस वेदनाएँ, जो नरयिको को प्रत्यक्ष अनुभव मे आती है, बताई गई है।

हाथी और कुथुए को समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा

८ [१] से नूण भते ! हत्थिस्स य कुथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जति ?

हता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुथुस्स य जाव कज्जति।

[८-१ प्र] भगवन् ! क्या वास्तव मे हाथी और कुथुए के जीव को समान रूप मे अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगती है ?

[८-१ उ] हा, गौतम ! हाथी और कुथुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव कज्जति ?

गोयमा ! अविरति पडुच्च। से तेणट्ठेण जाव कज्जति।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि हाथी और कुथुए के यावत् क्रिया समान लगती है ?

[८-२ उ] गौतम ! अविरति की अपेक्षा (हाथी और कुथुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया) समान लगती है।

विवेचन—हाथी और कुथुए को समान अप्रत्याख्यानिकी क्रिया लगने की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र मे हाथी और कुथुए को अविरति की अपेक्षा अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान रूप से लगने की प्ररूपणा की गई है, क्योकि अविरति का सद्भाव दोनो मे समान है।

आधाकर्मसेवी साधु को कर्मबधादि-निरूपणा

९ आहाकम्म ण भते ! भुजमाणे कि बधति ? कि पकरेति ? कि चिणाति ! कि उवचिणाति ?

एव जहा पढमे सते नवमे उद्देसए (सु २६) तहा भाणियव्व जाव सासते, पडिते, पडितत्त असासय।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ सत्तमसए अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥

[९ प्र] भगवन ! आधाकर्म (आहारादि) का उपयोग करने वाला साधु क्या बाधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ?

[९ उ] गौतम ! (आधाकर्म आहारादि का उपभोग करने वाला साधु आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सात कर्मों की प्रकृतियों को, यदि वे शिथिल बंध से बंधी हुई हों तो, गाढ बंध वाली करता है, यावत् बार-बार संसार-परिभ्रमण करता है।) इस विषय का सारा वर्णन प्रथम शतक के नौवें उद्देशक (सू २६) में कहे अनुसार—'पण्डित शाश्वत है और पण्डितत्व अशाश्वत है' यहाँ तक कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार का है, यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—आधाकर्मसेवी साधु को कर्मबंधादि निरूपण—प्रस्तुत सूत्र में प्रथम शतक के ९ वें उद्देशक के अतिदेशपूर्वक आधाकर्मदोषसेवन का दुष्फल बताया गया है।

आधाकर्म—आहार, पानी आदि कोई भी पदार्थ जो साधु के निमित्त बनाए जाएँ, वे आधाकर्मदोष युक्त हैं। इसका विशेष विवरण प्रथम शतक के नौवें उद्देशक से जान लेना चाहिए।

॥ सप्तम शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

नवमो उद्देसओ : 'असंवुड'

नवम उद्देशक 'असंवृत'

असंवृत अनगार द्वारा इहगत बाह्यपुद्गलग्रहणपूर्वक विकुर्वण-सामर्थ्य-निरूपण

१ असवुडे ण भते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले अपरियादिइत्ता पभू एगवण्ण एगरूव विउव्वित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या असवृत्त (सवररहित=प्रमत्त) अनगार बाहर के पुदगलो को ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

[१ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ नही है।

२ असवुडे ण भते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले परियादिइत्ता पभू एगवण्ण एगरूव जाव हता, पभू ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या असवृत अनगार बाहर के पुद्गलो को ग्रहण करके एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ? यावत् ?

[२ उ] (हा, गौतम !) वह ऐसा करने मे समर्थ है।

३ से भते ! किं इहगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वइ ? तत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वइ ? अन्नत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विउव्वइ ?

गोयमा ! इहगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ, नो तत्थगए पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ, नो अन्नत्थगए पोग्गले जाव विकुव्वइ ।

[३ प्र] भगवन् ! वह असवृत अनगार यहा (मनुष्य लोक मे) रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, या वहा रहे हुए पुदगलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, अथवा अन्यत्र रहे पुदगलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ?

[३ उ] गौतम ! वह यहा (मनुष्यलोक मे) रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है, किन्तु न तो वहा रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है और न ही अन्यत्र रहे हुए पुद्गलो को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है।

४ एव एगवण्ण अणेगरूव चउभगो जहा छट्ठसए नवमे उद्देसए (सु ५) तहा इहावि भाणियव्व । नवर अणगारे इहगए चेव पोग्गले परियादिइत्ता विकुव्वइ । सेस त चेव जाव लुक्खपोग्गल निद्धपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

हंता, पभू । से भंते ! किं इहगए पोग्गले परियादिइत्ता जाव (सु ३) नो अन्नत्थगए पोग्गले परियाविइत्ता विकुव्वइ ।

[४] इस प्रकार एकवर्ण एकरूप, एकवर्ण अनेकरूप, अनेकवर्ण एकरूप और अनेकवर्ण अनेकरूप, यों चौभंगी का कथन जिस प्रकार छठे शतक के नौवें उद्देशक (सू ५) में किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए । किन्तु इतना विशेष है कि यहाँ रहा हुआ मुनि यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है । शेष सारा वर्णन उसी के अनुसार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् '[प्र] भगवन् ! क्या रूक्ष पुद्गलों को स्निग्ध पुद्गलों के रूप में परिणित करने में समर्थ है ?' [उ] हाँ, गौतम ! समर्थ है । [प्र] भगवन् ! क्या वह यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके यावत् (सू ३) अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण किए बिना विकुर्वणा करता है ?' यहाँ तक कहना चाहिए ।

विवेचन—असंवृत अनगार के विकुर्वण सामर्थ्य का निरूपण—प्रस्तुत सूत्रचतुष्टय में असंवृत अनगार के विकुर्वण-सामर्थ्य का छठे शतक के नौवें उद्देशक के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है ।

निष्कर्ष—वैक्रियलब्धिमान् असंवृत अनगार यहाँ रहे हुए बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके ही एकवर्ण-एकरूप, एकवर्ण-अनेकरूप, अनेकवर्ण-एकरूप या अनेकवर्ण-अनेकरूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है, अन्यथा नहीं । इसी प्रकार वह यहाँ रहा हुआ यहाँ रहे हुए बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया करता है, यहाँ तक कि वर्ण की तरह गन्ध, रस, स्पर्श आदि के विविध विकल्प भी उसके विकुर्वणा-सामर्थ्य की सीमा में हैं, जिनका कथन छठे शतक के नौवें उद्देशक की तरह यहाँ भी कर लेना चाहिए ।[1] निष्कर्ष यह है कि वर्ण के १०, गंध का १, रस के १० और स्पर्श के चार, या २५ भंग एवं पहले के चार भंग मिला कर कुल २९ भंग होते हैं ।

'इहगए' 'तत्थगए' एवं 'अन्नत्थगए' का तात्पर्य—प्रश्नकर्त्ता गौतम स्वामी हैं, अतः उनकी अपेक्षा 'इहगए' का अर्थ 'मनुष्यलोक में रहा हुआ' ही करना संगत है । 'तत्थगए' का अर्थ है—विक्रिया करके वह अनगार जहाँ जाएगा, वह स्थान और 'अन्नत्थगए' का अर्थ है—उपर्युक्त दोनों स्थानों से भिन्न स्थान । तात्पर्य यह है कि जिस स्थान पर रह कर अनगार विक्रिया करता है, वहाँ के पुद्गल 'इहगत' कहलाते हैं । विक्रिया करके जिस स्थान पर जाता है, वहाँ के पुद्गल 'तत्रगत' कहलाते हैं और इन दोनों स्थानों से भिन्न स्थान के पुद्गल 'अन्यत्रगत' हैं । देव तो 'तत्रगत' अर्थात्—देवलोकगत पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया कर सकता है, लेकिन अनगार तो मध्यलोकगत होने के कारण 'इहगत' अर्थात्—मनुष्यलोकगत पुद्गल को ही ग्रहण करके विक्रिया कर सकता है ।[2]

महाशिलाकण्टक संग्राम में जय-पराजय का निर्णय

५ णायमेतं अरहता, सुयमेतं अरहया, विण्णायमेतं अरहया, महासिलाकंटए संगामे महासिलाकंटए संगामे । महासिलाकंटए णं भंते ! संगामे वट्टमाणे के जइत्था ? के पराजइत्था ?

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३०३

(ख) भगवतीसूत्र के थोकडे द्वितीय भाग, थोकडा नं ६७, पृ १२५

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक ३१५

गोयमा ! वज्जो विदेहपुत्ते जइत्था, नव मल्लई नव लेच्छई कासी कोसलगा—अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था।

[५ प्र] अर्हन्त भगवान् ने यह जाना है, अर्हन्त भगवान ने यह सुना है—अर्थात्—सुनने की तरह प्रत्यक्ष देखा है, तथा अर्हन्त भगवान को यह विशेष रूप से ज्ञात है कि महाशिलाकण्टक सग्राम महाशिलाकण्टक सग्राम ही है। (अत प्रश्न यह है कि) भगवन् ! जब महाशिलाकण्टक सग्र म चल रहा (प्रवत्तमान) था, तब उसमे कौन जीता और कौन हारा ?

[५ उ] गौतम ! वज्जी (वज्जीगण का अथवा वज्री इन्द्र और) विदेहपुत्र कूणिक राजा जीते, नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी, जो कि काशी और कोशलदेश के १८ गणराजा थे, वे पराजित हुए।

महाशिलाकण्टक-सग्राम के लिए कूणिक राजा की तैयारी और अठारह गणराजाओ पर विजय का वर्णन

६ तए ण से कूणिए राया महासिलाकटग सगाम उट्ठित जाणित्ता कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उदाइ हत्थिराय परिकप्पेह, हय-गय रह-जोहकलिय चाउरगिणि सेण सन्नाहेह, सन्नाहेत्ता जाव मम एतमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह।

[६] उस समय मे महाशिलाकण्टक-सग्राम उपस्थित हुआ जान कर कूणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो (आज्ञापालक सेवको) को बुलाया। बुला कर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही 'उदायी' नामक हस्तिराज (पट्टहस्ती) को तयार करो और अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना सनद्ध (शस्त्रास्त्रादि से सुसज्जित) करो और ये सब करके यावत् (मेरी आज्ञानुसार काय करके) शीघ्र ही मेरी आज्ञा मुझे वापिस सौपो।

७ तए ण ते कोडुबियपुरिसा कूणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव[1] अजलि कट्टु 'एव सामी ! तह' त्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणति, पडिसुणित्ता। खिप्पामेव छेयायरियोवएस-मतिकप्पणाविकप्पेहि सुनिउणेहि एव जहा उववातिए जाव भीम सगामिय अउज्झ उदाइ हत्थिराय परिकप्पेंति हय गय-जाव सन्नाहेति, सन्नाहित्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवा०, तेणेव २ करयल० कूणियस्स रण्णो तमाणत्तिय पच्चप्पिणति।

[७] तत्पश्चात् कूणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट हुए, यावत् मस्तक पर अजलि करके (आज्ञा विरोधाय करके)—हे स्वामिन् ! 'ऐसा ही होगा, जसी आज्ञा', यो कह कर उन्होने विनयपूवक वचन (आज्ञाकथन) स्वीकार किया। वचन स्वीकार करके निपुण आचार्यो के उपदेश से प्रशिक्षित एव तीक्ष्ण बुद्धि-कल्पना के सुनिपुण विकल्पो से युक्त तथा औपपातिकसूत्र मे कहे गए विशेषणो से युक्त यावत् भीम (भयकर) सग्राम के योग्य उदार (प्रधान अथवा योद्धा के विना अकेले ही टक्कर लेने वाले) उदायी नामक हस्तीराज (पट्टहस्ती) को सुसज्जित किया। साथ ही घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओ से युक्त चतुरगिणी सेना भी (शस्त्रास्त्रादि

१ जाव शब्द 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया नदिया पीइमणा' इत्यादि पाठ का सूचक है।

से) सुसज्जित की। सुसज्जित करके जहाँ कूणिक राजा था, वहाँ उसके पास आए और करबद्ध होकर उन्होंने कूणिक राजा को उसकी उक्त आज्ञा वापिस सौंपी—आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न हो जाने की सूचना दी।

८ तए णं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवा०, २ त्ता मज्जणघरं अणुप्पविसति, मज्जण० २ ण्हाते कतबलिकम्मे कयकोतुयमंगलपायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए सन्नद्धबद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्धगेवेज्जविमलवरबद्धचिंधपट्टे गहियायुहप्पहरणे सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामरवालवीइतंगे मंगलजयसद्दकतालोए एवं जहा उववातिए जाव उवागच्छित्ता उदाइं हत्थिरायं दुरूढे।

[८] तत्पश्चात् कूणिक राजा जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया। उसने स्नानगृह में प्रवेश किया। फिर स्नान किया, स्नान से सम्बन्धित मर्दनादि बलिकर्म किया, फिर प्रायश्चित्तरूप (विघ्ननाशक) कौतुक (मषी-तिलक आदि) तथा मंगल किये। समस्त आभूषणों से विभूषित हुआ। सन्नद्धबद्ध (शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित) हुआ, लोहकवच को धारण किया, फिर मुड़े हुए धनुर्दण्ड को ग्रहण किया। गले के आभूषण पहने और योद्धा के योग्य उत्तमोत्तम चिह्नपट बांधे। फिर आयुध (गदा आदि शस्त्र) तथा प्रहरण (भाले आदि शस्त्र) ग्रहण किये। फिर कोरण्टक पुष्पों की माला सहित छत्र धारण किया तथा उसके चारों ओर चार चामर ढुलाये जाने लगे। लोगों द्वारा मांगलिक एवं जय-विजय शब्द उच्चारण किये जाने लगे। इस प्रकार कूणिक राजा औपपातिकसूत्र में कहे अनुसार यावत् उदायी नामक प्रधान हाथी पर आरूढ हुआ।

९ तए णं से कूणिए नरिंदे हारोत्थयसुकयरतियवच्छे जहा उववातिए जाव सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोहकलिताए चातुरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरवंदपरिक्खित्ते जेणेव महासिलाकंटए संगामे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता महासिलकंटयं संगामं ओयाए, पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एगं महं अभेज्जकवयं वइरपडिरूवगं विउव्वित्ताणं चिट्ठति। एवं खलु दो इंदा संगामं संगामेति, तं जहा—देविंदे य मणुइंदे य, एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया पराजिणित्तए।

[९] इसके बाद हारों से आच्छादित वक्ष स्थल वाला कूणिक जनमन में रति प्रीति उत्पन्न करता हुआ औपपातिकसूत्र में कहे अनुसार यावत् श्वेत चामरों से बार बार विंजाता हुआ, अश्व, हस्ती, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत (घिरा हुआ), महान् सुभटों के विशाल समूह से व्याप्त (परिक्षिप्त) कूणिक राजा जहाँ महाशिलाकण्टक संग्राम (होने जा रहा) था, वहाँ आया। वहाँ आकर वह महाशिलाकण्टक संग्राम में (स्वयं) उतरा। उसके आगे देवराज देवेन्द्र शक्र वज्रप्रतिरूपक (वज्र के समान) अभेद्य एवं महान् कवच की विकुर्वणा करके खड़ा हुआ। इस प्रकार (उस युद्धक्षेत्र में मानो) दो इन्द्र संग्राम करने लगे, जैसे कि—एक देवेन्द्र (शक्र) और दूसरा मनुजेन्द्र (कूणिक राजा) कूणिक राजा केवल एक हाथी से भी (शत्रुपक्ष की सेना को) पराजित करने में समर्थ हो गया।

१० तए णं से कूणिए राया महासिलाकंटकं संगामं संगामेमाणे नव मल्लई, नव लेच्छइ, कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हयमहियपवरवीरघातियविवडियचिंधधय पडागे किच्छपाणगते दिसो दिसिं पडिसेहेत्था।

[१०] तत्पश्चात् उस कूणिक राजा ने महाशिलाकण्टक संग्राम करते हुए नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी, जो काशी और कोशल देश के अठारह गणराजा थे, उनके प्रवरवीर योद्धाओं को नष्ट किया, घायल किया और मार डाला। उनकी चिह्नांकित ध्वजा पताकाएँ गिरा दी। उन वीरों के प्राण संकट में पड़ गए, अतः उन्हें युद्धस्थल से दसों दिशाओं में भगा दिया (तितर-बितर कर दिया)।

विवेचन—महाशिलाकण्टक संग्राम के लिए कूणिकराजा की तैयारी और अठारह गणराजाओं पर विजय का वर्णन—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू ६ से १० तक) में कूणिकराजा की संग्राम के लिए तैयारी से लेकर अठारह गणराजाओं पर विजय का वर्णन है।

महाशिलाकण्टक संग्राम उपस्थित होने का कारण—यहाँ मूलपाठ में इस संग्राम के उपस्थित होने का कारण नहीं दिया है, किन्तु वृत्तिकार ने 'औपपातिक' 'निरयावलिका' आदि सूत्रों में समागत वर्णन के अनुसार संक्षेप में इस युद्ध का कारण इस प्रकार दिया है—चम्पानगरी में कूणिक राजा राज्य करता था। हल्ल और विहल्ल नाम के उसके दो छोटे भाई थे। उन दोनों को उनके पिता श्रेणिक राजा ने अपने जीवनकाल में उनके हिस्से का एक सेचनक गन्धहस्ती और अठारहसरा वकचूड हार दिया था। ये दोनों भाई प्रतिदिन सेचनक गन्धहस्ती पर बैठ कर गंगातट पर जलक्रीड़ा और मनोरंजन करते थे। उनके इस आमोद-प्रमोद को देखकर कूणिक की रानी पद्मावती को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। उसने कूणिक राजा को हल्ल-विहल्ल कुमार से सेचनक हाथी ले लेने के लिए प्रेरित किया। कूणिक ने हल्ल विहल्ल कुमार से सेचनक हाथी मांगा। इस पर उन्होंने कहा—'यदि आप हाथी लेना चाहते हैं तो हमारे हिस्से का राज्य दे दीजिए।' किन्तु कूणिक उनकी न्यायसंगत बात की परवाह न करके बारबार हाथी मांगने लगा। इस पर दोनों भाई कूणिक के भय से भागकर अपने हाथी और अन्तःपुर सहित वैशाली नगरी में अपने मातामह चेटक राजा की शरण में पहुँचे। कूणिक ने नाना के पास दूत भेजकर हल्ल-विहल्ल कुमार को सौंप देने का सन्देश भेजा। किन्तु चेटक राजा ने हल्ल विहल्ल को नहीं सौंपा। पुनः कूणिक ने दूत के साथ सन्देश भेजा कि यदि आप दोनों कुमारों को नहीं सौंपते हैं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाइए। चेटक राजा ने न्यायसंगत बात कही, उस पर कूणिक ने कोई विचार नहीं किया। सीधा ही युद्ध में उतरने के लिए तैयार हो गया। यह था महाशिलाकण्टक युद्ध का कारण।[1]

महाशिलाकण्टक संग्राम में कूणिक की जीत कैसे हुई? चेटक राजा ने भी देखा कि कूणिक युद्ध किये बिना नहीं मानेगा और जब उन्होंने सुना कि कूणिक ने युद्ध में सहायता के लिए 'काल' आदि विमातृजात दसों भाइयों को चेटक राजा के साथ युद्ध करने के लिए बुलाया है, तब उन्होंने भी शरणागत की रक्षा एवं न्याय के लिए अठारह गणराज्यों के अधिपति राजाओं को अपनी-अपनी

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३१६
(ख) औपपातिकसूत्र पत्रांक ६२-६६, ७२
(ग) भगवती (हिन्दीविवेचन युक्त) भाग-३, पृ. ११९६ से ११९८

सेनासहित बुलाया। वे सब ससैन्य एकत्रित हुए। दोनो ओर की सेनाएँ युद्धभूमि मे आ डटी। घोर सग्राम शुरू हुआ। चेटक राजा का ऐसा नियम था कि वे दिन मे एक ही वार एक ही वाण छोडते, और उनका छोडा हुआ वाण कभी निष्फल नही जाता था। पहले दिन कूणिक का भाई कालकुमार सेनापति बनकर युद्ध करने लगा, किन्तु चेटक राजा के एक ही वाण से वह मारा गया। इसस कूणिक की सेना भाग गई। इस प्रकार दस दिन मे चेटकराजा ने कालकुमार आदि दसो भाइयों को मार गिराया। ग्यारहवे दिन कूणिक की वारी थी। कूणिक ने सोचा—'मैं भी दसो भाइयो की तरह चेटकराजा के आगे टिक न सकूगा। मुझे भी वे एक ही वाण मे मार डालेंगे।' अत उसने तीन दिन तक युद्ध स्थगित रखकर चेटकराजा को जीतने के लिए अष्टमतप (तेला) करके देवाराधना की। अपने पूर्वभव के मित्र देवो का स्मरण किया, जिससे शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र दोनो उसकी महायता के लिए आए। शक्रेन्द्र ने कूणिक से कहा—चेटकराजा परम श्रावक है, इसलिए उसे मैं मारूगा नही, किन्तु तेरी रक्षा करूगा। अत शक्रेन्द्र ने कूणिक की रक्षा करने के लिए वज्र सरीखे अभेद्य कवच की विकुर्वणा की और चमरेन्द्र ने महाशिलाकण्टक और रथमूसल, इन दो सग्रामो की विकुर्वणा की। इन दोनो इन्द्रो की सहायता के कारण कूणिक की शक्ति बढ गयी। वास्तव मे इन्द्रो की सहायता से ही महाशिलाकण्टक सग्राम मे कूणिक की विजय हुई, अन्यथा विजय मे सदेह था।

महाशिलाकण्टक सग्राम के स्वरूप, उसमे मानवविनाश और उनकी मरणोत्तरगति का निरूपण

११ से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति 'महासिलाकटए सगामे महासिलाकटए सगामे'?

गोयमा! महासिलाकटए ण सगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सारही वा तणेण वा कट्ठेण वा पत्तेण वा सक्कराए वा अभिहम्मति सव्वे से जाणति 'महासिलाए अह अभिहते महासिलाए अह अभिहते', से तेणट्ठेण गोयमा! महासिलाकटए सगामे महासिलाकटए सगामे।

[११ प्र] भगवन्! इस 'महाशिलाकण्टक' सग्राम को महाशिलाकण्टक सग्राम क्यो कहा जाता है?

[११ उ] गौतम! जब महाशिलाकण्टक सग्राम हो रहा था, तब उस सग्राम म जो भी घोडा, हाथी, योद्धा या सारथि आदि तृण से, काष्ठ से, पत्ते से या ककर आदि से आहत होते, वे सब ऐसा अनुभव करते थे कि हम महाशिला (के प्रहार) से मारे गए हैं। अर्थात्—महाशिला हमारे ऊपर आ पडी है।) हे गौतम! इस कारण इस सग्राम को महाशिलाकण्टक सग्राम कहा जाता है।

१२ महासिलाकटए ण भते! सगामे वट्टमाणे कति जणसतसाहस्सीओ वहियाओ?

गोयमा! चउरासीति जणसतसाहस्सीओ वहियाओ।

[१२ प्र] भगवन्! जब महाशिलाकण्टक सग्राम हो रहा था, तब उसमे कितने लाख मनुष्य मारे गए?

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वत्ति, पत्राक ३१७
(ख) औपपातिक सूत्र, पत्राक ६६

[१२ उ] गौतम ! महाशिलाकण्टक-संग्राम मे चौरासी लाख मनुष्य मारे गए।

१३ ते ण भंते ! मणुया निस्सीला जाव निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा सारुट्ठा परिकुविया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गता ? कहिं उववन्ना ?

गोयमा ! ओसन्न नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना।

[१३ प्र] भगवन् ! शीलरहित यावत् प्रत्याख्यान एव पौषधोपवास से रहित, रोष (आवेश) मे भरे हुए, परिकुपित, युद्ध मे घायल हुए और अनुपशान्त वे (युद्ध करने वाले) मनुष्य मृत्यु के समय मर कर कहा गए, कहा उत्पन्न हुए ?

[१३ उ] गौतम ! ऐसे मनुष्य प्राय नरक और तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न हुए हैं।

विवेचन—महाशिलाकण्टक संग्राम के स्वरूप, उसमे मानवविनाश एव उनकी मरणोत्तरगति का निरूपण– प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ११ से १३ तक) मे महाशिलाकण्टक के स्वरूप तथा उसमे मृत मानवो की सख्या एव उनकी गति के विषय मे किये गए प्रश्नो का समाधान अंकित किया गया है।

फलितार्थ—युद्ध मे धन, जन, संस्कृति और सतति के विनाश के अतिरिक्त मरने वालो की हानि शासको द्वारा अपने अहंपोषण, राज्यविस्तार, वैभवप्राप्ति या ईर्ष्या को चरितार्थ करने के लिए युद्ध मे झोंके हुए सैनिको के अशान्तवश, आवेशवश एव त्याग-प्रत्याख्यानरहित मरण के कारण दुर्गति की प्राप्ति, मानव जसे अमूल्य जन्म की असफलता है।

रथमूसलसंग्राम मे जय-पराजय का, उसके स्वरूप का तथा उसमे मृत मनुष्यों की संख्या, गति आदि का निरूपण

१४ णायमेतं अरहया, सुतमेतं अरहता, विण्णायमेतं अरहता रहमुसले संगामे रहमुसले संगामे। रहमुसले ण भंते ! संगामे वट्टमाणे के जइत्था ? के पराजइत्था ?

गोयमा ! वज्जी विदेहपुत्ते चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया जइत्था, नव मल्लई नव लेच्छई पराजइत्था।

[१४ प्र] भगवन् ! अर्हन्त भगवान् ने जाना है, इसे प्रत्यक्ष किया है और विशेषरूप से जाना है कि यह रथमूसलसंग्राम है। (अत मेरा प्रश्न यह है कि) भगवन् ! यह रथमूसलसंग्राम जब हो रहा था तब कौन जीता, कौन हारा ?

[१४ उ] हे गौतम (वज्जी गण या वंश का विदेहपुत्र या) वज्री-इन्द्र और विदेहपुत्र (कूणिक) एव असुरेन्द्र असुरराज चमर जीते और नौ मल्लकी और नौ लिच्छवी (ये अठारह गण) राजा हार गए।

१५ तए ण से कूणिए राया रहमुसलं संगामं उवट्ठितं०, सेसं जहा महासिलाकंटए नवरं भूताणंदे हत्थिराया जाव रहमुसलं संगामं ओयाए, पुरतो य से सक्के देविंदे देवराया। एवं तहेव जाव चिट्ठति, मग्गतो य से चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया एगं महं आयसं किढिणपडिरूवगं विउव्वित्ता

चिट्ठति, एवं खलु तओ इंदा संगामं संगामेंति, तं जहा—देविंदे मणुइंदे असुरिंदे य। एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया जइत्तए तहेव जाव दिसो दिसिं पडिसेहेत्था।

[१५] तदनन्तर रथमूसल-संग्राम उपस्थित हुआ जान कर कूणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलाया। इसके बाद का सारा वर्णन महाशिलाकण्टक की तरह यहाँ कहना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ 'भूतानन्द' नामक हस्तिराज (पट्टहस्ती) है। यावत् वह कूणिक राजा रथमूलसंग्राम में उतरा। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र है, यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिए। उसके पीछे असुरेन्द्र असुरराज चमर लोह के बने हुए एक महान् किठिन (बांस निर्मित तापस पात्र) जैसे कवच की विकुर्वणा करके खड़ा है। इस प्रकार तीन इन्द्र संग्राम करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। यथा—देवेन्द्र (शक्र), मनुजेन्द्र (कूणिक) और असुरेन्द्र (चमर)। अब कूणिक केवल एक हाथी से सारी शत्रु-सेना को पराजित करने में समर्थ है। यावत् पहले कहे अनुसार उसने शत्रु राजाओं (की सेना) को दसों दिशाओं में भगा दिया।

१६. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति 'रहमुसले संगामे रहमुसले संगामे'?

गोयमा! रहमुसले णं संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए असारहिए अणारोहए समुसले महताजणक्खयं जणवहं जणप्पमद्दं जणसंवट्टकप्पं रुहिरकद्दमं करेमाणे सव्वतो समंता परिधावित्था, से तेणट्ठेणं जाव रहमुसले संगामे।

[१६ प्र.] भगवन्! इस 'रथमूलसंग्राम' को रथमूलसंग्राम क्यों कहा जाता है?

[१६ उ.] गौतम! जिस समय रथमूलसंग्राम हो रहा था, उस समय अश्वरहित, सारथिरहित और योद्धाओं से रहित केवल एक रथ मूसलसहित अत्यन्त जनसंहार, जनवध, जन-प्रमर्दन और जनप्रलय (संवर्त) के समान रक्त का कीचड़ करता हुआ चारों ओर दौड़ता था। इसी कारण उस संग्राम को 'रथमूलसंग्राम' यावत् कहा गया है।

१७. रहमुसले णं भंते! संगामे वट्टमाणे कति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ?

गोयमा! छण्णउतिं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ।

[१७ प्र.] भगवन्! जब रथमूसलसंग्राम हो रहा था, तब उसमें कितने लाख मनुष्य मारे गए?

[१७ उ.] गौतम! रथमूसलसंग्राम में छियानवे लाख मनुष्य मारे गए।

१८. ते णं भंते! मणुया निस्सीला जाव (सु. १३) उववन्ना?

गोयमा! तत्थ णं दस साहस्सीओ एगाए मच्छियाए कुच्छिंसि उववन्नाओ, एगे देवलोगेसु उववन्ने, एगे सुकुले पच्चायाते, अवसेसा ओसन्नं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना।

[१८ प्र.] भगवन्! निःशील (शीलरहित) यावत् वे मनुष्य मृत्यु के समय मर कर कहाँ गए, कहाँ उत्पन्न हुए?

[१८ उ.] गौतम ! उनमे से दस हजार मनुष्य तो एक मछली के उदर मे उत्पन्न हुए, एक मनुष्य देवलोक मे उत्पन्न हुआ, एक मनुष्य उत्तम कुल (मनुष्यगति) मे उत्पन्न हुआ और शेष प्राय नरक और तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न हुए हैं।

१९. कम्हा ण भते ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहज्ज दलइत्था ?

गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया पुव्वसंगतिए, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया परियाय सगतिए, एव खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहज्ज दलइत्था।

[१९ प्र.] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर, इन दोनो ने कूणिक राजा को किस कारण से सहायता (युद्ध मे सहयोग) दी ?

[१९ उ.] गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र तो कूणिक राजा का पूर्वसगतिक (पूर्वभवसम्बन्धी—कार्तिक सेठ के भव मे मित्र) था और असुरेन्द्र असुरकुमार राजा चमर कूणिक राजा का पर्याय-सगतिक (पूरण नामक तापस की अवस्था का साथी) मित्र था। इसीलिए, हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर ने कूणिक राजा को सहायता दी।

विवेचन—रथमूसलसग्राम मे जय पराजय का, उसके स्वरूप का तथा उसमे मृत मनुष्यो की सख्या, गति आदि का निरूपण—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू. १४ से १९ तक) मे रथमूसलसम्बन्धी सारा वर्णन प्राय पूर्वसूत्रोक्त महाशिलाकण्टक की तरह ही किया गया है।

ऐसे युद्धों मे सहायता क्यो ?—इन महायुद्धो का वर्णन पढ कर प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन्द्र जैसे सम्यग्दृष्टिसम्पन्न देवाधिपतियो ने कूणिक की अन्याययुक्त युद्ध मे सहायता क्यो की ? इसी प्रश्न को शास्त्रकार ने उठाकर उसका समाधान दिया है। पूर्वभवसागतिक और पर्याय सागतिक होने के कारण ही विवश होकर इन्द्रो तक को सहायता देने हेतु आना पडता है।

'सग्राम मे मृत मनुष्य देवलोक मे जाता है', इस मान्यता का खण्डनपूर्वक स्वसिद्धान्त-मण्डन

२० [१] बहुजणे ण भते ! अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव परूवेति—एव खलु बहवे मणुस्सा अन्नतरेसु उच्चावएसु सगामेसु अभिमुहा चेव पहया समाणा कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति। से कहमेत भते ! एव ?

गोयमा ! ज ण से बहुजणे अन्नमन्नस्स एवमाइक्खति जाव उववत्तारो भवति, जे ते एवमाहसु मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—

[२०-१ प्र.] भगवन् ! बहुत-से (धर्मोपदेशक या पौराणिक) लोग परस्पर ऐसा कहते हैं, यावत प्ररूपणा करते हैं कि—अनेक प्रकार के छोटे-बडे (उच्चावच) सग्रामो मे से किसी भी सग्राम मे सामना करते हुए (अभिमुख रहकर लडते हुए) आहत हुए एव घायल हुए बहुत से मनुष्य मृत्यु के समय मर कर किसी भी देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न होते हैं। भगवन् ! ऐसा कैसे हो सकता है ?

[२०-१ उ] गौतम ! बहुत-से मनुष्य, जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि संग्राम में मारे गए मनुष्य देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहने वाले मिथ्या कहते हैं। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—

"[२] एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वेसाली नामं नगरी होत्था। वण्णओ। तत्थ णं वेसालीए णगरीए वरुणे नामं णागनत्तुए परिवसति अड्ढे जाव अपरिभूते समणोवासए अभिगत जीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरति।"

[२०-२] गौतम ! उस काल और उस समय में वैशाली नाम की नगरी थी। उसका वर्णन औपपातिकसूत्रोक्त (चम्पानगरी की तरह) जान लेना चाहिए। उस वैशाली नगरी में 'वरुण' नामक नागनप्तृक (नाग नामक गृहस्थ का नाती—दौहित्र या पौत्र) रहता था। वह धनाढ्य यावत् अपरिभूत (किसी के आगे न दबने वाला—दबंग) व्यक्ति था। वह श्रमणोपासक था और जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था, यावत् वह आहारादि द्वारा श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ तथा निरन्तर छठ-छठ की (बेले की) तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता था।

[३] तए णं से वरुणे णागनत्तुए अन्नया कयाई रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं रहमुसले संगामे आणत्ते समाणे छट्ठभत्तिए, अट्ठमभत्तं अणुवट्टेति, अट्ठमभत्तं अणुवट्टेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावेत्ता एवं वदासी—खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठावेह हय गय-रहपवर जाव सन्नाहेत्ता मम एतमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

[२०-३] एक बार राजा के अभियोग (आदेश) से, गण के अभियोग से तथा बल (बलवान—जबर्दस्त व्यक्ति) के अभियोग से वरुण नागनप्तृक (नत्तुआ) को रथमूसलसंग्राम में जाने की आज्ञा दी गई। तब उसने षष्ठभक्त (बेले के तप) को बढ़ाकर अष्टभक्त (तेले का) तप कर लिया। तेले की तपस्या करके उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! चार घंटों वाला अश्वरथ, सामग्रीयुक्त तैयार करके शीघ्र उपस्थित करो। साथ ही अश्व, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित करो, यावत् यह सब सुसज्जित करके मेरी आज्ञा मुझे वापस सौंपो।

"[४] तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सच्छत्तं सज्झयं जाव उवट्ठावेंति, हय गय-रह जाव सन्नाहेंति, सन्नाहित्ता जेणेव वरुणे नागनत्तुए जाव पच्चप्पिणंति।

[२०-४] तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसकी आज्ञा स्वीकार एवं शिरोधार्य करके यथाशीघ्र छत्रसहित एवं ध्वजासहित चार घंटाओं वाला अश्वरथ, यावत् तैयार करके उपस्थित किया। साथ ही घोड़े, हाथी, रथ एवं प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को यावत् सुसज्जित किया और सुसज्जित करके यावत् वरुण नागनत्तुआ को उसकी आज्ञा वापिस सौंपी।

"[५] तए णं से वरुणे नागनत्तुए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति जहा कूणिओ (सु ८) जाव पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिते सन्नद्धबद्ध० सकोरेंटमल्लदामेणं जाव धरिज्जमाणेणं

अणेगगणनायग जाव दूयसंधिवाल० सद्धि संपरिवुडे मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चातुघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चातुघंट आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता हय-गय रह जाव संपरिवुडे महता भडचडगर० जाव परिक्खित्ते जेणेव रहमुसले संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसल संगाम ओयाते ।

[२०-५] तत्पश्चात् वह वरुण नागनप्तृक, जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया । इसके पश्चात यावत् कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित्त (विघ्ननाशक) किया, सब अलंकारों से विभूषित हुआ, कवच पहना, कोरटपुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र धारण किया, इत्यादि सारा वर्णन कूणिक राजा की तरह कहना चाहिए । फिर अनेक गणनायकों, दूतों और सन्धिपालों के साथ परिवृत होकर वह स्नानगृह से बाहर निकल कर बाहर की उपस्थानशाला में आया और सुसज्जित चातुर्घण्ट अश्वरथ पर आरूढ हुआ । रथ पर आरूढ हो कर अश्व, गज, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना के साथ, यावत महान् सुभटों के समूह से परिवृत होकर जहाँ रथमूसल-संग्राम होने वाला था, वहाँ आया । वहाँ आकर वह रथमूसल-संग्राम में उतरा ।

"[६] तए णं से वरुणे णागनत्तुए रहमुसलं संगामं ओयाते समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—कप्पति मे रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स जे पुव्विं पहणति से पडिहणित्तए, अवसेसे नो कप्पतीति । अयमेतारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता रहमुसलं संगामं संगामेति ।

[२०-६] उस समय रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त होने के साथ ही वरुण नागनप्तृक ने इस प्रकार इस रूप का अभिग्रह (नियम) किया—मेरे लिए यही कल्प (उचित नियम) है कि रथमूसल संग्राम में युद्ध करते हुए जो मुझ पर पहले प्रहार करेगा, उसे ही मुझे मारना (प्रहत करना) है, (अन्य) व्यक्तियों को नहीं । इस प्रकार का यह अभिग्रह करके वह रथमूसल-संग्राम में प्रवृत्त हो गया ।

"[७] तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स एगे पुरिसे सरिसए सरित्तए सरिसव्वए सरिसभंडमत्तोवगरणे रहेणं पडिरहं हव्वमागते ।

[२०-७] उसी समय रथमूसल-संग्राम में जूझते हुए वरुण नाग-नप्तृक के रथ के सामने प्रतिरथी के रूप में एक पुरुष शीघ्र ही आया, जो उसी के सदृश, उसी के समान त्वचा वाला था, उसी के समान उम्र का और उसी के समान अस्त्र शस्त्रादि उपकरणों से युक्त था ।

"[८] तए णं से पुरिसे वरुणं णागणत्तुयं एवं वयासी—पहण भो ! वरुणा ! णागणत्तुया ! पहण भो ! वरुणा ! णागणत्तुया ! तए णं से वरुणे णागणत्तुए तं पुरिसं एवं वदासि—नो खलु मे कप्पति देवाणुप्पिया ! पुव्विं अहयस्स पहणित्तए, तुमं चेव पुव्वं पहणाहि ।

[२०-८] तब उस पुरुष ने वरुण नागनप्तृक को इस प्रकार (ललकारते हुए) कहा—"हे वरुण नागनत्तुआ ! मुझ पर प्रहार कर, अरे, वरुण नागनत्तुआ ! मुझ पर वार कर !" इस पर वरुण नागनत्तुआ ने उस पुरुष से यों कहा—"हे देवानुप्रिय ! जो मुझ पर प्रहार न करे, उस पर पहले प्रहार करने का मेरा कल्प (नियम) नहीं है । इसलिए तुम (चाहो तो) पहले मुझ पर प्रहार करो ।"

"[९] तए णं से पुरिसे वरुणेणं णागणत्तुएणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसति, परामुसित्ता उसुं परामुसति, उसुं परामुसित्ता ठाणं ठाति, ठाणं ठिच्चा आयतकण्णायतं उसुं करेति, आयतकण्णायतं उसुं करेत्ता वरुणं णागणत्तुयं गाढप्पहारीकरेति।

[२०-९] तदनन्तर वरुण नागनत्तुआ के द्वारा ऐसा कहने पर उस पुरुष ने शीघ्र ही क्रोध से लाल-पीला हो कर यावत् दांत पीसते हुए (मिसमिसाते हुए) अपना धनुष उठाया। फिर बाण उठाया फिर धनुष पर यथास्थान बाण चढाया। फिर अमुक आसन से अमुक स्थान पर स्थित होकर धनुष को कान तक खींचा। ऐसा करके उसने वरुण नागनत्तुआ पर गाढ प्रहार किया।

"[१०] तए णं से वरुणे णागणत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसति, धणुं परामुसित्ता उसुं परामुसति, उसुं परामुसित्ता आयतकण्णायतं उसुं करेति, आयतकण्णायतं उसुं करेत्ता तं पुरिसं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियातो ववरोवेति।

[२०-१०] इसके पश्चात् उस पुरुष द्वारा किये गए गाढ प्रहार से घायल हुए वरुण नागनत्तुआ ने शीघ्र कुपित होकर यावत् मिसमिसाते हुए धनुष उठाया। फिर उस पर बाण चढाया और उस बाण को कान तक खींचा। ऐसा करके उस पुरुष पर छोड़ा। जैसे एक ही जोरदार चोट से पत्थर के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं, उसी प्रकार वरुण नागनप्तृक ने एक ही गाढ प्रहार से उस पुरुष को जीवन से रहित कर दिया।

"[११] तए णं से वरुणे णागणत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकते समाणे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु तुरए निगिण्हति, तुरए निगिण्हित्ता रहं परावत्तेइ, २ त्ता रहमुसलातो संगामातो पडिनिक्खमति, रहमुसलाओ संगामातो पडिनिक्खमेत्ता एगंतमंतं अवक्कमति, एगंतमंतं अवक्कमित्ता तुरए निगिण्हति, निगिण्हित्ता रहं ठवेति, २ त्ता रहातो पच्चोरुहति, रहातो पच्चोरुहित्ता रहाओ तुरए मोएति, २ तुरए विसज्जेति, विसज्जित्ता दब्भसंथारगं संथरेति, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहति, दब्भसं० दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयल जाव कट्टु एवं वयासी—नमोऽत्थु णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं। नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगतं इहगते, पासउ मे से भगवं तत्थगते, जाव वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतियं थूलए पाणातिवाते पच्चक्खाए जावज्जीवाए एवं जाव थूलए परिग्गहे पच्चक्खाते जावज्जीवाए, इयाणिं पि णं अहं तस्सेव भगवतो महावीरस्स अंतियं सव्वं पाणातिवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, एवं जहा खंदओ (स० २ उ० १ सु० ५०) जाव एतं पि णं चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं 'वोसिरिस्सामि' त्ति कट्टु सन्नाहपट्टं मुयति, सन्नाहपट्टं मुइत्ता सल्लुद्धरणं करेति, सल्लुद्धरणं करेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगते।

[२०-११] तत्पश्चात उस पुरुष के गाढ प्रहार से सख्त घायल हुआ वरुण नागनप्तृक अशक्त, अबल, अवीर्य, पुरुषार्थ एवं पराक्रम से रहित हो गया। अतः 'अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा' ऐसा

समझकर उसने घोडा को रोका, घोडो को रोक कर रथ को वापिस फिराया और रथमूसलमग्राम-स्थल से बाहर निकल गया। सग्रामस्थल से बाहर निकल कर एका त स्थान मे आकर रथ को खडा किया। फिर रथ से नीचे उतर कर उसने घोडो को छोड कर विसर्जित कर दिया। फिर दभ (डाभ) का सथारा (विछौना) बिछाया और पूवदिशा की ओर मु ह करके दभ के सस्तारक पर पर्यंकासन से बठा और दाना हाथ जोड कर यावत् इस प्रकार कहा—अरिहन्त भगवन्तो को, यावत् जो सिद्धगति को प्राप्त हुए ह, नमस्कार हो। मेरे धमगुरु, धर्माचाय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का नमस्कार हो, जा धम की आदि करने वाले यावत् सिद्धगति प्राप्त करने के इच्छुक हैं। यहा रहा हुआ मैं वहा (दूर स्थान पर) रहे हुए भगवान् को वन्दन करता हूँ। वहा रहे हुए भगवान् मुझे देखें। इत्यादि कहकर यावत उसने व दन नमस्कार किया। व दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—पहले मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का जीवनपर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान किया था, यावत् स्थूल परिग्रह का जीवनपय त के लिये प्रत्याख्यान किया था, कि तु अब मैं उन्ही अरिह त भगवान् महावीर के पास (साक्षी से) सर्व प्राणातिपात का जीवनपय त के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ। इस प्रकार स्कन्दक की तरह (अठारह ही पापस्थानो का सवथा प्रत्याख्यान कर दिया।) फिर इस शरीर का भी अ तिम श्वासोच्छ्वास के साथ व्युत्सग (त्याग) करता हूँ, यो कह कर उसने सन्नाहपट (कवच) खाल दिया। कवच खोल कर लगे हुए बाण को बाहर खीचा। बाण शरीर से बाहर निकाल कर उसने आलोचना की, प्रतिक्रमण किया और समाधि युक्त होकर मरण प्राप्त किया।

"[१२] **तए ण तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स एगे पियबालवयसए रहमुसल सगाम सगामेमाणे एगेण पुरिसेण गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे अबले जाव अधारणिज्जमिति कट्टु वरुण नागनत्तुय रहमुसलातो सगामातो पडिनिक्खममाण पासति, पासित्ता तुरए निगिण्हति, तुरए निगिण्हित्ता जहा वरुणे नागनत्तुए जाव तुरए विसज्जेति, विसज्जित्ता दब्भसथारग दुरुहति, दब्भसथारग दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे जाव अजलि कट्टु एव वदासी—जाइ ण भते! मम पियबालवयसस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स सीलाइ वताइ गुणाइ वेरमणाइ पच्चक्खाणपोसहोववासाइ ताइ ण मम पि भवतु त्ति कट्टु स नाहपट्ट मुयइ, स नाहपट्ट मुइत्ता सल्लुद्धरण करेति, सल्लुद्धरण करेत्ता आणुपुव्वीए कालगते।**

[२०-१२] उस वरुण नागनत्तुआ का एक प्रिय बालमित्र भी रथमूसलसग्राम मे युद्ध कर रहा था। वह भी एक पुरुष द्वारा प्रबल प्रहार करने से घायल हो गया। इससे अशक्त, अबल, यावत् पुरुषाथ पराक्रम से रहित बने हुए उसने सोचा—अब मेरा शरीर टिक नही सकेगा। जब उसने वरुण नागनत्तुआ को रथमूसलसग्राम स्थल से बाहर निकलते हुए देखा, तो वह भी अपने रथ को वापिस फिरा कर रथमूसलसग्राम से बाहर निकला, घोडो को रोका और जहाँ वरुण नागनत्तुआ ने घोडो को रथ मे खोलकर विसर्जित किया था, वहाँ उसने भी घोडो को विसर्जित कर दिया। फिर दभ के सस्तारक का बिछा कर उस पर बठा। दभसस्तारक पर बठकर पूवदिशा की ओर मुख करके यावत् दोनो हाथ जोड कर यो बोला—'भगवन्! मेरे प्रिय बालमित्र वरुण नागनप्तृक के जो शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास हैं, वे सब मेरे भी हो', इस प्रकार कह कर उसने कवच खोला। कवच खोलकर शरीर मे लगे हुए बाण को बाहर निकाला। इस प्रकार करके वह भी क्रमश समाधियुक्त होकर कालधर्म को प्राप्त हुआ।

"[१३] तए णं तं वरुणं नागणत्तुयं कालगयं जाणित्ता अहासंनिहितेहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं दिव्वे सुरभिगंधोदगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए, दिव्वे य गीयगंधव्वनिनादे कते यावि होत्या।

[२०-१३] तदनन्तर उस वरुण नागनत्तुआ को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर निकटवर्ती वाणव्यन्तर देवों ने उस पर सुगन्धितजल की वृष्टि की, पांच वर्ण के फूल बरसाए और दिव्यगीत एवं गन्धर्व निनाद भी किया।

"[१४] तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स तं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभागं सुणित्ता य पासित्ता य बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेति—एवं खलु देवाणुप्पिया! बहवे मणुस्सा जाव उववत्तारो भवंति।"

[२०-१४] तब से उस वरुण नागनत्तुआ की उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव को सुन कर और जान कर बहुत-से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे, यावत् प्ररूपणा करने लगे—'देवानुप्रियो! संग्राम करते हुए जो बहुत-से मनुष्य मरते हैं, यावत् वे देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।'

विवेचन—'संग्राम में मृत्यु प्राप्त मनुष्य देवलोक में जाता है' इस मान्यता का खण्डन—प्रस्तुत २० वें सूत्र में वरुण नागनत्तुआ का प्रत्यक्ष उदाहरण दे कर 'युद्ध में मरने वाले सभी देवलोक में जाते हैं' इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण और भ्रान्त धारणा का कारण अंकित किया है।

फलितार्थ—भगवान् महावीर के युग में एक मान्यता यह थी कि युद्ध में मरने वाले—वीरगति पाने वाले—स्वर्ग में जाते हैं। इसी मान्यता की प्रतिच्छाया भगवद्गीता (अ. २, श्लोक ३२, ३७) में इस प्रकार है—

> यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
> सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ! लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥
> हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
> तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

अर्थात्—'हे अर्जुन! अनायास ही (युद्ध के कारण) स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। सुखी क्षत्रिय ही ऐसे युद्ध करने का लाभ पाते हैं।

यदि युद्ध में मर गए तो मर कर स्वर्ग पाओगे और अगर विजयी बन गए तो पृथ्वी का उपभोग (राजा बन कर) करोगे। इसलिए हे कुन्तीपुत्र! कृतनिश्चय हो करके युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।'

प्रस्तुत सूत्र में वरुण नागनत्तुआ और उसके बालमित्र का उदाहरण प्रस्तुत करके भगवान् ने इस भ्रान्त मान्यता का निराकरण कर दिया कि केवल संग्राम करने से या युद्ध में मरने से किसी को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता, अपितु अज्ञानपूर्वक तथा त्याग-व्रत प्रत्याख्यान से रहित होकर असमाधिपूर्वक मरने से प्रायः नरक या तिर्यंचगति ही मिलती है। अतः संग्राम करने वाले को संग्राम करने से अथवा उसमें मरने से स्वर्ग प्राप्त नहीं होता, अपितु न्यायपूर्वक संग्राम करने के बाद जो संग्रामकर्ता आगे

दुष्कृत्यों के लिए पश्चात्ताप करता है, आलोचना, प्रतिक्रमण करके शुद्ध होकर समाधिपूर्वक मरता है, वही स्वर्ग जाता है।[1]

वरुण की देवलोक में और उसके मित्र की मनुष्यलोक में उत्पत्ति और अन्त में दोनों की महाविदेह में सिद्धि का निरूपण

२१. वरुणे णं भंते ! नागनत्तुए कालमासे कालं किच्चा कहिं गते ? कहिं उववन्ने ?

गोयमा ! सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं वरुणस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

[२१ प्र.] भगवन् ! वरुण नागनत्तुआ मृत्यु के समय में कालधर्म पा कर कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[२१ उ.] गौतम ! वह सौधर्मकल्प (देवलोक) में अरुणाभ नामक विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है। उस देवलोक में कतिपय देवों की चार पल्योपम की स्थिति (आयु) कही गई है। अतः वहाँ वरुण-देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है।

२२. से णं भंते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगातो आउक्खएणं भवक्खएणं ठितिक्खएणं० ?

जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति।

[२२ प्र.] भगवन् ! वह वरुण देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर, भव क्षय होने पर तथा स्थिति क्षय होने पर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

[२२ उ.] गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा।

२३. वरुणस्स णं भंते णागणत्तुयस्स पियबालवयंसए कालमासे कालं किच्चा कहिं गते ? कहिं उववन्ने ?

गोयमा ! सुकुले पच्चायाते।

[२३ प्र.] भगवन् ! वरुण नागनत्तुआ का प्रिय बालमित्र काल के अवसर पर कालधर्म पा कर कहाँ गया ?, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

[२३ उ.] गौतम ! वह सुकुल में (मनुष्यलोक में अच्छे कुल में) उत्पन्न हुआ है।

२४. से णं भंते ! ततोहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ. ३०७ का टिप्पण
(ख) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भा-१, पृ. २०३
(ग) भगवद्गीता अ. २, श्लो. ३२, ३७

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ सत्तमसए नवमो उद्देसो समत्तो ॥

[२४ प्र.] भगवन् ! वह (वरुण का बालमित्र) वहाँ से (आयु आदि का क्षय होने पर) काल करके कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

[२४ उ.] गौतम ! वह भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरने लगे।

विवेचन—वरुण की देवलोक में और उसके मित्र की मनुष्यलोक में उत्पत्ति और अंत में दोनों की महाविदेह में सिद्धि का निरूपण—पूर्वोक्त दोनों आराधक योद्धाओं के उज्ज्वल भविष्य का इन चार सूत्रों द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

निष्कर्ष—रथमूसलसंग्राम में ९६ लाख मनुष्य मारे गये। उनमें से एक वरुण नागनत्तुआ देवलोक में गया और उसका बालमित्र मनुष्यगति में गया, शेष सभी प्रायः नरक या तिर्यंचगति के मेहमान बने।

॥ सप्तम शतक : नवम उद्देशक समाप्त ॥

दसमो उद्देसओ : 'अन्नउत्थिय'

दशम उद्देशक 'अन्ययूथिक'

अन्यतीर्थिक कालोदायी को पचास्तिकाय-चर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या स्वीकार

१ तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नाम नगरे होत्था । वण्णओ । गुणसिलए चेइए । वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टए ।

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । उसका वणन करना चाहिए । वहा गुणशीलक नामक चत्य था । उसका वणन भो समझ लेना चाहिए यावत् (एक) पृथ्वीशिला-पट्टक था । उसका वणन ।

२ तस्स ण गुणसिलयस्स चेतियस्स अदूरसामते बहवे अन्नउत्थिया परिवसति, त जहा—कालोदाई सेलोदाई सेवालोदाई उदए णामुदए नम्मुदए अन्नवालए सेलवालए सखवालए सुहत्थी गाहावई ।

[२] उस गुणशीलक चैत्य के पास थोडी दूर पर बहुत से अन्यतीर्थी रहते थे, यथा— कालोदायी, शलोदाई, शवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्नपालक, शैलपालक, शखपालक और सुहस्ती गृहपति ।

३ तए ण तेसि अन्नउत्थियाण अन्नया कयाई एगयओ सहियाण समुवागताण सन्निविट्ठाण सन्निसण्णाण अयमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—"एव खलु समणे णातपुत्ते पच अत्थिकाए पण्णवेति, त जहा -धम्मत्थिकाय जाव आगासत्थिकाय । तत्थ ण समणे णातपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेति, त०—धम्मत्थिकाय अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय पोग्गलत्थिकाय । एग च समणे णायपुत्ते जीवत्थिकाय अरूविकाय जीवकाय पन्नवेति । तत्थ ण समणे णायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरूविकाए पन्नवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय जीवत्थिकाय । एग च ण समणे णायपुत्ते पोग्गलत्थिकाय रूविकाय अजीवकाय पन्नवेति । से कहमेत मन्ने एव ?

[३] तत्पश्चात् किसी समय व सब अन्यतीर्थिक एक स्थान पर आए एकत्रित हुए और सुखपूवक भलीभाति बैठे । फिर उनम परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप प्रारम्भ हुआ—'एसा (सुना) है कि श्रमण ज्ञातपुत्र (महावीर) पाच अस्तिकायो का निरूपण करते हैं, यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय । इनमे स चार अस्तिकायो को श्रमण ज्ञातपुत्र 'अजीव काय' बताते है । जसे कि—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय । एक जीवास्तिकाय को श्रमण ज्ञातपुत्र 'अरूपी' और जीवकाय बतलाते है । उन पाच अस्तिकायो मे से चार अस्तिकायो को श्रमण ज्ञातपुत्र अरूपीकाय बतलाते हैं । जसे कि—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय । केवल एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीवकाय कहते हैं । उनकी यह बात कसे मानी जाए ?

४ तेण कालेण तेण समएण समणे भगवं महावीरे जाव गुणसिलए समोसढे जाव परिसा पडिगता।

[४] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर यावत् गुणशील चैत्य में पधारे, वहाँ उनका समवसरण लगा। यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुनकर) वापिस चली गई।

५ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नाम अणगारे गोतमगोत्ते णं जहा बितियसते नियंठुद्देसए (श० २ उ० ५ सू० २१-२३) जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्त पाणं पडिग्गाहित्ता रायगिहातो जाव अतुरियमचवलमसंभंते जाव रियं सोहेमाणे सोहेमाणे तेसिं अन्नउत्थियाणं अदूरसामंतेणं वीइवयति।

[५] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक में कहे अनुसार भिक्षाचरी के लिए पर्यटन करते हुए यथापर्याप्त आहार-पानी ग्रहण करके राजगृह नगर से यावत्, त्वरारहित, चपलतारहित सम्भ्रान्ततारहित, यावत् ईर्यासमिति का शोधन करते-करते अन्यतीर्थिकों के पास से होकर निकले।

६ [१] तए णं ते अन्नउत्थिया भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासंति, पासेत्ता अन्नमन्नं सद्दावेंति, अन्नमन्नं सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमा कहा अविप्पकडा, अयं च णं गोतमे अम्हं अदूरसामंतेणं वीतीवयति, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं गोतमं एयमट्ठं पुच्छित्तए" त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव भगवं गोतमे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता भगवं गोतमं एवं वदासी—एवं खलु गोयमा! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे णायपुत्ते पंच अत्थिकाए पण्णवेति, तं जहा—धम्मत्थिकायं जाव आगासत्थिकायं, तं चेव रूविकायं अजीवकायं पण्णवेति, से कहमेयं भंते! गोयमा! एवं?

[६-१] तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने भगवान् गौतम को थोड़ी दूर से जाते हुए देखा। देखकर उन्होंने एक दूसरे को बुलाया। बुलाकर एक-दूसरे से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! बात ऐसी है कि (पंचास्तिकाय सम्बन्धी) यह बात हमारे लिए अप्रकट—अज्ञात है। यह (इन्द्रभूति) गौतम हमसे थोड़ी ही दूर पर जा रहे हैं। इसलिए हे देवानुप्रियो! हमारे लिए गौतम से यह अर्थ (बात) पूछना श्रेयस्कर है, ऐसा विचार करके उन्होंने परस्पर (एक-दूसरे से) इस सम्बन्ध में परामर्श किया। परामर्श करके जहाँ भगवान् गौतम थे, वहाँ उनके पास आए। पास आ कर उन्होंने भगवान् गौतम से इस प्रकार पूछा—

[प्र.] हे गौतम! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पंच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय। यावत् 'एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण ज्ञातपुत्र रूपीकाय और अजीवकाय कहते हैं', यहाँ तक (पहले की हुई) अपनी सारी चर्चा उन्होंने गौतम से कही। फिर पूछा—हे भदन्त गौतम! यह बात ऐसे कैसे है?

[२] तए ण से भगव गोतमे ते अन्नउत्थिए एव वयासी —"नो खलु वय देवाणुप्पिया ! अत्थिभाव 'नत्थि' त्ति वदामो, नत्थिभाव 'अत्थि' त्ति वदामो । अम्हे ण देवाणुप्पिया ! सव्व अत्थिभाव 'अत्थी' ति वदामो, सव्व नत्थिभाव 'नत्थी' ति वदामो । त चेदसा खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एतमट्ठ सयमेव पच्चुविक्खह" त्ति कट्टु ते अन्नउत्थिए एव वदति । एव वदित्ता जेणेव गुणसिलए चेतिए जेणेव समणे० एव जहा नियण्ठुद्देसए (श० २ उ० ५ सू० २५ [१]) जाव भत्त पाण पडिदसेति, भत्त पाण पडिदसेत्ता समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासति ।

[६-२ उ] इस पर भगवान् गौतम ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिया ! हम अस्तिभाव (विद्यमान) को नास्ति (नही है), ऐसा नही कहते, इसी प्रकार 'नास्तिभाव' (अविद्यमान) को अस्ति (है) ऐसा नही कहते । हे देवानुप्रियो ! हम सभी अस्तिभावो को अस्ति (है), ऐसा कहते हैं और समस्त नास्तिभावो को नास्ति (नही है), ऐसा कहते हैं । अत हे देवानुप्रियो ! आप स्वय अपने ज्ञान (अथवा मन) से इस बात (अर्थ) पर अनुप्रेक्षण (चिन्तन) करिये । इस प्रकार कह कर श्री गौतमस्वामी ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—जसा भगवान् बतलाते हैं, वैसा ही है ।' इस प्रकार कह कर श्री गौतमस्वामी गुणशीलक चैत्य मे जहा श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहा उनके पास आए और द्वितीय शतक के निर्ग्रन्थ उद्देशक (सू २५-१) मे बताये अनुसार यावत् आहार-पानी (भक्त-पान) भगवान् को दिखलाया । भक्तपान दिखला कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार करके उनसे न बहुत दूर और न बहुत निकट रह कर यावत् उपासना करने लगे ।

७ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे महाकहापडिवन्ने यावि होत्था, कालोदाई य त देस हव्वमागए ।

[७] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर महाकथा प्रतिपन्न (बहुत-से जन-समूह को धर्मोपदेश देने मे प्रवृत्त) थे । उसी समय कालोदायी उस स्थल (प्रदेश) मे आ पहुँचा ।

८ 'कालोदाई' ति समणे भगव महावीरे कालोदाइ एव वदासी—"से नूण ते कालोदाई ! अन्नया कयाई एगयओ सहियाण समुवागताण सन्निविट्ठाण तहेव (सू० ३) जाव से कहमेत मन्ने एव ? से नूण कालोदाई ! अत्थे समट्ठे ? हता, अत्थि । त सच्चे ण एसमट्ठे कालोदाई !, अह पच अत्थिकाए पण्णवेमि, त जहा —धम्मत्थिकाय जाव पोग्गलत्थिकाय । तत्थ ण अह चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव जाव एग च ण अह पोग्गलत्थिकाय रूविकाय पण्णवेमि" ।

[८] 'हे कालोदायी !' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने कालोदायी से इस प्रकार पूछा—'हे कालोदायी ! क्या वास्तव मे, किसी समय एक जगह सभी साथ आए हुए और एकत्र सुखपूर्वक बठे हुए तुम सब मे पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे इस प्रकार विचार हुआ था कि यावत् 'यह बात कसे मानी जाए ?' हे कालोदायी ! क्या यह बात यथार्थ है ?' (कालोदायी—) 'हाँ, यथार्थ है ।'

(भगवान्—) 'हे कालोदायी ! पंचास्तिकायसम्बन्धी यह बात सत्य है। मैं धर्मास्तिकाय से पुद्गलास्तिकाय पर्यन्त पंच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूं। उनमें से चार अस्तिकाय को मैं अजीवकाय बतलाता हूँ। यावत् पूर्व कथितानुसार एक पुद्गलास्तिकाय को मैं रूपीकाय (अजीव काय) बतलाता हूँ।

९ तए णं से कालोदाई समणं भगवं महावीरं एवं वदासी—एयंसि णं भंते ! । धम्मत्थिकायंसि अधम्मत्थिकायंसि आगासत्थिकायंसि अरूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठित्तए वा निसीदित्तए वा तुयट्टित्तए वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे कालोदाई ! । एगंसि णं पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा।

[९ प्र] तब कालोदायी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, इन अरूपी अजीवकायों पर कोई बैठने, सोने, खड़े रहने, नीचे बैठने यावत् करवट बदलने, आदि क्रियाएँ करने में समर्थ है ?'

[९ उ] हे कालोदायी ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नहीं है। एक पुद्गलास्तिकाय ही रूपी अजीवकाय है, जिस पर कोई भी बैठने, सोने या यावत् करवट बदलने आदि क्रियाएँ करने में समर्थ है।

१० एयंसि णं भंते ! पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे कालोदाई ! ।

[१० प्र] भगवन् ! जीवों को पापफलविपाक से संयुक्त करने वाले (अशुभफलदायक) पापकर्म, क्या इस रूपीकाय और अजीवकाय को लगते हैं ? क्या इस रूपीकाय और अजीवकायरूप पुद्गलास्तिकाय में पापकर्म लगते हैं ?

[१० उ] कालोदायिन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात्—रूपी अजीव पुद्गलास्तिकाय को जीवों को पापफलविपाकयुक्त करने वाले पापकर्म नहीं लगते।)

११ एयंसि णं जीवत्थिकायंसि अरूविकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हंता, कज्जंति।

[११ प्र] (भगवन् !) क्या इस अरूपी (काय) जीवास्तिकाय में जीवों को पापफलविपाक से युक्त पापकर्म लगते हैं ?

[११ उ] हाँ (कालोदायी !) लगते हैं। (अर्थात्—अरूपी जीव पापफलकर्म से संयुक्त होते हैं।)

१२ एत्थ ण से कालोदाई सबुद्धे समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भ अतिए धम्म निसामित्तए एव जहा खदए (श० २ उ० १ सू० ३२ ४५) तहेव पव्वइए, तहेव एक्कारस अगाइ जाव विहरति।

[१२] (भगवान् द्वारा समाधान पाकर) कालोदायी सम्बुद्ध (बोधि को प्राप्त) हुआ। फिर उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मैं आपसे धर्म-श्रवण करना चाहता हूँ।'

भगवान् ने उसे धर्म-श्रवण कराया। फिर जैसे स्कन्दक ने भगवान् से प्रव्रज्या अगीकार की थी (श २ उ १ सू ३२-४५) वैसे ही कालोदायी भगवान् के पास प्रव्रजित हुआ। उसी प्रकार उसने ग्यारह अगो का अध्ययन किया, यावत कालोदायी अनगार विचरण करने लगे।

विवेचन—अन्यतीर्थिक कालोदायी की पचास्तिकायचर्चा और सम्बुद्ध होकर प्रव्रज्या-स्वीकार—प्रस्तुत उद्देशक के प्रारम्भ से लेकर १२ सूत्रो मे कालोदायी का अनगार के रूप मे प्रव्रजित होने तक का घटनाक्रम प्रतिपादित किया गया है।

कालोदायी के जीवनपरिवर्तन का घटनाचक्र—(१) कालोदायी आदि अन्यतीर्थिक साथियो का पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे वार्तालाप, (२) श्री गौतमस्वामी का पास से जाते देख, पचास्तिकाय सम्बन्धी भगवान् की मान्यता के सम्बन्ध मे उनसे पूछा, (३) उन्होने कालोदायी आदि की पञ्चास्तिकाय-सम्बन्धी मान्यता भगवत्सम्मत बताई, (४) जिज्ञासावश कालोदायी ने भगवान का साक्षात्कार करके पुन समाधान प्राप्त किया, पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे अन्य प्रश्न किये, (५) सतोषजनक उत्तर पाकर वह सम्बोधि प्राप्त हुआ, (६) भगवान् से उसने धर्म-श्रवण की इच्छा प्रकट की, धर्मोपदेश सुना, स्कन्दक की तरह ससारविरक्त होकर प्रव्रजित हुआ, (७) कालोदायी अनगार ने ग्यारह अगो का अध्ययन किया और विचरण करने लगा।[1]

जीवो के पापकर्म और कल्याणकर्म क्रमश पाप-कल्याण-फल विपाकसयुक्त होने का सदृष्टान्त निरूपण

१३ तए ण समणे भगव महावीरे अन्नया कयाइ रायगिहातो णगरातो गुणसिल० पडिनिक्ख-मति, २ बहिया जणवयविहार विहरइ।

[१३] किसी समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य से निकल कर बाहर जनपदो मे विहार करते हुए विचरण करने लगे।

१४ तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नाम नगरे, गुणसिलए चेइए। तए ण समणे भगव महावीरे अन्नया कयाइ जाव समोसढे, परिसा जाव पडिगता।

[१४] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था। (नगर के बाहर) गुणशीलक नामक चैत्य था। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पुन वहाँ पधारे यावत उनका सम-वसरण लगा। यावत परिषद धर्मोपदेश सुन कर लौट गई।

---

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भाग १, पृ ३१२ से ३१५ तक

१५ तए णं से कालोदाई अणगारे अन्नया कयाई जेणेव समणे भगवं महावीरे तणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासि—अत्थि णं भंते ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हंता, अत्थि।

[१५ प्र] तदनन्तर अन्य किसी समय कालोदायी अनगार, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ उनके पास आये और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! क्या जीवों का पापफलविपाक से संयुक्त पाप कर्म लगते है ?

[१५ उ] हाँ, (कालोदायी !) लगते हैं।

१६ कहं णं भंते ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाकुलं विससमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाते भद्दए भवति, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए दुग्गंधत्ताए जहा महस्सवए (स० ६ उ० ३ सु० २ [१]) जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति, एवामेव कालोदाई ! जीवाणं पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले, तस्स णं आवाते भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति, एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवाग० जाव कज्जंति।

[१६ प्र] भगवन् ! जीवों को पापफलविपाकसंयुक्त पापकर्म कैसे लगते हैं ?

[१६ उ] कालोदायी ! जैसे कोई पुरुष सुन्दर स्थाली (हाँडी, तपेली या देगची) में पकाने से शुद्ध पका हुआ, अठारह प्रकार के दाल, शाक आदि व्यंजनों से युक्त विषमिश्रित भोजन का सेवन करता है। वह भोजन उसे आपात (ऊपर-ऊपर से या प्रारम्भ) में अच्छा लगता है, किन्तु उसके पश्चात् वह भोजन परिणमन होता-होता खराब रूप में, दुर्गन्धरूप में यावत् छठे शतक के महाश्रव नामक तृतीय उद्देशक (सू २-१) में कहे अनुसार यावत् बार-बार अशुभ परिणाम प्राप्त करता है। हे कालोदायी ! इसी प्रकार जीवों को प्राणातिपात से लेकर यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पापस्थान का सेवन ऊपर-ऊपर से प्रारम्भ में तो अच्छा लगता है, किन्तु बाद में जब उनके द्वारा बांधे हुए पापकर्म उदय में आते हैं, तब वे अशुभरूप में परिणत होते होते दुरूपपने में, दुर्गन्धरूप में यावत् बार-बार अशुभ परिणाम पाते हैं। हे कालोदायी ! इस प्रकार से जीवों के पापकर्म अशुभफलविपाक से युक्त होते हैं।

१७ अत्थि णं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाणफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हंता, कज्जंति।

[१७ प्र] भगवन् ! क्या जीवों के कल्याण (शुभ) कर्म कल्याणफलविपाक सहित होते हैं ?

[१७ उ] हाँ, कालोदायी ! होते हैं।

१८ कह णं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति ?

कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाकुलं ओसह-सम्मिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाते णो भद्दए भवति, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे सुरूवत्ताए सुवण्णत्ताए जाव सुहत्ताए, नो दुक्खत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमति। एवामेव कालोदाई ! जीवाणं पाणातिवातवेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे कोहविवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे तस्स णं आवाए नो भद्दए भवइ, ततो पच्छा परिणममाणे परिणममाणे सुरूवत्ताए जाव सुहत्ताए, नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति।

[१८ प्र.] भगवन् ! जीवों के कल्याणकर्म यावत् (कल्याणफलविपाक से संयुक्त) कैसे होते हैं ?

[१८ उ.] कालोदायी ! जैसे कोई पुरुष मनोज्ञ (सुन्दर) स्थाली (हांडी, तपेली या देगची) में पकाने से शुद्ध पका हुआ और अठारह प्रकार के दाल, शाक आदि व्यंजनों से युक्त औषधमिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन ऊपर-ऊपर से प्रारम्भ में अच्छा न लगे, परन्तु बाद में परिणत होता-होता जब वह सुरूपस्वरूप में, सुवर्णरूप में यावत् सुख (या शुभ) रूप में बार बार परिणत होता है, तब वह दुःखरूप में परिणत नहीं होता, इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों के लिए प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह विरमण, क्रोधविवेक (क्रोधत्याग) यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक प्रारम्भ में अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसके पश्चात् उसका परिणमन होते-होते सुरूपस्वरूप में, सुवर्णरूप में उसका परिणाम यावत् सुखरूप होता है, दुःखरूप नहीं होता। इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों के कल्याण (पुण्य) कर्म यावत् (कल्याणफलविपाक संयुक्त) होते हैं।

विवेचन—जीवों के पापकर्म और कल्याणकर्म क्रमशः पाप-कल्याणफलविपाक-संयुक्त होने का सदृष्टान्त निरूपण—प्रस्तुत छह सूत्रों में कालोदायी अनगार के पापकर्म और कल्याणकर्म के फल से सम्बन्धित चार प्रश्नों का भगवान् द्वारा दिया गया दृष्टान्तपूर्वक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष—जिस प्रकार सर्वथा सुसंस्कृत एवं शुद्ध रीति से पकाया हुआ विषमिश्रित भोजन खाते समय बड़ा रुचिकर लगता है, किन्तु जब उसका परिणमन होता है, तब वह अत्यन्त अप्रीति-कर, दुःखद और प्राणविनाशकारक होता है। इसी प्रकार प्राणातिपात आदि पापकर्म करते समय जीव को अच्छे लगते हैं, किन्तु उनका फल भोगते समय वे बड़े दुःखदायी होते हैं। औषधयुक्त भोजन करना कष्टकर लगता है, उस समय उसका स्वाद अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसका परिणाम हित-कर, सुखकर और आरोग्यकर होता है। इसी प्रकार प्राणातिपातादि से विरति कष्टकर एवं अरुचि-कर लगती है, किन्तु उसका परिणाम अतीव हितकर और सुखकर होता है।[1]

अग्निकाय को जलाने और बुझानेवालों में से महाकर्म आदि और अल्पकर्मादि से संयुक्त कौन और क्यों ?

१९ [१] दो भंते ! पुरिसा सरिसया जाव सरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं अगणिकायं समारभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति, एगे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेति।

---

१ भगवती, अ. वृत्ति, पत्रांक ३२६

एतेसि णं भंते ! दोण्हं पुरिसाणं कतरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेदणतराए चेव ? कतरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेदणतराए चेव ? जे वा से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति, जे वा से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेति ?

कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव जाव महावेदणतराए चेव। तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेति से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव।

[१९-१ प्र] भगवन् ! (मान लीजिए) समान उम्र के यावत् समान ही भाण्ड, पात्र और उपकरण वाले दो पुरुष एक-दूसरे के साथ अग्निकाय का समारम्भ करें, उनमें से एक पुरुष अग्निकाय को जलाए और एक पुरुष अग्निकाय को बुझाए, तो हे भगवन् ! उन दोनों पुरुषों में से कौन सा पुरुष महाकर्म वाला, महाक्रिया वाला, महा-आस्रव वाला और महावेदना वाला है और कौन-सा पुरुष अल्पकर्म वाला, अल्पक्रिया वाला, अल्पआस्रव वाला और अल्पवेदना वाला होता है ? (अर्थात्)—दोनों में से जो पुरुष अग्नि जलाता है, वह महाकर्म आदि वाला होता है, या जो आग बुझाता है, वह महाकर्मादि युक्त होता है ?

[१९-१ उ] हे कालोदायी ! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है वह पुरुष महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'तत्थ णं जे से पुरिसे जाव अप्पवेयणतराए चेव' ?

कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेति से णं पुरिसे बहुतरागं पुढविक्कायं समारभति, बहुतरागं आउक्कायं समारभति, अप्पतरागं तेउकायं समारभति, बहुतरागं वाउकायं समारभति, बहुतरागं वणस्सतिकायं समारभति, बहुतरागं तसकायं समारभति। तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेति से णं पुरिसे अप्पतरागं पुढविक्कायं समारभति, अप्प० आउ०, बहुतरागं तेउक्कायं समारभति, अप्पतरागं वाउकायं समारभति, अप्पतरागं वणस्सतिकायं समारभति, अप्पतरागं तसकायं समारभति। से तेणट्ठेणं कालोदाई ! जाव अप्पवेयणतराए चेव।

[१९-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है और जो अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि होता है ?

[१९-२ प्र] कालोदायी ! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पृथ्वीकाय का बहुत समारम्भ (वध) करता है, अप्काय का बहुत समारम्भ करता है, तेजस्काय का अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का बहुत समारम्भ करता, वनस्पतिकाय का बहुत समारम्भ करता है और त्रसकाय का बहुत समारम्भ करता है। जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पृथ्वीकाय का अल्प समारम्भ करता है, अप्काय का अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का अल्प समारम्भ करता है, वनस्पतिकाय का अल्प समारम्भ करता है एवं त्रसकाय का भी अल्प समारम्भ करता है, किन्तु अग्निकाय का बहुत समारम्भ करता है। इसलिए

हे कालोदायी ! जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला आदि है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि है।

विवेचन—अग्निकाय को जलाने और बुझाने वालों में महाकर्म आदि और अल्पकर्म आदि से संयुक्त कौन और क्यों ?—प्रस्तुत सूत्र (१९) में कालोदायी द्वारा पूछे गए पूर्वोक्त प्रश्न का भगवान् द्वारा दिया गया सयुक्तिक समाधान अंकित है।

अग्नि जलाने वाला महाकर्म आदि से युक्त क्यों ?—अग्नि जलाने से बहुत-से अग्निकायिक जीवों की उत्पत्ति होती है, उनमें से कुछ जीवों का विनाश भी होता है। अग्नि जलाने वाला पुरुष अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य सभी कायों का विनाश (महारम्भ) करता है। इसलिए अग्नि जलाने वाला पुरुष ज्ञानावरणीय आदि महाकर्म उपार्जन करता है, दाहरूप महाक्रिया करता है, कर्मबन्ध का हेतुभूत महा-आस्रव करता है और जीवों को महावेदना उत्पन्न करता है, जबकि अग्नि बुझाने वाला पुरुष एक अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य सब कायों का अल्प आरम्भ करता है। इसलिए वह जलाने वाले पुरुष की अपेक्षा अल्प-कर्म, अल्प-क्रिया, अल्प-आस्रव और अल्प-वेदना से युक्त होता है।[1]

प्रकाश और ताप देने वाले अचित्त प्रकाशमान पुद्गलों की प्ररूपणा

२० अत्थि णं भंते ! अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति ?

हंता, अत्थि।

[२०] भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित (प्रकाशयुक्त) होते हैं, वे वस्तुओं को उद्योतित करते हैं, तपाते हैं (या स्वयं तपते) हैं और प्रकाश करते हैं ?

[२० उ] हाँ कालोदायी ! अचित्त पुद्गल भी यावत् प्रकाश करते हैं।

२१ कतरे णं भंते ! ते अचित्ता पोग्गला ओभासंति जाव पभासंति ?

कालोदाई ! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गता दूरं निपतति, देसं गता देसं निपतति, जहिं जहिं च णं सा निपतति तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति। एते णं कालोदायी ! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति।

[२१ प्र] भगवन् ! अचित्त होते हुए भी कौन-से पुद्गल अवभासित होते हैं, यावत् प्रकाश करते हैं ?

[२१ उ] कालोदायी ! क्रुद्ध (कुपित) अनगार की निकली हुई तेजोलेश्या दूर जाकर उस देश में गिरती है, जाने योग्य देश (स्थल) में जाकर उस देश में गिरती है। जहाँ वह गिरती है, वहाँ अचित्त पुद्गल भी अवभासित (प्रकाशयुक्त) होते हैं यावत् प्रकाश करते हैं।

विवेचन—प्रकाश और ताप देने वाले अचित्त प्रकाशमान पुद्गलों की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रों में स्वयं प्रकाशमान अचित्त प्रकाशक, तापकर्ता एवं उद्योतक पुद्गलों की प्ररूपणा की गई है।

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३२७

सचित्तवत् अचित्त तेजस्काय के पुद्गल—सचित्त तेजस्काय के पुद्गल तो प्रकाश, ताप, उद्योत आदि करते ही हैं, वे अवभासित यावत् प्रकाशित भी होते ही हैं, किन्तु अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते एवं प्रकाश, ताप, उद्योत आदि करते हैं, यह इस सूत्र का आशय है। कुपित साधु द्वारा निकाली हुई तेजोलेश्या के पुद्गल अचित्त होते हैं।[1]

कालोदायी द्वारा तपश्चरण, सल्लेखना और समाधिपूर्वक निर्वाणप्राप्ति

२२. तए णं से कालोदाई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठऽट्ठम जाव अप्पाणं भावेमाणे जहा पढमसए कालासवेसियपुत्ते (स० १ उ० ९ सु० २४) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ सत्तमे सए : दसमो उद्देसो समत्तो ॥

॥ सत्तमं सतं समत्तं ॥

[२२] इसके पश्चात् वह कालोदायी अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार करके बहुत-से चतुर्थ (भक्त-प्रत्याख्यान=उपवास), षष्ठ (भक्त-प्रत्याख्यान=दो उपवास—बेला), अष्टम (भक्त-प्रत्याख्यान=तेला) इत्यादि तप द्वारा यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे, यावत् प्रथम शतक के नौवें उद्देशक (सू. २४) में वर्णित कालास्यवेषीपुत्र की तरह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है।'

विवेचन—कालोदायी अनगार द्वारा तपश्चरण, सल्लेखना और समाधिमरणपूर्वक निर्वाण प्राप्ति—प्रस्तुत सूत्र में कालास्यवेषीपुत्र की तरह कालोदायी अनगार के भी अन्तिम सल्लेखनासाधना आदि के द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होने का निरूपण किया गया है।

॥ सप्तम शतक : दशम उद्देशक समाप्त ॥

॥ सप्तम शतक सम्पूर्ण ॥

---

१. भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३२५

अट्ठमं सयं : अष्टम शतक

प्राथमिक

- व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के अष्टम शतक मे पुद्गल, आशीविष, वृक्ष, क्रिया, आजीव, प्रासुक, अदत्त, प्रत्यनीक, बन्ध और आराधना, ये दस उद्देशक है।

- प्रथम उद्देशक मे परिणाम की दृष्टि से पुद्गल के तीन प्रकारो का, नौ दण्डको द्वारा प्रयोगपरिणत पुद्गलो का, फिर मिश्रपरिणत पुद्गलो का तथा विस्रसापरिणत पुद्गलो के भेद प्रभेद का निरूपण है। तत्पश्चात् मन-वचन काया की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से प्रयोग, मिश्र और विस्रसा से एक, दो तीन, चार आदि द्रव्यो के परिणमन का वर्णन है। फिर परिणामो की दृष्टि से पुद्गलो के अल्पबहुत्व की चर्चा है।

- द्वितीय उद्देशक मे आशीविष, उसके दो मुख्य प्रकार तथा उसके अधिकारी जीवो एव उनके विष सामर्थ्य का निरूपण है। तत्पश्चात छद्मस्थ द्वारा सर्वभाव से ज्ञान के अविषय और केवली द्वारा सर्वभावेन ज्ञान के विषय के १० स्थानो का, ज्ञान-अज्ञान के स्वरूप एव भेद-प्रभेद का, औधिक जीवो, चौवीस दण्डकवर्ती जीवो एव सिद्धो मे ज्ञान-अज्ञान का प्ररूपण, गति आदि ८ द्वारो की अपेक्षा लब्धिद्वार, उपयोगादि वीस द्वारो की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी का प्ररूपण एव ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, अतर और अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

- तृतीय उद्देशक मे सख्यातजीविक, असख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षो का, छिन्नकच्छप आदि के टुकडो के बीच का जीवप्रदेश स्पृष्ट और शस्त्रादि के प्रभाव से रहित होने का एव रत्नप्रभादि पृथ्वियो के चरमत्व-अचरमत्व आदि का निरूपण किया गया है।

- चतुर्थ उद्देशक मे क्रियाओ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेदो आदि का अतिदेशपूर्वक निर्देश है।

- पचम उद्देशक मे सामायिक आदि साधना मे उपविष्ट श्रावक का सामान स्वकीय न रहने पर भी स्वकीयत्व का तथा श्रमणोपासक के व्रतादि के लिए ४९ भगो का तथा आजीविकोपासको के सिद्धात, नाम, आचार-विचार और श्रमणोपासको की उनसे विशेषता का वर्णन है, अत मे चार प्रकार के देवलोको का निरूपण है।

- छठे उद्देशक म तथारूप श्रमण या माहन को प्रासुक-अप्रासुक एषणीय-अनेषणीय आहारदान का श्रमणोपासक को फल-प्राप्ति का, गृहस्थ के द्वारा स्वय एव स्थविर के निमित्त कह कर दिये गए पिण्ड-पात्रादि की उपभोगमर्यादा का निरूपण है तथा अकृत्यसेवी किन्तु आराधनातत्पर निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की विभिन्न पहलुओ से आराधकता की सयुक्तिक प्ररूपणा है। तत्पश्चात् जलते दीपक तथा घर मे जलने वाली वस्तु का विश्लेषण है और एक जीव या बहुत जीवो की परकीय एक या बहुत-से शरीरो की अपेक्षा होने वाली क्रियाओ का निरूपण है।

- सप्तम उद्देशक मे अन्यतीर्थिको के द्वारा अदत्तादान को लेकर स्थविरो पर आक्षेप एव स्थविरों द्वारा प्रतिवाद का निरूपण है। अन्त मे गतिप्रवाद (प्रपात) के पाच भेदो का निरूपण है।
- अष्टम उद्देशक मे गुण, गति, समूह, अनुकम्पा, श्रुत एव भावविषयक प्रत्यनीको के भेदो का, निर्ग्रन्थ के लिए आचरणीय पचविध व्यवहार का, विविध पहलुओ से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबन्ध का, २२ परीषहो मे से कौन-सा परिषह किस कर्म के उदय से उत्पन्न होता है तथा सप्तविधबन्धक आदि के परीषहो का निरूपण है। तदनन्तर उदय, अस्त और मध्याह्न के समय मे सूर्यों की दूरी और निकटता के प्रतिभासादि का एव मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर बाहर के ज्योतिष्क देवो व इन्द्रो मे उपपात-विरहकाल का वर्णन है।
- नवम् उद्देशक मे विस्रसाबन्ध के भेद प्रभेद एव स्वरूप का, प्रयोगबन्ध, शरीर-प्रयोगबन्ध एव पच शरीरो के प्रयोगबन्ध का सभेद निरूपण है। पच शरीरो के एक दूसरे के बन्धक अबन्धक की चर्चा तथा औदारिकादि पाच शरीरो के देश-सर्वबन्धकों एव अबन्धको के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा है।
- दशम उद्देशक मे श्रुत-शील की आराधना-विराधना की दृष्टि से अन्यतीर्थिक मतनिराकरण पूर्वक स्वसिद्धान्त का, ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एव इनकी उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्याराधना के फल का तथा पुद्गलपरिणाम के भेद प्रभेदो का एव पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के अष्ट भगो का निरूपण है। अन्त में अष्ट कर्मप्रकृतिया, उनके अविभागपरिच्छेद, उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीवों को एव कर्मों के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता है।[1] ❖❖

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) विषयसूची

अट्ठमं सयं : अष्टम शतक

अष्टम शतक की संग्रहणी गाथा

१ पोग्गल १ आसीविस २ रुक्ख ३ किरिय ४ आजीव ५ फासुगमदत्ते ६ ७ ।
पडिणीय ८ बंध ९ आराहणा य १० दस अट्ठमम्मि सते ॥ १ ॥

[१ गाथार्थ] १ पुद्‌गल, २ आशीविष, ३ वृक्ष, ४ क्रिया, ५ आजीव, ६ प्रासुक, ७ अदत्त, ८ प्रत्यनीक, ९ बन्ध और १० आराधना, आठवें शतक मे ये दस उद्देशक हैं ।

पढमो उद्देसओ 'पोग्गल'

प्रथम उद्देशक : 'पुद्‌गल'

पुद्‌गलपरिणामों के तीन प्रकारो का निरूपण

२ रायगिहे जाव एवं वदासि—

[२-उपोद्‌घात] राजगृह नगर मे यावत गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—

३ कतिविहा णं भंते ! पोग्गला पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—पयोगपरिणता मीससापरिणता वीससापरिणता ।

[३-प्र] भगवन् ! पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[३-उ] गौतम ! पुद्‌गल तीन प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) प्रयोग-परिणत, (२) मिश्र परिणत और (३) विस्रसा परिणत ।

विवेचन—पुद्‌गल-परिणामों के तीन प्रकारो का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र मे परिणाम (परिणति) की दृष्टि से पुद्‌गल के तीन प्रकारो का निरूपण किया गया है ।

परिणामों की दृष्टि से तीनों पुद्‌गलो का स्वरूप (१) प्रयोग-परिणत—जीव के व्यापार (क्रिया) से शरीर आदि के रूप मे परिणत पुद्‌गल (२) मिश्र-परिणत—प्रयोग और विस्रसा (स्वभाव) इन दोनो द्वारा परिणत पुद्‌गल और (३) विस्रसा-परिणत—विस्रसा यानि स्वभाव मे परिणत पुद्‌गल ।

मिश्रपरिणत पुद्गलों के दो रूप—(१) प्रयोग-परिणाम को छोड़े बिना स्वभाव से (विस्रसा) परिणामान्तर को प्राप्त मृतकलेवर आदि पुद्गल मिश्रपरिणत कहलाते हैं, अथवा (२) विस्रसा (स्वभाव) से परिणत औदारिक आदि वर्गणाएँ, जब जीव के व्यापार (प्रयोग) से औदारिक आदि वर्गणायें शरीररूप में परिणत होती हैं तब वे मिश्रपरिणत कहलाती हैं, जबकि उनमें प्रयोग और विस्रसा, दोनों परिणामों की विवक्षा की गई हो। विस्रसापरिणाम को छोड़कर अकेले प्रयोग परिणाम की विवक्षा हो, तब उक्त वर्गणाएँ प्रयोग-परिणत ही कहलाएँगी।[1]

नौ दण्डकों द्वारा प्रयोग-परिणत पुद्गलों का निरूपण

प्रथम दण्डक

४ पयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदियपयोगपरिणता बेइंदियपयोगपरिणता जाव पंचिंदियपयोगपरिणता।

[४-प्र] भगवन् ! प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[४-उ] गौतम ! (प्रयोग परिणत पुद्गल) पांच प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) एकेन्द्रिय-प्रयोग परिणत, (२) द्वीन्द्रिय प्रयोग-परिणत यावत् (३) त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, (४) चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत (५) पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

५ एगिंदियपयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा, तं जहा—पुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता जाव वणस्सतिकाइय एगिंदियपयोगपरिणता।

[५-प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[५-उ] गौतम ! (एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) पांच प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

६ [१] पुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता य बादरपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता य।

[६-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[६-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३२८

[२] आउक्काइयएगिंदियपयोगपरिणता एव चेव।

[६-२] इसी प्रकार अप्कायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल भी इसी तरह (दो प्रकार के—सूक्ष्म और बादर-रूप) कहने चाहिए।

[३] एव दुयओ भेदो जाव वणस्सतिकाइया य।

[६-३] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल तक प्रत्येक के दो दो भेद (सूक्ष्म और बादर रूप) कहने चाहिए।

७ [१] बेइंदियपयोगपरिणताणं पुच्छा।

गोयमा! अणेगविहा पण्णत्ता।

[७-१ प्र] भगवन्! अब द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के प्रकारो के विषय मे पृच्छा है।

[७-१ उ] गौतम! वे (द्वीन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल) अनेक प्रकार के कहे गए है।

[२] एवं तेइंदिय चउरिंदियपयोगपरिणता वि।

[७-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो और चतुरिन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गलो के प्रकार के विषय मे (अनेक विध) जानना चाहिए।

८ पंचिंदियपयोगपरिणताणं पुच्छा।

गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—नेरतियपंचिंदियपयोगपरिणता, तिरिक्ख०, एव मणुस्स०, देवपंचिंदिय०।

[८ प्र] अब (गौतमस्वामी की) पचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गलो के (प्रकार के) विषय मे पृच्छा है।

[८-उ] गौतम! (पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) चार प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) नारक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, (२) तियञ्च-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, (३) मनुष्य-पचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल और (४) देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

९ नेरइयपंचिंदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा! सत्तविहा पण्णत्ता, त जहा—रतणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणता वि जाव अहेसत्तमपुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणता वि।

[९ प्र] (सर्वप्रथम) नरयिक पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के (प्रकार के) विषय मे पृच्छा है।

[९ उ] गौतम! (नरयिक पचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत-पुद्गल) सात प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—रत्नप्रभापृथ्वी-नरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत अध सप्तमा (तमस्तमा)-पृथ्वी नरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत,पुद्गल।

१० [१] तिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणताणं पुच्छा।

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलचरपंचिदियतिरिक्खजोणिय० थलचरतिरिक्खजोणियपंचिदिय० खहचरतिरिक्खपंचिदिय०।

[१०-१ प्र.] अब प्रश्न है—तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलों के (प्रकार के) विषय में।

[१०-१ उ.] गौतम ! तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल तीन प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—(१) जलचर-तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, (२) स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और (३) खेचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[२] जलचरतिरिक्खजोणियपयोग० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मुच्छिमजलचर० गब्भवक्कंतियजलचर०।

[१०-२ प्र.] भगवन् ! जलचर तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१०-२ उ.] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—(१) सम्मूच्छिम जलचर-तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और (२) गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) जलचर तिर्यञ्च-योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[३] थलचरतिरिक्ख० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—चउप्पदथलचर० परिसप्पथलचर०।

[१०-३ प्र.] भगवन् ! स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१०-३ उ.] गौतम ! (स्थलचरतिर्यञ्च-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल) दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और परिसर्प स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिकपंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[४] चउप्पदथलचर० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मुच्छिमचउप्पदथलचर० गब्भवक्कंतियचउप्पद-थलचर०।

[१०-४ प्र.] अब मेरा प्रश्न है कि चतुष्पद स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के हैं ?

[१०-४ उ.] गौतम ! वे (पूर्वोक्त पुद्गल) दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सम्मूच्छिम चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल और गर्भज चतुष्पद-स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[५] एव एतेण अभिलावेण परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—उरपरिसप्पा य, भुयपरिसप्पा य।

[१०-५] इसी प्रकार अभिलाप (पाठ) द्वारा परिसप स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल भी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—उर परिसर्प-स्थलचर-तियञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और भुजपरिसप स्थलचर-तियञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल।

[६] उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कतिया य।

[१०-६] (पूर्वोक्त चतुष्पदस्थलचर सम्बन्धी पुद्गलवत्) उर परिसप (सम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्गल) भी दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—सम्मूच्छिम (उर परिसपसम्बन्धी पुद्गल) और गभज (उर परिसर्प-सम्बन्धी पुद्गल)।

[७] एव भुयपरिसप्पा वि।

[१०-७] इसी प्रकार भुजपरिसप-सम्बन्धी पुदगल के भी दो भेद समझ लेने चाहिए।

[८] एव खहचरा वि।

[१०-८] इसी तरह खेचर (तियञ्चपचेन्द्रियसम्बन्धी पुद्गल) के भी पूर्ववत् (सम्मूच्छिम और गभज) दो भेद कह गए हैं।

११ मणुस्सपचिदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मुच्छिममणुस्स० गब्भवक्कतियमणुस्स०।

[११ प्र] भगवन्! मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के प्रकारो के लिये पृच्छा है।

[११ उ] गौतम! वे (मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुदगल) दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—सम्मूच्छिममनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और गभजमनुष्य-पचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

१२ देवपचिदियपयोग० पुच्छा।

गोयमा! चउव्विहा पन्नत्ता, त जहा—भवणवासिदेवपचिदियपयोग० एव जाव वेमाणिया।

[१२ प्र] भगवन्! देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्गल कितने प्रकार के हैं?

[१२ उ] गौतम! वे चार प्रकार के कहे गए हैं, जसे—भवनवासी-देव-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल, यावत् वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल।

१३ भवणवासिदेवपचिदिय० पुच्छा।

गोयमा! दसविहा पण्णत्ता, त जहा—असुरकुमार० जाव थणियकुमार०।

[१३ प्र] भगवन् ! भवनवासीदेव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के प्रकारों के लिए पृच्छा है।

[१३ उ] वे (भवनवासीदेव-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल) दस प्रकार के कहे गए हैं, यथा—असुरकुमार-प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् स्तनितकुमार-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

१४ एवं एतेणं अभिलावेणं अट्ठविहा वाणमंतरा पिसाया जाव गंधव्वा।

[१४] इसी प्रकार इसी अभिलाप (पाठ) से पिशाच (वाणव्यन्तरदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल) से गन्धर्व (वाण० देव० प्रयोग-परिणत पुद्गल) तक आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव (प्रयोग परिणत पुद्गल) कहने चाहिए।

१५ जोइसिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—चंदविमाणजोतिसिय० जाव ताराविमाणजोतिसियदेव०।

[१५] (इसी प्रकार के अभिलापवत्) ज्योतिष्कदेवप्रयोग-परिणत पुद्गल भी पांच प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—चन्द्रविमानज्योतिष्कदेव (-प्रयोग परिणत) यावत् ताराविमान-ज्योतिष्कदेव (-प्रयोग-परिणत पुद्गल)।

१६ [१] वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कप्पोवग० कप्पातीतगवेमाणिय०।

[१६-१] वैमानिकदेव(-प्रयोग परिणत पुद्गल) के दो प्रकार कहे गए हैं, यथा—कल्पोपपन्नकवैमानिकदेव(-प्रयोग परिणत पुद्गल) और कल्पातीतवैमानिकदेव (-प्रयोग-परिणत पुद्गल)।

[२] कप्पोवगा दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मकप्पोवग० जाव अच्चुयकप्पोवग वेमाणिया।

[१६-२] कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव० बारह प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सौधर्मकल्पोपपन्नक से अच्युत कल्पोपपन्नक देव तक। (इन बारह प्रकार के वैमानिक देवों से सम्बन्धित प्रयोग-परिणत पुद्गल १२ प्रकार के होते हैं।)

[३] कप्पातीत० दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—गेवेज्जगकप्पातीतय० अणुत्तरोववाइयकप्पातीतये०।

[१६-३] कल्पातीत वैमानिकदेव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—ग्रैवेयककल्पातीत-वैमानिकदेव और अनुत्तरोपपातिककल्पातीत-वैमानिकदेव। (इन्हीं दो प्रकार के कल्पातीत वैमानिकदेवों से सम्बन्धित प्रयोग परिणत-पुद्गल दो प्रकार के कहने चाहिए।)

[४] गेवेज्जगकप्पातीतगा नवविहा पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पातीतगा जाव उवरिमउवरिमगेविज्जगकप्पातीतया।

[१६-४] ग्रैवेयककल्पातीत वैमानिकदेवों के नौ प्रकार कहे गए हैं, यथा—अधस्तन-अधस्तन (सबसे नीचे की त्रिक में नीचे का) ग्रैवेयककल्पातीत-वैमानिकदेव यावत् उपरितन-

उपरितन (सबसे ऊपर की त्रिक में सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक-कल्पातीत-वैमानिकदेव। (इन्हीं नामों से सम्बन्धित प्रयोग-परिणत-पुद्गलों के भी प्रकार कह देने चाहिए।)

[५] अणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदियपयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—विजयअणुत्तरोववाइय० जाव परिणया जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदिय जाव परिणता। १ दंडगो।

[१६-५ प्र.] भगवन्! अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[१६-५ उ.] गौतम! वे (अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेवसम्बन्धी प्रयोग परिणत पुद्गल) पांच प्रकार के कहे गए हैं जैसे—विजय अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

प्रथम दण्डक पूर्ण हुआ।

द्वितीय दण्डक

१७ [१] सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगसुहुमपुढविकाइय जाव परिणया य अपज्जत्तगसुहुमपुढविकाइय जाव परिणया य। [केई अपज्जत्तग पढमं भणंति, पच्छा पज्जत्तगं।]

[१७-१ प्र.] भगवन्! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[१७-१ उ.] गौतम! वे दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[कई आचार्य अपर्याप्तक (वाले प्रकार) को पहले और पर्याप्तक (वाले प्रकार) को बाद में कहते हैं।]

[२] बादरपुढविकाइयएगिंदिय० ? एवं चेव।

[१७-२] इसी प्रकार बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल के भी (उपर्युक्तवत्) दो भेद कहने चाहिए।

१८ एवं जाव वणस्सइकाइया। एक्केक्का दुविहा—सुहुमा य बादरा य, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

[१८] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक (एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल) तक प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद और फिर इन दोनों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद (वाले प्रयोग परिणत पुद्गल) कहने चाहिए।

१९ [१] बेंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगबेंदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य।

[१९-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१९-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—पर्याप्तक द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[२] एवं तेइंदिया वि।

[१९-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गलों के प्रकार के विषय में भी जान लेना चाहिए।

[३] एवं चउरिंदिया वि।

[१९-३] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलों के प्रकार के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

२० [१] रयणप्पभापुढविनेरइय० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगरयणप्पभापुढवि जाव परिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य।

[२० १ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

[२०-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—पर्याप्तक रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक रत्नप्रभा-नैरयिक-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[२] एवं जाव अहेसत्तमा।

[२०-२] इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमीपृथ्वी-नैरयिक प्रयोग परिणत पुद्गलों के (प्रत्येक के दो-दो) प्रकारों के विषय में कहना चाहिए।

२१ [१] सम्मुच्छिमजलचरतिरिक्ख० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तग० अपज्जत्तग०। एवं गब्भवक्कंतिया वि।

[२१-१ प्र] भगवन् ! सम्मूच्छिम-जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल प्रकारों के लिए पृच्छा है।

[२१-१ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—पर्याप्तक-सम्मूच्छिम-जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सम्मूच्छिम-जलचर-तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

इसी प्रकार गर्भज-जलचर सम्बन्धी प्रयोगपरिणत पुद्गलों के प्रकार के विषय में जान लेना चाहिए।

[२] सम्मुच्छिमचउप्पदथलचर० एवं चेव। एवं गब्भवक्कंतिया य।

[२१-२] इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम-चतुष्पदस्थलचर सम्बन्धी प्रयोग-परिणत पुद्गलों के प्रकार तथा गर्भज चतुष्पदस्थलचर सम्बन्धी प्रयोग-परिणत पुद्गलों के प्रकार के विषय में भी जानना चाहिए।

[३] एवं जाव सम्मुच्छिमखहयर० गब्भवक्कंतिया य एक्केक्के पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

[२१-३] इसी प्रकार यावत् सम्मूर्च्छिम खेचर और गर्भज खेचर से सम्बन्धित प्रयोगपरिणत पुद्गलों के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो-दो भेद कहने चाहिए।

२२ [१] सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदिय० पुच्छा।

गोयमा! एगविहा पन्नत्ता—अपज्जत्तगा चेव।

[२२-१ प्र] भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[२२-१ उ] गौतम! वे एक प्रकार के कहे गए हैं, यथा—अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल।

[२] गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय० पुच्छा।

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि।

[२२-२ प्र] भगवन्! गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[२२-२ उ] गौतम! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—पर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक-गर्भज मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

२३ [१] असुरकुमारभवणवासिदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगअसुरकुमार० अपज्जत्तगअसुर०।

[२३-१ प्र] भगवन्! असुरकुमार-भवनवासीदेव प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[२३-१ उ] गौतम! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

[२] एवं जाव थणियकुमारा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य।

[२३-२] इसी प्रकार स्तनितकुमार-भवनवासीदेव तक प्रयोग-परिणत पुद्गलों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिये।

२४ एव एतेण अभिलावेण दुएण भेदेण पिसाया म जाव गधव्वा, चदा जाव ताराविमाणा, सोहम्मकप्पोवगा जाव अच्चुओ, हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जकप्पातीत जाव उवरिमउवरिमगेविज्ज०, विजयअणुत्तरो० जाव अपराजिय० ।

[२४] इसी प्रकार इसी अभिलाप से पिशाचो से लेकर गन्धर्वों तक (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के तथा चन्द्र से लेकर तारा पर्यन्त (पाच प्रकार के) ज्योतिष्क देवो के प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के एव सौधमकल्पोपपन्नक से अच्युतकल्पोपपन्नक तक के और अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीत से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के एव विजय-अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत से अपराजित अनुत्तरोपपातिक कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिए।

२५ सव्वट्ठसिद्धकप्पातीय० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो० अपज्जत्तगसव्वट्ठ जाव परिणया वि । २ दडगा ।

[२५ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के कितने प्रकार हैं ?

[२५ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-देव-प्रयोग परिणत पुद्गल ।

दूसरा दण्डक पूर्ण हुआ ।

तृतीय दण्डक

२६ जे अपज्जत्तासुहुमपुढवीकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया, जे पज्जत्तासुहुम० जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया । एव जाव चउरिंदिया पज्जत्ता । नवर जे पज्जत्तगबादरवाउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय [illegible] जाव परिणता । सेस त चेव ।

[२६ [illegible] अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, तैजस [illegible] हैं । जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत [illegible] कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत है ।

[illegible] तक के (प्रयोग-परिणत पुद्गलो के विषय मे) जानना [illegible] पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत है [illegible] प्रयोग-परिणत हैं । (क्योंकि वायुकायिक मे वैक्रिय [illegible] जानना चाहिए ।

२७ [१] जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया कम्म-सरीप्पयोगपरिणया। एव पज्जत्तया वि।

[२७-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वक्रिय, तैजस और कामण शरीर-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

[२] एव जाव अहेसत्तमा।

[२७-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग परिणत-पुद्गलो तक के सम्बन्ध मे कहना चाहिए।

२८ [१] जे अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलचर जाव परिणया ते ओरालिय तेया कम्मासरीर जाव परिणया। एव पज्जत्तगा वि।

[२८-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत है, वे औदारिक, तजस और कामणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पयाप्तक सम्मूर्च्छिम-जलचर-प्रयोग परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

[२] गब्भवक्कतिया अपज्जत्तया एव चेव।

[२८-२] गर्भज-अपर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

[३] पज्जत्तयाण एव चेव, नवर सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउक्काइयाण पज्जत्तगाण।

[२८-३] गभज-पर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के विषय मे भी इसी तरह जानना चाहिए। विशेष यह कि पर्याप्तक बादर वायुकायिकवत् उनको चार शरीर (प्रयोग परिणत) कहना चाहिए।

[४] एव जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया एव चउप्पद-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्प-खहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा।

[२८-४] जिस तरह जलचरो के चार आलापक कहे हैं, उसी प्रकार चतुष्पद, उर परिसप, भुजपरिसप एव खेचरो (के प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के भी चार-चार आलापक कहने चाहिए।

२९ [१] जे सम्मुच्छिममणुस्सपंचिदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया कम्मासरीर जाव परिणया।

[२९-१] जो पुद्गल सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तजस और कामण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं।

[२] एव गब्भवक्कतिया वि अपज्जत्तगा वि।

२४ एवं एतेणं अभिलावेणं दुएणं भेदेणं पिसाया य जाव गंधव्वा, चंदा जाव ताराविमाणा, सोहम्मकप्पोवगा जाव अच्चुओ, हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जकप्पातीत जाव उवरिमउवरिमगेविज्ज०, विजयअणुत्तरो० जाव अपराजिय० ।

[२४] इसी प्रकार इसी अभिलाप से पिशाचों से लेकर गन्धर्वों तक (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के प्रयोग परिणत पुद्गलों) के तथा चन्द्र से लेकर तारा पर्यन्त (पांच प्रकार के) ज्योतिष्क देवों के प्रयोग-परिणत-पुद्गलों) के एवं सौधर्मकल्पोपपन्नक से अच्युतकल्पोपपन्नक तक के और अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीत से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देव-प्रयोग-परिणत पुद्गलों के एवं विजय-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत से अपराजित-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गलों के प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो-दो भेद कहने चाहिए।

२५ सव्वट्ठसिद्धकप्पातीय० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो० अपज्जत्तगसव्वट्ठ जाव परिणया वि । २ दंडगा ।

[२५ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल के कितने प्रकार हैं ?

[२५ उ.] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतदेव-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत-देव-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

दूसरा दण्डक पूर्ण हुआ ।

तृतीय दण्डक

२६ जे अपज्जत्तासुहुमपुढवीकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय तेया-कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया, जे पज्जत्तासुहुम० जाव परिणया ते ओरालिय-तेया कम्मगसरीरप्पयोगपरिणया । एवं जाव चउरिंदिया पज्जत्ता । नवरं जे पज्जत्तगबादरवाउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय वेउव्विय-तेया-कम्मसरीर जाव परिणता । सेसं तं चेव ।

[२६] जो पुद्गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं । जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं, वे भी औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर प्रयोग-परिणत हैं ।

इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रियपर्याप्तक तक के (प्रयोग-परिणत पुद्गलों के विषय में) जानना चाहिए । परन्तु विशेष इतना है कि जो पुद्गल पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर प्रयोग परिणत हैं । (क्योंकि वायुकायिक में वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है ।) शेष सब पूर्वोक्त वक्तव्यतानुसार जानना चाहिए ।

२७ [१] जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्म-सरीरप्पयोगपरिणया। एव पज्जत्तया वि।

[२७-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वैक्रिय, तजस और कामण शरीर-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी-नरयिक-पचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

[२] एव जाव अहेसत्तमा।

[२७-२] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग परिणत-पुद्गला तक के सम्बन्ध मे कहना चाहिए।

२८ [१] जे अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलचर जाव परिणया ते ओरालिय तेया कम्मासरीर जाव परिणया। एव पज्जत्तगा वि।

[२८-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तजस और कार्मणशरीर-प्रयोग परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-जलचर-प्रयोग परिणत पुद्गलो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

[२] गब्भवक्कतिया अपज्जत्तया एव चेव।

[२८-२] गभज-अपर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

[३] पज्जत्तयाण एव चेव, नवर सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउक्काइयाण पज्जत्तगाण।

[२८-३] गभज-पर्याप्तक-जलचर-(प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के विषय मे भी इसी तरह जानना चाहिए। विशेष यह कि पर्याप्तक वादर वायुकायिकवत् उनको चार शरीर (प्रयोग-परिणत) कहना चाहिए।

[४] एव जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया एव चउप्पय-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्प-खहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा।

[२८-४] जिस तरह जलचरो के चार आलापक कहे है, उसी प्रकार चतुष्पद, उर परिसप, भुजपरिसप एव खेचरा (के प्रयोग-परिणत-पुद्गलो) के भी चार-चार आलापक कहने चाहिए।

२९ [१] जे सम्मुच्छिममणुस्सपंचिदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया कम्मासरीर जाव परिणया।

[२९-१] जो पुद्गल सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस और कार्मण-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं।

[२] एव गब्भवक्कतिया वि अपज्जत्तगा वि।

[२९-२] इसी प्रकार अपर्याप्तक-गर्भज-मनुष्य-(पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत-पुद्गलों) के विषय में भी कहना चाहिए।

[३] पज्जत्तगा वि एवं चेव, नवरं सरीरगाणि पंच भाणियव्वाणि।

[२९-३] पर्याप्तक गर्भज-मनुष्य-(पचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गलों) के विषय में भी (सामान्यतया) इसी तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनमें (औदारिक से लेकर कार्मण तक) पंचशरीर-(प्रयोग-परिणत पुद्गल) कहना चाहिए।

३० [१] जे अपज्जत्तगा असुरकुमारभवणवासि जहा नेरइया तहेव। एवं पज्जत्तगा वि।

[३०-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक असुरकुमार-भवनवासीदेव-प्रयोग-परिणत हैं, उनका आलापक नैरयिकों की तरह कहना चाहिए। पर्याप्तक-असुरकुमारदेव-प्रयोग परिणत पुद्गलों के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

[२] एवं दुयएणं भेदेणं जाव थणियकुमारा।

[३०-२] इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनों में कहना चाहिए।

३१ एवं पिसाया जाव गंधव्वा, चंदा जाव ताराविमाणा, सोहम्मो कप्पो जाव अच्चुओ, हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्ज जाव उवरिमउवरिमगेवेज्ज०, विजय-अणुत्तरोववाइए जाव सव्वट्ठसिद्धअणु०, एक्केक्केणं दुयओ भेदो भाणियव्वो जाव जे पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइया जाव परिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरपयोगपरिणया। दंडगा ३।

[३१] इसी तरह पिशाच से लेकर गन्धर्व तक वाणव्यन्तर-देव, चन्द्र से लेकर ताराविमान पर्यन्त ज्योतिष्क देव और सौधर्मकल्प से लेकर अच्युतकल्प पर्यन्त तथा अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक-कल्पातीत-देव से लेकर उपरितन उपरितन ग्रैवेयक-कल्पातीत-देव तक एवं विजय अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत-देव से लेकर सर्वार्थसिद्ध-कल्पातीत-वैमानिक-देवों तक पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों भेदों में वैक्रिय, तैजस और कार्मण-शरीर प्रयोग-परिणत पुद्गल कहने चाहिए। (दंडक तीसरा)

चतुर्थ दण्डक

३२ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणता ते फासिंदियपयोगपरिणया।

[३२-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइया०, एवं चेव।

[३२-२] जो पुद्गल पर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं।

[३] जे अपज्जत्ताबादरपुढविक्काइया० एवं चेव।

[३२-३] जो अपर्याप्त-बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल हैं, वे भी इसी प्रकार समझने चाहिए।

[४] एवं पज्जत्तगा वि।

[३२-४] पर्याप्तक-बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग परिणत पुद्गल भी इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत समझने चाहिए।

[५] एवं चउक्कएणं भेदेणं जाव वणस्सइकाइया।

[३२-५] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त-प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक इन चार-चार भेदों में स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कहने चाहिए।

३३ [१] जे अपज्जत्ताबेइंदियपयोगपरिणया ते जिब्भिंदिय-फासिंदियपयोगपरिणया।

[३३-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-द्वीन्द्रिय-प्रयोग परिणत हैं, वे जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं।

[२] जे पज्जत्ताबेइंदिया एवं चेव।

[३३-२] इसी प्रकार पर्याप्तक-द्वीन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल भी जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत है।

[३] एवं जाव चउरिंदिया, नवरं एक्केक्कं इंदियं वड्ढेयव्वं।

[३३-३] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक (पर्याप्तक और अपर्याप्त दोनों में) कहना चाहिए। किन्तु एक-एक इन्द्रिय बढानी चाहिए। (अर्थात्—त्रीन्द्रिय-प्रयोगपरिणत पुद्गल स्पर्श-जिह्वा-घ्राणेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं और चतुरिन्द्रिय-प्रयोगपरिणत पुद्गल स्पर्श जिह्वा घ्राण-चक्षुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं।

३४ [१] जे अपज्जत्तारयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय फासिंदियपयोगपरिणया।

[३४-१] जो पुद्गल अपर्याप्त रत्नप्रभा (आदि) पृथ्वी नरयिक-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय प्रयोगपरिणत हैं।

[२] एवं पज्जत्तगा वि।

[३४-२] इसी प्रकार पर्याप्तक (रत्नप्रभादिपृथ्वी नरयिक-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल के विषय में भी पूर्ववत् (पंचेन्द्रिय-प्रयोग परिणत) कहना चाहिए।

३५ एवं सव्वे भाणियव्वा तिरिक्खजोणिय मणुस्स देवा, जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणया ते सोइंदिय चक्खिंदिय जाव परिणया। दण्डगा ४।

[३५] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव, इन सबके विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पतीतदेव-प्रयोग-परिणत हैं, वे सब श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं। (दडक चौथा)

पचम दण्डक

३६ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदयओरालिय-तेय-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया। जे पज्जत्तासुहुम० एव चेव।

[३६-१] जो पुद्गल अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे स्पर्शेन्द्रियप्रयोगपरिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर-प्रयोग-परिणत है, वे भी स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग-परिणत है।

[२] बादर० अपज्जत्ता एव एव चेव। पज्जत्तगा वि।

[३६-२] अपर्याप्त-बादरकायिक एव पर्याप्तबादर पृथ्वीकायिक औदारिकादि शरीरत्रय-प्रयोगपरिणत-पुद्गल के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

३७ एव एएण अभिलावेण जस्स जति इंदियाणि सरीराणि य ताणि भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिदिय-वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरपयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया। दडगा ५।

[३७] इसी प्रकार इस अभिलाप के द्वारा जिस जीव के जितनी इन्द्रिया और शरीर हो, उसके उतनी इन्द्रियो तथा उतने शरीरो का कथन करना चाहिए। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक- कल्पातीतदेव-पचेन्द्रिय-वक्रिय-तैजस-कामणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत हैं। (दडक पाचवा)

छठा दण्डक

३८ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते वण्णतो कालवण्णपरिणया वि, नील०, लोहिय०, हालिद्द०, सुक्किल०। गधतो सुब्भिगधपरिणया वि, दुब्भिगधपरिणया वि। रसता तित्तरसपरिणया वि, कडुयरसपरिणया वि, कसायरसप०, अबिलरसप०, महुररसप०। फासतो कक्खडफासपरि० जाव लुक्खफासपरि०। सठाणतो परिमडलसठाणपरिणया वि वट्ट० तस० चउरस० आयतसठाणपरिणया वि।

[३८ १] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, रक्तवर्ण, पीत (हारिद्र) वर्ण एव श्वेतवर्ण रूप से परिणत हैं, गन्ध से सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध रूप से परिणत है, रस से तीखे कटु, काषाय (कसले), खट्ट और मीठे इन पाचो रस-रूप मे परिणत है, स्पर्श से कर्कशस्पर्श यावत् रूक्षस्पर्श के रूप मे परिणत हैं और सस्थान से परि-मण्डल, वृत्त, त्र्यस (तिकोन), चतुरस्र (चौकोर) और आयत, इन पाचो सस्थानो के रूप मे परिणत हैं।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[३८ २] जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-प्रयोग परिणत है, उन्हे भी इसी प्रकार वर्ण गन्ध-रस-स्पर्श-सस्थानरूप मे परिणत जानना चाहिए ।

३९ एव जहाऽऽणुपुव्वीए नेयव्व जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि । दडगा ६ ।

[३९] इसी प्रकार क्रमश सभी (पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट जीवो के प्रयोग परिणत पुद्गलो) के विषय मे जानना चाहिए । यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक-देव पचेन्द्रिय वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीरप्रयोग परिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण रूप मे यावत् सस्थान से आयत सस्थान तक परिणत है । (दण्डक छठा)

सप्तम दण्डक

४० [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढवि० एगिदियओरालिय-तेया कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरि० जाव आययसठाणपरि० वि ।

[४० १] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय औदारिक-तैजस-कार्मण-शरीर प्रयोग परिणत है, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे भी परिणत हैं, यावत् आयत-सस्थान-रूप मे भी परिणत हैं ।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[४०-२] इसी प्रकार पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-प्रयोग-परिणत हैं, वे भी इसी तरह वर्णादि-परिणत है ।

४१ एव जहाऽऽणुपुव्वीए नेयव्व जस्स जति सरीराणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो-ववाइयदेवपचिदियवेउव्विय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि । दडगा ७ ।

[४१] इसी प्रकार यथानुक्रम स (सभी जीवो के विषय मे) जानना चाहिए । जिसके जितने शरीर हो, उतने कहने चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिकदेव पचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कार्मण-शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे, यावत् सस्थान से आयत-सस्थानरूप मे परिणत है । (दण्डक सातवा)

अष्टम दण्डक

४२ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिदियफासिदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्ण-परिणया जाव आययसठाणपरिणया वि ।

[४२-१] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे परिणत हैं यावत् सस्थान मे आयत-सस्थान के रूप मे परिणत हैं ।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[४२-२] जो पुद्गल पर्याप्तक सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत हैं, वे भी इसी प्रकार जानने चाहिए ।

४३ एव जहाऽऽणुपुव्वीए जस्स जति इदियाणि तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठसिद्धअणुत्तर जाव देवपचिदियसोइदिय जाव फासिदियपयोगपरिणया वि ते वण्णओ कालवण्ण परिणया जाव आययसठाणपरिणया वि । दडगा ८ ।

[४३] इसी प्रकार अनुक्रम से आलापक कहने चाहिए । विशेष यह कि जिसके जितनी इन्द्रिया हो उतनी कहनी चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिकदेव पचेन्द्रिय-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे, यावत् सस्थान से आयत सस्थान के रूप मे परिणत हैं । (दण्डक आठवा)

नौवां दण्डक

४४ [१] जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिदियओरालिय-तेया-कम्मासरीरफासिदियपयोग परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणप० वि ।

[४४ १] जो पुद्गल अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे भी परिणत है, यावत सस्थान से आयत सस्थान के रूप मे परिणत हैं ।

[२] जे पज्जत्तासुहुमपुढवि० एव चेव ।

[४४-२] जो पुद्गल पर्याप्तक-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं, वे भी इसी तरह (पूर्ववत्) जानने चाहिए ।

४५ एव जहाऽऽणुपुव्वीए जस्स जति सरीराणि इदियाणि य तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइया जाव देवपचिदिय-वेउव्विय तेया कम्मासोइदिय जाव फासिदिय-पयोगपरि० ते वण्णओ कालवण्णपरि० जाव आययसठाणपरिणया वि । एव एए नव दडगा ९ ।

[४५] इसी प्रकार अनुक्रम से सभी आलापक कहने चाहिए । विशेषतया जिसके जितने शरीर और इन्द्रिया हों, उसके उतने शरीर और उतनी इन्द्रियो का कथन करना चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिकदेव-पचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस कार्मणशरीर तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत स्पर्शेन्द्रिय-प्रयोगपरिणत हैं वे वर्ण से काले वर्ण के रूप मे यावत् सस्थान से आयत सस्थान के रूपो मे परिणत हैं । (दण्डक नौवा)

इस प्रकार ये नौ दण्डक पूर्ण हुए ।

विवेचन—नौ दण्डकों द्वारा प्रयोग-परिणतपुद्गलों का निरूपण—प्रस्तुत ४२ सूत्रों (सू ४ से ४५ तक) नौ दण्डको की दृष्टि से प्रयोग-परिणतपुद्गलो का निरूपण किया गया है ।

विवक्षाविशेष से नौ दण्डक (विभाग)—प्रयोगपरिणतपुद्गलो को विभिन्न पहलुओ से समझाने के लिए शास्त्रकार ने नौ दण्डको द्वारा निरूपण किया है। प्रथम दण्डक मे सूक्ष्म एकेन्द्रिय से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवो तक जीवो की विशेषता से प्रयोगपरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेदो का कथन है। (२) द्वितीय दण्डक मे उन्ही जीवो मे से एकेन्द्रिय जीवो के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ये दो-दो भेद करके फिर इन सूक्ष्म और बादर के तथा आगे के सब जीवो (यानी सूक्ष्मपृथ्वीकायिक से लेकर सर्वार्थसिद्धदेवो तक) के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो दो भेद (अपर्याप्तक भेद वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य को छोडकर) प्रयोग परिणतपुदगलो के किए गए हैं। (३) तृतीय दण्डक मे पूर्वोक्त विशेषणयुक्त पृथ्वीकायिक से लेकर सर्वार्थसिद्धपर्यन्त सभी जीवो के औदारिक आदि पाच मे से यथायोग्य शरीरो की अपेक्षा से प्रयोगपरिणतपुद्गलो का कथन किया गया है। (४) चतुर्थ दण्डक मे पूर्वोक्त शरीरादि विशेषणयुक्त एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय सर्वार्थसिद्ध जीवो तक के यथायोग्य इन्द्रियो की अपेक्षा से प्रयोगपरिणतपुद्गलो का कथन किया गया है। (५) पचम दण्डक मे औदारिक आदि पाच शरीर और स्पर्शन आदि पाच इन्द्रियो की सम्मिलित विवक्षा से समस्त जीवो के यथायोग्य प्रयोग-परिणतपुद्गलो का कथन है। (६) छठे दण्डक मे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से पूर्वोक्त समस्त विशेषणयुक्त सब जीवो के प्रयोग परिणतपुद्गलो का कथन है। (७) सप्तम दण्डक मे औदारिक आदि शरीर और वर्णादि की अपेक्षा से पुद्गलो का कथन है। (८) अष्टम दण्डक मे इन्द्रिय और वर्णादि की अपेक्षा से पुद्गलो का कथन है और (९) नवम दण्डक मे शरीर, इन्द्रिय और वर्णादि की अपेक्षा से जीवो के प्रयोग परिणतपुद्गलो का कथन किया गया है।

द्वीन्द्रियादि जीवों की अनेकविधता—मूलपाठ मे कहा गया है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के हैं, जैसे कि द्वीन्द्रिय मे लट, गिंडोला, अलसिया, शख, सीप, कौडी, कृमि आदि अनेक प्रकार के जीव हैं, त्रीन्द्रिय मे जू, लीख, चीचड, माकण (खटमल), चींटी, मकोडा आदि अनेक प्रकार के जीव हैं और चतुरिन्द्रिय मे मक्खी, मच्छर, भौंरा, भ गारी आदि अनेकविध जीव हैं, उनको बताने हेतु ही यहाँ अनेकविधता का कथन किया गया है।

पचेन्द्रिय जीवों के भेद प्रभेद—मुख्यतया इनके चार भेद हैं—नरयिक, तिर्यच, मनुष्य और देव। विवेक्षा से इनके अनेक अवान्तर भेद हैं।[1]

कठिन शब्दों के विशेष अर्थ—सम्मुच्छिम=सम्मूर्च्छिम—माता-पिता के सयोग के बिना उत्पन्न होने वाले तिर्यच और मनुष्य। गब्भवक्कतिया=गर्भव्युत्क्रान्तिक—गर्भ से उत्पन्न होने वाले। परिसप्पा=परिसर्प—रेंग कर चलने वाले जीव। उरपरिसप्प=उर परिसर्प—पेट से रेंग कर चलने वाले जीव। भुयपरिसप्प=भुजपरिसर्प—भुजा के सहारे रेंगकर चलने वाले। थलयर=स्थलचर—भूमि पर चलने वाले जीव। खहयरा=खेचर—(आकाश मे) उडने वाले पक्षी। अभिलावेण=अभिलाप—पाठ से। गेवेज्जग=ग्रैवेयक देव। कप्पोवगा=कल्पोपपन्नक देव=जहाँ इन्द्रादि अधिकारी और उनके अधीनस्थ छोटे-बडे आदि का व्यवहार है। कप्पातीत=कल्पातीत—जहाँ अधिकारी-अधीनस्थ जैसा कोई भेद नही है, सभी स्वतन्त्र एव अहमिन्द्र हैं। अणुत्तरोववाइय=अनुत्तरौपपातिक—सर्वोत्तम

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३१-३३२

देवलोक मे उत्पन्न हुए देव । ओरालिय = औदारिक शरीर । तेया = तैजस शरीर । वेउव्विय = वैक्रिय शरीर । कम्मग = कार्मण शरीर । वट्ट = वृत्त—गोल । तंस = त्र्यस्र-त्रिकोण । चउरंस = चतुरस्र-चौकोर (चतुष्कोण) । तित्तरस = तिक्त—तीखा रस । अंबिल = आम्ल—खट्टा । कसाय = कसैला । जहाणुपुव्वीए = यथाक्रम से ।[1]

मिश्रपरिणत-पुद्गलो का नौ दण्डको द्वारा निरूपण

४६ मीसापरिणया ण भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, त जहा—एगिंदियमीसापरिणया जाव पंचिंदियमीसापरिणया ।

[४६ प्र] भगवन् ! मिश्रपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[४६ उ] गौतम ! वे पाच प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—एकेन्द्रिय मिश्रपरिणत पुद्गल यावत् पचेन्द्रिय मिश्रपरिणत पुद्गल ।

४७ एगिंदियमीसापरिणया ण भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एव जहा पओगपरिणएहिं नव दंडगा भणिया एव मीसापरिणएहिं वि नव दंडगा भाणियव्वा, तहेव सव्व निरवसेस, नवर अभिलावो 'मीसापरिणया' भाणियव्व, सेस त चेव, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो जाव० आययसंठाणपरिणया वि ।

[४७ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय मिश्रपुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[४७ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रयोगपरिणत पुद्गलो के विषय मे भी नौ दण्डक कहे गए हैं, उसी प्रकार मिश्र-परिणत पुद्गलो के विषय मे भी नौ दण्डक कहने चाहिए और सारा वर्णन उसी प्रकार करना चाहिए । विशेषता यह है कि प्रयोग परिणत के स्थान पर मिश्र-परिणत कहना चाहिए । शेष समस्त वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए, यावत् जो पुद्गल पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक हैं, वे यावत् आयत संस्थानरूप से भी परिणत हैं ।

विवेचन—मिश्रपरिणत पुद्गलो का नौ दण्डकों द्वारा निरूपण—प्रस्तुत सूत्रद्वय (सू ४६-४७) में प्रयोगपरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेद की तरह मिश्रपरिणत पुद्गलो के भी भेद-प्रभेद का अतिदेश पूर्वक निरूपण किया गया है ।

विस्रसापरिणत पुद्गलो के भेद-प्रभेदो का निर्देश

४८ वीससापरिणया ण भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, त जहा—वण्णपरिणया गंधपरिणया रसपरिणया फासपरिणया संठाणपरिणया । जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—कालवण्णपरिणया जाव सुक्किल्लवण्णपरिणया । जे गंधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सुब्भिगंधपरिणया वि, दुब्भिगंधपरिणया वि ।

---

१ (क) भगवतीसूत्र (गुजराती अनुवादयुक्त) खण्ड-३, पृ ४२ से ४६ तक

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचनयुक्त) भाग-३, पृ १२३६ से १२५२ तक

एव जहा पण्णवणाए[1] तहेव निरवसेस जाव जे सठाणओ आयतसठाणपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव लुक्खफासपरिणया वि।

[४८ प्र.] भगवन्! विस्रसा-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं?

[४८ उ.] गौतम! पाच प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—वर्णपरिणत, गन्ध-परिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और सस्थानपरिणत। जो पुद्गल वर्ण-परिणत हैं, वे पाच प्रकार के कहे गए है, यथा—कृष्ण-वर्ण के रूप मे परिणत यावत् शुक्ल वर्ण के रूप मे परिणत पुद्गल। जो गन्ध-परिणत-पुद्गल हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सुरभिगन्ध-परिणत और दुरभिगन्ध परिणत-पुद्गल। इस प्रकार आगे का सारा वर्णन जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र (के प्रथम पद) मे किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए, यावत् जो पुद्गल सस्थान से आयत-सस्थान-परिणत हैं, वे वर्ण से कृष्ण-वर्ण के रूप मे भी परिणत हैं, यावत् (स्पर्श से) रूक्ष-स्पर्शरूप मे भी परिणत है।

विवेचन—विस्रसापरिणत पुद्गलों के भेद-प्रभेदो का निर्देश—प्रस्तुत सूत्र मे विस्रसापरिणत (स्वभाव से परिणाम को प्राप्त) पुद्गलो का वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से तथा इन वर्णादि के परस्पर मिश्र होने पर विकल्प की विवक्षा से प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश-पूर्वक अनेक भेद-प्रभेदो का निर्देश किया गया है।[2]

मन-वचन-काया की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से प्रयोग-मिश्र-विस्रसा से एक द्रव्य के परिणमन की प्ररूपणा

४९. एगे भंते! दव्वे किं पयोगपरिणए? मीसापरिणए? वीससापरिणए?

गोयमा! पयोगपरिणए वा, मीसापरिणए वा, वीससापरिणए वा।

[४९ प्र.] भगवन्! एक द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होता है, मिश्रपरिणत होता है अथवा विस्रसापरिणत होता है?

[४९ उ.] गौतम! एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, अथवा मिश्रपरिणत होता है, अथवा विस्रसापरिणत भी होता है।

५०. जदि पयोगपरिणए किं मणप्पयोगपरिणए? वइप्पयोगपरिणए? कायप्पयोगपरिणए?

गोयमा! मणप्पयोगपरिणए वा, वइप्पयोगपरिणए वा, कायप्पयोगपरिणए वा।

[५० प्र.] भगवन्! यदि एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह मन प्रयोगपरिणत होता है, वचन-प्रयोग परिणत होता है, अथवा काय-प्रयोगपरिणत होता है?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रथमपद सूत्र १० [१-२] (महा. विद्या.)
२ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. १ पृ. ३२६
(ख) प्रज्ञापनासूत्र, प्रथमपद, सूत्र १० [१-२]

[५० उ] गौतम ! वह मन प्रयोगपरिणत होता है, या वचन प्रयोग-परिणित होता है, अथवा काय-प्रयोगपरिणत होता है।

५१ जदि मणप्पओगपरिणए किं सच्चमणप्पओगपरिणए ? मोसमणप्पयोग० ? सच्चामोसमणप्पयो० ? असच्चामोसमणप्पयो० ?

गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणए वा, मोसमणप्पयोग० वा, सच्चामोसमणप्प०, असच्चामोसमणप्प० वा।

[५१ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मन प्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह सत्यमन प्रयोग परिणत होता है, अथवा मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या सत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या असत्या-अमृषामन प्रयोगपरिणत होता है ?

[५१ उ] गौतम ! वह सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या सत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत होता है या फिर असत्य अमृषामन प्रयोग परिणत होता है।

५२ जदि सच्चमणप्पओगप० किं आरंभसच्चमणप्पयो० ? अणारंभसच्चमणप्पयोगपरि० ? सारंभसच्चमणप्पयोग० ? असारंभसच्चमण० ? समारंभसच्चमणप्पयोगपरि० ? असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए ?

गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए वा जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए वा।

[५२ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह आरम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, अनारम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, सारम्भ सत्यमन प्रयोग परिणत होता है, असारम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणित होता है, समारम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है अथवा असारम्भ सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है ?

[५२ उ] गौतम ! वह आरम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् असमारम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है।

५३ [१] जदि मोसमणप्पयोगपरिणए किं आरंभमोसमणप्पयोगपरिणए वा० ?

एवं जहा सच्चेणं तहा मोसेण वि।

[५३-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह आरम्भ मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् असमारम्भ-मृषामन प्रयोगपरिणत होता है।

[५३-१ उ] गौतम ! जिस प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) सत्यमन प्रयोगपरिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) मृषामन प्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना चाहिए।

[२] एवं सच्चामोसमणप्पयोगपरिणए वि। एवं असच्चामोसमणप्पयोगेण वि।

[५३-२] इसी प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) सत्य-मृषामन प्रयोगपरिणत के विषय में भी तथा इसी प्रकार असत्य-अमृषामन प्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना चाहिए।

५४ जदि वइप्पयोगपरिणए किं सच्चवइप्पयोगपरिणए मोसवयप्पयोगपरिणए ?

एवं जहा मणप्पयोगपरिणए तहा वयप्पयोगपरिणए वि जाव असमारंभवयप्पयोगपरिणए वा।

[५४ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य वचनप्रयोगपरिणत होता है तो, क्या वह सत्य-वचन-प्रयोगपरिणत होता है, मृषा-वचनप्रयोगपरिणत होता है, सत्य-मृषा-वचनप्रयोगपरिणत होता है अथवा असत्य-अमृषा-वचनप्रयोगपरिणत होता है ?

[५४-उ] गौतम ! जिस प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणो से युक्त) मन प्रयोगपरिणत के विषय मे कहा है, उसी प्रकार (पूर्वोक्त-सर्व-विशेषणयुक्त) वचन प्रयोगपरिणत के विषय मे भी वह असमारम्भ वचन-प्रयोगपरिणत भी होता है तक कहना चाहिए।

५५ जदि कायप्पयोगपरिणए किं ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए १ ? ओरालियमीसासरीरकायप्पयो० २ ? वेउव्वियसरीरकायप्प० ३ ? वेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ४ ? आहारगसरीरकायप्पओगपरिणए ५ ? आहारकमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ६ ! कम्मासरीरकायप्पओगपरिणए ७ ?

गोयमा ! ओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए वा जाव कम्मासरीरकायप्पओगपरिणए वा ।

[५५-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह औदारिक-शरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, आहारकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, आहारकमिश्र-कायप्रयोगपरिणत होता है अथवा कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[५५-उ] गौतम ! वह एक द्रव्य औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् वह कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है।

५६ जदि ओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं एगिदियओरालियसरीरकायप्प ओगपरिणए एवं जाव पंचिदियओरालिय जाव परि० ।

गोयमा ! एगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए वा बेंदिय जाव परिणए वा जाव पंचिदिय जाव परिणए वा ।

[५६-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य औदारिकशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, या द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[५६-उ] गौतम ! वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, या द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है अथवा यावत् पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है।

५७ जदि एगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं पुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए वा ?

गोयमा ! पुढविक्काइयएगिंदिय जाव पयोगपरिणए वा जाव वणस्सइकाइयएगिंदिय जाव परिणए वा।

[५७-प्र] भगवन् ! जो एक द्रव्य शरीर एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-काय-प्रयोग परिणत होता है, अथवा यावत् वह वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है।

[५७-उ] हे गौतम ! वह पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

५८ जदि पुढविकाइयएगिंदियओरालियसरीर जाव परिणए किं सुहुमपुढविकाइय जाव परिणए ? बादरपुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ?

गोयमा ! सुहुमपुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए वा, बादरपुढविक्काइय जाव परिणए वा।

[५८-प्र] भगवन् ! यदि वह एक द्रव्य पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा बादरपृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयागपरिणत होता है।

[५८-उ] गौतम ! वह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है अथवा बादर-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत होता है।

५९ [१] जदि सुहुमपुढविकाइय जाव परिणए किं, पज्जत्तसुहुमपुढवि जाव परिणए ? अपज्जत्तसुहुमपुढवी जाव परिणए ?

गोयमा ! पज्जत्तसुहुमपुढविकाइय जाव परिणए वा, अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइय जाव परिणए वा।

[५९-१ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[५९-१ उ] गौतम ! वह पर्याप्त सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर कायप्रयोग-परिणत भी होता है, या वह अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत भी होता है।

[२] एव बादरा वि।

[५९-२] इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक (एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत एक द्रव्य) के विषय में भी (पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रकार) समझ लेना चाहिए।

[३] एवं जाव वणस्सइकाइयाणं चउक्कओ भेदो।

[५९-३] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक सभी के चार-चार भेद (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त) के विषय में (पूर्ववत्) कथन करना चाहिए।

६०. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दुयओ भेदो—पज्जत्तगा य, अपज्जत्तगा य।

[६०] (किन्तु) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के दो-दो भेद—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (एक द्रव्य से सम्बन्धित औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत के विषय में) कहना चाहिए।

६१. जदि पंचिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए ? मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ?

गोयमा ! तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा, मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए वा।

[६१-प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६१ उ] गौतम ! या तो वह तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा वह मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है।

६२. जइ तिरिक्खजोणिय जाव परिणए किं जलचरतिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा ? थलचर० ? खहचर० ?

एवं चउक्कओ भेदो जाव खहचराणं।

[६२ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है तो क्या वह जलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, स्थलचर-तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा खेचर-तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६२ उ] गौतम ! वह जलचर, स्थलचर और खेचर, तीनों प्रकार के तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोग से परिणत होता है, अतः खेचरों तक पूर्ववत् प्रत्येक के चार-चार भेदों (सम्मूर्च्छिम, गर्भज, पर्याप्तक और अपर्याप्तक के औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत) के विषय में कहना चाहिए।

६३. जदि मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए किं सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ? गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए ?

गोयमा ! दोसु वि।

[६३ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनुष्य-पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह सम्मूर्च्छिममनुष्य पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६३ उ] गौतम ! वह दोनों प्रकार के (सम्मूच्छिम अथवा गर्भज) मनुष्यों के औदारिक-शरीर-कायप्रयोग से परिणत होता है।

६४ जदि गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए किं पज्जत्तगब्भवक्कंतिय जाव परिणए ? अपज्जत्तगब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए ?

गोयमा ! पज्जत्तगब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा, अपज्जत्तगब्भवक्कंतिय जाव परिणए ।१।

[६४ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर कायप्रयोग परिणत होता है तो क्या वह पर्याप्त-गर्भजमनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६४ उ] गौतम ! वह पर्याप्त गर्भजमनुष्य पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-गर्भजमनुष्यपंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है।

६५ जदि ओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए किं एगिंदियओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए ? बेइंदिय जाव परिणए जाव पंचेंदियओरालिय जाव परिणए ?

गोयमा ! एगिंदियओरालिय एवं जहा ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणएणं आलावगो भणिओ तहा ओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो, नवरं बायरवाउक्काइय गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणिय गब्भवक्कंतियमणुस्साण य एएसि णं पज्जत्तापज्जत्तगाणं, सेसाणं अपज्जत्तगाणं ।२।

[६५ प्र] यदि एक द्रव्य, औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, द्वीन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-मिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६५ उ] गौतम ! वह एकेन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा द्वीन्द्रिय-औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिकमिश्र शरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है। जिस प्रकार पहले औदारिकशरीर-कायप्रयोगपरिणत के आलापक कहे हैं, उसी प्रकार औदारिकमिश्र-कायप्रयोगपरिणत के भी आलापक कहने चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादरवायुकायिक, गर्भज पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक और गर्भज मनुष्यों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में और शेष सभी जीवों के अपर्याप्तक के विषय में कहना चाहिए।

६६ जदि वेउव्वियसरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदियवेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए जाव पंचिंदियवेउव्वियसरीर जाव परिणए ?

गोयमा ! एगिंदिय जाव परिणए वा पंचिंदिय जाव परिणए ।

[६६ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है तो क्या वह एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोग-परिणत होता है ?

[६६ उ.] गौतम ! वह एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है।

६७ जइ एगिदिय जाव परिणए किं वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ? अवाउक्काइय-एगिंदिय जाव परिणते ?

गोयमा ! वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए, नो अवाउक्काइय जाव परिणते। एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे[1] वेउव्वियसरीरं भणियं तहा इह वि भाणियव्वं जाव पज्जत्तसव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरोववातियकप्पातीयवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए वा, अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध जाव कायप्पयोगपरिणए वा। ३।

[६७ प्र.] भगवन् ! यदि वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अवायुकायिक (वायुकायिक जीवों के अतिरिक्त) एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६७ उ.] गौतम ! वह एक द्रव्य वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, किन्तु अवायुकायिक-एकेन्द्रिय वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत नहीं होता। (क्योंकि वायु-काय के सिवाय अन्य किसी एकेन्द्रिय में वैक्रियशरीर नहीं होता।) इसी प्रकार इस अभिलाप के द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के 'अवगाहना संस्थान' नामक इक्कीसवें पद में वैक्रियशरीर (-कायप्रयोगपरिणत) के विषय में जैसा कहा है, (उसी के अनुसार) यहाँ भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा वह अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है पर्यन्त कहना चाहिये।

६८ जदि वेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए वा जाव पंचिंदियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ?

एवं जहा वेउव्वियं तहा मीसगं पि, नवरं देव नेरइयाणं अपज्जत्ताणं, सेसाणं पज्जत्तगाणं तहेव, जाव नो पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो जाव प०, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातियदेवपंचिंदिय-वेउव्वियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए। ४।

[६८ प्र.] भगवन् ! यदि एक द्रव्य वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है ?

[६८ उ.] गौतम ! जिस प्रकार वैक्रियशरीर-कायप्रयोगपरिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोग देवों और नैरयिकों के अपर्याप्त के विषय में कहना चाहिए। शेष

1. प्रज्ञापनासूत्र पद २१—अवगाहनासंस्थान पृ. ३२६ से ३४९ तक, सू. १४७४-१५६२ (म. वि.)

सभी पर्याप्त जीवों के विषय में कहना चाहिए, यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव पंचेन्द्रिय-वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत नहीं होता, किन्तु अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय वैक्रियमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, (यहाँ तक कहना चाहिए)।

६९ जदि आहारगसरीरकायप्पओगपरिणए किं मणुस्साहारगसरीरकायप्पओगपरिणए? अमणुस्साहारग जाव प०?

एवं जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्डिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउय जाव परिणए, नो, अणिड्डिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउय जाव प०। ५।

[६९ प्र] भगवन्! यदि एक द्रव्य आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह मनुष्याहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अमनुष्य-आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है?

[६९ उ] गौतम! इस सम्बन्ध में जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के अवगाहनासंस्थान नामक (इक्कीसवें) पद में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क मनुष्य-आहारकशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, किन्तु अनृद्धि प्राप्त (आहारकलब्धि को अप्राप्त)-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्य मनुष्याहारक शरीर-कायप्रयोगपरिणत नहीं होता तक कहना चाहिये।

७० जदि आहारगमीसासरीरकायप्पयोग० किं मणुस्साहारगमीसासरीर०?

एवं जहा आहारगं तहेव मीसगं पि निरवसेसं भाणियव्वं। ६।

[७० प्र] भगवन्! यदि एक द्रव्य आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह मनुष्याहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारकशरीर-काय प्रयोगपरिणत होता है?

[७० उ] गौतम! जिस प्रकार आहारकशरीरकायप्रयोग-परिणत (एक द्रव्य) के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगपरिणत के विषय में भी कहना चाहिए।

७१ जदि कम्मासरीरकायप्पओगप० किं एगिंदियकम्मासरीरकायप्पओग० जाव पंचिंदिय-कम्मासरीर जाव प०?

गोयमा! एगिंदियकम्मासरीरकायप्पओ० एवं जहा ओगाहणसंठाणे कम्मगस्स भेदो तहेव इहावि जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदियकम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए वा, अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्धअणु० जाव परिणए वा। ७।

[७१ प्र] भगवन्! यदि एक द्रव्य कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, तो क्या वह एकेन्द्रिय-कार्मणशरीर कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोग-परिणत होता है?

[७१ उ.] हे गौतम ! वह एकेन्द्रिय कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, इस सम्बन्ध में जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के (इक्कीसवें) अवगाहना संस्थानपद में कार्मण के भेद कहे गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायप्रयोगपरिणत होता है (तक भेद कहना चाहिए)।

७२. जइ मीसापरिणए किं मणमीसापरिणए ? वयमीसापरिणए ? कायमीसापरिणए ?

गोयमा ! मणमीसापरिणए वा, वयमीसापरिणते वा, कायमीसापरिणए वा।

[७२ प्र.] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है, तो क्या वह मनोमिश्रपरिणत होता है, या वचनमिश्रपरिणत होता है, अथवा कायमिश्रपरिणत होता है ?

[७२ उ.] गौतम ! वह मनोमिश्रपरिणत भी होता है, वचनमिश्रपरिणत भी होता है, कायमिश्र-परिणत भी होता है।

७३. जदि मणमीसापरिणए किं सच्चमणमीसापरिणए ? मोसमणमीसापरिणए ?

जहा पओगपरिणए तहा मीसापरिणए वि भाणियव्वं निरवसेसं जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिंदियकम्मासरीरगमीसापरिणए वा, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणु० जाव कम्मासरीरमीसापरिणए वा।

[७३ प्र.] भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनोमिश्रपरिणत होता है, तो क्या वह सत्यमनोमिश्र-परिणत होता है, मृषामनोमिश्रपरिणत होता है, सत्य-मृषामनोमिश्रपरिणित होता है, अथवा असत्य अमृषामनोमिश्रपरिणत होता है ?

[७३ उ.] गौतम ! जिस प्रकार प्रयोगपरिणत एक द्रव्य के सम्बन्ध में कहा गया है, उसी प्रकार मिश्रपरिणत एक द्रव्य के विषय में भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत-वैमानिकदेव पचेन्द्रिय-कार्मणशरीर-कायमिश्रपरिणत होता है, अथवा अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौप-पातिक-कल्पातीत वैमानिकदेव पचेन्द्रियकार्मणशरीर-कायमिश्रपरिणत होता है तक कहना चाहिए।

७४. जदि वीससापरिणए किं वण्णपरिणए गंधपरिणए रसपरिणए फासपरिणए संठाणपरिणए ?

गोयमा ! वण्णपरिणए वा गंधपरिणए वा रसपरिणए वा फासपरिणए वा संठाणपरिणए वा।

[७४ प्र.] भगवन् ! यदि एक द्रव्य विस्रसा (स्वभाव से) परिणत होता है तो क्या वह वर्णपरिणत होता है, गन्धपरिणत होता है, रसपरिणत होता है, स्पर्शपरिणत होता है अथवा संस्थान-परिणत होता है ?

[७४ उ.] गौतम ! वह वर्णपरिणत होता है, या गन्धपरिणत होता है, अथवा रसपरिणत होता है, या स्पर्शपरिणत होता है, या संस्थानपरिणत होता है।

७५ जदि वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए नील जाव सुक्किलवण्णपरिणए ?

गोयमा ! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किलवण्णपरिणए वा ।

[७५ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य वर्णपरिणत होता है तो क्या वह कृष्णवर्ण के रूप म परिणत होता है, अथवा नीलवण के रूप मे अथवा यावत् शुक्लवण के रूप मे परिणत होता है ?

[७५ उ] गौतम ! वह कृष्ण वण के रूप मे भी परिणत होता है, यावत् शुक्लवर्ण के रूप मे भी परिणत होता है ।

७६ जदि गधपरिणए किं सुब्भिगधपरिणए, दुब्भिगधपरिणए ?

गोयमा ! सुब्भिगधपरिणए वा, दुब्भिगधपरिणए वा ।

[७६ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य गन्धपरिणत होता है तो वह सुरभिगन्ध रूप मे परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्धरूप मे परिणत होता है ?

[७६ उ] गौतम ! वह सुरभिगन्धरूप मे भी परिणत होता है, अथवा दुरभिगन्धरूप मे भी परिणत होता है ।

७७ जइ रसपरिणए किं तित्तरसपरिणए ५ पुच्छा ?

गोयमा ! तित्तरसपरिणए वा जाव महुररसपरिणए वा ।

[७७ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य रसरूप मे परिणत होता है, तो क्या वह तीखे (चरपरे) रस के रूप मे परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप मे परिणत होता है ?

[७७ उ] गौतम ! वह तीखे रस के रूप मे भी परिणत होता है, अथवा यावत् मधुररस के रूप मे भी परिणत होता है ।

७८ जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए ?

गोयमा ! कक्खडफासपरिणए वा जाव लुक्खफासपरिणए वा ।

[७८ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य स्पर्शपरिणत होता है तो क्या वह कर्कशस्पर्शरूप म परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप मे परिणत होता है ?

[७८ उ] गौतम ! वह कर्कशस्पर्शरूप मे भी परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्षस्पर्शरूप मे भी परिणत होता है ।

७९ जइ सठाणपरिणए० पुच्छा ?

गोयमा ! परिमडलसठाणपरिणए वा जाव आययसठाणपरिणए वा ।

[७९ प्र] भगवन् ! यदि एक द्रव्य सस्थान-परिणत होता है, तो प्रश्न है—क्या वह परिमण्डल-सस्थानरूप म परिणत होता है, अथवा यावत् आयत-सस्थानरूप मे परिणत होता है ?

[७९ उ.] गौतम ! वह द्रव्य परिमण्डल-संस्थानरूप में भी परिणत होता है, अथवा यावत् आयतसंस्थानरूप में भी परिणत होता है।

विवेचन—मन-वचन-काय की अपेक्षा विभिन्न प्रकार से, प्रयोग से, मिश्र से और विस्रसा से एक द्रव्य के परिणमन की प्ररूपणा—प्रस्तुत ३१ सूत्रों (सू. ४९ से ७९ तक) में मन, वचन और काय के विभिन्न विशेषणों और प्रकारों के माध्यम से एक द्रव्य के प्रयोगपरिणाम की, फिर मिश्रपरिणाम की और अन्त में वर्णादि की दृष्टि से विस्रसापरिणाम की अपेक्षा से प्ररूपणा की गई है।

प्रयोग की परिभाषा—मन, वचन और काय के व्यापार को 'योग' कहते हैं अथवा वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा के पुद्गलों का आलम्बन लेकर आत्मप्रदेशों में होने वाले परिस्पन्दन (कम्पन या हलचल) को भी योग कहते हैं, इसी योग को यहाँ 'प्रयोग' कहा गया है।

योगों के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप—आलम्बन के भेद से प्रयोग के तीन भेद हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। ये ही मुख्य तीन योग हैं। फिर इनके अवान्तर भेद क्रमशः इस प्रकार हैं, मनोयोग—सत्यमनोयोग, असत्य (मृषा) मनोयोग, सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग और असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग। वचनयोग—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, सत्यमृषा (मिश्र) वचनयोग, और असत्यमृषावचनयोग। काययोग—औदारिकयोग, औदारिकमिश्रयोग, वैक्रिययोग, वैक्रियमिश्रयोग, आहारकयोग, आहारकमिश्रयोग और कार्मणयोग। इस प्रकार ४ मनोयोग के, ४ वचनयोग के और ७ काययोग के यों कुल मिलाकर योग के १५ भेद हुए। इनका स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है—(१) सत्यमनोयोग—मन का जो व्यापार सत् (सज्जनपुरुषों या साधुओं या प्राणियों) के लिए हितकर हो, उन्हें मोक्ष की ओर ले जाने वाला हो, अथवा सत्पदार्थों या सत्तत्त्वों (जीवादि तत्त्वों) के प्रति यथार्थ विचार हो। (२) असत्यमनोयोग—सत्य से विपरीत अर्थात्—संसार की तरफ ले जाने वाला, प्राणियों के लिए अहितकर विचार अथवा 'जीवादि तत्त्व नहीं हैं' ऐसा मिथ्याविचार। (३) सत्यमृषामनोयोग—व्यवहार से ठीक होने पर भी जो विचार निश्चय से पूर्ण सत्य न हो। (४) असत्यामृषामनोयोग—जो विचार अपने आप में सत्य और असत्य दोनों ही न हो, केवल वस्तुस्वरूपमात्र दिखाया जाए। (५) सत्यवचनयोग, (६) असत्यवचनयोग, (७) सत्यमृषावचनयोग और (८) असत्यामृषावचनयोग, इनका स्वरूप मनोयोग के समान ही समझना चाहिए। मनोयोग में केवल विचारमात्र का ग्रहण है और वचनयोग में वाणी का ग्रहण है। वाणी द्वारा भावों को प्रकट करना वचनयोग है।

(१) औदारिकशरीरकाययोग—काय का अर्थ है—समूह। औदारिकशरीर पुद्गलस्कन्धों का समूह होने से काय है। इसमें होने वाले व्यापार को औदारिकशरीरकाययोग कहते हैं। यह योग मनुष्यों और तिर्यञ्चों में होता है।

(२) औदारिकमिश्रशरीरकाययोग—औदारिक के साथ कार्मण, वैक्रिय या आहारक शरीर की सहायता से होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं। यह योग उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक सभी औदारिकशरीरधारी जीवों को होता है। वैक्रियलब्धिधारी मनुष्य और तिर्यञ्च जब वैक्रियशरीर का त्याग करते हैं, तब भी औदारिकमिश्रशरीर होता है। इसी तरह लब्धिधारी मुनिराज जब आहारक-

शरीर बनाते हैं, तब आहारकमिश्रकाययोग होता है, किन्तु जब वे आहारकशरीर से निवृत्त होकर मूल शरीरस्थ होते हैं, तब औदारिकमिश्रकाययोग का प्रयोग होता है। केवली भगवान् जब केवली-समुद्घात करते हैं, तब दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्रकाययोग का प्रयोग होता है।

(३) वैक्रियकाययोग—वैक्रियशरीर द्वारा होने वाली वीर्यशक्ति का व्यापार। यह मनुष्यों और तिर्यञ्चों के वैक्रियलब्धिबल से वैक्रियशरीर धारण कर लेने पर होता है। देवों और नारकों के वैक्रियकाययोग 'भवप्रत्यय' होता है।

(४) वैक्रियमिश्रकाययोग—वैक्रिय और कार्मण, अथवा वैक्रिय और औदारिक, इन दो शरीरों के द्वारा होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को 'वैक्रियमिश्रकाययोग' कहते हैं। वैक्रिय और कार्मणसम्बन्धी वैक्रियमिश्रकाययोग देवों तथा नारकों की उत्पत्ति के दूसरे समय से लेकर जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक रहता है। वैक्रिय और औदारिक, इन दो शरीरों सम्बन्धी वैक्रिय-मिश्रकाययोग, मनुष्यों और तिर्यंचों में तभी पाया जाता है, जब वे लब्धिबल से वैक्रियशरीर का आरम्भ करते हैं। वैक्रियशरीर का त्याग करने में वैक्रियमिश्र नहीं होता, किन्तु औदारिकमिश्र होता है।

(५) आहारककाययोग—केवल आहारकशरीर की सहायता से होने वाला वीर्यशक्ति का व्यापार 'आहारककाययोग' है।

(६) आहारकमिश्रकाययोग—आहारक और औदारिक, इन दो शरीरों के द्वारा होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं। आहारकशरीर को धारण करने के समय अर्थात्—उसे प्रारम्भ करने के समय तो आहारकमिश्रकाययोग होता है और उसके त्याग के समय औदारिकमिश्रकाययोग होता है।

(७) कार्मणकाययोग—केवल कार्मणशरीर की सहायता से वीर्यशक्ति की जो प्रवृत्ति होती है, उसे कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग विग्रहगति में तथा उत्पत्ति के समय अनाहारक अवस्था में सभी जीवों में होता है। केवलीसमुद्घात के तीसरे, चौथे और पांचवें समय में केवली भगवान् के होता है।

कार्मणकाययोग की तरह तैजसकाययोग इसलिए पृथक् नहीं माना कि तैजस और कार्मण दोनों का सदैव साहचर्य रहता है। वीर्यशक्ति का व्यापार भी दोनों का साथ-साथ होता है, इसलिए कार्मणकाययोग में ही तैजसकाययोग का समावेश हो जाता है।

प्रयोग-परिणत तीनों योगों द्वारा—काययोग द्वारा मनोवर्गणा के द्रव्यों को ग्रहण करके मनोयोग द्वारा मनोरूप से परिणमाए हुए पुद्गल 'मन प्रयोगपरिणत' कहलाते हैं। काययोग द्वारा भाषाद्रव्य का ग्रहण करके वचनयोग द्वारा भाषारूप में परिणत करके बाहर निकाले जाने वाले पुद्गल 'वचनप्रयोगपरिणत' कहलाते हैं। औदारिक आदि काययोग द्वारा ग्रहण किए हुए औदारिकादि वर्गणा के द्रव्यों को औदारिकादि शरीररूप में परिणमाए हों, उन्हें 'कायप्रयोगपरिणत' कहते हैं।

आरम्भ, सरम्भ और समारम्भ का स्वरूप—जीवों को प्राण से रहित कर देना 'आरम्भ' है, किसी जीव को मारने के लिए मानसिक संकल्प करना सरम्भ (सारम्भ) कहलाता है, जीवों को परिताप पहुँचाना समारम्भ कहलाता है। जीवहिंसा के अभाव को अनारम्भ कहते हैं।

आरम्भसत्यमन प्रयोग आदि का अर्थ— आरम्भ कहते हैं जीवोपघात को, तद्विषयक सत्य—

आरम्भसत्य है और आरम्भसत्यविषयक मन प्रयोग को आरम्भसत्यमन प्रयोग कहते हैं। इसी प्रकार सरम्भ, समारम्भ और अनारम्भ को जोडकर तदनुसार अर्थ कर लेना चाहिए।[1]

दो द्रव्य सम्बन्धी प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदो के मनोयोग आदि के सयोग से निष्पन्न भग

८० दो भते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसापरिणया ? वीससापरिणया ?

गोयमा ! पओगपरिणया वा १। मीसापरिणया वा २। वीससापरिणया वा ३। अहवेगे पओगपरिणए, एगे मीसापरिणए ४। अहवेगे पओगप०, एगे वीससापरि० ५। अहवेगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए, एव ६।

[८० प्र] भगवन् ! दो द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होते हैं, मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसा-परिणत होते हैं ?

[८० उ] गौतम ! वे १ प्रयोगपरिणत होते हैं, या २ मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा ३ विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा ४ एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा मिश्रपरिणत होता है, या ५ एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा ६ एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और दूसरा विस्रसापरिणत होता है। इस प्रकार छह भग होते हैं।

८१ जदि पओगपरिणया किं मणप्पयोगपरिणया ? वइप्पयोग० ? कायप्पयोगपरिणया ?

गोयमा ! मणप्पयोगपरिणता वा १। वइप्पयोगप० २। कायप्पयोगपरिणया वा ३। अहवेगे मणप्पयोगपरिणते, एगे वयप्पयोगपरिणते ४। अहवेगे मणप्पयोगपरिणए, एगे कायप्पओगपरिणए ५। अहवेगे वयप्पयोगपरिणते, एगे कायप्पओगपरिणते ६।

[८१ प्र] यदि वे दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं ?

[८१ उ] गौतम ! वे (दो द्रव्य) या तो (१) मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या (२) वचन-प्रयोग परिणत होते हैं, अथवा (३) कायप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा (४) उनमे से एक द्रव्य मन-प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा वचनप्रयोगपरिणत होता है, अथवा (५) एक द्रव्य मन प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा कायप्रयोगपरिणत होता है या (६) एक द्रव्य वचनप्रयोगपरिणत होता है और दूसरा कायप्रयोगपरिणत होता है।

८२ जदि मणप्पयोगपरिणता किं सच्चमणप्पयोगपरिणता ? असच्चमणप्पयोगप० ? सच्चा-मोसमणप्पयोगप० ? असच्चाऽमोसमणप्पयोगप० ?

गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणया वा जाव असच्चामोसमणप्पयोगपरिणया वा १-४। अहवेगे सच्चमणप्पयोगपरिणए, एगे मोसमणप्पओगपरिणए ५। अहवेगे सच्चमणप्पओगपरिणते, एगे सच्चा-मोसमणप्पओगपरिणए ६। अहवेगे सच्चमणप्पओगपरिणए, एगे असच्चामोसमणप्पओगपरिणए ७।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३५-३३६

अहवेगे मोसमणप्पयोगपरिणते, एगे सच्चामोसमणप्पयोगपरिणते ८। अहवेगे मोसमणप्पयोगपरिणते, एगे असच्चामोसमणप्पयोगपरिणते ९। अहवेगे सच्चामोसमणप्पओगपरिणते, एगे असच्चामोसमणप्पओगपरिणते १०।

[८२ प्र] भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) मन प्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, या असत्य-मन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्यामृषा-मन प्रयोगपरिणत होते हैं ?

[८२ उ] गौतम ! वे (दो द्रव्य) (१-४) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, यावत् असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होते हैं, (५) या उनमें से एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा (६) एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या (७) एक द्रव्य सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा (८) एक द्रव्य मृषामन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या (९) एक द्रव्य मृषामन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है अथवा (१०) एक द्रव्य सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है।

८३. जइ सच्चमणप्पओगपरिणता किं आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणया जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणता ?

गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणया वा जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणया वा। अहवेगे आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणते। एगे अणारंभसच्चमणप्पयोगपरिणते। एवं एएणं गमएणं दुयसंजोएणं नेयव्वं। सव्वे संयोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा जाव सव्वट्ठसिद्धग त्ति।

[८३ प्र] भगवन् ! यदि वे (दो द्रव्य) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं तो क्या वे आरम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं या अनारम्भसत्यमन प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा संरम्भ (सारम्भ) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, या असंरम्भ (असारम्भ) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा समारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं या असमारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं ?

[८३ उ] गौतम ! वे दो द्रव्य (१-६) आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा यावत् असमारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्य आ... होता है और दूसरा अनारम्भसत्य... इसी प्रकार इस ... अनुसार द्विक-संयोगी भंग करने चाहिए। जहाँ जितने ... हो सकें, उतने ... सिद्ध ... देव पर्यन्त कहने चाहिए।

८४. जदि मोसापरिणता किं ... ?

एवं ...

[८४ प्र] भ... (दो द्रव्य ... हैं तो

... पूर्ववत ... को

[८४ उ] जिस प्रकार प्रयोगपरिणत के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार मिश्रपरिणत के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए।

८५ जदि वीससापरिणया किं वण्णपरिणया, गंधपरिणता० ?।

एव वीससापरिणया वि जाव अहवेगे चउरससठाणपरिणते, एगे आययसठाणपरिणए वा।

[८५ प्र] भगवन्! यदि दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं, तो क्या वे वर्णरूप से परिणत होते हैं, गंधरूप मे परिणत होते हैं, (अथवा यावत् सस्थानरूप से परिणत होते हैं ?)

[८५ उ] गौतम! जिस प्रकार पहले कहा गया है, उसी प्रकार विस्रसापरिणत के विषय मे कहना चाहिए कि अथवा एक द्रव्य चतुरस्रसस्थानरूप से परिणत होता है, यावत् एक द्रव्य आयत-सस्थान रूप से परिणत होता है।

विवेचन—दो द्रव्यसम्बन्धी प्रयोग मिश्र विस्रसापरिणत पदो के मनोयोग आदि के सयोग से निष्पन्न भग—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू ८० से ८५ तक) मे दो द्रव्यो से सम्बन्धित विभिन्न विशेषणयुक्त मनोयोग आदि के सयोग से प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत पदो के विभिन्न भगो का निरूपण किया गया है।

प्रयोगादि तीन पदो के छह भग—दो द्रव्यो के सम्बन्ध मे प्रयोगादि तीन पदो के असयोगी ३ भग और द्विकसयोगी ३ भग, यो कुल छह भग होते है।

विशिष्ट-मन प्रयोगपरिणत के पाच सौ चार भग—सर्वप्रथम सत्यमन प्रयोगपरिणत, असत्य-मन प्रयोगपरिणत आदि ४ पदो के असयोगी ४ भग और द्विकसयोगी ६ भग, इस प्रकार कुल १० भग होते हैं। फिर आरम्भ-सत्यमन प्रयोग आदि छह पदो के असयोगी ६ भग और द्विकसयोगी १५ भग होते हैं। इस प्रकार आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत (द्रव्यद्वय) के ६+१५=२१ भग हुए। इसी प्रकार अनारम्भ सत्यमन प्रयोग आदि शेष ५ पदो के भी प्रत्येक के इक्कीस-इक्कीस भग होते है। यो सत्यमन प्रयोगपरिणत के आरम्भ, अनारम्भ, सरभ, असरभ, समारम्भ, असमारम्भ, इन ६ पदो के साथ कुल २१×६=१२६ भग हुए।

इसी प्रकार सत्यमन प्रयोगपरिणत की तरह असत्यमन प्रयोगपरिणत, सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत, असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत, इन तीन पदो के भी आरम्भ आदि ६ पदो के साथ प्रत्येक के पूर्ववत् एक सौ छब्बीस, एक सौ छब्बीस भग होते है। अत मन प्रयोगपरिणत के सत्यमन प्रयोग-परिणत, असत्यमन प्रयोगपरिणत आदि विशेषणयुक्त चारो पदो के कुल १२६×४=५०४ भग होते हैं।

पूर्वोक्त विशेषणयुक्त वचनप्रयोगपरिणत के भी ५०४ भग—जिस प्रकार मन प्रयोगपरिणत के उपर्युक्त ५०४ भग होते हैं उसी प्रकार वचनप्रयोगपरिणत के भी ५०४ भग होते हैं। सर्वप्रथम सत्य-वचनप्रयोग के आरम्भसत्य आदि ६ पदो के प्रत्येक के २१ २१ भग होने से १२६ भग होते हैं। फिर असत्यवचनप्रयोग आदि शेष तीन पदो के भी आरम्भ आदि ६ पदो के साथ प्रत्येक के १२६-१२६ भग होने से कुल १२६×४=५०४ भग होते हैं।

औदारिक आदि कायप्रयोगपरिणत के १९६ भग—औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत आदि ७ पद हैं, इनके असयोगी ७ भग और द्विकसयोगी २१ भग, यो कुल ७+२१=२८ भग एक पद के होते हैं। सातो पदो के कुल २८×७=१९६ भग कायप्रयोगपरिणत के होते हैं।

अहवेगे मोसमणप्पयोगपरिणते, एगे सच्चामोसमणप्पयोगपरिणते ८। अहवेगे मोसमणप्पयोगपरिणते, एगे असच्चामोसमणप्पयोगपरिणते ९। अहवेगे सच्चामोसमणप्पओगपरिणते, एगे असच्चामोसमणप्पओगपरिणते १०।

[८२ प्र] भगवन्! यदि वे (दो द्रव्य) मन प्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या सत्यमन प्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्य-मन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्यामृषा-मन प्रयोगपरिणत होते हैं?

[८२ उ] गौतम! वे (दो द्रव्य) (१-४) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, यावत् असत्यामृषा-मन प्रयोगपरिणत होते हैं, (५) या उनमें से एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा मृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा (६) एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या (७) एक द्रव्य सत्यमन प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है, अथवा (८) एक द्रव्य मृषामन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है, या (९) एक द्रव्य मृषामन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है अथवा (१०) एक द्रव्य सत्यमृषामन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत होता है।

८३ जइ सच्चमणप्पओगपरिणता किं आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणया जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणता?

गोयमा! आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणया वा जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणया वा। अहवेगे आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणते। एगे अणारंभसच्चमणप्पयोगपरिणते। एवं एएणं गमएणं दुयसंजोएणं नेयव्वं। सव्वे संयोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा जाव सव्वट्ठसिद्धग त्ति।

[८३ प्र] भगवन्! यदि वे (दो द्रव्य) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं तो क्या वे आरम्भ-सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं या अनारम्भसत्यमन प्रयोग-परिणत होते है, अथवा संरम्भ (सारम्भ) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं या असंरम्भ (असारम्भ) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा समारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं या असमारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं?

[८३ उ] गौतम! वे दो द्रव्य (१-६) आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा यावत् असमारम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्य आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दूसरा अनारम्भसत्य-मन प्रयोगपरिणत होता है, इसी प्रकार इस गम (पाठ) के अनुसार द्विक-संयोगी भंग करने चाहिए। जहाँ जितने भी द्विकसंयोग हो सकें, उतने सभी यहाँ सर्वार्थसिद्धवैमानिक देव पर्यन्त कहने चाहिए।

८४ जदि मीसापरिणता किं मणमीसापरिणता०?

एवं मीसापरिणया वि।

[८४ प्र] भगवन्! यदि वे (दो द्रव्य) मिश्रपरिणत होते हैं तो मनोमिश्रपरिणत होते हैं?, (इत्यादि पूर्ववत् प्रयोगपरिणत वाले प्रश्नों की तरह यहाँ भी सभी प्रश्न उपस्थित करने चाहिए।)

[८४ उ] जिस प्रकार प्रयोगपरिणत के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार मिश्रपरिणत के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

८५. जदि वीससापरिणया किं वण्णपरिणया, गंधपरिणता० ? ।

एवं वीससापरिणया वि जाव अहवेगे चउरंससंठाणपरिणते, एगे आययसंठाणपरिणए वा।

[८५ प्र] भगवन् ! यदि दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं, तो क्या वे वर्णरूप से परिणत होते हैं, गन्धरूप से परिणत होते हैं, (अथवा यावत् संस्थानरूप से परिणत होते हैं ?)

[८५ उ] गौतम ! जिस प्रकार पहले कहा गया है, उसी प्रकार विस्रसापरिणत के विषय में कहना चाहिए कि अथवा एक द्रव्य चतुरस्रसंस्थानरूप से परिणत होता है, यावत् एक द्रव्य आयत-संस्थान रूप से परिणत होता है।

विवेचन—दो द्रव्यसम्बन्धी प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदों के मनोयोग आदि के संयोग से निष्पन्न भंग—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू. ८० से ८५ तक) में दो द्रव्यों से सम्बन्धित विभिन्न विशेषणयुक्त मनोयोग आदि के संयोग से प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत पदों के विभिन्न भंगों का निरूपण किया गया है।

प्रयोगादि तीन पदों के छह भंग—दो द्रव्यों के सम्बन्ध में प्रयोगादि तीन पदों के असंयोगी ३ भंग और द्विकसंयोगी ३ भंग, यों कुल छह भंग होते हैं।

विशिष्ट-मन प्रयोगपरिणत के पांच सौ चार भंग—सर्वप्रथम सत्यमन प्रयोगपरिणत, असत्य-मन प्रयोगपरिणत आदि ४ पदों के असंयोगी ४ भंग और द्विकसंयोगी ६ भंग, इस प्रकार कुल १० भंग होते हैं। फिर आरम्भ-सत्यमन प्रयोग आदि छह पदों के असंयोगी ६ भंग और द्विकसंयोगी १५ भंग होते हैं। इस प्रकार आरम्भसत्यमन प्रयोगपरिणत (द्रव्यद्वय) के ६+१५=२१ भंग हुए। इसी प्रकार अनारम्भ सत्यमन प्रयोग आदि शेष ५ पदों के भी प्रत्येक के इक्कीस-इक्कीस भंग होते हैं। यों सत्यमन प्रयोगपरिणत के आरम्भ, अनारम्भ, संरम्भ, असंरम्भ, समारम्भ, असमारम्भ, इन ६ पदों के साथ कुल २१×६=१२६ भंग हुए।

इसी प्रकार सत्यमन प्रयोगपरिणत की तरह असत्यमन प्रयोगपरिणत, सत्यमृषामन प्रयोग-परिणत, असत्यामृषामन प्रयोगपरिणत, इन तीन पदों के भी आरम्भ आदि ६ पदों के साथ प्रत्येक के पूर्ववत् एक सौ छब्बीस, एक सौ छब्बीस भंग होते हैं। अतः मन प्रयोगपरिणत के सत्यमन प्रयोग-परिणत, असत्यमन प्रयोगपरिणत आदि विशेषणयुक्त चारों पदों के कुल १२६×४=५०४ भंग होते हैं।

पूर्वोक्त विशेषणयुक्त वचनप्रयोगपरिणत के भी ५०४ भंग—जिस प्रकार मन प्रयोगपरिणत के उपर्युक्त ५०४ भंग होते हैं उसी प्रकार वचनप्रयोगपरिणत के भी ५०४ भंग होते हैं। सर्वप्रथम सत्य-वचनप्रयोग के आरम्भसत्य आदि ६ पदों के प्रत्येक के २१, २१ भंग होने से १२६ भंग होते हैं। फिर असत्यवचनप्रयोग आदि शेष तीन पदों के भी आरम्भ आदि ६ पदों के साथ प्रत्येक के १२६-१२६ भंग होने से कुल १२६×४=५०४ भंग होते हैं।

औदारिक आदि कायप्रयोगपरिणत के १९६ भंग—औदारिकशरीरकायप्रयोगपरिणत आदि ७ पद हैं, इनके असंयोगी ७ भंग और द्विकसंयोगी २१ भंग, यों कुल ७+२१=२८ भंग एक पद के होते हैं। सातों पदों के कुल २८×७=१९६ भंग कायप्रयोगपरिणत के होते हैं।

दो द्रव्यों के त्रियोगसम्बन्धी मिश्रपरिणत भंग—इस प्रकार मन प्रयोगपरिणत सम्बन्धी ५०४, वचनप्रयोगपरिणत सम्बन्धी ५०४ और कायप्रयोगपरिणत सम्बन्धी १९६, यों कुल १२०४ भंग प्रयोग-परिणत के होते हैं। जिस प्रकार प्रयोगपरिणत दो द्रव्यों के कुल १२०४ भंग कहे गए हैं, उसी प्रकार मिश्रपरिणत दो द्रव्यों के भी कुल १२०४ भंग समझने चाहिए।

विस्रसापरिणत द्रव्यों के भंग—जिस रीति से प्रयोगपरिणत दो द्रव्यों के भंग कहे गए हैं, उसी रीति से विस्रसापरिणत दो द्रव्यों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान इन पांच पदों के विविध-विशेषणयुक्त पदों को लेकर असंयोगी और द्विकसंयोगी भंग भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए।[1]

तीन द्रव्यों के मन-वचन-काय की अपेक्षा प्रयोग-मिश्र-विस्रसापरिणत पदों के भंग

८६ तिण्णि भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसापरिणया ? वीससापरिणया ?

गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा १। अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया १। अहवेगे पयोगपरिणए, दो वीससापरिणया २। अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए ३। अहवा दो पयोगपरिणया, एगे वीससापरिणए ४। अहवेगे मीसापरिणए, दो वीससा परिणया ५। अहवा दो मीससापरिणया, एगे वीससापरिणए ६। अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसा-परिणए, एगे वीससापरिणए ७।

[८६ प्र] भगवन् ! तीन द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होते हैं, मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं ?

[८६ उ] गौतम ! तीन द्रव्य या तो १ प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं, या २ एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं, या एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है, अथवा दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं, और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं, अथवा दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं, और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है, या एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है।

८७ जदि पयोगपरिणता किं मणप्पयोगपरिणया ? वइप्पयोगपरिणता ? कायप्पयोग परिणता ?

गोयमा ! मणप्पयोगपरिणया वा० एवं एक्कगसंयोगो, दुयसंयोगो तियसंयोगो य भाणियव्वो।

[८७ प्र] भगवन् ! यदि वे तीनों द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, तो क्या मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं अथवा वे कायप्रयोगपरिणत होते हैं ?

[८७ उ] गौतम ! वे (तीन द्रव्य) या तो मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं। इस प्रकार एकसंयोगी (असंयोगी), द्विकसंयोगी और त्रिकसंयोगी भंग कहने चाहिए।

---

1 भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३३७-३३८

८८ जदि मणप्पयोगपरिणता किं सच्चमणप्पयोगपरिणया ४ ?

गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणिया वा जाव असच्चामोसमणप्पयोगपरिणया वा ४ । अहवेगे च्चमणप्पयोगपरिणए, दो मोसमणप्पयोगपरिणया एवं दुयसयोगो तियसयोगो भाणियव्वो । एत्थ वि हेव जाव अहवा एगे तससठाणपरिणए वा एगे चउरससठाणपरिणए वा एगे आययसठाणपरिणए वा ।

[८८ प्र] भगवन् ! यदि तीन द्रव्य मन प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या वे सत्यमन प्रयोग-रिणत होते हैं, असत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं ? इत्यादि प्रश्न है ।

[८८ उ] गौतम ! वे (त्रिद्रव्य) सत्यमन प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा यावत् असत्यामृषा-न प्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा उनमे से एक द्रव्य सत्यमन प्रयोगपरिणत होता है और दो द्रव्य पामन प्रयोगपरिणत होते हैं, इत्यादि प्रकार से यहाँ भी द्विकसयोगी भग कहने चाहिए ।

तीन द्रव्यो के प्रयोगपरिणत की तरह ही यहाँ भी पूर्ववत् मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत भग अथवा एक त्र्यस (त्रिकोण) सस्थानरूप से परिणत हो, एक समचतुरस्रसस्थानरूप से परिणत हो और एक आयतसस्थानरूप से परिणत हो तक कहना चाहिए ।

विवेचन—तीन द्रव्यों के मन वचन-काय की अपेक्षा प्रयोग-मिश्र विस्रसापरिणत पदों के ग—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ८६ से ८८ तक) मे तीन द्रव्यो के मन, वचन और काय की अपेक्षा योगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत इन तीन पदो के विविध भगो का अतिदेशपूर्वक थन किया गया है ।

तीन पदो के त्रिद्रव्यसम्बन्धी भग—प्रयोगपरिणत आदि तीन पदो के असयोगी तीन, द्विक-योगी छह और त्रिकसयोगी एक भग होता है । कुल भग १० होते हैं ।

सत्यमन प्रयोगपरिणत आदि के भग—सत्यमन प्रयोगपरिणत आदि ४ पद हैं, इनके सयोगी (एक-एक) चार भग, द्विकसयोगी १२ भग और त्रिकसयोगी ४ भग होते हैं । यो कुल +१२+४=२० भग हुए । इसी प्रकार मृपामन प्रयोगपरिणत के भी ४ भग समझने चाहिए । सी रीति से वचनप्रयोगपरिणत और कायप्रयोगपरिणत के भग समझ लेने चाहिए ।

मिश्र और विस्रसापरिणत के भग—प्रयोगपरिणत की तरह मिश्रपरिणत के और विस्रसा-रिणत के भी (वर्णादि के भेदो को लेकर) भग कहने चाहिए ।[1]

ार आदि द्रव्यो के मन-वचन-काय की अपेक्षा प्रयोगादिपरिणत पदो के सयोग से नेष्पन्न भग

८९ चत्तारि भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ३ ?

गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा ३ । अहवेगे पओगपरिणए, तिण्णि मीसापरिणया १ । अहवा एगे पओगपरिणए, तिण्णि वीससापरिणया २ । अहवा दो पयोग रिणया, दो मीसापरिणया ३ । अहवा दो पयोगपरिणया, दो वीससापरिणया ४ । अहवा तिण्णि

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३३९

पत्रोगपरिणया, एगे मीससापरिणए ५। अहवा तिण्णि पओगपरिणया, एगे वीससापरिणए ६। अहवा एगे मीससापरिणए, तिण्णि वीससापरिणया ७। अहवा दो मीसापरिणया, दो वीससापरिणया ८। अहवा तिण्णि मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए ९। अहवेगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया १, अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए, अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए ३।

[८९ प्र] भगवन्! चार द्रव्य क्या प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्रपरिणत होते हैं, अथवा विस्रसापरिणत होते हैं?

[८९ उ] गौतम! वे (चार द्रव्य) (१) या तो प्रयोगपरिणत होते हैं, (२) या मिश्र-परिणत होते हैं, (३) अथवा विस्रसापरिणत होते हैं, (कुल ३) अथवा (१) एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है, तीन मिश्रपरिणत होते हैं, या (२) एक द्रव्य प्रयोगपरिणत होता है और तीन विस्रसापरिणत होते हैं, (३) अथवा दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और दो मिश्रपरिणत होते हैं, (४) या दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और दो विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा (५) तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है, (६) अथवा तीन द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है, अथवा (७) एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और तीन द्रव्य विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा (८) दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और दो द्रव्य विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा (९) तीन द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा (१) एक प्रयोगपरिणत होता है, एक मिश्रपरिणत होता है और दो विस्रसापरिणत होते हैं, अथवा (२) एक प्रयोगपरिणत होता है, दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसापरिणत होता है, अथवा (३) दो द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, एक मिश्रपरिणत होता है और एक विस्रसापरिणत होता है।

९० जदि पयोगपरिणया किं मणप्पयोगपरिणया ३?

एवं एएणं कमेणं पंच छ सत्त जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा अणंता य दव्वा भाणियव्वा। दुयासंजोएणं, तियासंजोगेणं जाव दससंजोएणं बारससंजोएणं उवजुंजिऊण जत्थ जत्तिया संजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणियव्वा। एए पुण जहा नवमसए पवेसणए भणीहामि तहा उवजुंजिऊण भाणियव्वा जाव असंखेज्जा। अणंता एवं चेव, नवरं एक्कं पदं अब्भहियं जाव अहवा अणंता परिमंडलसंठाण परिणया जाव अणंता आययसंठाणपरिणया।

[९० प्र] भगवन्! यदि चार द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं तो क्या वे मन प्रयोगपरिणत होते हैं, या वचनप्रयोगपरिणत होते हैं, अथवा कायप्रयोगपरिणत होते हैं?

[९० उ] गौतम! ये सब तथ्य पूर्ववत् कहने चाहिए तथा इसी क्रम से पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, यावत् संख्यात, असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के विषय में कहना चाहिए। द्विकसंयोग से, त्रिकसंयोग से, यावत् दस के संयोग से, बारह के संयोग से, जहाँ जिसके जितने संयोगी भंग बनते हों, उतने सब भंग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए। ये सभी संयोगी भंग आगे नौवें शतक में

बत्तीसवें प्रवेशनक नामक उद्देशक में जिस प्रकार हम कहेंगे, उसी प्रकार उपयोग लगाकर यहाँ भी कहने चाहिए, यावत् अथवा अनन्त द्रव्य परिमण्डलसंस्थानरूप से परिणत होते हैं, यावत् अनन्त द्रव्य आयतसंस्थानरूप से परिणत होते हैं।

विवेचन—चार आदि द्रव्यों के मन-वचन-काय की अपेक्षा प्रयोगादि परिणत के संयोग से होने वाले भंग—प्रस्तुत सूत्रद्वय में चार आदि द्रव्यों के प्रयोगादि परिणामों के निमित्त से होने वाले भंगों का कथन किया है।

चार द्रव्यों सम्बन्धी प्रयोगपरिणत आदि तीन पदों के भंग—चार द्रव्यों के प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत आदि तीन पदों के असंयोगी ३ भंग, द्विकसंयोगी ९ भंग और त्रिकसंयोगी ३ भंग होते हैं। इस तरह ये सभी मिलकर ३+९+३=१५ भंग होते हैं। पूर्वोक्त पद्धति के अनुसार इनसे आगे के भंगों के लिए पूर्वोक्त क्रम से संस्थानपर्यन्त यथायोग्य भंगों की योजना कर लेनी चाहिए।

पंचद्रव्यसम्बन्धी और पांच से आगे के भंग—पांच द्रव्यों के असंयोगी तीन भंग, द्विकसंयोगी १२ भंग और त्रिकसंयोगी ६ भंग, यों कुल ३+१२+६=२१ भंग होते हैं। इस प्रकार पांच, छह, यावत् अनन्त द्रव्यों के भी यथायोग्य भंग बना लेने चाहिए। सूत्र के मूलपाठ में ११ संयोगी भंग नहीं बतलाया गया है, क्योंकि पूर्वोक्त पदों में ११ संयोगी भंग नहीं बनता।

नौवें शतक के ३२वें उद्देशक में गांगेय अनगार के प्रवेशनक सम्बन्धी भंग बताए गए हैं, तदनुसार यहाँ भी उपयोग लगाकर भंगों की योजना कर लेनी चाहिए।[१]

परिणामों की दृष्टि से पुद्गलों का अल्पबहुत्व

९१ एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं पयोगपरिणयाणं मीसापरिणयाणं वीससापरिणयाण य कतरे कतरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला पयोगपरिणया, मीसापरिणया अणंतगुणा, वीससापरिणया अणंतगुणा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ अट्ठम सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

[९१ प्र.] भगवन् ! प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत, इन तीनों प्रकार के पुद्गलों में कौन-से (पुद्गल), किन (पुद्गलों) से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[९१ उ.] गौतम ! प्रयोगपरिणत पुद्गल सबसे थोड़े हैं, उनसे मिश्रपरिणत पुद्गल अनन्तगुणे हैं और उनसे विस्रसापरिणत पुद्गल अनन्तगुणे हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३२९

विवेचन—परिणामों की दृष्टि से पुद्गलों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत अन्तिमसूत्र में तीनों परिणामों की दृष्टि से पुद्गलों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

सबसे कम और सबसे अधिक पुद्गल—मन-वचन-कायरूप योगों से परिणत पुद्गल सबसे थोड़े हैं, क्योंकि जीव और पुद्गल का सम्बन्ध अल्पकालिक है। प्रयोगपरिणत पुद्गलों से मिश्र परिणतपुद्गल अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रयोगपरिणामकृत आकार को न छोड़ते हुए विस्रसापरिणाम द्वारा परिणामान्तर को प्राप्त हुए मृतकलेवरादि अवयवरूप पुद्गल अनन्तानन्त हैं और विस्रसा-परिणत तो उनसे भी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जीव द्वारा ग्रहण न किये जा सकने योग्य परमाणु आदि पुद्गल अनन्तगुणे हैं।[1]

॥ अष्टम शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

1 भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३४०

बीओ उद्देसओ : 'आसीविसे'

द्वितीय उद्देशक : 'आशीविष'

आशीविष दो मुख्य प्रकार और उनके अधिकारी तथा विष-सामर्थ्य]

१ कतिविहा णं भंते ! आसीविसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा आसीविसा पन्नत्ता, तं जहा—जातिआसीविसा य कम्मआसीविसा य ।

[१ प्र] भगवन् ! आशीविष कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! आशीविष दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार—जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष ।

२ जातिआसीविसा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मडुक्कजातिआसीविसे, उरगजातिआसीविसे, मणुस्सजातिआसीविसे ।

[२ प्र] भगवन् ! जाति-आशीविष कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

[२ उ] गौतम ! जाति-आशीविष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे कि—(१) वृश्चिक-जाति-आशीविष, (२) मण्डूकजाति-आशीविष, (३) उरगजाति-आशीविष और (४) मनुष्यजाति-आशीविष ।

३ विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं विसट्टमाणिं पकरेत्तए । विसए से विसट्टयाए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा १ ।

[३ प्र] भगवन् ! वृश्चिकजाति-आशीविष का कितना विषय कहा गया है ? (अर्थात् वृश्चिकजाति-आशीविष का सामर्थ्य कितना है ?)

[३ उ] गौतम ! वृश्चिकजाति-आशीविष अर्द्धभरतक्षेत्र प्रमाण शरीर को विषयुक्त— विषैला या विष से व्याप्त करने में समर्थ है। इतना उसके विष का सामर्थ्य है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् क्रियात्मक प्रयोग द्वारा उसने न ऐसा कभी किया है, न करता है और न कभी करेगा ।

४ मडुक्कजातिआसीविसस्स पुच्छा ।

गोयमा ! पभू णं मडुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं० । सेसं तं चेव, नो चेव जाव करिस्संति वा २ ।

[४ प्र] भगवन् ! मण्डूकजाति-आशीविष का कितना विषय है ?

[४ उ] गौतम ! मण्डूकजाति-आशीविष अपने विष से भरतक्षेत्र प्रमाण शरीर को विषला करने एवं व्याप्त करने में समर्थ है। शेष सब पूर्ववत् जानना, यावत (यह उसका सामर्थ्य मात्र है,) सम्प्राप्ति से उसने कभी ऐसा किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

५ एवं उरगजातिआसीविसस्स वि, नवरं जंबुद्दीवप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेण विसपरिगय०। सेसं तं चेव, नो चेव जाव करिस्सति वा ३।

[५] इसी प्रकार उरगजाति आशीविष के सम्बन्ध में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वह जम्बूद्वीप-प्रमाण शरीर को विष से युक्त एवं व्याप्त करने में समर्थ है। यह उसका सामर्थ्यमात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति से यावत् (उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और) करेगा भी नहीं।

६ मणुस्सजातिआसीविसस्स वि एवं चेव, नवरं समयखेत्तप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेणं विसपरिगय०। सेसं तं चेव नो चेव जाव करिस्सति वा ४।

[६] इसी प्रकार मनुष्यजाति-आशीविष के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। विशेष इतना है कि वह समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र = ढाई द्वीप) प्रमाण शरीर को विष से व्याप्त कर सकता है, शेष कथन पूर्ववत् (कि यह उसका सामर्थ्यमात्र है, सम्प्राप्ति द्वारा कभी ऐसा किया नहीं, यावत् करता नहीं), करेगा भी नहीं।

७ जदि कम्मासीविसे किं नेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, मणुस्सकम्मासीविसे, देवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो नेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देवकम्मासीविसे वि।

[७ प्र] भगवन् ! यदि कर्म-आशीविष है तो क्या वह नैरयिक-कर्म-आशीविष है, या तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, अथवा मनुष्य-कर्म-आशीविष है या देव-कर्म-आशीविष है ?

[७ उ] गौतम ! नैरयिक-कर्म-आशीविष नहीं, किन्तु तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, मनुष्य-कर्म-आशीविष है और देव-कर्म-आशीविष है।

८ जदि तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव नो चतुरिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे।

[८ प्र] भगवन् ! यदि तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है, यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है ?

[८ उ] गौतम ! एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है।

९ जदि पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

एवं जहा वेउव्वियसरीरस्स भेदो जाव पज्जत्तासंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, नो अपज्जत्तासंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे।

[९ प्र] भगवन् ! यदि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है तो क्या सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है या गर्भज-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष है ?

[९ उ] गौतम ! (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीरपद में) वैक्रिय शरीर के सम्बन्ध में जिस प्रकार भेद कहे हैं, उसी प्रकार पर्याप्त संख्यातवर्ष की आयुष्य वाला गर्भज-कर्मभूमिज-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-कर्म-आशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाला कर्म-आशीविष नहीं होता तक कहना चाहिये।

१० जवि मणुस्सकम्मासीविसे किं सम्मुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे ? गब्भवक्कंतियमणुस्स-कम्मासीविसे ?

गोयमा ! णो सम्मुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे, एवं जहा वेउव्वियसरीरं जाव पज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसकम्मासीविसे, नो अपज्जत्ता जाव कम्मासीविसे।

[१० प्र] भगवन् ! यदि मनुष्य-कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-कर्माशीविष है, या गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष है ?

[१० उ] गौतम ! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-कर्म आशीविष नहीं होता, किन्तु गर्भज-मनुष्य-कर्म-आशीविष होता है। प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीरपद में वैक्रियशरीर के सम्बन्ध में जिस प्रकार जीव भेद कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी पर्याप्त संख्यात वर्ष का आयुष्य वाला कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य-कर्म-आशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाला यावत् कर्म-आशीविष नहीं होता तक कहना चाहिए।

११ जदि देवकम्मासीविसे किं भवणवासीदेवकम्मासीविसे जाव वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! भवणवासिदेवकम्मासीविसे, वाणमंतरदेव०, जोतिसिय०, वेमाणियदेवकम्मासीविसे वि।

[११ प्र] भगवन् ! यदि देव-कर्माशीविष होता है, तो क्या भवनवासीदेव कर्माशीविष होता है यावत् वैमानिकदेव कर्म आशीविष होता है ?

[११ उ] गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक, ये चारों प्रकार के देव-कर्म आशीविष होते हैं।

१२ जइ भवणवासिदेवकम्मासीविसे किं असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव थणिय-कुमार जाव कम्मासीविसे ?

गोयमा ! असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि जाव थणियकुमार जाव कम्मा-सीविसे वि।

[१२ प्र] भगवन् ! यदि भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष होता है तो क्या असुरकुमार-भवनवासीदेव-कर्म आशीविष होता है यावत् स्तनितकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष होता है ?

[१२ उ] गौतम ! असुरकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष भी यावत् स्तनितकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष भी होता है।

१३ जइ असुरकुमार जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ? अपज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! नो पज्जत्तअसुरकुमार जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मा सीविसे। एव जाव थणियकुमाराण।

[१३ प्र] भगवन् ! यदि असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार-भवनवासीदेव-कर्म आशीविष है तो क्या पर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष है या अपर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासीदेव-कर्म आशीविष है ?

[१३ उ] गौतम ! पर्याप्त असुरकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष नही, परन्तु अपर्याप्त असुरकुमार-भवनवासीदेव-कर्म-आशीविष है। इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक जानना चाहिए।

१४ जदि वाणमतरदेवकम्मासीविसे किं पिसायवाणमतर० ?

एव सव्वेसि पि अपज्जत्तगाण।

[१४ प्र] भगवन् ! यदि वाणव्यन्तरदेव-कर्म-आशीविष है, तो क्या पिशाच-वाणव्यन्तर-देव-कर्माशीविष है, अथवा यावत् गन्धर्व-वाणव्यन्तरदेव-कर्माशीविष है ?

[१४ उ] गौतम ! वे पिशाचादि सर्व वाणव्यन्तरदेव अपर्याप्तावस्था मे कर्माशीविष हैं।

१५ जोतिसियाण सव्वेसि अपज्जत्तगाण।

[१५] इसी प्रकार सभी ज्योतिष्कदेव भी अपर्याप्तावस्था मे कर्माशीविष होते हैं।

१६ जदि वेमाणियदेवकम्मासीविसे किं कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे ? कप्पातीत-वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, नो कप्पातीतवेमाणियदेवकम्मासीविसे।

[१६ प्र] भगवन् ! यदि वैमानिकदेव-कर्माशीविष है तो क्या कल्पोपपन्न वैमानिकदेव-कर्माशीविष है, अथवा कल्पातीत-वैमानिकदेव कर्म-आशीविष है ?

[१६ उ] गौतम! कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है, किन्तु कल्पातीत-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं होता।

१७ जति कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोधम्मकप्पोव० जाव कम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोवग जाव कम्मासीविसे ?

गोयमा ! सोधम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेव-कम्मासीविसे वि, नो आणयकप्पोवग जाव नो अच्चुतकप्पोवगवेमाणियदेव०।

[१७ प्र] भगवन्! यदि कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है तो क्या सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है, यावत् अच्युत-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष होता है ?

[१७ उ] गौतम! सौधर्म-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव से सहस्रार-कल्पोपपन्नक-वैमानिक-देव-पर्यन्त कर्म-आशीविष होते हैं, परन्तु आनत, प्राणत, आरण और अच्युत-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं होते।

१८ जदि सोहम्मकप्पोवग जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसोधम्मकप्पोवगवेमाणिय० अपज्जत्तगसोहम्मग० ?

गोयमा ! नो पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय०, अपज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मा-सीविसे।

[१८ प्र] भगवन्! यदि सौधर्म-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष है अथवा अपर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिक-देव-कर्म आशीविष है ?

[१८ उ] गौतम! पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं परन्तु अपर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष है।

१९ एवं जाव नो पज्जत्तसहस्सारकप्पोवगवेमाणिय जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसहस्सार-कप्पोवग जाव कम्मासीविसे।

[१९] इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्न-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष नहीं, किन्तु अपर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक-वैमानिकदेव-कर्म-आशीविष है।

विवेचन—आशीविष, दो मुख्य प्रकार और उनके अधिकारी—प्रस्तुत १९ सूत्रों (सू. १ से १९ तक) में आशीविष, उसके मुख्य दो प्रकार, जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष के अधिकारी जीवों का निरूपण किया गया है।

आशीविष और उसके प्रकारों का स्वरूप—आशी का अर्थ है—दाढ़ (दंष्ट्रा) जिन जीवों की दाढ़ में विष होता है, वे 'आशीविष' कहलाते हैं। आशीविष प्राणी दो प्रकार के होते हैं जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष। साप, बिच्छू, मेंढक आदि जो प्राणी जन्म से ही आशीविष होते हैं,

वे जाति-आशीविष कहलाते हैं और जो कर्म यानी शाप आदि क्रिया द्वारा प्राणियों का विनाश करते हैं, वे कर्म-आशीविष कहलाते हैं। पर्याप्तक तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय और मनुष्य को तपश्चर्या आदि से अथवा अन्य किसी गुण के कारण आशीविष लब्धि प्राप्त हो जाती है। ये जीव आशीविष-लब्धि के स्वभाव से शाप दे कर दूसरे का नाश करने की शक्ति पा लेते हैं। आशीविषलब्धि वाले जीव से आठवें देवलोक से आगे उत्पन्न नहीं हो सकते। जिन्होंने पूर्वभव में आशीविषलब्धि का अनुभव किया था, उन पूर्वानुभूतभाव के कारण वे कर्म-आशीविष होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में ही वे आशीविषयुक्त होते हैं।

जाति-आशीविषयुक्त प्राणियों का विषसामर्थ्य—जाति-आशीविष वाले प्राणियों के विष का जो सामर्थ्य बताया है, वह विषयमात्र है। उसका आशय यह है—जैसे किसी मनुष्य ने अपना शरीर अर्द्धभरतप्रमाण बनाया हो, उसके पैर में यदि बिच्छू डंक मारे तो उसके मस्तक तक उसका विष चढ़ जाता है।[1] इसी प्रकार भरतप्रमाण, जम्बूद्वीपप्रमाण और ढाईद्वीपप्रमाण का अर्थ समझना चाहिए।

छद्मस्थ द्वारा सर्वभावेन ज्ञान के अविषय और केवली द्वारा सर्वभावेन ज्ञान के विषयभूत दस स्थान

२० दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणति न पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं असरीरपडिबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५, सद्दं ६, गंधं ७, वातं ८, अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सइ ९, अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सति वा न वा करेस्सइ १०।

[२०] छद्मस्थ पुरुष इन दस स्थानों (बातों) को सर्वभाव से नहीं जानता और नहीं देखता। वे इस प्रकार हैं—(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) शरीर से रहित (मुक्त) जीव, (५) परमाणुपुद्गल, (६) शब्द, (७) गन्ध, (८) वायु, (९) यह जीव जिन होगा या नहीं ? तथा (१०) यह जीव सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं ?

२१ एयाणि चेव उप्पन्ननाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा धम्मत्थिकायं १ जाव करेस्सति वा न वा करेस्सति १०।

[२१] इन्हीं दस स्थानों (बातों) को उत्पन्न (केवल) ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त जिन-केवली सर्वभाव से जानते और देखते हैं। यथा—धर्मास्तिकाय यावत्—यह जीव समस्त दुःखों का अन्त करेगा या नहीं ?

विवेचन—सर्वभाव (पूर्णरूप) से छद्मस्थ के ज्ञान के अविषय और केवली के ज्ञान के विषयरूप दस स्थान—प्रस्तुत दो सूत्रों में से प्रथम सूत्र (सू. २०) में उन दस स्थानों (पदार्थों) के नाम गिनाए हैं, जिन्हें छद्मस्थ सर्वभावेन जान और देख नहीं सकता, द्वितीय सूत्र में उन्हीं दस का उल्लेख है, जिन्हें केवलज्ञानी सर्वभावेन जान और देख सकते हैं।

छद्मस्थ का प्रसंगवश विशेष अर्थ—यों तो छद्मस्थ का सामान्य अर्थ है—केवलज्ञानरहित,

---

१ भगवती. अ. वृत्ति पत्रांक ३४१-३४२

किन्तु यहाँ छद्मस्थ का विशेष अर्थ है—अवधिज्ञान आदि विशिष्ट ज्ञानरहित, क्योंकि विशिष्ट अवधिज्ञान धर्मास्तिकाय आदि को अमूर्त होने से नहीं जानता-देखता, किन्तु परमाणु आदि जो मूर्त हैं, उन्हें वह जान-देख सकता है, क्योंकि विशिष्ट अवधिज्ञान का विषय सर्व मूर्तद्रव्य हैं।

यदि यह शंका की जाए कि ऐसा छद्मस्थ भी परमाणु आदि को कथंचित् जानता है, सर्वभाव से (समस्त पर्यायों से) नहीं जानता-देखता, जबकि मूलपाठ में कहा गया है—सर्वभाव से नहीं जानता-देखता। इसका समाधान यह है कि यदि छद्मस्थ का ऐसा अर्थ किया जाएगा, तब तो छद्मस्थ के लिए सर्वभावेन अज्ञेय दस संख्या का नियम नहीं रहेगा, क्योंकि ऐसा छद्मस्थ घटादि पदार्थों को भी अनन्त पर्यायरूप से जानने में असमर्थ है। अतः 'सव्वभावेण' (सर्वभाव से) का अर्थ साक्षात् (प्रत्यक्ष) करने से इस सूत्र का अर्थ संगत होगा कि अवधि आदि विशिष्टज्ञान-रहित छद्मस्थ धर्मास्तिकाय आदि दस वस्तुओं को प्रत्यक्षरूप से नहीं जानता-देखता। उत्पन्नज्ञान-दर्शनधारक, अरिहन्त-जिन-केवली केवलज्ञान से इन दस को सर्वभावेन अर्थात्—साक्षात्रूप से जानते-देखते हैं।[1]

ज्ञान और अज्ञान के स्वरूप तथा भेद-प्रभेद का निरूपण

२२. कतिविहे णं भंते ! नाणे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे ओहिनाणे मणपज्जवनाणे केवलनाणे।

[२२ प्र.] भगवन् ! ज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२२ उ.] गौतम ! ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यवज्ञान और (५) केवलज्ञान।

२३. [१] से किं तं आभिणिबोहियनाणे ?

आभिणिबोहियनाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—उग्गहो ईहा अवाओ धारणा।

[२३-१ प्र.] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान कितने प्रकार का (किस रूप का) कहा गया है ?

[२३-१ उ.] गौतम ! आभिनिबोधिकज्ञान चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय (अपाय) और (४) धारणा।

[२] एवं जहा रायप्पसेणइए णाणाणं भेदो तहेव इह वि भाणियव्वो जाव से त्तं केवलनाणे।

[२३-२] जिस प्रकार राजप्रश्नीयसूत्र में ज्ञानों के भेद कहे हैं, उसी प्रकार 'यह है वह केवलज्ञान', यहाँ तक कहना चाहिए।

२४. अण्णाणे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विभंगनाणे।

---

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३४२

[२४ प्र] भगवन् ! अज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२४ उ] गौतम ! अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) मति-अज्ञान, (२) श्रुत-अज्ञान और (३) विभंगज्ञान।

२५ से किं तं मइअण्णाणे ?

मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—उग्गहो जाव धारणा।

[२५ प्र] भगवन् ! मति-अज्ञान कितने प्रकार का है ?

[२५ उ] गौतम ! मति-अज्ञान चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय और (४) धारणा।

२६ [१] से किं तं उग्गहे ?

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य।

[२६-१ प्र] भगवन् ! वह अवग्रह कितने प्रकार का है ?

[२६-१ उ] गौतम ! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

[२] एवं जहेव आभिणिबोहियनाणं तहेव, नवरं एगट्ठियवज्जं जाव नोइंदियधारणा, से तं धारणा। से त्तं मतिअण्णाणे।

[२६-२] जिस प्रकार (नन्दीसूत्र में) आभिनिबोधिकज्ञान के विषय में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। विशेष इतना ही है कि वहाँ आभिनिबोधिकज्ञान के प्रकरण में अवग्रह आदि के एकार्थिक (समानार्थक) शब्द कहे हैं, उन्हें छोड़कर यह 'नोइन्द्रिय-धारणा है', यह हुआ धारणा का स्वरूप यहाँ तक कहना चाहिए। यह हुआ मति-अज्ञान का स्वरूप।

२७ से किं तं सुयअण्णाणे ?

सुतअण्णाणे जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छद्दिट्ठिएहिं जहा नंदीए जाव चत्तारि वेदा संगोवंगा। से त्तं सुयअन्नाणे।

[२७ प्र] भगवन् ! श्रुत-अज्ञान किस प्रकार का कहा गया है ?

[२७ उ] गौतम ! जिस प्रकार नन्दीसूत्र में कहा गया है—'जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा प्ररूपित है', इत्यादि यावत्—सांगोपांग चार वेद श्रुत-अज्ञान है। इस प्रकार श्रुत अज्ञान का वर्णन पूर्ण हुआ।

२८ से किं तं विभंगनाणे ?

विभंगनाणे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—गामसंठिए नगरसंठिए जाव सन्निवेससंठिए दीवसंठिए

समुद्दसंठिए वाससंठिए वासहरसंठिए पव्वयसंठिए रुक्खसंठिए थूभसंठिए हयसंठिए गयसंठिए नरसंठिए किन्नरसंठिए किंपुरिससंठिए महोरगसंठिते गंधव्वसंठिए उसभसंठिए पसु-पसय-विहग वानरणाणासंठाणसंठिते पण्णत्ते।

[२८ प्र.] भगवन्! वह विभंगज्ञान किस प्रकार का कहा गया है?

[२८ उ.] गौतम! विभंगज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—ग्रामसंस्थित (ग्राम के आकार का), नगरसंस्थित (नगराकार) यावत् सन्निवेशसंस्थित, द्वीपसंस्थित, समुद्रसंस्थित, वर्ष-संस्थित (भरतादि क्षेत्र के आकार का), वर्षधरसंस्थित (क्षेत्र की सीमा करने वाले पर्वतों के आकार का), सामान्य पर्वत-संस्थित, वृक्षसंस्थित, स्तूपसंस्थित, हयसंस्थित (अश्वाकार), गजसंस्थित, नरसंस्थित, किन्नरसंस्थित, किम्पुरुषसंस्थित, महोरगसंस्थित, गन्धर्वसंस्थित, वृषभसंस्थित (बैल के आकार का), पशु पशय (अर्थात्—दो खुरवाले जंगली चौपाये जानवर), विहग (पक्षी), और वानर के आकार वाला है। इस प्रकार विभंगज्ञान नाना संस्थानसंस्थित (आकारों से युक्त) कहा गया है।

विवेचन—ज्ञान और अज्ञान के स्वरूप तथा भेद-प्रभेद का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. २२ से २८ तक) में ज्ञान और अज्ञान के स्वरूप तथा नन्दीसूत्र और राजप्रश्नीयसूत्र के अतिदेशपूर्वक दोनों के भेद-प्रभेदों का निरूपण किया गया है।

पांच ज्ञानों का स्वरूप—(१) आभिनिबोधिक—इन्द्रिय और मन की सहायता से योग्य देश में रहे हुए पदार्थ का अर्थाभिमुख (यथार्थ) निश्चित (संशयादि रहित) बोध (ज्ञान) आभिनिबोधिक है। इसका दूसरा नाम मतिज्ञान भी है। (२) श्रुतज्ञान—श्रुत अर्थात् श्रवण किये जाने वाले शब्द के द्वारा (वाच्यवाचक सम्बन्ध से) तत्सम्बद्ध अर्थ को इन्द्रिय और मन के निमित्त से ग्रहण कराने वाला भावश्रुतकारणरूप बोध श्रुतज्ञान कहलाता है। अथवा इन्द्रिय और मन की सहायता से श्रुत-ग्रन्थानुसारी एवं मतिज्ञान के अनन्तर शब्द और अर्थ के पर्यालोचनपूर्वक होने वाला बोध श्रुतज्ञान है। (३) अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मूर्तद्रव्यों को ही जानने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा नीचे-नीचे विस्तृत वस्तु का अवधान—परिच्छेद जिससे हो उसे अवधिज्ञान कहते हैं। (४) मनःपर्यवज्ञान—मनन किये जाते हुए मनोद्रव्यों के पर्याय आकार विशेष को—संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना प्रत्यक्ष जानना। (५) केवलज्ञान—केवल=एक, मति आदि ज्ञानों से निरपेक्ष त्रिकाल-त्रिलोकवर्ती सर्वद्रव्य-पर्यायों का युगपत्, शुद्ध, सकल, असाधारण एवं अनन्त, हस्तामलकवत् प्रत्यक्षज्ञान।

आभिनिबोधिकज्ञान के चार प्रकारों का स्वरूप (१) अवग्रह—इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य देश में रहने पर दर्शन के बाद (विशेषरहित) सामान्य रूप से सर्वप्रथम होने वाला पदार्थ का ग्रहण (बोध) (२) ईहा—अवग्रह से जाने गए पदार्थ के विषय में संशय को दूर करते हुए उसके विशेष धर्म की विचारणा करना। (३) अवाय—ईहा से ज्ञात हुए पदार्थों में 'यही है, अन्य नहीं', इस प्रकार से अर्थ का निश्चय करना। (४) धारणा—अवाय से निश्चित अर्थ को स्मृति आदि रूप में धारण कर लेना, ताकि उसकी विस्मृति न हो।

अर्थावग्रह-व्यंजनावग्रह का स्वरूप—अर्थावग्रह पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को कहते हैं। इसमें पदार्थ के वर्ण, गंध आदि का अस्पष्ट ज्ञान होता है। इसकी स्थिति एक समय की है। अर्थावग्रह से पहले उपकरणेन्द्रिय द्वारा इन्द्रियसम्बद्ध शब्दादि विषयों का अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है। इसकी जघन्य स्थिति आवलिका के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट दो से नौ श्वासोच्छ्वास की है। व्यञ्जनावग्रह 'दर्शन' के बाद चक्षु और मन को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों से होता है। तत्पश्चात् इन्द्रियों का पदार्थ के साथ सम्बन्ध होने पर 'यह कुछ है', ऐसा अस्पष्ट ज्ञान होता है, वही अर्थावग्रह है।

अवग्रह आदि की स्थिति और एकार्थक नाम—अवग्रह की एक समय की, ईहा की अन्तर्मुहूर्त की, अवाय की अन्तर्मुहूर्त की और धारणा की स्थिति संख्यातवर्षीय आयु वालों की अपेक्षा संख्यात काल की और असंख्यातवर्षीय आयु वालों की अपेक्षा असंख्यातकाल की है। अवग्रह आदि चारों के प्रत्येक के पांच-पांच एकार्थक नाम नन्दीसूत्र में दिये गए हैं। चारों के कुल मिलाकर बीस भेद हैं।

श्रुतादि ज्ञानों के भेद—नन्दीसूत्र के अनुसार श्रुतज्ञान के अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत आदि १४ भेद हैं, अवधिज्ञान के भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय, ये दो भेद हैं, मनःपर्यवज्ञान के ऋजुमति और विपुलमति, ये दो भेद हैं। केवलज्ञान एक ही है, उसका कोई भेद नहीं है।

मति अज्ञान आदि का स्वरूप और भेद—मिथ्यादृष्टि के मतिज्ञान को मति-अज्ञान कहते हैं, अर्थात्—सामान्य मति सम्यग्दृष्टि के लिए मतिज्ञान है और मिथ्यादृष्टि के लिए मति अज्ञान है। इसी तरह अविशेषित श्रुत, सम्यग्दृष्टि के लिए श्रुतज्ञान है और मिथ्यादृष्टि के लिए श्रुत अज्ञान है। मिथ्या अवधिज्ञान को विभंगज्ञान कहते हैं। ज्ञान में अवग्रह आदि के जो एकार्थक नाम कहे गए हैं, उन्हें यहाँ अज्ञान के प्रकरण में नहीं कहना चाहिए। विभंगज्ञान का शब्दशः अर्थ इस प्रकार भी होता है—जिसमें विरुद्ध भंग—वस्तुविकल्प उठते हों, अथवा अवधिज्ञान से विरूप-विपरीत मिथ्या भंग (विकल्प) वाला ज्ञान।

ग्रामसंस्थित आदि का स्वरूप ग्राम का अवलम्बन होने से वह विभंगज्ञान ग्रामाकार (ग्रामसंस्थित) कहलाता है, इसी प्रकार अन्यत्र भी ऊहापोह कर लेना चाहिए।[1]

औधिक, चौबीस दण्डकवर्ती तथा सिद्ध जीवों में ज्ञान-अज्ञान-प्ररूपणा

२९. जीवा णं भंते ! किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! जीवा नाणी वि, अन्नाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुन्नाणी, अत्थेगतिया तिन्नाणी, अत्थेगतिया चउनाणी, अत्थेगतिया एगनाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य। जे तिन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी, अहवा आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी मणपज्जवनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी मणपज्जवनाणी। जे एगनाणी ते नियमा केवलनाणी। जे अन्नाणी ते अत्थेगतिया दुअन्नाणी, अत्थेगतिया

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३४४-३४५

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन युक्त) भाग ३, पृष्ठ १३०२ से १३०४ तक

तिअण्णाणी। जे दुअण्णाणी ते मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। जे तिअण्णाणी ते मतिअण्णाणी सुयअण्णाणी विभगनाणी।

[२९ प्र] भगवन्! जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

[२९ उ] गौतम! जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो जीव ज्ञानी हैं, उनमे से कुछ जीव दो ज्ञान वाले हैं, कुछ जीव तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ जीव चार ज्ञान वाले हैं और कुछ जीव एक ज्ञान वाले है। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं, अथवा आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी होते हैं। जो चार ज्ञान वाले है, वे आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञानी है। जो एक ज्ञान वाले हैं, वे नियमत केवलज्ञानी हैं। जो जीव अज्ञानी हैं, उनमे से कुछ जीव दो अज्ञान वाले हैं, कुछ तीन अज्ञान वाले होते हैं। जो जीव दो अज्ञान वाले हैं, वे मति-अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी है, जो जीव तीन अज्ञान वाले हैं, वे मति-अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभगज्ञानी हैं।

३० नेरइया ण भते! कि नाणी, अण्णाणी?

गोयमा! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी, त जहा—आभिणिबोहि० सुयनाणी ओहिनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी। एव तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

[३० प्र] भगवन्! नरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

[३० उ] गौतम! नरयिक जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमे जो ज्ञानी हैं, वे नियमत तीन ज्ञान वाले हैं, यथा—आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। जो अज्ञानी हैं, उनमे से कुछ दो अज्ञान वाले हैं, और कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

३१ [१] असुरकुमारा ण भंते! कि नाणी अण्णाणी?

जहेव नेरइया तहेव तिण्णि नाणाणि नियमा, तिण्णि य अण्णाणाणि भयणाए।

[३१-१ प्र] भगवन्! असुरकुमार ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

[३१-१ उ] गौतम! जसे नरयिको का कथन किया गया है, उसी प्रकार असुरकुमारो का भी कथन करना चाहिए। अर्थात्—जो ज्ञानी हैं वे नियमत तीन ज्ञान वाले है और जो अज्ञानी हैं, वे भजना (विकल्प) से तीन अज्ञान वाले है।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[३१-२] इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए।

३२ [१] पुढविक्काइया ण भंते! कि नाणी अण्णाणी?

गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी—मतिअण्णाणी य, सुयअण्णाणी य।

[३२-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[३२-१ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी।

[२] एवं जाव वणस्सइकाइया।

[३२-२] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

३३. [१] बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा दुण्णाणी, तं जहा—आभिणिबोहियनाणी य सुयणाणी य। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी—आभिणिबोहिय अण्णाणी य सुय अण्णाणी य।

[३३-१ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी भी हैं या अज्ञानी ?

[३३-१ उ.] गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः दो ज्ञान वाले हैं, यथा—मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी। जो अज्ञानी हैं, नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी।

[२] एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि।

[३३-२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी कहना चाहिए।

३४. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी। एवं तिण्णि नाणाणि तिण्णि अण्णाणि य भयणाए।

[३४ प्र.] भगवन् ! प्रश्न है कि पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[३४ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी है, उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कई तीन ज्ञान वाले हैं। इस प्रकार (पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों में) तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

३५. मणुस्सा जहा जीवा तहेव पंच नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए।

[३५] जिस प्रकार औधिक जीवों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार मनुष्यों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

३६. वाणमंतरा जहा नेरइया।

[३६] वाणव्यन्तर देवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

३७. जोतिसिय-वेमाणियाणं तिण्णि नाणा तिण्णि अन्नाणा नियमा।

[३७] ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में तीन ज्ञान, अज्ञान नियमतः होते हैं।

३८ सिद्धा ण भंते ! पुच्छा ।
गोयमा ! णाणी, नो अण्णाणी । नियमा एगनाणी—केवलनाणी ।

[३८ प्र] भगवन् ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[३८ उ] गौतम ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं । वे नियमतः एक—केवलज्ञान वाले हैं ।

विवेचन—औधिक जीवों, चौवीस दण्डकवर्ती जीवों एवं सिद्धों में ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. २९ से ३८ तक) में औधिक जीवों, नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौवीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों में पाये जाने वाले ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा की गई है ।

नैरयिकों में तीन ज्ञान नियमतः, तीन अज्ञान भजनातः—सम्यग्दृष्टि नैरयिकों में भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है, इसलिए वे नियमतः तीन ज्ञान वाले होते हैं । किन्तु जो अज्ञानी होते हैं, उनमें कितने ही दो अज्ञान वाले होते हैं, जब कोई असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च नरक में उत्पन्न होता है, तब उसके अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता, इस अपेक्षा से नारकों में दो अज्ञान कहे गए हैं । जो मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय नरक में उत्पन्न होता है, तो उसको अपर्याप्त अवस्था में भी विभंगज्ञान होता है । अतः इस अपेक्षा से नारकों में तीन अज्ञान कहे गए हैं ।

तीन विकलेन्द्रिय जीवों में दो ज्ञान—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में जिस औपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ने या तिर्यञ्च ने पहले आयुष्य बांध लिया है, वह उपशम-सम्यक्त्व का वमन करता हुआ उनमें (द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों में) उत्पन्न होता है । उस जीव को अपर्याप्त दशा में सास्वादनसम्यग्दर्शन होता है, जो जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह आवलिका तक रहता है, तब तक सम्यग्दर्शन होने के कारण वह ज्ञानी रहता है, उस अपेक्षा से विकलेन्द्रियों में दो ज्ञान बतलाए हैं । इसके पश्चात् तो वह मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाने से अज्ञानी हो जाता है ।[१]

गति आदि आठ द्वारों की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी-प्ररूपणा

३९ निरयगतिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि । तिण्णि नाणाइं नियमा, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए ।

[३९ प्र] भगवन् ! निरयगतिक (नरकगति में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[३९ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं ।

४० तिरियगतिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! दो नाणा, दो अन्नाणा नियमा ।

[४० प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चगतिक (तिर्यञ्चगति में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३४५

[४० उ] गौतम ! उनमे नियमत दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं।

४१ मणुस्सगतिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! तिण्णि नाणाइ भयणाए, दो अण्णाणाइ नियमा।

[४१ प्र] भगवन् ! मनुष्यगतिक (मनुष्यगति मे जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[४१ उ] गौतम ! उनके भजना (विकल्प) से तीन ज्ञान होते हैं, और नियमत दो अज्ञान होते हैं।

४२ देवगतिया जहा निरयगतिया।

[४२] देवगतिक जीवो मे ज्ञान और अज्ञान का कथन निरयगतिक जीवो के समान समझना चाहिए।

४३ सिद्धगतिया णं भते !०।

जहा सिद्धा (सु ३८)। १।

[४३ प्र] भगवन् ! सिद्धगतिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[४३ उ] गौतम ! उनका कथन सिद्धो की तरह करना चाहिये। अर्थात्—वे नियमत एक केवलज्ञान वाले होते हैं। (प्रथमद्वार)

४४ सइदिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! चत्तारि नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[४४ प्र] भगवन् ! सेन्द्रिय (इन्द्रिय वाले) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[४४ उ] गौतम ! उनके चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

४५ एगिदिया ण भते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा पुढविक्काइया।

[४५ प्र] भगवन् ! एक इन्द्रिय वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[४५ उ] गौतम ! इनके विषय मे पृथ्वीकायिक जीवो (सू २७ म कथित) की तरह कहना चाहिए।

४६ बेइदिय-तेइदिय-चतुरिंदियाण दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा।

[४६] दो इन्द्रियो, तीन इन्द्रियों और चार इन्द्रिया वाले जीव मे दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमत होते हैं।

४७ पंचिदिया जहा सइदिया।

[४७] पाच इन्द्रिया वाले जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो की तरह करना चाहिए।

४८. अणिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सिद्धा (सु. ३८)। २।

[४८ प्र.] भगवन् ! अनिन्द्रिय (इन्द्रियरहित) जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[४८ उ.] गौतम ! उनके विषय में सिद्धों (सू. ३८ में कथित) की तरह जानना चाहिए। (द्वितीय द्वार)

४९. सकाइया णं भंते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ?

गोयमा ! पंच नाणाणि तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

[४९ प्र.] भगवन् ! सकायिक (कायासहित) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[४९ उ.] गौतम ! सकायिक जीवों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

५०. पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया नो नाणी, अण्णाणी। नियमा दुअण्णाणी, तं जहा—मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

[५०] पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक जीव तक ज्ञानी नहीं, अज्ञानी होते हैं। वे नियमतः दो अज्ञान (मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान) वाले होते हैं।

५१. तसकाइया जहा सकाइया (सु. ४९)।

[५१] त्रसकायिक जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान [सू. ४९] समझना चाहिए।

५२. अकाइया णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सिद्धा (सु. ३८)। ३।

[५२ प्र.] भगवन् ! अकायिक (कायारहित) जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[५२ उ.] गौतम ! इनके विषय में सिद्धों की तरह जानना चाहिए। (तृतीय द्वार)

५३. सुहुमा णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा पुढविकाइया (सु. ५०)।

[५३ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[५३ उ.] गौतम इनके विषय में पृथ्वीकायिक जीवों (सू. ५० में कथित) के समान कथन करना चाहिए।

५४. बादरा णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु. ४९)।

[५४ प्र.] भगवन् ! बादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[५४ उ] गौतम ! इनके विषय में सकायिक जीवों (सू ४९ में कथित) के समान कहना चाहिए ।

५५ नोसुहुमानोबादरा ण भंते ! जीवा० ?

जहा सिद्धा (सु ३८)। ४।

[५५ प्र] भगवन् ! नोसूक्ष्म नोबादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[५५ उ] गौतम ! इनका कथन सिद्धों की तरह समझना चाहिए । (चतुर्थ-द्वार)

५६ पज्जत्ता ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[५६ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[५६ उ] गौतम ! इनका कथन सकायिक (सू ४९ में कथित) जीवों के समान जानना चाहिए ।

५७ पज्जत्ता ण भंते ! नेरइया किं नाणी० ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा नियमा ।

[५७ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[५७ उ] गौतम ! इनमें नियमत तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं ।

५८ जहा नेरइया एव जाव थणियकुमारा ।

[५८] पर्याप्त नैरयिक जीवों की तरह पर्याप्त स्तनितकुमारों तक में ज्ञान और अज्ञान का कथन करना चाहिए ।

५९ पुढविकाइया जहा एगिंदिया । एव जाव चउरिंदिया ।

[५९] (पर्याप्त) पृथ्वीकायिक जीवों का कथन एकेन्द्रिय जीवों (सू ४५ में कथित) की तरह करना चाहिए । इसी प्रकार (पर्याप्त) चतुरिन्द्रिय (अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) तक समझना चाहिए ।

६० पज्जत्ता ण भंते ! पचिदियतिरिक्खजोणिया किं नाणी, अण्णाणी ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

[६० प्र] भगवन् ! पर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[६० उ] गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं ।

६१ मणुस्सा जहा सकाइया (सु ४९)।

[६१] पर्याप्त मनुष्यों सम्बन्धी कथन सकायिक जीवों (सू ४९ में कथित) की तरह करना चाहिए।

६२ वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया (सु ५७)।

[६२] पर्याप्त वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन नैरयिक जीवों (सू ५७) की तरह समझना चाहिए।

६३ अपज्जत्ता ण भंते! जीवा किं नाणी २?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए।

[६३ प्र] भगवन्! अपर्याप्तक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी?

[६३ उ] उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते है।

६४ [१] अपज्जत्ता ण भंते! नेरइया किं नाणी, अन्नाणी?

तिण्णि नाणा नियमा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए।

[६४ १ प्र] भगवन्! अपर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है?

[६४-१ उ] गौतम! उनमे तीन ज्ञान नियमत होते है, तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[६४-२] नैरयिक जीवो की तरह अपर्याप्त स्तनितकुमार देवो तक इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

६५ पुढविक्काइया जाव वणस्सतिकाइया जहा एगिंदिया।

[६५] (अपर्याप्त) पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक जीवो तक का कथन एकेन्द्रिय जीवो की तरह करना चाहिए।

६६. [१] बेंदिया ण० पुच्छा।

दो नाणा, दो अण्णाणा णियमा।

[६६-१ प्र] भगवन्! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

[६६-१ उ] गौतम! इनमे दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान नियमत होते हैं।

[२] एव जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण।

[६६-२] इसी प्रकार (अपर्याप्त) पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तक जानना चाहिए।

६७ अपज्जत्तगा ण भंते! मणुस्सा किं नाणी, अन्नाणी?

तिण्णि नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा।

[६७ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक मनुष्य ज्ञानी है या अज्ञानी हैं ?

[६७ उ.] गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजना से होते हैं और दो अज्ञान नियमत होते हैं।

६८ वाणमंतरा जहा नेरइया (सु. ६४)।

[६८] अपर्याप्त वाणव्यन्तर जीवों का कथन नैरयिक जीवों की तरह (सू. ६४ के अनुसार) समझना चाहिए।

६९ अपज्जत्तगा जोतिसिय-वेमाणिया णं० ?

तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा नियमा।

[६९ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क और वैमानिक ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[६९ उ.] गौतम ! उनमें तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमत होते हैं।

७० नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तगा णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

जहा सिद्धा (सु. ३८)। ५।

[७० प्र.] भगवन् ! नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[७० उ.] गौतम ! इनका कथन सिद्ध जीवों (सू. ३८) के समान जानना चाहिए।

(पंचम द्वार)

७१ निरयभवत्था णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

जहा निरयगतिया (सु. ३९)।

[७१ प्र.] भगवन् ! निरयभवस्थ (नारकभव में रहे हुए) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[७१ उ.] गौतम ! इनके विषय में निरयगतिक जीवों के समान (सू. ३९ के अनुसार) कहना चाहिए।

७२ तिरियभवत्था णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए।

[७२ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[७२ उ.] गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

७३ मणुस्सभवत्था णं० ?

जहा सकाइया (सु. ४९)

[७३ प्र.] भगवन् ! मनुष्यभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[७३ उ.] गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों की तरह (सू. ४९ के अनुसार) करना चाहिए।

७४ देवभवत्था ण भंते ! ० ?

जहा निरयभवत्था (सु ७१)।

[७४ प्र] भगवन् ! देवभवस्थ जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[७४ उ] गौतम ! निरयभवस्थ जीवों के समान (सू ७१ के अनुसार) इनके विषय में कहना चाहिए।

७५ अभवत्था जहा सिद्धा (सु ३८)। ६।

[७५] अभवस्थ जीवों के विषय में सिद्धों की तरह (सू ३८ के अनुसार) जानना चाहिए।
(छठा द्वार)

७६ भवसिद्धिया ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[७६ प्र] भगवन् ! भवसिद्धिक (भव्य) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[७६ उ] गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों के समान (सू ४९ के अनुसार) जानना चाहिए।

७७ अभवसिद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[७७ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

[७७ उ] गौतम ! ये ज्ञानी नही, किन्तु अज्ञानी हैं। इनमे तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

७८ नोभवसिद्धियनोअभवसिद्धिया ण भंते ! जीवा० ?

जहा सिद्धा (सु ३८)। ७।

[७८ प्र] भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[७८ उ] गौतम ! इनके सम्बन्ध मे सिद्ध जीवों के समान (सू ३८ के अनुसार) कहना चाहिए।
(सप्तम द्वार)

७९ सण्णी ण० पुच्छा।

जहा सइंदिया (सु ४४)।

[७९ प्र] भगवन् ! संज्ञी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[७९ उ] गौतम ! सेन्द्रिय जीवों के कथन के समान (सू ४४ के अनुसार) इनके विषय मे कहना चाहिए।

८० असण्णी जहा बेइंदिया (सु ४६)।

[८०] असंज्ञी जीवों के विषय मे द्वीन्द्रिय जीवों के समान (सू ४६ के अनुसार) कहना चाहिए।

८१ नोसण्णीनोअसण्णी जहा सिद्धा (सु ३८)। ८।

[८१] नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों का कथन सिद्ध जीवों की तरह (सू ३८ के अनुसार) जानना चाहिए। (अष्टम द्वार)

विवेचन—गति आदि आठ द्वारों की अपेक्षा ज्ञानी-अज्ञानी प्ररूपणा—प्रस्तुत ४३ सूत्रों (सू ३९ से ८१ तक) में गति, इन्द्रिय, काय, सूक्ष्म, पर्याप्त, भवस्थ, भवसिद्धिक एवं संज्ञी, इन आठ द्वारों के माध्यम से उन-उन गति आदि वाले जीवों में सम्भवित ज्ञान या अज्ञान की प्ररूपणा की गई है।

गति आदि द्वारों के माध्यम से जीवों में ज्ञान-अज्ञान की प्ररूपणा—(१) गतिद्वार—गति की अपेक्षा पांच प्रकार के जीव हैं—नरकगतिक, तिर्यंचगतिक, मनुष्यगतिक, देवगतिक और सिद्धगतिक निरयगतिक जीव वे हैं जो यहाँ से मर कर नरक में जाने के लिए विग्रहगति (अन्तरालगति) में चल रहे हैं, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य, जो नरक में जाने वाले हैं, वे यदि सम्यग्दृष्टि हों तो ज्ञानी होते हैं, क्योंकि उन्हें अवधिज्ञान भवप्रत्यय होने के कारण विग्रहगति में भी होता है और नरक में नियमत उन्हें तीन ज्ञान होते हैं। यदि वे मिथ्यादृष्टि हों तो वे अज्ञानी होते हैं, उनमें से नरकगामी यदि असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंच हो तो विग्रहगति में अपर्याप्त अवस्था तक उसे विभंगज्ञान नहीं होता, उस समय तक उसे दो अज्ञान ही होते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय नरकगामी को विग्रहगति में भी भवप्रत्ययिक विभंगज्ञान होता है, इसलिए निरयगतिक में तीन अज्ञान भजना से कहे गए हैं। तिर्यंचगतिक जीव वे हैं जो यहाँ से मर कर तिर्यंचगति में जाने के लिए विग्रहगति में चल रहे हैं। उनमें नियम से दो ज्ञान या दो अज्ञान इसलिए बताए हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव अवधिज्ञान से च्युत होने के बाद मति-श्रुतज्ञानसहित तिर्यंचगति में जाता है। इसलिए उसमें नियमत दो ज्ञान होते हैं तथा मिथ्यादृष्टि जीव विभंगज्ञान से गिरने के बाद मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञानसहित तिर्यंचगति में जाता है, इसलिए नियमत उसमें दो अज्ञान होते हैं। मनुष्यगति में जाने के लिए जो विग्रहगति में चल रहे हैं, वे मनुष्यगतिक कहलाते हैं। मनुष्यगति में जाते हुए जो जीव ज्ञानी होते हैं, उनमें से कई तीर्थंकर की तरह अवधिज्ञानसहित मनुष्यगति में जाते हैं, उनमें तीन ज्ञान होते हैं, जबकि अवधिज्ञानरहित मनुष्यगति में जाने वाले में दो ज्ञान होते हैं। इसीलिए यहाँ तीन ज्ञान भजना से कहे गए हैं। जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे विभंगज्ञानरहित ही मनुष्यगति में उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमें दो अज्ञान नियम से कहे गए हैं। देवगति में जाते हुए विग्रहगति में चल रहे जीवों का कथन नैरयिकों की तरह (नियमत तीन ज्ञान अथवा भजना से तीन अज्ञान वाले) समझना चाहिए। सिद्धगति जीवों में तो केवल एक ही ज्ञान—केवलज्ञान होता है। (२) इन्द्रियद्वार—सेन्द्रिय का अर्थ है—इन्द्रिय वाले जीव—यानी इन्द्रियों से काम लेने वाले जीव। सेन्द्रिय ज्ञानी जीवों को २, ३ या ४ ज्ञान होते हैं, यह कथन लब्धि की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योंकि उपयोग की अपेक्षा तो सभी जीवों को एक समय में एक ही ज्ञान होता है। केवलज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है, वह सेन्द्रिय नहीं है। अज्ञानी सेन्द्रिय जीवों को तीन अज्ञान भजना से होते हैं, किन्हीं को दो और किन्हीं को तीन अज्ञान होते हैं। एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि होने से अज्ञानी ही होते हैं, उनमें नियमत दो अज्ञान होते हैं। तीन विकलेन्द्रियों में दो अज्ञान तो नियमत होते हैं, किन्तु सास्वादनगुणस्थान होने की अवस्था में दो ज्ञान भी होने सम्भव हैं। अनिन्द्रिय (इन्द्रियों के उपयोग से रहित) जीव तो केवलज्ञानी ही होते हैं। उनमें एकमात्र केवलज्ञान पाया जाता है। (३) कायद्वार—सकायिक कहते हैं—औदारिक आदि शरीरयुक्त जीव को अथवा

पृथ्वीकायिक आदि ६ कायसहित को । वे केवली भी होते हैं।' अत सकायिक सम्यग्दृष्टि मे पाच ज्ञान भजना से होते हैं । जो मिथ्यादृष्टि सकायिक हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से होते हैं । जो षट्कायो मे से किसी भी काय मे नहीं हैं, या जो औदारिक आदि कायो से रहित है, ऐसे अकायिक जीव सिद्ध होते हैं, उनमे सिर्फ केवलज्ञान ही होता है । (४) सूक्ष्मद्वार—सूक्ष्म जीव पृथ्वीकायिकवत् मिथ्या-दृष्टि होने से उन मे दो अज्ञान होते है । बादर जीवो मे केवलज्ञानी भी होते हैं, अत सकायिक की तरह उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। (५) पर्याप्तद्वार—पर्याप्तजीव केवलज्ञानी भी होते हैं, अत उनमे सकायिक जीवो के समान भजना से ५ ज्ञान और ३ अज्ञान पाए जाते है । पर्याप्त नारको मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमत होते हैं, क्योकि असज्ञी जीवो मे से आए हुए अपर्याप्त नारको मे ही विभगज्ञान नहीं होता, मिथ्यात्वी पर्याप्तको में तो होता ही है । इसी प्रकार भवनपति एव वाणव्यन्तर देवो मे समझना चाहिए । पर्याप्त विकलेन्द्रियों म नियम से दो अज्ञान होते हैं । पर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यंचो मे ३ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से होते ह, उसका कारण है, कितने ही जीवो को अवधिज्ञान या विभज्ञान होता है, कितनो को नही होता । अपर्याप्तक नरयिको म तीन ज्ञान नियम से और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि जीवो म सास्वादन-सम्यग्दर्शन सम्भव होने से उनमे दो ज्ञान और शेष में दो अज्ञान पाए जाते हैं। अपर्याप्त सम्यग्दृष्टि मनुष्यो मे तीर्थंकर प्रकृति को बांधे हुए जीव भी होते हैं, उनमे अवधिज्ञान होना सम्भव है, अत उनम तीन ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। मिथ्यादृष्टि मनुष्यो को अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान नहीं होता, इसलिए उनमे नियमत दो अज्ञान होते हैं । अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो मे जो असज्ञी जीवो से आकर उत्पन्न होता है, उसमे अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान का अभाव होता है, शेष मे अवधि-ज्ञान या विभगज्ञान नियम से होता है, अत उनमे नरयिको के समान तीन ज्ञान वाले, या दो अथवा तीन अज्ञान वाले होते हैं । ज्योतिष्क और वैमानिक देवो म सज्ञी जीवो में से ही आकर उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनमे अपर्याप्त अवस्था मे भी भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान या विभगज्ञान अवश्य होना है । अत उनमे नियमत तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं । नोपर्याप्त नोअपर्याप्त जीव सिद्ध होते हैं, व पर्याप्त-अपर्याप्त नामकर्म से रहित होते हैं । अत उनमे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है । (६) भवस्थद्वार—निरयभवस्थ का अर्थ है—नरकगति मे उत्पत्तिस्थान को प्राप्त । इसी प्रकार तिर्यंचभवस्थ आदि पदो का अर्थ समझ लेना चाहिए । निरयभवस्थ का कथन निरयगतिकवत् समझ लेना चाहिए । (७) भवसिद्धिकद्वार—भवसिद्धिक यानी भव्य जीव जो सम्यग्दृष्टि हैं, उनमे सकायिक की तरह ५ ज्ञान भजना से होते हैं, जबकि मिथ्यादृष्टि मे तीन अज्ञान भजना से होते है । अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव सदव मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं, अत उनम तीन अज्ञान की भजना है । ज्ञान उनमें होना ही नहीं । (८) सज्ञीद्वार—सज्ञी जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो की तरह है, अर्थात्—उनम चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं । असज्ञी जीवो का कथन द्वीन्द्रिय जीवो के समान है, अर्थात्—अपर्याप्त अवस्था मे उनमे सास्वादनसम्यग्दर्शन की सम्भावना होने से दो ज्ञान भी पाए जाते हैं। अपर्याप्त अवस्था मे तो उनमे नियमत दो अज्ञान होते हैं ।[1]

अन्यद्वार—इससे आगे लब्धि आदि बारह द्वार अभी शेष हैं । लब्धिद्वार म लब्धियो के भेद-प्रभेद आदि का वर्णन विस्तृत होने से इस पाठ से अलग दे रहे हैं ।

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति

नौवें लब्धिद्वार की अपेक्षा से ज्ञानी-अज्ञानी की प्ररूपणा

८२ कतिविहा णं भंते ! लद्धी पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा—नाणलद्धी १ दंसणलद्धि २ चरित्तलद्धी ३ चरित्ताचरित्तलद्धी ४ दाणलद्धी ५ लाभलद्धी ६ भोगलद्धी ७ उवभोगलद्धी ८ वीरियलद्धी ९ इंदियलद्धी १०।

[८२ प्र.] भगवन् ! लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८२ उ.] गौतम ! लब्धि दस प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—(१) ज्ञानलब्धि, (२) दर्शनलब्धि, (३) चारित्रलब्धि, (४) चारित्राचारित्रलब्धि, (५) दानलब्धि, (६) लाभलब्धि, (७) भोगलब्धि, (८) उपभोगलब्धि, (९) वीर्यलब्धि और (१०) इन्द्रियलब्धि।

८३ णाणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियणाणलद्धी जाव केवलणाणलद्धी।

[८३ प्र.] भगवन् ! ज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८३ उ.] गौतम ! वह पांच प्रकार की कही गई है, यथा—आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् केवलज्ञानलब्धि।

८४ अण्णाणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मइअण्णाणलद्धी सुतअण्णाणलद्धी विभंगणाणलद्धी।

[८४ प्र.] भगवन् ! अज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८४ उ.] गौतम ! अज्ञानलब्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा—मति-अज्ञानलब्धि, श्रुत-अज्ञानलब्धि और विभंगज्ञानलब्धि।

८५ दंसणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी सम्मामिच्छादंसणलद्धी।

[८५ प्र.] भगवन् ! दर्शनलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८५ उ.] गौतम ! वह तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि।

८६ चरित्तलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयचरित्तलद्धी छेदोवट्ठावणियलद्धी परिहारविसुद्धलद्धी सुहुमसंपरायलद्धी अहक्खायचरित्तलद्धी।

[८६ प्र.] भगवन् ! चारित्रलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८६ उ] गौतम ! चारित्रलब्धि पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—सामायिक चारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनिकलब्धि, परिहारविशुद्धलब्धि, सूक्ष्मसम्परायलब्धि और यथाख्यात-चारित्रलब्धि।

८७ चरित्ताचरित्तलद्धी ण भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता।

[८७-प्र] भगवन् ! चारित्राचारित्रलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?
[८७-उ] गौतम ! वह एकाकार (एक प्रकार की) कही गई है।

८८ एव जाव उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता।

[८८] इसी प्रकार यावत् (दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि) उपभोगलब्धि, ये सब एक एक प्रकार की कही गई हैं।

८९ वीरियलद्धी ण भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, त जहा—बालवीरियलद्धी पंडियवीरियलद्धी बालपंडियवीरियलद्धी।

[८९-प्र] भगवन् ! वीर्यलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?
[८९-उ] गौतम ! वीर्यलब्धि तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—बालवीर्यलब्धि, पण्डितवीर्यलब्धि और बाल-पण्डितवीर्यलब्धि।

९० इंदियलद्धी ण भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—सोतिदियलद्धी जाव फासिदियलद्धी।

[९० प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?
[९० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् स्पर्शेन्द्रियलब्धि।

९१ [१] नाणलद्धिया ण भंते ! जीवा कि नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी, अत्थेगतिया दुनाणी। एव पच नाणाइ भयणाए।

[९१-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?
[९१-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार उनमें पाच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

[२] तस्स अलद्धीया ण भंते ! जीवा कि नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

नौवें लब्धिद्वार की अपेक्षा से ज्ञानी-अज्ञानी की प्ररूपणा

८२ कतिविहा णं भंते ! लद्धी पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा—णाणलद्धी १ दसणलद्धि २ चरित्तलद्धी ३ चरित्ताचरित्तलद्धी ४ दाणलद्धी ५ लाभलद्धी ६ भोगलद्धी ७ उवभोगलद्धी ८ वीरियलद्धी ९ इंदियलद्धी १०।

[८२ प्र] भगवन् ! लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८२ उ] गौतम ! लब्धि दस प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—(१) ज्ञानलब्धि, (२) दर्शनलब्धि, (३) चारित्रलब्धि, (४) चारित्राचारित्रलब्धि, (५) दानलब्धि, (६) लाभलब्धि, (७) भोगलब्धि, (८) उपभोगलब्धि, (९) वीर्यलब्धि और (१०) इन्द्रियलब्धि।

८३ णाणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियणाणलद्धी जाव केवलणाणलद्धी।

[८३ प्र] भगवन् ! ज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८३ उ] गौतम ! वह पांच प्रकार की कही गई है, यथा—आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् केवलज्ञानलब्धि।

८४ अण्णाणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मइअण्णाणलद्धी सुतअण्णाणलद्धी विभंगणाणलद्धी।

[८४ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८४ उ] गौतम ! अज्ञानलब्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा—मति-अज्ञानलब्धि, श्रुत-अज्ञानलब्धि और विभंगज्ञानलब्धि।

८५ दसणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दसणलद्धी मिच्छादसणलद्धी सम्मामिच्छादंसणलद्धी।

[८५ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

[८५ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि।

८६ चरित्तलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयचरित्तलद्धी छेदोवट्ठावणियलद्धी परिहारविसुद्धलद्धी सुहुमसंपरायलद्धी अहक्खायचरित्तलद्धी।

[८६ प्र] भगवन् ! चारित्रलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं और जो चार ज्ञान से युक्त हैं, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धीया णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। एवं ओहिनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९४-२ प्र.] भगवन् ! अवधिज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[९४-२ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। इस तरह उनमें अवधिज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

९५. [१] मणपज्जवनाणलद्धिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। अत्थेगतिया तिणाणि, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिणाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुतणाणी मणपज्जवणाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी मणपज्जवनाणी।

[९५-१ प्र.] भगवन् ! मन:पर्यवज्ञानलब्धि वाले जीवों के लिये प्रश्न है कि वे ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[९५-१ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं और कितने ही चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मन:पर्यायज्ञान वाले हैं, और जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्यायज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धीया णं० पुच्छा।

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि, मणपज्जवणाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९५-२ प्र.] भगवन् ! मन:पर्यवज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९५-२ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमें मन:पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

९६. [१] केवलनाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगणाणी—केवलनाणी।

[९६-१ प्र.] भगवन् ! केवलज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९६-१ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियमत: एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणि वि। केवलनाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९१-२ प्र] भगवन् ! ज्ञानलब्धिरहित (अज्ञानलब्धि वाले) जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[९१-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नहीं अज्ञानी हैं। उनमें से कितने ही जीव दो अज्ञान वाले (और कितने ही तीन अज्ञान वाले) होते हैं। इस प्रकार उनमें तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

९२ [१] आभिणिबोहियणाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी, अत्थेगतिया दुण्णाणी, चत्तारि नाणाइं भयणाए।

[९२-१ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९२-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं ! उनमें से कितने ही जीव दो ज्ञान वाले, कितने ही तीन ज्ञान वाले और कितने ही चार ज्ञान वाले होते हैं। इस तरह उनमें चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी-केवलनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९२-२ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि-रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९२-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं, और जो अज्ञानी हैं, वे कितने ही दो अज्ञान वाले एवं कितने ही तीन अज्ञान वाले हैं। अर्थात्—उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

९३ [१] एवं सुयनाणलद्धीया वि।

[९३-१] श्रुतज्ञानलब्धि वाले जीवों का कथन भी इसी प्रकार (आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि वाले जीवों के समान) करना चाहिए।

[२] तस्स अलद्धीया वि जहा आभिणिबोहियनाणस्स अलद्धीया।

[९३-२] एवं श्रुतज्ञानलब्धिरहित जीवों का कथन आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि रहित जीवों की तरह जानना चाहिए।

९४ [१] ओहिनाणलद्धीया णं० पुच्छा ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी, अत्थेगतिया तिणाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिणाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी मणपज्जवनाणी।

[९४-१ प्र] भगवन् ! अवधिज्ञानलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[९४-१ उ] गौतम ! अवधिज्ञानलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कतिपय तीन ज्ञान वाले हैं और कई चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान,

श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं और जो चार ज्ञान से युक्त हैं, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धीया ण भंते ! जीवा किं नाणी० ?

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। एवं ओहिनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९४-२ प्र] भगवन् ! अवधिज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[९४-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। इस तरह उनमे अवधिज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

९५ [१] मणपज्जवनाणलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। अत्थेगतिया तिणाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिणाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुतणाणी मणपज्जवणाणी। जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी मणपज्जवनाणी।

[९५-१ प्र] भगवन् ! मन पर्यवज्ञानलब्धि वाले जीवो के लिये प्रश्न है कि वे ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[९५-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नही। उनमे से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं और कितने ही चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले है, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मन पर्यायज्ञान वाले हैं, और जो चार ज्ञान वाले है, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यायज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धीया ण० पुच्छा।

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि, मणपज्जवणाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९५-२ प्र] भगवन् ! मन पर्यवज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९५-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमे मन पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

९६ [१] केवलनाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगणाणी—केवलनाणी।

[९६-१ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९६-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी है, अज्ञानी नहीं। वे नियमत एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणि वि। केवलनाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९६-२ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९६-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमे या तो केवलज्ञान को छोड़ कर शेष ४ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

९७ [१] अण्णाणलद्धिया णं० पुच्छा।
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[९७-१ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं, यह प्रश्न है ?

[९७-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया णं० पुच्छा।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। पंच नाणाइं भयणाए।

[९७-२ प्र] भगवन् ! अज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[९७-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें ५ ज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

९८ जहा अण्णाणस्स लद्धिया अलद्धिया य भणिया एवं मइअण्णाणस्स, सुयअण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा।

[९८] जिस प्रकार अज्ञानलब्धियुक्त और अज्ञानलब्धि से रहित जीवों का कथन किया है, उसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत अज्ञानलब्धि वाले तथा इन लब्धियों से रहित जीवों का कथन करना चाहिए।

९९ विभंगनाणलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं नियमा। तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए। दो अण्णाणाइं नियमा।

[९९] विभंगज्ञानलब्धि से युक्त जीवों मे नियमत तीन अज्ञान होते हैं और विभंगज्ञान-लब्धिरहित जीवों मे पांच ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमत होते हैं।

१०० [१] दसणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१००-१ प्र] भगवन् ! दर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[१००-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी। उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ?
गोयमा ! तस्स अलद्धिया नत्थि।

[१००-२ प्र.] भगवन् ! दर्शनलब्धि-रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?
[१००-२ उ.] गौतम ! दर्शनलब्धिरहित जीव कोई भी नहीं होता।

१०१. [१] सम्मद्दंसणलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

[१०१-१] सम्यग्दर्शनलब्धि-प्राप्त जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१०१-२] सम्यग्दर्शनलब्धि रहित जीवों में तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१०२. [१] मिच्छादंसणलद्धिया णं भंते ! ० पुच्छा।
तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१०२-१ प्र.] भगवन् ! मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?
[१०२-१ उ.] गौतम ! उनमें तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए।

[१०२-२] मिथ्यादर्शनलब्धि रहित जीवों में ५ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से होते हैं।

१०३. सम्मामिच्छादंसणलद्धिया अलद्धिया य जहा मिच्छादंसणलद्धी अलद्धी तहेव भाणियव्वं।

[१०३] सम्यग्मिथ्यादर्शन (मिश्रदर्शन) लब्धिप्राप्त जीवों का कथन मिथ्यादर्शनलब्धियुक्त जीवों के समान और सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि-रहित जीवों का कथन मिथ्यादर्शनलब्धि-रहित जीवों के समान समझना चाहिए।

१०४. [१] चरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा ! पंच नाणाइं भयणाए।

[१०४-१ प्र.] भगवन् ! चारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?
[१०४-१ उ.] गौतम ! उनमें पांच ज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाणं मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिन्नि य अन्नाणाइं भयणाए।

[१०४-२] चारित्रलब्धिरहित जीवों में मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१०५. [१] सामाइयचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?
गोयमा ! नाणी, केवलवज्जाइं चत्तारि नाणाइं भयणाए।

[१०५-१ प्र] भगवन् ! सामायिकचारित्रलब्धिमान् जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[१०५-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं। उनमें केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए।

[१०५-२] सामायिकचारित्रलब्धिरहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१०६ एवं जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भणिया एवं जाव अहक्खायचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा, नवरं अहक्खायचरित्तलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

[१०६] इसी प्रकार यथाख्यातचारित्रलब्धि वाले जीवों तक का कथन सामायिकचारित्रलब्धियुक्त जीवों के समान करना चाहिए। इतना विशेष है कि यथाख्यातचारित्रलब्धिमान् जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। इसी तरह यथाख्यातचारित्रलब्धिरहित जीवों तक का कथन सामायिक-लब्धिरहित जीवों के समान करना चाहिए।

१०७ [१] चरित्ताचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी य, सुयनाणी य। जे तिन्नाणी ते आभि० सुयना० ओहिनाणी य।

[१०७-१ प्र] भगवन् ! चारित्राचारित्र (देशचारित्र) लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[१०७-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कई दो ज्ञान वाले, कई तीन ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं, जो तीन ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१०७-२] चारित्राचारित्रलब्धि-रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१०८ [१] दाणलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[१०८-१] दानलब्धिमान् जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धीया णं० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी नियमा। एगनाणी—केवलनाणी।

[१०८-२ प्र] भगवन् ! दानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[१०८-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है।

१०९ एव जाव वीरियस्स लद्धी अलद्धी य भाणियव्वा।

[१०९] इसी प्रकार यावत् वीयलब्धियुक्त और वीयलब्धि-रहित जीवों का कथन करना चाहिए।

११० [१] बालवीरियलद्धियाण तिण्णि नाणाइ तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[११०-१] बालवीर्यलब्धियुक्त जीवो मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए।

[११०-२] बालवीयलब्धि-रहित जीवा मे पाच ज्ञान भजना से होते हैं।

१११ [१] पडियवीरियलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए।

[१११-१] पण्डितवीयलब्धिमान् जीवो मे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाण मणपज्जवनाणवज्जाइ णाणाइ, अण्णाणाणि तिण्णि य भयणाए।

[१११-२] पण्डितवीयलब्धि-रहित जीवो मे मन पयवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

११२ [१] बालपडियवीरियलद्धिया ण भते! जीवा० ?
तिण्णि नाणाइ भयणाए।

[११२-१ प्र] भगवन्! बालपण्डितवीयलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

[११२-१ उ] गौतम! उनमे तीन ज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ भयणाए।

[११२-२] बालपण्डितवीयलब्धि-रहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

११३ [१] इदियलद्धिया ण भते! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?
गोयमा! चत्तारि णाणाइ, तिण्णि य अन्नाणाइ भयणाए।

[११३-१ प्र] भगवन्! इन्द्रियलब्धिमान् जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[११३-१ उ] गौतम! उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी, नियमा एगनाणी—केवलनाणी।

[११३-२ प्र] भगवन्! इन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[११३-२ उ] गौतम! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियमत एकमात्र केवलज्ञानी होते हैं।

[१०५-१ प्र] भगवन् ! सामायिकचारित्रलब्धिमान् जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

[१०५-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं। उनमे केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ तिण्णि य अण्णाणाइ भयणाए।

[१०५-२] सामायिकचारित्रलब्धिरहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

१०६ एव जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भणिया एव जाव अहक्खायचरित्त लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा, नवर अहक्खायचरित्तलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए।

[१०६] इसी प्रकार यथाख्यातचारित्रलब्धि वाले जीवो तक का कथन सामायिकचारित्रलब्धि युक्त जीवो के समान करना चाहिए। इतना विशेष है कि यथाख्यातचारित्रलब्धिमान् जीवो मे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। इसी तरह यथाख्यातचारित्रलब्धिरहित जीवा तक का कथन सामायिक लब्धिरहित जीवों के समान करना चाहिए।

१०७ [१] चरित्ताचरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी य, सुयनाणी य। जे तिन्नाणी ते आभि० सुयना० ओहिनाणी य।

[१०७-१ प्र] भगवन् ! चारित्राचारित्र (देशचारित्र) लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी हैं ?

[१०७-१ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते है, अज्ञानी नही। उनमे से कई दो ज्ञान वाले, कई तीन ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं, जो तीन ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते है।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१०७-२] चारित्राचारित्रलब्धि-रहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन ज्ञान भजना से होते हैं।

१०८ [१] दाणलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१०८-१] दानलब्धिमान जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धीया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी नियमा। एगनाणी—केवलनाणी।

[१०८-२ प्र] भगवन् ! दानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[१०८-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नही। उनमें नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है।

१०९ एव जाव वीरियस्स लद्धी अलद्धी य भाणियव्वा ।

[१०९] इसी प्रकार यावत् वीर्यलब्धियुक्त और वीर्यलब्धि-रहित जीवो का कथन करना चाहिए ।

११० [१] बालवीरियलद्धियाण तिण्णि नाणाइ तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए ।

[११०-१] बालवीर्यलब्धियुक्त जीवो मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है ।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए ।

[११०-२] बालवीर्यलब्धि-रहित जीवो मे पाच ज्ञान भजना से होते हैं ।

१११ [१] पडियवीरियलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए ।

[१११-१] पण्डितवीर्यलब्धिमान् जीवो मे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

[२] तस्स अलद्धियाण मणपज्जवनाणवज्जाइ णाणाइ, अण्णाणाणि तिण्णि य भयणाए ।

[१११-२] पण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीवो मे मन पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

११२ [१] बालपडियवीरियलद्धिया ण भते ! जीवा० ?

तिण्णि नाणाइ भयणाए ।

[११२-१ प्र] भगवन् ! बालपण्डितवीर्यलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

[११२-१ उ] गौतम ! उनमे तीन ज्ञान भजना से होते हैं ।

[२] तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ भयणाए ।

[११२-२] बालपण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीवो मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं ।

११३ [१] इदियलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! चत्तारि णाणाइ, तिण्णि य अन्नाणाइ भयणाए ।

[११३-१ प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धिमान् जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[११३-१ उ] गौतम ! उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा ।

गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी, नियमा एगनाणी—केवलनाणी ।

[११३-२ प्र] भगवन् ! इन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[११३-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं । वे नियमत एकमात्र केवलज्ञानी होते है ।

११४ [१] सोइंदियलद्धियाण जहा इंदियलद्धिया (सु ११३)।

[११४-१] श्रोत्रेन्द्रियलब्धियुक्त जीवों का कथन इन्द्रियलब्धिवाले जीवों की तरह (सू ११३ के अनुसार) करना चाहिए।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्येगतिया दुन्नाणी, अत्येगतिया एगन्नाणी। जे दुन्नाणी ते आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी। जे एगनाणी ते केवलनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअन्नाणी, त जहा—मइअण्णाणी य, सुयअण्णाणी य।

[११४-२ प्र] भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रियलब्धि-रहित जीव ज्ञानी होते ह, या अज्ञानी ?

[११४-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते है। जो ज्ञानी होते हैं, उनमे से कई दो ज्ञान वाले होते हैं और कई एक ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले होते है, वे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं। जो एक ज्ञान वाले होते हैं, वे केवलज्ञानी होते हैं। जो अज्ञानी होते हैं, वे नियमत दो अज्ञानवाले होते हैं यथा—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

११५ चक्खिदिय-घाणिंदियाण लद्धियाण अलद्धियाण य जहेव सोइंदियस्स (सु ११४)।

[११५] चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रियलब्धि वाले जीवो का कथन श्रोत्रेन्द्रियलब्धिमान् जीवा के समान (सू ११४ की तरह) करना चाहिए। चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रियलब्धि-रहित जीवो का कथन श्रोत्रेन्द्रियलब्धि रहित जीवो के समान करना चाहिए।

११६ [१] जिब्भिंदियलद्धियाण चत्तारि णाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाणि भयणाए।

[११६-१] जिह्वेन्द्रियलब्धि वाले जीवो मे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

[२] तस्स अलद्धिया ण० पुच्छा।

गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी-केवलनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअन्नाणी, त जहा—मइअण्णाणी य, सुतअन्नाणी य।

[११६-२ प्र] भगवन् ! जिह्वेन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी, यह प्रश्न है।

[११६-२ उ] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं, वे नियमत एकमात्र केवलज्ञान वाले होते हैं, और जो अज्ञानी होते हैं, वे नियमत दो अज्ञान वाले होते हैं, यथा—मति अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

११७ फासिंदियलद्धियाण अलद्धियाण जहा इंदियलद्धिया य अलद्धिया य (सु ११३)। ९।

[११७] स्पर्शेन्द्रियलब्धियुक्त जीवो का कथन इन्द्रियलब्धि वाले जीवो के समान (सू ११३ के अनुसार) करना चाहिए। (अर्थात् उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।)

स्पर्शेन्द्रियलब्धि-रहित जीवों का कथन इन्द्रियलब्धिरहित जीवों के समान (सू. ११३ के अनुसार) करना चाहिए। (अर्थात्—उनमें एकमात्र केवलज्ञान होता है।)

(नवम द्वार समाप्त)

विवेचन—लब्धिद्वार की अपेक्षा से ज्ञानी-अज्ञानी की प्ररूपणा—प्रस्तुत नवम द्वार—लब्धिद्वार के प्रारम्भ से पूर्व लब्धि के दस प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेद का कथन करके ज्ञानादिलब्धि में ज्ञानी-अज्ञानी की सैद्धान्तिक प्ररूपणा की गई है।

लब्धि की परिभाषा—ज्ञानादि गुणों के प्रतिबन्धक उन ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षय या क्षयोपशम से आत्मा में ज्ञानादि गुणों की उपलब्धि (लाभ या प्रकट) होना लब्धि है। यह जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द भी है।

लब्धि के मुख्य भेद—ज्ञानादि दस हैं। (१) ज्ञानलब्धि—ज्ञानावरणीयकर्म के क्षय या क्षयोपशम से आत्मा में मतिज्ञानादि गुणों का लाभ होना। (२) दर्शनलब्धि—सम्यक्, मिथ्या या मिश्र श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम प्राप्त होना दर्शनलब्धि है। (३) चारित्रलब्धि—चारित्र-मोहनीयकर्म के क्षयादि से होने वाला परिणाम चारित्रलब्धि है। (४) चारित्राचारित्रलब्धि—अप्रत्याख्यानी चारित्रमोहनीयकर्म के क्षयोपशम से होने वाला आत्मा का देशविरतिपरिणाम चारित्राचारित्रलब्धि है। (५) दानलब्धि—दानान्तराय के क्षय या क्षयोपशम से होने वाली लब्धि। (६) लाभलब्धि—लाभान्तराय के क्षय अथवा क्षयोपशम से होने वाली लब्धि। (७) भोग-लब्धि—भोगान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि को भोगलब्धि कहते हैं। (८) उपभोगलब्धि—उपभोगान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि उपभोगलब्धि है। (९) वीर्यलब्धि—वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम से होने वाली लब्धि। (१०) इन्द्रियलब्धि—मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से तथा जातिनामकर्म एवं पर्याप्तनामकर्म के उदय से होने वाली लब्धि।

ज्ञानलब्धि—ज्ञान के प्रतिबन्धक ज्ञानावरणीयकर्म के क्षयादि से आत्मा में ज्ञानगुण का लाभ प्रकट होना। ज्ञानलब्धि के ५ और इसके विपरीत अज्ञानलब्धि के तीन भेद बताये गए हैं।

दर्शनलब्धि के तीन भेद : उनका स्वरूप—(१) सम्यग्दर्शनलब्धि—मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से आत्मा में होने वाला परिणाम। सम्यग्दर्शन हो जाने पर मति-अज्ञान आदि भी सम्यग्ज्ञान रूप में परिणत हो जाते हैं। (२) मिथ्यादर्शनलब्धि—अदेव में देवबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि और कुगुरु में गुरुबुद्धिरूप आत्मा के विपरीत श्रद्धान—मिथ्यात्व के अशुद्ध पुद्गलों के वेदन से उत्पन्न विपर्यासरूप जीव-परिणाम को मिथ्यादर्शनलब्धि कहते हैं। (३) सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दर्शनलब्धि—मिथ्यात्व के अर्धविशुद्ध पुद्गल के वेदन से एवं मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न मिश्ररुचि—मिश्ररूप (किञ्चित् अयथार्थ तत्त्वश्रद्धानरूप) जीव के परिणाम को सम्यग्मिथ्या-दर्शनलब्धि कहते हैं।

चारित्रलब्धि : स्वरूप और प्रकार—चारित्रमोहनीयकर्म के क्षयादि से होने वाले विरतिरूप परिणाम को, अथवा अन्य जन्म में गृहीत कर्ममल के निवारणार्थ मुमुक्षु आत्मा के सर्वसावद्यनिवृत्तिरूप परिणाम को चारित्रलब्धि कहते हैं। (१) सामायिकचारित्रलब्धि—सर्वसावद्यव्यापार के त्याग एवं निरवद्यव्यापारसेवनरूप—रागद्वेषरहित आत्मा में निरन्तर ज्ञानानुष्ठान के लाभ को सामायिकचारित्र-लब्धि कहते हैं। सामायिक के दो भेद हैं—इत्वरकालिक और यावत्कथिक। इन दोनों के कारण

सामायिकचारित्रलब्धि के भी दो भेद हो जाते हैं। (२) छेदोपस्थापनीयचारित्रलब्धि—जिस चारित्र में पूर्वपर्याय का छेद करके महाव्रतों का उपस्थापन—आरोपण होता है, तद्रूप अनुष्ठान लाभ को छेदोपस्थापनीयचारित्रलब्धि कहते हैं। यह दो प्रकार का है—निरतिचार और सातिचार। इनके कारण छेदोपस्थापनीयचारित्रलब्धि के भी दो भेद हो जाते हैं। (३) परिहारविशुद्धिचारित्रलब्धि—जिस चारित्र में परिहार (तपश्चर्या विशेष) से आत्मशुद्धि होती है, अथवा अनेषणीय आहारादि के परित्याग से विशेषतः आत्मशुद्धि होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते हैं। इस चारित्र में तपस्या का कल्प अठारह मास में परिपूर्ण होता है। इसकी लम्बी प्रक्रिया है। निर्विश्यमानक और निर्विष्टकायिक के भेद से परिहारविशुद्धिचारित्र दो प्रकार का होने से परिहारविशुद्धिचारित्रलब्धि भी दो प्रकार की है। (४) सूक्ष्मसम्परायचारित्रलब्धि—जिस चारित्र में सूक्ष्म सम्पराय अर्थात् सूक्ष्म (सज्वलन) लोभकषाय शेष रहता है, उसे सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहते हैं, ऐसे चारित्र के लाभ को सूक्ष्मसम्पराय चारित्रलब्धि कहते हैं। इस चारित्र के विशुद्धयमान और संक्लिश्यमान ये दो भेद होने से सूक्ष्म-सम्परायचारित्रलब्धि भी दो प्रकार की है। (५) यथाख्यातचारित्रलब्धि—कषाय का उदय न होने से, अकषायी साधु का प्रसिद्ध चारित्र 'यथाख्यातचारित्र' कहलाता है। इसके स्वामियों के छद्मस्थ और केवली ऐसे दो भेद होने से यथाख्यातचारित्रलब्धि दो प्रकार की है।

चारित्राचारित्रलब्धि का अर्थ है—देशविरतिलब्धि। यहाँ मूलगुण, उत्तरगुण तथा उसके भेदों की विवक्षा नहीं की है, किन्तु अप्रत्याख्यानावरणकषाय के क्षयोपशमजन्य परिणाममात्र की विवक्षा की गई है। इसलिए यह लब्धि एक ही प्रकार की है।

दानादिलब्धियाँ एक एक प्रकार की—दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि तथा उपभोग लब्धि के भी भेदों की विवक्षा न करने से ये लब्धियाँ भी एक-एक प्रकार की कही गई हैं।

वीर्यलब्धि—वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम से प्रकट होने वाली लब्धि वीर्यलब्धि है। उसके तीन प्रकार हैं—(१) बालवीर्यलब्धि—जिससे बाल अर्थात् संयमरहित जीव की असंयमरूप प्रवृत्ति होती है, वह बालवीर्यलब्धि है। (२) पण्डितवीर्यलब्धि—जिससे संयम के विषय में प्रवृत्ति होती हो। (३) बालपण्डितवीर्यलब्धि—जिससे देशविरति में प्रवृत्ति होती हो, उसे बालपण्डितवीर्यलब्धि कहते हैं।

ज्ञानलब्धियुक्त जीवों में ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—ज्ञानलब्धिमान् जीव सदा ज्ञानी और अज्ञानलब्धिवाले (ज्ञानलब्धिरहित) जीव सदा अज्ञानी होते हैं। आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं, इसका कारण यह है कि केवली के आभिनिबोधिकज्ञान नहीं होता। मतिज्ञान की अलब्धि वाले जो ज्ञानी हैं, वे एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे दो अज्ञान वाले या तीन अज्ञानयुक्त होते हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञान की लब्धि और अलब्धि वाले जीवों के विषय में समझना चाहिए। अवधिज्ञान वालों में तीन ज्ञान (मति, श्रुत और अवधि) अथवा चार ज्ञान (केवलज्ञान को छोड़कर) होते हैं। अवधिज्ञान की अलब्धिवाले जो ज्ञानी होते हैं उनमें दो ज्ञान (मति और श्रुत) होते हैं, या तीन ज्ञान (मति, श्रुत और मनःपर्यव ज्ञान) होते हैं, या फिर एक ज्ञान (केवलज्ञान) होता है। जो अज्ञानी हैं, उनमें दो अज्ञान (मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान) या तीनों अज्ञान होते हैं। मनःपर्यायज्ञानलब्धि वाले जीवों में या तो तीन ज्ञान (मति, श्रुत और मनःपर्याय ज्ञान) या फिर ४ ज्ञान (केवलज्ञान को छोड़कर) होते हैं। मनःपर्यायज्ञान की अलब्धिवाले जीवों में जो ज्ञानी हैं, उनमें दो ज्ञान (मति और श्रुत) वाले, या तीन ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि) वाले हैं, या फिर

एक नान (केवलज्ञान) वाले हैं। इनमे जो अनानी ह, वे दो या तीन अज्ञान वाले हैं। केवलनान-लब्धिवाले जीवा मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है, केवलज्ञान की अलब्धिवाले जीवा मे जो नानी हैं उनमे प्रथम के दो ज्ञान, या प्रथम के तीन ज्ञान, अथवा मति, श्रुत और मन पर्यव नान, या प्रथम के चार ज्ञान होते हैं, जो अज्ञानी है, उनमे दो या तीन अज्ञान होते हैं।

अज्ञानलब्धियुक्त जीवो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—अज्ञानलब्धिमान् जीवा मे भजना स तीन अज्ञान (कई प्रथम के दो अज्ञान वाले और कई तीन अज्ञान वाले) होते हैं। अज्ञानलब्धि-रहित जीवों म भजना से ५ ज्ञान पाए जाते ह। मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान की लब्धि वाले जीवा मे पूर्ववत् ३ अज्ञान भजना से पाए जाए हैं तथा मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान की अलब्धि वाले जीवा मे पूर्ववत् ५ ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। विभगज्ञान की लब्धि वाले अज्ञानी जीवो मे नियमत तीन अज्ञान होते है। विभगज्ञान की अलब्धि वाले ज्ञानी जीवो मे पाच ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवो मे नियमत प्रथम के दो अज्ञान पाए जाते हैं।

दर्शनलब्धियुक्त जीवों मे ज्ञान अज्ञान-प्ररूपणा—कोई भी जीव दर्शनलब्धि से रहित नहीं होता। दर्शन के तीन प्रकारो (सम्यक्, मिथ्या और मिश्र) मे से कोई-न-कोई एक दर्शन जीव मे होता ही है। सम्यग्दर्शनलब्धि वाले जीवो मे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। सम्यग्दर्शनलब्धि रहित (मिथ्यादृष्टि या मिश्रदृष्टि) जीवो मे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव अज्ञानी ही होते हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। मिथ्यादर्शनलब्धि-रहित जीव या तो सम्यग्दृष्टि होगे या मिश्रदृष्टि होगे। यदि वे सम्यग्दृष्टि होग तो उनमे ५ ज्ञान भजना से होग और मिश्रदृष्टि होग तो उनमे तीन अज्ञान भजना से होंगे। सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि और अलब्धि वाल जीवा मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा मिथ्यादर्शनलब्धि और अलब्धिवाले जीवो की तरह समझनी चाहिए।

चारित्रलब्धियुक्त जीवो मे ज्ञान अज्ञान प्ररूपणा—चारित्रलब्धि वाले जीव नानी ही होते है। अत उनमे ५ ज्ञान भजना से पाए जाते है, क्योंकि केवली भगवान् भी चारित्री होते है। चारित्र अलब्धिवाले जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो तरह के होते हैं। जो नानी हैं, उनमे भजना स ४ नान (मन पर्यायज्ञान को छोडकर) होते हैं, क्योंकि असयती सम्यग्दृष्टि जीवो मे पहले के दो या तीन नान होते हैं, और सिद्धभगवान् मे केवलज्ञान होता है। सिद्धा म चारित्रलब्धि या अलब्धि नही है वे ना-चारित्री नोअचारित्री होते ह। चारित्रलब्धिरहित, जो अनानी हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। सामायिक आदि चार प्रकार के चारित्रलब्धियुक्त जीव नानी और छद्मस्थ ही होते हैं, इसलिए उनम चार ज्ञान (केवलनान को छोड कर) भजना से पाये जाते हैं। यथाख्यातचारित्र ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक के जीवो मे होता है। इनमे स ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव छद्मस्थ होने स उनमे आदि के ४ ज्ञान होते हैं और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव केवली होते ह अत उनमे केवल ५ वा ज्ञान (केवलज्ञान) होता है। इसलिए कहा गया है कि यथाख्यातचारित्रलब्धियुक्त जीवा म ५ नान भजना से पाए जाते हैं।

चारित्राचारित्रलब्धियुक्त जीवों मे ज्ञान अज्ञान प्ररूपणा—इस लब्धि वाले जीव सम्यग्दृष्टि नानी होते है, इसलिए उनम तीन ज्ञान भजना से पाए जाते है, क्योंकि तीर्थंकर आदि जीव जब तक पूर्ण चारित्र ग्रहण नहीं करते, तब तक व जन्म से लेकर दीक्षाग्रहण करने तक मति, श्रुत और अवधि-नान से सम्पन्न होते हैं। चारित्राचारित्रलब्धि रहित जीव, जो असयत सम्यग्दृष्टि व नानी हैं, उनमे

सम्यग्ज्ञान होने से ५ ज्ञान भजना से पाए जाते हैं, इनमे जो अज्ञानी हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

दानादि चार लब्धियो वाले जीवो मे ज्ञान अज्ञान प्ररूपणा—दानान्तरायकर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से प्राप्त होने वाली दानलब्धि से युक्त जो ज्ञानी जीव (सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, महाव्रती एव केवली) है, उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। दानलब्धि वाले जो अज्ञानी जीव हैं, उनमे तीन अज्ञान पाए जाते हैं। दान आदि लब्धिरहित जीव सिद्ध होते है, यद्यपि उनके दानान्तराय आदि पाचो अन्तरायकर्मों का क्षय हो चुका होता है, तथापि वहा दातव्य आदि पदार्थ का अभाव होने से तथा दानग्रहणकर्ता जीवो के न होने से और कृतकृत्य हो जाने के कारण किसी प्रकार का प्रयोजन न होने से उनमे दान आदि को लब्धि नही मानी गई है। उनमे नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है। अत दानलब्धि और अलब्धि वाले जीवो की तरह लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि और वीर्यलब्धि तथा इनकी अलब्धि वाले जीवो का कथन करना चाहिए।

वीर्यलब्धि वाले जीवो मे ज्ञान अज्ञान प्ररूपणा—बालवीर्यलब्धि वाले जीव असयत अविरत होते हैं। उनमे से जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव हैं, उनमे तीन ज्ञान भजना से और जो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव हैं उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। बालवीर्यलब्धि-रहित जीव सर्वविरत, देशविरत और सिद्ध होते हैं, अत उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। पण्डितवीर्यलब्धि सम्पन्न जीव ज्ञानी ही होते हैं, उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। मन पर्यवज्ञान पण्डितवीर्यलब्धि वाले जीवो मे ही होता है। पण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीव असयत, देशसयत और सिद्ध होते है। इनमे से असयत जीवो मे पहले के तीन ज्ञान या तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है, देशसयत मे प्रथम के तीन ज्ञान भजना से पाए जाते हैं और सिद्ध जीवो मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है। सिद्ध जीवों मे पण्डितवीर्यलब्धि नही होती, क्योकि अहिंसादि धर्मकार्यों मे प्रवृत्ति करना पण्डितवीर्य कहलाता है, और एसी प्रवृत्ति सिद्धो मे नही होती। बाल पण्डितवीर्यलब्धि वाले देशसयत जीव होते हैं, उनमे प्रथम के तीन ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। बाल-पण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीव असयत, सर्वविरत और सिद्ध होते हैं, इनमे पाच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

इन्द्रियलब्धि वाले जीवो मे ज्ञान-अज्ञान प्ररूपणा— इन्द्रियलब्धि वाले ज्ञानी जीवो मे प्रथम के चार ज्ञान भजना से होते हैं इनमे केवलज्ञान नही होता, क्योकि केवलज्ञानी इन्द्रियो का उपयोग नही करते। इन्द्रियलब्धियुक्त अज्ञानी जीवो मे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। इन्द्रियलब्धि रहित जीव एकमात्र केवलज्ञानी होते हैं, उनमे सिर्फ एक केवलज्ञान पाया जाता है। श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि, चक्षुरिन्द्रियलब्धि और घ्राणेन्द्रियलब्धि वाले और अलब्धि वाले जीवो का कथन इन्द्रियलब्धि और अलब्धि वाले जीवो की तरह करना चाहिए। अर्थात्—श्रोत्रेन्द्रिय आदि लब्धिरहित जो ज्ञानी जीव है, उनमें दो या एक ज्ञान होता है। जो ज्ञानी हैं, उनमे सास्वादनसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त अवस्था मे दो ज्ञान पाये जाते है, जो एक ज्ञान वाले हैं, उनमे सिर्फ केवलज्ञान होता है, क्योकि श्रोत्रादि इन्द्रियोपयोग-रहित होने से श्रोत्रादि इन्द्रियलब्धि-रहित हैं। श्रोत्रेन्द्रियलब्धि-रहित अज्ञानी जीवो मे प्रथम के दो अज्ञान पाए जाते है। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धिमान् जो पचेन्द्रिय जीव है, उनमे चार ज्ञान (केवलज्ञान के अतिरिक्त) और तीन अज्ञान भजना से होते है। विकलेन्द्रियो मे श्रोत्रेन्द्रियलब्धिवत् दो ज्ञान व दो अज्ञान पाए जाते है। चक्षुरिन्द्रियलब्धि-रहित जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा केवली होते है एव घ्राणेन्द्रियलब्धि-रहित जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और केवली

होते हैं, उनमें से, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीवों में सास्वादनसम्यग्दर्शन के सद्भाव में पूर्व के दो ज्ञान और उसके अभाव में प्रथम के दो अज्ञान पाए जाते हैं। केवलियों में सिर्फ एक केवलज्ञान होता है। जिह्वेन्द्रियलब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान या तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। जिह्वेन्द्रिय-लब्धि-रहित जीव ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, उनमें एकमात्र केवलज्ञान और जो अज्ञानी हैं, वे एकेन्द्रिय हैं, उनमें (विभगज्ञान के सिवाय) दो अज्ञान नियमतः होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में सास्वादनसम्यग्दर्शन का अभाव होने से उनमें ज्ञान नहीं होता। स्पर्शेन्द्रिय लब्धि और अलब्धि वाले जीवों का कथन, इन्द्रियलब्धि और अलब्धिवाले जीवों की तरह करना चाहिए। अर्थात् लब्धिमान् जीवों में चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से होते हैं और अलब्धिमान् जीव केवली होते हैं, उनमें एकमात्र केवलज्ञान होता है।[1]

दसवें उपयोगद्वार से लेकर पन्द्रहवें आहारकद्वार तक के जीवों में ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा

११८. सागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

[११८ प्र.] भगवन् ! साकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते हैं, या अज्ञानी ?

[११८ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं, जो ज्ञानी होते हैं, उनमें पांच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं और जो अज्ञानी होते हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

११९. आभिणिबोहियनाणसाकारोवउत्ता णं भंते ! ० ?

चत्तारि णाणाइं भयणाए।

[११९ प्र.] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[११९ उ.] गौतम ! उनमें चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

१२०. एवं सुयनाणसागारोवउत्ता वि।

[१२०] श्रुतज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

१२१. ओहिनाणसागारोवउत्ता जहा ओहिनाणलद्धिया (सु. ९४ [१])।

[१२१] अवधिज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन अवधिज्ञानलब्धिमान् जीवों के समान (सू. ९४-१ के अनुसार) करना चाहिए।

१२२. मणपज्जवनाणसागारोवउत्ता जहा मणपज्जवनाणलद्धिया (सु. ९५ [१])।

[१२२] मनःपर्यवज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन मनःपर्यवज्ञानलब्धिमान् जीवों के समान (सू. ९५-१ के अनुसार) करना चाहिए।

१२३. केवलनाणसागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धिया (सु. ९६ [१])।

[१२३] केवलज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन केवलज्ञानलब्धिमान् जीवों के समान (सू. ९६-१ के अनुसार) समझना चाहिए। (अर्थात्—उनमें एकमात्र केवलज्ञान ही पाया जाता है।)

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३५० से ३५४ तक

१२४ मइअण्णाणसागारोवउत्ताण तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१२४] मति-अज्ञानसाकारोपयोगयुक्त जीवो मे तीन अज्ञान भजना स पाए जाते ह।

१२५ एव सुयअण्णाणसागारोवउत्ता वि।

[१२५] इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानसाकारोपयोगयुक्त जीवो का कथन करना चाहिए।

१२६ विभगनाणसागारोवजुत्ताण तिण्णि अण्णाणाइ नियमा।

[१२६] विभगज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवो मे नियमत तीन अज्ञान पाए जाते ह।

१२७ अणागारोवउत्ता ण भते! जीवा किं नाणी, अण्णाणी?
पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१२७ प्र] भगवन्! अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

[१२७ उ] गौतम! अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। उनम पाच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते ह।

१२८ एव चक्खुदसण अचक्खुदसणअणागारोवजुत्ता वि, नवर चत्तारि णाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।

[१२८] इसी प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदशन अनाकारोपयोगयुक्त जीवो के विषय म समझ लेना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से होते ह।

१२९ ओहिदसणअणागारोवजुत्ता ण पुच्छा।

गोयमा! नाणी वि अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया तिन्नाणी, अत्थेगतिया चउनाणी। जे तिन्नाणी ते आभिणिबोहिय० सुमनाणी ओहिनाणी। जे चउणाणी ते आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी। जे अन्नाणी ते नियमा तिअण्णाणी, त जहा—मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभगनाणी।

[१२९ प्र] भगवन्! अवधिदशन-अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी होते है अथवा अज्ञानी, यह प्रश्न है।

[१२९ उ] गौतम! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी होते हैं, उनमे कई तीन ज्ञान वाले होते हैं और कई चार ज्ञान वाले होते ह। जो तीन ज्ञान वाले होते हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी होते है और जो चार ज्ञान वाले होते हे, वे आभिनिबोधिकज्ञान से मन पर्यवज्ञान तक वाले होते हैं। जो अज्ञानी होते ह, उनमे नियमत तीन अज्ञान पाए जाते ह, यथा—मति अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभगज्ञान।

१३० केवलदसणअणागारोवजुत्ता जहा केवलनाणलद्धिया (सु ९६ [१])। १०।

[१३०] केवलदशन-अनाकारोपयोगयुक्त जीवो का कथन केवलज्ञानलब्धियुक्त जीवो के समान (सू ९६-१ के अनुसार) समझना चाहिए। (दशम द्वार)

१३१ सजोगी णं भंते ! जीवा किं नाणी० ?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[१३१ प्र] भगवन् ! सयोगी जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[१३१ उ] गौतम ! सयोगी जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान (सू ४९ के अनुसार) समझना चाहिए।

१३२ एवं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी वि।

[१३२] इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवों का कथन भी समझना चाहिए।

१३३ अजोगी जहा सिद्धा (सु ३८)। ११।

[१३३] अयोगी (योग-रहित) जीवों का कथन सिद्धों के समान (सू ३८ के अनुसार) समझना चाहिए। (ग्यारहवां द्वार)

१३४ सलेस्सा णं भंते ! ०?

जहा सकाइया (सु ४९)।

[१३४ प्र] भगवन् ! सलेश्य (लेश्या वाले) जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[१३४ उ] गौतम ! सलेश्य जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान (सू ४९ के अनुसार) जानना चाहिए।

१३५ [१] कण्हलेस्सा णं भंते ! ०?

जहा सइंदिया। (सु ४४)।

[१३५-१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यावान् जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[१३५-१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों के समान (सू ४४ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] एवं जाव पम्हलेसा।

[१३५-२] इसी प्रकार यावत् (नीललेश्या, कापोतलेश्या [illegible]लेश्या), पद्मलेश्या वाले जीवों का कथन करना चाहिए।

१३६ सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा (सु १३४)।

[१३६] शुक्ललेश्या वाले जीवों का कथन सलेश्य जीवों के समान (सू १३४ के अनुसार) समझना चाहिए।

१३७ अलेस्सा जहा सिद्धा (सु ३८)। १२।

[१३७] अलेश्य (लेश्यारहित) जीवों का कथन सिद्धों के समान (सू ३८ के अनुसार) जानना चाहिए। (बारहवां द्वार)

१३८ [१] सकसाई ण भंते ! ० ?

जहा सइंदिया (सु ४४)।

[१३८-१ प्र] भगवन् ! सकषायी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

[१३८-१ उ] गौतम ! सकषायी जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो के समान (सू ४४ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] एव जाव लोहकसाई।

[१३८-२] इसी प्रकार यावत् (क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी), लोभकषायी जीवो के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

१३९ अकसाई ण भंते ! किं णाणी० ?

पंच नाणाइं भयणाए। १३।

[१३९ प्र] भगवन् ! अकषायी (कषायमुक्त) जीव क्या ज्ञानी होते हैं, अथवा अज्ञानी ?

[१३९ उ] गौतम ! (वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नही।) उनमे पाच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं। (तेरहवा द्वार)

१४० [१] सवेदगा ण भंते ! ० ?

जहा सइंदिया (सु ४४)।

[१४०-१ प्र] भगवन् ! सवेदक (वेदसहित) जीव ज्ञानी होते हैं, अथवा अज्ञानी ?

[१४०-१ उ] गौतम ! सवेदक जीवो का कथन सेन्द्रिय जीवो के समान (सू ४४ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] एव इत्थिवेदगा वि। एव पुरिसवेयगा। एव नपुंसकवे०।

[१४०-२] इसी तरह स्त्रीवेदका, पुरुषवेदको और नपुंसकवेदक जीवो के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए।

१४१ अवेदगा जहा अकसाई (सु १३९)।१४।

[१४१] अवेदक (वेदरहित) जीवो का कथन अकषायी जीवो के समान (सू १३९ के अनुसार) जानना चाहिए। (चौदहवां द्वार)

१४२ आहारगा ण भंते ! जीवा० ?

जहा सकसाई (सु १३८), नवरं केवलनाणं वि।

[१४२ प्र] भगवन् ! आहारक जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[१४२ उ] गौतम ! आहारक जीवो का कथन सकषायी जीवो के समान (सू १३८ के अनुसार) जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि उनमे केवलज्ञान भी पाया जाता है।

१४३ अणाहारगा ण भंते ! जीवा किं नाणी, अण्णाणी ?

मणपज्जवनाणवज्जाइं नाणाइं, अन्नाणाणि य तिण्णि भयणाए। १५।

[१४३ प्र.] भगवन् ! अनाहारक जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी ?

[१४३ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, उनमे मन पर्यवज्ञान को छोड कर शेष चार ज्ञान पाए जाते हैं और जो अज्ञानी हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। (पन्द्रहवा द्वार)

विवेचन—दसवें उपयोगद्वार से पन्द्रहवें आहारक द्वार तक के जीवो मे ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा—प्रस्तुत २६ सूत्रों (सू. ११८ से १४३ तक) मे उपयोग, योग, लेश्या, कषाय, वेद और आहार, इन छह प्रकारो के विषयो से सहित और रहित जीवो म पाए जाने वाले ज्ञान और अज्ञान की प्ररूपणा की गई है।

१० **उपयोगद्वार**—उपयोग एक तरह से ज्ञान ही है, जो जीव का लक्षण है, जीव मे अवश्य पाया जाता है। इसके दो प्रकार हैं—साकार-उपयोग और निराकार-उपयोग। साकार का अर्थ है—विशेषतासहित बोध। उसका उपयोग, अर्थात्—ग्रहण-व्यापार, साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) कहलाता है। साकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो प्रकार के होते हैं। ज्ञानी जीवो मे से कुछ जीवो मे दो, कुछ जीवो मे तीन, कुछ जीवो मे चार और कुछ जीवो मे एकमात्र केवलज्ञान होता है, इस तरह ऐसे जीवो मे पाच ज्ञान भजना से होते हैं। इनका कथन यहा ज्ञानलब्धि की अपेक्षा से समझना चाहिए, उपयोग की अपेक्षा से तो एक समय मे एक ही ज्ञान अथवा एक ही अज्ञान होता है। इनमे जो जीव अज्ञानी हैं, उनमे तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान आदि साकारोपयोग के भेद हैं। आभिनिबोधिक आदि से युक्त साकारोपयोग वाले जीवो मे ज्ञान-अज्ञान का कथन उपर्युक्त वर्णनानुसार उस-उस ज्ञान या अज्ञान की लब्धि वाले जीवो के समान जानना चाहिए।

अनाकारोपयोग—जिस ज्ञान मे आकार अर्थात्—जाति, गुण, क्रिया आदि स्वरूपविशेष का प्रतिभास (बोध) न हो, उसे अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) कहते हैं। अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो तरह के होते हैं। ज्ञानी जीवो मे लब्धि की अपेक्षा पाच ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवो म लब्धि की अपेक्षा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन वाले जीव केवली नही होते, इसलिए चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन सनाकारोपयोगयुक्त जीवो के समान जानना चाहिए। अर्थात् उनमे चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते है। अवधिदर्शन-अनाकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी और अज्ञानी दो तरह के होते हैं, क्योकि दर्शन का विषय सामान्य है। सामान्य अभिन्नरूप होने से दर्शन मे ज्ञानी और अज्ञानी भेद नही होता। अत इसमे कई तीन या चार ज्ञान वाले होते हैं, अथवा नियमत तीन अज्ञान वाले होते हैं

११ **योगद्वार**—सयोगी जीव अथवा मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवों का कथन सकायिक जीवो के समान समझना चाहिए। चू कि केवली भगवान् मे भी मनोयोगादि होते है, इसलिए इनमे (सम्यग्दृष्टि आदि मे) पाच ज्ञान भजना से होते है तथा मिथ्यादृष्टि सयोगी या पृथक्-पृथक् योग वाले जीवो मे तीन अज्ञान भजना से होते है। अयोगी (सिद्ध भगवान् और चतुर्दशगुणस्थानवर्ती केवली) जीवो मे एकमात्र एक केवलज्ञान होता है।

१२ **लेश्याद्वार**—लेश्यायुक्त (सलेश्य) जीवो मे ज्ञान अज्ञान की प्ररूपणा सकषायी जीवो के समान है, उनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से समझने चाहिए। चू कि केवलीभगवान् भी शुक्ललेश्या होने से सलेश्य होते है, इसलिए उनमे पचम—केवलज्ञान होता है। कृष्ण, नील, कापोत, तेज और पद्मलेश्या वाले जीवो मे ज्ञान, अज्ञान की प्ररूपणा सेन्द्रिय जीवो के समान है अर्थात्—

उनमे चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। शुक्ललेश्या वाले जीवो का कथन सलेश्य जीवो की तरह करना चाहिए। अलेश्य जीव सिद्ध होते हैं, उनमे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है।

१३-कषायद्वार—सकषायी या क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवो मे ज्ञान अज्ञानप्ररूपणा सेन्द्रिय के सदृश है, अर्थात्—उनमे केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान एव तीन अज्ञान भजना से होते हैं। अकषायी, छद्मस्थ-वीतराग और केवली दोनो होते हैं। छद्मस्थ वीतराग (११-१२ गुणस्थानवर्ती) मे प्रथम के चार ज्ञान भजना से पाए जाते हैं और केवली (१३-१४ गुणस्थानवर्ती) मे एकमात्र केवलज्ञान ही पाया जाता है। इसलिए अकषायी जीवो म पाच ज्ञान भजना से बताए गए हैं।

१४ वेदद्वार—सवेदक आठवें गुणस्थान तक के जीव होते हैं। उनका कथन सेन्द्रिय के समान है, अर्थात्—उनमे केवलज्ञान को छोडकर शेष चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। अवेदक (वेदरहित) जीवो मे ज्ञान ही होता है, अज्ञान नही। नौवें अनिवृत्तिबादर नामक गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के जीव अवेदक होते हैं। उनमे से बारहवें गुणस्थान तक के जीव छद्मस्थ होते है, अत उनमे चार ज्ञान (केवल ज्ञान के सिवाय) भजना से पाए जाते हैं तथा तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव केवली होते हैं, इसलिए उनके सिर्फ एक पचम ज्ञान—केवलज्ञान होता है, इसी दृष्टि से कहा गया है कि 'अवेदक मे पाच ज्ञान पाए जाते हैं।'

१५-आहारकद्वार—यद्यपि आहारक जीव मे ज्ञान-अज्ञान का कथन कषायी जीवो के समान (चार ज्ञान एव तीन अज्ञान भजना से) बताया गया है, तथापि केवलज्ञानी भी आहारक होते हैं, इसलिए आहारक जीवो में भजना से पाच ज्ञान अथवा तीन अज्ञान कहने चाहिए। मन पर्यवज्ञान आहारक जीवो को ही होता है, इसलिए अनाहारक जीवो मे मन पर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं। विग्रहगति, केवलीसमुद्घात और अयोगीदशा मे जीव अनाहारक होते हैं। शेष अवस्था मे जीव आहारक होते हैं। अनाहारक जीवो को प्रथम के तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान विग्रहगति मे होते हैं। अनाहारक केवली को केवलीसमुद्घातदशा में या अयोगीदशा म एकमात्र केवलज्ञान ही होता है। इसी दृष्टि से अनाहारक जीवो मे चार ज्ञान (मन पर्यवज्ञान को छोडकर) और तीन अज्ञान भजना से कहे गए है।[1]

सोलहवें विषयद्वार के माध्यम से द्रव्यादि की अपेक्षा ज्ञान और अज्ञान का निरूपण

१४४ आभिणिबोहियनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो ण आभिणिबोहियनाणी आदेसेण सव्वदव्वाइ जाणति पासति। खेत्ततो आभिणिबोहियणाणी आदेसेण सव्व खेत्त जाणति पासति। एव कालतो वि। एव भावओ वि।

[१४४ प्र] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान का विषय कितना व्यापक कहा गया है ?

[१४४ उ] गौतम ! वह (आभिनिबोधिकज्ञान का विषय) सक्षेप मे चार प्रकार का बताया गया है। यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से आभिनिबोधिकज्ञानी आदेश (सामान्य) से सर्वद्रव्यो को जानता और देखता है, क्षेत्र से आभिनिबोधिकज्ञानी सामान्य से सभी क्षेत्र को जानता और देखता है, इसी प्रकार काल से भी और भाव से भी जानना चाहिए।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३५५, ३५६

१४५ सुयनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासम्रो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो णं सुयनाणी उवयुत्ते सव्वदव्वाइं जाणति पासति। एवं खेत्ततो वि, कालतो वि। भावतो णं सुयनाणी उवजुत्ते सव्वभावे जाणति पासति।

[१४५ प्र.] भगवन् ! श्रुतज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४५ उ.] गौतम ! वह (श्रुतज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से उपयोगयुक्त (उपयुक्त) श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्यों को जानता और देखता है। क्षेत्र से श्रुतज्ञानी उपयोगसहित सर्वक्षेत्र को जानता देखता है। इसी प्रकार काल से भी जानना चाहिए। भाव से उपयुक्त (उपयोगयुक्त) श्रुतज्ञानी सर्वभावों को जानता और देखता है।

१४६ ओहिनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो णं ओहिनाणी रूविदव्वाइं जाणति पासति जहा नंदीए जाव भावतो।

[१४६ प्र.] भगवन् ! अवधिज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४६ उ.] गौतम ! वह (अवधिज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से अवधिज्ञानी रूपीद्रव्यों को जानता और देखता है। (तत्पश्चात् क्षेत्र से, काल से और भाव से) इत्यादि वर्णन जिस प्रकार नन्दीसूत्र में किया गया है, उसी प्रकार 'भाव' पर्यन्त यहाँ वर्णन करना चाहिए।

१४७ मणपज्जवनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासम्रो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिए जहा नंदीए जाव भावम्रो।

[१४७ प्र.] भगवन् ! मनःपर्यवज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४७ उ.] गौतम ! वह (मनःपर्यवज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का है, वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। ऋजुमति-मनःपर्यवज्ञानी (मनरूप में परिणत) अनन्तप्रादेशिक अनन्त (स्कन्धों) को जानता-देखता है, इत्यादि जिस प्रकार नन्दीसूत्र में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी 'भावतः' तक कहना चाहिए।

१४८ केवलनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासम्रो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणति पासति। एवं जाव भावम्रो।

[१४८ प्र.] भगवन् ! केवलज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१४८ उ.] गौतम ! वह (केवलज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से केवलज्ञानी सर्वद्रव्यों को जानता और देखता है। इसी प्रकार यावत् भाव से केवलज्ञानी सर्वभावों को जानता और देखता है।

१४९ मइअन्नाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्तओ कालतो भावतो। दव्वतो णं मइअन्नाणी मइअन्नाणपरिगताइं दव्वाइं जाणति पासति। एवं जाव भावतो मइअन्नाणी मइअन्नाण परिगते भावे जाणति पासति।

[१४९ प्र.] भगवन् ! मति-अज्ञान (मिथ्यामतिज्ञान) का विषय कितना कहा गया है ?

[१४९ उ.] गौतम ! वह (मति-अज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान परिगत (मति-अज्ञान के विषयभूत) द्रव्यों को जानता और देखता है। इसी प्रकार यावत् भाव से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत भावों को जानता और देखता है।

१५० सुयअन्नाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो णं सुयअन्नाणी सुयअन्नाणपरिगयाइं दव्वाइं आघवेइ पण्णवेइ परूवेइ। एवं खेत्ततो कालतो। भावतो णं सुयअन्नाणी सुयअन्नाणपरिगते भावे आघवेइ तं चेव।

[१५० प्र.] भगवन् ! श्रुत-अज्ञान (मिथ्याश्रुतज्ञान) का विषय कितना कहा गया है ?

[१५० उ.] गौतम ! वह (श्रुत-अज्ञान का विषय) संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत द्रव्यों का कथन करता है, उन द्रव्यों को बतलाता है, उनकी प्ररूपणा करता है। इसी प्रकार क्षेत्र से और काल से भी जान लेना चाहिए। भाव की अपेक्षा श्रुत-अज्ञानी श्रुत अज्ञान के विषयभूत भावों को कहता है, बतलाता है, प्ररूपित करता है।

१५१ विभंगणाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से समासतो चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वतो खेत्ततो कालतो भावतो। दव्वतो णं विभंगनाणी विभंगणाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणति पासति। एवं जाव भावतो णं विभंगनाणी विभंग नाणपरिगए भावे जाणति पासति॥१६॥

[१५१ प्र.] भगवन् ! विभंगज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

[१५१ उ.] गौतम ! वह (विभंगज्ञान विषय) संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है। यह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य की अपेक्षा विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयगत द्रव्यों को जानता और देखता है। इसी प्रकार यावत् भाव की अपेक्षा विभंगज्ञानी विभंग ज्ञान के विषयगत भावों को जानता और देखता है। (विषयद्वार)

विवेचन—ज्ञान और अज्ञान के विषय की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. १४४ से १५१ तक) में विषयद्वार के माध्यम से पांच ज्ञानों और तीन अज्ञानों के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से विषय का निरूपण किया गया है।

ज्ञानों का विषय—(१) आभिनिबोधिकज्ञान का विषय द्रव्यादि चारों अपेक्षा से यहाँ तक

व्याप्त है ? इस ज्ञान की सीमा द्रव्यादि की अपेक्षा कितनी है ? यही बताना यहाँ अभीष्ट है। द्रव्य का अर्थ है—धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य, क्षेत्र का अर्थ है—द्रव्यों का आधारभूत आकाश, काल का अर्थ है—द्रव्यों के पर्यायों की स्थिति और भाव का अर्थ है—औदयिक आदि भाव अथवा द्रव्य के पर्याय। इनमें से द्रव्य की अपेक्षा आभिनिबोधिकज्ञानी धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्यों को आदेश से—ओघरूप (सामान्यरूप) से जानता है, उसका आशय यह है कि वह द्रव्यमात्र सामान्यतया जानता है, उसमें रही हुई सभी विशेषताओं से (विशेषरूप से) नहीं जानता, अथवा आदेश का अर्थ है—श्रुतज्ञानजनित संस्कार। इनके द्वारा अवाय और धारणा की अपेक्षा जानता है, क्योंकि ये दोनों ज्ञानरूप हैं तथा अवग्रह और ईहा दर्शनरूप हैं, इसलिए अवग्रह और ईहा से देखता है। श्रुतज्ञानजन्य संस्कार से लोकालोकरूप सर्वक्षेत्र को देखता है। काल से सर्वकाल को और भाव से औदयिक आदि पांच भावों को जानता है। (२) श्रुतज्ञानी (सम्पूर्ण दस पूर्वधर आदि श्रुतकेवली) उपयोगयुक्त होकर धर्मास्तिकाय आदि सभी द्रव्यों को विशेषरूप से जानता है तथा श्रुतानुसारी अचक्षु (मानस) दर्शन द्वारा सभी अभिलाप्य द्रव्यों को देखता है। इसी प्रकार क्षेत्रादि के विषय में भी जानना चाहिए। भाव से उपयोगयुक्त श्रुतज्ञानी औदयिक आदि समस्त भावों को अथवा अभिलाप्य (वक्तव्य) भावों को जानता है। यद्यपि श्रुत द्वारा अभिलाप्य भावों का अनन्तवां भाग ही प्रतिपादित है, तथापि प्रसंगानुप्रसंग से अभिलाप्य भाव श्रुतज्ञान के विषय हैं। इसलिए उनकी अपेक्षा 'श्रुतज्ञानी सर्वभावों को (सामान्यतया) जानता है' ऐसा कहा गया है। (३) अवधिज्ञान का विषय द्रव्य से अवधिज्ञानी जघन्यतः तैजस और भाषा द्रव्यों के अन्तरालवर्ती सूक्ष्म अनन्त पुद्गलद्रव्यों को जानता है। उत्कृष्टतः बादर और सूक्ष्म सभी पुद्गल द्रव्यों को जानता है। अवधिदर्शन से देखता है। क्षेत्र से—अवधिज्ञानी जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता देखता है, उत्कृष्टतः समग्र लोक और लोक-सदृश असंख्येय खण्ड अलोक में हों तो उन्हें भी जान-देख सकता है। काल से—अवधिज्ञानी जघन्यतः आवलिका के असंख्यातवें भाग को तथा उत्कृष्टतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी अतीत, अनागत काल को जानता और देखता है। यहाँ क्षेत्र और काल को जानने का तात्पर्य यह है कि इतने क्षेत्र और काल में रहे हुए रूपी द्रव्यों को जानना और देखता है। भाव से—अवधिज्ञानी जघन्यतः आधार-द्रव्य अनन्त होने से अनन्त भावों को जानता-देखता है, किन्तु प्रत्येक द्रव्य के अनन्त भावों (पर्यायों) को नहीं जानता-देखता। उत्कृष्टतः भी वह अनन्त भावों को जानता-देखता है। वे भाव भी समस्त पर्यायों के अनन्तवें भाग-रूप जानने चाहिए। (४) मनःपर्यवज्ञान का विषय—मनःपर्यवज्ञान के दो प्रकार हैं—ऋजुमति और विपुलमति। सामान्यग्राही मनो-मति या संवेदन को ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान कहते हैं। जैसे—'इसने घड़े का चिन्तन किया है', इस प्रकार के अध्यवसाय का कारणभूत (सामान्य अनियत पर्याय विशिष्ट) मनोद्रव्य का ज्ञान या ऋजु सरलमति वाला ज्ञान। द्रव्य से—ऋजुमति मनःपर्यायज्ञानी ढाई द्वीप-समुद्रान्तवर्ती संज्ञी-पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों द्वारा मनोरूप से परिणमित मनोवर्गणा के अनन्त परमाण्वात्मक (विशिष्ट एक परिणाम परिणत) स्कन्धों को मनःपर्यायज्ञानावरण की क्षयोपशमपटुता के कारण साक्षात् जानता-देखता है। परन्तु जीवों द्वारा चिन्तित घटादिरूप पदार्थों को मनःपर्यायज्ञानी प्रत्यक्षतः नहीं जानता किन्तु उस मनोद्रव्य के परिणामों की अन्यथानुपपत्ति से (इस प्रकार के आकार वाला मनोद्रव्य का परिणाम, इस प्रकार के चिन्तन बिना घटित नहीं हो सकता, इस तरह के अन्यथानुपपत्तिरूप अनुमान से) जानता है। इसीलिए यहाँ 'जाणइ' के बदले 'पासइ' (देखता है) कहा गया है। विपुल का अर्थ है—अनेक विशेषग्राही। अर्थात् अनेक विशेषताओं से युक्त मनोद्रव्य के ज्ञान को

'विपुलमति मन पयवज्ञान' कहते हैं। जैसे—इसने घट का चिन्तन किया है, वह घट द्रव्य से—सोने का बना हुआ है, क्षेत्र से—पाटलिपुत्र का है, काल से—नया है या वसन्तऋतु का है, और भाव से—बडा है, अथवा पीले रग का है। इस प्रकार की विशेषताओ से युक्त मनोद्रव्यो को विपुलमति जानता है। अर्थात—ऋजुमति द्वारा देखे हुए स्कन्धो की अपेक्षा विपुलमति अधिकतर, वर्णादि से विस्पष्ट, उज्ज्वलतर और विशुद्धतर रूप से जानता-देखता है। क्षेत्र से—ऋजुमति जघन्यत अगुल के असख्यातवें भाग तथा उत्कृष्टत मनुष्यलोक मे रहे हुए सज्ञी पचेन्द्रिय-पर्याप्तिक जीवो के मनोगत भावो को जानता-देखता है, जबकि विपुलमति उससे ढाई अगुल अधिक क्षेत्र मे रहे हुए जीवो के मनोगत भावो को विशेष प्रकार से विशुद्धतर रूप से—स्पष्ट रूप से जानता-देखता है। तात्पय यह है कि ऋजुमति मन पयवज्ञानी क्षेत्र से उत्कृष्टत अधोदिशा मे—रत्नप्रभापृथ्वी के उपरितन तल के नीचे के क्षुल्लक प्रतरो, ऊर्ध्वदिशा मे—ज्योतिषी देवलोक के उपरितल को, तथा तिर्यग्दिशा मे मनुष्यक्षेत्र मे जो ढाई द्वीप-समुद्र हैं, १५ कमभूमिया हैं तथा छप्पन अन्तद्वीप हैं, उनमे रहे हुए सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो के मनोगत भावो को जानता-देखता है। विपुलमति क्षेत्र से—समग्र ढाई द्वीप व दो समुद्रो को विशुद्धरूप से जानता-देखता है। काल से—ऋजुमति जघन्यत पल्योपम के असख्यातवें भाग जितने अतीत-अनागत काल को जानता देखता है जबकि विपुलमति इसी को स्पष्टतररूप से निर्मलतर जानता-देखता है। भाव से—ऋजुमति समस्त भावो के अनन्तवें भाग को जानता-देखता है, जबकि, विपुलमति इन्हें ही विशुद्धतर-स्पष्टतररूप से जानता-देखता है। (५) केवलज्ञान का विषय—केवलज्ञान के दो भेद हैं—भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान। केवलज्ञानी सवद्रव्य, सवक्षेत्र, सवकाल और सवभावो को युगपत् जानता-देखता है।

तीन अज्ञानों का विषय—मति-अज्ञानी मिथ्यादशनयुक्त अवग्रह आदि रूप तथा औत्पात्तिकी आदि बुद्धिरूप मति-अज्ञान के द्वारा गृहीत द्रव्यो को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जानता-देखता है। श्रुत-अज्ञानी श्रुत अज्ञान (मिथ्यादृष्टि-परिगृहीत लौकिक श्रुत या कुप्रावचनिकश्रुत) से गृहीत (विषयीकृत) द्रव्यो को कहता है, बतलाता है, प्ररूपण करता है। विभगज्ञानी विभगज्ञान द्वारा गृहीत द्रव्यो को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जानता है और अवधिदशन से देखता है।[1]

ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, अन्तर और अल्पबहुत्व का निरूपण

१५२ णाणी ण भते ! 'णाणि' त्ति कालतो केवच्चिर होती ?

गोयमा ! णाणी दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सादीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए। तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ सातिरेगाइ।

[१५२ प्र] भगवन् ! ज्ञानी 'ज्ञानी' के रूप मे कितने काल तक रहता है ?

[१५२ उ] गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सादि अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमे से जो सादि-सपर्यवसित (सान्त) ज्ञानी हैं, वे जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्टत कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक ज्ञानीरूप मे रहते हैं।

१५३ आभिणिबोहियणाणी ण भते ! आभिणिबोहियणाणि त्ति० ? ।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३५७ से ३६० तक

(ख) नन्दीसूत्र, ज्ञानप्ररूपणा

एव नाणी, आभिणिबोहियनाणी जाव केवलनाणी, अन्नाणी, मइअन्नाणी, सुयअन्नाणी, विभंगनाणी, एएसि दसण्ह वि संचिट्ठणा जहा कायठिलीए ।१७।

[१५३ प्र.] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

[१५३ उ.] गौतम ! ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी, अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभंगज्ञानी, इन दस का अवस्थितिकाल (प्रज्ञापनासूत्र के अठारहवें) कायस्थिति-पद में कहे अनुसार जानना चाहिए । (कालद्वार)

१५४ अंतरं सव्व जहा जीवाभिगमे ।१८।

[१५४] इन सब (दसों) का अन्तर जीवाभिगमसूत्र के अनुसार जानना चाहिए । (अन्तरद्वार)

१५५ अप्पाबहुगाणि तिण्णि जहा बहुवत्तव्वताए ।१९।

[१५५] इन सबका अल्पबहुत्व (प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय—) बहुवक्तव्यता पद के अनुसार जानना चाहिए । (अल्पबहुत्वद्वार)

विवेचन—ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, अन्तर और अल्पबहुत्व का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. १५२ से १५५ तक) में (१७) कालद्वार, (१८) अन्तरद्वार और (१९) अल्पबहुत्वद्वार के माध्यम से ज्ञानी और अज्ञानी के स्थितिकाल, पारस्परिक अन्तर और उनके अल्पबहुत्व का अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है ।

ज्ञानी का ज्ञानी के रूप में अवस्थितिकाल—ज्ञानी के दो प्रकार यहाँ बताए गए हैं सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित । प्रथम ज्ञानी ऐसे हैं, जिनके ज्ञान की आदि तो है, पर अन्त नहीं । ऐसे ज्ञानी केवलज्ञानी होते हैं । केवलज्ञान का काल सादि—अनन्त है, अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न होकर फिर कभी नष्ट नहीं होता । द्वितीय ज्ञानी ऐसा है, जिसकी आदि भी है, अन्त भी है । ऐसा ज्ञानी मति आदि चार ज्ञान वाला होता है । मति आदि चार ज्ञानों का काल सादि सपर्यवसित है । इनमें से मति और श्रुत ज्ञान का जघन्य स्थितिकाल एक अन्तर्मुहूर्त है । अवधि और मनःपर्यवज्ञान का जघन्य स्थितिकाल एक समय है । आदि के तीनों ज्ञानों का उत्कृष्ट स्थितिकाल कुछ अधिक ६६ सागरोपम है । मनःपर्यवज्ञान का उत्कृष्ट स्थितिकाल देशोन पूर्वकोटि का है । अवधिज्ञान का जघन्य स्थितिकाल एक समय का इसलिए बताया है कि जब किसी विभंगज्ञानी को सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, तब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के प्रथम समय में ही विभंगज्ञान अवधिज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है । इसके पश्चात् शीघ्र ही दूसरे समय में यदि वह अवधिज्ञान से गिर जाता है तब अवधिज्ञान केवल एक समय ही रहता है । मनःपर्यवज्ञानी का भी अवस्थितिकाल जघन्य एक समय इसलिए बताया है कि अप्रमत्तगुणस्थान में स्थित किसी संयत (मुनि) को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है और तुरन्त ही दूसरे समय में नष्ट हो जाता है । मनःपर्यवज्ञानी का उत्कृष्ट अवस्थितिकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष का इसलिए बताया है कि किसी पूर्वकोटिवर्ष की आयु वाले मनुष्य ने चारित्र अंगीकार किया । चारित्र अंगीकार करते ही उसे मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो जाए और यावज्जीवन रहे, तो उसका उत्कृष्ट स्थितिकाल किञ्चित् न्यून कोटिवर्ष घटित हो जाता है ।

त्रिविध अज्ञानियों का तद्रूप अज्ञानी के रूप में अवस्थितिकाल—अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी ये तीनों स्थितिकाल की दृष्टि से तीन प्रकार के हैं—(१) अनादि-अपर्यवसित (अनन्त),

अभव्यों का होता है। (२) अनादि-सपर्यवसित (सान्त), भव्यजीवो का होता है और (३) सादि-सपर्यवसित (सान्त), सम्यग्दर्शन से पतित जीवो का होता है। इसमे से जो सादि-सान्त है, उनका जघन्य अवस्थितिकाल अन्तमुहूर्त का है, क्योकि कोई जीव सम्यग्दर्शन से पतित होकर अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् ही पुन सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। इसका उत्कृष्ट स्थितिकाल अनन्तकाल है, क्योकि कोई जीव सम्यग्दर्शन से पतित होकर अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल व्यतीत कर अथवा वनस्पति आदि मे अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत करके अनन्तकाल के पश्चात पुन सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। विभगज्ञान का अवस्थितिकाल जघन्य एक समय है, क्योकि उत्पन्न होने के पश्चात उसका दूसरे समय मे विनष्ट होना सम्भव है। इसका उत्कृष्ट स्थितिकाल किञ्चित् न्यून पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम का है, क्योकि कोई मनुष्य कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विभगज्ञानी बना रह कर सातवें नरक मे उत्पन्न हो जाता है, उसकी अपेक्षा से यह कथन है।[1]

पाच ज्ञानों और तीन अज्ञानों का परस्पर अन्तरकाल—एक बार ज्ञान अथवा अज्ञान उत्पन्न होकर नष्ट हो जाए और फिर दूसरी बार उत्पन्न हो तो दोनो के बीच का काल अन्तरकाल कहलाता है। यहा पाच ज्ञान और तीन अज्ञान के अन्तर के लिए जीवाजीवाभिगमसूत्र का अतिदेश किया गया है। वहा इस प्रकार से अन्तर बताया गया है—आभिनिबोधिकज्ञान का काल से पारस्परिक अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल तक का या कुछ कम अपार्द्ध पुद्गलपरिवर्तन काल का है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान के विषय मे समझ लेना चाहिए। केवलज्ञान का अन्तर नही होता। मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ६६ सागरोपम का है। विभगज्ञान का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल जितना) है।[2]

पाच ज्ञानी और तीन अज्ञानी जीवों का अल्पबहुत्व—पाच ज्ञान और तीन अज्ञान से युक्त जीवो का अल्पबहुत्व प्रज्ञापनासूत्र मे बताया गया है। वह सक्षेप मे इस प्रकार है—सबसे अल्प मन पर्यवज्ञानी हैं। क्योंकि मन पर्यवज्ञान केवल ऋद्धिप्राप्त सयतो को ही होता है। उनसे असख्यात गुणे अवधिज्ञानी हैं, क्योकि अवधिज्ञानी जीव चारो गतियों मे पाए जाते हैं। उनसे आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो तुल्य और विशेषाधिक हैं। इसका कारण यह है कि अवधि आदि ज्ञान से रहित होने पर भी कई पचेन्द्रिय और कितने ही विकलेन्द्रिय जीव (जिन्हें सास्वादनसम्यग्दर्शन हो) आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं। आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर साहचर्य होने से दोनो ज्ञानी तुल्य हैं। इन सभी से सिद्ध अनन्तगुणे होने से केवलीज्ञानी जीव अनन्त गुणे हैं। तीन अज्ञानयुक्त जीवो मे सबसे थोडे विभगज्ञानी हैं, क्योंकि विभगज्ञान पचेन्द्रियजीवों को ही होता है। उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनो अनन्तगुणे हैं, क्योंकि एकेन्द्रियजीव भी मति अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं और वे अनन्त हैं, परस्पर तुल्य भी हैं, क्योंकि इन दोनों का परस्पर साहचर्य है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३६१
(ख) प्रज्ञापनासूत्र १८ वां कायस्थितिपद (महावीर विद्यालय), पृ ३०४-३१७

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक ३६१
(ख) जीवाभिगमसूत्र (अन्तरसर्वक पाठ) सू २६३ पृ ४५५ (आगमो)

ज्ञानी और अज्ञानी जीवों का परस्पर सम्मिलित अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े मन:पर्यवज्ञानी हैं, उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक और परस्पर तुल्य हैं, उनसे विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि देव और नारकों से मिथ्यादृष्टि देव-नारक असंख्यातगुणे हैं, उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों के सिवाय शेष सभी जीवों से सिद्ध अनन्तगुणे हैं, उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे हैं और वे परस्पर तुल्य हैं, क्योंकि साधारण वनस्पतिकायिकजीव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं, और वे सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।[1]

बीसवें पर्यायद्वार के माध्यम से ज्ञान और अज्ञान के पर्यायों की प्ररूपणा

१५६. केवतिया णं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता आभिणिबोहियणाणपज्जवा पण्णत्ता।

[१५६ प्र.] भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

[१५६ उ.] गौतम ! आभिनिबोधिकज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१५७. [१] केवतिया णं भंते ! सुयनाणपज्जवा पण्णत्ता ?

एवं चेव।

[१५७-१ प्र.] भगवन् ! श्रुतज्ञान के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

[१७६-१ उ.] गौतम ! श्रुतज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गए है।

[२] एवं जाव केवलनाणस्स।

[१५७-२] इसी प्रकार यावत् (अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान), केवलज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१५८. एवं मतिअन्नाणस्स सुयअन्नाणस्स।

[१५८] इसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१५९. केवतिया णं भंते ! विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता। २०।

[१५९ प्र.] भगवन् ! विभंगज्ञान के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[१५९ उ.] गौतम ! विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गए हैं। (पर्यायद्वार)

ज्ञान और अज्ञान के पर्यायों का अल्पबहुत्व

१६०. एतेसि णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं सुयनाणपज्जवाणं ओहिनाणपज्जवाणं मणपज्जवनाणपज्जवाणं केवलनाणपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

---

१. (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३६२

(ख) प्रज्ञापनासूत्र तृतीय बहुवक्तव्यपद, सू. २१२, ३३४, पृ. ८० से १११ तक

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा, ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयनाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहियनाणपज्जवा अणंतगुणा, केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा ।

[१६० प्र.] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान के पर्यायों में किनके पर्याय, किनके पर्यायों से अल्प, यावत् (बहुत, तुल्य या) विशेषाधिक हैं ?

[१६० उ.] गौतम ! मनःपर्यवज्ञान के पर्याय सबसे थोड़े हैं, उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं और उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं ।

१६१ एएसि णं भंते ! मइअन्नाणपज्जवाणं सुयअन्नाणपज्जवाणं विभंगनाणपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा विभंगनाणपज्जवा, सुयअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा, मतिअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा ।

[१६१ प्र.] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यायों में किनके पर्याय, किनके पर्यायों से यावत् (अल्प, बहुत, तुल्य या) विशेषाधिक हैं ?

[१६१ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े विभंगज्ञान के पर्याय हैं, उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं और उनसे मति अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं ।

१६२ एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं जाव केवलनाणपज्जवाणं मइअन्नाणपज्जवाणं सुयअन्नाणपज्जवाणं विभंगनाणपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा, विभंगनाणपज्जवा अणंतगुणा, ओहिणाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयनाणपज्जवा विसेसाहिया, मइअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहियनाणपज्जवा विसेसाहिया, केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ अट्ठम सए बितिओ उद्देसओ समत्तो ॥

[१६२ प्र.] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) आभिनिबोधिकज्ञान-पर्याय यावत् केवलज्ञान-पर्यायों में तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यायों में किसके पर्याय, किसके पर्यायों से यावत् (अल्प, बहुत, तुल्य अथवा) विशेषाधिक हैं ?

[१६२ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञान के पर्याय हैं, उनसे विभंगज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं, उनसे मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं और केवलज्ञान के पर्याय उनसे अनन्तगुणे हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे।

विवेचन—ज्ञान और अज्ञान के पर्यायों का तथा उनके अल्पबहुत्व का प्ररूपण—प्रस्तुत ७ सूत्रों (सू. १५६ से १६२ तक) में पर्यायद्वार के माध्यम से ज्ञान और अज्ञान की पर्यायों तथा उनके अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पर्याय : स्वरूप, प्रकार एवं परस्पर अल्पबहुत्व—भिन्न-भिन्न अवस्थाओं व विशेष भेदों को 'पर्याय' कहते हैं। पर्याय के दो भेद हैं—स्वपर्याय और परपर्याय। क्षयोपशम की विचित्रता से मतिज्ञान के अवग्रह आदि अनन्त भेद होते हैं, जो स्वपर्याय कहलाते हैं। अथवा मतिज्ञान के विषयभूत ज्ञेयपदार्थ अनन्त होने से उन ज्ञेयों के भेद से ज्ञान के भी अनन्त भेद हो जाते हैं। इस अपेक्षा से भी मतिज्ञान के अनन्त पर्याय हैं, अथवा केवलज्ञान द्वारा मतिज्ञान के अंश (टुकड़े) किए जाएँ तो भी अनन्त अंश होते हैं, इस अपेक्षा से भी मतिज्ञान के अनन्त पर्याय हैं। मतिज्ञान के सिवाय दूसरे पदार्थों के पर्याय 'परपर्याय' कहलाते हैं। मतिज्ञान में स्वपर्यायों का बोध कराने में तथा परपर्याय से उन्हें भिन्न बतलाने में प्रतियोगी रूप से उनका उपयोग है। इसलिए वे मतिज्ञान के परपर्याय कहलाते हैं। श्रुतज्ञान के भी स्वपर्याय और परपर्याय अनन्त हैं। उनमें से श्रुतज्ञान के अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत आदि भेद स्वपर्याय कहलाते हैं, जो अनन्त हैं। क्योंकि श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की विचित्रता के कारण तथा श्रुतज्ञान के विषयभूत ज्ञेय पदार्थ अनन्त होने से श्रुतज्ञान के (श्रुतानुसारी बोध के) भेद भी अनन्त हो जाते हैं। अथवा केवलज्ञान द्वारा श्रुतज्ञान के अनन्त अंश होते हैं, वे भी उसके स्वपर्याय ही हैं। उनसे भिन्न पदार्थों के विशेष धर्म, श्रुतज्ञान के परपर्याय कहलाते हैं।

अवधिज्ञान के स्वपर्याय भी अनन्त हैं, क्योंकि उसके भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय (क्षायोपशमिक) इन दो भेदों के कारण, उनके स्वामी देव और नारक तथा मनुष्य और तिर्यञ्च के, असंख्येय क्षेत्र और काल के भेद से, अनन्त द्रव्य-पर्याय के भेद से एवं केवलज्ञान द्वारा उसके अनन्त अंश होने से अवधिज्ञान के अनन्त भेद होते हैं।

इसी प्रकार मनःपर्यव और केवलज्ञान के विषयभूत ज्ञेय पदार्थ अनन्त होने से तथा उनके अनन्त अंशों की कल्पना आदि से अनन्त स्वपर्याय होते हैं।

पर्यायों के अल्पबहुत्व की समीक्षा—यहाँ जो पर्यायों का अल्पबहुत्व बताया गया है, वह स्वपर्यायों की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि सभी ज्ञानों के स्वपर्याय और परपर्याय मिलकर समुदित रूप से परस्पर तुल्य हैं। सबसे अल्प मनःपर्यवज्ञान के पर्याय इसलिए हैं कि उसका विषय केवल मन ही है। मनःपर्यवज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय द्रव्य और पर्यायों की अपेक्षा अनन्तगुण होने से अवधिज्ञान के पर्याय उससे अनन्तगुणे हैं, उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुण हैं। क्योंकि उसका विषय रूपी-अरूपीद्रव्य होने से वे अनन्तगुण हैं। उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं, क्योंकि उनका विषय अभिलाप्य और अनभिलाप्य पदार्थ होने से वे उनसे अनन्तगुणे हैं, और केवलज्ञान के पर्याय उनसे अनन्तगुण इसलिए हैं कि उसका विषय सर्वद्रव्य और सर्वपर्याय हैं। इसी प्रकार अज्ञानों के भी अल्पबहुत्व की समीक्षा कर लेनी चाहिए।

ज्ञान और अज्ञान के पर्यायों के सम्मिलित अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञान के पर्याय हैं, उनसे विभंगज्ञान के पर्याय अनन्तगुण हैं, क्योंकि उपरिम (ऊपर) ग्रैवेयक से लेकर नीचे

सप्तम नरक तक में और असंख्य द्वीप समुद्रों में रहे हुए कितने ही रूपी द्रव्य और उनके कतिपय पर्याय विभंगज्ञान के विषय हैं और वे मनःपर्यवज्ञान के विषयापेक्षा अनन्तगुणे हैं, उनकी अपेक्षा अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे इसलिए हैं कि उसका विषय समस्त रूपी द्रव्य और उसके असंख्य पर्याय हैं। उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा यों हैं कि श्रुत अज्ञान के विषय सभी मूर्त अमूर्त द्रव्य एवं सर्वपर्याय हैं। तदपेक्षा श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक यों हैं कि श्रुत-अज्ञान-अगोचर कतिपय पदार्थों को भी श्रुतज्ञान जानता है। तदपेक्षया मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुण यों है कि उसका विषय अनभिलाप्य वस्तु भी है। उनसे मतिज्ञान के पर्याय विशेषाधिक यों हैं कि मति-अज्ञान के अगोचर कितने ही पदार्थों का मतिज्ञान जानता है और उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे इसलिए हैं कि केवलज्ञान सर्वकालगत समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायों को जानता है।[1]

॥ अष्टम शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३६२ से ३६४ तक

तइओ उद्देसओ : 'रुक्खा'

तृतीय उद्देशक : 'वृक्ष'

संख्यातजीविक, असंख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षों का निरूपण

१ कतिविहा णं भंते ! रुक्खा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जजीविया असंखेज्जजीविया अणंतजीविया ।

[१ प्र] भगवन् ! वृक्ष कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! वृक्ष तीन प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) संख्यातजीव वाले, (२) असंख्यातजीव वाले और (३) अनन्तजीव वाले ।

२ से किं तं संखेज्जजीविया ?

संखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—ताले तमाले तक्कलि तेतलि जहा पण्णवणाए जाव नालिएरी, जे यावन्ने तहप्पगारा । से त्तं संखेज्जजीविया ।

[२ प्र] भगवन् ! संख्यातजीव वाले वृक्ष कौन-से है ?

[२ उ] गौतम ! संख्यातजीव वाले वृक्ष अनेकविध कहे गए हैं, जैसे—ताड (ताल), तमाल, तक्कलि, तेतलि इत्यादि, प्रज्ञापनासूत्र (के पहले पद) में कहे अनुसार नारिकेल (नारियल) पर्यन्त जानना चाहिए । ये और इनके अतिरिक्त इस प्रकार के जितने भी वृक्षविशेष हैं, वे सब संख्यातजीव वाले हैं । यह हुआ संख्यातजीव वाले वृक्षों का वर्णन ।

३ से किं तं असंखेज्जजीविया ?

असंखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य ।

[३ प्र] भगवन् ! असंख्यातजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ?

[३ उ] गौतम ! असंख्यातजीव वाले वृक्ष दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—एकास्थिक (एक गुठली—बीज वाले) और बहुबीजक (बहुत बीजों वाले) ।

४ से किं तं एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—निंबंबजंबु एवं जहा पण्णवणापए जाव फला बहुबीयगा । से त्तं बहुबीयगा । से त्तं असंखेज्जजीविया ।

[४ प्र] भगवन् एकास्थिक वृक्ष कौन-से हैं ?

[४ उ] गौतम ! एकास्थिक (एक गुठली या बीज वाले) वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—नीम, आम, जामुन आदि । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र (के प्रथम पद) में कहे अनुसार 'बहुबीज

सप्तम नरक तक में और असंख्य द्वीप समुद्रों में रहे हुए कितने ही रूपी द्रव्य और उनके कतिपय पर्याय विभंगज्ञान के विषय हैं और वे मनःपर्यवज्ञान के विषयापेक्षा अनन्तगुणे हैं, उनकी अपेक्षा अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे इसलिए हैं कि उसका विषय समस्त रूपी द्रव्य और उसके असंख्य पर्याय हैं। उनसे श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा यों हैं कि श्रुत-अज्ञान के विषय सभी मूर्त अमूर्त द्रव्य एवं सर्वपर्याय हैं। तदपेक्षा श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक यों हैं कि श्रुत अज्ञान-अगोचर कतिपय पदार्थों को भी श्रुतज्ञान जानता है। तदपेक्षया मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुण यों हैं कि उसका विषय अनभिलाप्य वस्तु भी है। उनसे मतिज्ञान के पर्याय विशेषाधिक यों हैं कि मति-अज्ञान के अगोचर कितने ही पदार्थों का मतिज्ञान जानता है और उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे इसलिए हैं कि केवलज्ञान सर्वकालगत समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायों को जानता है।[1]

॥ अष्टम शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

1. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३६२ से ३६४ तक

तइओ उद्देसओ : 'रुक्खा'

तृतीय उद्देशक : 'वृक्ष'

संख्यातजीविक, असंख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षों का निरूपण

१ कतिविहा णं भंते ! रुक्खा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जजीविया असंखेज्जजीविया अणंतजीविया ।

[१ प्र] भगवन् ! वृक्ष कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! वृक्ष तीन प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) संख्यातजीव वाले, (२) असंख्यातजीव वाले और (३) अनन्तजीव वाले ।

२ से किं तं संखेज्जजीविया ?

संखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—ताले तमाले तक्कलि तेतलि जहा पण्णवणाए जाव नालिएरी, जे यावन्ने तहप्पगारा । से त्तं संखेज्जजीविया ।

[२ प्र] भगवन् ! संख्यातजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ?

[२ उ] गौतम ! संख्यातजीव वाले वृक्ष अनेकविध कहे गए हैं, जैसे—ताड़ (ताल), तमाल, तक्कलि, तेतलि इत्यादि, प्रज्ञापनासूत्र (के पहले पद) में कहे अनुसार नारिकेल (नारियल) पर्यन्त जानना चाहिए । ये और इनके अतिरिक्त इस प्रकार के जितने भी वृक्षविशेष हैं, वे सब संख्यातजीव वाले हैं । यह हुआ संख्यातजीव वाले वृक्षों का वर्णन ।

३ से किं तं असंखेज्जजीविया ?

असंखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य ।

[३ प्र] भगवन् ! असंख्यातजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं ?

[३ उ] गौतम ! असंख्यातजीव वाले वृक्ष दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—एकास्थिक (एक गुठली—बीज वाले) और बहुबीजक (बहुत बीजों वाले) ।

४ से किं तं एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—निंबंबजंबु एवं जहा पण्णवणापए जाव फला बहुबीयगा । से त्तं बहुबीयगा । से त्तं असंखेज्जजीविया ।

[४ प्र] भगवन् ! एकास्थिक वृक्ष कौन से हैं ?

[४ उ] गौतम ! एकास्थिक (एक गुठली या बीज वाले) वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—नीम, आम, जामुन आदि । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र (के प्रथम पद) में कहे अनुसार 'बहुबीज

वाले फलों' तक कहना चाहिए। इस प्रकार यह बहुबीजकों का वर्णन हुआ। और (इसके साथ ही) असंख्यातजीव वाले वृक्षों का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

५ से किं तं अणंतजीविया ?

अणंतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—आलुए मूलए सिंगबेरे एवं जहा सत्तमसए (स० ७ उ० ३ सु० ५) जाव सीउण्हे मुसुंढी, जे यावन्ने तहप्पकारा। से त्तं अणंतजीविया।

[५ प्र.] भगवन्! अनन्तजीव वाले वृक्ष कौन-से हैं?

[५ उ.] गौतम! अनन्तजीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं, जैसे—आलू, मूला, शृंगबेर (अदरख) आदि। इस प्रकार भगवतीसूत्र के सप्तम शतक के तृतीय उद्देशक सूत्र ५ में कहे अनुसार 'सिउण्हे, मुसुंढी' तक जानना चाहिए। ये और इनके अतिरिक्त जितने भी इस प्रकार के अन्य वृक्ष हैं, उन्हें भी (अनन्तजीव वाले) जान लेना चाहिए। यह हुआ उन अनन्तजीव वाले वृक्षों का कथन।

विवेचन—संख्यातजीविक, असंख्यातजीविक और अनन्तजीविक वृक्षों का निरूपण—प्रस्तुत तृतीय उद्देशक के प्रारम्भिक पांच सूत्रों में वृक्षों के तीन प्रकार का और फिर उनमें से प्रत्येक प्रकार के वृक्षों का परिचय दिया है।

संख्यातजीविक, असंख्यातजीविक और अनन्तजीविक का विश्लेषण—जिन में संख्यातजीव हों उन्हें संख्यातजीविक कहते हैं, प्रज्ञापना में दो गाथाओं द्वारा नालिकेरी तक इनके नामों का उल्लेख किया है—

> ताल तमाले तेतलि, साले य सारकल्लाणे।
> सरले जायइ केयइ कदलि तह चम्मरुक्खे य ॥१॥
> भुयरुक्खे हिंगुरुक्खे य लवगरुक्खे य होइ बोद्धव्वे।
> पूयफली खज्जूरी बोधव्वा नालिएरी य ॥२॥

अर्थात्—ताड, तमाल, तेतलि (इमली), साल, सारकल्याण, सरल, जाई, केतकी, कदली (केला) तथा चर्मवृक्ष, भुजवृक्ष, हिंगुवृक्ष और लवंगवृक्ष, पूगफली (पूगीफल—सुपारी), खजूर और नारियल के वृक्ष संख्यातजीविक समझने चाहिए। असंख्यातजीविक मुख्यतया दो प्रकार के हैं—एकास्थिक और बहुबीजक। जिन फलों में एक ही बीज (या गुठली) हो वे एकास्थिक और जिन फलों में बहुत-से बीज हों, वे बहुबीजक-अनेकास्थिक कहलाते हैं। प्रज्ञापनासूत्र में एकास्थिक के कुछ नाम इस प्रकार दिये गए हैं—

> [1]णिबंब जम्बुकोसंब साल अंकोल्लपीलु सल्लूया।
> सल्लइमोयइमालुय बउलपलासे करंजे य ॥१॥

अर्थात्—नीम, आम, जामुन, कोशाम्ब, साल, अंकोल्ल, पीलू, सल्लूक, सल्लकी, मोदकी, मालुक, बकुल, पलाश और करंज इत्यादि फल एकास्थिक जानने चाहिए।

बहुबीजक फलों के प्रज्ञापनासूत्र में उल्लिखित नाम इस प्रकार हैं—

अत्थिय-तेंदू-कविट्ठे-अवाडग-माउलुंग-बिल्ले य ।
आमलग-फणस दाडिम आसोट्ठे उंबर-वडे य ॥

अस्थिक, तिन्दुक, कविट्ठ, आम्रातक, मातुलुंग (बिजौरा), बेल, आवला, फणस (अनन्नास), दाडिम, अश्वत्थ, उदुम्बर और वट, ये बहुबीजक फल है ।

अनेकजीविक फलदार वृक्षो के भी प्रज्ञापना मे कुछ नाम इस प्रकार गिनाए है—

एएसि मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि, साला वि पवाला वि, पत्ता पत्तेय-जीविया पुप्फा अणेगजीविया फला बहुबीयगा ।" इन (पूर्वोक्त) वृक्षो के मूल भी असंख्यातजीविक है । कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा, प्रवाल (नये कोमल पत्ते), पत्ते प्रत्येकजीवी है, फूल अनेक-जीविक हैं, फल बहुबीज वाले हैं ।[1]

छिन्न कछुए आदि के टुकडो के बीच का जीवप्रदेश स्पृष्ट और शस्त्रादि के प्रभाव से रहित

६. [१] अह भंते ! कुम्मे कुम्मावलिया, गोहे गोहावलिया, गोणे गोणावलिया, मणुस्से मणुस्सावलिया, महिसे महिसावलिया, एएसि णं दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपदेसेहिं फुडा ?

हंता, फुडा ।

[६-१ प्र] भगवन् ! कछुआ, कछुओ की श्रेणी (कूर्मावली), गोधा (गोह), गोधा की पंक्ति (गोधावलिका), गाय, गायो की पंक्ति, मनुष्य, मनुष्यो की पंक्ति, भैंसा, भैंसो की पंक्ति, इन सबके दो या तीन अथवा संख्यात खण्ड (टुकडे) किये जाएँ तो उनके बीच का भाग (अन्तर) क्या जीवप्रदेशो से स्पृष्ट (व्याप्त—छुआ हुआ) होता है ?

[६-१ उ] हाँ, गौतम ! वह (बीच का भाग जीवप्रदेशो से) स्पृष्ट होता है ।

[२] पुरिसे णं भंते ! ते अंतरे हत्थेण वा पादेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा आमुसमाणे वा सम्मुसमाणे वा आलिहमाणे वा विलिहमाणे वा अन्नयरेण वा तिक्खेण सत्थजातेण आच्छिंदेमाणे वा विच्छिंदेमाणे वा अगणिकाएण वा समोडहमाणे तेसि जीवपदेसाणं किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पायइ ? छविच्छेदं वा करेइ ?

णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं संकमति ।

[६-२ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष उन कछुए आदि के खण्डो के बीच के भाग को हाथ से, पैर से अंगुलि से, शलाका (सलाई) से, काष्ठ से या लकडी के छोटे-से टुकडे से थोडा स्पर्श करे, विशेष स्पर्श करे, थोडा-सा खींचे, या विशेष खींचे, या किसी तीक्ष्ण (शस्त्रसमूह) से थोडा

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३६४-३६५
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (महावीर विद्यालय०) पद १, सूत्र ४७ गाथा ३७-३८
(ग) प्रज्ञापनासूत्र (महावीर विद्यालय०) पद १, सूत्र ४०, गाथा १३-१४-१५

छेदे, अथवा विशेष छेदे, अथवा अग्निकाय से उसे जलाए तो क्या उन जीवप्रदेशों को थोड़ी या अधिक बाधा (पीड़ा) उत्पन्न कर पाता है, अथवा उसके किसी भी अवयव का छेद कर पाता है ?

[६-२ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, (अर्थात् वह जरा-सी भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकता और न अंगभंग कर सकता है।), क्योंकि उन जीवप्रदेशों पर शस्त्र (आदि) का प्रभाव नहीं होता।

विवेचन—छिन्न-कछुए आदि के टुकड़ों के बीच का जीवप्रदेश स्पृष्ट और शस्त्रादि के प्रभाव से रहित—प्रस्तुत सूत्र (सू ६) में दो तथ्यों का स्पष्ट निरूपण किया गया है—

(१) किसी भी जीव के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने पर भी उसके बीच के भाग कुछ काल तक जीवप्रदेशों से स्पृष्ट रहते हैं तथा (२) कोई भी व्यक्ति जीवप्रदेशों को हाथ आदि से छुए, खींचे, शस्त्रादि से काटे तो उन पर उसका कोई असर नहीं होता।[1]

रत्नप्रभादि पृथ्वियों के चरमत्व-अचरमत्व का निरूपण

७ कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा पुढवी, ईसिपब्भारा।

[७-प्र] भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं ?

[७-उ] गौतम ! पृथ्वियाँ आठ कही गई हैं, वे इस प्रकार—रत्नप्रभापृथ्वी यावत् अध सप्तमा (तमस्तमा) पृथ्वी और ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला)।

८ इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा, अचरिमा ? चरिमपदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव वेमाणिया णं भंते ! फासचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा ?

गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे०।

॥ अट्ठमसए तइओ उद्देसओ समत्तो ॥

[८ प्र] भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी चरम (प्रान्तवर्ती—अन्तिम) है, अथवा अचरम (मध्यवर्ती) है ?

[८ उ] (गौतम !) यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का समग्र चरमपद (१० वाँ) भगवन् ! वैमानिक स्पर्शचरम से क्या चरम हैं अथवा अचरम हैं ? तक कहना चाहिये।

(उ) गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', (यों कहकर भगवान् गौतम यावत् विचरण करते हैं।)

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ३५३

विवेचन—**रत्नप्रभादि पृथ्वियों के चरमत्व अचरमत्व का निरूपण**—प्रस्तुत सूत्रद्वय (सू ७-८) में दो तथ्यों का निरूपण किया गया है—आठ पृथ्वियों का और रत्नप्रभादि पृथ्वियों के चरमत्व—अचरमत्व का।

चरम अचरम-परिभाषा—चरम का अर्थ यहाँ प्रान्त या पर्यन्तवर्ती (अन्तिम सिरे पर रहा हुआ) है। यह अन्तवर्तित्व अन्य द्रव्य की अपेक्षा से समझना चाहिए। जैसे—पूर्वशरीर की अपेक्षा से चरमशरीर कहा जाता है। अचरम का अर्थ है—अप्रान्त या मध्यवर्ती। यह भी आपेक्षिक है। यथा—अन्यद्रव्य की अपेक्षा यह अचरम द्रव्य है अथवा अन्तिम शरीर की अपेक्षा यह मध्य शरीर है।[1]

चरमादि छह प्रश्नोत्तरों का आशय—प्रज्ञापनासूत्र में रत्नप्रभापृथ्वी के सम्बन्ध में ६ प्रश्न और उनके उत्तर प्रस्तुत किये गए हैं। यथा—रत्नप्रभापृथ्वी चरम है, अचरम है, (एकवचन की अपेक्षा से) चरम हैं या अचरम हैं (बहुवचन की अपेक्षा से) अथवा चरमान्त प्रदेश हैं, या अचरमान्त प्रदेश हैं? इसके उत्तर में कहा गया है—रत्नप्रभापृथ्वी न तो चरम है, न अचरम है, न वे (पृथ्वियां) चरम हैं, और न अचरम हैं, न ही चरमान्तप्रदेश (उसका भूभाग प्रान्तवर्ती) है, न ही अचरमान्तप्रदेश है। रत्नप्रभा में चरमत्व (एकवचन-बहुवचन दोनों दृष्टियों से) इसलिए घटित नहीं हो सकता कि चरमत्व आपेक्षिक है, अन्यापेक्ष है और अन्य पृथ्वी का वहाँ अभाव होने से रत्नप्रभा चरम नहीं है। और अचरमत्व भी उसमें तब घटित हो, जब बीच में कोई दूसरी पृथ्वी हो, वह भी नहीं है। इसलिए रत्नप्रभा अचरम भी नहीं है। रत्नप्रभापृथ्वी असंख्यात प्रदेशावगाढ है किन्तु पास में या मध्य में दूसरी पृथ्वी के प्रदेश न होने से वह न तो चरमान्तप्रदेश है और न अचरमान्त।[2]

॥ अष्टम शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३६५

२ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ३६६

(ख) प्रज्ञापना पद १०, (म. विद्या.) सू. ७७४-८२९, पृ. १९३-२०८

चउत्थो उद्देसओ : किरिया

चतुर्थ उद्देशक : 'क्रिया'

क्रियाएँ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेदों आदि का निर्देश

१ रायगिहे जाव एव वयासी—

[१ उद्देशक का उपोद्घात] राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

२. कति ण भते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! पच किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा—काइया अहिगरणिया, एव किरियापद निरवसेस भाणियव्व जाव मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ ।

सेव भंते ! सेव भते ! त्ति भगव गोयमे० ।

॥ अट्ठमसए चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥

[२ प्र] भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई है ?

[२ उ] गौतम ! क्रियाएँ पाच कही गई है । वे इस प्रकार—

(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५) प्राणातिपातिकी ।

यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का (बाईसवाँ) समग्र क्रियापद—'मायाप्रत्ययिकी क्रियाएँ विशेषाधिक है,'—यहाँ तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन—क्रियाएँ और उनसे सम्बन्धित भेद प्रभेदों आदि का निर्देश—प्रस्तुत उद्देशक के सूत्रद्वय मे मुख्य क्रियाओ और उनसे सम्बन्धित भेद-प्रभेद एव अल्पबहुत्व का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश पूर्वक निर्देश किया गया है ।

क्रिया की परिभाषा—कर्मबन्ध की कारणभूत चेष्टा को अथवा दुर्व्यापारविशेष को जैन दर्शन मे क्रिया कहा गया है ।

कायिकी आदि क्रियाओं का स्वरूप और प्रकार—कायिकी के दो प्रकार—१ अनुपरतकायिकी (हिंसादि सावद्ययोग से देशत या सर्वत अनिवृत्त-अविरत जीवों को लगने वाली) [illegible] कायिकी—(रागादि से दुष्प्रयोग से प्रमत्तसयत को [illegible] क्रिया) । [illegible]

१ सयोजनाधिकरणिकी (पहले से बने हुए अस्त्र [illegible] साधनो को [illegible]

रखना) तथा २ निर्वर्तनाधिकरणिकी (नये अस्त्र-शस्त्रादि बनाना)। प्राद्वेषिकी—(स्वयं का, दूसरों का, उभय का अशुभ-द्वेषयुक्त चिन्तन करना), पारितापनिकी—(स्व, पर और उभय को परिताप उत्पन्न करना) और प्राणातिपातिकी (अपने आपके, दूसरों के या उभय के प्राणों का नाश करना)। कायिकी आदि पांच-पांच करके पच्चीस क्रियाओं का वर्णन भी मिलता है। इसके अतिरिक्त इन पांचों क्रियाओं का अल्पबहुत्व भी विस्तृत रूप से प्रज्ञापना में प्रतिपादित किया गया है।[1]

॥ अष्टम शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३६७ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचनयुक्त) भा ३, पृ. १३७४

पंचमो उद्देसओ : 'आजीव'

पचम उद्देशक 'आजीव'

सामायिकादि साधना मे उपविष्ट श्रावक का सामान या स्त्री आदि परकीय हो जाने पर भी उसके द्वारा स्वममत्ववश अन्वेषण

१. रायगिहे जाव एव वदासी—

[१ उद्देशक का उपोद्घात] राजगृह नगर के यावत् गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर से) इस प्रकार पूछा—

२ आजीविया ण भंते ! थेरे भगवते एव वदासि—

समणोवासगस्स ण भते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ भडे अवहरेज्जा, से ण भते ! त भड अणुगवेसमाणे कि सभड अणुगवेसइ ? परायग भड अणुगवेसइ ?

गोयमा ! सभड अणुगवेसइ नो परायग भड अणुगवेसइ।

[२ प्र] भगवन् ! आजीविको (गोशालक के शिष्यो) ने स्थविर भगवन्तो स इस प्रकार पूछा कि 'सामयिक करके श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए किसी श्रावक के भाण्ड-वस्त्र आदि सामान को कोई अपहरण कर ले जाए, (और सामायिक पूर्ण होने पर उसे पार कर) वह उस भाण्ड-वस्त्रादि सामान का अन्वेषण करे तो क्या वह (श्रावक) अपने सामान का अन्वेषण करता है या पराये (दूसरो के) सामान का अन्वेषण नही करता है ?

[२ उ] गौतम ! वह (श्रावक) अपने ही सामान (भाण्ड) का अन्वेषण करता है, पराये सामान का अन्वेषण नही करता।

३ [१] तस्स ण भते ! तेहिं सीलव्वत गुण वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहि से भडे अभडे भवति ?

हता, भवति।

[३-१ प्र] भगवन् ! उन शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास को स्वीकार किये हुए श्रावक का वह अपहृत भाण्ड (सामान) उसके लिए तो अभाण्ड हो जाता है ? (अर्थात् सामायिक आदि की साधनावस्था म वह सामान उसका अपना रह जाता है क्या ?)

[३ १ उ] हाँ, गौतम, (शीलव्रतादि के साधनाकाल मे) वह भाण्ड उसके लिए अभाण्ड हो जाता है।

[२] से केण खाइ ण अट्ठेण भंते ! एव वुच्चति 'सभड अणुगवेसइ नो परायगं भडं अणुगवेसइ' ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवति—णो मे हिरण्णे, नो मे सुवण्णे नो मे कसे, नो मे दूसे, नो मे विउलधण कणग-रयण-मणि मोत्तिय सख-सिल प्पवाल रत्तरयणमादीए सतसारसावदेज्जे, ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाते भवति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—'सभड अणुगवेसइ नो परायग भड अणुगवेसइ ।

[३-२ प्र] भगवन् ! (जब वह भाण्ड उसके लिए अभाण्ड हो जाता है,) तब आप ऐसा क्यो कहते हैं कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरे के भाण्ड का अन्वेषण नही करता ?

[३-२ उ] गौतम ! सामायिक आदि करने वाले उस श्रावक के मन मे हिरण्य (चादी) मेरा नही है, सुवर्ण मेरा नही है, कास्य (कासी के बतन आदि सामान) मेरा नही है, वस्त्र मेरे नही हैं तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, शिलाप्रवाल (मूगा) एव रक्तरत्न (पद्मरागादि मणि) इत्यादि विद्यमान सारभूत द्रव्य मेरा नही है। किन्तु (उन पर) ममत्वभाव का उसने प्रत्याख्यान नही किया है। इसी कारण हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरो के भाण्ड (सामान) का अन्वेषण नही करता।

४ समणोवासगस्स ण भते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ जाय चरेज्जा, से ण भते ! किं जाय चरइ, अजाय चरइ ?

गोयमा ! जाय चरइ, नो अजाय चरइ ।

[४ प्र] भगवन् ! सामायिक करके श्रमणोपाश्रय मे बैठे हुए श्रावक की पत्नी के साथ कोई लम्पट व्यभिचार करता (भोग भोगता) है, तो क्या वह (व्यभिचारी) जाया (श्रावक की पत्नी) को भोगता है, या अजाया (श्रावक की स्त्री को नही, दूसरे की स्त्री) को भोगता है ?

[४ उ] गौतम ! वह (व्यभिचारी पुरुष) उस श्रावक की जाया (पत्नी) को भोगता है, अजाया (श्रावक के सिवाय दूसरे की स्त्री को) नही भोगता।

५ [१] तस्स ण भते ! तेहिं सीलव्वय गुण वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं सा जाया अजाया भवइ ?

हता, भवइ ।

[५-१ प्र] भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास कर लेने स क्या उस श्रावक की वह जाया 'अजाया' हो जाती है ?

[५-१ उ] हाँ, गौतम ! (शीलव्रतादि की साधनावेला मे) श्रावक की जाया, अजाया हो जाती है।

[२] से केण खाइ ण अट्ठेण भते ! एव वुच्चइ० 'जाय चरइ, नो अजाय चरइ' ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवइ—णो मे माता, णो मे पिता, णो मे भाया, णो मे भगिणी, णो मे भज्जा, णो मे पुत्ता, णो मे धूता, नो मे सुण्हा, पेज्जबधणे पुण से अव्वोच्छिन्ने भवइ, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो अजाय चरइ ।

[५-२ प्र.] भगवन् ! जब शीलव्रतादि-साधनाकाल में श्रावक की जाया 'अजाया' हो जाती है,) तब आप ऐसा क्यों कहते हैं कि वह लम्पट उसकी जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता।

[५-२ उ.] गौतम ! शीलव्रतादि को अंगीकार करने वाले उस श्रावक के मन में ऐसे परिणाम होते हैं कि माता मेरी नहीं हैं, पिता मेरे नहीं हैं, भाई मेरा नहीं है, बहन मेरी नहीं है, भार्या मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नहीं है, पुत्रवधू (स्नुषा) मेरी नहीं है, किन्तु इन सबके प्रति उसका प्रेम (प्रेय) बन्धन टूटा नहीं (अव्यवच्छिन्न) है। इस कारण हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि वह पुरुष उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता।

विवेचन—सामायिकादि साधना में उपविष्ट श्रावक का सामान या स्त्री आदि स्वकीय हो न रहने पर भी उसके प्रति स्वममत्व—प्रस्तुत तीन सूत्रों में सामायिक आदि में बैठे हुए श्रमणोपासक का सामान अपना न होते हुए भी अपहृत हो जाने पर ममत्ववश स्वकीय मान कर अन्वेषण करने की वृत्ति सूचित की गई है।

सामायिकादि साधना में परकीय पदार्थ स्वकीय क्यों ?—सामायिक, पौषधोपवास आदि अंगीकार किये हुए श्रावक ने यद्यपि वस्त्रादि सामान का त्याग कर दिया है, यहाँ तक कि सोना, चांदी, अन्य धन, घर, दूकान, माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि पदार्थों के प्रति भी उसके मन में यही परिणाम होता है कि ये मेरे नहीं हैं, तथापि उसका उनके प्रति ममत्व का त्याग नहीं हुआ है, उनके प्रति प्रेमबन्धन रहा हुआ है, इसलिए वे वस्त्रादि तथा स्त्री आदि उसके कहलाते हैं।[1]

श्रावक के प्राणातिपात आदि पापों के प्रतिक्रमण-संवर-प्रत्याख्यान-सम्बन्धी विस्तृत भंगों की प्ररूपणा

६ [१] समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव थूलए पाणातिवाते अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते ! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेति ?

गोयमा ! तीतं पडिक्कमति, पडुप्पन्नं संवरेति, अणागतं पच्चक्खाति।

[६-१ प्र.] भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने (पहले) स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान नहीं किया, वह पीछे उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है ?

[६-१ उ.] गौतम ! अतीत काल में किए हुए प्राणातिपात का प्रतिक्रमण करता है (उक्त पाप की निन्दा, गर्हा, आलोचनादि करके उससे निवृत्त होता है) तथा वर्तमानकालीन प्राणातिपात का संवर (निरोध) करता है एवं अनागत (भविष्यत्कालीन) प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता (उसे न करने की प्रतिज्ञा लेता) है।

[२] तीतं पडिक्कममाणे किं तिविहं तिविहेणं पडिक्कमति १, तिविहं दुविहेणं पडिक्कमति २, तिविहं एगविहेणं पडिक्कमति ३, दुविहं तिविहेणं पडिक्कमति ४, दुविहं दुविहेणं पडिक्कमति ५, दुविहं एगविहेणं पडिक्कमति ६, एक्कविहं तिविहेणं पडिक्कमति ७, एक्कविहेणं दुविहेणं पडिक्कमति ८, एक्कविहं एगविहेणं पडिक्कमति ९ ?

गोयमा ! तिविहं वा तिविहेणं पडिक्कमति, तिविहं वा दुविहेणं पडिक्कमति, तं चेव जाव

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३६८

एक्कविहं वा एक्कविहेण पडिक्कमति । तिविहं वा तिविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, करेंतं णाणुजाणति, मणसा वयसा कायसा १। तिविहं दुविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा वयसा २, अहवा न करेति, न कारवेति, करेंतं नाणुजाणति, मणसा कायसा ३, अहवा न करेइ, न कारवेति, करेंत णाणुजाणति, वयसा कायसा ४। तिविहं एगविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, करेंत णाणुजाणति, मणसा ५, अहवा न करेइ, ण कारवेति, करेंत णाणुजाणति, वयसा ६, अहवा न करेति, न कारवेति, करेंत णाणुजाणति, कायसा ७। दुविहं तिविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, मणसा वयसा कायसा ८, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा वयसा कायसा ९, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा वयसा कायसा १०। दुविहं दुविहेण पडिक्कममाणे न करेति न कारवेति, मणसा वयसा ११, अहवा न करेति, न कारवेति, मणसा कायसा १२, अहवा न करेति, न कारवेति, वयसा कायसा १३, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा वयसा १४, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा कायसा १५, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, वयसा कायसा १६, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति मणसा वयसा १७, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा कायसा १८, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति वयसा कायसा १९, दुविहं एक्कविहेण पडिक्कममाणे न करेति, न कारवेति, मणसा २०, अहवा न करेति, न कारवेति वयसा २१, अहवा न करेति, न कारवेति कायसा २२, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा २३, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, वयसा २४, अहवा न करेति, करेंत नाणुजाणति, कायसा २५, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति, मणसा २६, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति वयसा २७, अहवा न कारवेति, करेंत नाणुजाणति, कायसा २८। एगविहं तिविहेण पडिक्कममाणे न करेति मणसा वयसा कायसा २९, अहवा न कारवेति मणसा वयसा कायसा ३०, अहवा करेंत नाणुजाणति मणसा वयसा कायसा ३१, एक्कविहं दुविहेण पडिक्कममाणे न करेति मणसा वयसा ३२, अहवा न करेति मणसा कायसा ३३, अहवा न करेति वयसा कायसा ३४, अहवा न कारवेति मणसा वयसा ३५, अहवा न कारवेति मणसा कायसा ३६, अहवा न कारवेति वयसा कायसा ३७, अहवा करेंत नाणुजाणति मणसा वयसा ३८, अहवा करेंत नाणुजाणति मणसा कायसा ३९, अहवा करेंत नाणुजाणति वयसा कायसा ४०। एक्कविहं एगविहेण पडिक्कममाणे न करेति मणसा ४१, अहवा न करेति वयसा ४२, अहवा न करेति कायसा ४३, अहवा न कारवेति मणसा ४४, अहवा न कारवेति वयसा ४५, अहवा न कारवेति कायसा ४६, अहवा करेंत नाणुजाणति मणसा ४७, अहवा करेंत नाणुजाणति वयसा ४८, अहवा करेंत नाणुजाणति कायसा ४९।

[६-२ प्र] भगवन् ! अतीतकालीन प्राणातिपात आदि का प्रतिक्रमण करता हुआ श्रमणोपासक, क्या १ त्रिविध-त्रिविध (तीन करण, तीन योग से), २ त्रिविध-द्विविध (तीन करण, दो योग से), ३ त्रिविध-एकविध (तीन करण, एक योग से), ४ द्विविध त्रिविध (दो करण, तीन योग से), ५ द्विविध-द्विविध (दो करण, दो योग से), ६ द्विविध-एकविध (दो करण, एक योग से), ७ एकविध त्रिविध (एक करण, तीन योग से), ८ एकविध-द्विविध (एक करण, दो योग से) अथवा ९ एकविध-एकविध (एक करण, एक योग से) प्रतिक्रमण करता है।

[६ २ उ] गौतम ! वह त्रिविध-त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा त्रिविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा यावत् एकविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है।

१ जब वह त्रिविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब १ स्वय करता नही, दूसरे से करवाता नही और करते हुए का अनुमोदन करता नही मन से, वचन से और काया से । २ जब त्रिविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वय करता नही, दूसरे से करवाता नही और करते हुए का अनुमोदन नही करता, मन से और वचन से, ३ अथवा वह स्वय करता नही, कराता नही और अनुमोदन नही करता, मन से और काया से, ४ या वह स्वय करता, कराता और अनुमोदन करता नही, वचन से और काया से।

जब त्रिविध एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ५ स्वय नही करता, न दूसरे से करवाता है और न करते हुए का अनुमोदन करता है, मन से, ६ अथवा स्वय नहीं करता, दूसरे से नही करवाता और करते हुए का अनुमोदन नहीं करता, वचन से, ७ अथवा स्वय नही करता, दूसरे से नहीं कराता और करते हुए का अनुमोदन नही करता है, काया से।

जब द्विविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब ८ स्वय करता नहीं, दूसरो से करवाता नहीं मन, वचन और काया से, ९ अथवा स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन वचन-काया से १० अथवा दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन, वचन और काया से।

जब द्विविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ११ स्वय नही करता, दूसरो से करवाता नही, मन और वचन से, १२ अथवा स्वय करता नही, दूसरों से करवाता नहीं, मन और काया से, १३ अथवा स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, वचन और काया से, १४ अथवा स्वय करता नही, करते हुए हुए का अनुमोदन करता नही, मन और वचन से, १५ अथवा स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और काया से, १६ अथवा स्वय करता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन और काया से, १७ अथवा दूसरो से करवाता नहीं करते हुए का अनुमोदन करता नहीं, मन और वचन से, १८ अथवा दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और काया से, १९ अथवा दूसरो से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन और काया से।

जब द्विविध एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब २० स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नही, मन से, २१ अथवा स्वय करता नही, दूसरो से करवाता नहीं, वचन से, २२ अथवा स्वय करता नहीं, दूसरों से करवाता नही, काया से, २३ अथवा स्वय करता [illegible] हुए का अनुमोदन करता नहीं, मन से, २४ अथवा स्वय करता नही, करते हुए का [illegible] नहीं, वचन से, २५ अथवा स्वय करता नही, करते [illegible] करता नहीं, [illegible] अथवा दूसरो से करवाता नही, करते हुए का अनुमोद[illegible] मन से, २७ [illegible] नही, करते हुए का अनुमोदन करता नही, वच[illegible] दूसरो से [illegible] करते हुए का अनुमोदन करता नही, काया से।

जब एकविध-त्रिविध [illegible] करता नहीं [illegible] काया से, ३० अथवा दूसरों से [illegible] से, ३१ [illegible] का अनुमोदन करता नहीं, मन, [illegible]

जब एकविध-द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ३२ स्वय करता नही, मन और वचन से, ३३ अथवा स्वय करता नही, मन और काया से, ३४ अथवा स्वय करता नही, वचन और काया से, ३५ अथवा दूसरो से करवाता नही, मन और वचन से, ३६ अथवा दूसरो से करवाता नही, मन और काया से, ३७ अथवा दूसरो से करवाता नही, वचन और काया से, ३८ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और वचन से, ३९ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन और काया से, ४० अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन और काया से।

जब एकविध-एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ४१ स्वय करता नही, मन से, ४२ अथवा स्वय करता नही, वचन से, ४३ अथवा स्वय करता नही, काया से, ४४ अथवा दूसरो से करवाता नही, मन से, ४५ अथवा दूसरो से करवाता नही, वचन से, ४६ अथवा दूसरो से करवाता नही, काया से, ४७ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नही, मन से, ४८ करते हुए का अनुमोदन करता नही, वचन से, ४९ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नही, काया से।

[३] पडुप्पन्न सवरमाणे कि तिविह तिविहेण सवरेइ ?

एव जहा पडिक्कममाणेण एगूणपण्ण भगा भणिया एव सवरमाणेण वि एगूणपण्ण भगा भाणियव्वा।

[६-३ प्र] भगवन्! प्रत्युत्पन्न (वर्तमानकालीन) सवर करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध-त्रिविध सवर करता है? (इत्यादि समग्र प्रश्न पूर्ववत् यावत् एकविध-एकविध सवर करता है?)

[६-३ उ] गौतम! (प्रत्युत्पन्न का सवर करते हुए श्रावक के पहले कहे अनुसार त्रिविध-त्रिविध से लेकर एकविध-एकविध तक) जो उनचास (४९) भग प्रतिक्रमण के विषय मे कहे गए है, वे ही सवर के विषय मे कहने चाहिए।

[४] अणागत पच्चक्खमाणे कि तिविह तिविहेण पच्चक्खाइ ?

एव ते चेव भगा एगूणपण्ण भाणियव्वा जाव अहवा करेंत नाणुजाणइ कायसा।

[६-४ प्र] भगवन्! अनागत (भविष्यत्) काल (के प्राणातिपात) का प्रत्याख्यान करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध-त्रिविध प्रत्याख्यान करता है? इत्यादि समग्र प्रश्न पूर्ववत्।

[६-४ उ] गौतम! पहले (प्रतिक्रमण के विषय मे) कहे अनुसार यहाँ भी उनचास (४९) भग 'अथवा करते हुए का अनुमोदन नही करता, काया से,'—तक कहना चाहिए।

७ समणोवासगस्स ण भंते! पुव्वामेव थूलमुसावादे अपच्चक्खाए भवइ, से ण भंते! पच्छा पच्चाइक्खमाणे ?

एव जहा पाणाइवातस्स सीयाल भगसत (१४७) भणित तहा मुसावादस्स वि भाणियव्व।

[७ प्र] भगवन्! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान नही किया, किन्तु पीछे वह स्थूल मृषावाद (असत्य) का प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?

[७ उ] गौतम! जिस प्रकार प्राणातिपात के (अतीत के प्रतिक्रमण, वर्तमान के सवर और भविष्य के प्रत्याख्यान, यो त्रिकाल) के विषय मे कुल (४९ × ३ = १४७) एक सौ सैतालीस भग कहे गए है, उसी प्रकार मृषावाद के सम्बन्ध मे भी एक सौ सैतालीस भग कहने चाहिए।

८ एवं अदिण्णादाणस्स वि। एवं थूलगस्स मेहुणस्स वि। थूलगस्स परिग्गहस्स वि जाव अहवा करेंतं नाणुजाणति कायसा।

[८] इसी प्रकार स्थूल अदत्तादान के विषय में, स्थूल मैथुन के विषय में एवं स्थूल परिग्रह के विषय में भी पूर्ववत् प्रत्येक के एक सौ सैंतालीस-एक सौ सैंतालीस त्रैकालिक भंग अथवा 'पाप करते हुए का अनुमोदन नहीं करता, काया से,' यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—श्रावक के प्राणातिपात आदि पापों के प्रतिक्रमण संवर-प्रत्याख्यान सम्बन्धी भंगों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू ६ से ८ तक) में प्राणातिपात आदि पापों के स्थूल रूप से प्रतिक्रमण करने, संवर करने और प्रत्याख्यान करने की विधि के रूप में प्रत्येक के ४९-४९ भंग बताए गए हैं।

श्रावक का प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यान करने के लिए प्रत्येक के ४९ भंग—तीन करण हैं—करना, कराना और अनुमोदन करना, तथा तीन योग हैं—मन, वचन और काया। इनके संयोग से विकल्प नौ और भंग उनचास होते हैं। उनकी तालिका इस प्रकार है—

विकल्प	करण	योग	भंग	विवरण
१	तीन	तीन	१	कृत, कारित, अनुमोदित का मन, वचन, काय से निषेध।
२	तीन	दो	३	कृत, कारित, अनुमोदित का मन-वचन से, मन काय से, वचन-काय से निषेध।
३	तीन	एक	३	कृत-कारित-अनुमोदित मन से, वचन से, काय से निषेध।
४	दो	तीन	३	कृत-कारित का, कृत अनुमोदित का और कारित अनुमोदित का मन वचन-काय से निषेध।
५	दो	दो	९	कृत-कारित, कृत-अनुमोदित और कारित अनुमोदित का मन-वचन से, मन-काय से और वचन-काय से निषेध।
६	दो	एक	९	कृत कारित का मन से, वचन से, काय से, कृत अनुमोदित का मन वचन काय से, कारित-अनुमोदित का भी इसी प्रकार निषेध।
७	एक	तीन	३	कृत का मन-वचन-काय से, कारित का मन-वचन-काय से और अनुमोदित का मन वचन-काय से निषेध।
८	एक	दो	९	कृत का मन-वचन से, मन-काय से, वचन काय से, कारित का मन वचन से, मन-काय से और वचन-काय से, इसी प्रकार अनुमोदित का निषेध।
९	एक	एक	९	कृत का मन से, वचन से, काय से, कारित का भी इसी तरह और अनुमोदित का भी इसी तरह निषेध।
	कुल भंग=४९			

भूतकाल के प्रतिक्रमण, वर्तमानकाल के सवर और भविष्य के लिए प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा, इस प्रकार तीनो काल की अपेक्षा ४९ भगो को ३ से गुणा करने पर १४७ भग होते है। ये स्थूल प्राणातिपात-विषयक हुए। इसी प्रकार स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह, इन प्रत्येक के १४७-१४७ भग होते हैं। यो पाचो अणुव्रतो के कुल भग ७३५ होते हैं। श्रावक इन ४९ भगो मे से किसी भी भग से यथाशक्ति प्रतिक्रमण, सवर या प्रत्याख्यान कर सकता है। तीन करण तीन योग से सवर या प्रत्याख्यानादि श्रावकप्रतिमा स्वीकार किया हुआ श्रावक कर सकता है।[1]

आजीविकोपासको के सिद्धान्त, नाम, आचार-विचार और श्रमणोपासको की उनसे विशेषता

९ एए खलु एरिसगा समणोवासगा भवंति, नो खलु एरिसगा आजीवियोवासगा भवति।

[९] श्रमणोपासक ऐसे होते हैं, किन्तु आजीविकोपासक ऐसे नही होते।

१० आजीवियसमयस्स ण अयमट्ठे पण्णत्ते—अक्खीणपडिभोइणो सव्वे सत्ता, से हता छेत्ता भेत्ता लुपित्ता विलुपित्ता उद्दवइत्ता आहारमाहारेंति।

[१०] आजीविक (गोशालक) के सिद्धान्त का यह अर्थ (तत्त्व) है कि समस्त जीव अक्षीणपरिभोजी (सचित्ताहारी) होते हैं। इसलिए वे (लकडी आदि से) हनन (ताडन) करके, (तलवार आदि से) काट कर, (शूल आदि से) भेदन करके, (पख आदि को) कतर (लुप्त) कर, (चमडी आदि को) उतार कर (विलुप्त करके) और विनष्ट करके खाते (आहार करते) हैं।

११ तत्थ खलु इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवति, त जहा—ताले १ तालपलबे २ उव्विहे ३ सविहे ४ अवविहे ५ उदए ६ नामुदए ७ णम्मुदए ८ अणुवालए ९ सखवालए १० अयबुले ११ कायरए १२।

[११] ऐसी स्थिति (ससार के समस्त जीव असयत और हिंसादिदोषपरायण है, ऐसी परिस्थिति) मे आजीविक मत मे ये बारह आजीविकोपासक है—(१) ताल, (२) तालप्रलम्ब, (३) उद्विध, (४) सविध, (५), अवविध, (६) उदय, (७) नामोदय, (८) नर्मोदय, (९) अनुपालक, (१०) शखपालक, (११) अयम्बुल और (१२) कातरक।

१२ इच्चेते दुवालस आजीवियोवासगा अरहंतदेवतागा अम्मा-पिउसुस्सूसगा, पचफल-पडिक्कता, त जहा—उबरेंहि, वडेहि, बोरेहि सतरेहि पिलखूहि, पलडु ल्हसण-कद-मूलविवज्जगा अणिल्लछिएहि अणक्कभि-नेहि गोणेहि तसपाणविवज्जिएहि चित्तेहि वित्ति कप्पेमाणे विहरति।

[१२] इस प्रकार ये बारह आजीविकोपासक है। इनका देव अरहत (स्वमत-कल्पना से गोशालक अर्हत) है। वे माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करते है। वे पाच प्रकार के फल नही खाते (पाच फलो से विरत हैं।) वे इस प्रकार—उदुम्बर (गुल्लर) के फल, वड के फल, बोर, सत्तर (शहतूत) के फल, पीपल (प्लक्ष) फल तथा प्याज (पलाण्डु), लहसुन, कन्दमूल के त्यागी होते हैं तथा

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३७०-३७१

अनिर्लांछित (खस्सी-बधिया न किये हुए) और नाक नहीं नाथे हुए बैलों से त्रस प्राणी की हिंसा से रहित व्यापार द्वारा आजीविका करते हुए विहरण (जीवनयापन) करते हैं।

१३ 'एए वि ताव एवं इच्छंति, किमंग पुण जे इमे समणोवासगा भवंति ?' जेसिं नो कप्पंति इमाइं पण्णरस कम्मादाणाइं सयं करेत्तए वा, कारवेत्तए वा, करेंतं वा अन्नं न समणुजाणेत्तए, तं जहा—इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे केसवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया सर-दह-तलायपरिसोसणया असतीपोसणया।

[१३] जब इन आजीविकोपासकों को यह अभीष्ट है, तो फिर जो श्रमणोपासक हैं, उनका तो कहना ही क्या ?, (क्योंकि उन्होंने तो विशिष्टतर देव, गुरु और धर्म का आश्रय लिया है !)

जो श्रमणोपासक होते हैं, उनके लिए ये पन्द्रह कर्मादान स्वयं करना, दूसरों से कराना और करते हुए का अनुमोदन करना कल्पनीय (उचित) नहीं हैं। वे कर्मादान इस प्रकार हैं—(१) अंगारकर्म, (२) वनकर्म, (३) शाकटिककर्म, (४) भाटीकर्म, (५) स्फोटककर्म, (६) दन्तवाणिज्य, (७) लाक्षा वाणिज्य, (८) केशवाणिज्य, (९) रसवाणिज्य, (१०) विषवाणिज्य, (११) यन्त्रपीडन कर्म, (१२) निर्लाञ्छनकर्म, (१३) दावाग्निदापनता, (१४) सरो—ह्रद—तडागशोषणता, (१५) असतीपोषणता।

१४ इच्चेते समणोवासगा सुक्का सुक्काभिजातीया भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति।

[१४] ये श्रमणोपासक शुक्ल (पवित्र), शुक्लाभिजात (पवित्र कुलोत्पन्न) हो कर काल (मरण) के समय मृत्यु प्राप्त करके किन्हीं देवलोकों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं।

विवेचन—आजीविकोपासकों के सिद्धान्त, नाम, आचार विचार और श्रमणोपासकों की उनसे विशेषता—प्रस्तुत पांच सूत्रों में आजीविकोपासकों के सिद्धान्त, नाम, आचार-विचार आदि तथ्यों का निरूपण करके श्रमणोपासकों की उनसे विशेषता बताई गई है।

आजीविकोपासकों का आचार विचार—गोशालक मंखलीपुत्र के शिष्य आजीविक कहलाते हैं। गोशालक के समय में उसके ताल, तालप्रलम्ब आदि बारह विशिष्ट उपासक थे। वे उदुम्बर आदि पांच प्रकार के फल तथा अन्य शुद्ध फल नहीं खाते थे। जिन बैलों को बधिया नहीं किया गया है और नाक नाथा नहीं गया है, उनसे अहिंसक ढंग से व्यापार करके वे जीविका चलाते थे।

श्रमणोपासकों की विशेषता—पूर्वोक्त ४९ भंगों में से यथेच्छ भंगों द्वारा श्रमणोपासक अपने व्रत, नियम, संवर, त्याग, प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करते हैं, जबकि आजीविकोपासक इस प्रकार से हिंसा आदि का त्याग नहीं करते, न ही वे कर्मादान रूप पापजनक व्यवसायों का त्याग करते हैं, श्रमणोपासक तो इन १५ कर्मादानों का सर्वथा त्याग करता है, वह इन हिंसादिमूलक व्यवसायों को अपना ही नहीं सकता। यही कारण है कि ऐसा श्रमणोपासक चार प्रकार के देवलोकों में से किसी एक देवलोक में उत्पन्न होता है, क्योंकि वह जीवन और जीविका दोनों से पवित्र, शुद्ध और निष्पाप होता है और उसे विशिष्ट देव, गुरु, धर्म की प्राप्ति होती है।[1]

कर्मादान और उसके प्रकारों की व्याख्या—जिन व्यवसायों या कर्मों (आजीविका के कार्यों)

1 भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३७१-३७२, (ख) भगवती० भाष्यचूर्णिकसार ४

से ज्ञानावरणीय आदि अशुभकर्मों का विशेषरूप से वध होता है, उन्हे अथवा कमवध के हेतुओ को कर्मादान कहते हैं। श्रावक के लिए कर्मादानो का आचरण स्वय करना, दूसरो से कराना या करते हुए का अनुमोदन करना, निषिद्ध है। ऐसे कर्मादान पन्द्रह हैं— (१) इगालकम्मे (अगारकम) अगार अर्थात् अग्निविषयक कम यानो अग्नि से कोयले वनाने और उसे वेचने-खरीदने का धधा करना, (२) वणकम्मे (वनकर्म) जगल को खरीद कर वृक्षो, पत्तो आदि को काट कर वेचना, (३) साडीकम्मे (शाकटिककम) गाडी, रथ, तागा, इक्का आदि तथा उसके अगो को वनाने और वेचने का धधा करना, (४) भाडीकम्मे (भाटीकर्म) वैलगाडी आदि से दूसरो का सामान एक जगह भाडे से ले जाना, किराये पर वैल, घोडा आदि देना, मकान आदि वना-बनाकर किराये पर देना, इत्यादि धधा से आजीविका चलाना, (५) फोडीकम्मे (स्फोटकम) सुरग आदि विछाकर विस्फोट करके जमीन, खान आदि खोदने-फोडने का धधा करना, (६) दतवाणिज्जे (दन्तवाणिज्य) पेशगी देकर हाथीदात आदि खरीदने व उनसे वनी हुई वस्तुए वेचने आदि का धधा करना, (७) लक्खवाणिज्जे (लाक्षावाणिज्य) लाख का क्रय-विक्रय करके आजीविका करना, (८) केसवाणिज्जे (केशवाणिज्य) केश वाले जीवो का अर्थात्—गाय, भैंस आदि को तथा दास-दासी आदि को खरीद-वेचकर व्यापार करना, (९) रसवाणिज्जे (रस-वाणिज्य) मदिरा आदि नशीले रसो को वनाने-वेचने आदि का धधा करना, (१०) विसवाणिज्जे (विषवाणिज्य) विष (अफीम, सखिया आदि जहर) वेचने का धधा करना, (११) जतपीलणकम्मे (यत्रपोडनकम) तिल, ईख आदि पीलने के कोल्हू, चरखी आदि का धधा करना यत्रपीडनकम है, (१२) निल्लछणकम्मे (निर्लाछनकम) वैल, घोडे, आदि को खसी (वधिया) करने का धधा, (१३) दवग्गिदावणया (दावाग्निदापनता) खेत आदि साफ करने के लिए जगल मे आग लगाना-लगवाना, (१४) सर-दह-तलायसोसणया (सरोह्रद-तडाग-शोषणता) सरोवर, ह्रद या तालाव आदि जलाशयो को सुखाना और (१५) असईजणपोसणया (असतीजनपोषणता) कुलटा, व्यभिचारिणी या दुश्चरित्र स्त्रियो का अड्डा वनाकर उनसे कुकम करवा कर आजीविका चलाना अथवा दुश्चरित्र स्त्रियो का पोषण करना, अथवा पापवुद्धिपूवक मुर्गा मुर्गी, साप, सिंह, बिल्ली आदि जानवरो को पालना-पोसना।

देवलोको के चार प्रकार

१५ कतिविहा ण भते ! देवलोगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, त जहा—भवणवासि वाणमतर-जोइस वेमाणिया।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ अट्ठमसए पचमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१५ प्र] भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१५ उ] गौतम ! चार प्रकार के देवलोक कहे गए है यथा—भवनवासी वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ अष्टम शतक पचम उद्देशक समाप्त ॥

छट्ठो उद्देसओ : 'फासुगं'

छठा उद्देशक : 'प्रासुक'

तथारूप श्रमण, माहन या असंयत आदि को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीय-अनेषणीय आहार देने का श्रमणोपासक को फल

१. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जति ?

गोयमा ! एगंतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जति।

[१ प्र.] भगवन् ! तथारूप (श्रमण के वेष तथा तदनुकूल गुणों से सम्पन्न) श्रमण अथवा माहन को प्रासुक एवं एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार द्वारा प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

[१ उ.] गौतम ! वह (ऐसा करके) एकान्त रूप से निर्जरा करता है, उसके पापकर्म नहीं होता।

२. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण जाव पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?

गोयमा ! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ।

[२ प्र.] भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक एवं अनेषणीय आहार द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

[२ उ.] गौतम ! उसके बहुत निर्जरा होती है, और अल्पतर पापकर्म होता है।

३. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं अस्संजयअविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मं फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?

गोयमा ! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काई निज्जरा कज्जइ।

[३ प्र.] भगवन् ! तथारूप असंयत, अविरत, पापकर्मों का जिसने निरोध और प्रत्याख्यान नहीं किया, उसे प्रासुक या अप्रासुक, एषणीय या अनेषणीय अशन-पानादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को क्या फल प्राप्त होता है ?

[३ उ.] गौतम ! उसे एकान्त पापकर्म होता है, किसी प्रकार की निर्जरा नहीं होती।

विवेचन—तथारूप श्रमण, माहन या असंयत आदि को प्रासुक-अप्रासुक, एषणीयानेषणीय आहार देने का श्रमणोपासक को फल—प्रस्तुत तीन सूत्रों में क्रमशः तीन तथ्यों का निरूपण किया गया है—(१) तथारूप श्रमण या माहन को प्रासुक-एषणीय आहार देने वाले श्रमणोपासक को

एकान्तत निर्जरा-लाभ, (२) तथारूप श्रमण या माहन को अप्रासुक-अनेपणीय आहार देने वाले श्रमणोपासक को बहुत निर्जरालाभ और अल्प पापकर्म तथा (३) तथारूप असंयत, अविरत, आदि विशेषणयुक्त व्यक्ति को प्रासुक-अप्रासुक, एपणीय-अनेपणीय आहार देने से एकान्त पापकर्म की प्राप्ति, निर्जरालाभ बिलकुल नहीं।

'तथारूप' का आशय—पहले और दूसरे सूत्र मे 'तथारूप' का आशय है—जैनागमो मे वर्णित श्रमण के वेश और चारित्रादि श्रमणगुणो से युक्त तथा तीसरे सूत्र मे असंयत, अविरत आदि विशेषणो से युक्त जो 'तथारूप' शब्द है, उसका आशय यह है कि उस-उस अन्यतीर्थिक वेष से युक्त योगी, सन्यासी, बाबा आदि, जो असंयत, अविरत तथा पापकर्मो के निरोध और प्रत्याख्यान से रहित हैं, उन्हे गुरुबुद्धि से मोक्षार्थ आहार-दान देने का फल सूचित किया गया है।[1]

मोक्षार्थ दान ही यहाँ विचारणीय—प्रस्तुत तीनो सूत्रो मे निर्जरा के सद्भाव और अभाव की दृष्टि से मोक्षार्थ दान का ही विचार किया गया है। यही कारण है कि तीनो ही सूत्रपाठो मे 'पडिलाभेमाणस्स' शब्द है, जो कि गुरुबुद्धि से—मोक्षलाभ की दृष्टि से दान देने के फल का सूचक है, अभावग्रस्त, पीडित, दुःखित, रोगग्रस्त या अनुकम्पनीय (दयनीय) व्यक्ति या अपने पारिवारिक, सामाजिक जनो को औचित्यादि रूप मे देने मे 'पडिलाभे' शब्द नहीं आता, अपितु वहाँ 'दलयइ' या 'दलेज्जा' शब्द आता है। प्राचीन आचार्यों का कथन भी इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत है—

मोक्खत्थं जं दाणं, तं पइ एसो विही समक्खाओ।
अणुकंपादाणं पुण जिणेहिं, न कयाइ पडिसिद्धं॥

अर्थात्—यह (उपर्युक्त) विधि (विधान) मोक्षार्थ जो दान है, उसके सम्बन्ध मे कही गई है, किन्तु अनुकम्पादान का जिनेन्द्र भगवन्तो ने कदापि निषेध नहीं किया है।

तात्पर्य यह है कि अनुकम्पापात्र को दान देने या औचित्यदान आदि के सम्बन्ध मे निर्जरा की अपेक्षा यहाँ चिन्तन नहीं किया जाता अपितु पुण्यलाभ का विशेषरूप से विचार किया जाता है।

'प्रासुक अप्रासुक,' 'एपणीय अनेपणीय' की व्याख्या—प्रासुक और अप्रासुक का अर्थ सामान्यतया निर्जीव (अचित्त) और सजीव (सचित्त) होता है तथा एपणीय का अर्थ होता है—आहार सम्बन्धी उद्गमादि दोषो से रहित—निर्दोष और अनेपणीय-दोषयुक्त—सदोष।[2]

'बहुत निर्जरा, अल्पतर पाप' का आशय—वैसे तो श्रमणोपासक अकारण ही अपने उपास्य तथारूप श्रमण को अप्रासुक और अनेपणीय आहार नहीं देगा और न तथारूप श्रमण अप्रासुक और अनेपणीय आहार लेना चाहेंगे, परन्तु किसी अत्यन्त गाढ कारण के उपस्थित होने पर यदि श्रमणोपासक अनुकम्पावश तथारूप श्रमण के प्राण बचाने या जीवनरक्षा की दृष्टि से अप्रासुक और अनेपणीय आहार या औषध आदि दे देता है और साधु वैसी दुःसाध्य रोग या प्राणसंकट की परिस्थिति मे अप्रासुक—अनेपणीय भी अपवादरूप मे ले लेता है, बाद मे प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होने की उसकी भावना है, तो ऐसी परिस्थिति मे उक्त विवेकी श्रावक को 'बहुत निर्जरा और अल्प पाप'

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ३६०-३६१
(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचनयुक्त) भा ३, पृ १३९४

२ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक ३७३-३७४, (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ३, पृ १३९२

होता है। बिना ही कारण के यों ही अप्रासुक-अनेषणीय आहार साधु को देने वाले और लेने वाले दोनों का अहित है।

गृहस्थ द्वारा स्वयं या स्थविर के निमित्त कह कर दिये गए पिण्ड, पात्र आदि की उपभोग-मर्यादा-प्ररूपणा

४ [१] निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केइ दोहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि, से य तं पिंडं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया, जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेवाऽणुप्पदायव्वे सिया, नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगंते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थंडिले पडिलेहेत्ता, पमज्जित्ता परिट्ठावेतव्वे सिया।

[४-१] गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने की (वहरने) की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ दो पिण्ड (खाद्य पदार्थ) ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे—'आयुष्मन् श्रमण! इन दो पिण्डों (दो लड्डू, दो रोटी या दो अन्य खाद्य पदार्थों) में से एक पिण्ड आप स्वयं खाना और दूसरा पिण्ड स्थविर मुनियों को देना।' (इस पर) वह निर्ग्रन्थ श्रमण उन दोनों पिण्डों को ग्रहण कर ले और (स्थान पर आ कर) स्थविरों की गवेषणा करे। गवेषणा करने पर उन स्थविर मुनियों को जहाँ देखे, वहीं वह पिण्ड उन्हें दे दे। यदि गवेषणा करने पर भी स्थविरमुनि कहीं न दिखाई दें (मिलें) तो वह पिण्ड स्वयं न खाए और न ही दूसरे किसी श्रमण को दे, किन्तु एकान्त, अनापात (जहाँ आवागमन न हो), अचित्त या बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके वहाँ (उस पिण्ड को) परिष्ठापन करे (परठ दे)।

[२] निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केति तिहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, दो थेराणं दलयाहि, से य ते पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसेयव्वा, सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

[४-२] गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने के विचार से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ तीन पिण्ड ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे—'आयुष्मन् श्रमण! (इन तीनों में से) एक पिण्ड आप स्वयं खाना और (शेष) दो पिण्ड स्थविर श्रमणों को देना।' (इस पर) वह निर्ग्रन्थ उन तीनों पिण्डों को ग्रहण कर ले। तत्पश्चात् वह स्थविरों की गवेषणा करे। गवेषणा करने पर जहाँ उन स्थविरों को देखे, वहीं उन्हें वे दोनों पिण्ड दे दे। गवेषणा करने पर भी वे कहीं दिखाई न दें तो शेष वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् स्वयं न खाए, परिष्ठापन करे (परठ दे)।

[३] एवं जाव दसहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा, नवरं एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, नव थेराणं दलयाहि, सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेतव्वे सिया।

[४-३] इसी प्रकार गृहस्थ के घर में प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को यावत् दस पिण्डों को ग्रहण करने

---

1 "संथरणंमि असुद्धं दोण्ह वि गेण्हंतदितयाणऽहियं।
आउरदिट्ठंतेणं तं चेव हियं असंथरणे॥" —भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३७१

के लिए कोई गृहस्थ उपनिमन्त्रण दे—'आयुष्मन् श्रमण ! इनमे से एक पिण्ड आप स्वय खाना और शेष नौ पिण्ड स्थविरो को देना,' इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् जानना, यावत परिष्ठापन करे (परठ दे)।

५ [१] निग्गंथं च ण गाहावइ जाव केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो ! अप्पणा परिभुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि, से य तं पडिग्गाहेज्जा, तहेव जाव तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए। सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

[५-१] निग्रन्थ यावत गृहपति-कुल मे प्रवेश करे और कोई गृहस्थ उसे दो पात्र (पतद्ग्रह) ग्रहण करने (बहरने) के लिए उपनिमन्त्रण करे—'आयुष्मन् श्रमण ! (इन दोनो मे से) एक पात्र का आप स्वय उपयोग करना और दूसरा पात्र स्थविरो को दे देना।' इस पर वह निग्रन्थ उन दोनो पात्रो को ग्रहण कर ले। शेष सारा वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिए यावत् उस पात्र का न तो स्वय उपयोग करे और न दूसरे साधुओ को दे, शेष सारा वर्णन पूर्ववत समझना, यावत् उसे परठ दे।

[२] एवं जाव दसहिं पडिग्गहेहिं।

[५-२] इसी प्रकार तीन, चार यावत् दस पात्र तक का कथन पूर्वोक्त पिण्ड के समान कहना चाहिए।

६ एवं जहा पडिग्गहवत्तव्वया भणिया एवं गोच्छग-रयहरण चोलपट्टग-कंबल लट्ठी संथारग-वत्तव्वया य भाणियव्वा जाव दसहिं संथारएहिं उवनिमंतेज्जा जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

[६] जिस प्रकार पात्र के सम्बन्ध मे वक्तव्यता कही, उसी प्रकार गुच्छक (पूंजनी), रजोहरण, चोलपट्टक, कम्बल, लाठी, (दण्ड) और सस्तारक (बिछौना या बिछाने का लम्बा आसन—संथारिया) की वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् दस सस्तारक ग्रहण करने के लिए उपनिमन्त्रण करे, यावत् परठ दे, (यहा तक सारा पाठ कहना चाहिए)।

विवेचन—गृहस्थ द्वारा दिए गए पिण्ड, पात्र आदि की उपभोग-मर्यादा प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे गृहस्थ द्वारा साधु को दिए गए पिण्ड, पात्र आदि के उपभोग करने को विधि बताई गई है।

निष्कर्ष—गृहस्थ ने जो पिण्ड, पात्र, गुच्छक, रजोहरण आदि जितनी सख्या मे जिसको उपभोग करने के लिए दिए हैं, उसे ग्रहण करने वाला साधु उसी प्रकार स्थविरो को वितरित कर दे, किन्तु यदि वे स्थविर ढूंढने पर भी न मिलें तो उस वस्तु का उपयोग न स्वय करे और न ही दूसरे साधु को दे, अपितु उसे विधिपूर्वक परठ दे।

परिष्ठापनविधि—किसी भी वस्तु को स्थण्डिल भूमि पर परिष्ठापन करने के लिए मूलपाठ मे स्थण्डिल के ४ विशेषण दिये गए हैं—एकान्त, अनापात, अचित्त और बहुप्रासुक तथा उस पर परिष्ठापनविधि मुख्यतया दो प्रकार से बताई है—प्रतिलेखन और प्रमार्जन।

स्थण्डिल-प्रतिलेखन विवेक—परिष्ठापन के लिए स्थण्डिल कैसा होना चाहिए ? इसके लिए शास्त्र मे १० विशेषण बताए गए हैं—(१) अनापात असलोक (जहाँ स्वपक्ष-परपक्ष वाले लोगो मे से

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ३६१-३६२

किसी का भी आवागमन न हो, न ही दृष्टिपात हो), (२) अनुपघातक (जहाँ संयम की, किसी जीव की एवं आत्मा की विराधना न हो), (३) सम (भूमि ऊबड़खाबड़ न होकर समतल हो), (४) अशुषिर (पोली या थोथी भूमि न हो), (५) अचिरकालकृत (जो भूमि थोड़े ही समय पूर्व दाह आदि से अचित्त हुई हो), (६) विस्तीर्ण (जो भूमि कम से कम एक हाथ लम्बी-चौड़ी हो), (७) दूरावगाढ (जहाँ कम से कम चार अंगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो), (८) अनासन्न (जहाँ गाँव या बाग-बगीचा-आदि निकट में न हो) (९) बिलवर्जित (जहाँ चूहे आदि के बिल न हों), (१०) त्रस-प्राण-बीजरहित (जहाँ द्वीन्द्रियादि त्रसप्राणी तथा गेहूँ आदि के बीज न हों)। इन दस विशेषणों से युक्त स्थण्डिलभूमि में साधु उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) आदि वस्तु परठे।[1]

विशिष्ट शब्दों की व्याख्या—'पिंडवायपडियाए'—पिण्ड=भोजन का पात—गिरना मेरे पात्र में हो, इसकी प्रतिज्ञा=बुद्धि से। 'उवनिमंतेज्ज'=भिक्षो! ये दो पिण्ड ग्रहण कीजिए, इस प्रकार कहे। नो अन्नेसिं दावए=दूसरों को न दे या दिलाये, क्योंकि गृहस्थ ने वह पिण्ड आदि विवक्षित स्थविर को देने के लिए दिया है, अन्य किसी को देने के लिए नहीं। अन्य साधु को देने या स्वयं उसका उपभोग करने से अदत्तादानदोष लगने की सम्भावना है।[2]

अकृत्यसेवी, किन्तु आराधनातत्पर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की आराधकता की विभिन्न पहलुओं से सयुक्तिक प्ररूपणा

७ [१] निग्गंथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेणं अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि विउट्टामि विसोहेमि अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जामि, तओ पच्छा थेराणं अंतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि। से य संपट्ठिए, असंपत्ते, थेरा य अमुहा सिया, से णं भंते! किं आराहए विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-१ प्र.] गृहस्थ के घर आहार ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्य (मूलगुण में दोष रूप किसी अकार्य) स्थान (बात) का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्क्षण उसके मन में ऐसा विचार हो कि प्रथम मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, (आत्म-) निन्दा (पश्चात्ताप) और गर्हा करूं, (उसके अनुबन्ध का) छेदन करूं, इस (पाप दोष से) विशुद्ध बनूं,

---

१ (क) अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए।
आवायमसंलोए, आवाए चेव होइ संलोए॥१॥
अणावायमसंलोए १ परस्सऽणुवघाइए २।
समे ३ अज्झुसिरे ४ यावि अचिरकालकयम्मि ५ य॥२॥
वित्थिण्णे ६ दूरमोगाढे ७ नासन्ने ८ बिलवज्जिए ९।
तसपाण-बीयरहिए, १० उच्चाराईणि वोसिरे॥३॥ —उत्तराध्ययन सूत्र, अ. २४

(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्रांक ३७५

२ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३७४-३७५

पुन ऐसा अकृत्य न करने के लिए अभ्युद्यत (प्रतिज्ञाबद्ध) होऊँ और यथोचित प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लूँ। तत्पश्चात् स्थविरो के पास जाकर आलोचना करूगा, यावत् प्रायश्चित्तरूप तप कम स्वीकार कर लूगा, (ऐसा विचार कर) वह निग्रन्थ, स्थविरमुनियो के पास जाने के लिए रवाना हुआ, किन्तु स्थविरमुनियो के पास पहुँचने से पहले ही वे स्थविर (वातादिदोष के प्रकोप से) मूक हो जाएँ (बोल न सकें अर्थात् प्रायश्चित्त न दे सके) तो हे भगवन्! वह निग्रन्थ आराधक है या विराधक है?

[७-१ उ] गौतम! वह (निग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही।

[२] से य सपट्ठिए असपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया, से ण भते! किं आराहए, विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-२ प्र] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ ने तत्काल स्वयं आलोचनादि कर लिया, यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्तरूप तप कर्म भी स्वीकार कर लिया,) तत्पश्चात् स्थविरमुनियो के पास (आलोचनादि करके यावत् तप कम स्वीकार करने हेतु) निकला, किन्तु उनके पास पहुँचने से पूव ही वह निग्रन्थ स्वय (वातादि दोषवश) मूक हो जाए, तो हे भगवन्! वह निग्रन्थ आराधक है या विराधक?

[७-२ उ] गौतम! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नही।

[३] से य सपट्ठिए, असपत्ते थेरा य काल करेज्जा, से ण भते! किं आराहए विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-३ प्र] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ स्वय आलोचनादि करके यथोचित प्रायश्चित्त रूप तप स्वीकार करके) स्थविर मुनिवरो के पास आलोचनादि के लिए रवाना हुआ, किन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही वे स्थविर मुनि काल कर (दिवगत हो) जाएँ, तो हे भगवन्! वह निग्रन्थ आराधक है विराधक?

[७-३ उ] गौतम! वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नही।

[४] से य संपट्ठिए असंपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव काल करेज्जा, से ण भते! किं आराहए विराहए?

गोयमा! आराहए, नो विराहए।

[७-४ प्र] भगवन्! (उपर्युक्त अकृत्य-सेवन करके तत्काल स्वयं आलोचनादि करके) वह निग्रन्थ स्थविरो के पास आलोचनादि करने के लिए निकला, किन्तु वहाँ पहुँचा नही, उससे पूर्व ही स्वय काल कर जाए तो हे भगवन्! वह निग्रन्थ आराधक है या विराधक?

[७-४ उ] गौतम! वह (निग्रन्थ) आराधक है, विराधक नहीं।

[५] से य सपट्ठिए सपत्ते, थेरा य अमुहा सिया, से णं भंते ! किं आराहए विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए।

[७-५ प्र] उपर्युक्त अकृत्यसेवी निर्ग्रन्थ ने तत्क्षण आलोचनादि करके स्थविर मुनिवरों के पास आलोचनादि करने हेतु प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुंच गया, तत्पश्चात् वे स्थविर मुनि (वातादिदोषवश) मूक हो जाएँ, तो हे भगवन् ! वह निर्ग्रन्थ आराधक है या विराधक ?

[७-५ उ] गौतम ! वह (निर्ग्रन्थ) आराधक है, विराधक नहीं।

[६-८] से य सपट्ठिए सपत्ते अप्पणा य०।
एवं सपत्तेण वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा जहेव असपत्तेणं।

[७-६।७।८] (उपर्युक्त अकृत्यसेवी मुनि स्वयं आलोचनादि करके स्थविरों की सेवा में पहुँचते ही स्वयं मूक हो जाए, (इसी तरह शेष दो विकल्प हैं—स्थविरों के पास पहुँचते ही वे स्थविर काल कर जाएँ, या स्थविरों के पास पहुँचते ही स्वयं निर्ग्रन्थ काल कर जाए,) जिस प्रकार असप्राप्त (स्थविरों के पास न पहुँचे हुए) निर्ग्रन्थ के चार आलापक कहे गए हैं, उसी प्रकार सम्प्राप्त निर्ग्रन्थ के भी चार आलापक कहने चाहिए। यावत् (चारों आलापकों में) वह निग्रन्थ आराधक है, विराधक नहीं।

८ निग्गंथेण य बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खतेणं अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं०। एवं एत्थ वि, ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए।

[८] (उपाश्रय से) बाहर विचारभूमि (नीहारार्थ स्थण्डिलभूमि) अथवा विहारभूमि (स्वाध्यायभूमि) की ओर निकले हुए निग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन हो गया हो, तत्क्षण उसके मन में ऐसा विचार हो कि 'पहले मैं स्वयं यहीं इस अकृत्य की आलोचनादि करूं, यावत् यथाई प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लूँ', इत्यादि पूर्ववत् सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिए। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से असम्प्राप्त और सम्प्राप्त दोनों के (प्रत्येक के स्थविरमूकत्व, स्वमूकत्व, स्थविरकालप्राप्ति और स्वकालप्राप्ति, ये चार-चार आलापक होने से) आठ आलापक कहने चाहिए। यावत् वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नहीं, यहाँ तक सारा पाठ कहना चाहिए।

९ निग्गंथेण य गामाणुगामं दूइज्जमाणेणं अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं०। एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए।

[९] ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए किसी निग्रन्थ द्वारा किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन हो गया हो और तत्काल उसके मन में यह विचार स्फुरित हो कि 'पहले मैं यहीं इस अकृत्य की आलोचनादि करूं, यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार करूं, इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यहाँ भी पूर्ववत आठ आलापक कहने चाहिए, यावत् वह निर्ग्रन्थ आराधक है, विराधक नहीं, यहाँ तक समग्र पाठ कहना चाहिए।

१० [१] निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठाए अन्नयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तीसे णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि जाव तवोकम्मं पडिवज्जामि तम्रो पच्छा पवत्तिणीए अंतियं आलोएस्सामि जाव पडिवज्जिस्सामि, सा य संपट्ठिया असंपत्ता, पवत्तिणी य अमुहा सिया, सा णं भंते ! किं आराहिया, विराहिया ?

गोयमा ! आराहिया, नो विराहिया ।

[१०-१ प्र] गृहस्थ के घर मे आहार ग्रहण करने (पिण्डपात) की बुद्धि से प्रविष्ट किसी निर्ग्रन्थी (साध्वी) ने किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, किन्तु तत्काल उसको ऐसा विचार स्फुरित हुआ कि मैं स्वयमेव पहले यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना कर लू, यावत् प्रायश्चित्तरूप तप कर्म स्वीकार कर लू । तत्पश्चात् प्रवर्तिनी के पास आलोचना कर लूगी यावत तप कर्म स्वीकार कर लूगी । ऐसा विचार कर उस साध्वी ने प्रवर्तिनी के पास जाने के लिए प्रस्थान किया, प्रवर्तिनी के पास पहुँचने से पूर्व ही वह प्रवर्तिनी (वातादिदोष के कारण) मूक हो गई, (उसकी जिह्वा बंद हो गई—बोल न सकी), तो हे भगवन् ! वह साध्वी आराधिका है या विराधिका ?

[१०-१ उ] गौतम ! वह साध्वी आराधिका है, विराधिका नही ।

[२] सा य संपट्ठिया जहा निग्गंथस्स तिण्णि गमा भणिया एवं निग्गंथीए वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जाव आराहिया, नो विराहिया ।

[१०२] जिस प्रकार सम्प्रस्थित (आलोचनादि के हेतु स्थविरो के पास जाने के लिए रवाना हुए) निर्ग्रन्थ के तीन गम (पाठ) है उसी प्रकार सम्प्रस्थित (प्रवर्तिनी के पास आलोचनादि हेतु रवाना हुई) साध्वी के भी तीन गम (पाठ) कहने चाहिए और वह साध्वी आराधिका है, विराधिका नहीं, यहा तक सारा पाठ कहना चाहिए ।

११ [१] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—आराहए, नो विराहए ?

"गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं उण्णालोमं वा गयलोमं वा सणलोमं वा कप्पासलोमं वा तणसूयं वा दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिंदित्ता अगणिकायंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा ! *छिज्जमाणे छिन्ने, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, डज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया ?*

हंता भगवं ! छिज्जमाणे छिन्ने जाव दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया ।

[११-१ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप कहते हैं, कि वे (पूर्वोक्त प्रकार के साधु और साध्वी) आराधक हैं, विराधक नही ?

[११-१ उ] गौतम ! जैसे कोई पुरुष एक बडे ऊन (भेड) के बाल के या हाथी के रोम के अथवा सण के रेशे के या कपास के रेशे के अथवा तृण (घास) के अग्रभाग के दो, तीन या संख्यात टुकडे करके अग्निकाय (आग) मे डाले तो हे गौतम ! काटे जाते हुए वे (टुकडे) काटे गए, अग्नि मे डाले जाते हुए को डाले गए या जलते हुए को जल गए, इस प्रकार कहा जा सकता है ?

(गौतम स्वामी—) हां भगवन् ! काटे जाते हुए काटे गए अग्नि मे डाले जाते हुए डाले गए और जलते हुए जल गए, यों कहा जा सकता है ।

" [२] से जहा वा केइ पुरिसे वत्थ अहत वा धोत वा ततुग्गय वा मजिट्ठादोणीए पक्खि वेज्जा, से नूण गोयमा ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, रज्जमाणे रत्ते त्ति वत्तव्व सिया ?

हता, भगव ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते जाव रत्ते त्ति वत्तव्व सिया ।

से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—आराहए, नो विराहए ।"

[११-२] भगवान् का कथन—अथवा जैसे कोई पुरुष बिलकुल नये (नही पहने हुए), या धोये हुए, अथवा तत्र (करघे) से तुरत उतरे हुए वस्त्र को मजीठ के द्रोण (पात्र) मे डाले तो हे गौतम ! उठाते हुए वह वस्त्र उठाया गया, डालते हुए डाला गया, अथवा रगते हुए रगा गया, यो कहा जा सकता है ?

[गौतम स्वामी—] हाँ, भगवन् उठाते हुए वह वस्त्र उठाया गया, यावत् रगते हुए रगा गया, इस प्रकार कहा जा सकता है ।

[भगवान्—] इसी कारण से हे गौतम ! यो कहा जाता है कि (आराधना के लिए उद्यत हुआ साधु या साध्वी) आराधक है, विराधक नही है ।

विवेचन—अकृत्यसेवी किन्तु आराधनातत्पर निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की विभिन्न पहलुओं से आराधकता की सयुक्तिक प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो मे अकृत्यसेवी किन्तु सावधान तथा क्रमश स्थविरो व प्रवर्तिनी के समीप आलोचनादि के लिए प्रस्थित साधु या साध्वी की आराधकता का सदृष्टान्त प्ररूपण किया गया है ।

निष्कर्ष—किसी साधु या साध्वी से भिक्षाचरी जाते, स्थडिल भूमि या विहारभूमि (स्वाध्यायभूमि) जाते या ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए कही भी मूलगुणादि मे दोषरूप किसी अकृत्य का सेवन हो गया हो, किन्तु तत्काल वह विचारपूर्वक स्वय आलोचनादि करके प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाता है और अपने गुरुजनो के पास आलोचनादि करके प्रायश्चित्त लेने हेतु प्रस्थान कर देता है, किन्तु सयोगवश पहुँचने से पूर्व ही गुरुजन मूक हो जाते हैं, या काल कर जाते हैं, अथवा स्वय साधु या साध्वी मूक हो जाते हैं, या काल कर जाते हैं, इसी तरह पहुँचने के बाद भी इन चार अवस्थाओं मे से कोई एक अवस्था प्राप्त होती है तो वह साधु या साध्वी आराधक है, विराधक नहीं । कारण यह है कि उस साधु या साध्वी के परिणाम गुरुजनो के पास आलोचनादि करने के थे और वे इसके लिए उद्यत भी हो गए थे, किन्तु उपर्युक्त ८ प्रकार की परिस्थितियो मे से किसी भी परिस्थिति वश वे आलोचनादि न कर सके, ऐसी स्थिति मे 'चलमाणे चलिए' इत्यादि पूर्वोक्त भगवत्सिद्धानुसार वे आराधक ही हैं, विराधक नही ।[1]

दृष्टान्तों द्वारा आराधकता की पुष्टि—भगवान् ने "चलमाणे चलिए" के सिद्धान्तानुसार ऊन सण, कपास आदि तन्तुओ को काटने, आग मे डालने और जलाने का तथा नये धोए हुए वस्त्र को मजीठ के रग में डालने और रगने का सयुक्तिक दृष्टान्त देकर आराधना के लिए उद्यत साधक को आराधक सिद्ध किया है ।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्रांक ३७६ (ख) भगवती हिन्दीविवेचनयुक्त भा ३, पृ १४०५

आराधक, विराधक की व्याख्या—आराधक का अर्थ यहाँ मोक्षमार्ग का आराधक तथा भाव शुद्ध होने से शुद्ध है। जैसे कि मृत्यु को लेकर कहा गया है—आलोचना के सम्यक् परिणामसहित कोई साधु गुरु के पास आलोचनादि करने के लिए चल दिया है, किन्तु यदि बीच मे ही वह साधु (आलोचना करने से पूर्व ही) रास्ते मे काल कर गया, तो भी भाव से शुद्ध है।[1] स्वय आलोचनादि करने वाला वह साधु गीतार्थ होना सम्भव है।

तीन पाठ (गम)—(१) आहारग्रहणार्थ गृहस्थगृह-प्रविष्ट, (२) विचारभूमि आदि मे तथा (३) ग्रामानुग्राम-विचरण मे।

जलते हुए दीपक और घर मे जलने वाली वस्तु का निरूपण

१२ पईवस्स ण भते ! झियायमाणस्स किं पदीवे झियाति, लट्ठी झियाइ, वत्ती झियाइ, तेल्ले झियाइ, दीवचपए झियाइ, जोती झियाइ ?

गोयमा ! नो पदीवे झियाइ, जाव नो दीवचपए झियाइ, जोती झियाइ।

[१२ प्र] भगवन् ! जलते हुए दीपक मे क्या जलता है ? क्या दीपक जलता है ? दीपयष्टि (दीवट) जलती है ? बत्ती जलती है ? तेल जलता है ? दीपचम्पक (दीपक का ढक्कन) जलता है, या ज्योति (दीपशिखा) जलती है ?

[१२ उ] गौतम ! दीपक नही जलता, यावत् दीपक का ढक्कन भी नही जलता, किन्तु ज्योति (दीपशिखा) जलती है।

१३ अगारस्स ण भते ! झियायमाणस्स किं अगारे झियाइ, कुड्डा झियायति, कडणा झियायति, धारणा झियायति, बलहरणे झियाइ, वसा झियायति, मल्ला झियायति, वग्गा झियायति, छित्तरा झियायति, छाणे झियाइ, जोती झियाइ ?

गोयमा ! नो अगारे झियाइ, नो कुड्डा झियायति, जाव नो छाणे झियाइ जोती झियाइ।

[१३ प्र] भगवन् ! जलते हुए घर (आगार) मे क्या घर जलता है ? भीतें जलती हैं ? टाटी (खसखस आदि की टाटी या पतली दीवार) जलती है ? धारण (नीचे के मुख्य स्तम्भ) जलते हैं ? बलहरण (मुख्य स्तम्भ—धारण पर रहने वाली आडी लम्बी लकडी—वल्ली) जलता है ? बास जलते हैं ? मल्ल (भीतो के आधारभूत स्तम्भ) जलते हैं ? वग (बास आदि को बाधने वाली छाल) जलते हैं ? छित्वर (बास आदि को ढकने के लिए डाली हुई चटाई या छप्पर) जलते हैं ? छादन (छाण-दर्भादियुक्त पटल) जलता है, अथवा ज्योति (अग्नि) जलती है ?

[१३ उ] गौतम ! घर नही जलता, भीतें नहीं जलती, यावत् छादन नही जलता, किन्तु ज्योति (अग्नि) जलती है।

विवेचन—जलते हुए दीपक और घर मे जलने वाली वस्तु का विश्लेषण—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू १२-१३) मे दीपक और घर का उदाहरण दे कर इनमे वास्तविक रूप मे जलने वाली वस्तु—दीपशिखा और अग्नि बताई गई है।

अगार का विशेषार्थ—अगार से यहाँ घर ऐसा समझना चाहिए—जो कुटी या झोपडीनुमा हो।

---

१ "आलोयणा-परिणओ सम्म सपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ मरइ अतरे च्चिय तहावि सुद्धोत्ति भावाओ॥"—भगवतासूत्र अ वृत्ति पत्राक ३७६

एक जीव या बहुत जीवो की परकीय (एक या बहुत-से शरीरों की अपेक्षा होने वाली) क्रियाओ का निरूपण

१४ जीवे ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिए पचकिरिए, सिय अकिरिए ।

[१४ प्र] भगवन् ! एक जीव (स्वकीय औदारिकशरीर से, परकीय) एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१४ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला, कदाचित् पाच क्रिया वाला होता है और कदाचित् अक्रिय भी होता है ।

१५ नेरइए ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिए पचकिरिए ।

[१५ प्र] भगवन् ! एक नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१५ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाच क्रिया वाला होता है ।

१६ असुरकुमारे ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

एव चेव ।

[१६ प्र] भगवन् ! एक असुरकुमार, (दूसरे के) एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१६ उ] गौतम ! पहले कहे अनुसार (कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाच क्रियाओं वाला) होता है ।

१७ एव जाव वेमाणिय, नवर मणुस्से जहा जीवे (सु १४) ।

[१७] इसी प्रकार वैमानिक देवो तक कहना चाहिए। परन्तु मनुष्य का कथन औधिक जीव की तरह जानना चाहिए ।

१८ जीवे ण भते ! ओरालियसरीरेहितो कतिकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए जाव सिय अकिरिए ।

[१८ प्र] भगवन् ! एक जीव (दूसरे जीवो के) औदारिकशरीरो की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१८ उ] गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाच क्रिया वाला तथा कदाचित् अक्रिय (क्रियारहित) भी होता है ।

१९ नेरइए णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिए ?

एवं एसो जहा पढमो दंडओ (सु १५-१७) तहा इमो वि अपरिसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिए, नवरं मणुस्से जहा जीवे (सु १८)।

[१९ प्र] भगवन् ! एक नैरयिक जीव, (दूसरे जीवों के) औदारिकशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

[१९ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक (सू १५ से १७) में कहा गया है उसी प्रकार यह दण्डक भी सारा का सारा वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए, परन्तु मनुष्य का कथन सामान्य (औधिक) जीवों की तरह (सू १८ में कहे अनुसार) जानना चाहिये।

२० जीवा णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

गोयमा ! सिय तिकिरिया जाव सिय अकिरिया।

[२० प्र] भगवन् ! बहुत-से जीव, दूसरे के एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२० उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं तथा कदाचित् अक्रिय भी होते हैं।

२१ नेरइया णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ (सु १५-१७) तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया, नवरं मणुस्सा जहा जीवा (सु २०)।

[२१ प्र] भगवन् ! बहुत से नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिकशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२१ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक (सू १५ से १७ तक) में कहा गया है, उसी प्रकार यह दण्डक भी वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। विशेष यह है कि मनुष्यों का कथन औधिक जीवों की तरह (सू १८ के अनुसार) जानना चाहिए।

२२ जीवा णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि।

[२२ प्र] भगवन् ! बहुत-से जीव, दूसरे जीवों के औदारिकशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२२ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले और कदाचित् अक्रिय भी होते हैं।

२३ नेरइया णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

[२३ प्र] भगवन्! बहुत-से नैरयिक जीव, दूसरे जीवों के औदारिकशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं?

[२३ उ] गौतम! वे तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी होते हैं।

२४ एवं जाव वेमाणिया, नवरं मणुस्सा जहा जीवा (सु २२)

[२४] इसी तरह वैमानिकों पर्यन्त समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि मनुष्यों का कथन औघिक जीवों की तरह (सू २२ से कहे अनुसार) जानना चाहिए।

२५ जीवे णं भंते! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिए अकिरिए।

[२५ प्र] भगवन्! एक जीव, (दूसरे एक जीव के) वैक्रियशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है?

[२५ उ] गौतम! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् क्रियारहित होता है।

२६ नेरइए णं भंते! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए?
गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए।

[२६ प्र] भगवन्! एक नैरयिक जीव, (दूसरे एक जीव के) वैक्रियशरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है?

[२६ उ] गौतम! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है।

२७ एवं जाव वेमाणिए, नवरं मणुस्से जहा जीवे (सु २५)।

[२७] इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। किन्तु मनुष्य का कथन औघिक जीव की तरह (सू २५) कहना चाहिए।

२८ एवं जहा ओरालियसरीरेणं चत्तारि दंडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, नवरं पंचमकिरिया न भण्णइ, सेसं तं चेव।

[२८] जिस प्रकार औदारिकशरीर की अपेक्षा चार दण्डक कहे गए, उसी प्रकार वैक्रिय शरीर की अपेक्षा भी चार दण्डक कहने चाहिए। विशेषता इतनी है कि इसमें पंचम क्रिया का कथन नहीं करना चाहिए। शेष सभी कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

२९ एवं जहा वेउव्वियं तहा आहारग पि, तेयग पि, कम्मग पि भाणियव्वं। एक्केक्के चत्तारि दंडगा भाणियव्वाजाव वेमाणिया णं भंते? कम्मगसरीरेहितो कइकिरिया?

गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ अट्ठमसए छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

[२९ उ.] जिस प्रकार वैक्रियशरीर का कथन किया गया है, उसी प्रकार आहारक, तैजस और कार्मण शरीर का भी कथन करना चाहिए। इन तीनों के प्रत्येक के चार-चार दण्डक कहने चाहिए कि यावत्—(प्रश्न) 'भगवन् ! बहुत-से वैमानिक देव (परकीय) कार्मणशरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?' 'गौतम ! तीन क्रिया वाले भी और चार क्रिया वाले भी होते हैं।'

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, (यों कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरण करते हैं।)

विवेचन—**एक जीव या बहुत जीवों को परकीय एक या बहुत से शरीरों की अपेक्षा होने वाली क्रियाओं का निरूपण**—प्रस्तुत १६ सूत्रों (सू. १४ से २९ तक) में औधिक एक या बहुत जीवों तथा नैरयिक से लेकर वैमानिक तक एक या बहुत जीवों को परकीय एक या बहुत से औदारिकादि शरीरों की अपेक्षा से होने वाली क्रियाओं का निरूपण किया गया है।

अन्य जीव के औदारिकादि शरीर की अपेक्षा होने वाली क्रिया का आशय—कायिकी आदि पांच क्रियाएँ हैं, जिनका स्वरूप पहले बताया जा चुका है। जब एक जीव, दूसरे पृथ्वीकायादि जीव के शरीर की अपेक्षा काया का व्यापार करता है, तब उसे तीन क्रियाएँ होती हैं—कायिकी, आधिकारणिकी और प्राद्वेषिकी। क्योंकि सराग जीव को कायिकक्रिया के सद्भाव में आधिकरणिकी तथा प्राद्वेषिकी क्रिया अवश्य होती है, क्योंकि सराग जीव की काया अधिकरण रूप और प्रद्वेषयुक्त होती है। आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और कायिकी, इन तीनों क्रियाओं का अविनाभावसम्बन्ध है। जिस जीव के कायिकीक्रिया होती है, उसके आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया अवश्य होती हैं, जिस जीव के ये दो क्रियाएँ होती हैं, उसके कायिकीक्रिया भी अवश्य होती है। पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया में भजना (विकल्प) है, जब जीव, दूसरे जीव को परिताप पहुँचाता है अथवा दूसरे के प्राणों का घात करता है, तभी क्रमशः पारितापनिकी अथवा प्राणातिपातिकी क्रिया होती है। अतः जब जीव, दूसरे जीव को परिताप उत्पन्न करता है, तब जीव को चार क्रियाएँ होती हैं, क्योंकि पारितापनिकी क्रिया में पहले की तीन क्रियाओं का सद्भाव अवश्य रहता है। जब जीव, दूसरे जीव के प्राणों का घात करता है, तब उसे पांच क्रियाएँ होती हैं, क्योंकि प्राणातिपातिकीक्रिया में पूर्व की चार क्रियाओं का सद्भाव अवश्य होता है। इसीलिए मूलपाठ में जीव को कदाचित् तीन कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रिया वाला कहा गया है। जीव कदाचित् अक्रिय भी होता है, यह बात वीतराग-अवस्था की अपेक्षा से कही गई है, क्योंकि उस अवस्था में पांचों में से एक भी क्रिया नहीं होती।[1]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३७७

(ख) "जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ, तस्स अहिगरणिया किरिया नियमा कज्जइ, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ, तस्स वि काइया किरिया नियमा कज्जइ।"

"जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ, तस्स पारियावणिया किरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ" इत्यादि। —प्रज्ञापनासूत्र क्रियापद

नरयिक जीव जब औदारिकशरीरधारी पृथ्वीकायादि जीवो का स्पर्श करता है, तब उसके तीन क्रियाएँ होती हैं, जब उन्हे परिताप उत्पन्न करता है, तब चार और जब उनका प्राणघात करता है, तब पाच क्रियाएँ होती हैं। नैरयिक जीव अक्रिय नही होता, क्योकि वह वीतराग नही हो सकता। मनुष्य के सिवाय शेष २३ दण्डको मे जीव अक्रिय नही होते।

किस शरीर की अपेक्षा कितने आलापक?—औदारिकशरीर की अपेक्षा चार दण्डक (आलापक)—(१) एक जीव को, परकीय एक शरीर की अपेक्षा, (२) एक जीव को बहुत जीवों के शरीरो की अपेक्षा, (३) बहुत जीवो को परकीय एक शरीर की अपेक्षा और (४) बहुत जीवो को, बहुत जीवो के शरीर की अपेक्षा। इसी तरह शेष चार शरीरो के भी प्रत्येक के चार-चार दण्डक—आलापक कहने चाहिए। औदारिकशरीर के अतिरिक्त शेष चार शरीरो का विनाश नही हो सकता। इसलिए वैक्रिय, तजस, कामण और आहारक इन चार शरीरो की अपेक्षा जीव कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है, किन्तु पाच क्रिया वाला नही होता। अत वैक्रिय आदि चार शरीरो की अपेक्षा प्रत्येक के चौथे दण्डक मे 'कदाचित' शब्द नही कहना चाहिए।

नरकस्थित नैरयिक जीव को मनुष्यलोकस्थित आहारकशरीर की अपेक्षा तीन या चार क्रिया वाला बताया गया है, उसका रहस्य यह है कि नरयिकजीव ने अपने पूवभव के शरीर का विवेक (विरति) के अभाव मे व्युत्सर्जन नही किया (त्याग नही किया), इसलिए उस जीव द्वारा बनाया हुआ वह (भूतपूव) शरीर जब तक शरीरपरिणाम का सवथा त्याग नही कर देता, तब अशरूप मे भी शरीरपरिणाम को प्राप्त वह शरीर, पूवभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा 'घृतघट' न्याय से (घी नही रखने पर भी उसे भूतपूव घट की अपेक्षा 'घी का घडा' कहा जाता है, तद्वत्) उसी का कहलाता है। अत उस मनुष्यलोकवर्ती (भूतपूव) शरीर के अशरूप अस्थि (हड्डी) आदि से आहारकशरीर का स्पश होता है, अथवा उसे परिताप उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से नरयिक जीव आहारकशरीर की अपेक्षा तीन या चार क्रिया वाला होता है। इसी प्रकार देव आदि तथा द्वीन्द्रिय आदि जीवो के विषय मे भी जान लेना चाहिए।

तैजस, कामण शरीर की अपेक्षा जीवो को तीन या चार क्रिया वाला बताया है। वह औदारिकादि शरीराश्रित तैजस-कामण शरीर की अपेक्षा समझना चाहिए, क्योकि केवल तैजस या कार्मण शरीर को परिताप नही पहुँचाया जा सकता।

॥ अष्टम शतक छठा उद्देशक समाप्त ॥

सत्तमो उद्देसओ : 'अदत्ते'

सप्तम उद्देशक 'अदत्त'

अन्यतीर्थिको के साथ अदत्तादान को लेकर स्थविरो के वाद-विवाद का वर्णन

१ तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नगरे । वण्णओ । गुणसिलए चेइए । वण्णओ, जाव पुढविसिलपट्टओ । तस्स ण गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामते बहवे अन्नउत्थिया परिवसति ।

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नामक नगर था । उसका वणन औपपातिकसूत्र के नगरीवर्णन के समान जान लेना चाहिए । वहा गुणशीलक नामक चैत्य था । उसका वणक । यावत् पृथ्वी शिलापट्टक था । उस गुणशीलक चैत्य के आसपास (न बहुत दूर, न बहुत निकट) बहुत-से अन्यतीर्थिक रहते थे ।

२ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे आदिगरे जाव समोसढे जाव परिसा पडिगया ।

[२] उस काल और उस समय धर्मतीर्थ की आदि (स्थापना) करने वाले श्रमण भगवान् महावीर यावत् समवसृत हुए (पधारे) यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस चली गई ।

३ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अतेवासी थेरा भगवतो जातिसपन्ना कुलसपन्ना जहा बितियसए (स २ उ ५ सु १२) जाव जीवियासामरणभयविप्पमुक्का समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते उड्ढजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा जाव विहरति ।

[३] उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बहुत-से शिष्य स्थविर भगवन्त जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न इत्यादि दूसरे शतक मे वर्णित गुणो से युक्त यावत् जीवन की आशा और मरण के भय से विमुक्त थे । वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से न अतिदूर, न अतिनिकट ऊर्ध्वजानु (घुटने खडे रख कर), अधोशिरस्क (नीचे मस्तक नमा कर) ध्यानरूप कोष्ठ को प्राप्त होकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे ।

४ तए ण ते अन्नउत्थिया जेणेव थेरा भगवतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! तिविह तिविहेण अस्सजयअविरयअप्पडिहय जहा सत्तमसए बितिए उद्देसए (स ७ उ २ सु १ [२]) जाव एगतबाला यावि भवइ ।

[४] एक बार वे अन्यतीर्थिक जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ आए । उनके निकट आकर वे स्थविर भगवन्तो से यो कहने लगे—'हे आर्यो ! तुम त्रिविध-त्रिविध (तीन करण, तीन योग से) असयत, अविरत, अप्रतिहतपापकर्म (पापकर्म के अनिरोधक) तथा पापकर्म का प्रत्याख्यान नही किये

हुए हो', इत्यादि जैसे सातवें शतक के द्वितीय उद्देशक (सू १२) मे कहा गया है, तदनुसार कहा, यावत् तुम एकान्त बाल (अज्ञानी) भी हो।

५ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—केण कारणेण अज्जो! अम्हे तिविह तिविहेण अस्सजयअविरय जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[५ प्र] इस पर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार पूछा—'आर्यो! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध असयत, यावत् एकान्तबाल हैं ?

६ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो! अदिन्न गेण्हह, अदिन्न भु जह, अदिन्न सातिज्जह। तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हमाणा, अदिन्न भु जमाणा, अदिन्न सातिज्जमाणा तिविह तिविहेण अस्सजयअविरय जाव एगतबाला यावि भवह।

[६ उ] तदनन्तर उन अन्यतीर्थिको ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—हे आर्यो! तुम अदत्त (किसी के द्वारा नही दिया हुआ) पदार्थ ग्रहण करते हो, अदत्त का भोजन करते हो और अदत्त का स्वाद लेते हो, अर्थात्—अदत्त (ग्रहणादि) की अनुमति देते हो। इस प्रकार अदत्त का ग्रहण करते हुए, अदत्त का भोजन करते हुए और अदत्त की अनुमति देते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो।

७ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—केण कारणेण अज्जो! अम्हे अदिन्न गेण्हामो, अदिन्न भु जामो, अदिन्न सातिज्जामो, तए ण अम्हे अदिन्न गेण्हमाणा, जाव अदिन्न सातिज्जमाणा तिविह तिविहेण अस्सजय जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[७ प्र] तदनन्तर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार पूछा—'आर्यो! हम किस कारण से (क्योकर या कैसे) अदत्त का ग्रहण करते हैं, अदत्त का भोजन करते हैं और अदत्त की अनुमति देते हैं, जिससे कि हम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् अदत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हैं ?

८ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुम्हाण अज्जो! दिज्जमाणे अदिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे अपडिग्गहिए, निसिरिज्जमाणे अणिसट्ठे, तुब्भे ण अज्जो! दिज्जमाण पडिग्गहग असपत्त एत्थ ण अतरा केइ अवहरिज्जा, गाहावइस्स ण त, नो खलु त तुब्भ, तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हह जाव अदिन्न सातिज्जह तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हमाणा जाव एगतबाला यावि भवह।

[८ उ] इस पर उन अन्यतीर्थिको ने स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार कहा—हे आर्यो! तुम्हारे मत मे दिया जाता हुआ पदार्थ, 'नही दिया गया', ग्रहण किया जाता हुआ, 'ग्रहण नही किया गया', तथा (पात्र मे) डाला जाता हुआ पदार्थ, 'नही डाला गया,' ऐसा कथन है, इसलिए हे आर्यो! तुमको दिया जाता हुआ पदार्थ, जब तक पात्र मे नहीं पडा, तब तक बीच मे से ही कोई उसका अपहरण कर ले तो तुम कहते हो—'वह उस गृहपति के पदार्थ का अपहरण हुआ,' 'हमारे पदार्थ का अपहरण हुआ,' ऐसी तुम नही कहते। इस कारण से तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, यावत् अदत्त की अनुमति देते हो, अत तुम अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् एकान्तबाल हो।

९ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्हे अदिन्न गिण्हामो, अदिन्न भु जामो, अदिन्न सातिज्जामो, अम्हे ण अज्जो ! दिन्न गेण्हामो, दिन्न भु जामो, दिन्न सातिज्जामो, तए ण अम्हे दिन्न गेण्हमाणा दिन्न भु जमाणा दिन्न सातिज्जमाणा तिविह तिविहेण सजयविरयपडिहय जहा सत्तमसए (स ७ उ २ सु १ [२]) जाव एगतपडिया यावि भवामो ।

[९ प्रतिवाद]—यह सुनकर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'आर्यो ! हम अदत्त का ग्रहण नही करते, न अदत्त को खाते है और न ही अदत्त की अनुमति देते हैं। हे आर्यो ! हम तो दत्त (स्वामी द्वारा दिये गए) पदार्थ को ग्रहण करते हैं, दत्त भोजन को खाते हैं और दत्त की अनुमति देते हैं। इसलिए हम दत्त को ग्रहण करते हुए, दत्त का भोजन करते हुए और दत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध सयत, विरत, पापकर्म के प्रतिनिरोधक, पापकर्म का प्रत्याख्यान किये हुए है। जिस प्रकार सप्तमशतक (द्वितीय उद्देशक सू १) मे कहा है, तदनुसार हम यावत् एकान्तपण्डित हैं।'

१० तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! तुम्हे दिन्न गेण्हह जाव दिन्न सातिज्जह, तए ण तुब्भे दिन्न गेण्हमाणा जाव एगतपडिया यावि भवह ?

[१० वाद]—तब उन अन्यतीर्थिको ने उन स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार कहा—'तुम किस कारण (कैसे या किस प्रकार) दत्त को ग्रहण करते हो, यावत् दत्त की अनुमति देते हो, जिससे दत्त का ग्रहण करते हुए यावत् तुम एकान्तपण्डित हो ?'

११ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—अम्हे ण अज्जो ! दिज्जमाणे दिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे पडिग्गहिए, निसिरिज्जमाणे निसट्ठे । अम्ह ण अज्जो ! दिज्जमाण पडिग्गहग असपत्त एत्थ ण अतरा केइ अवहरेज्जा, अम्ह ण त, णो खलु त गाहावइस्स, तए ण अम्हे दिन्न गेण्हामो दिन्न भु जामो, दिन्न सातिज्जामो, तए ण अम्हे दिन्न गेण्हमाणा जाव दिन्न सातिज्जमाणा तिविह तिविहेण सजय जाव एगतपडिया यावि भवामो । तुब्भे ण अज्जो ! अप्पणा चेव तिविह तिविहेण असजय जाव एगतबाला यावि भवह ।

[११ प्रतिवाद]—इस पर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—'आर्यो ! हमारे सिद्धान्तानुसार—दिया जाता हुआ पदार्थ, 'दिया गया', ग्रहण किया जाता हुआ पदार्थ 'ग्रहण किया' और पात्र मे डाला जाता हुआ पदार्थ 'डाला गया' कहलाता है। इसीलिए हे आर्यो ! हमे दिया जाता हुआ पदार्थ हमारे पात्र मे नही पहुँचा (पडा) है, इसी बीच मे कोई व्यक्ति उसका अपहरण कर ले तो 'वह पदार्थ हमारा अपहृत हुआ' कहलाता है, किन्तु 'वह पदार्थ गृहस्थ का अपहृत हुआ,' ऐसा नही कहलाता। इस कारण से हम दत्त को ग्रहण करते हैं, दत्त आहार करते हैं और दत्त की ही अनुमति देते हैं। इस प्रकार दत्त को ग्रहण करते हुए यावत दत्त की अनुमति देते हुए हम त्रिविध त्रिविध सयत, विरत यावत् एकान्तपण्डित है, प्रत्युत, हे आर्यो ! तुम स्वय त्रिविध-त्रिविध असयत, अविरत, यावत एकान्तबाल हो।

१२ तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविहं जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

[१२ प्र]—तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—आर्यो ! हम किस कारण से (कैसे) त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्तबाल हैं ?

१३ तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं साइज्जह, तए णं अज्जो ! तुब्भे अदिन्नं गे० जाव एगंतबाला यावि भवह।

[१३ उ]—इस पर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से यों कहा—आर्यो ! तुम लोग अदत्त को ग्रहण करते हो, अदत्त भोजन करते हो, और अदत्त की अनुमति देते हो, इसलिए हे आर्यो ! तुम अदत्त को ग्रहण करते हुए यावत् एकान्तबाल हो।

१४ तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

[१४ प्रतिवाद] तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—आर्यो ! हम कैसे अदत्त को ग्रहण करते हैं यावत् जिससे कि हम एकान्तबाल हैं ?

१५ तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! दिज्जमाणे अदिन्ने तं चेव जाव गाहावइस्स णं तं, णो खलु तं तुब्भं, तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह, तं चेव जाव एगंतबाला यावि भवह।

[१५ प्रत्युत्तर]—यह सुन कर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो ! तुम्हारे मत में दिया जाता हुआ पदार्थ 'नहीं दिया गया' इत्यादि कहलाता है, यह सारा वर्णन पहले कहे अनुसार यहाँ करना चाहिए, यावत् वह पदार्थ गृहस्थ का है, तुम्हारा नहीं, इसलिए तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, यावत् पूर्वोक्त प्रकार से तुम एकान्तबाल हो।

विवेचन—अन्यतीर्थिकों के साथ अदत्तादान को लेकर स्थविरों के वाद विवाद का वर्णन—प्रस्तुत १५ सूत्रों में अन्यतीर्थिकों द्वारा स्थविरों पर अदत्तादान को लेकर एकान्तबाल के आक्षेप से प्रारम्भ हुआ विवाद स्थविरों द्वारा अन्यतीर्थिकों को दिये गए प्रत्युत्तर तक समाप्त किया गया है।[1]

अन्यतीर्थिकों की भ्रान्ति—अन्यतीर्थिकों ने इस भ्रान्ति से स्थविर मुनियों पर आक्षेप किया था कि श्रमणों का ऐसा मत है कि दिया जाता हुआ पदार्थ नहीं दिया गया, ग्रहण किया जाता हुआ, नहीं ग्रहण किया गया और पात्र में डाला जाता हुआ पदार्थ, नहीं डाला गया, माना गया है। किन्तु जब स्थविरों ने इसका प्रतिवाद किया और उनकी इस भ्रान्ति का निराकरण 'चलमाणे चलिए' के सिद्धान्तानुसार किया, तब वे अन्यतीर्थिक निरुत्तर हो गए, उलटे उनके द्वारा किया गया आक्षेप उन्हीं पर लागू हो गया।

१ वियाहपण्णत्ति सुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भाग १

'दिया जाता हुआ' वर्तमानकालिक व्यापार है और 'दत्त' भूतकालिक है, अतः वर्तमान और भूत दोनों अत्यन्त भिन्न होने से दीयमान (दिया जाता हुआ) दत्त नहीं हो सकता, दत्त ही 'दत्त' कहा जा सकता है, यह अन्यतीर्थिकों की भ्रान्ति थी। इसी का निराकरण करते हुए स्थविरों ने कहा—हमारे मत से क्रियाकाल और निष्ठाकाल, इन दोनों में भिन्नता नहीं है। जो 'दिया जा रहा है, वह 'दिया ही गया' समझना चाहिए। 'दीयमान' 'अदत्त' है, यह मत तो अन्यतीर्थिकों का है, जिसे स्थविरों ने उनके समक्ष प्रस्तुत किया था।[1]

स्थविरों पर अन्यतीर्थिकों द्वारा पुनः आक्षेप और स्थविरों द्वारा प्रतिवाद

१६. तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! तिविहं तिविहेणं अस्संजय जाव एगंतबाला यावि भवह।

[१६ अन्य आक्षेप]—तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से कहा—आर्यो ! (हम कहते हैं कि) तुम ही त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो !

१७. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—केणं कारणेणं अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

[१७ प्रतिप्रश्न]—इस पर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से (पुनः) पूछा—आर्यो ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध यावत् एकान्तबाल हैं ?

१८. तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह अभिहणह वत्तेह लेसेह संघाएह संघट्टेह परितावेह किलामेह उवद्दवेह, तए णं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं असंजयअविरय जाव एगंतबाला यावि भवह।

[१८ आक्षेप]—तब उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से यों कहा—"आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते (आक्रान्त करते) हो, हनन करते हो, पादाभिघात करते हो, उन्हें भूमि के साथ श्लिष्ट (संघर्षित) करते (टकराते) हो, उन्हें एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे करते हो, जोर से स्पर्श करते हो, उन्हें परितापित करते हो, उन्हें मारणान्तिक कष्ट देते हो और उपद्रवित करते-मारते हो। इस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो।"

१९. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्हे रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेमो अभिहणामो जाव उवद्दवेमो, अम्हे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा कायं वा जोगं वा रियं वा पडुच्च देसं देसेणं वयामो, पएसं पएसेणं वयामो, तेणं अम्हे देसं देसेणं वयमाणा पएसं पएसेणं वयमाणा नो पुढविं पेच्चेमो अभिहणामो जाव उवद्दवेमो, तए णं अम्हे पुढविं अपेच्चेमाणा अणभिहणेमाणा जाव अणुवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं संजय जाव एगंतपंडिया यावि भवामो, तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय जाव बाला यावि भवह।

---

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३८१

[१९ प्रतिवाद]—तब उन स्थविरो ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—'आर्यो ! हम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते (कुचलते) नही, हनते नही, यावत् मारते नही । हे आर्यो ! हम गमन करते हुए काय (अर्थात्—शरीर के लघुनीति-बडीनीति आदि कार्य) के लिए, योग (अर्थात्—ग्लान आदि की सेवा) के लिए, ऋत (अर्थात्—सत्य अप्कायादि-जीवसंरक्षणरूप संयम) के लिए एक देश (स्थल) से दूसरे देश (स्थल) मे और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे जाते हैं । इस प्रकार एक स्थल से दूसरे स्थल मे और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे जाते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते नही, उनका हनन नही करते, यावत् उनको मारते नही । इसलिए पृथ्वीकायिक जीवो को नही दबाते हुए, हनन न करते हुए, यावत नही मारते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत, यावत् एकान्त पण्डित हैं । किन्तु हे आर्यो ! तुम स्वय त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत, यावत् एकान्तबाल हो ।"

२० तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण जाव एगतबाला यावि भवामो ?

[२० प्रतिप्रश्न]—इस पर उन अन्यतीर्थिको ने उन स्थविर भगवन्तो से इस प्रकार पूछा—"आर्यो ! हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत, यावत् एकान्तबाल हैं ?"

२१ तए ण थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा पुढविं पेच्चेह जाव उवद्दवेह, तए ण तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविह तिविहेण जाव एगतबाला यावि भवह ।

[२१ प्रत्युत्तर] तब स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से यो कहा—"आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते हो, यावत् मार देते हो । इसलिए पृथ्वीकायिक जीवो को दबाते हुए, यावत् मारते हुए तुम त्रिविध त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्तबाल हो ।"

२२ तए ण ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिह नगर सपाविउकामे असपत्ते ?

[२२ प्रत्याक्षेप]—इस पर वे अन्यतीर्थिक उन स्थविर भगवन्तो से यो बोले—हे आर्यो ! तुम्हारे मत मे गच्छन् (जाता हुआ), अगत (नही गया) कहलाता है, जो लाघा जा रहा है, वह नही लाघा गया, कहलाता है, और राजगृह को प्राप्त करने (पहुँचने) की इच्छा वाला पुरुष असम्प्राप्त (नही पहुँचा हुआ) कहलाता है ।

२३ तए ण थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्ह गम्ममाणे अगए, वीइक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिह नगर जाव असपत्ते, अम्ह ण अज्जो ! गम्ममाणे गए, वीतिक्कमिज्जमाणे वीतिक्कते रायगिह नगर सपाविउकामे सपत्ते, तुब्भ ण अप्पणा चेव गम्ममाणे अगए वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिह नगर जाव असपत्ते ।

[२३ प्रतिवाद]—तत्पश्चात् उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको से इस प्रकार कहा—आर्यो ! हमारे मत मे जाता हुआ (गच्छन्) अगत (नहीं गया) नही कहलाता, व्यतिक्रम्यमाण (उल्लघन किया जाता हुआ) अव्यतिक्रान्त (उल्लघन नही किया) नही कहलाता । इसी प्रकार

राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति असम्प्राप्त नही कहलाता। हमारे मत मे तो, आर्यो! 'गच्छन्' 'गत', 'व्यतिक्रम्यमाण' 'व्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति सम्प्राप्त कहलाता है। हे आर्यो! तुम्हारे ही मत मे 'गच्छन्' 'अगत', 'व्यतिक्रम्यमाण' 'अव्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला असम्प्राप्त कहलाता है।

२४ तए ण ते थेरा भगवतो ते अन्नउत्थिए एव पडिहणेंति, पडिहणित्ता गइप्पवाय नाम-मज्झयण पन्नवइसु।

[२४] तदनन्तर उन स्थविर भगवन्तो ने उन अन्यतीर्थिको को प्रतिहत (निरुत्तर) किया और निरुत्तर करके उन्होने गतिप्रपात नामक अध्ययन प्ररूपित किया।

विवेचन—स्थविरो पर अन्यतीर्थिको द्वारा पुन आक्षेप और स्थविरो द्वारा प्रतिवाद— प्रस्तुत ९ सूत्रो (सू १६ से २४) अन्यतीर्थिका द्वारा पुन प्रत्याक्षेप से प्रारम्भ होकर यह चर्चा स्थविरो द्वारा भ्रान्तिनिवारणपूर्वक प्रतिवाद मे समाप्त होती है।

अन्यतीर्थिको की भ्रान्ति—पूर्व चर्चा मे निरुत्तर अन्यतीर्थिको ने पुन भ्रान्तिवश स्थविरो पर आक्षेप किया कि आप लोग ही असयत यावत् एकान्तबाल हैं, क्योकि आप गमनागमन करते समय पृथ्वीकायिक जीवो की विविधरूप से हिंसा करते हैं, किन्तु सुलझे हुए विचारो के निर्ग्रन्थ स्थविरो ने धैर्यपूर्वक उनकी इस भ्रान्ति का निराकरण किया कि हम लोग काय, योग और ऋतु के लिए बहुत ही यतनापूर्वक गमनागमन करते है, किसी भी जीव की किसी भी रूप मे हिंसा नही करते।

इस पर पुन अन्यतीर्थिको ने आक्षेप किया कि आपके मत से गच्छन् अगत, व्यतिक्रम्यमाण अव्यतिक्रान्त और राजगृह को सम्प्राप्त करना चाहने वाला असम्प्राप्त कहलाता है। इसका प्रतिवाद स्थविरो ने किया और आक्षेपक अन्यतीर्थिको की ही उनकी भ्रान्ति समझा कर निरुत्तर कर दिया।

'देश' और 'प्रदेश' का अर्थ—भूमि का बृहत् खण्ड देश है और लघुतर खण्ड प्रदेश है।[1]

गतिप्रवाद और उसके पाच भेदो का निरूपण

२५ कइविहे ण भते! गइप्पवाए पण्णत्ते?

गोयमा! पचविहे गइप्पवाए पण्णत्ते, त जहा—पयोगगती ततगती बधणछेयणगती उववाय गती विहायगती। एत्तो आरब्भ पयोगपय निरवसेस भाणियव्व, जाव से त्त विहायगई।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

॥ अट्ठमसए सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥

[२५ प्र]—भगवन्! गतिप्रपात कितने प्रकार का कहा गया है?

[२५ उ]—गौतम! गतिप्रपात पाच प्रकार का कहा गया है। यथा—प्रयोगगति, ततगति, बन्धन-छेदनगति, उपपातगति और विहायोगति।

---

१ भगवती, अ वृत्ति पत्राक ३८१

यहाँ से प्रारम्भ करके प्रज्ञापनासूत्र का सोलहवाँ समग्र प्रयोगपद यावत् 'यह विहायोगति का वर्णन हुआ', यहाँ तक कथन करना चाहिए।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यों कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरण करने लगे।

विवेचन—गतिप्रपात और उसके पांच प्रकारों का निरूपण—प्रस्तुत सूत्र में गतिप्रपात या गतिप्रवात और उसके पांच प्रकारों का प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है।

गतिप्रपात के पांच भेदों का स्वरूप—गतिप्रपात या गतिप्रवाद एक अध्ययन है, जिसका प्रज्ञापनासूत्र के सोलहवें प्रयोगपद में विस्तृत वर्णन है। वहाँ इन पांचों गतियों के भेद प्रभेद और उनके स्वरूप का निरूपण किया गया है। संक्षेप में पांचों गतियों का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) प्रयोगगति—जीव के व्यापार से अर्थात्—१५ प्रकार के योगों से जो गति होती है, उसे प्रयोगगति कहते हैं। यह गति यहाँ क्षेत्रान्तरप्राप्तिरूप या पर्यायान्तरप्राप्तिरूप समझनी चाहिए।

(२) ततगति—विस्तृत गति या विस्तार वाली गति को ततगति कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति ग्रामान्तर जाने के लिए रवाना हुआ, परन्तु ग्राम बहुत दूर निकला, वह अभी उसमें पहुँचा नहीं, उसको एक-एक पर रखते हुए जो क्षेत्रान्तरप्राप्तिरूप गति गति होती है, वह ततगति कहलाती है। इस गति का विषय विस्तृत होने से इसे 'ततगति' कहा जाता है।

(३) बन्धनछेदनगति—बन्धन के छेदन से होने वाली गति, जैसे शरीर से मुक्त जीव की गति होती है।

(४) उपपातगति—उत्पन्न होने रूप गति को उपपातगति कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं—क्षेत्रोपपात, भवोपपात और नो-भवोपपात। नारकादि जीव और सिद्ध जीव जहाँ रहते हैं वह आकाश क्षेत्रोपपात है, कर्मों के वश जीव नारकादि भवों (पर्यायों) में उत्पन्न होते हैं, वह भवोपपात है। कर्मसम्बन्ध से रहित अर्थात् नारकादि पर्याय से रहित उत्पन्न होने रूप गति को नो-भवोपपात कहते हैं। इस प्रकार की गति सिद्ध जीव और पुद्गलों में पाई जाती है।

(५) विहायोगति—आकाश में होने वाली गति को विहायोगति कहते हैं।[1]

॥ अष्टम शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३८१
(ख) प्रज्ञापनासूत्र पद १६ (प्रयोगपद), पत्रांक ३२५

अट्ठमो उद्देसओ : 'पडिणीए'

अष्टम उद्देशक : 'प्रत्यनीक'

गुरु-गति-समूह-अनुकम्पा-श्रुत-भाव-प्रत्यनीकभेद-प्ररूपणा

१ रायगिहे नयरे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे (गौतम स्वामी ने) यावत् (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—

२ गुरू ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—आयरियपडिणीए उवज्झायपडिणीए थेरे-पडिणीए ।

[२ प्र] भगवन् ! गुरुदेव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक (द्वेषी या विरोधी) कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) आचार्य प्रत्यनीक, (२) उपाध्याय प्रत्यनीक और (३) स्थविरप्रत्यनीक ।

३ गइ ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—इहलोगपडिणीए परलोगपडिणीए दुहम्रोलोग-पडिणीए ।

[३ प्र] भगवन् ! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[३ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) इहलोकप्रत्यनीक, (२) परलोकप्रत्यनीक और (३) उभयलोकप्रत्यनीक ।

४ समूह ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—कुलपडिणीए गणपडिणीए सघपडिणीए ।

[४ प्र] भगवन् ! समूह (श्रमणसघ) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[४ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) कुलप्रत्यनीक, (२) गण-प्रत्यनीक और (३) सघप्रत्यनीक ।

५ अणुकप पडुच्च० पुच्छा ।

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—तवस्सिपडिणीए गिलाणपडिणीए सेहपडिणीए ।

[५ प्र] भगवन् ! अनुकम्प्य (साधुओं) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[५ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए है, वे इस प्रकार—(१) तपस्वी प्रत्यनीक, (२) ग्लानप्रत्यनीक और (३) शैक्ष (नवदीक्षित)-प्रत्यनीक।

६ सुय णं भंते ! पडुच्च० पुच्छा।

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तपडिणीए अत्थपडिणीए तदुभयपडिणीए।

[६ प्र] भगवन् ! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[६ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) सूत्रप्रत्यनीक, (२) अर्थप्रत्यनीक और (३) तदुभयप्रत्यनीक।

७ भावं णं भंते ! पडुच्च० पुच्छा।

गोयमा ! तम्रो पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—नाणपडिणीए दसणपडिणीए चरित्तपडिणीए।

[७ प्र] भगवन् ! भाव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

[७ उ] गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) ज्ञानप्रत्यनीक, (२) दर्शनप्रत्यनीक और (३) चारित्रप्रत्यनीक।

विवेचन—गुरु-गति समूह अनुकम्पा श्रुत-भाव की अपेक्षा प्रत्यनीक के भेदों की प्ररूपणा— प्रस्तुत सात सूत्रों में क्रमश गुरु आदि को लेकर प्रत्येक के तीन-तीन प्रकारों का निरूपण किया गया है।

प्रत्यनीक—प्रतिकूल आचरण करने वाला विरोधी या द्वेषी प्रत्यनीक कहलाता है।

गुरु प्रत्यनीक का स्वरूप—गुरुपद पर आसीन तीन महानुभाव होते हैं—आचार्य, उपाध्याय और स्थविर। अर्थ के व्याख्याता आचार्य, सूत्र के दाता उपाध्याय तथा वय, श्रुत और दीक्षापर्याय की अपेक्षा वृद्ध व गीतार्थ साधु स्थविर कहलाते हैं। आचार्य, उपाध्याय और स्थविर मुनियों में जाति आदि से दोष देखने, अहित करने, उनके वचनों का अपमान करने, उनके समीप न रहने, उनके उपदेश का उपहास करने, उनकी वैयावृत्य न करने आदि प्रतिकूल व्यवहार करने वाले इनके 'प्रत्यनीक' कहलाते हैं।

गति-प्रत्यनीक का स्वरूप—मनुष्य आदि गति की अपेक्षा प्रतिकूल आचरण करने वाले गति-प्रत्यनीक कहलाते हैं। इहलोक—मनुष्य पर्याय का प्रत्यनीक वह होता है, जो पचाग्नि तप करने वाले की तरह अज्ञानतापूर्वक इन्द्रिय-विषयों के प्रतिकूल आचरण करता है। परलोक—जन्मान्तर प्रत्यनीक वह होता है जो परलोक सुधारने के बजाय केवल इन्द्रियविषयासक्त रहता है। उभयलोकप्रत्यनीक वह होता है, जो दोनों लोक सुधारने के बदले चोरी आदि कुकर्म करके दोनों लोक बिगाड़ता है, केवल भोगविलासतत्पर रहता है। ऐसा व्यक्ति अपने कुकृत्यों से इहलोक में भी दण्डित होता है, परभव में भी दुर्गति पाता है।

समूह प्रत्यनीक का स्वरूप—यहाँ साधुसमुदाय की अपेक्षा तीन प्रकार के समूह बताए हैं—कुल, गण और संघ। एक आचार्य की सन्तति 'कुल', परस्पर धर्मस्नेह सम्बन्ध रखने वाले तीन कुलों का समूह 'गण' और ज्ञान-दर्शन-चारित्रगुणों से विभूषित समस्त श्रमणों का समुदाय 'संघ' कहलाता

है। कुल, गण या संघ के विपरीत आचरण करने वाले क्रमश कुलप्रत्यनीक, गणप्रत्यनीक और संघ-प्रत्यनीक कहलाते हैं।

अनुकम्प्य-प्रत्यनीक का स्वरूप—अनुकम्पा करने योग्य—अनुकम्प्य साधु तीन हैं—तपस्वी, ग्लान (रुग्ण) और शैक्ष। इन तीन अनुकम्प्य साधुओ की आहारादि द्वारा सेवा नही करके इनके प्रतिकूल आचरण या व्यवहार करने वाले साधु क्रमश तपस्वीप्रत्यनीक, ग्लानप्रत्यनीक और शैक्ष-प्रत्यनीक कहलाते हैं।

श्रुत-प्रत्यनीक का स्वरूप—श्रुत (शास्त्र) के विरुद्ध कथन, प्रचार, अवर्णवाद आदि करने वाला, शास्त्रज्ञान को निष्प्रयोजन अथवा शास्त्र को दोषयुक्त बताने वाला श्रुत-प्रत्यनीक है। श्रुत तीन प्रकार का होने के कारण श्रुत-प्रत्यनीक के भी क्रमश सूत्रप्रत्यनीक अर्थप्रत्यनीक और तदुभय-प्रत्यनीक, ये तीन भेद हैं।

भाव-प्रत्यनीक का स्वरूप—क्षायिकादि भावो के प्रतिकूल आचरणकर्ता भावप्रत्यनीक है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये तीन भाव हैं। इन तीनो के विरुद्ध आचरण, दोषदर्शन, अवर्णवाद आदि करना क्रमश ज्ञानप्रत्यनीय, दर्शनप्रत्यनीक और चारित्रप्रत्यनीक है।[1]

निर्ग्रन्थ के लिए आचरणीय पंचविध व्यवहार, उनकी मर्यादा और व्यवहारानुसार प्रवृत्ति का फल

८ कइविहे ण भंते ! ववहारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे ववहारे पण्णत्ते, त जहा—आगम सुत आणा धारणा जीए। जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेण ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुते सिया, सुएण ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ सुए सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहार पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ धारणा सिया, जहा से तत्थ जीए सिया जीएण ववहार पट्ठवेज्जा। इच्चेएहिं पचहिं ववहार पट्ठवेज्जा, त जहा—आगमेण सुएण आणाए धारणाए जीएण। जहा जहा से आगमे सुए आणा धारणा जीए तहा तहा ववहार पट्ठवेज्जा।

[८-प्र] भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८-उ] गौतम ! व्यवहार पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) आगम-व्यवहार, (२) श्रुतव्यवहार, (३) आज्ञाव्यवहार, (४) धारणाव्यवहार और (५) जीतव्यवहार। इन पाच प्रकार के व्यवहारो मे से जिस साधु के पास आगम (केवलज्ञान, मन पर्यवज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दस पूर्व अथवा नौ पूर्व का ज्ञान) हो, उसे उस आगम से व्यवहार (प्रवृत्ति-निवृत्ति) करना चाहिए। जिसके पास आगम न हो, उसे श्रुत से व्यवहार चलाना चाहिए। जहाँ श्रुत न हो वहाँ आज्ञा से उसे व्यवहार चलाना चाहिए। यदि आज्ञा भी न हो तो जिस प्रकार की धारणा हो, उस धारणा से व्यवहार चलाना चाहिए। कदाचित धारणा न हो तो जिस प्रकार का जीत हो, उस

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८२

जीत से व्यवहार चलाना चाहिए। इस प्रकार इन पाचो—ग्रागम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत—से (साधु-साध्वी को) व्यवहार चलाना चाहिए। जिसके पास जिस-जिस प्रकार से आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत, इन पाच व्यवहारो मे से जो व्यवहार हो, उसे उस उस प्रकार से व्यवहार चलाना (प्रवृत्ति-निवृत्ति करना) चाहिए।

९ से किमाहु भंते ! आगमबलिया समणा निग्गथा ?

इच्चेयं पचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सिओवस्सितं सम्मं ववहरमाणे समणे निग्गथे आणाए आराहए भवइ।

[९ प्र] भगवन् ! आगमबलिक श्रमण निग्रन्थ (पूर्वोक्त पचविध व्यवहार के विषय मे) क्या कहते हैं ?

[९ उ] (गौतम) ! इस प्रकार इन पचविध व्यवहारो मे से जब-जब और जहाँ-जहाँ जो व्यवहार सम्भव हो, तब तब और वहाँ-वहाँ उससे, अनिश्रितोपाश्रित (राग और द्वेष से रहित) हो कर सम्यक् प्रकार से व्यवहार (प्रवृत्ति-निवृत्ति) करता हुआ श्रमण निग्रन्थ (तीर्थंकरो की) आज्ञा का आराधक होता है।

विवेचन—निग्रन्थ के लिए आचरणीय पचविध व्यवहार एव उनकी मर्यादा—प्रस्तुत दो सूत्रो मे साधु-साध्वी के लिए साधुजीवन मे उपयोगी पचविध व्यवहारो तथा उनकी मर्यादा का निरूपण किया गया है।

व्यवहार का विशेषार्थ—यहाँ आध्यात्मिक जगत् मे व्यवहार का अर्थ मुमुक्षुओ की यथोचित सम्यक् प्रवृत्ति-निवृत्ति है, अथवा उसका कारणभूत जो ज्ञानविशेष है उसे भी व्यवहार कह सकते हैं।

आगम आदि पचविध व्यवहार का स्वरूप—(१) आगमव्यवहार—जिससे वस्तुतत्त्व का यथार्थ ज्ञान हो, उसे 'आगम' कहते हैं। केवलज्ञान, मन पर्यायज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दस पूर्व और नौ पूर्व का ज्ञान 'आगम' कहलाता है। आगमज्ञान से प्रवर्तित प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यवहार—आगमव्यवहार कहलाता है। (२) श्रुत-व्यवहार—शेष आचारप्रकल्प आदि ज्ञान 'श्रुत' कहलाता है। श्रुत से प्रवर्तित व्यवहार श्रुतव्यवहार है। यद्यपि पूर्वो का ज्ञान भी श्रुतरूप है, तथापि अतीन्द्रियार्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण एव सातिशय ज्ञान होने से उसे 'आगम' की कोटि मे रखा गया है। (३) आज्ञाव्यवहार—दो गीतार्थ साधु अलग-अलग दूर देश मे विचरते हैं, उनमे से एक का जघाबल क्षीण हो जाने से विहार करने मे असमर्थ हो जाए, वह अपने दूरस्थ गीतार्थ साधु के पास अगीतार्थ साधु के माध्यम से अपने अतिचार या दोष आगम की साकेतिक गूढ भाषा मे कहकर या लिखकर भेजता है और गूढभाषा मे कही हुई या लिखी हुई आलोचना सुन-जान कर वे गीतार्थ मुनि भी सदेशवाहक मुनि के माध्यम से उक्त अतिचार के प्रायश्चित्त द्वारा की जाने वाली शुद्धि का सदेश आगम की गूढभाषा मे ही कह या लिखकर देते हैं। यह आज्ञाव्यवहार का स्वरूप है। (४) धारणा-व्यवहार—किसी गीतार्थ मुनि ने या गुरुदेव ने द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा जिस अपराध मे जो प्रायश्चित्त दिया है, उसकी धारणा से वैसे अपराध में उसी प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणाव्यवहार है। धारणाव्यवहार प्राय आचार्य-परम्परागत होता है। (५) जीतव्यवहार—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पात्र (पुरुष) और प्रतिसेवना का तथा सहनन और धृति आदि की हानि का विचार करके जो प्रायश्चित्त दिया जाए वह जीतव्यवहार है। अथवा अनेक गीतार्थ मुनियो द्वारा आचरित,

असावद्य, आगम से अबाधित एवं निर्धारित मर्यादा को भी जीतव्यवहार कहते हैं। कारणवश किसी गच्छ में शास्त्रोक्त से अधिक प्रायश्चित्त प्रवृत्त हो गया हो, उसका अनुसरण करना भी जीतव्यवहार है।

पूर्व पूर्व व्यवहार के अभाव में उत्तरोत्तर व्यवहार आचरणीय—मूलपाठ में स्पष्ट बता दिया है कि ५ व्यवहारों में से व्यवहर्ता मुमुक्षु के पास यदि आगम हो तो उसे आगम से, उसमें भी केवलज्ञानादि पूर्व-पूर्व के अभाव में उत्तरोत्तर से व्यवहार चलाना चाहिए। आगम के अभाव में श्रुत से, श्रुत के अभाव में आज्ञा से, आज्ञा के अभाव में धारणा से और धारणा के अभाव में जीतव्यवहार से प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार करना चाहिए।[1]

अन्त में फलश्रुति के साथ स्पष्ट निर्देश—जब-जब, जिस-जिस अवसर में, जिस-जिस प्रयोजन या क्षेत्र में, जो जो व्यवहार उचित हो, तब तब उस-उस अवसर में, उस-उस प्रयोजन या क्षेत्र में, उस-उस व्यवहार का प्रयोग अनिश्रित—समस्त आशंसा—यश कीर्ति, आहारादिलिप्सा से रहित तथा अनुपाश्रित—वैयावृत्य करने वाले शिष्यादि के प्रति सर्वथा पक्षपातरहित हो कर (अथवा रागआसक्ति और द्वेष से रहित होकर) करना चाहिए। तभी वह भगवदाज्ञाराधक होगा।[2]

विविध पहलुओं से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबंध से सम्बन्धित प्ररूपणा

१० कइविहे णं भंते ! बंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे बंधे पन्नत्ते, तं जहा—इरियावहियाबंधे य संपराइयबंधे य।

[१० प्र.] भगवन् ! बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१० उ.] गौतम ! बंध दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—ईर्यापथिकबंध और साम्परायिकबंध।

११ इरियावहियं णं भंते ! कम्मं किं नेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, तिरिक्खजोणिणी बंधइ, मणुस्सो बंधइ, मणुस्सी बंधइ, देवो बंधइ, देवी बंधइ ?

गोयमा ! नो नेरइओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिणी बंधइ, नो देवो बंधइ, नो देवी बंधइ, पुव्वपडिवन्नए पडुच्च मणुस्सा य, मणुस्सीओ य बंधंति, पडिवज्जमाणए पडुच्च मणुस्सो वा बंधइ १, मणुस्सी वा बंधइ २, मणुस्सा वा बंधंति ३, मणुस्सीओ वा बंधंति ४, अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य बंधइ ५, अहवा मणुस्सो य मणुस्सीओ य बंधंति ६, अहवा मणुस्सा य मणुस्सी य बंधंति ७, अहवा मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति ८।

[११ प्र.] भगवन् ! ईर्यापथिककर्म क्या नैरयिक बांधता है, या तिर्यञ्चयोनिक बांधता है, या तिर्यञ्चयोनिक स्त्री बांधती है, अथवा मनुष्य बांधता है, या मनुष्य-स्त्री (नारी) बांधती है, अथवा देव बांधता है या देवी बांधती है ?

[११ उ.] गौतम ! ईर्यापथिककर्म न नैरयिक बांधता है, न तिर्यञ्चयोनिक बांधता है, न तिर्यञ्चयोनिक स्त्री बांधती है, न देव बांधता है और न ही देवी बांधती है, किन्तु पूर्वप्रतिपन्नक को

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३८४

२ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ३८५

अपेक्षा इसे मनुष्य पुरुष और मनुष्य स्त्रियाँ बाधती हैं, प्रतिपद्यमान की अपेक्षा मनुष्य-पुरुष बाधता है अथवा मनुष्य स्त्री बाधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य-पुरुष बाधते हैं या बहुत-सी मनुष्य स्त्रियाँ बाधती हैं, अथवा एक मनुष्य और एक मनुष्य-स्त्री बाधती है, या एक मनुष्य-पुरुष और बहुत-सी मनुष्य-स्त्रियाँ बाधती हैं, अथवा बहुत-से मनुष्य पुरुष और एक मनुष्य-स्त्री बाधती है, अथवा बहुत-से मनुष्य-नर और बहुत-सी मनुष्य-नारियाँ बाधती हैं।

१२ तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, नपुंसगो बंधति, इत्थीओ बंधंति, पुरिसा बंधंति, नपुंसगा बंधंति ? नोइत्थी-नोपुरिसो नोनपुंसगो बंधइ ?

गोयमा ! नो इत्थी बंधइ, नो पुरिसो बंधइ जाव नो नपुंसगो बंधइ। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च अवगयवेदा बंधंति, पडिवज्जमाणए य पडुच्च अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति।

[१२ प्र] भगवन् ! ऐर्यापथिक (कर्म) बंध क्या स्त्री बाधती है, पुरुष बाधता है, नपुंसक बाधता है, स्त्रियाँ बाधती हैं, पुरुष बाधते है या नपुंसक बाधते हैं, अथवा नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बाधता है ?

[१२ उ] गौतम ! इसे स्त्री नहीं बाधती, पुरुष नहीं बाधता, नपुंसक नहीं बाधता, स्त्रियाँ नहीं बाधती, पुरुष नहीं बाधते और नपुंसक भी नहीं बाधते, किन्तु पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा वेदरहित (बहु) जीव बाधते हैं, अथवा प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेदरहित (एक) जीव बाधता है या (बहु) वेद-रहित जीव बाधते हैं।

१३ जइ भंते ! अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति तं भंते ! किं इत्थीपच्छाकडो बंधइ १, पुरिसपच्छाकडो बंधइ २, नपुंसकपच्छाकडो बंधइ ३, इत्थीपच्छाकडा बंधंति ४, पुरिसपच्छाकडा वि बंधंति ५, नपुंसगपच्छाकडा वि बंधंति ६, उदाहु इत्थिपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधंति ४, उदाहु इत्थीपच्छाकडो य णपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ४, उदाहु पुरिसपच्छाकडो य णपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ४, उदाहु इत्थिपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य णपुंसगपच्छाकडो य भाणियव्वं ८, एवं एते छव्वीसं भंगा २६ जाव उदाहु इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसकपच्छाकडा य बंधंति ?

गोयमा ! इत्थिपच्छाकडो वि बंधइ १, पुरिसपच्छाकडो वि बंधइ २, नपुंसगपच्छाकडो वि बंधइ ३, इत्थीपच्छाकडा वि बंधंति ४, पुरिसपच्छाकडा वि बंधंति ५, नपुंसकपच्छाकडा वि बंधंति ६, अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ ७, एवं एए चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा जाव अहवा इत्थिपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति।

[१३ प्र] भगवन् ! यदि वेदरहित एक जीव अथवा वेदरहित बहुत जीव ऐर्यापथिक (कर्म) बंध बाधते हैं तो क्या १—स्त्री-पश्चात्कृत जीव (जो जीव भूतकाल में स्त्रीवेदी था, अब वर्तमान काल में अवेदी हो गया है) बाधता है, अथवा २—पुरुष पश्चात्कृत जीव (जो जीव पहले पुरुषवेदी था, अब अवेदी हो गया है) बाधता है, या ३—नपुंसक-पश्चात्कृत जीव (जो पहले नपुंसकवेदी था, अब अवेदी हो गया है) बाधता है ? अथवा ४—स्त्रीपश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या ५—पुरुष-पश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या ६—नपुंसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं ? अथवा ७—एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधता है, या ८—एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव

बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या ९—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा १०—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बाधते है, या ११—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, या १२—एक स्त्रीपश्चातकृत जीव और बहुत नपुसकपश्चातकृत जीव बाधते हैं, अथवा १३—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, या १४—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, अथवा १५—एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, या १६—एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं, अथवा १७—बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा १८—बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं ? या फिर १९— एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा २०—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या २१—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है ? अथवा २२—एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते है, या २३—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा २४—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं, या २५—बहुत स्त्रीपश्चातकृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधता है, अथवा २६—बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव बाधते हैं ?

[१३ उ] गौतम ! ऐर्यापथिक कर्म (१) स्त्रीपश्चात्कृत जीव भी बाधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाधता है, (३) नपुसकपश्चात्कृत जीव भी बाधता है, (४) स्त्री पश्चात्कृत जीव भी बाधते हैं, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाधते है, (६) नपुसकपश्चात्कृत जीव भी बाधते हैं, अथवा (७) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बाधता है अथवा यावत् (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुसकपश्चात्कृत जीव भी बाधते हैं। इस प्रकार (प्रश्न मे वर्णित) छब्बीस भग यहा (उत्तर में ज्यो के त्यो) कह देने चाहिए।

१४ त भते ! किं बधी बधइ बधिस्सइ १, बधी बधइ न बधिस्सइ २, बधी न बधइ बधिस्सइ ३, बधी न बधइ न बधिस्सइ ४, न बधी बधइ बधिस्सइ ५, न बधी बधइ न बधिस्सइ ६, न बधी न बधइ बधिस्सइ ७, न बधी न बधइ न बधिस्सइ ८ ?

गोयमा ! भवागरिस पडुच्च अत्थेगतिए बधी बधइ बधिस्सइ । अत्थेगतिए बधी बधइ न बधिस्सइ । एव त चेव सव्व जाव अत्थेगतिए न बधी न बधइ न बधिस्सइ । गहणागरिस पडुच्च अत्थेगतिए बधी बधइ बधिस्सइ, एव जाव अत्थेगतिए न बधी बधइ बधिस्सइ । णो चेव ण न बधी बधइ न बधिस्सइ । अत्थेगतिए न बधी न बधइ बधिस्सइ । अत्थेगतिए न बधी न बधइ न बधिस्सइ ।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या जीव ने (ऐर्यापथिक कर्म) १—बाधा है, बाधता है और बाधेगा,

अथवा २—बाधा है, बाधता है, नहीं बाधेगा, या ३—बाधा है, नहीं बाधता है, बाधेगा, अथवा ४—बाधा है, नहीं बाधता है, नहीं बाधेगा, या ५—नहीं बाधा, बाधता है, बाधेगा, अथवा ६—नहीं बांधा, बाधता है नहीं बाधेगा, या ७—नहीं बाधा, नहीं बाधता, बाधेगा, अथवा ८—न बाधा, न बाधता है, न बाधेगा ?

[१४ उ] गौतम ! भवाकर्ष की अपेक्षा किसी एक जीव ने बाधा है, बाधता है और बाधेगा, किसी एक जीव ने बाधा है, बाधता है, और नहीं बाधेगा, यावत् किसी एक जीव ने नहीं बाधा, नहीं बाधता है, नहीं बाधेगा। इस प्रकार (प्रश्न मे कथित) सभी (आठों) भंग यहां कहने चाहिए। ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा (१) किसी एक जीव ने बाधा, बाधता है, बाधेगा, (२) किसी एक जीव ने बाधा, बाधता है, नहीं बाधेगा, (३) बाधा, नहीं बाधता है, बाधेगा, (४) बाधा, नहीं बाधता, नहीं बाधेगा, (५) किसी एक जीव ने नहीं बाधा, बाधता है, यहां तक (यावत्) कहना चाहिए। इसके पश्चात् छठा भंग—नहीं बाधा, बाधता नहीं है, बाधेगा, नहीं कहना चाहिए। (तदनन्तर सातवा भंग)—किसी एक जीव ने नहीं बाधा, नहीं बाधता है, बाधेगा और आठवा भंग एक जीव ने नहीं बाधा, नहीं बाधता, नहीं बाधेगा (कहना चाहिए)।

१५ तं भंते ! किं साईयं सपज्जवसियं बंधइ, साईयं अपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं अपज्जवसियं बंधइ ?

गोयमा ! साईयं सपज्जवसियं बंधइ, नो साईयं अपज्जवसियं बंधइ, नो अणाईयं सपज्जवसियं बंधइ, नो अणाईयं अपज्जवसियं बंधइ।

[१५ प्र] भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म क्या सादि-सपर्यवसित बाधता है, या सादि-अपर्यवसित बाधता है अथवा अनादि-सपर्यवसित बाधता है, या अनादि-अपर्यवसित बाधता है ?

[१५ उ] गौतम ! जीव ऐर्यापथिक कर्म सादि-सपर्यवसित बाधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बाधता, अनादि-सपर्यवसित नहीं बाधता और न अनादि-अपर्यवसित बाधता है।

१६ तं भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ, देसेणं सव्वं बंधइ, सव्वेणं देसं बंधइ, सव्वेणं सव्वं बंधइ ?

गोयमा ! नो देसेणं देसं बंधइ, णो देसेणं सव्वं बंधइ, नो सव्वेणं देसं बंधइ, सव्वेणं सव्वं बंधइ।

[१६ प्र] भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म देश से आत्मा के देश को बाधता है, देश से सर्व को बाधता है, सर्व से देश को बाधता है या सर्व से सर्व को बाधता है ?

[१६ उ] गौतम ! वह ऐर्यापथिक कर्म देश से देश को नहीं बाधता, देश से सर्व को नहीं बाधता, सर्व से देश को नहीं बाधता, किन्तु सर्व से सर्व को बाधता है।

१७ संपराइयं णं भंते ! कम्मं किं नेरइयो बंधइ, तिरिक्खजोणीओ बंधइ, जाव देवी बंधइ ?

गोयमा ! नेरइओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणीओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिणी वि बंधइ, मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, देवो वि बंधइ, देवी वि बंधइ।

[१७ प्र] भगवन् ! साम्परायिक कर्म नैरयिक बाधता है, तिर्यञ्च बाधता है, तिर्यञ्च-स्त्री (मादा) बाधती है, मनुष्य बाधता है, मनुष्य-स्त्री बाधती है, देव बाधता है या देवी बाधती है ?

[१७ उ] गौतम ! नैरयिक भी बांधता है, तिर्यञ्च भी बांधता है, तिर्यञ्च-स्त्री (मादा) भी बांधती है, मनुष्य भी बांधता है, मानुषी भी बांधती है, देव भी बांधता है और देवी भी बांधती है।

१८. तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, तहेव जाव नोइत्थी-नोपुरिसो-नो-नपुंसओ बंधइ ?

गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, जाव नपुंसगो वि बंधइ। अहवेए य अवगयवेदो य बंधइ, अहवेए य अवगयवेया य बंधंति।

[१८ प्र.] भगवन् ! साम्परायिक कर्म क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, यावत् नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ?

[१८ उ.] गौतम ! स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है, नपुंसक भी बांधता है, अथवा बहुत स्त्रियां भी बांधती हैं, बहुत पुरुष भी बांधते हैं और बहुत नपुंसक भी बांधते हैं, अथवा ये सब और अवेदी एक जीव भी बांधता है, अथवा ये सब और बहुत अवेदी जीव भी बांधते हैं।

१९. जइ भंते ! अवगयवेदो य बंधइ अवगयवेया य बंधंति तं भंते ! किं इत्थीपच्छाकडो बंधइ, पुरिसपच्छाकडो ?

एवं जहेव इरियावहियाबंधगस्स तहेव निरवसेसं जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य, पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति।

[१९ प्र.] भगवन् ! यदि वेदरहित एक जीव और वेदरहित बहुत जीव साम्परायिक कर्म बांधते हैं तो क्या स्त्रीपश्चात्कृत जीव बांधता है या पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधता है ? इत्यादि प्रश्न (सू. १३ के अनुसार) पूर्ववत् कहना चाहिए।

[१९ उ.] गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबंधक के सम्बन्ध में कहा [illegible] प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत [illegible] और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, —यहाँ तक कहना चाहिए।

२०. तं भंते ! किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ १, बंधी बंधइ न [illegible] बंधिस्सइ ३, बंधी न बंधइ, न बंधिस्सइ ४ ?

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ १, अत्थेगतिए [illegible] अत्थेगतिए बंधी न बंधइ, बंधिस्सइ ३, अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधि[illegible]

[२० प्र.] भगवन् ! साम्परायिक कर्म (१) किसी जीव ने [illegible] (२) बांधा, बांधता है और नहीं बांधेगा ? (३) बांधा, नहीं बांधता है [illegible] नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

[२० उ.] गौतम ! (१) कई जीवों ने बांधा, [illegible] ने बांधा, बांधते हैं और नहीं बांधेंगे, (३) कितने ही जी[illegible] (४) कितने ही जीवों ने बांधा है नहीं बांधते हैं और

२१ त भंते ! किं साईयं सपज्जवसियं बंधइ ? पुच्छा तहेव।

गोयमा ! साईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाईयं वा अपज्जवसियं बंधइ, णो चेव णं साईयं अपज्जवसियं बंधइ।

[२१ प्र.] भगवन् ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बांधता है ? इत्यादि (सू. १५ के अनुसार) प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए।

[२१ उ.] गौतम ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बांधता है, अनादि-सपर्यवसित बांधता है, अनादि अपर्यवसित बांधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बांधता।

२२ त भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ ?

एवं जहेव इरियावहियाबंधगस्स जाव सव्वेणं सव्वं बंधइ।

[२२ प्र.] भगवन् ! साम्परायिक कर्म देश से आत्मदेश को बांधता है ? इत्यादि प्रश्न, (सू. १६ के अनुसार) पूर्ववत् करना चाहिए।

[२२ उ.] गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबंध के सम्बन्ध में कहा गया है, उसी प्रकार साम्परायिक कर्मबंध के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए, यावत् सर्व से सर्व को बांधता है।

विवेचन—विविध पहलुओं से ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबंध से सम्बन्धित निरूपण—प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. १० से २२ तक) में ऐर्यापथिक और साम्परायिक कर्मबंध के सम्बन्ध में निम्नोक्त छह पहलुओं से विचारणा की गई है—

१. ऐर्यापथिक या साम्परायिक कर्म चार गतियों में से किस गति का प्राणी बांधता है ?

२. स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि में से कौन बांधता है ?

३. स्त्रीपश्चात्कृत, पुरुषपश्चात्कृत, नपुंसकपश्चात्कृत, एक या अनेक अवेदी में से कौन अवेदी बांधता है ?

४. दोनों कर्मों के बांधने की त्रिकाल सम्बन्धी चर्चा।

५. सादि-सपर्यवसित आदि चार विकल्पों में से कैसे इन्हें बांधता है ?

६. ये कर्म देश से आत्मदेश को बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

बंध : स्वरूप एवं विवक्षित दो प्रकार—जैसे शरीर में तेल आदि लगाकर धूल में लोटने पर उस व्यक्ति के शरीर पर धूल चिपक जाती है, वैसे ही मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से जीव के प्रदेशों में जब हलचल होती है, तब जिस आकाश में आत्मप्रदेश होते हैं वहीं के अनन्त-अनन्त तद्-तद्-योग्य कर्मपुद्गल जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ बद्ध हो जाते हैं। दूध-पानी की तरह कर्म और आत्मप्रदेशों के एकमेक होकर मिल जाना बंध है। बेड़ी आदि का बंधन द्रव्यबंध है, जबकि कर्मों का बंध भावबंध है। विवक्षाविशेष से यहाँ कर्मबंध के दो प्रकार कहे गए हैं—ऐर्यापथिक और साम्परायिक। केवल योगों के निमित्त से होने वाले सातावेदनीयरूप बंध को ऐर्यापथिककर्मबंध कहते हैं। जिनसे चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण हो, उन्हें सम्पराय—कषाय कहते हैं, सम्परायों (कषायों) के निमित्त से होने वाले कर्मबंध को साम्परायिककर्मबंध कहते हैं। यह प्रथम से दशम गुणस्थान तक होता है।

ऐर्यापथिककर्मबंध स्वामी, कर्ता बंधकाल, बन्धविकल्प तथा बंधांश—(१) **स्वामी**—ऐर्यापथिककर्म का बंध नारक, तिर्यञ्च और देवो का नहीं होता, यह केवल मनुष्यों को ही होता है। मनुष्यों में भी ग्यारहवें (उपशान्तमोह), बारहवें (क्षीणमोह) और तेरहवें (सयोगीकेवली) गुणस्थानवर्ती मनुष्यों को ही होता है। ऐसे मनुष्य पुरुष और स्त्री दोनों ही होते हैं। जिसने पहले ऐर्यापथिककर्म का बंध किया हो, अर्थात्—जो ऐर्यापथिक कर्मबंध के द्वितीय-तृतीय आदि समयवर्ती हो, उसे **पूर्वप्रतिपन्न** कहते हैं। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा इसे बहुत से मनुष्य नर और बहुत-सी मनुष्य नारियाँ बांधती हैं, क्योंकि ऐसे पूर्वप्रतिपन्न स्त्री और पुरुष बहुत होते हैं और दोनों प्रकार के केवली (स्त्रीकेवली और पुरुषकेवली) सदा पाए जाते हैं। इसलिए इसका भंग नहीं होता। जो जीव ऐर्यापथिक कर्मबंध के प्रथम समयवर्ती होते हैं, वे **प्रतिपद्यमान** कहलाते हैं। इनका विरह सम्भव है। इसलिए एकत्व और बहुत्व को लेकर इनके (स्त्री और पुरुष के) असंयोगी ४ भंग और द्विकसंयोगी ४ भंग, यों कुल ८ भंग बनते हैं।

ऐर्यापथिक कर्मबंध के सम्बन्ध में जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि को लेकर प्रश्न किया गया है, वह लिंग की अपेक्षा समझना चाहिए, वेद की अपेक्षा नहीं, क्योंकि ऐर्यापथिक कर्मबंध-कर्ता जीव उपशान्तवेदी या क्षीणवेदी ही होते हैं। इसीलिए इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है—**अपगतवेद**—वेद के उदय से रहित जीव ही इसे बांधते हैं। पूर्वप्रतिपन्नक अवेदी जीव सदा बहुत होते हैं, इसलिए उनके विषय में बहुवचन ही दिया गया है, जबकि प्रतिपद्यमान अवेदी जीव में विरह होने से एकत्व आदि की सम्भावना के कारण एकवचन और बहुवचन दोनों विकल्प कहे गए हैं।

जो जीव गतकाल में स्त्री था, किन्तु अब वर्तमानकाल में अवेदी हो गया है, उसे **स्त्रीपश्चात्कृत** कहते हैं, इसी तरह **पुरुषपश्चात्कृत** और **नपुंसकपश्चात्कृत** का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। इन तीनों की अपेक्षा यहाँ वेदरहित एक जीव या अनेक जीवों के द्वारा ऐर्यापथिक-कर्मबंधसम्बन्धी २६ भंगों को प्रस्तुत करके प्रश्न किया है। इनमें असंयोगी ६ भंग, द्विकसंयोगी १२ भंग और त्रिकसंयोगी ८ भंग हैं। इस प्रश्न का उत्तर भी २६ भंगों द्वारा दिया गया है।

त्रैकालिक ऐर्यापथिक कर्मबंध विचार—इसके पश्चात् ऐर्यापथिक कर्मबंध के सम्बन्ध में भूत, वर्तमान और भविष्य काल-सम्बन्धी आठ भंगों द्वारा प्रश्न किया गया है, जिसका उत्तर **'भवाकर्ष'** और **'ग्रहणाकर्ष'** की अपेक्षा दिया गया है। अनेक भवों में उपशमश्रेणी की प्राप्ति द्वारा ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलों का आकर्ष-ग्रहण करना **'भवाकर्ष'** है और एक भव में ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलों का ग्रहण करना, **'ग्रहणाकर्ष'** है। भवाकर्ष की अपेक्षा यहाँ ८ भंग उत्पन्न होते हैं—उनका आशय क्रमशः इस प्रकार है—**१ प्रथम भंग**—बांधा था, बांधता है, बांधेगा, यह भवाकर्षापेक्षया उस जीव में पाया जाता है, जिसने गतकाल (किसी पूर्वभव) में उपशमश्रेणी की थी, उस समय ऐर्यापथिक कर्म बांधा था, वर्तमान में उपशम श्रेणी करता है, उस समय इसे बांधता है और आगामी भव में उपशमश्रेणी करेगा, उस समय इसे बांधेगा। **२ द्वितीय भंग**—बांधा था, बांधता है, नहीं बांधेगा—यह उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशमश्रेणी की थी और ऐर्यापथिक कर्म बांधा था, वर्तमान में क्षपक श्रेणी में इसे बांधता है और फिर इसी भव में मोक्ष चला जाए।, इसलिए आगामी काल में नहीं बांधेगा। **३ तृतीय भंग**—बांधा था, नहीं बांधता है, बांधेगा- यह भंग उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशमश्रेणी की थी, उसमें बांधा था, वर्तमान भव में श्रेणी नहीं

करता, अत यह कर्म नही बाधता और भविष्य में उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी करेगा, तब बाधेगा। ४ चौथा भग—बाधा था, नहीं बांधता है, नहीं बाधेगा—यह उस जीव मे पाया जाता है, जो वर्तमान मे चौदहवें गुणस्थान मे विद्यमान है। उसने गतकाल (पूर्वकाल) मे बाधा था, वर्तमान मे नही बाधता और भविष्यकाल में भी नही बाधेगा। ५ पचम भग—नहीं बाधा, बाधता है, बाधेगा-यह उस जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे उपशमश्रेणी नही की थी, अत ऐर्यापथिक कर्म नही बाधा था, वर्तमान भव में उपशमश्रेणी मे बाधता है, आगामी भव में उपशमश्रेणी या क्षपक श्रेणी में बांधेगा। ६ छठा भग—नहीं बाधा था, बाधता है, नहीं बाधेगा—यह भग उस जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव मे उपशमश्रेणी नही की थी, अत नहीं बाधा था, वर्तमानभव में क्षपकश्रेणी मे बाधता है, इसी भव मे मोक्ष चला जाएगा, इसलिए आगामी काल (भव) में नही बाधेगा। ७ सप्तम भग—नहीं बाधा था, नहीं बाधता है, बाधेगा—यह भग उस जीव में पाया जाता है, जो जीव भव्य है, किन्तु भूतकाल मे उपशमश्रेणी नही की, इसलिए नही बाधा था, वर्तमानकाल मे भी उपशमश्रेणी नही करता, इसलिए नही बाधता, किन्तु आगामीकाल में उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी करेगा, तब बाधेगा। ८ अष्टम भग—नहीं बांधा था, नहीं बांधता, नहीं बाधेगा—यह भग अभव्य जीव मे पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में ऐर्यापथिककर्म नही बाधा था, वर्तमान मे नही बाधता और भविष्य मे भी नही बाधेगा, क्योंकि अभव्य जीव ने उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी नही की, न करता है, और न ही करेगा। एक ही भव मे ऐर्यापथिक कर्मपुद्गलो के ग्रहणरूप 'ग्रहणाकर्ष' की दृष्टि से—१ प्रथम भग—उस जीव मे पाया जाता है, जिसने इसी भव मे भूतकाल मे उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी के समय ऐर्यापथिककर्म बाधा था, वर्तमान मे बाधता है, भविष्य मे बाधेगा। २ द्वितीय भग—तेरहवें गुणस्थान मे एक समय शेष रहता है, उस समय पाया जाता है, क्योंकि उसने भूतकाल मे बाधा था, वर्तमानकाल मे बाधता है और आगामीकाल मे शैलेशी अवस्था मे नही बाधेगा। ३ तृतीय भग—का स्वामी वह जीव है, जो उपशमश्रेणी करके उससे गिर गया है। उसने उपशमश्रेणी के समय ऐर्यापथिककर्म बाधा था, अब वर्तमान मे नही बाधता और उसी भव में फिर उपशमश्रेणी करने पर बाधेगा, क्योंकि एक भव मे एक जीव दो बार उपशमश्रेणी कर सकता है। ४ चौथा भग—चौदहवें गुणस्थान के प्रथम समय मे पाया जाता है। सयोगी-अवस्था मे उसने ऐर्यापथिककर्म बाधा था, किन्तु एक समय पश्चात् ही चौदहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो जाने पर शैलेशी-अवस्था मे नही बाधता, तथा आगामीकाल मे नही बाधेगा। ५ पांचवा भग—उस जीव मे पाया जाता है जिसने आयुष्य के पूर्वभाग मे उपशमश्रेणी आदि नही की, इसलिए नहीं बाधा, वर्तमान मे श्रेणी प्राप्त की है, इसलिए बाधता है और भविष्य मे भी बाधेगा। ६ छठा भग—शून्य है। यह किसी भी जीव मे नही पाया जाता, क्योंकि छठा भग है—नही बाधा, बाधता है नहीं बाधेगा। प्रथम की दो बातें तो किसी जीव मे सम्भव हैं लेकिन नही बाधेगा यह बात एक ही भव में नही पाई जा सकती। ७ सप्तम भग—भव्यविशेष की अपेक्षा है। ८ अष्टम भग—अभव्य की अपेक्षा है।

ऐर्यापथिककर्म-बध विकल्प-चतुष्टय—यहाँ सादि-सान्त, सादि अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त, इन चार विकल्पो को लेकर ऐर्यापथिककर्म-बधकर्त्ता के सम्बन्ध मे प्रश्न किया गया है, जिसके उत्तर मे कहा गया है—प्रथम विकल्प—सादि-सान्त मे ही ऐर्यापथिककर्मबध होता है, शेष तीन विकल्पों मे नही।

जीव के साथ ऐर्यापथिककर्मबंधाश सम्बन्धी चार विकल्प—इसके पश्चात् चार विकल्पो द्वारा ऐर्यापथिककर्मबंधाश सम्बन्धी प्रश्न उठाया गया है। उसका आशय यह है—(१) देश से देशबंध—जीव-आत्मा के एक देश से कर्म के एक देश मे बंध, (२) देश से सर्वबंध—जीव के एक देश से सम्पूर्ण कर्म का बंध, (३) सर्व से देशबंध—सम्पूर्ण जीवप्रदेशो से कर्म के एक देश का बंध और (४) सर्व से सर्वबन्ध—सम्पूर्ण जीवप्रदेशो से सम्पूर्ण कर्म का बंध। इनमे से चौथे विकल्प द्वारा ऐर्यापथिककर्म का बंध होता है, क्योकि जीव का ऐसा ही स्वभाव है, शेष तीन विकल्पो से जीव के साथ कर्म का बंध नही होता।

साम्परायिककर्मबंध स्वामी, कर्ता, बंधकाल, बंधविकल्प तथा बंधाश बंधस्वामी—कषाय निमित्तक कर्मबंधरूप साम्परायिककर्मबन्ध के स्वामी के विषय मे प्रथम प्रश्न मे सात विकल्प उठाए गए हैं, उनमे से (१) नैरयिक, (२) तिर्यंच, (३) तिर्यंची, (४) देव और (५) देवी, ये पाच तो सकषायी होने से सदा साम्परायिकबंधक होते हैं, (६) मनुष्य नर और (७) मनुष्य-नारी ये दो सकषायी अवस्था मे साम्परायिककर्मबंधक होते हैं, अकषायी हो जाने पर साम्परायिकबंधक नही होते।

बंधकर्ता—द्वितीय प्रश्न मे साम्परायिककर्मबंधकर्ता के विषय मे एकत्वविवक्षित और बहुत्वविवक्षित स्त्री, पुरुष, नपुसक आदि को लेकर सात विकल्प उठाए गए हैं, जिसके उत्तर मे कहा गया है—एकत्वविवक्षित और बहुत्वविवक्षित स्त्री, पुरुष और नपुसक, ये ६ सदैव साम्परायिककर्मबंधकर्ता होते हैं, क्योकि ये सब सवेदी हैं। अवेदी कादाचित्क (कभी-कभी) पाया जाता है, इसलिए वह कदाचित साम्परायिककर्म बाधता है। तात्पर्य यह है—स्त्री आदि पूर्वोक्त छह साम्परायिककर्म बाधते हैं, अथवा स्त्री आदि ६ और वेदरहित एक जीव (क्योकि वेदरहित एक जीव भी पाया जाता है, इसलिए) साम्परायिककर्म बाधते हैं, अथवा पूर्वोक्त स्त्री आदि छह और वेदरहित बहुत जीव (क्योकि वेदरहित जीव बहुत भी पाए जा सकते हैं, इसलिए) साम्परायिककर्म बाधते हैं। तीनो वेदो का उपशम या क्षय हो जाने पर भी जीव जब तक यथाख्यातचारित्र को प्राप्त नही करता, तब तक वह वेदरहित जीव साम्परायिकबन्धक होता है। यहा पूर्वप्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान की विवक्षा इसलिए नही की गई है कि दोनो मे एकत्व और बहुत्व पाया जाता है तथा वेदरहित हो जाने पर साम्परायिक बंध भी अल्पकालिक हो जाता है। साम्परायिककर्मबंधक मे भी ऐर्यापथिककर्मबंधक की तरह २६ भग होते है। वे पूर्ववत् समझ लेने चाहिए।

साम्परायिककर्मबंध सम्बन्धी त्रैकालिक विचार—काल की अपेक्षा ऐर्यापथिककर्मबंध सम्बन्धी ८ भग प्रस्तुत किये गए थे, लेकिन साम्परायिककर्मबंध अनादि काल से है। इसलिए भूतकाल सम्बन्धी जो 'ण बधी—नही बाधा' इस प्रकार के ४ भग हैं, वे इसमे बन सकते। जो ४ भग बन सकते है, उनका आशय इस प्रकार है—१—प्रथम भग—बाधा था, बाधता है, बांधेगा—यह भग यथाख्यातचारित्रप्राप्ति से दो समय पहले तक सबससारी जीवो मे पाया जाता है, क्योकि भूतकाल मे उन्होने साम्परायिककर्म बाधा था, वर्तमान मे बाधते हैं और भविष्य मे भी यथाख्यात चारित्रप्राप्ति के पहले तक बाधेगे। यह प्रथम भग अभव्यजीव की अपेक्षा भी घटित हो सकता है। २—द्वितीय भग—बाधा था, बाधता है, नहीं बाधेगा—यह भग भव्य जीव की अपेक्षा से है। मोहनीयकर्म के क्षय से पहले उसने साम्परायिककर्म बाधा था, वर्तमान मे बाधता है और आगामीकाल मे मोहक्षय की अपेक्षा नही बाधेगा। ३—तृतीय भग—बाधा था, नहीं बाधता, बाधेगा—यह भग उपशम-

श्रेणीप्राप्त जीव की अपेक्षा है। उपशमश्रेणी करने के पूर्व उसने साम्परायिक कर्म बांधा था, वर्तमान में उपशान्तमोह होने से नहीं बांधता और उपशमश्रेणी से गिर जाने पर आगामीकाल में पुनः बांधेगा। ४—चतुर्थ भंग—बांधा था, नहीं बांधता, नहीं बांधेगा—यह भंग क्षपकश्रेणीप्राप्त क्षीणमोह जीव की अपेक्षा से है। मोहनीयकर्मक्षय के पूर्व उसने साम्परायिककर्म बांधा था, वर्तमान में मोहनीयकर्म का क्षय हो जाने से नहीं बांधता और तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्त हो जाने से आगामी काल में नहीं बांधेगा।[1]

साम्परायिककर्मबंधक के विषय में सादि सान्त आदि ४ विकल्प—पूर्ववत् सादि-सपर्यवसित (सान्त) आदि ४ विकल्पों को लेकर साम्परायिककर्मबंध के विषय में प्रश्न उठाया गया है। इन चार भंगों में से सादि-अपर्यवसित-(अनन्त) को छोड़ कर शेष प्रथम, तृतीय और चतुर्थ भंगों से जीव साम्परायिककर्म बांधता है। जो जीव उपशमश्रेणी से गिर गया है और आगामी काल में पुनः उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी को अंगीकार करेगा, उसकी अपेक्षा सादि सपर्यवसित नामक प्रथम भंग घटित होता है। जो जीव प्रारम्भ में ही क्षपकश्रेणी करने वाला है, उसकी अपेक्षा अनादि सपर्यवसित नामक तृतीय भंग घटित होता है, तथा अभव्य जीव की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित नामक चतुर्थ भंग घटित होता है। सादि अपर्यवसित नामक दूसरा भंग किसी भी जीव में घटित नहीं होता। यद्यपि उपशमश्रेणी से भ्रष्ट जीव सादिसाम्परायिकबंधक होता है, किन्तु वह कालान्तर में अवश्य मोक्षगामी होता है, उस समय उसमें साम्परायिक कर्म का व्यवच्छेद हो जाता है, इसलिए अन्तरहितता उसमें घटित नहीं होती।[2]

बावीस परीषहों का अष्टविध कर्मों में समवतार तथा सप्तविधबन्धकादि के परीषहों की प्ररूपणा

२३. कइ णं भंते ! कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपयडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं।

[२३ प्र.] भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?

[२३ उ.] गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई हैं, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय।

२४. कइ णं भंते ? परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा—दिगिंछापरीसहे १, पिवासापरीसहे २, जाव दंसणपरीसहे २२।

[२४ प्र.] भगवन् ! परीषह कितने कहे गए हैं ?

[२४ उ.] गौतम ! परीषह बावीस कहे गए हैं, वे इस प्रकार—१ क्षुधा-परीषह, २ पिपासा परीषह यावत् २२—दर्शन-परीषह।

२५. एए णं भंते ! बावीसं परीसहा कतिसु कम्मपगडीसु समोयरंति ?

गोयमा ! चउसु कम्मपयडीसु समोयरंति, तं जहा—णाणावरणिज्जे, वेयणिज्जे, मोहणिज्जे, अंतराइए।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३८५ से ३८७ तक

२ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३८८

[२५ प्र] भगवन् ! इन बावीस परीषहों का किन कर्मप्रकृतियों में समवतार (समावेश) हो जाता है ?

[२५ उ] गौतम ! चार कर्मप्रकृतियों में इन २२ परीषहों का समवतार होता है, वे इस प्रकार हैं—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय।

२६ णाणावरणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! दो परीसहा समोयरंति, त जहा—पण्णापरीसहे नाणपरीसहे (अन्नाण परीसहे) य।

[२६ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२६ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म में दो परीषहों का समवतार होता है। यथा—प्रज्ञा-परीषह और ज्ञानपरीषह (अज्ञानपरीषह)।

२७ वेयणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! एक्कारस परीसहा समोयरंति, त जहा—

पंचेव आणुपुव्वी, चरिया, सेज्जा, वहे य रोगे य।
तणफास जल्लमेव य, एक्कारस वेदणिज्जम्मि ॥१॥

[२७ प्र] भगवन् ! वेदनीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२७ उ] गौतम ! वेदनीयकर्म में ग्यारह परीषहों का समवतार होता है। वे इस प्रकार हैं—अनुक्रम से पहले के पांच परीषह (क्षुधापरीषह, पिपासापरीषह, शीतपरीषह, उष्णपरीषह और दंशमशकपरीषह), चर्यापरीषह, शय्यापरीषह, वधपरीषह, रोगपरीषह, तृणस्पर्शपरीषह और जल्ल (मैल) परीषह। इन ग्यारह परीषहों का समवतार वेदनीय कर्म में होता है।

२८ [१] दंसणमोहणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! एगे दंसणपरीसहे समोयरइ।

[२८-१ प्र] भगवन् दर्शनमोहनीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२८-१ उ] गौतम ! दर्शनमोहनीयकर्म में एक दर्शनपरीषह का समवतार होता है।

[२] चरित्तमोहणिज्जे ण भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! सत्त परीसहा समोयरंति, त जहा—

अरती अचेल इत्थी निसीहिया जायणा य अक्कोसे।
सक्कारपुरक्कारे चरित्तमोहम्मि सत्तेते ॥२॥

[२८-२ प्र] भगवन् ! चारित्रमोहनीयकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२८-२ उ] गौतम ! चारित्रमोहनीय कर्म में सात परीषहों का समवतार होता है वह इस प्रकार—अरतिपरीषह, अचेलपरीषह, स्त्रीपरीषह, निषद्यापरीषह, याचनापरीषह, आक्रोश-परीषह और सत्कार-पुरस्कारपरीषह। इन सात परीषहों का समवतार चारित्रमोहनीयकर्म में होता है।

२९ अंतराइए णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?

गोयमा ! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ।

[२९ प्र] भगवन् ! अन्तरायकर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

[२९ उ] गौतम ! अन्तरायकर्म में एक अलाभपरीषह का समवतार होता है।

३० सत्तविहबंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, बीसं पुण वेदेइ—जं समयं सीयपरीसहं वेदेति णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ। जं समयं चरियापरीसहं वेदेति णो तं समयं निसीहियापरीसहं वेदेति, जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ।

[३० प्र] भगवन् ! सप्तविधबन्धक (सात प्रकार के कर्मों को बांधने वाले) जीव के कितने परीषह बताए गए हैं ?

[३० उ] गौतम ! उसके बावीस परीषह कहे गए हैं। परन्तु वह जीव एक साथ बीस परीषहों का वेदन करता है, क्योंकि जिस समय वह शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नहीं करता तथा जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय निषद्यापरीषह का वेदन नहीं करता और जिस समय निषद्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नहीं करता।

३१ अट्ठविहबंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता० एवं (सु. ३०) अट्ठविहबंधगस्स।

[३१ प्र] भगवन् ! आठ प्रकार के कर्म बांधने वाले जीव के कितने परीषह कहे गए हैं ?

[३१ उ] गौतम ! उसके बावीस परीषह कहे गए हैं। यथा—क्षुधापरीषह, पिपासापरीषह, शीतपरीषह, दंशमशक-परीषह यावत् अलाभपरीषह। किन्तु वह एक साथ बीस परीषहों को वेदता है। जिस प्रकार सप्तविधबन्धक के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार (सू. ३० के अनुसार) अष्टविधबन्धक के विषय में भी कहना चाहिए।

३२ छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता, बारस पुण वेदेइ—जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ। जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ णो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ।

[३२ प्र] भगवन् ! छह प्रकार के कर्म बांधने वाले सराग छद्मस्थ जीव के कितने परीषह कहे गए हैं ?

[३२ उ] गौतम! उसके चौदह परीषह कहे गए हैं, किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। जिस समय शीतपरीषह वेदता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नही करता और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नही करता। जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय शय्यापरीषह का वेदन नही करता और जिस समय शय्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नही करता।

३३ [१] एक्कविहबधगस्स ण भते! वीयरागछउमत्यस्स कति परीसहा पण्णत्ता?

गोयमा! एव चेव जहेव छव्विहबधगस्स।

[३३-१ प्र] भगवन्! एकविधबन्धक वीतराग-छद्मस्थ जीव के कितने परीषह कहे गए ह?

[३३-१ उ] गौतम! षड्विधबन्धक के समान इसके भी चौदह परीषह कहे गए हैं, किन्तु वह एक साथ बारह परीषहो का वेदन करता है। जिस प्रकार षड्विधबन्धक के विषय मे कहा है, उसी प्रकार एकविधबन्धक के विषय मे समझना चाहिए।

[२] एगविहबधगस्स ण भते! सजोगिभवत्यकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता?

गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ। सेस जहा छव्विहबधगस्स।

[३३-२ प्र] भगवन्! एकविधबन्धक सयोगी-भवस्थकेवली के कितने परीषह कहे गए हैं?

[३३-२ उ] गौतम! इसके ग्यारह परीषह कहे गए हैं, किन्तु वह एक साथ नौ परीषहो का वेदन करता है। शेष समग्र कथन षड्विधबन्धक के समान समझ लेना चाहिए।

३४ अबधगस्स ण भते! अजोगिभवत्यकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता?

गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ, ज समय सीयपरीसह वेदेइ नो त समय उसिणपरीसह वेदेइ, ज समय उसिणपरीसह वेदेइ नो त समय सीयपरीसह वेदेइ। ज समय चरिया-परीसह वेदेइ नो त समय सेज्जापरीसह वेदेइ, ज समय सेज्जापरीसह वेदेइ नो त समय चरियापरीसह वेदेइ।

[३४-प्र] भगवन्! अबन्धक अयोगीभवस्थकेवली के कितने परीषह कहे गए हैं?

[३४ उ] गौतम! उसके ग्यारह परीषह कहे गए हैं। किन्तु वह एक साथ नौ परीषहो का वेदन करता है। क्योकि जिस समय शीतपरीषह का वेदन करता है, उस समय उष्णपरीषह का वेदन नही करता और जिस समय उष्णपरीषह का वेदन करता है, उस समय शीतपरीषह का वेदन नही करता। जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय शय्यापरीषह का वेदन नही करता और जिस समय शय्यापरीषह का वेदन करता है, उस समय चर्यापरीषह का वेदन नही करता।

विवेचन—बावीस परीषहो को अष्टकर्मों मे समावेश की तथा सप्तविधबधक आदि के परीषहों की प्ररूपणा—प्रस्तुत १२ सूत्रो (सू २३ से ३४ तक) मे बावीस परीषहो के सम्बन्ध मे दो तथ्यों का निरूपण किया गया है—(१) किस कर्म मे कितने परीषहो का समावेश होता है? अर्थात् किस किस कर्म के उदय से कौन-कौन से परीषह उत्पन्न होते हैं? तथा (२) सप्तविधबन्धक, षड्विधबन्धक, अष्टविधबन्धक, एकविधबन्धक और अबन्धक आदि मे कितने कितने परीषहो की सम्भावना है।

परीषह : स्वरूप और प्रकार—आपत्ति आने पर भी संयममार्ग से भ्रष्ट न होने तथा उसमें स्थिर रहने के लिए एवं कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक, मानसिक कष्ट साधु, साध्वियों को सहन करने चाहिए, वे 'परीषह' कहलाते हैं। ऐसे परीषह २२ हैं। यथा—(१) क्षुधापरीषह—भूख का कष्ट सहना, संयममर्यादानुसार एषणीय, कल्पनीय निर्दोष आहार न मिलने पर जो क्षुधा का कष्ट सहना होता है, उसे क्षुधापरीषह कहते हैं। (२) पिपासापरीषह—प्यास का परीषह, (३) शीतपरीषह—ठंड का परीषह, (४) उष्णपरीषह—गर्मी का परीषह (५) दंश-मशक परीषह—डांस, मच्छर, खटमल, जूं, चींटी आदि का परीषह, (६) अचेलपरीषह—वस्त्राभाव, वस्त्र की अल्पता या जीर्णशीर्ण, मलिन आदि अपर्याप्त वस्त्रों के सद्भाव में होने वाला परीषह, (७) अरतिपरीषह—संयममार्ग में कठिनाइयाँ, असुविधाएँ एवं कष्ट आने पर अरति-अरुचि या उदासी या उद्विग्नता से होने वाला कष्ट, (८) स्त्रीपरीषह—स्त्रियों से होने वाला कष्ट, साध्वियों के लिए पुरुषों से होने वाला कष्ट, (यह अनुकूल परीषह है।) (९) चर्यापरीषह—ग्राम, नगर आदि के विहार में या पैदल चलने में होने वाला कष्ट, (१०) निषद्या या निशीथिका परीषह—स्वाध्याय आदि करने की भूमि में तथा सूने घर आदि में ठहरने से होने वाले उपद्रव का कष्ट, (११) शय्या-परीषह—रहने के (आवास-) स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट, (१२) आक्रोशपरीषह—कठोर, धमकीभरे वचन या डांट-फटकार से होने वाला, (१३) वधपरीषह—मारने-पीटने आदि से होने वाला कष्ट, (१४) याचनापरीषह—भिक्षा मांग कर लाने में होने वाला मानसिक कष्ट, (१५) अलाभ परीषह—भिक्षा आदि न मिलने पर होने वाला कष्ट, (१६) रोगपरीषह—रोग के कारण होने वाला कष्ट, (१७) तृणस्पर्शपरीषह—घास के बिछौने पर सोने से शरीर में चुभन से या मार्ग में चलते समय तृणादि पैर में चुभने से होने वाला कष्ट, (१८) जल्लपरीषह—कपड़ों या तन पर मैल, पसीना आदि जम जाने से होने वाली ग्लानि, (१९) सत्कार-पुरस्कारपरीषह—जनता द्वारा सम्मान सत्कार, प्रतिष्ठा, यश, प्रसिद्धि आदि न मिलने से होने वाला मानसिक खेद अथवा सत्कार-सम्मान मिलने पर गर्व अनुभव करना, (२०) प्रज्ञापरीषह—प्रखर अथवा विशिष्टबुद्धि का गर्व करना, (२१) ज्ञान या अज्ञान परीषह—विशिष्ट ज्ञान होने पर उसका अहंकार करना, ज्ञान (बुद्धि) की मन्दता होने से मन में दैन्यभाव आना और (२२) अदर्शन या दर्शन परीषह—दूसरे मत वालों की ऋद्धि-वृद्धि एवं चमत्कार-आडम्बर आदि देख कर सर्वज्ञोक्त सिद्धान्त से विचलित होना या सर्वज्ञोक्त तत्त्वों में प्रति अश्रद्धा होना।

चार कर्मों में बाईस परीषहों का समावेश—कर्म प्रकृतियाँ मूलतः आठ हैं। उनमें से ४ कर्मों—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय में २२ परीषहों का समावेश होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इन चार कर्मों के उदय से पूर्वोक्त २२ परीषह उत्पन्न होते हैं। प्रज्ञापरीषह और ज्ञान या अज्ञानपरीषह ज्ञानावरणीयकर्म के उदय से होते हैं। वेदनीयकर्म के उदय से क्षुधा आदि ११ परीषह होते हैं। इन परीषहों के कारण पीड़ा उत्पन्न होना—वेदनीयकर्म का उदय है। मोहनीयकर्म के उदय से ८ परीषह होते हैं। दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अदर्शन या दर्शन परीषह और चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से अरति, अचेल आदि ७ परीषह होते हैं और अन्तरायकर्म के उदय से अलाभ परीषह होता है।

सप्तविध आदि बन्धक के साथ परीषहों का साहचर्य—आयुकर्म को छोड़कर शेष ७ अथवा आयुबन्धकाल में ८ कर्मों को बांधने वाले जीव में सभी २२ परीषह हो सकते हैं, किन्तु वे वेदते हैं—

अधिक-से अधिक एक साथ बीस परीषह, क्योकि शीत और उष्ण, चर्या और निषद्या अथवा चर्या और शय्या ये दोनो परस्पर विरुद्ध होने से एक का ही एक समय मे अनुभव होता है। षड्विधबन्धक सराग छद्मस्थ के १४ परीषह बताए गए हैं। वे मोहनीयकर्मजन्य ८ परीषहो के सिवाय समझने चाहिए। किन्तु उनमे वेदन हो सकता है १२ परीषहो का ही। पूर्वोक्त रीति से चर्या और शय्या, या चर्या और निषद्या, अथवा शीत और उष्ण दोनो का एक साथ वेदन नही होता। एक वेदनीयकर्म के बन्धक छद्मस्थ वीतराग (ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती) जीव के भी १४ परीषह (मोहनीयकर्म के ८ परीषहो को छोडकर) होते हैं, किन्तु वे वेदते हैं अधिक-से-अधिक १२ परीषह ही। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी भवस्थकेवली एकविध बन्धक के और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अबन्धक अयोगी भवस्थ-केवली के एकमात्र वेदनीयकर्म के उदय से होने वाले ११ परीषह (जो कि पहले बताए गए हैं) होते हैं, किन्तु उनमे से एक साथ ९ का ही वेदन पूर्वोक्त रीत्या सभव है।[1]

उदय, अस्त और मध्याह्न के समय मे सूर्यों की दूरी और निकटता के प्रतिभास आदि की प्ररूपणा

३५ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति, मज्झतिय-मुहुत्तसि मूले य दूरे य दीसति, अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ?

हता गोयमा ! जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य त चेव जाव अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति।

[३५ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे क्या दो सूर्य, उदय के मुहूर्त (समय) मे दूर होते हुए भी निकट (मूल मे) दिखाई देते हैं, मध्याह्न के मुहूर्त (समय) मे निकट (मूल) मे होते हुए दूर दिखाई देते हैं और अस्त होने के मुहूर्त (समय) मे दूर होते हुए भी निकट (मूल मे) दिखाई देते हैं ?

[३५ उ] हा, गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि यावत् अस्त होने के समय मे दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं।

३६ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि य मज्झतियमुहुत्तसि य अत्थमण-मुहुत्तसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेण ?

हता, गोयमा ! जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमण जाव उच्चत्तेणं।

[३६ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, उदय के समय मे, मध्याह्न के समय मे और अस्त होने के समय मे क्या सभी स्थानो पर (सर्वत्र) ऊँचाई मे सम हैं ?

[३६ उ] हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे रहे हुए दो सूर्य यावत् सर्वत्र ऊँचाई मे सम हैं।

---

[1] (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३८९ से ३९२ तक
(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ९

३७ जइ णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि य मज्झंतियमुहुत्तंसि य अत्थमण मुहुत्तंसि जाव उच्चत्तेण से केण खाइ अट्ठेण भंते । एवं वुच्चइ 'जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ?

गोयमा ! लेसापडिघाएण उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति, लेसाभितावेण मज्झंतिय मुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति, लेस्सापडिघाएण अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति, से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ—जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति जाव अत्थमण जाव दीसंति ।

[३७ प्र] भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप मे दो सूर्य उदय के समय, मध्याह्न के समय और अस्त के समय सभी स्थानो पर (सर्वत्र) ऊँचाई में समान हैं तो ऐसा क्यो कहते हैं कि जम्बूद्वीप में दो सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्त के समय में दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ?

[३७ उ] गौतम ! लेश्या (तेज) के प्रतिघात से सूर्य उदय के समय, दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, मध्याह्न मे लेश्या (तेज) के अभिताप से पास होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं और अस्त के समय तेज के प्रतिघात से दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं । इस कारण हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि जम्बूद्वीप मे दो सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी पास मे दिखाई देते हैं, यावत अस्त के समय दूर होते हुए भी पास मे दिखाई देते हैं ।

३८ जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति, अणागयं खेत्तं गच्छंति ?

गोयमा ! णो तीयं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति, णो अणागयं खेत्तं गच्छंति ।

[३८ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र की ओर जाते हैं, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं अथवा अनागत क्षेत्र की ओर जाते ।

[३८ उ] गौतम ! वे अतीत क्षेत्र की ओर नही जाते, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं, अनागत क्षेत्र की ओर नही जाते हैं ।

३९ जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं ओभासंति, पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति, अणागयं खेत्तं ओभासंति ?

गोयमा ! नो तीयं खेत्तं ओभासंति, पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति, नो अणागयं खेत्तं ओभासंति ।

[३९ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं या अनागत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ।

[३९ उ] गौतम ! वे अतीत क्षेत्र को प्रकाशित नही करते, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं अनागत क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते हैं ।

४० तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासंति, अपुट्ठं ओभासंति ?

गोयमा ! पुट्ठं ओभासंति, नो अपुट्ठं ओभासंति जाव नियमा छद्दिसिं ।

[४० प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते है, अथवा अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

[४० उ] गौतम ! वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते, यावत् नियमत छहो दिशाओ को प्रकाशित करते हैं।

४१ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया कि तीय खेत्त उज्जोवेंति ?

एव चेव जाव नियमा छद्दिसि।

[४१ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे दो सूर्य क्या अतीत क्षेत्र को उद्योतित करते हैं ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए।

[४१ उ] गौतम ! इस विषय मे पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए, यावत् नियमत छहे दिशाओ को उद्योतित करते हैं।

४२ एव तवेंति, एव भासति जाव नियमा छद्दिसि ?

[४२] इसी प्रकार तपाते है, यावत् छह दिशा को नियमत प्रकाशित करते हैं।

४३ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरियाण कि तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खित्ते किरिया कज्जइ, प्रणागए खेत्ते किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! नो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ, णो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ।

[४३ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप मे सूर्यों की क्रिया क्या अतीत क्षेत्र मे की जाती है ? वर्तमान क्षेत्र मे ही की जाती है अथवा अनागत क्षेत्र मे की जाती है ?

[४३ उ] गौतम ! अतीत क्षेत्र मे क्रिया नही की जाती, वर्तमान क्षेत्र मे क्रिया की जाती है और अनागत क्षेत्र मे क्रिया नही की जाती है।

४४ सा भते ! कि पुट्ठा कज्जति, अपुट्ठा कज्जइ ?

गोयमा ! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जति जाव नियमा छद्दिसि।

[४४ प्र] भगवन् ! वे सूर्य स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट ?

[४४ उ] गौतम ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट क्रिया नही करते, यावत् नियमत छहो दिशाओ मे स्पृष्ट क्रिया करते हैं।

४५ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया केवतियं खेत्त उड्ढं तवंति, केवतिय खेत्त अहे तवंति, केवतिय खेत्त तिरियं तवंति ?

गोयमा ! एग जोयणसय उड्ढं तवंति, अट्ठारस जोयणसयाइं अहे तवंति, सीयालीस जोयण-सहस्साइं दोण्णि तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीस च सट्ठिभाए जोयणस्स तिरियं तवंति।

[४५ प्र.] भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने ऊँचे क्षेत्र को तपाते हैं, कितने नीचे क्षेत्र को तपाते हैं और कितने तिरछे क्षेत्र को तपाते हैं ?

[४५ उ.] गौतम ! वे सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, अठारह सौ योजन नीचे के क्षेत्र को तप्त करते हैं, और सैतालीस हजार दो सौ तिरसठ योजन तथा एक योजन के साठ भागों में से इक्कीस भाग (४७२६३२१/६०) तिरछे क्षेत्र को तप्त करते हैं।

विवेचन—उदय, अस्त और मध्याह्न के समय से सूर्यों की दूरी और निकटता के प्रतिभास आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ३५ से ४५ तक) में जम्बूद्वीपस्थ सूर्य-सम्बन्धी दूरी और निकटता आदि निम्नोक्त तथ्यों का निरूपण किया गया है—

१—सूर्य उदय और अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट तथा मध्याह्न में निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं।

२—उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य ऊँचाई में सर्वत्र समान होते हुए भी लेश्या (तेज) के अभिताप से उदय-अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट तथा मध्याह्न में निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं।

३—दो सूर्य, अतीत, अनागत क्षेत्र को नहीं, किन्तु वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित और उद्योतित करते हैं। वे अतीत, अनागत क्षेत्र की ओर नहीं, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं।

४—वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को नहीं, यावत् नियमतः छहों दिशाओं को प्रकाशित तथा उद्योतित करते हैं।

५—सूर्यों की क्रिया अतीत, अनागत क्षेत्र में नहीं, वर्तमान क्षेत्र में की जाती है।

६—वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट नहीं, यावत् छहों दिशाओं में स्पृष्ट क्रिया करते हैं।

७—वे सूर्य सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को, १८०० योजन नीचे के क्षेत्र को तथा ४७२६३२१/६० योजन तिरछे क्षेत्र को तप्त करते हैं।

सूर्य के दूर और निकट दिखाई देने के कारण का स्पष्टीकरण—सूर्य समतल भूमि से ८०० योजन ऊँचा है, किन्तु उदय और अस्त के समय देखने वालों को अपने स्थान की अपेक्षा निकट दृष्टिगोचर होता है, इसका कारण यह है कि उस समय उसका तेज मन्द होता है। मध्याह्न के समय देखने वालों को अपने स्थान की अपेक्षा दूर मालूम होता है, इसका कारण यह है कि उस समय उसका तीव्र तेज होता है। इन्हीं कारणों से सूर्य निकट और दूर दिखाई देता है। अन्यथा उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य-तो समतलभूमि से ८०० योजन ही दूर रहता है।¹

सूर्य की गति अतीत, अनागत या वर्तमान क्षेत्र में ?—यहाँ क्षेत्र के साथ अतीत, अनागत और वर्तमान विशेषण लगाए गए हैं। जो क्षेत्र अतिक्रान्त हो गया है, अर्थात्—जिस क्षेत्र को सूर्य पार कर गया है, उसे 'अतीतक्षेत्र' कहते हैं। जिस क्षेत्र में सूर्य अभी गति कर रहा है, उसे 'वर्तमानक्षेत्र' कहते हैं और जिस क्षेत्र में सूर्य गमन करेगा, उसे 'अनागतक्षेत्र' कहते हैं। सूर्य न अतीतक्षेत्र में गमन करता है, न ही अनागतक्षेत्र में गमन करता है, क्योंकि अतीतक्षेत्र अतिक्रान्त हो चुका है और अनागतक्षेत्र अभी आया नहीं है, इसलिए वह वर्तमान क्षेत्र में ही गति करता है।

सूर्य किस क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है ?—सूर्य अतीत और अनागत तथा अस्पृष्ट और अनवगाढ क्षेत्र का प्रकाशित, उद्योतित और तप्त नही करता, परन्तु वर्तमान, स्पृष्ट और अवगाढ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है, अर्थात्—इसी क्षेत्र मे क्रिया करता है, अतीत, अनागत आदि मे नही।

सूर्य की ऊपर, नीचे और तिरछे प्रकाशित आदि करने की सीमा—सूर्य अपने विमान से सौ योजन ऊपर (ऊर्ध्व) क्षेत्र को तथा ८०० योजन नीचे के समतल भूभाग से भी हजार योजन नीचे अधोलोक ग्राम तक नीचे के क्षेत्र को और सर्वोत्कृष्ट (सबसे बडे) दिन में चक्षु स्पर्श की अपेक्षा ४७२६३$\frac{21}{60}$ योजन तक तिरछे क्षेत्र को उद्योतित, प्रकाशित और तप्त करते हैं।[1]

मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर-बाहर के ज्योतिष्क देवो और इन्द्रो का उपपात-विरहकाल

४६ अतो ण भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त ताराख्वा ते ण भंते ! देवा किं उड्ढोववन्नगा ?

जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेस जाव उक्कोसेण छम्मासा।

[४६ प्र] भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप देव हैं, वे क्या ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न हुए हैं ?

[४६ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा गया है, उसी प्रकार 'उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास है', यहाँ तक कहना चाहिए।

४७ बहिया ण भंते ! माणुसुत्तरस्स० जहा—जीवाभिगमे जाव इदट्ठाणे ण भंते ! केवतियं कालं उववाएण विरहिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्कं समयं, उक्कोसेण छम्मासा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ अट्ठमसए अट्ठमो उद्देसो समत्तो ॥

[४७ प्र] भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के बाहर जो चन्द्रादि देव हैं, वे ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न हुए है ? इत्यादि जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी, भगवन् ! इन्द्र-स्थान कितने काल तक उपपात-विरहित कहा गया है ?, तक कहना चाहिए।

[४७ उ] गौतम ! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास बाद दूसरा इन्द्र उस स्थान पर उत्पन्न होता है। इतने काल तक इन्द्रस्थान उपपात-विरहित होता है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९३

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्तं, (मूलपाठ टिप्पणयुक्त), पृ ३७७-३७८

[४५ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने ऊँचे क्षेत्र को तपाते हैं, कितने नीचे क्षेत्र को तपाते हैं और कितने तिरछे क्षेत्र को तपाते हैं ?

[४५ उ] गौतम ! वे सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, अठारह सौ योजन नीचे के क्षेत्र को तप्त करते हैं, और सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ योजन तथा एक योजन के साठ भागों में से इक्कीस भाग (४७२६३$\frac{२१}{६०}$) तिरछे क्षेत्र को तप्त करते हैं।

विवेचन—उदय, अस्त और मध्याह्न के समय से सूर्यों की दूरी और निकटता के प्रतिभास आदि की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू ३५ से ४५ तक) में जम्बूद्वीपस्थ सूर्य-सम्बन्धी दूरी और निकटता आदि निम्नोक्त तथ्यों का निरूपण किया गया है—

१—सूर्य उदय और अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट तथा मध्याह्न में निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं।

२—उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य ऊँचाई में सर्वत्र समान होते हुए भी लेश्या (तेज) के अभिताप से उदय-अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट तथा मध्याह्न में निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं।

३—दो सूर्य, अतीत, अनागत क्षेत्र को नहीं, किन्तु वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित और उद्योतित करते हैं। वे अतीत, अनागत क्षेत्र की ओर नहीं, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं।

४—वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को नहीं, यावत् नियमतः छहों दिशाओं को प्रकाशित तथा उद्योतित करते हैं।

५—सूर्यों की क्रिया अतीत, अनागत क्षेत्र में नहीं, वर्तमान क्षेत्र में की जाती है।

६—वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट नहीं, यावत् छहों दिशाओं में स्पृष्ट क्रिया करते हैं।

७—वे सूर्य सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को, १८०० योजन नीचे के क्षेत्र को तथा ४७२६३$\frac{२१}{६०}$ योजन तिरछे क्षेत्र को तप्त करते हैं।

सूर्य के दूर और निकट दिखाई देने के कारण का स्पष्टीकरण—सूर्य समतल भूमि से ८०० योजन ऊँचा है, किन्तु उदय और अस्त के समय देखने वालों को अपने स्थान की अपेक्षा निकट दृष्टिगोचर होता है, इसका कारण यह है कि उस समय उसका तेज मन्द होता है। मध्याह्न के समय देखने वालों को अपने स्थान की अपेक्षा दूर मालूम होता है इसका कारण यह है कि उस समय उसका तीव्र तेज होता है। इन्हीं कारणों से सूर्य निकट और दूर दिखाई देता है। अन्यथा उदय, अस्त और मध्याह्न के समय सूर्य तो समतलभूमि से ८०० योजन ही दूर रहता है।

सूर्य की गति अतीत, अनागत या वर्तमान क्षेत्र में ?—यहाँ क्षेत्र के साथ अतीत, अनागत और वर्तमान विशेषण लगाए गए हैं। जो क्षेत्र अतिक्रान्त हो गया है, अर्थात्—जिस क्षेत्र को सूर्य पार कर गया है, उसे 'अतीतक्षेत्र' कहते हैं। जिस क्षेत्र में सूर्य अभी गति कर रहा है, उसे 'वर्तमानक्षेत्र' कहते हैं और जिस क्षेत्र में सूर्य गमन करेगा, उसे 'अनागतक्षेत्र' कहते हैं। सूर्य न अतीतक्षेत्र में गमन करता है, न ही अनागतक्षेत्र में गमन करता है, क्योंकि अतीतक्षेत्र अतिक्रान्त हो चुका है और अनागतक्षेत्र अभी आया नहीं है, इसलिए वह वर्तमान क्षेत्र में ही गति करता है।

सूर्य किस क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है ?—सूर्य अतीत और अनागत तथा अस्पृष्ट और अनवगाढ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त नहीं करता, परन्तु वर्तमान, स्पृष्ट और अवगाढ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है, अर्थात्—इसी क्षेत्र में क्रिया करता है, अतीत, अनागत आदि में नहीं।

सूर्य की ऊपर, नीचे और तिरछे प्रकाशित आदि करने की सीमा—सूर्य अपने विमान से सौ योजन ऊपर (ऊर्ध्व) क्षेत्र को तथा ८०० योजन नीचे के समतल भूभाग में भी हजार योजन नीचे अधोलोक ग्राम तक नीचे के क्षेत्र को और सर्वोत्कृष्ट (सबसे बड़े) दिन में चक्षु स्पर्श की अपेक्षा ४७२६३$\frac{21}{60}$ योजन तक तिरछे क्षेत्र को उद्योतित, प्रकाशित और तप्त करते हैं।[1]

मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर-बाहर के ज्योतिष्क देवों और इन्द्रों का उपपात-विरहकाल

४६. अंतो णं भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम सूरिय-गहगण णक्खत्त ताराख्वा ते णं भंते ! देवा किं उड्ढोववन्नगा ?

जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेसं जाव उक्कोसेणं छम्मासा।

[४६ प्र.] भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप देव हैं, वे क्या ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ?

[४६ उ.] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र में कहा गया है, उसी प्रकार 'उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास है', यहाँ तक कहना चाहिए।

४७. बहिया णं भंते ! माणुसुत्तरस्स० जहा—जीवाभिगमे जाव इंदट्ठाणे णं भंते ! केवतियं कालं उववाएणं विरहिए पन्नत्ते ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ अट्ठमसए अट्ठमो उद्देसो समत्तो ॥

[४७ प्र.] भगवन् ! मानुषोत्तरपर्वत के बाहर जो चन्द्रादि देव हैं, वे ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ? इत्यादि जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी, 'भगवन् ! इन्द्र-स्थान कितने काल तक उपपात-विरहित कहा गया है ?' तक कहना चाहिए।

[४७ उ.] गौतम ! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास बाद दूसरा इन्द्र उस स्थान पर उत्पन्न होता है। इतने काल तक इन्द्रस्थान उपपात-विरहित होता है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३९३

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्तं, (मूलपाठ टिप्पणयुक्त), पृ. ३७७-३७८

विवेचन—मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर बाहर के ज्योतिष्क देवों एवं इन्द्रों का उपपात विरह-काल—प्रस्तुत दो सूत्रों में से प्रथम सूत्र में मानुषोत्तरपर्वत के अन्दर के ज्योतिष्क देवों एवं इन्द्रों के उपपात-विरहकाल का और द्वितीयसूत्र में मानुषोत्तरपर्वत के बाहर के ज्योतिष्क देवों एवं इन्द्रों के उपपात-विरहकाल का जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक निरूपण है।[1]

॥ अष्टम शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. ३७८-३७९

(ख) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ३९३-३९४

(ग) जीवाभिगमसूत्र, प्रतिपत्ति ३, पत्रांक ३४५-३४६ (आगमोदय)

(अ) '(प्र.) कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा चारोववन्नगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावन्नगा?

(उ.) गोयमा! ते णं देवा नो उड्ढोववन्नगा, नो कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, चारोववन्नगा, नो चारट्ठिइया, गइरइया गइसमावन्नगा' इत्यादि।

(आ) (प्र.) इंदट्ठाणे णं भंते! केवइयं कालं विरहिए उववाएणं?,

(उ.) गोयमा! जहन्नेणं एक्कसमयं उक्कोसेणं छम्मासा त्ति।'

(इ) '(प्र.) जे चन्दिम... तेणं भंते! किं उड्ढोववन्नगा?

(उ.) गोयमा! ते णं देवा नो उड्ढोववन्नगा, नो कप्पोववन्नगा, विमाणोववन्नगा, नो चारोववन्नगा चारट्ठिइया, नो गइरइया, नो गइसमावन्नगा' इत्यादि।

नवमो उद्देसओ : 'बंध'

नवम उद्देशक : 'बध'

बध के दो प्रकार प्रयोगबध और विस्रसाबध

१ कइविहे ण भंते ! बधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे बधे पण्णत्ते, त जहा—पयोगबधे य वीससाबधे य ।

[१ प्र] भगवन् ! बध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! बध दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) प्रयोगबध और विस्रसाबध ।

विवेचन—बध के दो प्रकार प्रयोगबध और विस्रसाबध—प्रयोगबध—जो जीव के प्रयोग से अर्थात् मन, वचन और काय योगो की प्रवृत्ति से बधता है। विस्रसाबध—जो स्वाभाविक रूप से बधता है। बध का अर्थ यहाँ पुद्गलादिविषयक सम्बन्ध है।[1]

विस्रसाबध के भेद-प्रभेद और स्वरूप

२ वीससाबधे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—साईयवीससाबधे य अणाईयवीससाबधे य ।

[२ प्र] भगवन् ! विस्रसाबध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) सादिक विस्रसाबध और (२) अनादिक विस्रसाबध ।

३ अणाईयवीससाबधे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे, अधम्मत्थिकाय-अन्नमन्नअणादीयवीससाबधे, आगासत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे ।

[३ प्र] भगवन् ! अनादिक-विस्रसाबध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबध (२) अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबध और (३) आकाशास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबध ।

४ धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबधे ण भंते ! किं देसबधे सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे, नो सव्वबधे ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ३९४

[४ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबंध क्या देशबंध है या सर्वबंध है ?

[४ उ] गौतम ! वह देशबंध है, सर्वबंध नहीं ।

५ एवं अधम्मत्थिकायअन्नमन्नअणादीयवीससाबंधे वि, एवं आगासत्थिकायअन्नमन्नअणादीय वीससाबंधे वि ।

[५] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबंध एवं आकाशास्तिकाय के अन्योन्य-अनादिक विस्रसाबंध के विषय में भी समझ लेना चाहिए । (अर्थात्—ये भी देशबंध हैं, सर्वबंध नहीं ।)

६ धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वद्धं ।

[६ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक विस्रसाबंध कितने काल तक रहता है ?

[६ उ] गौतम ! सर्वाद्धा (सर्वकाल = सर्वदा) रहता है ।

७ एवं अधम्मत्थिकाए, एवं आगासत्थिकाये ।

[७] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादिक-विस्रसाबंध एवं आकाशास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विस्रसाबंध भी सर्वकाल रहता है ।

८ सादीयवीससाबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—बंधणपच्चइए भायणपच्चइए परिणामपच्चइए ।

[८ प्र] भगवन् ! सादिक-विस्रसाबंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है । जैसे—(१) बन्धनप्रत्ययिक, (२) भाजनप्रत्ययिक और (३) परिणामप्रत्ययिक ।

९ से किं तं बंधणपच्चइए ?

बंधणपच्चइए, जं णं परमाणुपुग्गला दुपएसिय-तिपएसिय-जाव दसपएसिय संखेज्जपएसिय असंखेज्जपएसिय-अणंतपएसियाणं खंधाणं वेमायनिद्धयाए वेमायलुक्खयाए वेमायनिद्ध-लुक्खयाए बंधणपच्चइएणं बंधे समुप्पज्जइ जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । से तं बंधणपच्चइए ।

[९ प्र] भगवन् ! बंधन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबंध किसे कहते हैं ?

[९ उ] गौतम ! परमाणु, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् दशप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक पुद्गल-स्कन्धों का विमात्रा (विषममात्रा) में स्निग्धता से, विमात्रा में रूक्षता से तथा विमात्रा में स्निग्धता-रूक्षता से बंधन-प्रत्ययिक बंध समुत्पन्न होता है । वह जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः असंख्येय काल तक रहता है । यह हुआ बंधन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबंध का स्वरूप ।

१० से किं त भायणपच्चइए ?

भायणपच्चइए, ज ण जुण्णसुरा जुण्णगुल जुण्णतदुलाण भायणपच्चइएण बधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल । से त्त भायणपच्चइए ।

[१० प्र] भगवन् ! भाजनप्रत्ययिक सादि-विस्रसाबध किसे कहते हैं ?

[१० उ] गौतम ! पुरानी सुरा (मदिरा), पुराने गुड, और पुराने चावलो का भाजन-प्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबध समुत्पन्न होता है । वह जघन्यत अन्तमुहूर्त्त और उत्कृष्टत सख्यात काल तक रहता है । यह है भाजनप्रत्ययिक-सादि विस्रसाबध का स्वरूप ।

११ से किं परिणामपच्चइए ?

परिणामपच्चइए, ज ण अब्भाण अब्भरुक्खाण जहा ततियसए (सु ३ उ ७ सु ४ [५]) जाव अमोहाण परिणामपच्चइएण बधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण छम्मासा । से त्त परिणामपच्चइए । से त्त सादीयवीससाबधे से त्त वीससाबधे ।

[११ प्र] भगवन् ! परिणामप्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबध किसे कहते हैं ?

[११ उ] गौतम ! (इसी शास्त्र के तृतीय शतक, उद्देशक ७, सू ४-५) मे जो बादलो (अभ्रो) का, अभ्रवृक्षो का यावत् अमोघो आदि के नाम कहे गए हैं, उन सबका परिणामप्रत्ययिक-(सादि-विस्रसा) बध समुत्पन्न होता है । वह बन्ध जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत छह मास तक रहता है । यह हुआ परिणामप्रत्ययिक-सादि-विस्रसाबध का स्वरूप और यह है विस्रसाबध का कथन ।

विवेचन—विस्रसाबध के भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप—प्रस्तुत दस सूत्रो (सू २ से ११ तक) मे विस्रसाबध के सादि-अनादिरूप दो भेद, तत्पश्चात् अनादिविस्रसाबध के तीन और सादि-विस्रसाबध के तीन भेदो के प्रकार और स्वरूप का निरूपण किया गया है ।

त्रिविध अनादिविस्रसाबध का स्वरूप—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय और आकाशास्ति-काय की अपेक्षा से अनादिविस्रसाबध तीन प्रकार का कहा गया है । धर्मास्तिकाय के प्रदेशो का उसी के दूसरे प्रदेशो के साथ साकल और कडी की तरह जो परस्पर एक देश से सम्बन्ध होता है, वह धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिविस्रसाबध कहलाता है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विस्रसाबध के विषय मे समझना चाहिए । धर्मास्तिकाय के प्रदेशो का परस्पर जो सम्बन्ध होता है, वह देशबध होता है, नीरक्षीरवत् सर्वबध नही । यदि सर्वबध माना जाएगा तो एक प्रदेश मे दूसरे समस्त प्रदेशो का समावेश हो जाने से धर्मास्तिकाय एक प्रदेशरूप ही रह जाएगा, असख्यप्रदेशरूप नही रहेगा, जो कि सिद्धान्त से असगत है । अत धर्मास्तिकाय आदि तीनो का परस्पर देशबध ही होता है, सर्वबध नही ।

त्रिविधसादिविस्रसाबध का स्वरूप—सादिविस्रसाबध के बधनप्रत्ययिक, भाजन प्रत्ययिक और परिणामप्रत्ययिक, ये तीन भेद कहे गए हैं । बधन अर्थात विवक्षित स्निग्धता आदि गुणो के निमित्त से परमाणुओ का जो बध सम्पन्न होता है, उसे बधनप्रत्ययिक बध कहते हैं, भाजन का अर्थ है—आधार । उसके निमित्त से जो बध सम्पन्न होता है, वह भाजनप्रत्ययिक है, जैसे—घडे मे

रखी हुई पुरानी मदिरा गाढी हो जाती है, पुराने गुड और पुराने चावलो का पिण्ड बध जाता है, वह भाजनप्रत्ययिकवध कहलाता है। परिणाम अर्थात् रूपान्तर (हो जाने) के निमित्त से जो बध होता है, उसे परिणाम-प्रत्ययिक बध कहते हैं।[1]

अमोघ शब्द का अर्थ—सूर्य के उदय और अस्त के समय उसकी किरणो का एक प्रकार का आकार 'अमोघ' कहलाता है।

बधनप्रत्ययिकबध का नियम—सामान्यतया स्निग्धता और रूक्षता से परमाणुओ का बध होता है। किस प्रकार होता है ? इसका नियम क्या है ? यह समझ लेना आवश्यक है। एक आचार्य ने इस विषय मे नियम बतलाते हुए कहा है—समान स्निग्धता या समान रूक्षता वाले स्कन्धो का बध नही होता, विषम स्निग्धता या विषम रूक्षता मे बध होता है। स्निग्ध या द्विगुणादि अधिक स्निग्ध के साथ तथा रूक्ष का द्विगुणादि अधिक रूक्ष के साथ बध होता है। स्निग्ध का रूक्ष के साथ जघन्यगुण को छोड कर सम या विषम बध होता है। अर्थात् एकगुण स्निग्ध या एकगुण रूक्षरूप जघन्य गुण को छोड कर शेष सम या विषम गुण वाले स्निग्ध या रूक्ष का परस्पर बध होता है। सम स्निग्ध का सम स्निग्ध के साथ तथा सम रूक्ष का सम रूक्ष के साथ बध नही होता। उदाहरणार्थ—एकगुण स्निग्ध का एकगुण स्निग्ध के साथ अथवा एकगुण स्निग्ध का दोगुण स्निग्ध के साथ बध नही होता है। दोगुण स्निग्ध का दोगुण स्निग्ध के साथ या तीनगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नही होता, किन्तु चारगुण स्निग्ध के साथ बध होता है। जिस प्रकार स्निग्ध के सम्बन्ध मे कहा, उसी प्रकार रूक्ष के विषय मे समझ लेना चाहिए। एकगुण को छोड कर परस्थान मे स्निग्ध और रूक्ष के परस्पर सम या विषम मे दोनो प्रकार के बध होते हैं। यथा—एकगुण स्निग्ध का एकगुण रूक्ष के साथ बध नही होता, किन्तु द्वयादि गुणयुक्त रूक्ष के साथ बध होता है, इसी तरह द्विगुण स्निग्ध का द्विगुण रूक्ष अथवा त्रिगुणरूक्ष के साथ बध होता है। इस प्रकार सम और विषम दोनो प्रकार के बध होते हैं।[2]

प्रयोगबन्ध प्रकार, भेद-प्रभेद तथा उनका स्वरूप

१२ से किं त पयोगबधे ?

पयोगबधे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए १, सादीए वा अपज्जवसिए २, सादीए वा सपज्जवसिए ३। तत्थ ण जे से अणाईए अपज्जवसिए से ण अट्ठण्ह जीवमज्झपएसाण।

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९५ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ३ पृ १४७३

२ (क) वही, पत्राक ३९५

(ख) समनिद्धयाए बन्धो न होई, समलुक्खयाए वि ण होइ।
वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण बन्धो उ खधाण ॥ १ ॥
निद्धस्स निद्धेण दुयाहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएण।
निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो, जहन्नवज्जो विसमो समो वा ॥ २ ॥

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ३९५ मे उद्धृत

(ग) स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्ध। न जघन्यगुणानाम्। गुणसाम्ये सदृशानाम्। बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ च।

—तत्त्वार्थसूत्र, अ ५

तत्थ वि ण तिण्ह तिण्ह अणाईए अपज्जवसिए, सेसाण साईए। तत्थ ण जे से सादीए अपज्जवसिए से ण सिद्धाण। तत्थ ण जे से साईए सपज्जवसिए से ण चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—आलावणबधे, अल्लियावणबधे, सरीरबधे, सरीरप्पयोगबधे।

[१२ प्र] भगवन्! प्रयोगबध किस प्रकार का है?

[१२ उ] गौतम! प्रयोगबध तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) अनादि-अपयवसित, (२) सादि-अपयवसित अथवा (३) सादि-सपयवसित। इनमे से जो अनादि-अपयवसित है, वह जीव के आठ मध्यप्रदेशो का होता है। उन आठ प्रदेशो मे भी तीन-तीन प्रदेशो का जो बध होता है, वह अनादि-अपयवसित बध है। शेष सभी प्रदेशो का सादि (-अपयवसित) बध है। इन तीनो मे से जो सादि-अपर्यवसित बध है, वह सिद्धो का होता है तथा इनमे से जो सादि-सपयवसित बध है, वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा (१) आलापनबध, (२) अल्लिकापन (आलीन) बध, (३) शरीरबध और (४) शरीरप्रयोगबध।

१३ से किं त आलावणबधे?

आलावणबधे, ज ण तणभाराण वा कट्ठभाराण वा पत्तभाराण वा पलालभाराण वा वेल्ल भाराण वा वेत्तलया वाग वरत्त रज्जु वल्लि-कुस-दब्भमादिएहि आलावणबधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। सत्त आलावणबधे।

[१३ प्र] भगवन्! आलापनबध किसे कहते है?

[१३ उ] गौतम! तृण (घास) के भार, काष्ठ के भार, पत्ता के भार, पलाल के भार और वेल के भार, इन भारो को वेत की लता, छाल वरत्रा (चमडे की बनी मोटी रस्सी=वरत), रज्जु (रस्सी), वेल, कुश और डाभ (नारियल की जटा) आदि से बाधने से आलापनबध समुत्पन्न होता है। यह बध जघन्यत अन्तमुहूर्त तक और उत्कृष्ट सख्येय काल तक रहता है। यह आलापनबध का स्वरूप है।

१४ से किं त अल्लियावणबधे?

अल्लियावणबधे चउव्विहे पन्नत्ते, त जहा—लेसणाबधे उच्चयबधे समुच्चयबधे साहणणाबधे।

[१४ प्र] भगवन्! अल्लिकापन (आलीन) बध किसे कहते है?

[१४ उ] गौतम! आलीनबध चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—श्लेषणाबध, उच्चयबध, समुच्चयबध और सहननबध।

१५ से किं त लेसणाबधे?

लेसणाबधे, ज ण कुड्डाण कुट्टिमाण खभाण पासायाण कट्ठाण चम्माण घडाण पडाण कडाण छुहा-चिक्खल्ल सिलेस-लक्ख महुसित्थमाईएहि लेसणएहि बधे समुप्पज्जइ, जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। से त्त लेसणाबधे।

[१५ प्र] भगवन् ! श्लेषणाबंध किसे कहते हैं ?

[१५ उ] गौतम ! श्लेषणाबंध इस प्रकार का है—जो कुड्यों (भित्तियों) का, कुट्टिमों (आंगन के फर्श) का, स्तम्भों का, प्रासादों का, काष्ठों का, चर्मों (चमड़ों) का, घड़ों का, वस्त्रों का और चटाइयों (कटों) का चूना, कीचड़ श्लेष (गोंद आदि चिपकाने वाले द्रव्य, अथवा वज्रलेप), लाख, मोम आदि श्लेषण द्रव्यों से बंध सम्पन्न होता है, वह श्लेषणाबंध कहलाता है।

यह बंध जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है। यह श्लेषणाबंध का कथन हुआ।

१६. से किं तं उच्चयबंधे ?

उच्चयबंधे, जं णं तणरासीण वा कट्ठरासीण वा पत्तरासीण वा तुसरासीण वा भुसरासीण वा गोमयरासीण वा अवगररासीण वा उच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। से त्तं उच्चयबंधे।

[१६ प्र] भगवन् ! उच्चयबंध किसे कहते हैं ?

[१६ उ] गौतम ! तृणराशि, काष्ठराशि, पत्रराशि, तुषराशि, भूसे का ढेर, गोबर (या उपलों) का ढेर अथवा कूड़े-कचरे का ढेर, इनका ऊँचे ढेर (पुंज = संचय) रूप से जो बंध सम्पन्न होता है, उसे उच्चयबंध कहते हैं। यह बंध जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः संख्यातकाल तक रहता है। इस प्रकार उच्चयबंध का कथन किया गया है।

१७. से किं तं समुच्चयबंधे ?

समुच्चयबंधे, जं णं अगड-तडाग-नदी-दह-वावी-पुक्खरणी-दीहियाणं गुंजालियाणं सराणं सरपंतिआणं सरसरपंतियाणं बिलपंतियाणं देवकुल-सभा-पवा-थूभ-खाइयाणं फरिहाणं पागार-ट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-तोरणाणं पासाय-घर-सरण-लेण-आवणाणं सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहमादीणं छुहा-चिक्खल्ल-सिलेससमुच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। से त्तं समुच्चयबंधे।

[१७ प्र] भगवन् ! समुच्चयबंध किसे कहते हैं ?

[१७ उ] गौतम ! कुआ, तालाब, नदी, द्रह, वापी (बावड़ी), पुष्करिणी (कमलों से युक्त वापी), दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, बड़े सरोवरों की पंक्ति, बिलों की पंक्ति, देवकुल (मन्दिर), सभा, प्रपा (प्याऊ) स्तूप, खाई, परिखा (परिघा), प्राकार (किला या कोट), अट्टालक (अटारी, किले पर का कमरा या गढ़), चरक (गढ़ और नगर के मध्य का मार्ग), द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद (महल), घर, शरणस्थान, लयन (गृहविशेष), आपण (दूकान), शृंगाटक (सिंघाड़े के आकार का मार्ग), त्रिक (तिराहा), चतुष्क (चौराहा), चत्वरमार्ग, (चौपड़—बाजार का मार्ग), चतुर्मुख मार्ग और राजमार्ग (बड़ी और चौड़ी सड़क) आदि का चूना, (गीली) मिट्टी, कीचड़ एवं श्लेष (वज्रलेप आदि) के द्वारा समुच्चयरूप से जो बंध समुत्पन्न होता है, उसे समुच्चयबंध कहते हैं। उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येयकाल की है। इस प्रकार समुच्चयबंध का कथन पूर्ण हुआ।

१८ से किं तं साहणणाबंधे ?

साहणणाबंधे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—देससाहणणाबंधे य सव्वसाहणणाबंधे य।

[१८ प्र.] भगवन् ! संहननबंध किसे कहते हैं ?

[१८ उ.] गौतम ! संहननबंध दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) देश-संहननबंध और (२) सर्वसंहननबंध।

१९ से किं तं देससाहणणाबंधे ?

देससाहणणाबंधे, जं णं सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिया-लोही-लोहकडाह-कडच्छुअ-आसण-सयण-खंभ-भंड-मत्त-उवगरणमाईणं देससाहणणाबंधे समुप्पज्जइ, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। से त्तं देससाहणणाबंधे।

[१९ प्र.] भगवन् ! देशसंहननबंध किसे कहते हैं ?

[१९ उ.] गौतम ! शकट (गाड़ी), रथ, यान (छोटी गाड़ी), युग्य वाहन (दो हाथ प्रमाण वेदिका से उपशोभित जम्पान=पालखी), गिल्लि (हाथी की अम्बाडी), थिल्लि (पलाण), शिविका (पालखी), स्यन्दमानी (पुरुष प्रमाण वाहन विशेष, म्याना), लोढी, लोहे की कड़ाही, कुड़छी, (चमचा बड़ा या छोटा), आसन, शयन, स्तम्भ, भाण्ड (मिट्टी के बर्तन), पात्र नाना उपकरण आदि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध सम्पन्न होता है, वह देशसंहननबंध है। वह जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टतः संख्येय काल तक रहता है। यह है देशसंहननबंध का स्वरूप।

२० से किं तं सव्वसाहणणाबंधे ?

सव्वसाहणणा बंधे, से णं खीरोदगमाईणं। से त्तं सव्वसाहणणाबंधे। से त्तं साहणणाबंधे। से त्तं अल्लियावणबंधे।

[२० प्र.] भगवन् ! सर्वसंहननबंध किसे कहते हैं ?

[२० उ.] गौतम ! दूध और पानी आदि की तरह एकमेक हो जाना सर्वसंहननबंध कहलाता है। इस प्रकार सर्वसंहननबंध का स्वरूप है। यह आलीनबंध का कथन हुआ।

२० से किं तं सरीरबंधे ?

सरीरबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुव्वप्पओगपच्चइए य पडुप्पन्नप्पओगपच्चइए य।

[२१ प्र.] भगवन् ! शरीरबंध किस प्रकार का है ?

[२१ उ.] गौतम ! शरीरबंध दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिक और (२) प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिक।

२२ से किं तं पुव्वप्पओगपच्चइए ?

पुव्वप्पओगपच्चइए, जं णं नेरइयाईणं संसारत्थाणं सव्वजीवाणं तत्थ तत्थ तेसु तेसु कारणेसु समोहण्णमाणाणं जीवप्पदेसाणं बंधे समुप्पज्जइ। से त्तं पुव्वप्पयोगपच्चइए।

[२२ प्र] भगवन् ! पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध किसे कहते हैं ?

[२२ उ] गौतम ! जहां-जहां जिन-जिन कारणों से समुद्घात करते हुए नैरयिक जीवों और संसारस्थ सर्वजीवों के जीवप्रदेशों का जो बंध सम्पन्न होता है, वह पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध कहलाता है। यह है पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकबंध ।

२३. से किं तं पडुप्पन्नपयोगपच्चइए ?

पडुप्पन्नप्पयोगपच्चइए, जं णं केवलनाणिस्स अणगारस्स केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स, ताओ समुग्घायाओ पडिनियत्तमाणस्स, अंतरा मंथे वट्टमाणस्स तेया-कम्माणं बंधे समुप्पज्जइ । किं कारणं ?

ताहे से पएसा एगत्तीगया भवंति त्ति । से त्तं पडुप्पन्नप्पयोगपच्चइए । से त्तं सरीरबंधे ।

[२३ प्र] भगवन् ! प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिक किसे कहते हैं ?

[२३ उ] गौतम ! केवलीसमुद्घात द्वारा समुद्घात करते हुए और उस समुद्घात से प्रतिनिवृत्त होते (वापस लौटते) हुए बीच के मार्ग (मन्थानावस्था) में रहे हुए केवलज्ञानी अनगार के तैजस और कार्मण शरीर का जो बंध सम्पन्न होता है, उसे प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकबंध कहते हैं। [प्र] (तैजस और कार्मण शरीर के बंध का) क्या कारण है ? [उ] उस समय (आत्म) प्रदेश एकत्रीकृत (संघातरूप) होते हैं, जिससे (तैजस-कार्मण शरीर का) बंध होता है। यह हुआ प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकबंध का स्वरूप। यह शरीरबंध का कथन हुआ।

विवेचन—प्रयोगबंध : प्रकार और भेद-प्रभेद तथा उनका स्वरूप—प्रस्तुत १२ सूत्रों (सू. १२ से २३ तक) में प्रयोगबंध के तीन भंग तथा सादि सपर्यवसितबंध के चार भेद एवं उनके प्रभेद और स्वरूप का वर्णन किया है।

प्रयोगबंध—स्वरूप और जीवों की दृष्टि से प्रकार—जीव के व्यापार से जो बंध होता है, वह प्रयोगबंध कहलाता है। प्रयोगबंध के तीन विकल्प हैं—(१) अनादि-अपर्यवसित—जीव के असंख्यात प्रदेशों में से मध्य के आठ (रुचक) प्रदेशों का बंध अनादि-अपर्यवसित है। जब केवली समुद्घात करते हैं, तब उनके प्रदेश समग्रलोकव्यापी हो जाते हैं, उस समय भी वे आठ प्रदेश तो अपनी स्थिति में ही रहते हैं। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। उनकी स्थापना इस प्रकार है—[∴∵] नीचे ये चार प्रदेश हैं, और इनके ऊपर चार प्रदेश हैं। इस प्रकार समुदायरूप से ८ प्रदेशों का बंध है। पूर्वोक्त ८ प्रदेशों में भी प्रत्येक प्रदेश का अपने पास रहे हुए दो प्रदेशों के साथ तथा ऊपर या नीचे रहे हुए एक प्रदेश के साथ, इस प्रकार तीन-तीन प्रदेशों के साथ भी अनादि-अपर्यवसित बंध है। शेष सभी प्रदेशों का सयोगी अवस्था तक सादि-सपर्यवसित नामक तीसरा विकल्प है तथा सिद्ध जीवों के प्रदेशों का सादि-अपर्यवसित बंध है। प्रस्तुत चार भंगों (विकल्पों) में से दूसरे भंग (अनादि-सपर्यवसित) में बंध नहीं होता।

सादि-सपर्यवसित बंध के चार भेद हैं—(१) आलापनबंध—(रस्सी आदि से घास आदि को बांधना), (२) आलीनबंध—(लाख आदि एक श्लेष्य पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ बंध होना), (३) शरीरबंध—(समुद्घात करते समय विस्तारित और संकोचित जीव-प्रदेशों के सम्बन्ध से तैजसादि शरीर-प्रदेशों का सम्बन्ध होना), (४) शरीरप्रयोगबंध—(औदारिकादि शरीर की

प्रवृत्ति से शरीर के पुदगलो को ग्रहण करने रूप बध) इसके पश्चात आलीनबध के श्लेषणादिबध के रूप मे ४ भेद तथा उनका स्वरूप मूलपाठ मे बतला दिया गया है।

सहननबध दो रूप—विभिन्न पदार्थों के मिलने से एक आकार का पदार्थ बन जाना, सहननबध है। पहिया, जूआ आदि विभिन्न अवयव मिलकर जैसे गाडी का रूप धारण कर लेते हैं, वसे ही किसी वस्तु के एक अश के साथ, किसी अन्य वस्तु का अश रूप से सम्बन्ध होना—जुड जाना, देशसहननबध है और दूध पानी की तरह एकमेक हो जाना, सर्वसहननबध है।

शरीरबध दो भेद—वेदना, कषाय आदि समुदघातरूप जीवव्यापार मे होने वाला जीव-प्रदेशो का बध, अथवा जीवप्रदेशाश्रित तैजस कार्मणशरीर का बध पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिक-शरीरबध है, तथा वर्तमानकाल मे केवलीसमुद्घात रूप जीवव्यापार से होने वाला तैजस-कार्मणशरीर का बध, प्रत्युत्पन्नप्रयोग प्रत्ययिक शरीरबध है।[1]

शरीरप्रयोगबध के प्रकार एव औदारिकशरीरप्रयोगबध के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओ से निरूपण

२४ से किं त सरीरप्पयोगबधे ?

सरीरप्पयोगबधे पचविहे पन्नत्ते, त जहा—ओरालियसरीरप्पओगबधे वेउव्वियसरीरप्पओग-बधे आहारगसरीरप्पओगबधे तेयासरीरप्पयोगबधे कम्मासरीरप्पयोगबधे।

[२४ प्र] भगवन्! शरीरप्रयोगबध कितने प्रकार का कहा गया है?

[२४ उ] गौतम! शरीरप्रयोगबध पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) औदारिकशरीरप्रयोगबध, (२) वैक्रियशरीरप्रयोगबध, (३) आहारकशरीरप्रयोगबध, (४) तैजसशरीरप्रयोगबध और (५) कार्मणशरीरप्रयोगबध।

२५ ओरालियसरीरप्पयोगबधे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! पचविहे पन्नत्ते, त जहा—एगिदियओरालियसरीरप्पयोगबधे बेइदियओरालिय-सरीरप्पयोगबधे जाव पचिदियओरालियसरीरप्पयोगबधे।

[२५ प्र] भगवन्! औदारिक शरीरप्रयोगबध कितने प्रकार का कहा गया है?

[२५ उ] गौतम! वह पाच प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) एकेन्द्रिय औदारिक-शरीरप्रयोगबध, (२) द्वीन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबध, यावत् (३) त्रीन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोग-बध, (४) चतुरिन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगबध और (५) पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोग बध।

२६ एगिदियओरालियसरीरप्पयोगबधे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—पुढविक्काइयएगिदियओरालियसरीरप्पयोगबधे, एव एएण अभिलावेण भेदा जहा ओगाहणसठाणे ओरालियसरीरस्स तहा भाणियव्वा जाव पज्जत्तगब्भ

1 भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ३९४

वक्कतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे य अपज्जत्तगब्भवक्कंतियमणूसपंचिंदियओरालिय सरीरप्पयोगबंधे य ।

[२६ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२६ उ] गौतम ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगबंध पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार —पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध इत्यादि । इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जसे प्रज्ञापनासूत्र के (इक्कीसवें) 'अवगाहना-सस्थान-पद' मे औदारिकशरीर के भेद कहे गए हैं, वैसे यहाँ भी *पर्याप्त गर्भज मनुष्य-पञ्चेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध और अपर्याप्त गर्भज-मनुष्य-पचेन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध'* तक कहना चाहिए ।

२७ ओरालियसरीरप्पयोगबंधे ण भंते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्म च जोग च भव च आउय च पडुच्च ओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएण ओरालियसरीरप्पयोगबंधे ।

[२७ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कम के उदय से होता है ?

[२७ उ] गौतम ! सवीयता, सयोगता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद के कारण, कम, योग, भव और आयुष्य आदि हेतुओ की अपक्षा से औदारिकशरीर-प्रयोगनामकम के उदय से औदारिकशरीर-प्रयोगबंध होता है ।

२८ एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे ण भंते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

एव चेव ।

[२८ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कम के उदय से होता है ?

[२८ उ] *गौतम ! पूर्वोक्त-कथनानुसार यहाँ भी जानना चाहिए ।*

२९ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे एव चेव ।

[२९] इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध के विषय में कहना चाहिए ।

३० *एव जाव वणस्सइकाइया । एव बेइंदिया । एव तेइंदिया । एव चउरिंदिया ।*

[३०] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध तक कहना चाहिए ।

३१ तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे ण भंते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

एव चेव ।

[३१ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कम के उदय से होता है ?

[३१ उ] गौतम ! (इस विषय म भी) पूर्वोक्त कथनानुसार जानना चाहिए ।

३२ मणुस्सपंचिदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे ण भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए पमादपच्चया जाव आउयं च पडुच्च मणुस्सपंचिदिय-ओरालियसरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं मणुस्सपंचिदियओरालियसरीरप्पओगबंधे ।

[३२ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[३२ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से तथा प्रमाद के कारण यावत् आयुष्य की अपेक्षा से एवं मनुष्य-पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-नामकर्म के उदय से मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध होता है ।

३३ ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे वि सव्वबंधे वि ।

[३३ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबंध क्या देशबंध या सर्वबंध है ?

[३३ उ] गौतम ! वह देशबंध भी है और सर्वबंध भी है ।

३४ एगिदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबंधे ?

एवं चेव ।

[३४ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध क्या देशबंध है या सर्वबंध है ?

[३४ उ] गौतम ! पूर्वोक्त कथनानुसार यहाँ भी जानना चाहिए ।

३५ एवं पुढविकाइया ।

[३५] इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध के विषय में समझना चाहिए ।

३६ एवं जाव मणुस्सपंचिदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि ।

[३६ प्र] इसी प्रकार यावत् भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध क्या देशबंध है या सर्वबंध है ?

[३६ उ] गौतम ! वह देशबंध भी है और सर्वबंध भी है—यहाँ तक कहना चाहिए ।

३७ ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं ।

[३७ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर-प्रयोगबंध काल की अपेक्षा, कितने काल तक रहता है ?

[३७ उ] गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तीन पल्योपम तक रहता है ।

३८ एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समऊणाइं ।

[३८ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध कालतः कितने काल तक रहता है ?

[३८ उ] गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम २२ हजार वर्ष तक रहता है ।

३९ पुढविकाइयएगिंदिय० पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समऊणाइं ।

[३९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबंध कालतः कितने काल तक रहता है ?

[३९ उ] गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लक भवग्रहण तथा उत्कृष्टतः एक समय कम २२ हजार वर्ष तक रहता है ।

४० एवं सव्वेसिं सव्वबंधो एक्कं समयं, देसबंधो जेसिं नत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं जा जस्स उक्कोसिया ठिती सा समऊणा कायव्वा । जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं देसबंधो जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समऊणा कायव्वा जाव मणुस्साणं देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं ।

[४०] इस प्रकार सभी जीवों का सर्वबंध एक समय तक रहता है । जिनके वैक्रियशरीर नहीं है, उनका देशबंध जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण पर्यन्त और उत्कृष्टतः जिस जीव की जितनी उत्कृष्टतः आयुष्य-स्थिति है, उससे एक समय कम तक रहता है । जिनके वैक्रियशरीर है, उनके देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः जिसकी जितनी (आयुष्य) स्थिति है, उसमें से एक समय कम तक रहता है । इस प्रकार यावत् मनुष्यों का देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तीन पल्योपम तक जानना चाहिए ।

४१ ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ।

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडिसमयाहियाइं । देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं तिसमयाहियाइं ।

[४१ प्र] भगवन् ! औदारिकशरीर के बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[४१ उ] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण पर्यन्त और उत्कृष्टतः समयाधिक पूर्वकोटि तथा तेतीस सागरोपम है । देशबंध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः तीन समय अधिक तेतीस सागरोपम है ।

४२ एगिंदियओरालिय० पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयाहियाइं । देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

[४२ प्र.] भगवन् ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-बंध का अन्तर काल कितने का है ?

[४२ उ.] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण पर्यन्त है और उत्कृष्टतः एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है । देशबंध का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का है ।

४३ पुढविक्काइयएगिंदिय० पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्वं, देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि समया ।

[४३ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरबंध का अन्तर कितने काल का है ?

[४३ उ.] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय का कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए । देशबंध का अन्तर जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः तीन समय का है ।

४४ जहा पुढविक्काइयाणं एवं जाव चउरिंदियाणं वाउक्काइयवज्जाणं, नवरं सव्वबंधंतरं उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समयाहिया कायव्वा । वाउक्काइयाणं सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं समयाहियाइं । देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

[४४] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का शरीरबंधान्तर कहा गया है, उसी प्रकार वायुकायिक जीवों को छोड़ कर चतुरिन्द्रिय तक सभी जीवों का शरीरबंधान्तर करना चाहिए, किन्तु विशेषतः उत्कृष्ट सर्वबंधान्तर जिस जीव की जितनी (आयुष्य) स्थिति हो, उससे एक समय अधिक कहना चाहिए । (अर्थात्—सर्वबंध का अन्तर समयाधिक आयुष्यस्थिति-प्रमाण जानना चाहिए ।) वायुकायिक जीवों के सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्टतः समयाधिक तीन हजार वर्ष का है । इनके देशबंध का अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है ।

४५ पंचिंदियतिरिक्खजोणियओरालिय० पुच्छा । सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी समयाहिया, देसबंधंतरं जहा एगिंदियाणं तहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं ।

[४५ प्र.] भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-औदारिकशरीरबंध का अन्तर कितने काल का कहा गया है ?

[४५ उ.] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण है

और उत्कृष्टत समयाधिक पूर्वकोटि का है। देशबंध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय जीवो का कहा गया, उसी प्रकार सभी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको का कहना चाहिए।

४६ एव मणुस्साण वि निरवसेस भाणियव्व जाव उक्कोसेण अतोमुहुत्त।

[४६] इसी प्रकार मनुष्यो के शरीरबधान्तर के विषय मे भी पूर्ववत् 'उत्कृष्टत अन्तमुहूर्त का है' यहाँ तक सारा कथन करना चाहिए।

४७ जीवस्स ण भते! एगिदियत्ते णोएगिदियत्ते पुणरवि एगिदियत्ते एगिदियओरालिय सरीरप्पओगबधतर कालओ केवच्चिर होइ?

गोयमा! सव्वबधतर जहन्नेण दो खुड्डागभवग्गहणाइ तिसमयूणाइ, उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइ, देसबधतर जहन्नेण खुड्डाग भवग्गहण समयाहिय, उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइ।

[४७ प्र] भगवन्! एकेन्द्रियावस्थागत जीव (एकेन्द्रियत्व को छोड कर) नोएकेन्द्रियावस्था (किसी दूसरी जाति) मे रह कर पुन एकेन्द्रियरूप (एकेन्द्रियजाति) मे आए तो एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर-प्रयोगबध का अन्तर कितने काल का होता है?

[४७ उ] गौतम! (ऐसे जीव का) सर्वबधान्तर जघन्यत तीन समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण काल और उत्कृष्टत सख्यातवर्ष-अधिक दो हजार सागरोपम का होता है।

४८ जीवस्स ण भते! पुढविकाइयत्ते नोपुढविकाइयत्ते पुणरवि पुढविकाइयत्ते पुढविकाइय एगिदियओरालियसरीरप्पओगबधतर कालओ केवच्चिर होइ?

गोयमा! सव्वबधतर जहन्नेण दो खुड्डाइ भवग्गहणाइ तिसमयऊणाइ, उक्कोसेण अणत काल, अणता उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते ण पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असखेज्जइभागो। देसबधतर जहन्नेण खुड्डागभवग्गहण समयाहिय, उक्कोसेण अणत काल जाव आवलियाए असखेज्जइभागो।

[४८ प्र] भगवन्! पृथ्वीकायिक-अवस्थागत जीव नोपृथ्वीकायिक-अवस्था मे (पृथ्वीकाय को छोड कर अन्य किसी काय मे) उत्पन्न हो, (वहाँ रह कर) पुन पृथ्वीकायिकरूप (पृथ्वीकाय) मे आए, तो पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबध का अन्तर कितने काल का होता है?

[४८ उ] गौतम! (ऐसे जीव का) सर्वबधान्तर जघन्यत तीन समय कम दो क्षुल्लकभव ग्रहण काल और उत्कृष्टत अनन्तकाल होता है। कालत अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है, क्षेत्रत अनन्त लोक, असख्येय पुद्गल-परावर्तन हैं। वे पुद्गल-परावर्तन आवलिका के असख्यातवें भाग-प्रमाण हैं। (अर्थात्—आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय हैं, उतने पुद्गल-परावर्तन हैं।) देशबध का अन्तर जघन्यत समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहणकाल और उत्कृष्टत अनन्तकाल, यावत् 'आवलिका के असख्यातवें भाग-प्रमाण पुद्गल-परावर्तन हैं', जानना चाहिए।

४९ जहा पुढविक्काइयाण एव वणस्सइकाइयवज्जाण जाव मणुस्साण । वणस्सइकाइयाण दोण्णि खुड्डाइ एव चेव, उक्कोसेण असखिज्ज काल, असखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असखेज्जा लोगा । एव देसबधतर पि उक्कोसेण पुढवीकालो ।

[४९] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवो का प्रयोगवधान्तर कहा गया है, उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो को छोडकर यावत् मनुष्यो के प्रयोगवधान्तर तक (सभी जीवो के विषय मे) समझना चाहिए। वनस्पतिकायिक जीवो के सवबध का अन्तर जघन्यत काल की अपेक्षा से तीन समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण काल और उत्कृष्टत असख्येयकाल है, अथवा असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है, क्षेत्रत असख्येय लोक है । इसी प्रकार देशबध का अन्तर भी जघन्यत समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण का है और उत्कृष्टत पृथ्वीकायिक स्थितिकाल है, (अर्थात्—असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल यावत् असख्येय लोक है ।)

५० एएसि ण भते ! जीवाण ओरालियसरीरस्स देसबधगाण सव्वबधगाण अबधगाण य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ? सव्वत्थोवा जीवा ओरालियसरीरस्स सव्वबधगा अबधगा विसेसाहिया, देसबधगा असखेज्जगुणा ।

[५० प्र] भगवन् ! औदारिक शरीर के इन देशबधक सवबधक और अबधक जीवो मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[५० उ] गौतम ! सबसे थोडे (अल्प) औदारिकशरीर के सर्वबधक जीव है उनसे अबधक जीव विशेषाधिक हैं और उनसे देशबधक जीव असख्यात गुणे है ।

विवेचन—शरीरप्रयोगबध के प्रकार एव औदारिकशरीरप्रयोगबध के सम्बन्ध मे विभिन्न पहलुओ से निरूपण—प्रस्तुत २७ सूत्रो (सू २४ से ५० तक) मे शरीरप्रयोगबध के विषय मे निम्नोक्त तथ्यो का निरूपण किया गया है—

१ औदारिक आदि के भेद से शरीरप्रयोगबध पाच प्रकार का है ।

२ एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक औदारिकशरीरप्रयोगबध पाच प्रकार का है ।

३ एकेन्द्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबध पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक पाच प्रकार का है ।

४ द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त गर्भज मनुष्य तक औदारिकशरीरप्रयोग-बध समझना चाहिए ।

५ समस्त जीवो के औदारिकशरीरप्रयोगबध वीर्य, योग, सद्द्रव्य एव प्रमाद के कारण कर्म, योग, भव और आयुष्य की अपेक्षा औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से होता है ।

६ समस्त जीवो के औदारिकशरीरप्रयोगबध देशबध भी है, सर्वबध भी ।

७ समस्त जीवों के औदारिकशरीरप्रयोगबध की कालत स्थिति की सीमा ।

८ समस्त जीवो के सर्व-देशबध की अपेक्षा कालत औदारिकशरीरबध के अन्तरकाल की सीमा ।

९ समस्त जीवो द्वारा अपने एकेन्द्रियादि पूर्वरूप को छोडकर अन्य रूपो मे उत्पन्न हो या रह कर, पुन उसी अवस्था (रूप) मे आने पर औदारिकशरीर-प्रयोगबधान्तरकाल की सीमा है।

१० औदारिकशरीर के देशबधक, सर्वबधक और अबधक जीवो का अल्प-बहुत्व।

औदारिकशरीर प्रयोगबध के आठ कारण—जिस प्रकार प्रासादनिर्माण मे द्रव्य, वीर्य सयोग, योग, (मन-वचन-काया का व्यापार), शुभकर्म (का उदय), आयुष्य, भव (तिर्यंच-मनुष्यभव) और काल (तृतीय-चतुर्थ-पचम आरा), इन कारणो की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार औदारिकशरीर बध मे भी निम्नोक्त ८ कारण अपेक्षित है—(१) सवीर्यता—वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न शक्ति, (२) सयोगता—योगयुक्तता (३) सद्द्रव्यता—जीव के तथारूप औदारिकशरीरयोग्य तथाविध पुद्गलो—(द्रव्यो) की विद्यमानता (४) प्रमाद—शरीरोत्पत्तियोग्य विषय-कषायादि प्रमाद (५) कर्म—तिर्यञ्चमनुष्यादि जातिनामकर्म, (६) योग—काययोगादि (७) भव—तिर्यञ्च एव मनुष्य का अनुभूयमान भव और (८) आयुष्य—तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्य। इन ८ कारणो से उदयप्राप्त औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्म से औदारिकशरीर-प्रयोगबध होता है। प्रस्तुत प्रसग मे मूल प्रश्न है—औदारिकशरीरप्रयोगबध के कारणभूत कर्मोदय के सम्बन्ध मे, अत इस प्रश्न का उत्तर तो यही होना चाहिए—औदारिकशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से यह होता है, किन्तु मूलपाठ मे जो ८ कारण बताए हैं, वे इस मुख्य कारण—नामकर्म के सहकारी कारण हैं, जो औदारिकशरीर-प्रयोगबध मे आवश्यक हैं, यही इस सूत्र का आशय है।

औदारिकशरीर-प्रयोगबध के दो रूप सर्वबध, देशबध—जिस प्रकार घृतादि से भरी हुई एव अग्नि से तपी हुई कडाही मे जब मालपूआ डाला जाता है, तो प्रथम समय मे वह घृतादि को केवल ग्रहण करता (खींचता) है, तत्पश्चात् शेष समयो मे वह घृतादि को ग्रहण भी करता है और छोडता भी है, उसी प्रकार यह जीव जब पूर्वशरीर को छोड कर अन्य शरीर को धारण करता है, तब प्रथम समय मे उत्पत्तिस्थान मे रहे हुए उस शरीर के योग्य पुद्गलो को केवल ग्रहण करता है। इस प्रकार का यह बध—'सर्वबध' है। तत्पश्चात् द्वितीय आदि समयो मे शरीरयोग्य पुद्गलो को ग्रहण भी करता है और छोडता भी है, अत यह बध देशबध है। इसलिए यहाँ कहा गया है कि औदारिकशरीरप्रयोगबध सर्वबध भी होता है, देशबध भी। जो सर्वबध होता है, वह केवल एक समय का होता है। मालपूए के पूर्वोक्त दृष्टान्तानुसार जब वायुकायिक या मनुष्यादि जीव वैक्रिय शरीर करके उसे छोड देता है, तब छोडने के बाद औदारिकशरीर का एक समय तक सर्वबध करता है, तत्पश्चात् दूसरे समय मे वह देशबध करता है। दूसरे समय मे यदि उसका मरण हो जाए तो इस अपेक्षा से देशबध जघन्य एक समय का होता है। औदारिकशरीरधारी जीवो की उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति तीन पल्योपम की है। इसमे से जीव प्रथम समय मे सर्वबधक और उसके बाद एक समय कम तीन पल्योपम तक देशबधक रहता है। इस दृष्टि से समस्त जीवो की अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति के अनुसार एक समय तक वे सर्वबधक और फिर देशबधक रहते हैं। जैसे—एकेन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयुस्थिति २२ हजार वर्ष की है। उसमे से १ समय तक वे सर्वबधक और फिर १ समय कम २२ हजार वर्ष तक वे देशबधक रहते हैं।

उत्कृष्ट देशबध—जिसकी जितनी उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति होती है, उसका देशबध उसमे एक समय कम होता है। जैसे—अप्काय की ७००० वर्ष, तेजस्काय की ३ अहोरात्र, वनस्पतिकाय की

१०००० वर्ष, द्वीन्द्रिय की १२ वर्ष, त्रीन्द्रिय की ४९ दिन, चतुरिन्द्रिय की ६ मास की उत्कृष्ट आयु-स्थिति होती है।

क्षुल्लकभवग्रहण का आशय—अपनी-अपनी काय और जाति में जो छोटे-से-छोटा भव हो, उसे क्षुल्लकभव कहते हैं। एक अन्तमुहूर्त में सूक्ष्मनिगोद के ६५५३६ क्षुल्लकभव होते हैं, एक-श्वासोच्छ्वास में १७ से कुछ अधिक क्षुल्लकभव होते हैं। पृथ्वीकाय के एक मुहूर्त में १२८२४ क्षुल्लकभव होते हैं। अप्काय में चतुरिन्द्रिय जीवों तक का देशबन्ध जघन्य ३ समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण तक है। क्योंकि उनमें भी वैक्रियशरीर नहीं होता।

औदारिकशरीर के सर्वबंध और देशबंध का अन्तरकाल—समुच्चय जीवों की अपेक्षा औदारिकशरीरबंध का सामान्य अन्तर—सर्वबंध का अन्तर—तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण पर्यन्त बताया है, उसका आशय यह है कि कोई जीव तीन समय की विग्रहगति से औदारिकशरीर-धारी जीवों में उत्पन्न हुआ तो वह विग्रहगति के दो समय में अनाहारक रहता है और तीसरे समय में सर्वबंधक होता है। यदि क्षुल्लकभव तक जीवित रह कर मृत्यु को प्राप्त हो गया और औदारिक शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हुआ तो वहाँ पहले समय में वह सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंध का सर्वबंध के साथ जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण होता है। उत्कृष्ट अन्तर समयाधिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम का बताया है। उसका आशय यह है कि कोई जीव मनुष्य आदि गति में अविग्रहगति से आकर उत्पन्न हुआ। वहाँ प्रथम समय में वह सर्वबंधक रहा। तत्पश्चात् पूर्वकोटि तक जीवित रहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ, वहाँ से वह ३३ सागरोपम की स्थितिवाला नैरयिक हुआ, अथवा अनुत्तरविमानवासी सर्वार्थसिद्ध देव हुआ। वहाँ से च्यव (या मर) कर वह तीन समय की विग्रहगति द्वारा आकर औदारिकशरीरधारी जीव हुआ। वह जीव विग्रहगति में दो समय तक अनाहारक रहा और तीसरे समय में औदारिकशरीर का सर्वबंधक रहा। विग्रहगति में जो वह अनाहारक दो समय तक रहा था, उनमें से एक समय पूर्वकोटि के सर्वबंधक के स्थान में डाल दिया जाए तो वह पूर्वकोटि पूर्ण हो जाती है, उस पर एक समय अधिक बचा हुआ रहता है। यों सर्वबंध का परस्पर उत्कृष्ट अन्तर एक समयाधिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम होता है।

औदारिकशरीर के देशबंध का अन्तर—जघन्य एक समय है, क्योंकि देशबंधक मर कर अविग्रह से प्रथम समय में सर्वबंधक होकर पुनः द्वितीयादि समयों में देशबंधक हो जाता है। इस प्रकार देशबंधक का देशबंधक के साथ अन्तर जघन्यतः एक समय का होता है। उत्कृष्टतः अन्तर तीन समय अधिक ३३ सागरोपम का है। क्योंकि देशबंधक मर कर ३३ सागरोपम की स्थिति के नैरयिकों या देवों में उत्पन्न हो गया। वहाँ से च्यवकर तीन समय की विग्रहगति से औदारिकशरीर-धारी जीवों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार विग्रहगति में दो समय तक अनाहारक रहा, तीसरे समय में सर्वबंधक हुआ और फिर देशबंधक हो गया। इस प्रकार देशबंधक का उत्कृष्ट अन्तर ३ समय अधिक ३३ सागरोपम का घटित होता है।

आगे के तीन सूत्रों में एकेन्द्रियादि का कथन करते हुए औदारिकशरीरबंध का अन्तर विशेषरूप से बताया गया है।

प्रकारान्तर से औदारिकशरीरबंध का अन्तर—कोई एकेन्द्रिय जीव तीन समय की विग्रह-गति से उत्पन्न हुआ, तो वह विग्रहगति में दो समय तक अनाहारक रहा और तीसरे समय में सर्व-बंधक हुआ। फिर तीन समय कम क्षुल्लकभव-प्रमाण आयुष्य पूर्ण करके एकेन्द्रिय में सिवाय

द्वीन्द्रियादि जाति मे उत्पन्न हो जाय तो वहाँ भी क्षुल्लकभव की स्थिति पूर्ण करके अविग्रहगति द्वारा पुन एकेन्द्रिय जाति मे उत्पन्न हो तो प्रथम समय मे वह सर्वबंधक रहता है। इस प्रकार सर्वबंध का जघन्य अन्तर तीन समय कम दो क्षुल्लकभव होता है। कोई पृथ्वीकायिक जीव अविग्रहगति द्वारा उत्पन्न हो तो प्रथम समय मे वह सर्वबंधक होता है। वहाँ २२,००० वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति पूर्ण करके मर कर त्रसकायिक जीवो मे उत्पन्न हो और वहा भी सख्यातवर्षाधिक दो हजार सागरोपम की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्ण करके पुन एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न हो तो वहाँ प्रथम समय मे वह सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंध का उत्कृष्ट अन्तर सख्यातवर्षाधिक दो हजार सागरोपम होता है।

कोई पृथ्वीकायिक जीव मर कर पृथ्वीकायिक जीवो के सिवाय दूसरे जीवो मे उत्पन्न हो जाए और वहाँ से मर कर पुन पृथ्वीकाय मे उत्पन्न हो तो उसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लकभव होता है। उत्कृष्टकाल की अपेक्षा अनन्तकाल—अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल होता है। अर्थात्—अनन्तकाल के समयो मे उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के समयो का अपहार किया (भाग दिया) जाए तो अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल होता है। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक है। इसका तात्पर्य है—अनन्त काल के समयों मे लोकाकाश के प्रदेशो द्वारा अपहार किया जाए, तो अनन्तलोक होते हैं। वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्तकाल की है, इस अपेक्षा से सर्वबंध का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल असख्य पुद्गलपरावर्तन प्रमाण है।

पुद्गलपरावर्तन आदि की व्याख्या—दस कोटाकोटि अद्धा पल्योपमो का एक सागरोपम होता है। दस कोटाकोटि सागरोपमो का एक अवसर्पिणीकाल होता है और इतने ही काल का एक उत्सर्पिणीकाल होता है। ऐसी अनन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का एक पुद्गलपरावर्तन होता है। असख्यात समयो की एक आवलिका होती है। उस आवलिका के असख्यात समयो का जो असख्यातवा भाग है उसमे जितने समय होते हैं, उतने पुद्गलपरावर्तन यहाँ लिये गए हैं। इनकी सख्या भी असख्यात हो जाती है, क्योंकि असख्यात के असख्यात भेद हैं।

औदारिकशरीर के बंधकों का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे सर्वबंधक जीव इसलिए हैं कि वे उत्पत्ति के समय ही पाए जाते हैं। उनसे अबंधक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि विग्रहगति मे और सिद्धगति मे जीव अबंधक होते हैं। उनसे देशबंधक इसलिए असख्यातगुणे हैं कि देशबंध का काल असख्यातगुणा है।[1]

वैक्रियशरीरप्रयोगबंध के भेद-प्रभेद एवं विभिन्न पहलुओ से तत्सम्बन्धित विचारणा

५१ वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य, पंचिंदियवेउव्विय सरीरप्पयोगबंधे य।

[५१ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[५१ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) एकेन्द्रियवैक्रिय-शरीर-प्रयोगबंध और (२) पंचेन्द्रियवैक्रियशरीर-प्रयोगबंध।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्रांक ४०० से ४०३ तक

५२. जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे किं वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे, अवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे ?

एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्वियसरीरभेदो तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीयवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव पयोगबंधे य।

[५२ प्र.] भगवन् ! यदि एकेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगबंध है, तो क्या वह वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगबंध है अथवा अवायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध है ?

[५२ उ.] गौतम ! इस प्रकार के अभिलाप द्वारा (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) अवगाहना-संस्थानपद में वैक्रियशरीर के जिस प्रकार भेद कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी—पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध' तक कहना चाहिए।

५३. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउयं वा लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे।

[५३ प्र.] भगवन् ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है।

[५३ उ.] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य अथवा लब्धि की अपेक्षा तथा वैक्रियशरीर-प्रयोगनामकर्म के उदय से वैक्रियशरीरप्रयोगबंध होता है।

५४. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए तं चेव जाव लद्धिं वा पडुच्च वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय जाव बंधे।

[५४ प्र.] भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५४ उ.] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य और लब्धि की अपेक्षा से तथा वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से वायुकायिक, एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीरप्रयोगबंध होता है।

५५. [१] रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभापुढवि० जाव बंधे।

[५५-१ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५५-१ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य की अपेक्षा से तथा रत्नप्रभापृथ्वी-नरयिक-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से रत्नप्रभापृथ्वी-नरयिक पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबध होता है।

[२] एव जाव अहेसत्तमाए।

[५५-२] इसी प्रकार अध सप्तम नरकपृथ्वी तक कहना चाहिए।

५६ तिरिक्खजोणियपचिंदियवेउव्वियसरीर० पुच्छा।

गोयमा ! वीरिय० जहा वाउक्काइयाण।

[५६ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक- (पचेन्द्रिय) वैक्रियशरीरप्रयोगबध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५६ उ] गौतम ! सवीर्यता यावत् आयुष्य और लब्धि को लेकर तथा तिर्यंचयोनिक-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से वह होता है।।

५७ मणुस्सपचिंदियवेउव्विय० ?

एव चेव।

[५७ प्र] भगवन् ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५७ उ] गौतम ! मनुष्य-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबध के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) जान लेना चाहिए।

५८ [१] असुरकुमारभवणवासिदेवपचिंदियवेउव्विय० ?

जहा रयणप्पभापुढविनेरइया।

[५८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार-भवनवासीदेव-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबध किस कर्म के उदय से होता है ?

[५८-१ उ] गौतम ! इसका कथन भी रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिको की तरह समझना चाहिए।

[२] एव जाव थणियकुमारा।

[५८-२] इसी प्रकार स्तनितकुमार भवनवासीदेवो तक कहना चाहिए।

५९. एव वाणमतरा।

[५९] इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवो के विषय मे भी रत्नप्रभापृथ्वी नरयिको के समान जानना चाहिए।

६० एव जोइसिया।

[६०] इसी प्रकार ज्योतिष्कदेवो के विषय मे जानना चाहिए।

६१ [१] एव सोहम्मकप्पोवगया वेमाणिया । एव जाव अच्चुय० ।

[६१-१] इसी प्रकार (रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के समान) सौधमकल्पोपपन्नक-वैमानिक-देवों से अच्युतकल्पोपपन्नक-वैमानिकदेवों तक के विषय में जानना चाहिए।

[२] गेवेज्जकप्पातीया वेमाणिया एव चेव।

[६१-२] ग्रैवेयककल्पातीत-वैमानिकदेवों के विषय में भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

[३] अणुत्तरोववाइयकप्पातीया वेमाणिया एव चेव।

[६१-३] अनुत्तरौपपातिककल्पातीत-वैमानिकदेवों के विषय में भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

६२ वेउव्वियसरीरप्पयोगबधे ण भते ! किं देसबधे, सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे वि, सव्वबधे वि।

[६२ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबध क्या देशबध है, अथवा सर्वबध है ?

[६२ उ] गौतम ! वह देशबध भी है, सर्वबध भी है।

६३ वाउक्काइयएगिंदिय० ?

एव चेव।

[६३ प्र] भगवन् ! वायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबध क्या देशबध है अथवा सर्वबध है ?

[६३ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए।

६४ रयणप्पभापुढविनेरइय० ?

एव चेव।

[६४ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-वैक्रियशरीरप्रयोगबध देशबध है या सर्वबध ?

[६४ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए।

६५ एव जाव अणुत्तरोववाइया।

[६५] इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिककल्पातीत वैमानिक देवों तक समझना चाहिए।

६६ वेउव्वियसरीरप्पयोगबधे ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! सव्वबधे जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण दो समया। देसबधे जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ समयूणाइ।

[६६ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबध, कालत कितने काल तक रहता है ?

[६६ उ] गौतम ! इसका सर्वबध जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत दो समय तक

रहता है और देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है।

६७ वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

[६७ प्र] भगवन् ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ?

[६७ उ] गौतम ! इसका सर्वबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः दो समय तक रहता है तथा देशबंध जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः अन्तमुहूर्त्त तक रहता है।

६८ [१] रयणप्पभापुढविनेरइय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं दसवाससहस्साइं तिसमयऊणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं समऊणं।

[६८-१ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ?

[६८-१ उ] गौतम ! इसका सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्यतः तीन समय कम दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्टतः एक समय कम एक सागरोपम तक रहता है।

[२] एवं जाव अहेसत्तमा। नवरं देसबंधे जस्स जा जहन्निया ठिती सा तिसमयूणा कायव्वा, जा य उक्कोसिया सा समयूणा।

[६८-२] इसी प्रकार अधःसप्तमनरकपृथ्वी तक जानना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि जिसकी जितनी जघन्य (आयु-) स्थिति हो, उसमें तीन समय कम जघन्य देशबंध तथा जिसकी जितनी उत्कृष्ट (आयु-) स्थिति हो, उसमें एक समय कम उत्कृष्ट देशबंध जानना चाहिए।

६९ पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाणं।

[६९] पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक और मनुष्य का कथन वायुकायिक के समान जानना चाहिए।

७० असुरकुमार-नागकुमार० जाव अणुत्तरोववाइयाणं जहा नेरइयाणं, नवरं जस्स जा ठिई सा भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइयाणं सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं।

[७०] असुरकुमार, नागकुमार से अनुत्तरौपपातिक देवों तक का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि जिसकी जितनी स्थिति हो, उतनी कहनी चाहिए तथा अनुत्तरौपपातिक देवों का सर्वबंध एक समय और देशबंध जघन्य तीन समय कम इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक होता है।

७१ वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो। एवं देसबंधतरं पि।

[७१ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कालत कितने काल का होता है ?

[७१ उ] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यत एक समय और उत्कृष्टत अनन्तकाल है—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी यावत्—आवलिका के असख्यातवें भाग के समयो के बराबर पुद्गलपरावर्तन रहता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७२ वाउक्काइयवेउव्वियसरीर० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतर जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभाग। एव देसबंधतर पि।

[७२ प्र] भगवन् ! वायुकायिक-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७२ उ] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७३ तिरिक्खजोणियपंचिदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधतर पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतर जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडीपुहुत्त। एव देसबंधतर पि।

[७३ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७३ उ] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व का होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७४ एव मणूसस्स वि।

[७४] इसी प्रकार मनुष्य के विषय मे भी (पूर्ववत) जान लेना चाहिए।

७५ जीवस्स ण भंते ! वाउकाइयत्ते नोवाउकाइयत्ते पुणरवि वाउकाइयत्ते वाउकाइय-एगिंदियवेउव्विय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतर जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, वणस्सइकालो। एव देसबंधतर पि।

[७५ प्र] भगवन् ! वायुकायिक-अवस्थागत जीव (वहाँ से मर कर) वायुकायिक के सिवाय अन्य काय मे उत्पन्न हो कर रहे और फिर वह वहाँ से मर कर पुन वायुकायिक जीवो मे उत्पन्न हो तो उसके वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७५ उ] गौतम ! उसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल—वनस्पतिकाल तक होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

७६ [१] जीवस्स ण भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते णोरयणप्पभापुढवि० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतर जहन्नेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण वणस्सइकालो। देसबंधतर जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, वणस्सइकालो।

[७६-१ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकरूप मे रहा हुआ जीव, (वहाँ से मर कर) रत्नप्रभापृथ्वी के सिवाय अन्य स्थानो मे उत्पन्न हो और (वहाँ से मर कर) पुन रत्नप्रभापृथ्वी मे नैरयिकरूप से उत्पन्न हो तो उस रत्नप्रभानैरयिक-वैक्रियशरीरप्रयोगबध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७६-१ उ] गौतम ! (ऐसे जीव के वैक्रियशरीरप्रयोगबध के) सर्वबध का अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है। देशबध का अन्तर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टत अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है।

[२] एव जाव अहेसत्तमाए, नवर जा जस्स ठिती जहन्निया सा सव्वबधतरे जहन्नेण अतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेस त चेव।

[७६-२] इसी प्रकार अध सप्तम नरकपृथ्वी तक जानना चाहिए। विशेष इतना है कि सर्वबध का जघन्य अन्तर जिस नैरयिक की जितनी जघन्य (आयु-) स्थिति हो, उससे अन्तमुहूर्त अधिक जानना चाहिए। शेष सर्वकथन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

७७ पचिदियतिरिक्खजोणिय मणुस्साण जहा वाउक्काइयाण।

[७७] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो और मनुष्यो के सर्वबध का अन्तर वायुकायिक के समान जानना चाहिए।

७८ असुरकुमार-नागकुमार जाव सहस्सारदेवाण एएसि जहा रयणप्पभागाण, नवर सव्वबधतरे जस्स जा ठिती जहन्निया सा अतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेस त चेव।

[७८] [इसी प्रकार] असुरकुमार, नागकुमार से सहस्रार देवो तक के वैक्रियशरीरप्रयोगबध का अन्तर रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिको के समान जानना चाहिए। विशेष इतना है कि जिसकी जो जघन्य (आयु-) स्थिति हो, उसके सर्वबध का अन्तर, उससे अन्तमुहूर्त अधिक जानना चाहिए। शेष सारा कथन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

७९ जीवस्स ण भते ! आणयदेवत्ते नोआणय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबधतर जहन्नेण अट्ठारससागरोवमाइ वासपुहत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण अणत काल, वणस्सइकालो। देसबधतर जहन्नेण वासपुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, वणस्सइकालो। एव जाव अच्चुए, नवर जस्स जा ठिती सा सव्वबधतरे जहन्नेण वासपुहत्तमब्भहिया कायव्वा, सेस त चेव।

[७९ प्र] भगवन् ! आनतदेवलोक मे देवरूप से उत्पन्न कोई देव, (वहाँ से च्यव कर) आनतदेवलोक के सिवाय दूसरे जीवो मे उत्पन्न हो जाए, (फिर वहाँ से मर कर) पुन आनतदेवलोक मे देवरूप से उत्पन्न हो, तो उस आनतदेव के वैक्रियशरीरप्रयोगबध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[७९ उ] गौतम ! उसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्वअधिक अठारह सागरोपम का और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है। देशबंध के अन्तर का काल जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट अनतकाल—वनस्पतिकाल का होता है। इसी प्रकार अच्युत देवलोक तक के वैक्रिय शरीरप्रयोगबंध का अन्तर जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि जिसकी जितनी जघन्य (आयु-) स्थिति हो, सर्वबंधान्तर मे उससे वर्षपृथक्त्व-अधिक समझना चाहिए। शेष सारा कथन पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

८० गेवेज्जकप्पातीय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतरं जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, वणस्सइकालो। देसबंधतरं जहन्नेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

[८० प्र] भगवन् ! ग्रैवेयककल्पातीत-वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[८० उ] गौतम ! सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व-अधिक २२ सागरोपम का है और उत्कृष्टतः अनन्तकाल—वनस्पतिकाल का होता है। देशबंध का अन्तर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्टतः वनस्पतिकाल का होता है।

८१ जीवस्स णं भंते ! अणुत्तरोववातिय० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वबंधतरं जहन्नेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं। देसबंधतरं जहन्नेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं।

[८१ प्र] भगवन् ! कोई अनुत्तरौपपातिक-देवरूप मे रहा हुआ जीव वहाँ से च्यव कर अनुत्तरौपपातिकदेवो के अतिरिक्त किन्ही अन्य स्थानो मे उत्पन्न हो और वहाँ से मरकर पुनः अनुत्तरौपपातिकदेवरूप मे उत्पन्न हो, तो उसके वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अंतर कितने काल का होता है ?

[८१ उ] गौतम ! उसके सर्वबंध का अंतर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व-अधिक इकतीस सागरोपम का और उत्कृष्टतः संख्यात सागरोपम का होता है। उसके देशबंध का अंतर जघन्यतः वर्षपृथक्त्व का और उत्कृष्टतः संख्यात सागरोपम का होता है।

८२ एएसि णं भंते ! जीवाणं वेउव्वियसरीरस्स देसबंधगाणं सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा असंखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा।

[८२ प्र] भगवन् ! वैक्रियशरीर के इन देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवो मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?

[८२ उ] गौतम ! सबसे थोडे वैक्रियशरीर के सर्वबंधक जीव हैं, उनसे देशबंधक जीव असंख्यातगुणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—वैक्रियशरीरप्रयोगबंध के भेद प्रभेद एवं विभिन्न पहलुओं से उससे सम्बन्धित विचारणा—प्रस्तुत ३१ सूत्रों (सू ५२ से ८२ तक) में वैक्रियशरीरप्रयोगबंध के भेद-प्रभेद, इसके कारणभूत कर्मोदयादि, इसका देशबंधत्व-सर्वबंधत्व विचार, इसके प्रयोगबंधकाल की सीमा, प्रयोगबंध का अन्तरकाल, प्रकारान्तर से प्रयोगबंधान्तर तथा इनके देश-सर्वबंधक के अल्पबहुत्व की विचारणा की गई है।

वैक्रियशरीरप्रयोगबंध के नौ कारण—औदारिकशरीरबंध के सवीर्यता, सयोगता आदि आठ कारण तो पहले बतला दिये गए हैं, वे ही ८ कारण वैक्रियशरीरबंध के हैं, नौवां कारण है—लब्धि। वैक्रियकरणलब्धि वायुकाय, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों की अपेक्षा से कारण बताई गई है। अर्थात् इन तीनों के वैक्रियशरीरप्रयोगबंध नौ कारणों से होता है, जबकि देवों और नारकों के आठ कारणों से ही वैक्रियशरीरप्रयोगबंध होता है, क्योंकि उनका वैक्रियशरीर भवप्रत्ययिक होता है।

वैक्रियशरीरप्रयोगबंध के रहने की कालसीमा—वैक्रियशरीरप्रयोगबंध भी दो प्रकार से होता है—देशबंध और सर्वबंध। वैक्रियशरीरी जीवों में उत्पन्न होता हुआ या लब्धि से वैक्रियशरीर बनाता हुआ कोई जीव प्रथम एक समय तक सर्वबंधक रहता है। इसलिए सर्वबंध जघन्य एक समय तक रहता है। किन्तु कोई औदारिक शरीर वाला जीव वैक्रियशरीर धारण करते समय सर्वबंधक होकर फिर मर कर देव या नारक हो तो प्रथम समय में वह सर्वबंध करता है, इस दृष्टि से वैक्रियशरीर के सर्वबंध का उत्कृष्टकाल दो समय का है। औदारिकशरीरी कोई जीव वैक्रियशरीर करते हुए प्रथम समय में सर्वबंधक होकर द्वितीय समय में देशबंधक होता है और तुरत ही मरण को प्राप्त हो जाए तो देशबंध जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट एक समय कम ३३ सागरोपम का है, क्योंकि देवों और नारकों में उत्कृष्टस्थिति में उत्पद्यमान जीव प्रथम समय में सर्वबंधक होकर शेष समयों (३३ सागरोपम में एक समय कम तक) में वह देशबंधक ही रहता है।

वायुकाय, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय और मनुष्य के वैक्रियशरीरीय देशबंध की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। नैरयिकों और देवों के वैक्रियशरीरीय देशबंध की स्थिति जघन्य तीन समय कम १० हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की होती है।

वैक्रियशरीरप्रयोगबंध का अन्तर—औदारिकशरीरी वायुकायिक कोई जीव वैक्रियशरीर का प्रारम्भ करे तथा प्रथम समय में सर्वबंधक होकर मृत्यु प्राप्त करे, उसके पश्चात् वायुकायिकों में उत्पन्न हो उसे अपर्याप्त अवस्था में वैक्रियशक्ति उत्पन्न नहीं होती। इसलिए वह अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त होकर वैक्रियशरीर करता है, तब सर्वबंधक होता है। इसलिए सर्वबंध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है। औदारिकशरीरी कोई वायुकायिक जीव वैक्रियशरीर करे, तो उसके प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। इसके बाद देशबंधक होकर मरण को प्राप्त करे तथा औदारिकशरीरी वायुकायिक में पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल बिता कर अवश्य वैक्रियशरीर करता है। उस समय प्रथम समय में सर्वबंधक होता है, इसलिए सर्वबंधक का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है।

रत्नप्रभापृथ्वी का दस हजार वर्ष की स्थितिवाला नैरयिक उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। वहाँ से काल करके गर्भजपंचेन्द्रिय में अन्तर्मुहूर्त रह कर पुनः रत्नप्रभापृथ्वी में

उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। इसीलिए इसके सर्वबंधक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष होता है।

आनतकल्प का अठारह सागरोपम की स्थिति वाला कोई देव उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। वहाँ से च्यव कर वर्षपृथक्त्व (दो वर्ष से नौ वर्ष तक) आयुष्यपर्यंत मनुष्य में रह कर पुनः उसी आनतकल्प में देव होकर प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। इसलिए सर्वबंध का जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व-अधिक १८ सागरोपम का होता है।

अनुत्तरौपपातिकदेवों में सर्वबंध और देशबंध का अन्तर संख्यात सागरोपम है, क्योंकि वहाँ से च्यवकर जीव अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

इसके अतिरिक्त वैक्रियशरीरप्रयोगबंध के देशबंध और सर्वबंध का अन्तर मूलपाठ में बतलाया गया है, वह सुगम है। उसकी घटना स्वयमेव कर लेनी चाहिए।

वैक्रियशरीर के देश-सर्वबंधकों का अल्पबहुत्व—वैक्रियशरीरप्रयोग के सर्वबंधक जीव सबसे अल्प हैं, क्योंकि उनका काल अल्प है। उनसे देशबंधक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि सर्वबंधकों की अपेक्षा देशबंधकों का काल असंख्यातगुणा है। उनसे वैक्रियशरीर के अबंधक जीव अनन्तगुणे इसलिए हैं कि सिद्धजीव और वनस्पतिकायिक आदि जीव, जो वैक्रियशरीर के अबंधक हैं, उनसे अनन्तगुणे हैं।[1]

आहारकशरीरप्रयोगबंध का विभिन्न पहलुओं से निरूपण

८३. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते।

[८३ प्र.] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८३ उ.] गौतम ! (आहारकशरीरप्रयोगबंध) एक प्रकार का (एकाकार) कहा गया है।

८४. [१] जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे ? किं अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे ?

गोयमा ! मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे, नो अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे।

[८४-१ प्र.] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध एक प्रकार का कहा गया है, तो वह मनुष्यों के होता है अथवा अमनुष्यों (मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों) के होता है ?

[८४-१ उ.] गौतम ! मनुष्यों के आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है, अमनुष्यों के आहारकशरीरप्रयोगबंध नहीं होता।

[२] एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिगगब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे, णो अणिड्ढिपत्तपमत्त जाव आहारगसरीरप्पयोगबंधे।

---

1 भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४०६ से ४०९ तक

[८४-२] इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) 'अवगाहना-संस्थान पद' में कहे अनुसार यावत्—ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है, परन्तु अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धि को अप्राप्त) प्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के नहीं होता है।

८५ आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव लद्धिं पडुच्च आहारगसरीरप्पयोगणामाए कम्मस्स उदएणं आहारगसरीरप्पयोगबंधे।

[८५ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[८५ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् (आहारक-) लब्धि के निमित्त से आहारकशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है।

८६ आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि।

[८६ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध होता है, अथवा सर्वबंध होता है ?

[८६ उ] गौतम ! वह देशबंध भी होता है, सर्वबंध भी होता है।

८७ आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[८७ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध, कालतः कितने काल तक रहता है ?

[८७ उ] गौतम ! (आहारकशरीरप्रयोगबंध का) सर्वबंध एक समय तक रहता है, देशबंध जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

८८ आहारगसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंताओ ओसप्पिणि उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोया, अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं देसबंधंतरं पि।

[८८ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[८८ उ] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्तकाल, कालतः अनन्त-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल होता है, क्षेत्रतः अनन्तलोक देशोन (कुछ कम) अपार्ध (अर्द्ध) पुद्गलपरावर्तन होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जानना चाहिए।

८९ एएसि णं भंते ! जीवाणं आहारगसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा संखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा।

[८९ प्र.] भगवन् ! आहारकशरीर के इन देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे कम यावत् विशेषाधिक हैं ?

[८९ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े आहारकशरीर के सर्वबंधक जीव हैं, उनसे देशबंधक संख्यातगुणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—आहारकशरीरप्रयोगबंध का विभिन्न पहलुओं से निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ८३ से ८९ तक) में आहारकशरीरप्रयोगबंध, उसका प्रकार, उसकी कालावधि, उसका अन्तर-काल, उसके देश-सर्वबंधकों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

आहारकशरीरप्रयोगबंध के अधिकारी—केवल मनुष्य ही है। उनमें भी ऋद्धि (लब्धि)-प्राप्त, प्रमत्त-संयत, सम्यग्दृष्टि, पर्याप्त, संख्यातवर्ष की आयु वाले, कर्मभूमि में उत्पन्न, गर्भज मनुष्य ही होते हैं।

आहारकशरीरप्रयोगबंध की कलावधि—इसका सर्वबंध एक समय का ही होता है और देशबंध जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, क्योंकि इसके पश्चात् आहारकशरीर रहता ही नहीं है। उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय में सर्वबंध होता है, तदनन्तर देशबंध।

आहारकशरीरप्रयोगबंध का अन्तर—आहारकशरीर को प्राप्त हुआ जीव, प्रथम समय में सर्वबंधक होता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त तक आहारकशरीरी रहकर पुनः अपने मूल औदारिक-शरीर को प्राप्त हो जाता है। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहने के बाद पुनः संशयादि-निवारण के लिए उसे आहारकशरीर बनाने का कारण उत्पन्न होने पर पुनः आहारकशरीर बनाता है, और उसके प्रथम समय में वह सर्वबंधक ही होता है। इस प्रकार सर्वबंध का अन्तर अन्तर्मुहूर्त का होता है यहाँ इन दोनों अन्तर्मुहूर्तों को एक अन्तर्मुहूर्त की विवक्षा करके एक अन्तर्मुहूर्त बताया गया है, तथा उत्कृष्ट अन्तर काल की अपेक्षा अनन्तकाल का—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का है और क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक-अपार्धपुद्गलपरावर्तन का होता है। देशबंध के अन्तर के विषय में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

आहारकशरीर-प्रयोगबंध के देश-सर्वबंधकों का अल्पबहुत्व—आहारकशरीर के सर्वबंधक इसलिए सबसे कम बताए हैं कि उनका समय अल्प ही होता है। उनसे देशबंधक संख्यातगुणे इसलिए बताए हैं कि देशबंध का काल बहुत है। वे संख्यातगुणे ही होते हैं, असंख्यातगुणे नहीं, क्योंकि मनुष्य ही संख्यात हैं। इस कारण आहारकशरीर के देशबंधक भी असंख्यातगुणे नहीं हो सकते। उनसे अबंधक अनन्तगुणे इसलिए बताए हैं कि आहारकशरीर केवल मनुष्यों के, उनमें भी किन्हीं संयतजीवों के और उनके भी कदाचित् ही होता है, सर्वदा नहीं। शेष काल में वे जीव (स्वयं) तथा सिद्ध जीव तथा वनस्पतिकायिक आदि शेष सभी मनुष्येतर जीव आहारकशरीर के अबंधक होते हैं और वे उनसे अनन्तगुणे हैं।[1]

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ४०९

[८४-२] इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) 'अवगाहना-संस्थान पद' में कहे अनुसार यावत्—ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है, परन्तु अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धि को अप्राप्त) प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के नहीं होता है।

८५ आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव लद्धिं पडुच्च आहारगसरीरप्पयोगणामाए कम्मस्स उदएणं आहारगसरीरप्पयोगबंधे।

[८५ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[८५ उ] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् (आहारक-) लब्धि के निमित्त से आहारकशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से आहारकशरीरप्रयोगबंध होता है।

८६ आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि।

[८६ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध होता है, अथवा सर्वबंध होता है ?

[८६ उ] गौतम ! वह देशबंध भी होता है, सर्वबंध भी होता है।

८७ आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[८७ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध, कालतः कितने काल तक रहता है ?

[८७ उ] गौतम ! (आहारकशरीरप्रयोगबंध का) सर्वबंध एक समय तक रहता है, देशबंध जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

८८ आहारगसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंताओ ओसप्पिणि उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोया, अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं देसबंधंतरं पि।

[८८ प्र] भगवन् ! आहारकशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[८८ उ] गौतम ! इसके सर्वबंध का अन्तर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्तकाल, कालतः अनन्त-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल होता है, क्षेत्रतः अनन्तलोक देशोन (कुछ कम) अपार्ध (अर्द्ध) पुद्गलपरावर्तन होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जानना चाहिए।

८९ एएसि णं भंते ! जीवाणं आहारगसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा, देसबंधगा संखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा ।

[८९ प्र.] भगवन् ! आहारकशरीर के इन देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवो मे कौन किनसे कम यावत् विशेषाधिक है ?

[८९ उ.] गौतम ! सबसे थोडे आहारकशरीर के सर्वबंधक जीव है, उनसे देशबंधक संख्यातगुणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्तगुणे है ।

विवेचन—आहारकशरीरप्रयोगबंध का विभिन्न पहलुओं से निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू. ८३ से ८९ तक) मे आहारकशरीरप्रयोगबंध, उसका प्रकार, उसकी कालावधि, उसका अन्तरकाल, उसके देश-सर्वबंधको के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

आहारकशरीरप्रयोगबंध के अधिकारी—केवल मनुष्य ही है । उनमे भी ऋद्धि (लब्धि)-प्राप्त, प्रमत्त संयत, सम्यग्दृष्टि, पर्याप्त, संख्यातवर्ष की आयु वाले, कर्मभूमि मे उत्पन्न, गर्भज मनुष्य ही होते हैं ।

आहारकशरीरप्रयोगबंध की कालावधि—इसका सर्वबंध एक समय का ही होता है और देशबंध जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, क्योकि इसके पश्चात् आहारकशरीर रहता ही नही है । उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय में सर्वबंध होता है, तदनन्तर देशबंध ।

आहारकशरीरप्रयोगबंध का अन्तर—आहारकशरीर को प्राप्त हुआ जीव, प्रथम समय मे सर्वबंधक होता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त तक आहारकशरीरी रहकर पुनः अपने मूल औदारिकशरीर को प्राप्त हो जाता है । वहा अन्तर्मुहूर्त रहने के बाद पुनः संशयादि-निवारण के लिए उसे आहारकशरीर बनाने का कारण उत्पन्न होने पर पुनः आहारकशरीर बनाता है, और उसके प्रथम समय मे वह सर्वबंधक ही होता है । इस प्रकार सर्वबंध का अन्तर अन्तर्मुहूर्त का होता है यहा इन दोनो अन्तर्मुहूर्त को एक अन्तर्मुहूर्त की विवक्षा करके एक अन्तर्मुहूर्त बताया गया है, तथा उत्कृष्ट अन्तर काल की अपेक्षा अनन्तकाल का—अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का है और क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक-अपार्धपुद्गलपरावर्तन का होता है । देशबंध के अन्तर के विषय मे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए ।

आहारकशरीर-प्रयोगबंध के देश-सर्वबंधको का अल्पबहुत्व—आहारकशरीर के सर्वबंधक इसलिए सबसे कम बताए हैं कि उनका समय अल्प ही होता है । उनसे देशबंधक संख्यातगुणे इसलिए बताए हैं कि देशबंध का काल बहुत है । वे संख्यातगुणे ही होते हैं, असंख्यातगुणे नही, क्योकि मनुष्य ही संख्यात हैं । इस कारण आहारकशरीर के देशबंधक भी असंख्यातगुणे नहीं हो सकते । उनसे अबंधक अनन्तगुणे इसलिए बताए हैं कि आहारकशरीर केवल मनुष्यो के, उनमे भी किन्ही संयतजीवो के और उनके भी कदाचित् ही होता है, सर्वदा नही । शेष काल मे वे जीव (स्वयं) तथा सिद्ध जीव तथा वनस्पतिकायिक आदि शेष सभी मनुष्येतर जीव आहारक शरीर के अबंधक होते हैं और वे उनसे अनन्तगुणे हैं ।[1]

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ४०९

तैजसशरीरप्रयोगबंध के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओं से निरूपण

९० तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे, बेइंदिय०, तेइंदिय०, जाव पंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे।

[९० प्र.] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९० उ.] गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—एकेन्द्रिय-तैजस-शरीरप्रयोगबंध, द्वीन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध, त्रीन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध, यावत् (चतुरिन्द्रिय-तैजस शरीरप्रयोगबंध और) पंचेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध।

९१ एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

एवं एएणं अभिलावेणं भेदो जहा ओगाहणसंठाणे जाव पज्जत्तसव्वट्ठ सिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पातीयवेमाणियदेवपंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे य अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय० जाव बंधे य।

[९१ प्र.] भगवन् ! एकेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९१ उ.] गौतम ! इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जैसे—(प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) अवगाहनासंस्थानपद में भेद कहे हैं, वैसे यहाँ भी पर्याप्त-सर्वार्थसिद्धअनुत्तरौपपातिककल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध और अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्धअनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-तैजसशरीरप्रयोगबंध तक कहना चाहिए।

९२ तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च तेयासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं तेयासरीरप्पयोगबंधे।

[९२ प्र.] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९२ उ.] गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता, यावत् आयुष्य के निमित्त से तथा तैजसशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तैजसशरीरप्रयोगबंध होता है।

९३ तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबंधे ?

गोयमा ! देसबंधे, नो सव्वबंधे।

[९३ प्र.] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध क्या देशबंध होता है, अथवा सर्वबंध होता है ?

[९३ उ.] गौतम ! देशबंध होता है, सर्वबंध नहीं होता।

९४ तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाईए वा अपज्जवसिए, अणाईए वा सपज्जवसिए।

[९४ प्र] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध कालतः कितने काल तक रहता है ?

[९४ उ] गौतम ! तैजसशरीरप्रयोगबंध (कालतः) दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) अनादि-अपर्यवसित और (२) अनादि-सपर्यवसित।

९५ तेयासरीरप्पयोगबंधंतर णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! अणाईयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणाईयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

[९५ प्र] भगवन् ! तैजसशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कालतः कितने काल का होता है ?

[९५ उ] गौतम ! (इसके कालतः दो प्रकारों में से) न तो अनादि-अपर्यवसित (तैजसशरीर-प्रयोगबंध) का अन्तर है और न ही अनादि-सपर्यवसित (तैजसशरीरप्रयोगबंध) का अन्तर है।

९६ एएसि णं भंते ! जीवाणं तेयासरीरस्स देसबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा तेयासरीरस्स अबंधगा, देसबंधगा अणंतगुणा।

[९६ प्र] भगवन् ! तैजसशरीर के इन देशबंधक और अबंधक जीवों में कौन, किससे यावत् (कम, बहुत, तुल्य) अथवा विशेषाधिक हैं ?

[९६ उ] गौतम ! तैजसशरीर के अबंधक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे देशबंधक जीव अनन्तगुणे हैं।

विवेचन—तैजसशरीरप्रयोगबंध के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओं से विचारणा—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ९० से ९६ तक) में पूर्ववत् विभिन्न पहलुओं से तैजसशरीरप्रयोगबंध से सम्बन्धित विचारणा की गई है।

तैजसशरीरप्रयोगबंध का स्वरूप—तैजसशरीर अनादि है, इसलिए इसका सर्वबंध नहीं होता। तैजसशरीरप्रयोगबंध अभव्य जीवों के अनादि-अपर्यवसित (अन्तरहित) होता है, जबकि भव्य जीवों के अनादि-सपर्यवसित (सान्त) होता है। तैजसशरीर सब संसारी जीवों के सदैव रहता है, इसलिए तैजसशरीरप्रयोगबंध का अन्तर नहीं होता। तैजसशरीर के अबंधक केवल सिद्धजीव ही होते हैं, शेष सभी संसारी जीव इसके देशबंधक हैं, इस दृष्टि से सबसे अल्प इसके अबंधक बतलाए गए हैं, उनसे अनन्तगुणे देशबंधक इसलिए बताए गए हैं, कि शेष समस्त संसारी जीव सिद्धजीवों से अनन्तगुणे हैं।[1]

कार्मणशरीरप्रयोगबंध के भेद-प्रभेदों की अपेक्षा विभिन्न दृष्टियों से निरूपण

९७ कम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे जाव अंतराइय-कम्मासरीरप्पयोगबंधे।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४१०

[९७ प्र.] भगवन् ! कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[९७ उ.] गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध, यावत् अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबन्ध।

९८. णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! नाणपडिणीययाए णाणणिण्हवणयाए णाणंतराएणं णाणप्पदोसेणं णाणच्चासादणाए णाणविसंवादणाजोगेणं णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे।

[९८ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९८ उ.] गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता (विपरीतता या विरोध) करने से, ज्ञान का निह्नव (अपलाप) करने से, ज्ञान में अन्तराय देने से, ज्ञान से प्रद्वेष करने (ज्ञान के दोष निकालने) से, ज्ञान की अत्यन्त आशातना करने से, ज्ञान के अविसंवादन-योग से तथा ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबन्ध होता है।

९९. दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! दंसणपडिणीययाए एवं जहा णाणावरणिज्जं, नवरं 'दंसण' नामं घेत्तव्वं जाव दंसणविसंवादणाजोगेणं दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं जाव प्पयोगबंधे।

[९९ प्र.] भगवन् ! दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

[९९ उ.] गौतम ! दर्शन की प्रत्यनीकता से, इत्यादि जिस प्रकार ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध के कारण कहे हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबन्ध के भी कारण जानने चाहिए। अन्तर इतना ही है कि यहाँ ('ज्ञान' के स्थान में) 'दर्शन' शब्द तथा यावत् 'दर्शनविसंवादनयोग से तथा दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से दर्शनावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबन्ध होता है' कहना चाहिए।

१००. सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

गोयमा ! पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए, एवं जहा सत्तमसए दुस्समा-उ (छट्ठ) द्देसए जाव अपरियावणयाए (स ७ उ ६ सु २४) सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं सायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबंधे।

[१०० प्र.] भगवन् ! सातावेदनीयकर्मशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०० उ.] गौतम ! प्राणियों पर अनुकम्पा करने से, भूतों (चार स्थावर जीवों) पर अनुकम्पा करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवें शतक के दुःषम नामक छठे उद्देशक (सू २४) में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को परिताप उत्पन्न न करने से तथा सातावेदनीयकर्मशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से सातावेदनीयकर्मशरीरप्रयोगबंध होता है तक कहना चाहिए।

१०१ असायावेयणिज्ज० पुच्छा।

गोयमा ! परदुक्खणयाए परसोयणयाए जहा सत्तमसए दुस्समा उ (छट्ठु) द्देसए जाव परियावणयाए (स ७ उ ६ सु २८) असायावेयणिज्जकम्मा जाव पयोगबंधे।

[१०१ प्र] भगवन् ! असातावेदनीयकामणशरीरप्रयोगबध किस कम के उदय से होता है ?

[१०१ उ] गौतम ! दूसरे जीवो को दु ख पहुँचाने से, उन्हे शोक उत्पन्न करने से इत्यादि, जिस प्रकार (भगवतीसूत्र के) सातवें शतक के 'दु पम' नामक छठे उद्देशक (के सूत्र २८) मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी, उन्हे परिताप उत्पन्न करने से तथा असातावेदनीयकर्मशरीरप्रयोगनामकम के उदय से असातावेदनीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध होता है तक कहना चाहिए।

१०२ मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा।

गोयमा ! तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए तिव्वमायाए तिव्वलोभाए तिव्वदसणमोहणिज्जयाए तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे।

[१०२ प्र] भगवन् ! मोहनीयकमशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०२ उ] गौतम ! तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, तीव्र लोभ से, तीव्र दर्शन-मोहनीय से और तीव्र चारित्रमोहनीय से तथा मोहनीयकार्मणशरीरप्रयोगनामकम के उदय से मोहनीयकामणशरीरप्रयोगबंध होता है।

१०३ नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे ण भंते ! पुच्छा०।

गोयमा ! महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचिदियवहेण कुणिमाहारेण नेरइयाउयकम्मासरीर-प्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण नेरइयाउयकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे।

[१०३ प्र] भगवन् ! नैरयिकायुष्यकामणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०३ उ] गौतम ! महारम्भ करने से, महापरिग्रह से, पञ्चेन्द्रिय जीवो का वध करने से और मासाहार करने से तथा नैरयिकायुष्यकामणशरीरप्रयोगनामकम के उदय से नैरयिकायुष्य-कामणशरीरप्रयोगबंध होता है।

१०४ तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरप्पयोग० पुच्छा।

गोयमा ! माइल्लयाए नियडिल्लयाए अलियवयणेण कूडतूल कूडमाणेण तिरिक्खजोणिय-कम्मासरीर जाव पयोगबंधे।

[१०४ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिकआयुष्यकामणशरीरप्रयोगबंध किस कम के उदय से होता है ?

[१०४ उ] गौतम ! माया करने से, निकृति (परवचनार्थ चेष्टा या माया को छिपाने हेतु दूसरी गूढ माया) करने से, मिथ्या बोलने से, खोटा तौल और खोटा माप करने से तथा तिर्यञ्च-योनिकआयुष्यकामणशरीरप्रयोगनामकम के उदय से तिर्यञ्चयोनिकआयुष्यकामणशरीर-प्रयोगबंध होता है।

१०५ मणुस्सआउयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! पगइभद्दयाए पगइविणीययाए साणुक्कोसयाए अमच्छरिययाए मणुस्साउयकम्मा० जाव पयोगबंधे।

[१०५ प्र] भगवन् ! मनुष्यायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०५ उ] गौतम ! प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की विनीतता (नम्रता) से, दयालुता से, अमत्सरभाव से तथा मनुष्यायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से मनुष्यायुष्यकार्मणशरीर प्रयोगबंध होता है।

१०६ देवाउयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! सरागसंजमेण संजमासंजमेण बालतवोकम्मेण अकामनिज्जराए देवाउयकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे।

[१०६ प्र] भगवन् ! देवायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०६ उ] गौतम ! सरागसंयम से, संयमासंयम (देशविरति) से, बाल (अज्ञानपूर्वक) तपस्या से तथा अकामनिर्जरा से एवं देवायुष्यकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से देवायुष्य कार्मणशरीरप्रयोगबंध होता है।

१०७ सुभनामकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! कायउज्जुययाए भावुज्जुययाए भासुज्जुययाए अविसंवादणजोगेण सुभनामकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे।

[१०७ प्र] भगवन् ! शुभनामकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०७ उ] गौतम ! काया की ऋजुता (सरलता) से, भावों की ऋजुता से, भाषा की ऋजुता (सरलता) से तथा अविसंवादनयोग से एवं शुभनामकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से शुभनामकार्मणशरीरप्रयोगबंध होता है।

१०८ असुभनामकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! कायअणुज्जुययाए भावअणुज्जुययाए भासअणुज्जुययाए विसंवायणाजोगेण असुभनामकम्मा० जाव पयोगबंधे।

[१०८ प्र] भगवन् ! अशुभनामकार्मणशरीरप्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०८ उ] गौतम ! काया की वक्रता से, भावों की वक्रता से, भाषा की वक्रता (अनृजुता) से तथा विसंवादनयोग से एवं अशुभनामकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से अशुभनामकार्मण शरीरप्रयोगबंध होता है।

१०९ उच्चागोयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! जातिअमदेण कुलअमदेण बलअमदेण रूवअमदेण तवअमदेण सुयअमदेण लाभअमदेण इस्सरियअमदेण उच्चागोयकम्मासरीर० जाव पयोगबंधे।

[१०९ प्र] भगवन् ! उच्चगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगबध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१०९ उ] गौतम ! जातिमद न करने से, कुलमद न करने से, बलमद न करने से, रूपमद न करने से, तपोमद न करने से, श्रुतमद (ज्ञान का मद) न करने से, लाभमद न करने से और ऐश्वर्यमद न करने से तथा उच्चगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से उच्चगोत्रकार्मणशरीर-प्रयोगबध होता है।

११० नीयागोयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! जातिमदेण कुलमदेण बलमदेण जाव इस्सरियमदेण णीयागोयकम्मासरीर० जाव पयोगबधे।

[११० प्र] भगवन् ! नीचगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगबध किस कर्म के उदय से होता है ?

[११० उ] गौतम ! जातिमद करने से, कुलमद करने से, बलमद करने से, यावत् (रूपमद करने से, तपोमद करने से, श्रुतमद करने से, लाभमद करने से और) ऐश्वर्यमद करने से तथा नीचगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से नीचगोत्रकार्मणशरीरप्रयोगबध होता है।

१११ अतराइयकम्मासरीर० पुच्छा।

गोयमा ! दाणतराएण लाभतराएण भोगतराएण उवभोगतराएण वीरियतराएण अतराइय-कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएण अतराइयकम्मासरीरप्पयोगबधे।

[१११] भगवन् ! अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबध किस कर्म के उदय से होता है ?

[१११] गौतम ! दानान्तराय से, लाभान्तराय से, भोगान्तराय से, उपभोगान्तराय से और वीर्यान्तराय से तथा अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोग-बध होता है।

११२ [१] णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! किं देसबधे सव्वबधे ?

गोयमा ! देसबधे, णो सव्वबधे।

[११२-१ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबध क्या देशबध है अथवा सर्वबध है ?

[११२-१ उ] गौतम ! वह देशबध है, सर्वबध नही है।

[२] एव जाव अतराइयकम्मासरीरप्पओगबधे।

[११२-२] इसी प्रकार अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबध तक जानना चाहिए।

११३ णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबधे दुविहे पण्णत्ते, त जहा--अणाईए सपज्ज-वसिए, अणाईए अपज्जवसिए वा, एव जहा तेयगसरीरसचिट्ठणा तहेव।

[११३ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध कालत कितने काल तक रहता है ?

[११३ उ] गौतम ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध (काल की अपेक्षा) दो प्रकार का कहा गया है, यथा—अनादि-सपर्यवसित और अनादि-अपर्यवसित। जिस प्रकार तैजसशरीर प्रयोगबंध का स्थितिकाल (सू ९४ मे) कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

११४ एव जाव अतराइयकम्मस्स।

[११४] इसी प्रकार अन्तरायकर्म (कार्मणशरीरप्रयोगबंध के स्थितिकाल) तक कहना चाहिए।

११५ णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधतर ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! अणाईयस्स० एव जहा तेयगसरीरस्स अतर तहेव।

[११५ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[११५ उ] गौतम ! (ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध के कालत) अनादि अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित (इन दोनों रूपो) का अन्तर नही होता। जिस प्रकार तैजसशरीर-प्रयोगबंध के अन्तर के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

११६ एव जाव अतराइयस्स।

[११६] इसी प्रकार अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध के अन्तर तक समझना चाहिए।

११७ एएसि ण भते ! जीयाण नाणावरणिज्जस्स देसबधगाण, अबधगाण य कयरे कयरे हितो० ?

जाव अप्पाबहुग जहा तेयगस्स।

[११७ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकार्मणशरीर के इन देशबंधक और अबंधक जीवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[११७ उ] गौतम ! जिस प्रकार तैजसशरीरप्रयोगबंध के देशबंधकों एव अबंधको का अल्प-बहुत्व के विषय मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

११८ एव आउयवज्ज जाव अतराइयस्स।

[११८] इसी प्रकार आयुष्य को छोड कर अन्तरायकार्मणशरीरप्रयोगबंध तक के देशबंधको और अबंधको के अल्पबहुत्व के विषय मे कहना चाहिए।

११९ आउयस्स पुच्छा।

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स देसबधगा, अबधगा सखेज्जगुणा।

[११९ प्र] भगवन् ! आयुष्यकार्मणशरीरप्रयोगबंध के देशबंधक और अबंधक जीवो मे कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[११९ उ] गौतम ! आयुष्यकर्म के देशबंधक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे अबंधक जीव संख्यातगुणे हैं।

विवेचन—कार्मणशरीरप्रयोगबंध का भेद-प्रभेदों की अपेक्षा विभिन्न दृष्टियों से निरूपण—प्रस्तुत २३ सूत्रों (सू ९७ से ११९ तक) में कार्मणशरीर के ज्ञानावरणीयादि आठ भेदों को लेकर उस-उस कर्म के भेद की अपेक्षा प्रयोगबंध की पूर्ववत् विचारणा की गई है।

कार्मणशरीरप्रयोगबंध स्वरूप, भेद प्रभेदादि एवं कारण—आठ प्रकार के कर्मों के पिण्ड को कार्मणशरीर कहते हैं। ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबंध आदि आठों के वे ही कारण बताए हैं जो उन-उन कर्मों के कारण हैं। जैसे—ज्ञानावरणीय के ६ कारण हैं, वे ही ज्ञानावरणीयकार्मण-शरीरप्रयोगबंध के हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मबंध के कारण—इन दोनों कर्मों के कारण समान हैं, सिर्फ ज्ञान और दर्शन शब्द का अन्तर है। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मबंध के जो कारण बताए गए हैं, उनमें ज्ञानप्रत्यनीकता, दर्शनप्रत्यनीकता आदि का ज्ञान और ज्ञानीपुरुष तथा दर्शन और दर्शनीपुरुष की प्रत्यनीकता आदि अर्थ समझना चाहिए।

ज्ञानावरणीयादि और अष्टकार्मणशरीरप्रयोगबंध देशबंध होता है, सर्वबंध नहीं—देशबंध के ही तैजसशरीरप्रयोगबंध की तरह अनादि अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित ये दो भेद हैं। इन दोनों का अन्तर नहीं है।

आयुकर्म के देशबंधक—आयुष्यकर्म के देशबंधक सबसे थोड़े हैं और अबंधक उनसे संख्यात-गुण हैं, क्योंकि आयुष्यबंध का समय बहुत ही थोड़ा है और अबंध का समय उससे बहुत अधिक है। यह सूत्र अनन्तकायिक जीवों की अपेक्षा से है। वहाँ अनन्तकायिक जीव संख्यात जीवित ही है। उनमें आयुष्य के अबंधक, देशबंधकों से संख्यातगुण ही होते हैं। यद्यपि सिद्धजीव, जो आयुष्य के अबंधक हैं, उन्हें भी इसमें सम्मिलित कर लिया जाए तो भी वे देशबंधकों से संख्यातगुण ही होते हैं, क्योंकि सिद्ध आदि अबंधक अनन्त जीव भी अनन्तकायिक आयुष्यबंधक जीवों के अनन्तवें भाग ही होते हैं।

जीव जिस समय आयुष्यकर्म के बंधक होते हैं, उस समय उन्हें सर्वबंधक इसलिए नहीं कहा गया है कि जिस प्रकार औदारिकशरीर को बांधते समय जीव प्रथम समय में शरीरयोग्य सब पुद्गलों को एक साथ खींचता है, *उस प्रकार अविद्यमान समग्र आयुप्रकृति को नहीं बांधता, इसलिए आयुकर्म* का सर्वबंध नहीं होता।[1]

कठिन शब्दों की व्याख्या—णाणनिह्नवणयाए=ज्ञान की—श्रुत की या श्रुतगुरुओं की निह्नवता (अपलाप) से। **णाणंतराएणं**=ज्ञान-श्रुत में अन्तराय—शास्त्र ज्ञान के ग्रहण करने आदि में विघ्न डालना। **णाणपओसेणं**=ज्ञान-श्रुतादि या ज्ञानवानों के प्रति प्रद्वेष-अप्रीति से। **णाणऽच्चासायणाए**—ज्ञान या ज्ञानियों की अत्यन्त आशातना—हीलना से। **णाणविसंवायणाजोगेणं**=विसंवादन का अर्थ है—अतिशय ज्ञानियों द्वारा प्रतिपादित तथ्य को अन्यथा कहना या विपरीत प्ररूपणा करना। ज्ञान या ज्ञानियों के प्रतिपादित तथ्यों में दोषदर्शन रूप अन्यथा व्यापार, तद्रूप योग ज्ञान-विसंवादनयोग से। **दंसणपडिणीययाए**=दर्शन—चक्षुदर्शनादि की प्रत्यनीकता से। **तिव्वदंसण-**

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४११-४१२

मोहणिज्जयाए—तीव्र मिथ्यात्व—तीव्र दर्शनमोहनीय के कारण से। तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए=यहाँ कषाय से अतिरिक्त नोकषायरूप चारित्रमोहनीय का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि तीव्रक्रोधादि कषायचारित्रमोहनीय के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। साणुक्कोसयाए=अनुकम्पायुक्तता से।[1]

पांच शरीरों के एक दूसरे के साथ बधक-अबधक की चर्चा-विचारणा

१२० [१] जस्स णं भंते! ओरालियसरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

गोयमा! नो बंधए, अबंधए।

[१२०-१ प्र] भगवन्! जिस जीव के औदारिकशरीर का सर्वबंध है, क्या वह जीव वैक्रियशरीर का बंधक है, या अबंधक है?

[१२०-१ उ] गौतम! वह बंधक नहीं, अबंधक है।

[२] आहारगसरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

गोयमा! नो बंधए, अबंधए।

[१२०-२ प्र] भगवन्! (जिस जीव के औदारिकशरीर का सर्वबंध है) क्या वह जीव आहारकशरीर का बंधक है, या अबंधक है?

[१२०-२ उ] गौतम! वह बंधक नहीं, अबंधक है।

[३] तेयासरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

गोयमा! बंधए, नो अबंधए।

[१२०-३ प्र] भगवन्! (जिस जीव के औदारिकशरीर का सर्वबंध है) क्या वह जीव तैजसशरीर का बंधक है, या अबंधक है?

[१२०-३ उ] गौतम! वह बंधक है, अबंधक नहीं है।

[४] जइ बंधए किं देसबंधए, सव्वबंधए?

गोयमा! देसबंधए, नो सव्वबंधए।

[१२०-४ प्र] भगवन्! यदि वह तैजसशरीर का बंधक है, तो क्या वह देशबंधक है या, सर्वबंधक है?

[१२०-४ उ] गौतम! वह देशबंधक है, सर्वबंधक नहीं है।

[५] कम्मासरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

जहेव तेयगस्स जाव देसबंधए, नो सव्वबंधए।

[१२०-५ प्र] भगवन्! औदारिकशरीर का सर्वबंधक जीव कार्मणशरीर का बंधक है या अबंधक है?

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४११-४१२

[१२०-५ उ] गौतम ! जैसे तजसशरीर के विषय मे कहा है, वसे यहाँ भी देशबधक है, सववधक नही है, तक कहना चाहिए ।

१२१ जस्स ण भते ! ओरालियसरीरस्स देसबधे से ण भते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

गोयमा ! नो बधए, अबधए ।

[१२१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के औदारिकशरीर का देशबध है, भगवन् ! क्या वह वक्रियशरीर का बधक है या अबधक है ?

[१२१ उ] गौतम ! बधक नही, अबधक है ।

१२२ एव जहेव सव्वबधेण भणिय तहेव देसबधेण वि भाणियव्व जाव कम्मगस्स ।

[१२२] जिस प्रकार सवबध के विषय मे कथन किया, उसी प्रकार देशबध के विषय मे भी कामणशरीर तक कहना चाहिए ।

१२३ [१] जस्स ण भते ! वेउव्वियसरीरस्स सव्वबधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

गोयमा ! नो बधए, अबधए ।

[१२३-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वक्रियशरीर का सवबध है, क्या वह औदारिकशरीर का बधक है या अबधक है ?

[१२३-१ उ] गौतम ! वह बधक नही, अबधक है ।

[२] आहारगसरीरस्स एव चेव ।

[१२३ २] इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] तेयगस्स कम्मगस्स य जहेव ओरालिएण सम भणिय तहेव भाणियव्व जाव देसबधए, नो सव्वबधए ।

[१२३-३] तजस और कामणशरीर के विषय मे जैसे औदारिकशरीर के साथ कथन किया है, वैसा ही यहाँ भी वह देशबधक है, सवबधक नही तक कहना चाहिए ।

१२४ [१] जस्स ण भते ! वेउव्वियसरीरस्स देसबधे से ण भते ! ओरालियसरीरस्स किं बधए, अबधए ?

गोयमा ! नो बधए, अबधए ।

[१२४-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का देशबध है, क्या वह औदारिक शरीर का बधक है, अथवा अबधक है ?

[१२४-१ उ] गौतम ! वह बधक नही, अबधक है ।

[२] एव जहा सव्वबधेण भणिय तहेव देसबधेण वि भाणियव्व जाव कम्मगस्स ।

[१२४-२] जैसा वैक्रियशरीर के सर्वबंध के विषय में कहा, वैसा ही यहाँ भी देशबंध के विषय में कार्मणशरीर तक कहना चाहिए।

१२५ [१] जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।

[१२५-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के आहारकशरीर का सर्वबंध है, तो भंते ! क्या वह जीव औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ?

[१२५-१ उ] गौतम ! वह बंधक नहीं है, अबंधक है।

[२] एवं वेउव्वियस्स वि।

[१२५-२] इसी प्रकार वैक्रियशरीर के विषय में कहना चाहिए।

[३] तेया-कम्माणं जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं।

[१२५-३] तैजस और कार्मणशरीर के विषय में जैसे औदारिकशरीर के साथ कहा, वैसे यहाँ (आहारकशरीर के साथ) भी कहना चाहिए।

१२६ जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स देसबंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स० ?

एवं जहा आहारगसरीरस्स सव्वबंधेणं भणियं तहा देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स।

[१२६ प्र] भगवन् ! जिस जीव के आहारकशरीर का देशबंध है, तो भंते ! क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ?

[१२६ उ] गौतम ! जिस प्रकार आहारकशरीर के सर्वबंध के विषय में कहा, उसी प्रकार उसके देशबंध के विषय में भी कार्मणशरीर तक कहना चाहिए।

१२७ [१] जस्स णं भंते ! तेयासरीरस्स देसबंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

गोयमा ! बंधए वा अबंधए वा।

[१२७-१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के तैजसशरीर का देशबंध है, तो भंते ! क्या वह औदारिकशरीर का बंधक है या अबंधक है ?

[१२७-१ उ] गौतम ! वह बंधक भी है, अबंधक भी है।

[२] जइ बंधए किं देसबंधए, सव्वबंधए ?

गोयमा ! देसबंधए वा, सव्वबंधए वा।

[१२७-२ प्र] भगवन् ! यदि वह औदारिक शरीर का बंधक है, तो क्या वह देशबंधक है अथवा सर्वबंधक है ?

[१२७-२ उ] गौतम ! वह देशबधक भी है, सर्वबधक भी है।

[३] वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

एवं चेव।

[१२७-३ प्र] भगवन् ! (तैजसशरीर का बधक जीव) वैक्रियशरीर का बधक है, अथवा अबधक है ?

[१२७-३ उ] गौतम ! पूर्ववक्तव्यानुसार समझना चाहिए।

[४] एवं आहारगसरीरस्स वि।

[१२७-४] इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय मे भी जानना चाहिए।

[५] कम्मगसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

गोयमा ! बंधए, नो अबंधए।

[१२७-५ प्र] भगवन् ! (तैजसशरीर का बधक जीव) कार्मणशरीर का बधक है, या अबधक है ?

[१२७-५ उ] गौतम ! वह बधक है, अबधक नही है।

[६] जइ बंधए किं देसबंधए, सव्वबंधए ?

गोयमा ! देसबंधए, नो सव्वबंधए।

[१२७-६ प्र] भगवन् ! यदि वह कार्मणशरीर का बधक है तो देशबधक है, या सर्वबधक है ?

[१२७-६ उ] गौतम ! वह देशबधक है, सर्वबधक नही है।

१२८ जस्स णं भंते ! कम्मगसरीरस्स देसबंधए से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स ?

जहा तेयगस्स वत्तव्वया भणिया तहा कम्मगस्स वि भाणियव्वा जाव तेयासरीरस्स जाव देसबंधए, नो सव्वबंधए।

[१२८ प्र] भगवन् ! जिस जीव के कार्मणशरीर का देशबधक है, भंते ! क्या वह औदारिकशरीर का बधक है या अबधक है ?

[१२८ उ] गौतम ! जिस प्रकार तैजसशरीर की वक्तव्यता है, उसी प्रकार कार्मणशरीर की भी 'तैजसशरीर' की तरह देशबधक है, सर्वबधक नही है, तक कहना चाहिए।

विवेचन—पांच शरीरों के एक-दूसरे के साथ बंधक अबंधक की चर्चा विचारणा—प्रस्तुत ९ सूत्रों (सू १२० से १२८ तक) मे औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण, इन पाचो शरीरो के परस्पर एक दूसरे के साथ बधक, अबधक तथा देशबध सर्वबध की चर्चा-विचारणा की गई है।

पाच शरीरों के परस्पर बधक अबधक—औदारिक और वैक्रिय, इन दो शरीरो का परस्पर एक साथ बध नही होता, इसी प्रकार औदारिक और आहारकशरीर का भी एक साथ बध नही होता। अतएव औदारिकशरीरबधक जीव वक्रिय और आहारक का अबधक होता है, किन्तु तजस और कार्मणशरीर का औदारिकशरीर के साथ कभी विरह नही होता। इसलिए वह इनका देशबधक होता है। इन दोनो शरीरो का सर्वबध तो कभी होता ही नही।

तैजस कार्मणशरीर का देशबधक औदारिकशरीर का बधक और अबधक कैसे?—तजस शरीर और कार्मणशरीर का देशबधक जीव औदारिकशरीर का बधक भी होता है, और अबधक भी। इसका आशय यह है कि विग्रहगति मे वह अबधक होता है तथा वक्रिय मे हो या आहारक में, तब भी वह औदारिकशरीर का अबधक ही रहता है और शेष समय मे बधक होता है। उत्पत्ति के प्रथम समय मे वह सर्वबधक होता है, जबकि द्वितीय आदि समयो मे वह देशबधक हो जाता है। इसी प्रकार कार्मणशरीर के विषय मे भी समझना चाहिए।

शेष शरीरो के साथ बधकअबधक आदि का कथन सुगम है, स्वयमेव घटित कर लेना चाहिए।[1]

औदारिक आदि पाच शरीरों के देश-सर्वबधको एव अबधको के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

१२९. एएसि ण भते! जीवाण ओरालिय-वेउव्विय-आहारग तेया-कम्मासरीरगाण देसबधगाण सव्वबधगाण अबधगाण य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबधगा १। तस्स चेव देसबधगा सखेज्ज गुणा २। वेउव्वियसरीरस्स सव्वबधगा असखेज्जगुणा ३। तस्स चेव देसबधगा असखेज्जगुणा ४। तेया-कम्मगाणं दुण्ह वि तुल्ला अबधगा अणतगुणा ५। ओरालियसरीरस्स सव्वबधगा अणतगुणा ६। तस्स चेव अबधगा विसेसाहिया ७। तस्स चेव देसबधगा असखेज्जगुणा ८। तेया-कम्मगाण देसबधगा विसेसाहिया ९। वेउव्वियसरीरस्स अबधगा विसेसाहिया १०। आहारगसरीरस्स अबधगा विसेसाहिया ११।

सेव भते! सेव भते! त्ति०।

॥ अट्ठमसए नवमो उद्देसओ समत्तो ॥

[१२९ प्र] भगवन्! इन औदारिक, वक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर के देशबधक, सर्वबधक और अबधक जीवों में कौन किनसे यावत् (कम, अधिक, तुल्य अथवा) विशेषाधिक हैं?

[१२९ उ] गौतम! (१) सबसे थोडे आहारकशरीर के सर्वबधक जीव हैं, (२) उनसे उसी (आहारकशरीर) के देशबधक जीव सख्यातगुणे हैं, (३) उनसे वैक्रियशरीर के सर्वबधक असख्यातगुणे हैं, (४) उनसे वक्रियशरीर के देशबधक जीव असख्यातगुणे हैं, (५) उनसे तैजस और कार्मण, इन दोनो शरीरो के अबधक जीव अनन्तगुणे हैं, ये दोनो परस्पर तुल्य हैं, (६) उनसे औदारिकशरीर के सर्वबधक जीव अनन्तगुणे हैं (७) उनसे औदारिकशरीर के अबधक जीव

1 भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४२३

विशेषाधिक हैं, (८) उनसे उसी (औदारिकशरीर) के देशबंधक असंख्यातगुणे हैं, (९) उनसे तैजस और कार्मणशरीर के देशबंधक जीव विशेषाधिक हैं, (१०) उनसे वैक्रियशरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं और (११) उनसे आहारकशरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—औदारिकादि शरीरों के देश सर्वबंधकों और अबंधकों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा प्रस्तुत सूत्र में पांचों शरीरों के बंधकों, अबंधकों में जो जिससे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं, उनकी प्ररूपणा की गई है ।

अल्पबहुत्व का कारण—(१) आहारकशरीर चौदहपूर्वधर मुनि के ही होता है, वे भी विशेष प्रयोजन होने पर ही आहारकशरीर धारण करते हैं । फिर सर्वबंध का काल भी सिर्फ एक समय का है, अतएव आहारकशरीर के सर्वबंधक सबसे अल्प हैं । (२) उनसे आहारकशरीर के देशबंधक संख्यातगुणे हैं, क्योंकि देशबंध का काल अन्तर्मुहूर्त है । (३) उनसे वैक्रियशरीर के सर्वबंधक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि आहारकशरीरधारी जीवों से वैक्रियशरीरी असंख्यातगुणे अधिक हैं । (४) उनसे वैक्रिय-शरीरधारी देशबंधक जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सर्वबंध से देशबंध का काल असंख्यातगुणा है । अथवा प्रतिपद्यमान सर्वबंधक होते हैं और पूर्वप्रतिपन्न देशबंधक, अतः प्रतिपद्यमान की अपेक्षा पूर्वप्रतिपन्न असंख्यातगुणे हैं । (५) उनसे तैजस और कार्मणशरीर के अबंधक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि इन दोनों शरीरों के अबंधक सिद्ध भगवान् हैं, जो वनस्पतिकायिक जीवों के सिवाय शेष सर्व संसारी जीवों से अनन्तगुणे हैं । (६) उनसे औदारिकशरीर के सर्वबंधक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पति-कायिक जीव भी औदारिकशरीरधारियों में हैं, जो कि अनन्त हैं । (७) उनसे औदारिकशरीर के अबंधक जीव इसलिए विशेषाधिक हैं, कि विग्रहगतिसमापन्नक जीव तथा सिद्ध जीव सर्वबंधकों से बहुत हैं । (८) उनसे औदारिकशरीर के देशबंधक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि विग्रहगति के काल की अपेक्षा देशबंधक का काल असंख्यातगुणा है । (९) उनसे तैजस कार्मणशरीर के देशबंधक विशेषाधिक हैं, क्योंकि सारे संसारी जीव तैजस और कार्मण शरीर के देशबंधक होते हैं । इनमें विग्रहगति-समापन्नक औदारिक सर्वबंधक और वैक्रियादि-बंधक जीव भी आ जाते हैं । अतः औदारिक-देशबंधकों में ये विशेषाधिक बताए गए हैं । (१०) उनसे वैक्रियशरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वैक्रियशरीर के बंधक प्रायः देव और नारक हैं । शेष सभी संसारी जीव और सिद्ध भगवान् वैक्रिय के अबंधक ही हैं, इस अपेक्षा से वे तैजसादि देशबंधकों से विशेषाधिक बताए गए हैं । (११) उनसे आहारकशरीर के अबंधक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वैक्रिय तो देव-नारकों के भी होता है, किन्तु आहारकशरीर सिर्फ चतुर्दशपूर्वधर मुनियों के होता है । इस अपेक्षा से आहारकशरीर के अबंधक विशेषाधिक कहे गए हैं ।[1]

॥ अष्टम शतक : नवम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४१४

दसमो उद्देसओ : 'आराहणा'

दशम उद्देशक 'आराधना'

श्रुत और शील की आराधना-विराधना की दृष्टि से भगवान् द्वारा अन्यतीर्थिकमत निराकरणपूर्वक स्वसिद्धान्तनिरूपण

१ रायगिहे नगरे जाव एव वयासी—

१ [उद्देशक का उपोद्घात] राजगृह नगर मे यावत गौतमस्वामी ने (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से) इस प्रकार पूछा—

२ अन्नउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति जाव एव परूवेंति—एव खलु सील सेय १, सुय सेय २, सुय सेय सील सेय ३, से कहमेय भते ! एव ?

गोयमा ! ज ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति जाव जे ते एवमाहसु मिच्छा ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एव खलु मए चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सीलसपन्ने णाम एगे, णो सुयसपन्ने १, सुयसपन्ने नाम एगे, नो सीलसपन्ने २, एगे सीलसपन्ने वि सुयसपन्ने वि ३, एगे णो सीलसपन्ने नो सुयसपन्ने ४। तत्थ ण जे से पढमे पुरिसजाए से ण पुरिसे सीलव, असुयव, उवरए, अविण्णायधम्मे, एस ण गोयमा ! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते। तत्थ ण जे से दोच्चे पुरिसजाए से ण पुरिसे असीलव, सुयव अणुवरए, विण्णायधम्मे, एस ण गोयमा ! मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते। तत्थ ण जे से तच्चे पुरिसजाए से ण पुरिसे सीलव, सुयव, उवरए, विण्णायधम्मे, एस ण गोयमा ! मए पुरिसे सव्वाराहए पण्णत्ते। तत्थ ण जे से चउत्थे पुरिसजाए से ण पुरिसे असीलव, असुयव अणुवरए, अविण्णायधम्मे एस ण गोयमा ! मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते।

[२ प्र] भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं—(१) शील ही श्रेयस्कर है, (२) श्रुत ही श्रेयस्कर है, (३) (शीलनिरपेक्ष) श्रुत श्रेयस्कर है, अथवा (श्रुत-निरपेक्ष) शील श्रेयस्कर है, अत हे भगवन् ! यह किस प्रकार सम्भव है ?

[२ उ] गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं, यावत् उन्होंने जो ऐसा कहा है वह मिथ्या कहा है। गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, यावत् प्ररूपणा करता हूँ। मैंने चार प्रकार के पुरुष कहे हैं। वे इस प्रकार—

१—एक व्यक्ति शीलसम्पन्न है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं है।

२—एक व्यक्ति श्रुतसम्पन्न है, किन्तु शीलसम्पन्न नही है।

३—एक व्यक्ति शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है।

४—एक व्यक्ति न शीलसम्पन्न है और न श्रुतसम्पन्न है।

(१) इनमे से जो प्रथम प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान है, परन्तु श्रुतवान् नही। वह (पापादि से) उपरत (निवृत्त) है, किन्तु धर्म को विशेषरूप से नही जानता। हे गौतम! इस पुरुष को मैंने देश आराधक कहा है।

(२) इनमे से जो दूसरा पुरुष है, वह पुरुष शीलवान् नही, परन्तु श्रुतवान् है। वह (पापादि से) अनुपरत (अनिवृत्त) है, परन्तु धर्म को विशेषरूप से जानता है। हे गौतम! इस पुरुष को मैंने देश-विराधक कहा है।

(३) इनमे से जो तृतीय पुरुष है, वह पुरुष शीलवान् भी है और श्रुतवान् भी है। वह (पापादि से) उपरत है और धर्म का भी विज्ञाता है। हे गौतम! इस पुरुष को मैंने सर्व आराधक कहा है।

(४) इनमे से जो चौथा पुरुष है, वह न तो शीलवान् है और न श्रुतवान् है। वह (पापादि से) अनुपरत है, धर्म का भी विज्ञाता नही है। हे गौतम! इस पुरुष को मैंने सर्व-विराधक कहा है।

विवेचन—श्रुत और शील की आराधना एवं विराधना की दृष्टि से भगवान् द्वारा अन्यतीर्थिकमत निराकरणपूर्वक स्वसिद्धान्तप्ररूपण—प्रस्तुत द्वितीय सूत्र मे अन्यतीर्थिको की श्रुत-शील सम्बन्धी एकान्त मान्यता का निराकरण करते हुए भगवान् द्वारा प्रतिपादित श्रुत-शील की आराधना-विराधना सम्बन्धी चतुर्भंगी रूप स्वसिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है।

अन्यतीर्थिको का श्रुत-शीलसम्बन्धी मत मिथ्या क्यो?—(१) कुछ अन्यतीर्थिक यो मानते हैं कि शील अर्थात् क्रियामात्र ही श्रेयस्कर है, श्रुत अर्थात्—ज्ञान से कोई प्रयोजन नही, क्योकि वह आकाशवत् निश्चेष्ट है। वे कहते हैं—पुरुषो के लिए क्रिया ही फलदायिनी है, ज्ञान फलदायक नही है। खाद्यपदार्थों के उपयोग के ज्ञान मात्र से ही कोई सुखी नही होता। (२) कुछ अन्यतीर्थिको का कहना है कि ज्ञान (श्रुत) ही श्रेयस्कर है। ज्ञान से ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। क्रिया से नही। ज्ञानरहित क्रियावान् पुरुष को अभीष्ट फलसिद्धि के दर्शन नही होते। जैसा कि वे कहते हैं—पुरुषो के लिए ज्ञान ही फलदायक है, क्रिया फलदायिनी नही होती, क्योकि मिथ्याज्ञानपूर्वक क्रिया करने वाले को अनिष्टफल की ही प्राप्ति होती है। (३) कितने ही अन्यतीर्थिक परस्पर निरपेक्ष श्रुत और शील को श्रेयस्कर मानते हैं। उनका कहना है कि ज्ञान, क्रियारहित भी फलदायक है, क्योकि क्रिया उसमे गौणरूप से रहती है, अथवा क्रिया, ज्ञानरहित हो तो भी फलदायिनी है, क्योकि उसमे ज्ञान गौणरूप से रहता है। इन दोनो मे से कोई भी एक, पुरुष की पवित्रता का कारण है। उनका आशय यह है कि मुख्य-वृत्ति से शील श्रेयस्कर है, किन्तु श्रुत भी उसका उपकारी होने से गौणवृत्ति से श्रेयस्कर है। अथवा श्रुत मुख्यवृत्ति से और शील गौणवृत्ति से श्रेयस्कर है। प्रथम के दोनो मत एकान्त होने से मिथ्या है और तीसरे मत मे मुख्य-गौणवृत्ति का आश्रय ले कर जो प्रतिपादन किया गया है, वह भी युक्तिसगत और सिद्धान्तसम्मत नही है, क्योकि श्रुत और शील दोनो पृथक्-पृथक् या गौण मुख्य न रह कर समुदित रूप मे साथ-साथ रहने पर ही मोक्षफलदायक होते हैं। इस सम्बन्ध मे

दोनों पहियों के एक साथ जुड़ने पर ही रथ चलता है तथा अन्धा और पंगु दोनों मिल कर ही अभीष्ट नगर में प्रविष्ट हो सकते हैं। ये दो दृष्टान्त दे कर वृत्तिकार श्रुत और शील दोनों के एक साथ समायोग को ही अभीष्ट फलदायक मानते हैं।[1]

श्रुत शील की चतुर्भंगी का आशय—(१) प्रथम भंग का स्वामी शीलसम्पन्न है, श्रुतसम्पन्न नहीं, उसका आशय यह है कि वह भावत: शास्त्रज्ञान प्राप्त किया हुआ या तत्त्वों का विशेष ज्ञाता नहीं है, अत: स्वबुद्धि से ही पापों से निवृत्त है। मूलपाठ में उक्त 'अविण्णायधम्मे' पद से यह स्पष्ट होता है, कि जिसने धर्म को विशेष रूप से नहीं जाना, वह (अविज्ञातधर्मा) साधक मोक्ष-मार्ग की देशत:—अंशत: आराधना करने वाला है। अर्थात्—जो चारित्र की आराधना करता है, किन्तु विशेषरूप से ज्ञानवान् नहीं है (उससे ज्ञान की आराधना विशेषरूप से नहीं होती।) अथवा स्वयं अगीतार्थ है, इसलिए गीतार्थ के नेश्राय में रहकर तपश्चर्यारत रहता है। इस भंग का स्वामी मिथ्यादृष्टि नहीं, किन्तु सम्यग्दृष्टि है। (२) दूसरे भंग का स्वामी शीलसम्पन्न नहीं, किन्तु श्रुतसम्पन्न है, वह पापादि से अनिवृत्त है, किन्तु धर्म का विशेष ज्ञाता है। इसलिए उसे यहाँ देशविराधक कहा गया है, क्योंकि वह ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्न-त्रय जो मोक्षमार्ग है, उसमें से तृतीय भागरूप चारित्र की विराधना करता है, अर्थात्—प्राप्त हुए चारित्र का पालन नहीं करता, अथवा चारित्र को प्राप्त ही नहीं करता। इस भंग का स्वामी अविरतिसम्यग्दृष्टि है, अथवा प्राप्त चारित्र का अपालक श्रुतसम्पन्नसाधक है। (३) तृतीय भंग का स्वामी शीलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी। वह उपरत है तथा धर्म का भी विशिष्ट ज्ञाता है। अत: वह सर्वाराधक है, क्योंकि वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय मोक्षमार्ग की सर्वथा आराधना करता है। (४) चतुर्थ भंग का स्वामी शील और श्रुत दोनों से रहित है। वह अनुपरत है और धर्म का विज्ञाता भी नहीं, क्योंकि श्रुत (सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन) से रहित पुरुष न तो विज्ञातधर्मा हो सकता है और न ही सम्यक्चारित्र की आराधना कर सकता है। इसलिए रत्नत्रय का विराधक होने से यह सर्वविराधक माना गया है।[2]

---

१ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४१७-४१८

(ख) क्रियैव फलदा पुंसां न ज्ञानं फलदं मतम्।
स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखितो भवेत्॥ १॥
विज्ञप्तिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता।
मिथ्याज्ञानात्प्रवृत्तस्य, फलासंवाददर्शनात्॥ २॥

(ग) 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः।'
'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' —तत्त्वार्थसूत्र अ. १, सू. १

(घ) नाणं पयासयं, सोहओ तवो, संजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हं पि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥

(ङ) संजोगसिद्धीइ फलं वयंति न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा॥

२ (क) भगवतीसूत्र अ. वृत्ति पत्रांक ४१८

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा. ३ पृ. १२४१-१२४२

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एवं इनकी उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्याराधना का फल

३ कतिविहा णं भंते ! आराहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—नाणाराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा।

[३ प्र.] भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

[३ उ.] गौतम ! आराधना तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—(१) ज्ञानाराधना, (२) दर्शनाराधना और (३) चारित्राराधना।

४ णाणाराहणा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया मज्झिमिया जहन्ना।

[४ प्र.] भगवन् ! ज्ञानाराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

[४ उ.] गौतम ! ज्ञानाराधना तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार—(१) उत्कृष्ट, (२) मध्यम और (३) जघन्य।

५ दंसणाराहणा णं भंते ! ० ?

एवं चेव तिविहा वि।

[५ प्र.] भगवन् ! दर्शनाराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

[५ उ.] गौतम ! दर्शनाराधना भी इसी प्रकार तीन प्रकार की कही गई है।

६ एवं चरित्ताराहणा वि।

[६] इसी प्रकार चारित्राराधना भी तीन प्रकार की कही गई है।

७ जस्स णं भंते ! उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा ? जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया णाणाराहणा ?

गोयमा ! जस्स उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स दंसणाराहणा उक्कोसिया वा अजहन्न-उक्कोसिया वा, जस्स पुण उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स नाणाराहणा उक्कोसा वा जहन्ना वा अजहन्नमणुक्कोसा वा।

[७ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, और जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ?

[७ उ.] गौतम ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसके दर्शनाराधना उत्कृष्ट या मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) होती है। जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसके उत्कृष्ट, जघन्य या मध्यम ज्ञानाराधना होती है।

८ जस्स णं भंते ! उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा ? जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया णाणाराहणा ?

जहा उक्कोसिया णाणाराहणा य दसणाराहणा य भणिया तहा उक्कोसिया णाणाराहणा य चरित्ताराहणा य भाणियव्वा।

[८ प्र.] भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है और जिस जीव के उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ?

[८ उ.] *गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और दर्शनाराधना के विषय में कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और उत्कृष्ट चारित्राराधना के विषय में भी कहना चाहिए।*

९ जस्स णं भंते ! उक्कोसिया दसणाराहणा तस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा ? जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया दसणाराहणा ?

गोयमा ! जस्स उक्कोसिया दसणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा जहन्ना वा अजहन्नमणुक्कोसा वा, जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स दसणाराहणा नियमा उक्कोसा।

[९ प्र.] भगवन् ! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, क्या उसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, और जिसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है ?

[९ उ.] गौतम ! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसके उत्कृष्ट, मध्यम या जघन्य चारित्राराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, उसके नियमतः (अवश्यमेव) *उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है।*

१० उक्कोसियं णं भंते ! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव अंतं करेति ?

गोयमा ! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंतं करेति। अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंतं करेति। अत्थेगइए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जति।

[१० प्र.] भगवन् ! ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है ?

[१० उ.] गौतम ! कोई एक जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त कर देता है, कोई दो भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है कोई जीव कल्पोपपन्न कोई देवलोकों में अथवा कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होता है।

११ *उक्कोसियं णं भंते ! दंसणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं० ?*

एवं चेव।

[११ प्र.] भगवन् ! दर्शन की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है ?

[११ उ] गौतम ! (जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के फल के विषय मे कहा) उसी प्रकार उत्कृष्ट दर्शनाराधना के (फल के) विषय मे समझना चाहिए ।

१२ उक्कोसिय णं भन्ते ! चरित्ताराहण आराहेत्ता० ?

एव चेव । नवर अत्थेगइए कप्पातीएसु उववज्जति ।

[१२ प्र] भगवन् ! चारित्र की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है ।

[१२ उ] गौतम ! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के (फल के) विषय मे जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार उत्कृष्ट चारित्राराधना के (फल के) विषय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि कोई जीव (इसके फलस्वरूप) कल्पातीत देवलोको मे उत्पन्न होता है ।

१३ मज्झिमिय ण भते ! णाणाराहण आराहेत्ता कतिहि भवग्गहणेहि सिज्झति जाव अत करेति ?

गोयमा ! अत्थेगइए दोच्चेण भवग्गहणेण सिज्झइ जाव अत करेति, तच्च पुण भवग्गहण नाइक्कमइ ।

[१३ प्र] भगवन् ! ज्ञान की मध्यम-आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त कर देता है ?

[१३ उ] गौतम ! कोई जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दु खो का अन्त करता है, किन्तु तीसरे भव का अतिक्रमण नही करता ।

१४ मज्झिमिय ण भते ! दसणाराहण आराहेत्ता० ?

एव चेव ।

[१४ प्र] भगवन् ! दर्शन की मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दु खो का अन्त करता है ?

[१४ उ] गौतम ! जिस प्रकार ज्ञान की मध्यम आराधना के (फल के) विषय मे कहा, उसी प्रकार दर्शन की मध्यम आराधना के (फल के) विषय मे कहना चाहिए ।

१५ एव मज्झिमिय चरित्ताराहण पि ।

[१५] पूर्वोक्त प्रकार से चारित्र की मध्यम आराधना के (फल के) विषय मे कहना चाहिए ।

१६ जहन्निय ण भते ! नाणाराहण आराहेत्ता कतिहि भवग्गहणेहि सिज्झति जाव अत करेति ?

गोयमा ! अत्थेगइए तच्चे ण भवग्गहणेण सिज्झइ जाव अत करेइ, सत्त-ऽट्ठभवग्गहणाइ पुण नाइक्कमइ ।

[१६ प्र] भगवन् ! ज्ञान की जघन्य आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

[१६ उ] गौतम ! कोई जीव तीसरा भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है, परन्तु सात-आठ भव से आगे अतिक्रमण नही करता है।

१७ एवं दसणाराहणं पि।

[१७] इसी प्रकार जघन्य दर्शनाराधना के (फल के) विषय मे समझना चाहिए।

१८ एवं चरित्ताराहणं पि।

[१८] इसी प्रकार जघन्य चारित्राराधना के (फल के) विषय मे भी कहना चाहिए।

विवेचन—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना, इनका परस्पर सम्बन्ध एवं इनकी उत्कृष्ट मध्यम-जघन्य आराधना का फल—प्रस्तुत १६ सूत्रो (सू ३ से १८ तक) मे रत्नत्रय की आराधना और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट फल के विषय में निरूपण किया गया है।

आराधना परिभाषा प्रकार और स्वरूप—ज्ञानादि की निरतिचार रूप से अनुपालना करना आराधना है। आराधना के तीन प्रकार हैं—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना। पाच प्रकार के ज्ञान या ज्ञानाधार श्रुत (शास्त्रादि) की काल, विनय, बहुमान आदि आठ ज्ञानाचार सहित निर्दोष रीति से पालना करना ज्ञानाराधना है। शका, काक्षा आदि अतिचारो को न लगाते हुए निःशकित, निष्काक्षित आदि आठ दर्शनाचारो का शुद्धतापूर्वक पालन करते हुए दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व की आराधना करना दर्शनाराधना है। सामायिक आदि चारित्रों अथवा समिति गुप्ति, व्रत महाव्रतादि रूप चारित्र का निरतिचार विशुद्ध पालन करना चारित्राराधना है। ज्ञानकृत्य एव ज्ञानानुष्ठानों मे उत्कृष्ट प्रयत्न करना उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है। इसमे चौदह पूर्व का ज्ञान आ जाता है। मध्यम प्रयत्न करना मध्यम ज्ञानाराधना है, इसमे ग्यारह अगो का ज्ञान आ जाता है और जघन्य (अल्पतम) प्रयत्न करना जघन्य ज्ञानाराधना है। इसमे अष्टप्रवचनमाता का ज्ञान आ जाता है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की आराधना मे उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य प्रयत्न करना उनकी उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य आराधना है। उत्कृष्ट दर्शनाराधना मे क्षायिकसम्यक्त्व मध्यम दर्शनाराधना मे उत्कृष्ट क्षायोपशमिक या औपशमिक सम्यक्त्व और जघन्य दर्शनाराधना मे जघन्य क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है। उत्कृष्ट चारित्राराधना मे यथाख्यात चारित्र, मध्यम चारित्राराधना मे सूक्ष्मसम्पराय और परिहारविशुद्धि चारित्र तथा जघन्य चारित्राराधना मे सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनिक चारित्र पाया जाता है।

आराधना के पूर्वोक्त प्रकारों का परस्पर सम्बन्ध—उत्कृष्ट ज्ञानाराधक मे उत्कृष्ट और मध्यम दर्शनाराधना होती है, किन्तु जघन्य दर्शनाराधना नही होती, क्योकि उसका ऐसा ही स्वभाव है। उत्कृष्ट दर्शनाराधक मे ज्ञान के प्रति तीनो प्रकार का प्रयत्न सम्भव है, अत पूर्वोक्त तीनो प्रकार की ज्ञानाराधना भजना से होती है। जिसमे उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है। उसमे चारित्राराधना उत्कृष्ट या मध्यम होती है, क्योकि उत्कृष्ट ज्ञानाराधक मे चारित्र के प्रति तीनों प्रकार का प्रयत्न भजना से होता है। जिसकी उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसमे तीनों प्रकार की चारित्राराधना भजना से

होती है, क्योकि उत्कृष्ट दर्शनाराधक मे चारित्र के प्रति तीना प्रकार का प्रयत्न अविरुद्ध है। जहाँ उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, वहाँ उत्कृष्ट दशनाराधना अवश्य होती है, क्योकि उत्कृष्ट चारित्र उत्कृष्ट दशनानुगामी होता है।

रत्नत्रय की त्रिविध आराधनाओ का उत्कृष्ट फल—उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना वाले कतिपय साधक उसी भव मे तथा कतिपय दो (बीच मे एक देव और एक मनुष्य का) भव ग्रहण करके मोक्ष जाते हैं। कई जीव कल्पोपपन्न या कल्पातीत देवलोको मे, विशेषत उत्कृष्ट चारित्राराधना वाले एकमात्र कल्पातीत देवलोको मे उत्पन्न होते हैं। मध्यम ज्ञान, दशन और चारित्र की आराधना वाले कई जीव जघन्य दो भव ग्रहण करके उत्कृष्टत तीसरे भव मे (बीच मे दो भव देवो क करके) अवश्य मोक्ष जाते हैं। इसी तरह जघन्यत ज्ञान, दशन और चारित्र की आराधना करने वाले कतिपय जीव जघन्य तीसरे भव मे, उत्कृष्टत सात या आठ भवो मे अवश्यमेव मोक्ष जाते हैं। ये सात भव देवसम्बन्धी और आठ भव चारित्रसम्बन्धी, मनुष्य के समझने चाहिए।[1]

पुद्गल-परिणाम के भेद-प्रभेदो का निरूपण

१९ कतिविहे ण भते ! पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, त जहा—वण्णपरिणामे १ गधपरिणामे २ रस-परिणामे ३ फासपरिणामे ४ सठाणपरिणामे ५।

[१९ प्र] भगवन् ! पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९ उ] गौतम ! पुद्गलपरिणाम पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) वणपरिणाम, (२) गन्धपरिणाम, (३) रसपरिणाम, (४) स्पशपरिणाम और (५) सस्थान-परिणाम।

२० वण्णपरिणामे ण भते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—कालवण्णपरिणामे जाव सुक्किल्लवण्णपरिणामे।

[२० प्र] भगवन् ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२० उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा है, यथा—कृष्ण (काला) वणपरिणाम यावत् शुक्ल (श्वेत) वणपरिणाम।

२१ एएण अभिलावेण गधपरिणामे दुविहे, रसपरिणामे पचविहे, फासपरिणामे अट्ठविहे।

[२१] इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा गन्धपरिणाम दो प्रकार का, रसपरिणाम पाच प्रकार का और स्पशपरिणाम आठ प्रकार का जानना चाहिए।

२२ सठाणपरिणामे ण भते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—परिमडलसठाणपरिणामे जाव आययसठाणपरिणामे।

[२२ प्र] भगवन् ! सस्थानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४१९-४२०

[२२ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—परिमण्डलसस्थान-परिणाम, यावत् आयतसस्थानपरिणाम ।

विवेचन—पुद्गलपरिणाम के भेद प्रभेदों का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रो मे पुद्गलपरिणाम के वर्णादि पाच प्रकार एव उनके भेदो का निरूपण किया गया है ।

पुद्गलपरिणाम की व्याख्या—पुद्गल का एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे रूपान्तर होना पुद्गलपरिणाम है । इसके मूल भेद पाच और उत्तरभेद पच्चीस हैं ।[1]

पुद्गलास्तिकाय के एकप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक अष्टविकल्पात्मक प्रश्नोत्तर

२३ एगे भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसे किं दव्वं १, दव्वदेसे २, दव्वाइं ३, दव्वदेसा ४, उदाहु दव्वं च दव्वदेसे य ५, उदाहु दव्वं च दव्वदेसा य ६, उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसे य ७, उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य ८ ?

गोयमा ! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, नो दव्वाइं, नो दव्वदेसा, नो दव्वं च दव्वदेसे य, जाव नो दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

[२३ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश (१) द्रव्य है, (२) द्रव्यदेश है, (३) बहुत द्रव्य हैं, अथवा (४) बहुत द्रव्य-देश हैं ? अथवा (५) एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, या (६) एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं, अथवा (७) बहुत द्रव्य और द्रव्यदेश है, या (८) बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं ?

[२३ उ] गौतम ! वह कथञ्चित् एक द्रव्य है, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, किन्तु वह बहुत द्रव्य नही, न बहुत द्रव्यदेश है, एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश भी नही, यावत् बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश भी नही ।

२४ दो भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं दव्वदेसे० पुच्छा तहेव ?

गोयमा ! सिय दव्वं १, सिय दव्वदेसे २, सिय दव्वाइं ३, सिय दव्वदेसा ४, सिय दव्वं च दव्वदेसे य ५, नो दव्वं च दव्वदेसा य ६, सेसा पडिसेहेयव्वा ।

[२४ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या एक द्रव्य हैं, अथवा एक द्रव्यप्रदेश हैं ? इत्यादि (पूर्वोक्त अष्टविकल्पात्मक) प्रश्न ।

[२४ उ] गौतम ! १ कथंचित् द्रव्य हैं, २ कथञ्चित् द्रव्यदेश हैं, ३ कथंचित् बहुत द्रव्य हैं, ४ कथंचित् बहुत द्रव्यदेश हैं और ५ कथंचित एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं, परन्तु ६ एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं, ७ बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश नहीं तथा ८ बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं हैं । (अर्थात्—प्रथम के ५ भगो के अतिरिक्त शेष भगों का निषेध करना चाहिए ।)

२५ तिण्णि भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं, दव्वदेसे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय दव्वं १, सिय दव्वदेसे २, एवं सत्त भगा भाणियव्वा, जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसे य, नो दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्रांक ४२०

[२५ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश क्या एक द्रव्य हैं, अथवा एक द्रव्यदेश हैं ? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ।

[२५ उ] गौतम ! १ कथञ्चित् एक द्रव्य हैं, २ कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, इसी प्रकार यहाँ कथञ्चित् बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं, तक (पूर्वोक्त) सात भग कहने चाहिए। किन्तु बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश है यह आठवा भग नही कहे ।

२६ चत्तारि भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय दव्वं १, सिय दव्वदेसे २, अट्ठ वि भगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्व-देसा य ८ ।

[२६ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश क्या एक द्रव्य हैं या एक द्रव्यदेश हैं ? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ।

[२६ उ] गौतम ! कथञ्चित् एक द्रव्य हैं, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश हैं, इत्यादि कथञ्चित् बहुत द्रव्य हैं और बहुत द्रव्यदेश हैं, तक आठो भग यहा कहने चाहिए ।

२७ जहा चत्तारि भणिया एव पच छ सत्त जाव असखेज्जा ।

[२७] जिस प्रकार चार प्रदेशो के विषय मे कहा, उसी प्रकार पाच, छह, सात यावत् असख्यप्रदेशो तक के विषय मे कहना चाहिए ।

२८ अणता भते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व ।

एव चेव जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

[२८ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्तप्रदेश क्या एक द्रव्य हैं या एक द्रव्यदेश हैं ? इत्यादि (पूर्वोक्त अष्टविकल्पात्मक) प्रश्न ।

[२८ उ] गौतम ! पहले कहे अनुसार यहाँ 'कथचित् बहुत द्रव्य हैं, और बहुत द्रव्यदेश हैं', तक आठो ही भग कहने चाहिए ।

विवेचन—पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के विषय मे अष्टविकल्पीय प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू २३ से २८ तक) मे पुद्गलास्तिकाय के एकप्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के विषय मे अष्टविकल्पात्मक प्रश्नोत्तर प्ररूपित हैं ।

किसमे कितने भग ?—प्रस्तुत सूत्रो मे पुद्गलास्तिकाय के विषय मे ८ भग उपस्थित किये गए हैं, जिनमे द्रव्य और द्रव्यदेश के एकवचन और बहुवचन सम्बन्धी असयोगी चार भग हैं और द्विकसयोगी ४ भग है । जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध नही होता, तब वह द्रव्य (गुणपर्याय-योगी) है और जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध होता है, तब वह द्रव्यदेश (द्रव्यावयव) है । पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश मे प्रदेश एक ही है, इसलिए उसमे बहुवचनसम्बन्धी दो भग और द्विकसयोगी चार भग, ये ६ भग नही पाए जाते । पुद्गलास्तिकाय के द्विप्रदेशिकस्कन्धरूप से परिणत दो प्रदेशो मे उपयुक्त ८ भगो मे से पहले-पहले के पाच भग पाए जाते है और पुद्गलास्तिकाय के त्रिप्रदेशिकस्कन्धरूप से परिणत तीन प्रदेशों मे पहले-पहले के सात भग पाये जाते है । चार प्रदेशो

[२२ उ] गौतम ! वह पाच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—परिमण्डलसस्थान परिणाम, यावत् आयतसस्थानपरिणाम ।

विवेचन—पुद्गलपरिणाम के भेद प्रभेदों का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रो मे पुद्गलपरिणाम के वर्णादि पाच प्रकार एव उनके भेदो का निरूपण किया गया है ।

पुद्गलपरिणाम की व्याख्या—पुद्गल का एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे रूपान्तर होना पुद्गलपरिणाम है । इसके मूल भेद पाच और उत्तरभेद पच्चीस हैं ।[1]

पुद्गलास्तिकाय के एकप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक अष्टविकल्पात्मक प्रश्नोत्तर

२३ एगे भते ! पोग्गलत्थिकायपएसे किं दव्व १, दव्वदेसे २, दव्वाइं ३, दव्वदेसा ४, उदाहु दव्व च दव्वदेसे य ५, उदाहु दव्व च दव्वदेसा य ६, उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसे य ७, उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य ८ ?

गोयमा ! सिय दव्व, सिय दव्वदेसे, नो दव्वाइं, नो दव्वदेसा, नो दव्व च दव्वदेसे य, जाव नो दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

[२३ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश (१) द्रव्य है, (२) द्रव्यदेश है, (३) बहुत द्रव्य हैं, अथवा (४) बहुत द्रव्य-देश हैं ? अथवा (५) एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, या (६) एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं, अथवा (७) बहुत द्रव्य और द्रव्यदेश है, या (८) बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं ?

[२३ उ] गौतम ! वह कथञ्चित् एक द्रव्य है, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश है, किन्तु वह बहुत द्रव्य नही, न बहुत द्रव्यदेश है, एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश भी नही, यावत् बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश भी नही ।

२४ दो भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व दव्वदेसे० पुच्छा तहेव ?

गोयमा ! सिय दव्व १, सिय दव्वदेसे २, सिय दव्वाइं ३, सिय दव्वदेसा ४, सिय दव्व च दव्वदेसे य ५, नो दव्वं च दव्वदेसा य ६, सेसा पडिसेहेयव्वा ।

[२४ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या एक द्रव्य हैं, अथवा एक द्रव्यप्रदेश हैं ? इत्यादि (पूर्वोक्त अष्टविकल्पात्मक) प्रश्न ।

[२४ उ] गौतम ! १ कथचित् द्रव्य हैं, २ कथञ्चित् द्रव्यदेश हैं, ३ कथचित् बहुत द्रव्य हैं, ४ कथचित् बहुत द्रव्यदेश हैं और ५ कथचित् एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं, परन्तु ६ एक द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं, ७ बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश नही तथा ८ बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं हैं । (अर्थात्—प्रथम के ५ भगों के अतिरिक्त शेष भगो का निषेध करना चाहिए ।)

२५ तिण्णि भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्व, दव्वदेसे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय दव्व १, सिय दव्वदेसे २, एव सत्त भगा भाणियव्वा, जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसे य, नो दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्राक ४२०

[२५ प्र.] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश क्या एक द्रव्य है, अथवा एक द्रव्यदेश हैं ? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ।

[२५ उ.] गौतम ! १ कथञ्चित् एक द्रव्य है, २ कथञ्चित् एक द्रव्यदेश हैं, इसी प्रकार यहाँ कथञ्चित् बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश हैं, तक (पूर्वोक्त) सात भंग कहने चाहिए। किन्तु बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश हैं यह आठवा भंग नहीं कहे ।

२६. चत्तारि भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय दव्वं १, सिय दव्वदेसे २, अट्ठ वि भंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य ८ ।

[२६ प्र.] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश क्या एक द्रव्य है या एक द्रव्यदेश हैं ? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ।

[२६ उ.] गौतम ! कथञ्चित् एक द्रव्य हैं, कथञ्चित् एक द्रव्यदेश हैं, इत्यादि कथञ्चित् बहुत द्रव्य हैं और बहुत द्रव्यदेश हैं, तक आठों भंग यहाँ कहने चाहिए।

२७. जहा चत्तारि भणिया एवं पंच छ सत्त जाव असंखेज्जा ।

[२७] जिस प्रकार चार प्रदेशों के विषय में कहा, उसी प्रकार पांच, छह, सात यावत् असंख्यप्रदेशों तक के विषय में कहना चाहिए।

२८. अणंता भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं ।

एवं चेव जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

[२८ प्र.] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्तप्रदेश क्या एक द्रव्य है या एक द्रव्यदेश है ? इत्यादि (पूर्वोक्त अष्टविकल्पात्मक) प्रश्न ।

[२८ उ.] गौतम ! पहले कहे अनुसार यहाँ 'कथंचित् बहुत द्रव्य हैं, और बहुत द्रव्यदेश है', तक आठों ही भंग कहने चाहिए।

विवेचन—पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के विषय में अष्टविकल्पीय प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू. २३ से २८ तक) में पुद्गलास्तिकाय के एकप्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश तक के विषय में अष्टविकल्पात्मक प्रश्नोत्तर प्ररूपित हैं।

किसमें कितने भंग ?—प्रस्तुत सूत्रों में पुद्गलास्तिकाय के विषय में ८ भंग उपस्थित किये गए हैं, जिनमें द्रव्य और द्रव्यदेश के एकवचन और बहुवचन सम्बन्धी असंयोगी चार भंग हैं और द्विकसंयोगी ४ भंग है। जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध नहीं होता, तब वह द्रव्य (गुणपर्याययोगी) है और जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध होता है, तब वह द्रव्यदेश (द्रव्यावयव) है । पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश में प्रदेश एक ही है, इसलिए उसमें बहुवचनसम्बन्धी दो भंग और द्विकसंयोगी चार भंग, ये ६ भंग नहीं पाए जाते। पुद्गलास्तिकाय के द्विप्रदेशिकस्कन्धरूप से परिणत दो प्रदेशों में उपयुक्त ८ भंगों में से पहले-पहले के पांच भंग पाए जाते हैं और पुद्गलास्तिकाय के त्रिप्रदेशिकस्कन्धरूप से परिणत तीन प्रदेशों में पहले-पहले के सात भंग पाये जाते हैं । चार प्रदेशों

मे आठ ही भग पाए जाते हैं । चारप्रदेशी से लेकर यावत् अनन्तप्रदेशी पुद्गलास्तिकाय तक म प्रत्येक में आठ-आठ भग पाए जाते हैं ।[1]

लोकाकाश के और प्रत्येक जीव के प्रदेश

२९ केवतिया ण भते ! लोयागासपएसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा लोयागासपएसा पण्णत्ता ।

[२९ प्र] भगवन् ! लोकाकाश के कितने प्रदेश कहे गए है ?

[२९ उ] गौतम ! लोकाकाश के असख्येय प्रदेश कहे गए हैं ।

३० एगमेगस्स ण भते ! जीवस्स केवइया जीवपएसा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावतिया लोगागासपएसा एगमेगस्स ण जीवस्स एवतिया जीवपएसा पण्णत्ता ।

[३० प्र] भगवन् ! एक एक जीव के कितने-कितने जीवप्रदेश कहे गए हैं ?

[३० उ] गौतम ! लोकाकाश के जितने प्रदेश कहे गए हैं, उतने ही एक-एक जीव के जीवप्रदेश कहे गए हैं । (अर्थात् असख्येय प्रदेश हैं ।)

विवेचन—लोकाकाश के और प्रत्येक जीव के प्रदेश—प्रस्तुत दो सूत्रो मे से प्रथम (सू २९) सूत्र में लोकाकाश के प्रदेशो का तथा द्वितीय (सू ३०) सूत्र मे एक-एक जीव के प्रदेशो का निरूपण किया गया है ।

लोकाकाशप्रदेश और जीवप्रदेश की तुल्यता—लोक असख्यातप्रदेशी है, इसलिए उसके प्रदेश असख्यात हैं । जितने लोक के प्रदेश हैं, उतने ही एक जीव के प्रदेश हैं । जब जीव, केवली समुद्घात करता है, तब वह आत्मप्रदेशो से सम्पूर्ण लोक को व्याप्त कर देता है, अर्थात्—लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक जीवप्रदेश अवस्थित हो जाता है ।[2]

आठ कर्मप्रकृतियां, उनके अविभागपरिच्छेद और आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीव

३१ कति णं भते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, त जहा—नाणावरणिज्ज जाव अतराइयं ।

[३१ प्र] भगवन् ! कर्मप्रकृतिया कितनी कही गई हैं ?

[३१ उ] गौतम ! कर्मप्रकृतिया आठ कही गई हैं, यथा—ज्ञानावरणीय यावत अन्तराय ।

३२ [१] नेरइयाण भते ! कइ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ ।

[३२-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितनी कर्मप्रकृतिया कही गई हैं ?

[३२-१ उ] गौतम ! (उनके) आठ कर्मप्रकृतिया (कही गई हैं ।)

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्राक ४२१

२ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ४२१

[२] एव सव्वजीयाण अट्ठ कम्मपगडीओ ठावेयव्वाओ जाव वेमाणियाण।

[३२-२] इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी जीवो के आठ कर्मप्रकृतियो की प्ररूपणा करनी चाहिए।

३३ नाणावरणिज्जस्स ण भते ! कम्मस्स केवतिया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता।

[३३ प्र] भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए है ?

[३३ उ] गौतम ! अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं।

३४ नेरइयाण भते ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता।

[३४ प्र] भगवन् ! नैरयिको के ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं ?

[३४ उ] गौतम ! उनके अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं।

३५ एव सव्वजीवाण जाव वेमाणियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता।

[३५ प्र] भगवन् ! इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी जीवो के ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं ?

[३५ उ] गौतम ! अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं।

३६ एव जहा णाणावरणिज्जस्स अविभागपलिच्छेदा भणिया तहा अट्ठण्ह वि कम्मपगडीण भाणियव्वा जाव वेमाणियाण अतराइयस्स।

[३६] जिस प्रकार (सभी जीवो के) ज्ञानावरणीयकर्म के (अनन्त) अविभाग-परिच्छेद कहे हैं, उसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त सभी जीवो के अन्तराय कर्म तक आठो कर्मप्रकृतियो के (प्रत्येक के अनन्त-अनन्त) अविभाग-परिच्छेद कहने चाहिए।

३७ एगमेगस्स ण भते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढियपरिवेढिए सिया ?

गोयमा ! सिय आवेढियपरिवेढिए, सिय नो आवेढियपरिवेढिए। जइ आवेढियपरिवेढिए नियमा अणतेहिं।

[३७ प्र] भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित है ?

[३७ उ] हे गौतम ! वह कदाचित् आवेष्टित-परिवेष्टित होता है, कदाचित् आवेष्टित-परिवेष्टित नही होता। यदि आवेष्टित-परिवेष्टित होता है तो वह नियमत अनन्त अविभाग-परिच्छेदो से होता है।

३८ एगमेगस्स ण भंते ! नेरइयस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढियपरिवेढिते ?

गोयमा ! नियमा अणतेहिं ।

[३८ प्र] भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव का प्रत्येक जीवप्रदेश ज्ञानावरणीयकर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

[३८ उ] गौतम ! वह नियमतः अनन्त अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है।

३९ जहा नेरइयस्स एव जाव वेमाणियस्स । नवर मणूसस्स जहा जीवस्स ।

[३९] जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए, परन्तु विशेष इतना है कि मनुष्य का कथन (औधिक-सामान्य) जीव की तरह करना चाहिए।

४० एगमेगस्स ण भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं० ?

एव जहेव णाणावरणिज्जस्स तहेव दंडगो भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स ।

[४० प्र] भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव प्रदेश दर्शनावरणीयकर्म के कितने अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है ?

[४० उ] गौतम ! जैसा ज्ञानावरणीयकर्म के विषय में दण्डक कहा गया है, यहाँ भी उसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त कहना चाहिए।

४१ एवं जाव अंतराइयस्स भाणियव्व, नवर वेयणिज्जस्स आउयस्स नामस्स गोयस्स, एएसि चउण्ह वि कम्माणं मणूसस्स जहा नेरइयस्स तहा भाणियव्व, सेस त चेव ।

[४१] इसी प्रकार अन्तरायकर्म-पर्यन्त कहना चाहिए। विशेष इतना है कि वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मों के विषय में जिस प्रकार नैरयिक जीवों के लिए कथन किया गया है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी कहना चाहिए। शेष सब वर्णन पूर्ववत् है।

विवेचन – आठ कर्मप्रकृतियाँ, उनके अविभागपरिच्छेद और उनसे आवेष्टित परिवेष्टित समस्त ससारी जीव—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू ३१ से ४१ तक) में क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियाँ, उनसे बद्ध समस्त ससारी जीव तथा अष्टकर्मप्रकृतियों के अनन्त अनन्त अविभागपरिच्छेद, और उन अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित समस्त ससारी जीवों का निरूपण किया गया है।

अविभाग-परिच्छेद की व्याख्या—परिच्छेद का अर्थ है—अंश और अविभाग का अर्थ है—जिसका विभाग न हो सके। अर्थात्—केवलज्ञानी की प्रज्ञा द्वारा भी जिसके विभाग—अंश न किये जा सकें, ऐसे सूक्ष्म (निरंश) अंश को अविभाग-परिच्छेद कहते हैं। दूसरे शब्दों में (कर्म) दलिकों की अपेक्षा से परमाणुरूप निरंश अंश को अविभाग-परिच्छेद कहा जा सकता है। ज्ञानावरणीयकर्म के

अनन्त अविभाग-परिच्छेद कहने का अर्थ है—ज्ञानावरणीयकर्म ज्ञान के जितने अशो—भेदो को आवृत करता है, उतने ही उसके अविभाग-परिच्छेद होते हैं, और ज्ञानावरणीयकर्मदलिको की अपेक्षा वे उसके कर्मपरमाणुरूप अनन्त होते हैं। प्रत्येक ससारी जीव (मनुष्य के सिवाय) ८ कर्मों मे से प्रत्येक कम के अनन्त-अनन्त परमाणुओ (अविभाग-परिच्छेदो) से युक्त होता है तथा उनसे आवेष्टित-परिवेष्टित (अर्थात् गाढरूप से—चारो ओर से लिपटा हुआ—बद्ध) होता है।

आवेष्टित परिवेष्टित के विषय मे विकल्प—औघिक (सामान्य) जीव-सूत्र मे कदाचित ज्ञानावरणीयकम के अविभाग-परिच्छेदो से आवेष्टित-परिवेष्टित न होने की जो बात कही गई है, वह केवली की अपेक्षा से कही गई है, क्योंकि उनके ज्ञानावरणीयकम का क्षय हो चुका है। इसी प्रकार केवलिया के दशनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म का भी क्षय हो चुका है, अत इन घातिकर्मो द्वारा केवलज्ञानियो की आत्मा को ये कम आवेष्टित-परिवेष्टित नही करते। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, ये चारो कम अघातिक है, अत इनके विषय मे मनुष्यपद मे कोई अन्तर नही पडता। क्योंकि ये चारो जैसे छद्मस्थो के होते हैं, वैसे केवलियो के भी होते हैं। सिद्ध भगवान् मे नही होते, इसलिए जीव-पद मे इस विषयक भजना है, किन्तु मनुष्यपद मे नही, क्योंकि केवली भी मनुष्यगति और मनुष्यायु का उदय होने से मनुष्य ही हैं।[1]

आठ कर्मों के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता

४२ जस्स ण भते ! नाणावरणिज्ज तस्स दरिसणावरणिज्ज, जस्स दमणावरणिज्ज तस्स नाणावरणिज्ज ?

गोयमा ! जस्स ण नाणावरणिज्ज तस्स दसणावरणिज्ज नियमा अत्थि, जस्स ण दरिसणावरणिज्ज तस्स वि नाणावरणिज्ज नियमा अत्थि।

[४२ प्र] भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकम है, उसके क्या दर्शनावरणीयकम भी है और जिस जीव के दर्शनावरणीयकम है, उसके ज्ञानावरणीयकम भी है ?

[४२ उ] हाँ गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकर्म है, उसके नियमत दर्शनावरणीयकम है और जिस जीव के दर्शनावरणीयकम है, उसके नियमत ज्ञानावरणीयकम भी है।

४३ जस्स ण भते ! णाणावरणिज्ज तस्स वेयणिज्ज, जस्स वेयणिज्ज तस्स णाणावरणिज्ज ?

गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्ज तस्स वेयणिज्ज नियमा अत्थि, जस्स पुण वेयणिज्ज तस्स णाणावरणिज्ज सिय अत्थि, सिय नत्थि।

[४३ प्र] भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकम है, क्या उसके वेदनीयकम है और जिस जीव के वेदनीयकम है, क्या उसके ज्ञानावरणीयकम भी है ?

[४३ उ] गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकम है, उसके नियमत वेदनीयकम है, किन्तु जिस जीव के वेदनीयकम है, उसके ज्ञानावरणीयकम कदाचित होता है, कदाचित् नही होता है।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति पत्रांक ४२२

४४ जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं, जस्स मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं नियमा अत्थि ।

[४४ प्र.] भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीयकर्म है, क्या उसके मोहनीयकर्म है और जिसके मोहनीयकर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीयकर्म है ?

[४४ उ.] गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीयकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है कदाचित् नहीं भी होता, किन्तु जिसके मोहनीयकर्म है, उसके ज्ञानावरणीयकर्म नियमतः होता है ।

४५ [१] जस्स णं भंते ! णाणावरणिज्जं तस्स आउयं० ?

एवं जहा वेयणिज्जेण समं भणियं तहा आउएण वि समं भाणियव्वं ।

[४५-१ प्र.] भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीयकर्म है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है और जिसके आयुष्यकर्म है, क्या उसके ज्ञानावरणीयकर्म है ?

[४५-१ उ.] गौतम ! जिस प्रकार वेदनीयकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) कहा गया, उसी प्रकार आयुष्यकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) कहना चाहिए ।

[२] एवं नामेण वि, एवं गोएण वि समं ।

[४५-२] इसी प्रकार नामकर्म और गोत्रकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) भी कहना चाहिए ।

[३] अंतराइएण वि जहा दरिसणावरणिज्जेण समं तहेव नियमा परोप्परं भाणियव्वाणि १ ।

[४५-३] जिस प्रकार दर्शनावरणीय के साथ (ज्ञानावरणीयकर्म के विषय में) कहा, उसी प्रकार अन्तरायकर्म के साथ (ज्ञानावरणीय के विषय में) भी नियमतः परस्पर सहभाव कहना चाहिए ।

४६ जस्स णं भंते ! दरिसणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं, जस्स वेयणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं ?

जहा नाणावरणिज्जं उवरिमेहिं सत्तहिं कम्मेहिं समं भणियं तहा दरिसणावरणिज्जं पि उवरिमेहिं छहिं कम्मेहिं समं भाणियव्वं जाव अंतराइएणं २ ।

[४६ प्र.] भगवन् ! जिसके दर्शनावरणीयकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म होता है और जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके दर्शनावरणीयकर्म होता है ?

[४६ उ.] गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म का कथन ऊपर के सात कर्मों के साथ किया गया उसी प्रकार दर्शनावरणीयकर्म का भी अन्तरायकर्म तक ऊपर के छह कर्मों के साथ कथन करना चाहिए ।

४७ जस्स ण भंते ! वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं, जस्स मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि।

[४७ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके मोहनीयकर्म है और जिस जीव के मोहनीयकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

[४७ उ] गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है, किन्तु जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके वेदनीयकर्म नियमतः होता है।

४८ जस्स ण भंते ! वेयणिज्जं तस्स आउयं० ?

एवं एयाणि परोप्परं नियमा।

[४८ प्र] भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके आयुष्यकर्म है और जिसके आयुष्यकर्म है क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

[४८ उ] गौतम ! ये दोनों कर्म नियमतः परस्पर साथ-साथ होते हैं।

४९ जहा आउएण समं एवं नामेण वि, गोएण वि समं भाणियव्वं।

[४९] जिस प्रकार आयुष्यकर्म के साथ (वेदनीयकर्म के विषय में) कहा, उसी प्रकार नाम और गोत्रकर्म के साथ भी (वेदनीयकर्म के विषय में) कहना चाहिए।

५० जस्स ण भंते ! वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं० ? पुच्छा।

गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं नियमा अत्थि ३।

[५० प्र] भगवन् ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, क्या उसके अन्तरायकर्म है और जिसके अन्तरायकर्म है, क्या उसके वेदनीयकर्म है ?

[५० उ] गौतम ! जिस जीव के वेदनीयकर्म है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता, परन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके वेदनीयकर्म नियमतः होता है।

५१ जस्स ण भंते ! मोहणिज्जं तस्स आउयं, जस्स आउयं तस्स मोहणिज्जं ?

गोयमा ! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं नियमा अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स पुण मोहणिज्जं सिय अत्थि सिय नत्थि।

[५१ प्र] भगवन् ! जिस जीव के मोहनीयकर्म होता है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है, और जिसके आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके मोहनीयकर्म होता है ?

[५१ उ] गौतम ! जिस जीव के मोहनीयकर्म है, उसके आयुष्यकर्म अवश्य होता है, किन्तु जिसके आयुष्यकर्म है, उसके मोहनीयकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है।

५२ एवं नामं गोयं अंतराइयं च भाणियव्वं ४।

[५२] इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय में भी कहना चाहिए।

५३ जस्स णं भंते! आउयं तस्स नाम० ? पुच्छा।

गोयमा! दो वि परोप्परं नियमं।

[५३ प्र] भगवन्! जिस जीव के आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके नामकर्म होता है और जिसके नामकर्म होता है, क्या उसके आयुष्यकर्म होता है ?

[५३ उ] गौतम! ये दोनों कर्म परस्पर नियमतः होते हैं।

५४ एवं गोत्तेण वि समं भाणियव्वं।

[५४] (आयुष्यकर्म के विषय में) गोत्रकर्म के साथ भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

५५ जस्स णं भंते! आउयं तस्स अंतराइयं ? पुच्छा।

गोयमा! जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि जस्स पुण अंतराइयं तस्स आउयं नियमा ५।

[५५] भगवन्! जिस जीव के आयुष्यकर्म होता है, क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिसके अन्तरायकर्म है, उसके आयुष्यकर्म होता है ?

[५५ उ] गौतम! जिसके आयुष्यकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं होता, किन्तु जिस जीव के अन्तरायकर्म होता है, उसके आयुष्यकर्म अवश्य होता है।

५६ जस्स णं भंते! नामं तस्स गोयं, जस्स णं गोयं तस्स णं नामं ?

गोयमा! जस्स णं णामं तस्स णं नियमा गोयं, जस्स णं गोयं तस्स णं नियमा नामं—गोयमा! दो वि एए परोप्परं नियमा।

[५६ प्र] भगवन्! जिस जीव के नामकर्म होता है, क्या उसके गोत्रकर्म होता है और जिसके गोत्रकर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ?

[५६ उ] गौतम! जिसके नामकर्म होता है, उसके गोत्रकर्म अवश्य होता है और जिसके गोत्रकर्म होता है, उसके नामकर्म भी अवश्य होता है। गौतम! ये दोनों कर्म सहभावी हैं।

५७ जस्स णं भंते! णामं तस्स अंतराइयं० ? पुच्छा।

गोयमा! जस्स नामं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स नामं नियमा अत्थि ६।

[५७ प्र] भगवन्! जिसके नामकर्म होता है क्या उसके अन्तरायकर्म होता है और जिसके अन्तरायकर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ?

[५७ उ] गौतम! जिस जीव के नामकर्म होता है, उसके अन्तरायकर्म होता भी है और नहीं भी होता, किन्तु जिसके अन्तरायकर्म होता है उसके नामकर्म नियमतः होता है।

५८ जस्स ण भंते ! गोय तस्स अतराइय० ? पुच्छा ।

गोयमा ! जस्स ण गोय तस्स अतराइय सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अतराइय तस्स गोय नियमा अत्थि ७ ।

[५८ प्र] भगवन् ! जिसके गोत्रकम होता है, क्या उसके अन्तरायकम होता है और जिस जीव के अन्तराय कर्म होता है, क्या उसके गोत्रकम होता है ?

[५८ उ] गोतम ! जिसके गोत्रकम है, उसके अन्तरायकर्म होता भी है और नही भी होता, किन्तु जिसके अन्तरायकम है, उसके गोत्रकम अवश्य होता है ।

विवेचन—कर्मों के परस्पर सहभाव की वक्तव्यता—प्रस्तुत १७ सूत्रो (सू ४२ से ५८ तक) मे ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को अपने से उत्तरोत्तर कर्मों के साथ नियम से होने अथवा न होने का विचार किया गया है ।

'नियमा' और 'भजना' का अर्थ—ये दोनो जैनागमीय पारिभाषिक शब्द हैं । नियमा का अर्थ है—नियम से, अवश्य और 'भजना' का अर्थ है—विकल्प से, कदाचित् होना, कदाचित् न होना । प्रस्तुत प्रकरण मे चौबोस दण्डकवर्ती जीवो की अपेक्षा से ८ कर्मों की नियमा और भजना समझना चाहिए ।

किसमे किन-किन कर्मों को नियमा और भजना—मनुष्य मे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातिकर्मों की भजना है (क्योकि केवली के ये चार घातिकर्म नष्ट हो जाते हैं), जबकि वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र कम की नियमा है । शेष २३ दण्डको मे आठ कर्मों की नियमा है । सिद्ध भगवान् मे कम होते ही नही । इस प्रकार आठ कर्मों की नियमा और भजना के कुल २८ भग समुत्पन्न होते हैं । यथा—ज्ञानावरणीय से ७, दर्शनावरणीय से ६, वेदनीय से ५, मोहनीय से ४, आयुष्य से ३, नामकम से २, और गोत्रकम से १ ।

ज्ञानावरणीय से ७ भग—(१) ज्ञानावरणीय मे दर्शनावरणीय की नियमा और दर्शनावरणीय मे ज्ञानावरणीय की नियमा, (२) ज्ञानावरणीय मे वेदनीय की नियमा, किन्तु वेदनोय मे ज्ञानावरणीय की भजना, (३) ज्ञानावरणीय मे मोहनीय की भजना, किन्तु मोहनीय मे ज्ञानावरणीय की नियमा, (४) ज्ञानावरणीय मे आयुष्यकर्म की नियमा, किन्तु आयुष्यकम मे ज्ञानावरणीय की भजना, (५) ज्ञानावरणीय मे नामकम की नियमा, किन्तु नामकम मे ज्ञानावरणीय की भजना, (६) ज्ञानावरणीय मे गोत्रकम की नियमा, किन्तु गोत्रकम मे ज्ञानावरणीय की भजना तथा (७) ज्ञानावरणीय मे अन्तरायकम की नियमा ।

दर्शनावरणीय से ६ भग—(१) दर्शनावरणीय मे वेदनीय की नियमा, किन्तु वेदनीय मे दर्शनावरणीय की भजना, (२) दर्शनावरणीय मे मोहनीय की भजना, किन्तु मोहनीय मे दर्शनावरणीय की नियमा, (३) दर्शनावरणीय मे आयुष्यकम की नियमा, किन्तु आयुष्यकम मे दर्शनावरणीय को भजना, (४) दर्शनावरणीय मे नामकर्म की नियमा किन्तु नामकम मे दर्शनावरणीय की भजना, (५) दर्शनावरणीय मे गोत्रकम की नियमा, किन्तु गोत्रकम मे दर्शनावरणीय की भजना और (६) दर्शनावरणीय मे अन्तरायकम की नियमा, तथैव अन्तरायकम मे दर्शनावरणीय की नियमा ।

वेदनीय से ५ भंग—(१) वेदनीय में मोहनीय की भजना, किन्तु मोहनीय में वेदनीय की नियमा, (२) वेदनीय में आयुष्य की नियमा, तथैव आयुष्यकर्म में वेदनीय की नियमा, (३) वेदनीय में नामकर्म की नियमा, तथैव नामकर्म में वेदनीय की नियमा, (४) वेदनीय में गोत्रकर्म की नियमा, तथैव गोत्रकर्म में वेदनीय की नियमा, (५) वेदनीय में अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तरायकर्म में वेदनीय की नियमा।

मोहनीय से ४ भंग—(१) मोहनीय में आयुष्य की नियमा, किन्तु आयुष्यकर्म में मोहनीय की भजना, (२) मोहनीय में नामकर्म की नियमा, किन्तु नामकर्म में मोहनीय की भजना, (३) मोहनीय में गोत्रकर्म की नियमा, किन्तु गोत्रकर्म में मोहनीय की भजना, (४) मोहनीय में अन्तरायकर्म की नियमा, किन्तु अन्तराय कर्म में मोहनीय की भजना।

आयुष्यकर्म से ३ भंग—(१) आयुष्यकर्म में नामकर्म की नियमा, तथैव नामकर्म में आयुष्य कर्म की नियमा, (२) आयुष्यकर्म में गोत्रकर्म की नियमा तथैव गोत्रकर्म में आयुष्यकर्म की नियमा, (३) आयुष्यकर्म में अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तरायकर्म में आयुष्यकर्म की नियमा।

नामकर्म से दो भंग—(१) नामकर्म में गोत्रकर्म की नियमा तथैव गोत्रकर्म में नामकर्म की नियमा, (२) नामकर्म में अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तराय कर्म में नामकर्म की भजना।

गोत्रकर्म से एक भंग—(१) गोत्रकर्म में अन्तरायकर्म की भजना, किन्तु अन्तरायकर्म में गोत्रकर्म की नियमा।

इस प्रकार आठ कर्मों के नियमा और भजना से परस्पर सहभाव में ७+६+५+४+३+२+१=२८ भंगों की घटना कर लेनी चाहिए।[1]

संसारी और सिद्ध जीव के पुद्गली और पुद्गल होने का विचार

५९. [१] जीवे णं भंते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?

गोयमा ! जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि।

[५९-१ प्र.] भगवन् ! जीव पुद्गली है अथवा पुद्गल है ?

[५९-१ उ.] गौतम ! जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'जीवे पोग्गली वि पोग्गले वि' ?

गोयमा ! से जहानामए छत्तेणं छत्ती, दंडेण दंडी, घडेणं घडी, पडेण पडी, करेण करी एवामेव—

गोयमा ! जीवे वि सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली, जीवं पडुच्च पोग्गले, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'जीवे पोग्गली वि पोग्गले वि'।

[५९-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है ?

[५९-२ उ.] गौतम ! जैसे किसी पुरुष के पास छत्र हो तो उसे छत्री, दण्ड हो तो दण्डी,

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४२४

घट होने से घटी, पट होने से पटी और कर होने से करी कहा जाता है, इसी तरह हे गौतम ! जीव श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय (रूप पुद्गल वाला होने से) की अपेक्षा 'पुद्गली' कहलाता है तथा स्वय जीव की अपेक्षा 'पुद्गल' कहलाता है। इस कारण से हे गौतम ! मैं कहता हूँ कि जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है।

६० [१] नेरइए ण भते ! कि पोग्गली० ? एव चेव।

[६०-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव पुद्गली है, अथवा पुद्गल है ?

[६० १ उ] गौतम ! उपयुक्त सूत्रानुसार यहाँ भी कथन करना चाहिए। अर्थात् पुद्गली और पुद्गल दोनो है।

[२] एव जाव वेमाणिए। नवर जस्स जइ इदियाइ तस्स तइ वि भाणियव्वाइ।

[६०-२] इसी प्रकार वैमानिक तक कहना चाहिए, किन्तु जिस जीव के जितनी इन्द्रिया हो, उसके उतनी इन्द्रिया कहनी चाहिए।

६१ [१] सिद्धे ण भते ! कि पोग्गली, पोग्गले ?

गोयमा ! नो पोग्गली, पोग्गले।

[६१-१ प्र] भगवन् ! सिद्धजीव पुद्गली हैं या पुद्गल हैं ?

[६१-१ उ] गौतम ! सिद्धजीव पुद्गली नही किन्तु पुद्गल है।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव पोग्गले ?

गोयमा ! जीव पडुच्च, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'सिद्धे नो पोग्गली, पोग्गले'।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ अट्ठमसए दसमो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ समत्त अट्ठम सय ॥

[६१-२ प्र] भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं, कि सिद्धजीव पुद्गली नहीं, किन्तु पुद्गल हैं ?

[६२-२ उ] गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्धजीव पुद्गल है, (किन्तु उनके इन्द्रिया न होने से वे पुदगली नही हैं,) इस कारण मैं कहता हूँ कि सिद्धजीव पुद्गली नही, किन्तु पुद्गल हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर श्री गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—ससारी एव सिद्ध जीव के पुद्गली तथा पुद्गल होने का विचार—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे क्रमश जीव, चतुर्विंशति दण्डकवर्ती जीव एव सिद्ध भगवान् के पुदगली या पुद्गल होने के सम्बन्ध मे सापेक्ष विचार किया गया है।

पुद्गली एवं पुद्गल की व्याख्या—प्रस्तुत प्रकरण में 'पुद्गली' उसे कहते हैं, जिसके श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय आदि पुद्गल हों। जैसे—घट, पट, दण्ड, छत्र आदि के संयोग से पुरुष को घटी, पटी, दण्डी, एवं छत्री कहा जाता है, वैसे ही इन्द्रियोरूपी पुद्गलों के संयोग से औदिक जीव तथा चौबीस दण्डकवर्ती जीवों को 'पुद्गली' कहा गया है। सिद्ध जीवों में इन्द्रियरूपी पुद्गल नहीं होते, इसलिए वे 'पुद्गली' नहीं कहलाते। जीव को यहाँ जो 'पुद्गल' कहा गया है, वह जीव की संज्ञा मात्र है। यहाँ 'पुद्गल' शब्द से 'रूपी अजीव द्रव्य' ऐसा अर्थ नहीं समझना चाहिए। वृत्तिकार ने जीव के लिए 'पुद्गल' शब्द को संज्ञावाची बताया है।[1]

॥ अष्टम शतक : दशम उद्देशक समाप्त ॥

॥ अष्टम शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४२४

नवमं सयं : नवम शतक

प्राथमिक

- ☐ व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का यह नौवाँ शतक है ।
- ☐ इसमें जम्बूद्वीप, चन्द्रमा आदि, अन्तर्द्वीपज, असोच्चा केवली, गांगेय-प्रश्नोत्तर, ऋषभदत्त देवानन्दाप्रकरण, जमालि अनगार एव पुरुषहन्ता आदि से सम्बद्ध प्रश्नोत्तर आदि विषयो के प्रतिपादक चौंतीस उद्देशक हैं ।
- ☐ प्रथम उद्देशक मे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र का अतिदेश करके जम्बूद्वीप का स्वरूप, उसका आकार, लम्बाई-चौडाई, उसमे स्थित भरत-ऐरावत, हैमवत-हैरण्यवत, हरिवर्ष-रम्यकवर्ष एव महाविदेहक्षेत्र तथा इनमे बहने वाली हजारो छोटी-बडी नदियो का सक्षेप मे उल्लेख किया गया है ।
- ☐ द्वितीय उद्देशक मे जम्बूद्वीप मे स्थित विविध द्वीप-समुद्रो तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि का जीवाभिगमसूत्र के अनुसार सक्षिप्त वर्णन किया गया है ।
- ☐ तृतीय से तीसवें उद्देशक तक मे जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मेरुगिरि के दक्षिण मे स्थित 'एकोरुक' अन्तर्द्वीप का स्वरूप, लम्बाई-चौडाई, परिधि का वर्णन है, तथा इसी क्रम से शेष २७ अन्तर्द्वीपो के नाम, स्वरूप, अवस्थिति, लम्बाई-चौडाई एव परिधि आदि के वर्णन के लिए जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश किया गया है । एकोरुक से लेकर शुद्धदन्त तक इन २८ अन्तर्द्वीपो के प्रत्येक के नाम से एक-एक उद्देशक है । उसमे रहने वाले मनुष्यो का वर्णन है ।
- ☐ इकतीसवें उद्देशक मे केवली आदि दशविध साधको से सुने बिना (असोच्चा) ही धर्मश्रवण, बोधिलाभ, अनगारधर्म मे प्रव्रज्या, शुद्ध ब्रह्मचर्यवास शुद्ध सयम, शुद्ध सवर, पचविध ज्ञान की प्राप्ति-अप्राप्ति, तदनन्तर असोच्चाकेवली द्वारा उपदेश, प्रव्रज्या-प्रदान, अवस्थिति, निवास, सख्या, योग, उपयोग आदि का वर्णन है । अन्त मे, सोच्चा केवली के विषय मे भी इसी प्रकार के तथ्य बतलाए गए हैं ।
- ☐ बत्तीसवें उद्देशक मे पार्श्वनाथ-सतानीय गांगेय अनगार के द्वारा भगवान् से चौबीसदण्डकवर्ती जीवो के सान्तर-निरन्तर उत्पाद, उद्वर्तन, तथा प्रवेशनको के विविधसयोगी भगो का विस्तृत रूप से वर्णन है । तत्पश्चात्, इन्ही जीवो के सत् से सत् मे तथा सत् मे से उत्पाद तथा उद्वर्तन का, तथा स्वय उत्पन्न होने का वर्णन है । अन्त मे, गांगेय अनगार को भगवान् महावीर की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता पर पूर्णश्रद्धा और विनयभक्तिपूर्वक अपने पूर्वस्वीकृत चातुर्यामधर्म के बदले पचमहाव्रतयुक्त धर्म स्वीकार करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाने का वर्णन है ।
- ☐ तेतीसवें उद्देशक के दो विभाग हैं,—इसके पूर्वार्द्ध मे ब्राह्मणकुण्ड निवासी ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी का वर्णन है । सर्वप्रथम ऋषभदत्त ब्राह्मण के गुणो का परिचय दिया गया है ।

तदनन्तर देवानन्दा के भी गुणों का संक्षिप्त वर्णन है। तत्पश्चात् ऋषभदत्त ने ब्राह्मणकुण्ड में भगवान् महावीर के पदार्पण की बात सुनकर उनका वन्दन-नमन, पर्युपासना एवं प्रवचनश्रवण करने का विचार किया। सेवकों से रथ तैयार करवा कर पति पत्नी दोनों पृथक् पृथक् रथ में बैठ कर भगवान् की सेवा में पहुँचे। भगवान् को देख कर देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धारा बहने लगी आदि घटना से गौतम स्वामी के मन में उठे हुए प्रश्न का समाधान भगवान् ने कर दिया कि "देवानन्दा मेरी माता है।" तत्पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी के भगवान् से प्रव्रज्या लेने, शास्त्राध्ययन एवं तपश्चर्या करने तथा अन्त में दोनों के मोक्ष प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।

तत्पश्चात् उत्तरार्द्ध में जमालि के चरित का वर्णन है। क्षत्रियकुण्ड निवासी क्षत्रियकुमार जमालि की शरीरसम्पदा, वैभव, सुखभोग के साधनों से परितृप्ति आदि के वर्णन के पश्चात् एक दिन भगवान् महावीर का पदार्पण सुन कर उनके दर्शन-वन्दनादि के लिए प्रस्थान का, प्रवचनश्रवण के अनन्तर संसार से विरक्ति का, फिर माता पिता से दीक्षा की आज्ञा प्रदान करने के अनुरोध का एवं माता-पिता के साथ विरक्त जमालि के लम्बे आलाप-संलाप का, फिर अनुमति प्राप्त होने पर प्रव्रज्याग्रहण का विस्तृत वर्णन है। तत्पश्चात् भगवान् की बिना आज्ञा के जमालि के पृथक् विहार, शरीर में महारोग उत्पन्न होने पर शय्यासंस्तारक बिछाने के निमित्त से स्फुरित सिद्धान्तविरुद्ध प्ररूपणा का, सर्वज्ञता का मिथ्या दावा, गौतम के दो प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ जमालि की विराधना का एवं किल्विषिक देवों में उत्पत्ति का सविस्तार वर्णन है। दोनों के निवास के पीछे 'कुण्डग्राम' नाम होने से इस उद्देशक का नाम कुण्डग्राम दिया गया है।

- चौंतीसवें उद्देशक में पुरुष के द्वारा अश्वादि घात सम्बन्धी, तथा घातक को वैरस्पर्श सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है। इसके पश्चात् एकेन्द्रिय जीवों के परस्पर श्वासोच्छ्वास सम्बन्धी क्रिया सम्बन्धी तथा वायुकाय को वृक्षमूलादि कंपाने- गिराने की क्रिया सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।

- कुल मिलाकर प्रस्तुत शतक में भगवान् के अनेकान्तात्मक अनेक सिद्धान्तों का सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है। □□

नवमं सयं : नवम शतक

नौवें शतक की संग्रहणी गाथा

१ जंबुद्दीवे १ जोइस २ अंतरदीवा ३० असोच्च ३१ गंगेय ३२ ।
कुंडग्गामे ३३ पुरिसे ३४ नवमम्मि सयम्मि चोत्तीसा ॥१॥

[१ गाथार्थ—] १ जम्बूद्वीप, २ ज्योतिष, ३ से ३० तक (अट्ठाईस) अन्तर्द्वीप, ३१ अश्रुत्वा (-केवली इत्यादि), ३२ गांगेय (अनगार), ३३ (ब्राह्मण-) कुण्डग्राम और ३४ पुरुष (पुरुषहन्ता इत्यादि)।

(इस प्रकार) नौवें शतक में चौंतीस उद्देशक हैं।

विवेचन—जम्बूद्वीप—जिसमें जम्बूद्वीप-विषयक वक्तव्यता है।

अंतरदीवा—तीसरे उद्देशक से लेकर तीसवें उद्देशक तक, अट्ठाईस उद्देशकों में २८ अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों का वर्णन एक साथ ही किया गया है।

असुच्चा—इस उद्देशक में बिना धर्म सुने हुए एवं सुने हुए केवली तथा उनसे सम्बन्धित साधकों का निरूपण है।

पुरुष—इस चौंतीसवें उद्देशक में पुरुष को मारने वाले इत्यादि के विषय में वक्तव्यता है।[1]

पढमो उद्देसओ : जंबुद्दीवे

प्रथम उद्देशक : जम्बूद्वीप

मिथिला में भगवान् का पदार्पण : अतिदेशपूर्वक जम्बूद्वीपनिरूपण

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं मिहिला नामं नगरी होत्था। वण्णओ। माणिभद्दे चेइए। वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। जाव भगवं गोयमे पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

[२ उपोद्घात] उस काल और उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी। (उसका) वर्णन (यहाँ समझ लेना चाहिए)। वहाँ माणिभद्र नाम का चैत्य था। उसका भी वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए। स्वामी (श्रमण भगवान् महावीर) का समवसरण हुआ। (उनके दर्शन-वन्दन आदि करने के लिए) परिषद् निकली। (भगवान् ने) धर्म कहा—धर्मोपदेश दिया, यावत् भगवान् गौतम ने पर्युपासना करते हुए (भगवान् महावीर से) इस प्रकार पूछा—

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक ४३५

३ कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ? किंसंठिए णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ?

एवं जंबुद्दीवपण्णत्ती[1] भाणियव्वा जाव एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासय सहस्सा छप्पन्नं च सहस्सा भवंतीति मक्खाया।

सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति०।

॥ नवम सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

[३ प्र.] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ? (उसका) संस्थान (आकार) किस प्रकार का है ?

[३ उ.] गौतम ! इस विषय में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कहे अनुसार—जम्बूद्वीप नामक द्वीप में पूर्व-पश्चिम समुद्रगामी कुल मिलाकर चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है, तक कहना चाहिए।

विवेचन—सपुव्वावरेणं व्याख्या—पूर्वसमुद्र और अपर (पश्चिम) समुद्र की ओर जाकर उनमें गिरने वाली नदियाँ।[2]

चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार इस प्रकार हैं—

१. भरत और ऐरवत में—गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती, इन चार नदियों का प्रत्येक की चौदह-चौदह हजार सहायक नदियाँ हैं।

२. हैमवत और हैरण्यवत में—रोहित, रोहितांशा, सुवर्णकूला और रूप्यकूला इन चारों की, प्रत्येक की अट्ठाईस अट्ठाईस हजार नदियाँ हैं।

३. हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष में—हरि, हरिकान्ता, नरकान्ता, नारीकान्ता, इन चारों की, प्रत्येक की छप्पन-छप्पन हजार नदियाँ हैं।

४. महाविदेह में—सीता और सीतोदा की प्रत्येक की ५ लाख ३२ हजार नदियाँ हैं। ये कुल मिलाकर १४५६००० नदियाँ होती हैं।[3]

जम्बूद्वीप का आकार—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार—जम्बूद्वीप सब द्वीपों के मध्य में सबसे छोटा द्वीप है। इसकी आकृति तेल का मालपूआ, रथचक्र, पुष्करकर्णिका तथा पूर्ण चन्द्र की-सी गोल है। यह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।[4]

॥ नवम शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१. पाठान्तर—'जहा जंबुद्दीवपन्नत्तीए तहा नेयव्वं जोइसविहूणं।
जाव—"खंडा जोयण वासा पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ।
विजय द्दह सलिलाओ पिंडए होंति संगहणी॥'
—भगवती अ. वृत्ति में इसकी व्याख्या भी मिलती है।—सं.

२. वही, पत्र ४२५

३-४. [illegible]
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प. १२१ । ३०८।

बीओ उद्देसओ : जोइस

द्वितीय उद्देशक : ज्योतिष

१ रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

जम्बूद्वीप आदि द्वीप-समुद्रो मे चन्द्र आदि की सख्या

२ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे केवइया चदा पभासिसु वा पभासेंति वा पभासिस्सति वा ? एवं जहा[1] जीवाभिगमे जाव—'नव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीण' ।। सोभ सोभिसु सोभिति सोभिस्सति ।

[२ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे कितने चन्द्रो ने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ?

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी 'एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारो के समूह शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होगे' तक जानना चाहिए ।

३ लवणे ण भते ! समुद्दे केवतिया चदा पभासिसु वा पभासिंति वा पभासिस्सति वा ?

एव जहा जीवाभिगमे[2] जाव ताराओ ।

[३ प्र] भगवन् ! लवणसमुद्र म कितने चन्द्रो ने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ?

[३ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा है, उसी प्रकार तारो के वर्णन तक जानना चाहिए ।

४ धायइसडे कालोदे पुक्खरवरे अब्भितरपुक्खरद्धे मणुस्सखेत्ते, एएसु सव्वेसु जहा[3] जीवाभिगमे जाव—'एग ससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीण ।'

---

१ जीवाभिगम-मूलपाठ —जाव—एग च सयसहस्स तेत्तीस खलु भवे सहस्साइ —जीवाभिगम सू १५३, पत्र ३०३

२ देखिये—जीवाभिगमसूत्र पत्र ३०३, सू १५५ म—

पचम प्रश्न के उत्तर मे—सखेज्जा चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा इत्यादि ।

३ देखिये —जीवाभिगम मे—सू १७५-१७७ पत्र ३२७-३५ ।

३ कहि ण भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ? किंसंठिए ण भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ?

एवं जंबुद्दीवपण्णत्ती[1] भाणियव्वा जाव एवामेव सपुव्वावरेण जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासय सहस्सा छप्पन्नं च सहस्सा भवंतीति मक्खाया।

सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति०।

॥ नवम सए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

[३ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ? (उसका) संस्थान (आकार) किस प्रकार का है ?

[३ उ] गौतम ! इस विषय में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कहे अनुसार—जम्बूद्वीप नामक द्वीप में पूर्व-पश्चिम समुद्र गामी कुल मिलाकर चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है तक कहना चाहिए।

विवेचन—सपुव्वावरेण व्याख्या—पूर्वसमुद्र और अपर (पश्चिम) समुद्र की ओर जा कर उनमें गिरने वाली नदियाँ।[2]

चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार इस प्रकार हैं—

१ भरत और ऐरवत में—गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती, इन चार नदियों का प्रत्येक की चौदह-चौदह हजार सहायक नदियाँ हैं।

२ हैमवत और हैरण्यवत में—रोहित, रोहितांशा, सुवर्णकूला और रूप्यकूला इन चारों की, प्रत्येक की अट्ठाईस अट्ठाईस हजार नदियाँ हैं।

३ हरिवर्ष और रम्यकवर्ष में—हरि, हरिकान्ता, नरकान्ता, नारीकान्ता, इन चारों की, प्रत्येक की छप्पन छप्पन हजार नदियाँ हैं।

४ महाविदेह में—शीता और शीतोदा की प्रत्येक की ५ लाख ३२ हजार नदियाँ हैं। ये कुल मिला कर १४५६००० नदियाँ होती हैं।[3]

जम्बूद्वीप का आकार—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार—जम्बूद्वीप सब द्वीपों के मध्य में सबसे छोटा द्वीप है। इसकी आकृति तेल का मालपूआ, रथचक्र, पुष्करकर्णिका तथा पूर्ण चन्द्र की-सी गोल है। यह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।[4]

॥ नवम शतक प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ पाठान्तर—'जहा जंबुद्दीवपन्नत्तीए तहा णेयव्वं जोइसविहूणं।
जाव—"खंडा जोयण वासा पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ।
विजय द्दह सलिलाओ य पिंडए होंति संगहणी॥"
—भगवती अ वृत्ति में इसकी व्याख्या भी मिलती है।—सं

२ भगवती वृत्ति, पत्र ४२५ ३ वही, पत्र ४२५

४ "अय णं जंबुद्दीवे दीवे वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए, वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए, वट्टे पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए पन्नत्ते।" —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प १४ १-३०८।

बीओ उद्देसओ : जोइस

द्वितीय उद्देशक : ज्योतिष

१ रायगिहे जाव एव वयासी—

[१] राजगृह नगर मे यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

जम्बूद्वीप आदि द्वीप-समुद्रो मे चन्द्र आदि की सख्या

२ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे केवइया चदा पभासिसु वा पभासेंति वा पभासिस्सति वा ? एव जहा[1] जीवाभिगमे जाव—'नव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीण'।। सोभ सोभिसु सोभिति सोभिस्सति।

[२ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे कितने चन्द्रा ने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ?

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी 'एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारो के समूह शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होगे' तक जानना चाहिए।

३ लवणे ण भते ! समुद्दे केवतिया चदा पभासिसु वा पभासिति वा पभासिस्सति वा ? एव जहा जीवाभिगमे[2] जाव ताराओ।

[३ प्र] भगवन् ! लवणसमुद्र मे कितने चन्द्रा ने प्रकाश किया, प्रकाश करते है और प्रकाश करेंगे ?

[३ उ] गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगमसूत्र मे कहा है, उसी प्रकार तारो के वणन तक जानना चाहिए।

४ धायइसडे कालोदे पुक्खरवरे अब्भितरपुक्खरद्धे मणुस्सखेत्ते, एएसु सव्वेसु जहा[3] जीवाभिगमे जाव—'एग ससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीण।'

---

१ जीवाभिगम-मूलपाठ—जाव—एग च सयसहस्स तेत्तीस खलु भवे सहस्साइ—जीवाभिगम सू १५३, पत्र ३०३

२ दखिये—जीवाभिगमसूत्र पत्र ३०३, सू १५५ म—
पचम प्रश्न के उत्तर मे—सखेज्जा चदा पभासिसु वा पभासति वा पभासिस्सति वा इत्यादि।

३ देखिये—जीवाभिगम मे—सू १७५-१७७ पत्र ३२७-३५।

[४] धातकीखण्ड, कालोदधि, पुष्करवरद्वीप, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और मनुष्यक्षेत्र, इन सब में जीवाभिगमसूत्र के अनुसार—"एक चन्द्र का परिवार कोटाकोटी तारागण (सहित) होता है" तक जानना चाहिए।

५ पुक्खरद्धे णं भंते ! समुद्दे केवइया चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा ?

एवं सव्वेसु दीव समुद्देसु जोतिसियाणं भाणियव्वं जाव सयंभूरमणे जाव सोभं सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ नवम सए बीओ उद्देसओ समत्तो ॥९-२॥

[५ प्र] भगवन् ! पुष्करार्द्ध समुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ?

[५ उ] (जीवाभिगमसूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे उद्देशक में) समस्त द्वीपों और समुद्रों में ज्योतिष्क देवों का जो वर्णन किया गया है, उसी प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, (यों कह कर यावत् भगवान् गौतम विचरते हैं।)

विवेचन—जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश—प्रस्तुत द्वितीय उद्देशक में जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदसमुद्र, पुष्करवरद्वीप आदि सभी द्वीप समुद्रों में मुख्यतया चन्द्रमा की संख्या के विषय में तथा गौणरूप से सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की संख्या के विषय में प्रश्न किये हैं। उनके उत्तर में जीवाभिगमसूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के द्वितीय उद्देशक का अतिदेश किया गया है। जीवाभिगमसूत्र के अनुसार—मुख्यतया चन्द्रमा की संख्या—जम्बूद्वीप में २, लवणसमुद्र में ४, धातकी खण्डद्वीप में १२, कालोदसमुद्र में ४२, पुष्करवरद्वीप में १४४, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में ७२ तथा मनुष्यक्षेत्र में १३२ एवं पुष्करोदसमुद्र में संख्यात हैं। इसके अनन्तर मनुष्यक्षेत्र के बाहर के वरुणवरद्वीप एवं वरुणोदसमुद्र आदि असंख्यात द्वीप-समुद्रों में यथासम्भव संख्यात एवं असंख्यात चन्द्रमा हैं। इसी प्रकार इन सब में सूर्य, नक्षत्र, ग्रह तथा ताराओं की संख्या भी जीवाभिगमसूत्र से जान लेनी चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यक्षेत्र में जो भी चन्द्र, सूर्य आदि ज्योतिष्कदेव हैं, वे सब चर (गति करने वाले) हैं, जब कि मनुष्यक्षेत्र के बाहर के सब अचर (स्थिर) हैं।[1]

कुछ कठिन शब्दों के अर्थ—पभासिंसु=प्रकाश किया। सोभं सोभिंसु=शोभा को प्राप्त सुशोभित हुए।[2]

---

१ जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३ उद्देशक २, वृत्ति, सू १५३, १५५ १७५-७७, पत्र ३००, ३०३ ३२७ ३३५

२ (क) भगवती खण्ड ३, (भगवानदास दोशी) पृ १२६

(ख) भगवती वृत्ति, पत्र ४२७

नव य सया पण्णासा० इत्यादि पंक्ति का आशय—सू २ में 'जाव' शब्द से आगे और 'नव' शब्द से पूर्व 'एग च सयसहस्स तेत्तीस खलु भवे सहस्साइं' यह पाठ होना चाहिए, तभी यह अर्थ सगत हो सकता है कि 'एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोटाकोटि तारागण ।'[1]

सभी द्वीप-समुद्रों में चन्द्र आदि ज्योतिष्कों का अतिदेश—पांचवें सूत्र में पुष्करार्द्ध द्वीप में चन्द्र-सख्या के प्रश्न के उत्तर में अतिदेश किया गया है कि इस प्रकार सभी द्वीप-समुद्रों में चन्द्रमा ही नहीं, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह एव ताराओं (समस्त ज्योतिष्कदेवों) की सख्या जीवाभिगमसूत्र से जान लेनी चाहिए ।[2]

॥ नवम शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) जीवाभिगमसूत्र १५३ पत्र ३००
  (ख) भगवती अ वृत्ति पत्र ४२७
२ (क) जीवाभिगमसूत्र सू १७५-७७
  (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२८

तईआइया तीसता उद्देसा : अंतरदीवा

तृतीय से तीसवें उद्देशक तक : अन्तर्द्वीप

उपोद्घात

१ रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१ उपोद्घात] राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—

एकोरुक आदि अट्ठाईस अन्तर्द्वीपक मनुष्य

२ कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पन्नत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं एवं जहा जीवाभिगमे[1] जाव सुद्धदंतदीवे जाव देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२ प्र.] भगवन् ! दक्षिण दिशा का 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुकद्वीप' नामक द्वीप कहाँ बताया गया है ?

[२ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में [चुल्ल हिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के पूर्व दिशागत चरमान्त (किनारे) से उत्तर-पूर्वदिशा (ईशानकोण) में तीन सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर वहाँ दक्षिणदिशा के 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुक' नामक द्वीप है। हे गौतम ! उस द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई तीन सौ योजन है और उसकी परिधि (परिक्षेप) नौ सौ उनचास योजन से कुछ कम है। वह द्वीप एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से वेष्टित (घिरा हुआ) है। इन दोनों (पद्मवरवेदिका और वनखण्ड) का प्रमाण और वर्णन] जीवाभिगमसूत्र की तृतीय प्रतिपत्ति के प्रथम उद्देशक के अनुसार इसी क्रम से शुद्धदन्तद्वीप तक का वर्णन (जान लेना चाहिए।) हे आयुष्मन् श्रमण ! इन द्वीपों के मनुष्य देवगतिगामी कहे गए हैं।

३ एवं अट्ठावीसं पि अंतरदीवा सएणं सएणं आयाम-विक्खंभेणं भाणियव्वा, नवरं दीवे दीवे उद्देसओ। एवं सव्वे वि अट्ठावीसं उद्देसगा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ नवमं सए तइयाइआ तीसंता उद्देसा समत्ता ॥ ९. ३-३० ॥

---

१ देखिये—जीवाभिगम सूत्र सू. १०९-१२, पत्र १४४-१५६ (आगमो०)

"अधिक पाठ—दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं उत्तरपुरत्थिमेणं दिसिभागेणं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे नाम दीवे पण्णत्ते, 'तं गोयमा !' तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, नव एगूणपन्ने जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पन्नत्ते। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्ह वि पमाणं वण्णओ य, एवं एएणं कमेणं ।' —भगवती अ. वृत्ति पत्र ४२८

[३] इस प्रकार अपनी-अपनी लम्बाई-चौडाई के अनुसार इन अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो का वर्णन कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ एक-एक द्वीप के नाम से एक एक उद्देशक कहना चाहिए। इस प्रकार सब मिल कर इन अट्ठाईस अन्तर्द्वीपो के अट्ठाईस उद्देशक होते हैं।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, यो कह कर भगवान गौतम यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—अन्तर्द्वीप और वहाँ के निवासी मनुष्य—ये द्वीप लवणसमुद्र के अन्दर होने से 'अन्तर्द्वीप' कहलाते है। इनके रहने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपक कहलाते हैं। यो तो उत्तरवर्ती और दक्षिणवर्ती समस्त अन्तर्द्वीप छप्पन होते हैं, परन्तु **'दाहिणिल्लाण'** कह कर दक्षिणदिशावर्ती अन्तर्द्वीपो के सम्बन्ध मे ही प्रश्न है और वे २८ हैं। प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं— १ एकोरुक, २ आभासिक, ३ लागूलिक, ४ वैषाणिक, ५ हयकर्ण, ६ गजकर्ण, ७ गोकर्ण, ८ शष्कुलीकर्ण, ९ आदर्शमुख, १० मेण्ढमुख, ११ अयोमुख, १२ गोमुख, १३ अश्वमुख, १४ हस्तिमुख, १५ सिंहमुख, १६ व्याघ्रमुख, १७ अश्वकर्ण, १८ सिंहकर्ण, १९ अकर्ण, २० कर्णप्रावरण, २१ उल्कामुख, २२ मेघमुख, २३ विद्युन्मुख, २४ विद्युद्दन्त, २५ घनदन्त, २६ लष्टदन्त, २७ गूढदन्त और २८ शुद्धदन्त द्वीप। इन्ही अन्तर्द्वीपो के नाम पर इनके रहने वाले मनुष्य भी इसी नाम वाले कहलाते हैं तथा एकोरुक आदि २८ अन्तर्द्वीपो मे से प्रत्येक अन्तर्द्वीप के नाम से एक-एक उद्देशक है।[1]

जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश—'जम्बूद्वीप मे मेरुपर्वत से दक्षिण मे' इतना मूल मे कह कर आगे जीवाभिगमसूत्र का अतिदेश किया गया है, कई प्रतियो मे—"चुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स ... सव्वओ समता सपरिक्खित्ते, दोण्ह वि पमाण वण्णओ य, एव एएण कमेण," इत्यादि जो पाठ मिलता है, वह भगवतीसूत्र का मूलपाठ नही है, जीवाभिगमसूत्र का है। इसी कारण हमने कोष्ठक मे उसका अर्थ दे दिया है। यहाँ इतना ही मूलपाठ स्वीकृत किया है—**"एव जहा जीवाभिगमे जाव सुद्धदतदीवे ...।"** जीवाभिगम के पाठ मे वेदिका, वनखण्ड, कल्पवृक्ष, मनुष्य-मनुष्यणी का वर्णन किया गया है।[2]

अन्तर्द्वीपक मनुष्यो का आहार विहार आदि—अन्तर्द्वीपक मनुष्यो मे आहारसज्ञा एक दिन के अन्तर से उत्पन्न होती है। वे पृथ्वीरस, पुष्प और फल का आहार करते है। वहाँ की पृथ्वी का स्वाद खाड जैसा होता है। वृक्ष ही उनके घर होते हैं। वहा ईंट-चूने आदि के मकान नही होते। उन मनुष्यो की स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग होती है। छह मास आयुष्य शेष रहने पर वे एक साथ पुत्र पुत्रीयुगल को जन्म देते हैं। ८१ दिन तक उनका पालन-पोषण करते हैं। तत्पश्चात् मर कर वे

---

१ (क) भगवती (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १५७७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२८
(ग) पण्णवणासुत्त पद १, भा १ (महावीर विद्यालय) सू ९५, पृ ५५
२ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, मूलपाठ टिप्पण (म वि) भा १, पृ ४०८
(ख) भगवती अ वृत्ति पत्र ४२८

देवगति में उत्पन्न होते हैं। इसीलिए कहा गया है—'देवलोगपरिग्गहा' अर्थात् वे देवगतिगामी होते हैं।[1]

ये अन्तर्द्वीप कहाँ?—जीवाभिगमसूत्र के अनुसार—जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और हैमवत की सीमा बाँधने वाला चुल्ल हिमवान पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम में लवणसमुद्र को स्पर्श करता है। इसी पर्वत के पूर्वी और पश्चिमी किनारे से लवणसमुद्र में, चारों विदिशाओं में से प्रत्येक विदिशा में तीन-तीन सौ योजन आगे जाने पर एकोरुक आदि एक एक करके चार अन्तर्द्वीप आते हैं। ये द्वीप गोल हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई तीन-तीन सौ योजन की है तथा प्रत्येक की परिधि ९४९ योजन से कुछ कम है। इन द्वीपों से आगे ४००-४०० योजन लवणसमुद्र में जाने पर चार चार सौ योजन लम्बे-चौड़े हयकर्ण आदि पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ, ये चार द्वीप आते हैं। ये भी गोल हैं। इनकी परिधि १२६५ योजन से कुछ कम है।

इसी प्रकार इन से आगे क्रमशः पाँच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ एवं नौ सौ योजन जाने पर क्रमशः ४-४ द्वीप आते हैं, जिनके नाम पहले बता चुके हैं। इन चार-चार अन्तर्द्वीपों की लम्बाई चौड़ाई भी क्रमशः पाँच सौ से लेकर नौ सौ योजन तक जाननी चाहिए। ये सभी गोल हैं। इनकी परिधि तीन गुनी से कुछ अधिक है।[2]

इसी प्रकार चुल्ल हिमवान पर्वत की चारों विदिशाओं में ये २८ अन्तर्द्वीप हैं।

छप्पन अन्तर्द्वीप—जिस प्रकार चुल्ल हिमवान पर्वत की चारों विदिशाओं में २८ अन्तर्द्वीप कहे गए हैं, इसी प्रकार शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में भी २८ अन्तर्द्वीप हैं, जिसका वर्णन इसी शास्त्र के १० वें शतक के ७ वें से लेकर ३४ वें उद्देशक तक २८ उद्देशकों में किया गया है। उन अन्तर्द्वीपों के नाम भी इन्हीं के समान हैं।[3]

कठिन शब्दों के अर्थ—दाहिणिल्लाणं = दक्षिण दिशा के। चरिमंताओ = अन्तिम किनारे से। उत्तर-पुरत्थिमेणं = ईशानकोण = उत्तरपूर्व दिशा से। ओगाहित्ता = अवगाहन करने (आगे जाने) पर। एकूणवण्णे = उनचास। किंचिविसेसूणे = कुछ कम। परिक्खेवेणं = परिधि (घेरे) से युक्त। सव्वओ समंता = चारों ओर। संपरिक्खित्ते = परिवेष्टित, घिरा हुआ। सएणं = अपने।[4]

॥ नवम शतक : तीसरे से तीसवें उद्देशक तक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२९
(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १, पृ ४०८
२ (क) जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उ १, पृ १४४ से १५६ तक
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२९
३ भगवती शतक १०, उ ७ से ३४ तक मूलपाठ
४ (क) भगवती (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १५७७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४२९

एगत्तीसइमो उद्देसओ : 'असोच्चा केवली'

इकतीसवाँ उद्देशक : अश्रुत्वा केवली

उपोद्घात

१ रायगिहे जाव एव वयासी—

[१ उपोद्घात—] राजगृह नगर मे यावत् (गौतमस्वामी ने भगवान् महावीरस्वामी से) इस प्रकार पूछा—

केवली यावत् केवली-पाक्षिक उपासिका से धर्म श्रवण-लाभालाभ

२ [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा केवलिसावगस्स वा केवलिसावियाए वा केवलि-उवासगस्स वा केवलिउवासियाए वा तप्पक्खियस्स वा तप्पक्खियसावगस्स वा तप्पक्खियसावियाए वा तप्पक्खियउवासगस्स वा तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा अत्येगइए केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए, अत्येगइए केवलिपण्णत्त धम्म नो लभेज्जा सवणयाए ।

[२-१ प्र] भगवन ! केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवलि-पाक्षिक (स्वयम्बुद्ध), केवलि पाक्षिक के श्रावक, केवलि-पाक्षिक की श्राविका, केवलि-पाक्षिक के उपासक, केवलि-पाक्षिक की उपासिका, (इनमे से किसी) से विना सुने ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ होता है ?

[२-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका (इन दस) से सुने विना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी जीव को नही भी होता ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—असोच्चा ण जाव नो लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! जस्स ण नाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए, जस्स ण नाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि-पण्णत्त धम्म नो लभेज्ज सवणयाए, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—त चेव जाव नो लभेज्ज सवणयाए ।

[२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका (इन दस) से सुने विना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी को नही भी होता ?

[२-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, उसको केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका में से किसी से सुने बिना ही केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ होता है और जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया हुआ है, उसे केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण का लाभ नहीं होता। हे गौतम ! इसी कारण ऐसा कहा गया कि यावत् किसी को धर्म-श्रवण का लाभ होता है और किसी को नहीं होता।

विवेचन—केवली इत्यादि शब्दों का भावार्थ—केवलिस्स—जिन अथवा तीर्थंकर। केवलि श्रावक—जिसने केवली भगवान् से स्वयमेव पूछा है, अथवा उनके वचन सुने हैं, वह। केवलि उपासक—केवली की उपासना करने वाले अथवा केवली द्वारा दूसरे को कहे गए वचन को सुनकर बना हुआ उपासक, भक्त। केवलि पाक्षिक—अर्थात्—स्वयम्बुद्धकेवली।[1]

असोच्चा धम्म लभेज्जा सवणयाए—(उपर्युक्त दस में से किसी के पास से) धर्मफलादि के प्रतिपादक वचन को सुने बिना ही अर्थात्—स्वाभाविक धर्मानुराग वश होकर ही (केवलिप्ररूपित) श्रुत चारित्ररूप धर्म सुन पाता है, अर्थात्—श्रवणरूप से धर्म-लाभ प्राप्त करता है। आशय यह है कि वह धर्म का बोध पाता है।[2]

नाणावरणिज्जाणं खओवसमे—ज्ञानावरणीयकर्म के मतिज्ञानावरणीय आदि भेदों के कारण तथा मतिज्ञानावरण के भी अवग्रहादि अनेक भेद होने से यहाँ बहुवचन का प्रयोग किया गया है। क्षयोपशम शब्द का प्रयोग करने के कारण यहाँ मतिज्ञानावरणीयादि चार ज्ञानावरणीयकर्म ही ग्राह्य है, केवलज्ञानावरण नहीं, क्योंकि उसका क्षयोपशम नहीं, क्षय ही होता है। पर्वतीय नदी में लुढकते लुढकते गोल बने हुए पाषाणखण्ड की तरह किसी-किसी के स्वाभाविकरूप से ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम हो जाता है। ऐसी स्थिति में इन दस में से किसी से बिना सुने ही धर्मश्रवण प्राप्त कर लेता है। धर्मश्रवणलाभ में ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम अन्तरंग कारण है।[3]

केवली आदि से शुद्धबोधि का लाभालाभ

३. [१] असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव अत्थेगइए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, अत्थेगइए केवलं बोहिं णो बुज्झेज्जा।

[३-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्धबोधि (सम्यग्दर्शन) प्राप्त कर लेता है ?

[३-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कई जीव शुद्धबोधि प्राप्त कर लेते हैं और कई जीव प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

---

१ भगवती अ. वृत्ति पत्र ४३२
२ वही, पत्र ४३२
३ वही, पत्र ४३२

[२] से केणट्ठेणं भंते ! जाव नो बुज्झेज्जा ?

गोयमा ! जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खग्रोवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खग्रोवसमे णो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलं बोहिं णो बुज्झेज्जा, से तेणट्ठेणं जाव णो बुज्झेज्जा ।

[३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है कि यावत् शुद्धबोधि प्राप्त नहीं कर पाता ?

[३-२ उ] हे गौतम ! जिस जीव ने दर्शनावरणीय (दर्शन-मोहनीय) कर्म का क्षयोपशम किया है, वह जीव केवली यावत् केवलि-पाक्षिक उपासिका से सुने बिना ही शुद्धबोधि प्राप्त कर लेता है, किन्तु जिस जीव ने दर्शनावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया है, उस जीव को केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना शुद्धबोधि का लाभ नहीं होता । इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि यावत् किसी को सुने बिना शुद्धबोधिलाभ नहीं होता ।

विवेचन—शुद्धबोधिलाभ सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि केवली आदि दस साधकों से धर्म सुने बिना ही शुद्धबोधिलाभ उसी को होता है जिसने दर्शन-मोहनीय कर्म का क्षयोपशम किया हो, जिसने दर्शनमोहनीय का क्षयोपशम नहीं किया, उसे शुद्धबोधिलाभ नहीं होता ।[1]

कतिपय शब्दों के भावार्थ—केवलं बोहिं बुज्झेज्जा=केवल=शुद्धबोधि=शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता=अनुभव करता है । दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं=यहाँ 'दर्शनावरणीय' से दर्शन-मोहनीयकर्म का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि बोधि, सम्यग्दर्शन का पर्यायवाची शब्द है । अतः सम्यग्दर्शन (बोधि) का लाभ दर्शनमोहनीयकर्म क्षयोपशमजन्य है ।[2]

केवली आदि से शुद्ध अनगारिता का ग्रहण-अग्रहण

४ [१] **असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ?**

गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगइए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा, अत्थेगइए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं नो पव्वएज्जा ।

[४-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव केवल मुण्डित होकर अगारवास त्याग कर अनगारधर्म में प्रव्रजित हो सकता है ?

[४-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव मुण्डित होकर अगारवास छोड़कर शुद्ध या सम्पूर्ण अनगारिता में प्रव्रजित हो पाता है और कोई प्रव्रजित नहीं हो पाता है ।

---

१ भगवतीसूत्र अ. वृत्ति का निष्कर्ष, पत्र ४३२

२ वही अ. वृत्ति, पत्र ४३२

[२] से केणट्ठेण जाव नो पव्वएज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण धम्मतराइयाण खग्रोवसमे कडे भवति से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल मु डे भवित्ता ग्रगाराग्रो ग्रणगारिय पव्वएज्जा, जस्स ण धम्मतराइयाण कम्माण खग्रोवसमे नो कडे भवति से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव मु डे भवित्त जाव णो पव्वएज्जा, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो पव्वएज्जा ।

[४-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से यावत् कोई जीव प्रव्रजित नही हो पाता ?

[४-२ उ] गौतम ! जिस जाव के धर्मान्तरायिक कर्मों का क्षयोपशम किया हुग्रा है, वह जीव केवली ग्रादि से सुने बिना ही मुण्डित होकर ग्रगारवास मे ग्रनागारधर्म मे प्रव्रजित हो जाता है, किन्तु जिस जीव के धर्मान्तरायिक कर्मो का क्षयोपशम नही हुग्रा है, वह मुण्डित होकर ग्रगारवास से ग्रनगारधर्म मे प्रव्रजित नही हो पाता । इसी कारण से हे गौतम ! यह कहा गया है कि यावत् वह (कोई जीव) प्रव्रज्या ग्रहण नही कर पाता ।

विवेचन—केवल मु डे भवित्ता ग्रगाराग्रो ग्रणगारिय पव्वएज्जा भावार्थ—मुण्डित होकर गृहवासत्याग करके शुद्ध या सम्पूर्ण ग्रनगारिता मे प्रव्रजित हो पाता है, ग्रर्थात् ग्रनागारधर्म में दीक्षित हो पाता है ।[1]

धम्मतराइयाण कम्माण—धर्म मे ग्रर्थात्—चारित्र अगीकाररूप धर्म मे ग्रन्तराय—विघ्न डालने वाले कर्म धर्मान्तरायिककर्म ग्रर्थात्—वीर्यान्तराय एव विविध चारित्रमोहनीय कर्म ।[2]

केवली आदि से ब्रह्मचर्य-वास का धारण-अधारण

५ [१] ग्रसोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा केवल बमचेरवासं ग्रावसेज्जा ?

गोयमा ! ग्रसोच्चा ण केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा ग्रत्थेगइए केवल बमचेरवासं ग्रावसेज्जा, ग्रत्थेगइए केवल बमचेरवास नो ग्रावसेज्जा ।

[५-१ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण कर पाता है ?

[५-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण लेता है ग्रौर कोई नही कर पाता ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव नो ग्रावसेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण चरित्तावरणिज्जाण कम्माण खग्रोवसमे कडे भवइ से ण ग्रसोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल बमचेरवास ग्रावसेज्जा, जस्स ण चरित्तावरणिज्जाण कम्माण खग्रोवसमे नो कडे भवइ से ण ग्रसोच्चा केवलिस्स वा जाव नो ग्रावसेज्जा, से तेणट्ठेण जाव नो ग्रावसेज्जा ।

१ भगवती ग्र वृत्ति पत्र ४३३
२ वही, पत्र ४३३

[५-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् कोई जीव धारण नही कर पाता ?

[५-२ उ.] गौतम ! जिस जीव ने चारित्रावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया है वह केवली आदि से सुने विना ही शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण कर लेता है किन्तु जिस जीव ने चारित्रावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नही किया है, वह जीव यावत शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण नही कर पाता। इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत वह धारण नही कर पाता है।

विवेचन—चारित्रावरणीयकर्म—यहाँ वेद-नोकषायमोहनीयरूप चारित्रावरणीयकर्म विशेष रूप से ग्रहण करने चाहिए, क्योंकि मैथुनविरमण रूप ब्रह्मचर्यवास के विशेषत आवारककर्म वे ही हैं।[1]

केवली आदि से शुद्ध सयम का ग्रहण-अग्रहण

६ [१] असोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव केवलेण सजमेण सजमेज्जा ?

गोयमा ! असोच्चा ण केवलिस्स जाव उवासियाए वा जाव अत्थेगइए केवलेण सजमेण सजमेज्जा, अत्थेगइए केवलेण सजमेण नो सजमेज्जा।

[६-१ प्र.] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध सयम द्वारा सयम—यतना करता है ?

[६-१ उ.] हे गौतम ! केवलि यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध सयम द्वारा सयम—यतना करता है और कोई जीव नही करता है।

[२] से केणट्ठेण जाव नो सजमेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण जयणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलेण सजमेण सजमेज्जा, जस्स ण जयणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव नो सजमेज्जा, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव अत्थेगइए नो सजमेज्जा।

[६-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि यावत् कोई जीव शुद्ध सयम द्वारा सयम—यतना करता है और कोई जीव नही करता है ?

[६-२ उ.] गौतम ! जिस जीव ने यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, वह केवली यावत् केवलि पाक्षिक-उपासिका से सुने विना ही शुद्ध सयम द्वारा सयम—यतना करता है, किन्तु जिसने यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम नही किया है, वह केवली आदि से सुने बिना यावत् शुद्ध सयम द्वारा सयम—यतना नही करता। इसीलिए हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से कहा गया है कि यावत् कोई यतना नही करता।

विवेचन—केवलेण सजमेण सजमेज्जा—शुद्ध सयम अर्थात्—चारित्र ग्रहण अथवा पालन करके सयम—यतना करता है—अर्थात् सयम मे लगने वाले अतिचार का परिहार करने के लिए

---

1 भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३

यतनाविशेष करता है। जयणावरणिज्जाण कम्माण०—यतनावरणीयकर्म से चारित्रविशेषविषयक वीर्यान्तरायरूप कर्म समझना चाहिए।[1]

केवली आदि से शुद्ध संवर का आचरण-अनाचरण

७ [१] असोच्चा ण भंते! केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स जाव अत्थेगइए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगइए केवलेणं जाव नो संवरेज्जा।

[७-१ प्र.] भगवन्! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्म-श्रवण किये बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध संवर द्वारा संवृत होता है?

[७-१ उ.] गौतम! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत होता है और कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत नहीं होता है।

[२] से केणट्ठेणं जाव नो संवरेज्जा?

गोयमा! जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव नो संवरेज्जा, से तेणट्ठेणं जाव नो संवरेज्जा।

[७-२ प्र.] भगवन्! किस कारण से (ऐसा कहा जाता है कि कोई जीव केवली आदि से सुने बिना ही शुद्ध संवर से संवृत होता है और कोई जीव) यावत् नहीं होता?

[७-२ उ.] गौतम! जिस जीव ने अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने बिना ही, यावत् शुद्ध संवर से संवृत हो जाता है, किन्तु जिसने अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं किया है वह जीव केवली आदि से सुने बिना यावत् शुद्ध संवर से संवृत नहीं होता। इसी कारण से हे गौतम! यह कहा जाता है कि यावत् शुद्ध संवर से संवृत नहीं होता।

विवेचन—केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा—शुद्ध संवर से संवृत होता है, अर्थात्—आस्रवनिरोध करता है।

अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं—संवर शब्द से यहाँ शुभ अध्यवसायवृत्ति विवक्षित है। वह भावचारित्र रूप होने से तदावरणक्षयोपशम-लभ्य है, इसलिए अध्यवसानावरणीय शब्द से यहाँ भावचारित्रावरणीयकर्म समझने चाहिए।[2]

केवली आदि से आभिनिबोधिक आदि ज्ञान-उपार्जन-अनुपार्जन

८ [१] असोच्चा णं भंते! केवलिस्स जाव केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४३३

२ भगवती अ. वृत्ति पत्र ४३३

[८-१ प्र] भगवन् ! केवली आदि से सुने विना ही क्या कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिक-ज्ञान उपार्जन कर लेता है ?

[८-१ उ] गौतम ! केवली आदि से सुने विना कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त करता है और कोई जीव यावत नही प्राप्त करता है ।

[२] से केणट्ठेण जाव नो उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! जस्स ण आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल आभिणिबोहियनाण उप्पाडेज्जा, जस्स ण आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे नो कडे भवइ से ण असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवल आभिणिबोहियनाण नो उप्पाडेज्जा, से तेणट्ठेण जाव नो उप्पाडेज्जा ।

[८-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से यावत् नही प्राप्त करता ?

[८-२ उ] गौतम ! जिस जीव ने आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि से सुने विना ही शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है, किन्तु जिसने आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नही किया है, वह केवली आदि से सुने विना शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन नही कर पाता । हे गौतम ! इसीलिए कहा जाता है कि कोई जीव यावत् (शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है और) कोई नही कर पाता है ।

९ असोच्चा ण भते ! केवलि० जाव केवल सुयनाण उप्पाडेज्जा ?

एव जहा आभिणिबोहियनाणस्स वत्तव्वया भणिया तहा सुयनाणस्स वि भाणियव्वा, नवर सुयनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे भाणियव्वे ।

[९ प्र] भगवन् ! केवली आदि से सुने विना ही क्या कोई जीव श्रुतज्ञान उपार्जन कर लेता है ?

[९ उ] (गौतम !) जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञान का कथन किया गया, उसी प्रकार शुद्ध श्रुतज्ञान के विषय मे भी कहना चाहिए । विशेष इतना है कि यहा श्रुतज्ञानावरणीयकर्मो का क्षयोपशम कहना चाहिए ।

१० एव चेव केवल ओहिनाण भाणियव्व, नवर ओहिणाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे भाणियव्वे ।

[१०] इसी प्रकार शुद्ध अवधिज्ञान के उपार्जन के विषय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ अवधिज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहना चाहिए ।

११ एव केवल मणपज्जवनाण उप्पाडेज्जा, नवर मणपज्जवणाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे भाणियव्वे ।

[११] इसी प्रकार शुद्ध मन पर्यवज्ञान के उत्पन्न होने के विषय मे कहना चाहिए । विशेष इतना है कि मन पर्ययज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम का कथन करना चाहिए ।

१२ असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलनाणं उप्पाडेज्जा ?

एवं चेव, नवरं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए भाणियव्वे, सेसं तं चेव। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा।

[१२ प्र.] भगवन् ! केवली यावत् केवलि पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन कर लेता है ?

[१२ उ.] पूर्ववत् यहाँ भी कहना चाहिए। विशेष इतना ही है कि यहाँ केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय कहना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् है। इसीलिए हे गौतम ! यह कहा जाता है कि यावत् केवलज्ञान का उपार्जन करता।

विवेचन—आभिनिबोधिक आदि ज्ञानों के उत्पादन के सम्बन्ध में—निष्कर्ष यह है कि आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान, इन पाँच ज्ञानों का उपार्जन केवली आदि से सुने बिना भी वही कर सकता है, जिसके उस-उस ज्ञान के आवरणरूप कर्मों का क्षयोपशम तथा क्षय हो गया हो, अन्यथा नहीं कर सकता।

केवली आदि से ग्यारह बोलों की प्राप्ति और अप्राप्ति

१३ [१] असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए १ ?, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा २ ? केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ३ ?, केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा ४ ?, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा ५ ?, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा ६ ?, केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा ७ ?, जाव केवलं मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा १० ?, केवलनाणं उप्पाडेज्जा ११ ?,

गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा अत्थेगइए केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगइए केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए १, अत्थेगइए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, अत्थेगइए केवलं बोहिं णो बुज्झेज्जा २, अत्थेगइए केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा, अत्थेगइए जाव नो पव्वएज्जा ३, अत्थेगइए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगइए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा ४, अत्थेगइए केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, अत्थेगइए केवलेणं संजमेणं नो संजमेज्जा ५, एवं संवरेण वि ६, अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए जाव नो उप्पाडेज्जा ७, एवं जाव[1] मणपज्जवनाणं ८-९-१०, अत्थेगइए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ११।

[१३-१ प्र.] भगवन् ! १ केवली यावत् केवलि-पाक्षिक-उपासिका के पास से धर्मश्रवण किये बिना ही क्या कोई जीव केवलि-प्ररूपित धर्म-श्रवण लाभ करता है ? २ शुद्ध

---

१ 'जाव' पद से यहाँ 'श्रुतज्ञान और 'अवधिज्ञान' पद समझना चाहिए।

बोधि (सम्यग्दर्शन) प्राप्त करता है ? ३ मुण्डित होकर अगारवास से शुद्ध अनगारिता को स्वीकार करता है ? ४ शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है ? ५ शुद्ध संयम द्वारा संयम—यतना करता है ? ६ शुद्ध संवर से संवृत होता है ? ७-१० शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न करता है, यावत् शुद्ध मनःपर्यवज्ञान तथा ११ केवलज्ञान उत्पन्न करता है ?

[१३-१ उ] गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना ही कोई जीव केवलि-प्ररूपित धर्म श्रवण का लाभ पाता है, कोई जीव नहीं पाता है ।१। कोई जीव शुद्ध बोधिलाभ प्राप्त करता है, कोई नहीं प्राप्त करता है ।२। कोई जीव मुण्डित हो कर अगारवास से शुद्ध अनगारधर्म में प्रव्रजित होता है और कोई प्रव्रजित नहीं होता है ।३। कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण करता है और कोई धारण नहीं करता है ।४। कोई जीव शुद्ध संयम से संयम—यतना करता है और कोई नहीं करता है ।५। कोई जीव शुद्ध संवर से संवृत होता है और कोई जीव संवृत नहीं होता है ।६। इसी प्रकार कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन करता है और कोई उपार्जन नहीं करता है ।७। कोई जीव यावत् मनःपर्यवज्ञान का उपार्जन करता है और कोई नहीं करता है ।८-९-१०। कोई जीव केवलज्ञान का उपार्जन करता है और कोई नहीं करता है ।।११।।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ असोच्चा णं तं चेव जाव अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ?

गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ १, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ २, जस्स णं धम्मंतराइयाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ३, एवं चरित्तावरणिज्जाणं ४, जयणावरणिज्जाणं ५, अज्झवसाणावरणिज्जाणं ६, आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं ७, जाव मणपज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ ८-९-१०, जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं जाव खए नो कडे भवइ ११, से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव[1] केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए, केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा जाव केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा। जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवति १, जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ २, जस्स णं धम्मंतराइयाणं ३, एवं जाव जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए कडे भवइ ११, से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए १, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा २, जाव केवलणाणं उप्पाडेज्जा ११।

[१३-२ प्र] भगवन् ! इस (पूर्वोक्त) कथन का क्या कारण है कि कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण-लाभ करता है, यावत् केवलज्ञान का उपार्जन करता है और कोई यावत् केवलज्ञान का नहीं करता है ?

[१३-२ उ] गौतम ! (१) जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (२) जिस जीव ने दर्शनावरणीय (दर्शनमोहनीय) कर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (३) धर्मान्तरायिक-

[1] 'जाव' शब्द से यहाँ 'श्रुतज्ञान और 'अवधिज्ञान' पद जोड़ना चाहिए।

कर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (४) चारित्रावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (५) यतनावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (६) अध्यवसानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (७) आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (८ से १०) इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय और मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया तथा (११) केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय नहीं किया, वे जीव केवली आदि से धर्मश्रवण किये बिना धर्म-श्रवणलाभ नहीं पाते, शुद्धबोधिकलाभ का अनुभव नहीं करते, यावत् केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाते। किन्तु (१) जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्मों का क्षयोपशम किया है, (२) जिसने दर्शनावरणीयकर्मों का क्षयोपशम किया है, (३) जिसने धर्मान्तरायिककर्मों का क्षयोपशम किया है, (४-११) यावत् जिसने केवलज्ञानावरणीयकर्मों का क्षय किया है, वह केवली आदि से धर्मश्रवण किये बिना ही केवलि-प्ररूपित धर्म श्रवण लाभ प्राप्त करता है, शुद्ध बोधिलाभ का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान को उपार्जित कर लेता है।

विवेचन—ग्यारह बोलों की प्राप्ति किसको और किसको नहीं ?—केवलज्ञानी आदि दस में से किसी से शुद्ध धर्म श्रवण किये बिना ही कौन व्यक्ति केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ पाता, शुद्ध सम्यग्दर्शन का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान उपार्जित करता है ? इसके उत्तर में प्रस्तुत सूत्र (सू. १३) में उन-उन कर्मों का क्षयोपशम तथा क्षय करने वाले व्यक्ति को उस-उस बोल की प्राप्ति बताई गई है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति के उन-उन आवारक कर्मों का क्षयोपशम या क्षय नहीं होता, वह उस-उस बोल की प्राप्ति से वंचित रहता है।

केवली आदि से बिना सुने केवलज्ञानप्राप्ति वाले को विभंगज्ञान एवं क्रमशः अवधिज्ञान प्राप्त होने की प्रक्रिया

१४. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगतिभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगतिपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए मिउमद्दवसंपन्नयाए अल्लीणताए भद्दताए विणीतताए अण्णया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं अन्नाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं जाणइ पासइ, से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं जीवे वि जाणइ, अजीवे वि जाणइ, पासंडत्थे सारंभे सपरिग्गहे संकिलिस्समाणे वि जाणइ, विसुज्झमाणे वि जाणइ, से णं पुव्वामेव सम्मत्तं पडिवज्जइ, सम्मत्तं पडिवज्जित्ता समणधम्मं रोएति, समणधम्मं रोएत्ता चरित्तं पडिवज्जइ, चरित्तं पडिवज्जित्ता लिंगं पडिवज्जइ, तस्स णं तेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं, सम्मद्दंसणपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं से विब्भंगे अन्नाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।

[१४] निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) का तप कर्म करते हुए सूर्य के सम्मुख बाहें ऊँची करके आतापनाभूमि में आतापना लेते हुए उस (बिना धर्मश्रवण किए केवलज्ञान प्राप्त करने वाले) जीव की प्रकृति-भद्रता से, प्रकृति की उपशान्तता से स्वाभाविक रूप से ही क्रोध, मान, माया और

लोभ की अत्यन्त मन्दता होने से, अत्यन्त मृदुत्वसम्पन्नता से, कामभोगो मे अनासक्ति से, भद्रता और विनीतता से तथा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या एव तदावरणीय (विभगज्ञानावरणीय) कर्मों के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए 'विभग' नामक अज्ञान उत्पन्न होता है। फिर वह उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान द्वारा जघन्य अगुल के असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट असख्यात हजार योजन तक जानता और देखता है। उस उत्पन्न हुए विभगज्ञान से वह जीवो को भी जानता है और अजीवो को भी जानता है। वह पाषण्डस्थ, सारम्भी (आरम्भयुक्त), सपरिग्रह (परिग्रही) और सक्लेश पाते हुए जीवो को भी जानता है और विशुद्ध होते हुए जीवो को भी जानता है। (तत्पश्चात्) वह (विभगज्ञानी) सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, सम्यक्त्व प्राप्त करके श्रमणधर्म पर रुचि करता है, श्रमणधर्म पर रुचि करके चारित्र अगीकार करता है। चारित्र अगीकार करके लिंग (साधुवेश) स्वीकार करता है। तब उस (भूतपूर्व विभगज्ञानी) के मिथ्यात्व के पर्याय क्रमश क्षीण होते-होते और सम्यग्दर्शन के पर्याय क्रमश बढते-बढते वह 'विभग' नामक अज्ञान, सम्यक्त्व-युक्त होता है और शीघ्र ही अवधि (ज्ञान) के रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

विवेचन—'तस्स छट्ठछट्ठेणं' आशय—जो व्यक्ति केवली आदि से बिना सुने ही केवलज्ञान उपार्जन कर लेता है, ऐसे किसी जीव को किस क्रम से अवधिज्ञान प्राप्त होता है, उसकी प्रक्रिया यहा बताई गई है। 'छट्ठछट्ठेणं' यहा यह बताने के लिए कहा गया है कि प्राय लगातार बेले-बेले की तपस्या करने वाले बालतपस्वी को विभगज्ञान उत्पन्न होता है।[1]

ईहापोहमग्गणगवेसण ईहा—विद्यमान पदार्थों के प्रति ज्ञानचेष्टा। अपोह—'यह घट है, पट नही,' इस प्रकार विपक्ष के निराकरणपूर्वक वस्तुतत्त्व का विचार। मार्गण—अन्वयधर्म—पदार्थ मे विद्यमान गुणो का आलोचन (विचार)। गवेषण—व्यतिरेक (धर्म) का निराकरण रूप आलोचन (विचार)।[2]

समुत्पन्न विभगज्ञान की शक्ति—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि वह बालतपस्वी विभगज्ञान प्राप्त होने पर जीवो को भी कथचित् ही जानता है, साक्षात् नही, क्योंकि विभगज्ञानी मूर्तपदार्थों को ही जान सकता है, अमूर्त को नही। इसी प्रकार पाषण्डस्थ यानी व्रतस्थ, आरम्भ-परिग्रहयुक्त होने से महान् सक्लेश पाते हुए जीवो को भी जानता है और अल्पमात्रा मे परिणामो की विशुद्धि होने से परिणामविशुद्धिमान् जनो को भी जानता है।[3]

विभगज्ञान अवधिज्ञान मे परिणत होने की प्रक्रिया—इससे पूर्व प्रकृतिभद्रता, विनम्रता, कषायो की उपशान्तता, कामभोगो मे अनासक्ति, शुभ अध्यवसाय एव सुपरिणाम आदि के कारण विभगज्ञानी होते हुए भी परिणामों की विशुद्धि होने से सर्वप्रथम सम्यक्त्वप्राप्ति, फिर श्रमणधर्म पर रुचि, चारित्र को अगीकार और फिर साधुवेष को स्वीकार करता है। सम्यक्त्वप्राप्ति किस प्रकार होती है ? इसकी प्रक्रिया बताने के लिए अन्त मे पाठ दिया गया है— विभगे अण्णाणे सम्मत्त-

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३३

२ वही अ वृत्ति पत्र ४३३

३ वही अ वृत्ति, पत्र ४३३

परिग्गहिए । उसका आशय यह है कि चारित्र प्राप्ति से पहले वह भूतपूर्व विभंगज्ञानी सम्यक्त्व प्राप्त करता है और सम्यक्त्व प्राप्त होते ही उसका विभंगज्ञान अवधिज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है। उसके बाद की प्रक्रिया है—श्रमणधर्म की रुचि, चारित्रधर्मस्वीकार, वेशग्रहण आदि, जो कि मूलपाठ में पहले बता दी गई है।[1]

'अणिक्खित्तेणं' आदि शब्दों का भावार्थ—अणिक्खित्तेणं—लगातार बीच में छोड़े बिना। पगिज्झिय—रख कर। आयावणभूमीए—आतापना लेने के स्थान में। पगइपतणुकोह —प्रकृति से, स्वभाव से ही पतले क्रोधादि कषाय। मिउमद्दवसंपण्णयाए—अत्यन्त मृदुता-कोमलता से सम्पन्न होने के कारण। अल्लीणयाए—अलीनता = अनासक्ति = कामभोगों के प्रति गृद्धिरहितता। अण्णया कयाइ—अन्य किसी समय। परिहायमाणेहिं = परिक्षीण होते हुए। परिवड्ढमाणेहिं = बढ़ते बढ़ते। ओही परावत्तइ—अवधिज्ञान में परिवर्तित हो जाता है।[2]

पूर्वोक्त अवधिज्ञानी में लेश्या, ज्ञान आदि का निरूपण

१५ से णं भंते! कतिसु लेस्सासु होज्जा?

गोयमा! तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्जा, तं जहा—तेउलेस्साए पम्हलेस्साए सुक्कलेस्साए।

[१५ प्र.] भगवन्! वह अवधिज्ञानी कितनी लेश्याओं में होता है?

[१५ उ.] गौतम! वह तीन विशुद्ध लेश्याओं में होता है, यथा—१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या और ३ शुक्ललेश्या।

१६ से णं भंते! कतिसु णाणेसु होज्जा?

गोयमा! तिसु, आभिणिबोहियनाण-सुयनाण ओहिनाणेसु होज्जा।

[१६ प्र.] भगवन्! वह अवधिज्ञानी कितने ज्ञानों में [illegible]

[१६ उ.] गौतम! वह आभिनिबोधिक ज्ञान, [illegible] अवधिज्ञान में होता है।

१७ [१] से णं भंते! किं सजोगी होज्जा, [illegible]

गोयमा! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

[१७-१ प्र.] भगवन्! वह सयोगी होता है, या [illegible]

[१७-१ उ.] गौतम! वह सयोगी होता है, [illegible]

[२] जइ सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा [illegible]

गोयमा! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा [illegible]

[१७-२ प्र.] भगवन्! यदि वह सयोगी होता है, [illegible] होता है या काययोगी होता है?

[१७-२ उ.] गौतम! वह [illegible] होता है, [illegible]

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४३६

२ वही पत्र ४३३

१८ से ण भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा अणागारोवउत्ते वा होज्जा ।

[१८ प्र] भगवन् ! वह साकारोपयोग युक्त होता है, अथवा अनाकारोपयोग-युक्त होता है ?

[१८ उ] गौतम ! वह साकारोपयोग युक्त भी होता है और अनाकारोपयोग-युक्त भी होता है ।

१९ से ण भंते ! कयरम्मि संघयणे होज्जा ?

गोयमा ! वइरोसभनारायसंघयणे होज्जा ।

[१९ प्र] भगवन् ! वह किस संहनन मे होता है ?

[१९ उ] गौतम ! वह वज्रऋषभनाराचसहनन वाला होता है ।

२० से ण भंते ! कयरम्मि संठाणे होज्जा ?

गोयमा ! छण्ह संठाणाण अन्नयरे संठाणे होज्जा ।

[२० प्र] गौतम ! वह किस सस्थान मे होता है ?

[२० उ] भगवन् ! वह छह सस्थानो मे से किसी भी सस्थान मे होता है ।

२१ से ण भंते ! कयरम्मि उच्चत्ते होज्जा !

गोयमा ! जहन्नेण सत्त रयणी, उक्कोसेण पचधणुसतिए होज्जा ।

[२१ प्र] भगवन् ! वह कितनी ऊँचाई वाला होता है ?

[२१ उ] गौतम ! वह जघन्य सात हाथ (रत्नि) और उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष ऊँचाई वाला होता है ।

२२ से ण भंते ! कयरम्मि आउए होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउए होज्जा ।

[२२ प्र] भगवन् ! वह कितनी आयुष्य वाला होता है ?

[२२ उ] गौतम ! वह जघन्य साधिक आठ वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि आयुष्य वाला होता है ।

२३ [१] से ण भंते ! किं सवेदए होज्जा, अवेदए होज्जा ?

गोयमा ! सवेदए होज्जा, नो अवेदए होज्जा ।

[२३-१ प्र] भगवन् ! वह सवेदी होता है या अवेदी ?

[२३-१ उ] गौतम ! वह सवेदी होता है, अवेदी नही होता ।

[२] जइ सवेदए होज्जा किं इत्थीवेदए होज्जा, पुरिसवेदए होज्जा, नपुसगवेदए होज्जा, पुरिसनपुसगवेदए होज्जा ?

गोयमा ! नो इत्थिवेदए होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, नो नपुसगवेदए होज्जा, पुरिस-नपुसगवेदए वा होज्जा ।

[२३-२ प्र] भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है, नपुंसकवेदी होता है, या पुरुष नपुंसक (—कृत्रिम नपुंसक—) वेदी होता है ?

[२३-२ उ] गौतम ! वह स्त्रीवेदी नहीं होता, पुरुषवेदी होता है, नपुंसकवेदी नहीं होता, किन्तु पुरुष-नपुंसकवेदी होता है।

२४ [१] से णं भंते ! किं सकसाई होज्जा, अकसाई होज्जा ?

गोयमा ! सकसाई होज्जा, नो अकसाई होज्जा।

[२४-१ प्र] भगवन् ! क्या वह (अवधिज्ञानी) सकषायी होता है, अथवा अकषायी होता है ?

[२४-१ उ] गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता।

[२] जइ सकसाई होज्जा, से णं भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु संजलणकोह-माण-माया लोभेसु होज्जा।

[२४-२ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो वह कितने कषायों वाला होता है ?

[२४-२ उ] गौतम ! वह संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार कषायों से युक्त होता है।

२५ [१] तस्स णं भंते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

[२५-१ प्र] भगवन् ! उसके कितने अध्यवसाय कहे हैं ?

[२५-१ उ] गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय कहे हैं।

[२] ते णं भंते ! किं पसत्था अप्पसत्था ?

गोयमा ! पसत्था, नो अप्पसत्था।

[२५-२ प्र] भगवन् ! उसके वे अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त होते हैं ?

[२५-२ उ] गौतम ! वे प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते हैं।

विवेचन—अवधिज्ञानी के सम्बन्ध में प्रश्न—ये प्रश्न जो लेश्या, ज्ञान, योग, उपयोग आदि के सम्बन्ध में किए गए हैं, वे उसके सम्बन्ध में किये गए हैं जो पहले विभंगज्ञानी था, किन्तु पूर्वोक्त प्रक्रियापूर्वक शुद्ध अध्यवसाय एवं शुद्ध परिणाम के कारण सम्यक्त्व प्राप्त करके अवधिज्ञानी हुआ और श्रमणधर्म में दीक्षित होकर चारित्र ग्रहण कर चुका है।[1]

'तिसु विसुद्धलेसासु होज्ज'—प्रशस्त भावलेश्या होने पर ही सम्यक्त्वादि प्राप्त होते हैं, अप्रशस्त लेश्याओं में नहीं। इसी का संकेत करने के लिये 'तिसु विसुद्ध लेसासु' (तेजो पद्म शुक्ल लेश्या) पद दिया है।

तिसु णाणेसु होज्ज—विभंगज्ञानी को सम्यक्त्व प्राप्त होते ही उसके मति-अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान, ये तीनों अज्ञान, (मति-श्रुतावधि-) ज्ञानरूप में परिणत हो जाते हैं।

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४३५

णो अजोगी होज्ज—अवधिज्ञानी को अवधिज्ञान काल मे अयोगी-अवस्था प्राप्त नही होती।

सागारोवउत्ते वा—विभगज्ञान से निवृत्त होने वाला अवधिज्ञानी, दोनो उपयोगो मे से किसी भी एक उपयोग मे प्रवृत्त होता है।

साकारोपयोग एव अनाकारोपयोग का अर्थ—साकारोपयोग अर्थात् ज्ञान और अनाकारोपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग से पूर्व होने वाला दर्शन (निराकार ज्ञान)।

वज्रऋषभनाराच सहनन ही क्यो?—यहा जो अवधिज्ञानी के लिए वज्रऋषभनाराच-सहनन का कथन किया गया है, वह आगे प्राप्त होने वाले केवलज्ञान की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञान की प्राप्ति वज्रऋषभनाराच-सहनन वालो को ही होती है।

सवेदी आदि का तात्पर्य—विभगज्ञान से अवधिज्ञान काल से साधक सवेदी होता है, क्योकि उस दशा मे उसके वेद का क्षय नही होता। विभगज्ञान से अवधिज्ञान प्राप्त करने की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया का स्त्री मे स्वभावत अभाव होता है। अत सवेदी मे वह पुरुषवेदी एव कृत्रिमनपु सकवेदी होता है।

सकसाई होज्ज—विभगज्ञान एव अवधिज्ञान के काल मे कषायक्षय नही होता, किन्तु सज्वलनकषाय होता है, क्योकि विभगज्ञान के अवधिज्ञान मे परिणत होने पर वह अवधिज्ञानी साधक जब चारित्र अगीकार कर लेता है, तब उसमे सज्वलन के ही क्रोधादि चार कषाय होते हैं।

प्रशस्त अध्यवसायस्थान ही क्यों?—विभगज्ञान से अवधिज्ञान की प्राप्ति अप्रशस्त अध्यवसाय वाले को नही होती, इसलिए अवधिज्ञानी मे प्रशस्त अध्यवसायस्थान ही होते हैं।

उक्त अवधिज्ञानी को केवलज्ञान-प्राप्ति का क्रम

२६ से ण पसत्थेहि अज्झवसाणेहि वट्टमाणे अणतेहि नेरइयभवग्गहणेहितो अप्पाण विसजोएइ, अणतेहि तिरिक्खजोणिय जाव विसजोएइ, अणतेहि मणुस्सभवग्गहणेहितो अप्पाण विसजोएइ, अणतेहि देवभवग्गहणेहितो अप्पाण विसजोएइ, जाओ वि य से इमाओ नेरइय-तिरिक्खजोणिय मणुस्स देवगतिनामाओ उत्तरपयडीओ तासि च ण उवग्गहिए अणताणुबधी कोह-माण माया-लोभे खवेइ, अणताणुबधी कोह-माण माया लोभे खवित्ता अपच्चक्खाणकसाए कोह-माण माया-लोभे खवेइ, अपच्चक्खाणकसाए कोह-माण माया लोभे खवित्ता पच्चक्खाणावरणे कोह-माण माया-लोभे खवेइ, पच्चक्खाणावरणे कोह माण-माया लोभे खवित्ता सजलणे कोह-माण माया-लोभे खवेइ। सजलणे कोह माण-माया लोभे खवित्ता पचविह नाणावरणिज्ज नवविह दरिसणावरणिज्ज पचविह-मतराइय तालमत्थकड च ण मोहणिज्ज कट्टु कम्मरयविकरणकर अपुव्वकरण अणुपविट्ठस्स अणते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाण दसणे समुप्पज्जति।

[२६] वह अवधिज्ञानी बढते हुए प्रशस्त अध्यवसायो से अनन्त नरयिकभव-ग्रहणा से अपनी आत्मा को विसयुक्त (-विमुक्त) कर लेता है, अनन्त तिर्यञ्चयोनिक भवो मे अपनी आत्मा को विसयुक्त कर लेता है, अनन्त मनुष्यभव-ग्रहणो से अपनी आत्मा को विसयुक्त कर लेता है और अनन्त देवभवो से अपनी आत्मा को वियुक्त कर लेता है। जो ये नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और

देवगति नामक चार उत्तर (कर्म) प्रकृतियाँ हैं, उन प्रकृतियों के आधारभूत (उपगृहीत) अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान माया-लोभ का क्षय करके अप्रत्याख्यानकषाय—क्रोध मान माया लोभ का क्षय करता है, अप्रत्याख्यान क्रोधादि कषाय का क्षय करके प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिकषाय का क्षय करके संज्वलन के क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है। संज्वलन के क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय करके पंचविध (पांच प्रकार के) ज्ञानावरणीयकर्म, नवविध (नौ प्रकार के) दर्शनावरणीयकर्म, पंचविध अन्तरायकर्म को तथा मोहनीयकर्म को कटे हुए तालवृक्ष के समान बना कर, कर्मरज को बिखेरने वाले अपूर्वकरण में प्रविष्ट उस जीव के अनन्त, अनुत्तर, व्याघातरहित, आवरणरहित कृत्स्न (सम्पूर्ण), प्रतिपूर्ण एवं श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन (एक साथ) उत्पन्न होता है।

विवेचन—चारित्रारम्भ अवधिज्ञानी के प्रशस्त अध्यवसायों का प्रभाव—प्रस्तुत में केवलज्ञान-प्राप्ति का क्रम बताया गया है कि सर्वप्रथम प्रशस्त अध्यवसायों के प्रभाव से नरकादि चारों गतियों के भविष्यकालभावी अनन्त भवों से अपनी आत्मा को वियुक्त कर लेता है, फिर गतिनामकर्म की चारों नरकादि गतिरूप उत्तरकर्मप्रकृतियों के कारणभूत अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी एवं संज्वलन कषाय का क्षय कर लेता है। कषायों का सर्वथा क्षय होते ही ज्ञानावरणीयादि चार घातिक कर्मों का क्षय कर लेता है। इन चारों के क्षय होते ही अनन्त, अव्याबाध परिपूर्ण, निरावरण केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो जाता है।[1]

मोहनीयकर्म का नाश, शेष घाति कर्मनाश का कारण—प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीयादि तीनों कर्मों का उत्तरप्रकृतियों सहित क्षय पहले बताया है, किन्तु मोहनीयकर्म के क्षय हुए बिना इन तीनों कर्मों का क्षय नहीं होता। इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए यहाँ कहा गया है—'तालमत्थयकडं च णं मोहणिज्जं कट्टु,' इसका भावार्थ यह है कि जिस प्रकार तालवृक्ष का मस्तक सूचि भेद (सुई से या सूई की तरह छिन्न भिन्न) करने से वह सारा का सारा वृक्ष क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार मोहनीयकर्म का क्षय होने पर शेष घातिकर्मों का भी क्षय हो जाता है। अर्थात्—मोहनीयकर्म की शेष प्रकृतियों का क्षय करके साधक ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीनों कर्मों की सभी प्रकृतियों का क्षय कर लेता है।[2]

केवलज्ञान के विशेषणों का भावार्थ—केवलज्ञान विषय की अनन्तता के कारण अनन्त है। केवलज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है, इसलिए वह अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान है। यह दीवार, भीत आदि के व्यवधान के कारण प्रतिहत (स्खलित) नहीं होता—किसी भी प्रकार की कोई भी रुकावट उसे रोक नहीं सकती, इसलिए यह 'निर्व्याघात' है। सम्पूर्ण आवरणों के क्षय होने पर उत्पन्न

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूल टिप्पण) भा. १ पृ. ४१६ (ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४३५

२ यथा हि तालमस्तकविनाशक्रियाऽवश्यंभावि-तालविनाशा, एवं मोहनीयकर्मविनाशक्रियाऽवश्यंभाविशेषकर्म विनाशेति। आह च—

मस्तकसूचिविनाशे, तालस्य यथा ध्रुवो भवति नाशः।
तद्वत् कर्मविनाशोऽपि मोहनीय क्षये नित्यम् ॥१॥

—भगवती अ. वृत्ति पत्र ४३६

होने से वह 'निरावरण' है। सकल पदार्थों का ग्राहक होने से वह 'कृत्स्न' होता है। अपने सम्पूर्ण अंशों से युक्त उत्पन्न होने से वह 'प्रतिपूर्ण' होता है। केवलदर्शन के लिए भी यही विशेषण समझ लेने चाहिए।[1]

असोच्चा केवली द्वारा उपदेश-प्रव्रज्या सिद्धि आदि के सम्बन्ध में

२७. से णं भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेज्जा वा पण्णवेज्जा वा परूवेज्जा वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे, णऽन्नत्थ एगणाएण वा एगवागरणेण वा।

[२७ प्र.] भगवन् ! वे असोच्चा केवली केवलिप्ररूपित धर्म कहते हैं, बतलाते हैं अथवा प्ररूपणा करते हैं ?

[२७ उ.] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नहीं है। वे (केवल) एक ज्ञात (उदाहरण) के अथवा एक (व्याकरण) प्रश्न के उत्तर के सिवाय अन्य (धर्म का) उपदेश नहीं करते।

२८. से णं भंते ! पव्वावेज्ज वा मुंडावेज्ज वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, उवदेसं पुण करेज्जा।

[२८ प्र.] भगवन् ! वे असोच्चा केवली (किसी को) प्रव्रजित करते हैं, या मुण्डित करते हैं ?

[२८ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। किन्तु उपदेश करते (कहते) हैं (कि तुम अमुक के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो।)

२९. से णं भंते ! सिज्झति जाव अंतं करेति ?

हंता, सिज्झति जाव अंतं करेति।

[२९ प्र.] भगवन् ! (क्या असोच्चा केवली) सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ?

[२९ उ.] हाँ गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं।

३०. से णं भंते ! किं उड्ढं होज्जा, अहो होज्जा, तिरियं होज्जा ?

गोयमा ! उड्ढं वा होज्जा, अहो वा होज्जा, तिरियं वा होज्जा। उड्ढं होज्जमाणे सद्दावइ-वियडावइ-गंधावइ-मालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वएसु होज्जा, साहरणं पडुच्च सोमणसवणे वा पंडगवणे वा होज्जा। अहो होज्जमाणे गड्डाए वा दरीए वा होज्जा, साहरणं पडुच्च पायाले वा भवणे वा होज्जा। तिरियं होज्जमाणे पण्णरससु कम्मभूमीसु होज्जा, साहरणं पडुच्च अड्ढाइज्जदीव-समुद्द-तदेक्कदेसभाए होज्जा।

[३० प्र.] भगवन् ! वे असोच्चा केवली ऊर्ध्वलोक में होते हैं, अधोलोक में होते हैं या तिर्यक्लोक में होते हैं ?

1. भगवतीसूत्र भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी) पृ. १६०८

[३० उ] गौतम ! वे ऊर्ध्वलोक में भी होते हैं, अधोलोक में भी होते हैं और तिर्यग्लोक में भी होते हैं। यदि ऊर्ध्वलोक में होते हैं तो शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती और माल्यवन्त नामक वृत्त (वर्ताढ्य) पर्वतों में होते हैं तथा संहरण की अपेक्षा सौमनसवन में अथवा पाण्डुकवन में होते हैं। यदि अधोलोक में होते हैं तो गर्त्ता (अधोलोक ग्रामादि) में अथवा गुफा में होते हैं तथा संहरण की अपेक्षा पातालकलशों में अथवा भवनवासी देवों के भवनों में होते हैं। यदि तिर्यग्लोक में होते हैं तो पन्द्रह कर्मभूमि में होते हैं तथा संहरण की अपेक्षा अढाई द्वीप और समुद्रों के एक भाग में होते हैं।

३१. ते णं भंते ! एगसमएणं केवतिया होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं दस। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव अत्थेगइए केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगइए असोच्चा णं केवलि जाव नो लभेज्जा सवणयाए जाव अत्थेगइए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

[३१ प्र] भगवन् ! वे असोच्चा केवली एक समय में कितने होते हैं ?

[३१ उ] गौतम ! वे जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट दस होते हैं।

[उपसंहार—] इसलिए हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्मश्रवण किये बिना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म-श्रवण प्राप्त होता है और किसी को नहीं होता, यावत् कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है और कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न नहीं कर पाता।

विवेचन—असोच्चा केवली का आचार-विचार, उपलब्धि एवं स्थान—२७ से ३१ सूत्र तक प्रस्तुत पांच सूत्रों में असोच्चा केवली से सम्बन्धित निम्नोक्त प्रश्नों के उत्तर हैं—(१) वे केवलि-प्ररूपित धर्म कहते, बतलाते या प्रेरणा करते हैं ?, (२) वे किसी को प्रव्रजित या मुण्डित करते हैं ?, (३) वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं, यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं ?, (४) वे ऊर्ध्व, अधो या तिर्यग्लोक में कहाँ-कहाँ होते हैं ?, (५) वे एक समय में कितने होते हैं ?[1]

आघवेज्ज—शिष्यों को शास्त्र का अर्थ ग्रहण कराते हैं, अथवा अर्थ प्रतिपादन करके उसे प्राप्त कराते हैं।

पन्नवेज्ज—भेद बताकर या भिन्न-भिन्न करके समझाते हैं।

परूवेज्ज—उपपत्तिकथनपूर्वक प्ररूपण करते हैं।

पव्वावेज्ज मुंडावेज्ज—रजोहरण आदि द्रव्यलिंग देकर प्रव्रजित (दीक्षित) करते हैं, मस्तक का लोच करके मुण्डित करते हैं।

---

१. भगवती० अभयदेववृत्ति (मूलपाठ टिप्पण) भा. १, पृ. ४१६-४१७

उवएस पुण करेज्ज—किसी दीक्षार्थी के उपस्थित होने पर 'अमुक के पास दीक्षा लो' केवल इतना सा उपदेश करते है ।[1]

सद्दावइ इत्यादि पदो का आशय—शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती और माल्यवन्त, ये स्थान जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार क्षेत्रसमास के अभिप्राय से क्रमश हैमवत, ऐरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष क्षेत्र मे हैं ।

सोमणसवणे पडगवणे—मेरुपर्वत पर सौमनसवन तीसरा और पाण्डुकवन चौथा वन है ।[2]

सोच्चा से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

३२ सोच्चा ण भते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए ?

गोयमा ! सोच्चा ण केवलिस्स वा जाव अत्थेगइए केवलिपण्णत्त धम्म० । एव जा चेव असोच्चाए वत्तव्वया सा चेव सोच्चाए वि भाणियव्वा, नवर अभिलावो सोच्चेत्ति । सेस त चेव निरवसेस जाव 'जस्स ण मणपज्जवनाणावरणिज्जाण कम्माण खओवसमे कडे भवइ, जस्स ण केवलनाणावरणिज्जाण कम्माण खए कडे भवइ से ण सोच्चा केवलिस्स वा जाव उवासियाए वा केवलिपण्णत्त धम्म लभिज्ज सवणयाए, केवल बोहि बुज्झेज्जा जाव केवलनाण उप्पाडेज्जा (सु १३ [२]) ।

[३२ प्र] भगवन् ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से (धर्मप्रतिपादक वचन) श्रवण कर क्या कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्म बोध (श्रवण) प्राप्त करता है ?

[३२ उ] गौतम ! केवलि यावत् केवलि-पाक्षिक की उपासिका से धर्म वचन सुनकर कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्म का बोध प्राप्त करता है और कोई जीव प्राप्त नही करता । इस विषय मे जिस प्रकार असोच्चा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार 'सोच्चा' की वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ सर्वत्र 'सोच्चा' ऐसा पाठ कहना चाहिए । शेष सभी पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् जिसने मन पर्यवज्ञानावरणीय कर्मो का क्षयोपशम किया है तथा जिसने केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय किया है, वह केवली यावत् केवलि पाक्षिक की उपासिका से धर्मवचन सुनकर केवलिप्ररूपित धर्म-बोध (श्रवण) प्राप्त करता है, शुद्ध बोधि (सम्यग्दर्शन) का अनुभव करता है, यावत् केवलज्ञान प्राप्त करता है ।

विवेचन—'असोच्चा' का अतिदेश—जैसे केवली आदि के वचन बिना सुने ही जिन्हें सम्यग्-बोध से लेकर यावत् केवलज्ञान तक प्राप्त होता है, यह कहा गया है, उसी प्रकार केवली आदि से

---

१ भगवती अ वृत्ति, ४३६

आघवेज्ज त्ति—आग्राहयच्छिष्यान् अर्थापयेद् वा—प्रतिपादनत पूजां प्रापयेत् ।

पन्नवेज्ज त्ति—प्रज्ञापयेद्—भेदभणनतो बोधयेद वा ।

परूवेज्ज त्ति—उपपत्तिकथनत ।

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३६

धर्मश्रवण करने वाले जीव को भी सम्यग्बोध से लेकर यावत् केवलज्ञान (तक) उत्पन्न होता है। 'असोच्चा' को लेकर जो पाठ था उसी पाठ का 'सोच्चा' के इसी प्रकरण में अतिदेश किया गया है।[1]

केवली आदि से सुन कर अवधिज्ञान की उपलब्धि

३३ तस्स णं अट्ठमंअट्ठमेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स पगइभद्दयाए तहेव जाव गवेसणं करेमाणस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ। से णं तेणं ओहिनाणेणं समुप्पन्नेणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोए लोयप्पमाणमेत्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ।

[३३] (केवली आदि से धर्म वचन सुनकर सम्यग्दर्शनादि प्राप्त जीव को) निरन्तर तेले-तेले (अट्ठम अट्ठम) तप कर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए प्रकृतिभद्रता आदि (पूर्वोक्त) गुणों से यावत् ईहा, अपोह, मार्गण एवं गवेषण करते हुए अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है। वह उस उत्पन्न अवधिज्ञान के प्रभाव से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अलोक में भी लोकप्रमाण असंख्य खण्डों को जानता और देखता है।

विवेचन—केवली आदि से सुनकर सम्यग्दर्शनादिप्राप्त जीव को अवधिज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया— बिना सुने अवधिज्ञान प्राप्त करने वाले जीव को पहले विभंगज्ञान प्राप्त होता है, फिर सम्यक्त्वादि प्राप्त होने पर वही विभंगज्ञान अवधिज्ञान में परिणत हो जाता है, जबकि सुन कर अवधिज्ञान प्राप्त करने वाला जीव बेले के बदले निरन्तर तेले की तपस्या करता है। प्रकृतिभद्रता आदि गुण तथा उनसे ईहादि के कारण अवधिज्ञान प्राप्त हो जाता है। जिसके प्रभाव से उत्कृष्टतः अलोक में भी लोकप्रमाण असंख्य खण्डों को जानता-देखता है।[2] फिर वह सम्यक्त्व, चारित्र, साधुवेष आदि से केवलज्ञान भी प्राप्त कर लेता है।

तथारूप अवधिज्ञानी में लेश्या, योग, देह आदि

३४ से णं भंते! कतिसु लेस्सासु होज्जा?

गोयमा! छसु लेस्सासु होज्जा, तं जहा—कण्हलेसाए जाव सुक्कलेसाए।

[३४ प्र.] भगवन्! वह (तथारूप अवधिज्ञानी जीव) कितनी लेश्याओं में होता है?

[३४ उ.] गौतम! वह छहों लेश्याओं में होता है यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या।

३५ से णं भंते! कतिसु णाणेसु होज्जा?

गोयमा! तिसु वा चउसु वा होज्जा। तिसु होज्जमाणे आभिणिबोहियणाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा, चउसु होज्जमाणे आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा।

[३५ प्र.] भंते! वह (तथारूप अवधिज्ञानी जीव) कितने ज्ञानों में होता है?

[३५ उ.] गौतम! वह तीन या चार ज्ञानों में होता है। यदि तीन ज्ञानों में होता है, तो

1. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४३८
2. भगवती अ. वृत्ति पत्र ४३८

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान मे होता है। यदि चार ज्ञान मे होता है तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान मे होता है।

३६ से ण भते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

एव जोगो उवओगो सघयण सठाण उच्चत्त आउय च एयाणि सव्वाणि जहा असोच्चाए (सु १७ २२) तहेव भाणियव्वाणि।

[३६ प्र] भगवन् ! वह (तथारूप अवधिज्ञानी) सयोगी होता है अथवा अयोगी होता है ? (आदि प्रश्न आयुष्य तक)।

[३६ उ] गौतम ! जसे 'असोच्चा' के योग, उपयोग, सहनन, सस्थान, ऊँचाई और आयुष्य के विषय मे कहा, उसी प्रकार यहा (सोच्चा के) भी योगादि के विषय मे कहना चाहिए।

३७ [१] से ण भते किं सवेदए० पुच्छा।

गोयमा ! सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा।

[३७-१ प्र] भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सवेदी होता है अथवा अवेदी ?

[३७-१ उ] गौतम ! वह सवेदी भी होता है अवेदी भी होता है।

[२] जइ अवेदए होज्जा किं उवसतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा ?

गोयमा ! नो उवसतवेदए होज्जा, खीणवेदए होज्जा।

[३७-२ प्र] भगवन् ! यदि वह अवेदी होता है तो क्या उपशान्तवेदी होता है अथवा क्षीणवेदी होता है ?

[३७-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तवेदी नही होता, क्षीणवेदी होता है।

[३] जइ सवेदए होज्जा किं इत्थीवेदए होज्जा० पुच्छा।

गोयमा इत्थीवेदए वा होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, पुरिसनपु सगवेदए वा होज्जा।

[३७ ३ प्र] भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है, नपु सकवेदी होता है, अथवा पुरुष-नपु सकवेदी होता है ?

[३७-३ उ] गौतम ! वह स्त्रीवेदी भी होता है, पुरुषवेदी भी होता है अथवा पुरुष-नपु सकवेदी होता है।

३८ [१] से ण भते ! सकसाई होज्जा ? अकसाई होज्जा ?

गोयमा ! सकसाई वा होज्जा, अकसाई वा होज्जा।

[३८-१ प्र] भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है अथवा अकषायी होता है ?

[३८-१ उ] गौतम ! वह सकषायी भी होता है, अकषायी भी होता है।

[२] जइ अकसाई होज्जा किं उवसतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा ?

गोयमा ! नो उवसतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा।

[३८-२ प्र] भगवन् ! यदि वह अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है या क्षीणकषायी होता है ?

[३८-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तकषायी नहीं होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है।

[३] जइ सकसाई होज्जा से णं भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एक्कम्मि वा होज्जा। चउसु होज्जमाणे चउसु संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा, तिसु होज्जमाणे तिसु संजलणमाण-माया-लोभेसु होज्जा, दोसु होज्जमाणे दोसु संजलणमाया-लोभेसु होज्जा, एगम्मि होज्जमाणे एगम्मि संजलणे लोभे होज्जा।

[३८-३ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है तो कितने कषायों में होता है ?

[३८-३ उ] गौतम ! वह चार कषायों में, तीन कषायों में, दो कषायों में अथवा एक कषाय में होता है। यदि वह चार कषायों में होता है, तो संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ में होता है। यदि तीन कषायों में होता है तो संज्वलन मान, माया और लोभ में होता है। यदि दो कषायों में होता है तो संज्वलन माया और लोभ में होता है और यदि एक कषाय में होता है तो एक संज्वलन लोभ में होता है।

३९. तस्स णं भंते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा एवं जहा असोच्चाए (सु. २५-२६) तहेव जाव केवलवरनाण-दंसणे समुप्पज्जइ (सु. २६)।

[३९ प्र] भंते ! उस (तथारूप) अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय बताए गए हैं ?

[३९ उ] गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं। जिस प्रकार (सू. २५, २६ में) असोच्चा केवली के अध्यवसाय के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी 'सोच्चा केवली' के लिए उसे केवलज्ञान--केवलदर्शन उत्पन्न होता है, तक कहना चाहिए।

सोच्चा केवली द्वारा उपदेश, प्रव्रज्या, सिद्धि आदि के सम्बन्ध में

४०. से णं भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेज्जा वा, पण्णवेज्जा वा, परूवेज्जा वा ?

हंता, आघवेज्जा वा, पण्णवेज्जा वा, परूवेज्ज वा।

[४० प्र] भंते ! वह 'सोच्चा केवली' केवलि प्ररूपित धर्म कहते हैं, बतलाते हैं या प्ररूपित करते हैं ?

[४० उ] हाँ गौतम ! वे केवलि प्ररूपित धर्म कहते हैं बतलाते हैं और उसकी प्ररूपणा भी करते हैं।

४१. [१] से णं भंते ! पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा ?

हंता, गोयमा ! पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा।

[४१-१ प्र] [illegible] सोच्चा केवली किसी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते हैं ?

[illegible] भी करते हैं, मुण्डित भी करते हैं।

[२] तस्स ण भंते ! सिस्सा वि पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा ?

हंता, पव्वावेज्ज वा मुंडावेज्ज वा।

[४१-२ प्र] भगवन् ! उन सोच्चा केवली के शिष्य किसी को प्रव्रजित करते है या मुण्डित करते हैं ?

[४१-२ उ] हां गौतम ! उनके शिष्य भी प्रव्रजित करते है और मुण्डित करते है।

[३] तस्स ण भंते ! पसिस्सा वि पव्वावेज्ज वा मुंडावेज्ज वा ?

हंता, पव्वावेज्ज वा मुंडावेज्ज वा।

[४१-३ प्र] भगवन् ! क्या उन सोच्चा केवली के प्रशिष्य भी किसी को प्रव्रजित और मुण्डित करते हैं ?

[४१-३ उ] हां गौतम ! उनके प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते है और मुण्डित करते हैं।

४२ [१] से ण भंते ! सिज्झइ बुज्झइ जाव अंतं करेइ ?

हंता, सिज्झइ जाव अंतं करेइ।

[४२-१ प्र] भगवन् ! वे सोच्चा केवली सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते हैं ?

[४२-१ उ] हां गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते हैं।

[२] तस्स ण भंते ! सिस्सा वि सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

हंता, सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

[४२-२ प्र] भंते ! क्या उन सोच्चा केवली के शिष्य भी सिद्ध होते है, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते हैं ?

[४२-२ उ] हां, गौतम ! वे भी सिद्ध, बुद्ध होते हैं, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते है।

[३] तस्स ण भंते ! पसिस्सा वि सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

एवं चेव जाव अंतं करेंति।

[४२-३ प्र] भगवन् ! क्या उनके प्रशिष्य भी सिद्ध होते हैं, यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते हैं ?

[४२-३ उ] हां, गौतम ! इसी प्रकार (वे भी सिद्ध-बुद्ध हो जाते हैं) यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते हैं।

४३ से ण भंते ! किं उड्ढं होज्जा ? जहेव असोच्चाए (सु ३०) जाव तदेक्कदेसभाए होज्जा।

[४३ प्र] भंते ! वे सोच्चा केवली ऊर्ध्वलोक मे होते हैं, अधोलोक मे होते हैं और तिर्यग्लोक मे भी होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३८-२ प्र] भगवन् ! यदि वह अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है या क्षीणकषायी होता है ?

[३८-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तकषायी नही होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है ।

[३] जइ सकसाई होज्जा से ण भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एक्कम्मि वा होज्जा । चउसु होज्जमाणे चउसु संजलणकोह माण-माया लोभेसु होज्जा, तिसु होज्जमाणे तिसु संजलणमाण माया लोभेसु होज्जा, दोसु होज्जमाणे दोसु संजलणमाया-लोभेसु होज्जा, एगम्मि होज्जमाणे एगम्मि संजलणे लोभे होज्जा ।

[३८-३ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है तो कितने कषायो मे होता है ?

[३८-३ उ] गौतम ! वह चार कषाया मे, तीन कषायो मे, दो कषायो मे अथवा एक कषाय मे होता है । यदि वह चार कषायो मे होता है, तो सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ मे होता है । यदि तीन कषायो मे होता है तो सज्वलन मान, माया और लोभ मे होता है । यदि दो कषायो मे होता है तो सज्वलन माया और लोभ मे होता है और यदि एक कषाय मे होता है तो एक सज्वलन लोभ मे होता है ।

३९ तस्स ण भंते ! केवतिया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असखेज्जा एव जहा असोच्चाए (सु २५-२६) तहेव जाव केवलवरनाण दसणे समुप्पज्जइ (सु २६) ।

[३९ प्र] भंते ! उस (तथारूप) अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय बताए गए हैं ?

[३९ उ] गौतम ! उसके असख्यात अध्यवसाय होते हैं । जिस प्रकार (सू २५, २६ मे) असोच्चा केवली के अध्यवसाय के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी 'सोच्चा केवली' के लिए उसे केवलज्ञान—केवलदशन उत्पन्न होता है, तक कहना चाहिए ।

सोच्चा केवली द्वारा उपदेश, प्रव्रज्या, सिद्धि आदि के सम्बन्ध मे

४० से ण भंते ! केवलिपण्णत्त धम्म आघविज्जा वा, पण्णाविज्जा वा, परूविज्जा वा ?

हता, आघविज्जा वा, पण्णवेज्ज वा, परूवेज्ज वा ।

[४० प्र] भंते ! वह 'सोच्चा केवली' केवलि-प्ररूपित धम कहते है, बतलाते हैं या प्ररूपित करते है ?

[४० उ] हाँ गौतम ! वे केवलि-प्ररूपित धर्म कहते हैं, बतलाते हैं और उसकी प्ररूपणा भी करते हैं ।

४१ [१] से ण भंते ! पव्वावेज्ज वा, मु डावेज्ज वा ?

हता, गोयमा ! पव्वावेज्ज वा, मु डावेज्ज वा ।

[४१-१ प्र] भगवन् ! वे सोच्चा केवली किसी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते हैं ?

[४१-१ उ] हाँ, गौतम ! वे प्रव्रजित भी करते हैं, मुण्डित भी करते हैं ।

[२] तस्स ण भते ! सिस्सा वि पव्वावेज्ज वा, मु डावेज्ज वा ?

हता, पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ।

[४१-२ प्र] भगवन् ! उन सोच्चा केवली के शिष्य किसी को प्रव्रजित करते है या मुण्डित करते है ?

[४१-२ उ] हा गौतम ! उनके शिष्य भी प्रव्रजित करते हैं और मुण्डित करते है ।

[३] तस्स ण भते ! पसिस्सा वि पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ?

हता, पव्वावेज्ज वा मु डावेज्ज वा ।

[४१-३ प्र] भगवन् ! क्या उन सोच्चा केवली के प्रशिष्य भी किसी को प्रव्रजित और मुण्डित करते हैं ?

[४१-३ उ] हाँ गौतम ! उनके प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते हैं और मुण्डित करते हैं ।

४२ [१] से ण भते ! सिज्झइ बुज्झइ जाव अत करेइ ?

हता, सिज्झइ जाव अत करेइ ।

[४२-१ प्र] भगवन् ! वे सोच्चा केवली सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते है, यावत् सवदु खो का अ त करते हैं ?

[४२-१ उ] हा गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् सवदु खो का अ त करते हैं ।

[२] तस्स ण भते ! सिस्सा वि सिज्झति जाव अत करेंति ?

हता, सिज्झति जाव अत करेंति ।

[४२-२ प्र] भते ! क्या उन सोच्चा केवली के शिष्य भी सिद्ध होते है, यावत सवदु खो का अ त करते हैं ?

[४२-२ उ] हाँ, गौतम ! वे भी सिद्ध, बुद्ध होते है, यावत् सवदु खो का अन्त करते है ।

[३] तस्स ण भते ! पसिस्सा वि सिज्झति जाव अत करेंति ?

एव चेव जाव अत करेंति ।

[४२-३ प्र] भगवन् ! क्या उनके प्रशिष्य भी सिद्ध होते है, यावत् सवदु खो का अन्त करते है ?

[४२-३ उ] हाँ, गौतम ! इसी प्रकार (वे भी सिद्ध-बुद्ध हो जाते हैं) यावत् सवदु खो का अ त करते है ।

४३ से ण भते ! कि उड्ढ होज्जा ? जहेव असोच्चाए (सु ३०) जाव तदेक्कदेसभाए होज्जा ।

[४३ प्र] भते ! वे सोच्चा केवली ऊर्ध्वलोक मे होते हैं, अधोलोक मे होते हैं और तिर्यग्लोक मे भी होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[४३ उ] हे गौतम ! जैसे (सू ३० मे) असोच्चाकेवली के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी वे अढाई द्वीप-समुद्र के एक भाग मे होते हैं, तक कहना चाहिए ।

४४ ते ण भते ! एगसमएण केवइया होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण अट्ठसय—१०९ ।

से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—सोच्चा ण केवलिस्स वा जाव केवलिउवासियाए वा जाव अत्थेगइए केवलनाण उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवलनाण नो उप्पाडेज्जा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरइ ।

॥ नवमसयस्स इगतीसइमो उद्देसो ॥

[४४ प्र] भगवन् ! वे सोच्चा केवली एक समय मे कितने होते हैं ?

[४४ उ] गौतम ! वे एक समय मे जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं ।

[उपसहार—] इसीलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि केवली यावत केवलि-पाक्षिक की उपासिका से (धर्मप्रतिपादक वचन सुन कर) यावत् कोई जीव केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नही करता ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—सोच्चा अवधिज्ञानी के लेश्या आदि का निरूपण—सू ३४ से ४४ तक मे तथारूप अवधिज्ञानी के लेश्या, ज्ञान, योग, उपयोग, सहनन सस्थान उच्चत्व, आयुष्य, वेद, कषाय, अध्यवसाय उपदेश, प्रव्रज्यादान, सिद्धि, स्थान एव एक समय मे कितनी सख्या आदि के सम्बन्ध मे असोच्चा-केवली के क्रम से ही प्रतिपादन किया गया है ।[1]

असोच्चा से सोच्चा अवधिज्ञानी की कई बातो मे अन्तर—(१) **लेश्या**—असोच्चा अवधिज्ञानी मे तीन ही विशुद्ध लेश्याएँ बताई गई हैं, जबकि सोच्चा अवधिज्ञानी मे छह लेश्याएँ बताई गई हैं । उसका रहस्य यह है कि यद्यपि तीन प्रशस्त भावलेश्या होने पर ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है, तथापि द्रव्यलेश्या की अपेक्षा से वह सम्यक्त्व श्रुत की तरह छह लेश्याओ मे होता है, क्योंकि सोच्चाकेवली का अधिकार होने से मनुष्य ही उसका अधिकारी है । इसलिए उक्त लेश्या वाले द्रव्यो तथा उनकी परिणति की अपेक्षा से छह लेश्याओ का कथन किया गया है । (२) **ज्ञान**—तेले-तेले की विकट तपस्या करने वाले साधु का अवधिज्ञान उत्पन्न होता है और अवधिज्ञानी मे प्रारम्भिक दो ज्ञान (मति-श्रुतज्ञान) अवश्य होने से उसे तीन ज्ञानो मे बतलाया गया है । जो मन पर्यायज्ञानी होता है, उसके अवधिज्ञान उत्पन्न होने पर अवधिज्ञानी चार ज्ञानो से युक्त हो जाता है । (३) **वेद**—यदि अक्षीणवेदी को अवधिज्ञान की उत्पत्ति हो तो वह सवेदक होता है, उस समय या तो वह स्त्रीवेदी

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ ४१८-४२०

होता है या पुरुषवेदी अथवा पुरुषनपुंसकवेदी होता है और अवेदी को अवधिज्ञान होता है तो वह क्षीणवेदी को होता है, उपशान्तवेदी का नही होता, क्योकि आगे इसी अवधिज्ञानी के केवलज्ञान की उत्पत्ति का कथन विवक्षित है। (४) कषाय—कषायक्षय न होने की स्थिति मे अवधिज्ञान प्राप्त होता है तो वह जीव सकषायी होता है और कषायक्षय होने पर अवधिज्ञान होता है तो अकषायी होता है। यदि अक्षीणकषायी अवधिज्ञान प्राप्त करता है तो चारित्रयुक्त होने से चार सज्वलन कषायो मे होता है जब क्षपकश्रेणिवर्ती होने से सज्वलन क्रोध क्षीण हो जाता है, तब अवधिज्ञान प्राप्त होता है, तो सज्वलनमानादि तीन कषाय युक्त होता है, जब क्षपकश्रेणि की दशा मे सज्वलन क्रोध-मान क्षीण हो जाता है तो सज्वलन माया-लोभ से युक्त होता है और जब तीनो क्षीण हो जाते हैं तो वह अवधिज्ञानी एकमात्र सज्वलन लोभ से युक्त होता है।[1]

॥ नवम शतक इकतीसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४३८

बत्तीसइमो उद्देसओ : 'गंगेय'

बत्तीसवाँ उद्देशक : 'गांगेय'

उपोद्घात

१ तेण कालेण तेण समएण वाणियगामे नगरे होत्था । वण्णओ । दूतिपलासे चेइए । सामी समोसढे । परिसा निग्गया । धम्मो कहिओ । परिसा पडिगया ।

[१] उस काल, उस समय मे वाणिज्यग्राम नामक नगर था । (उसका वर्णन जान लेना चाहिए) । वहा द्युतिपलाश नाम का चैत्य (उद्यान) था । (एक बार) वहाँ भगवान् महावीर स्वामी (पधारे), (उन) का समवसरण लगा । परिषद् वन्दन के लिए निकली । (भगवान् ने) धर्मोपदेश दिया । परिषद् वापिस लौट गई ।

२ तेण कालेण तेण समएण पासावच्चिज्जे गंगेए नाम अणगारे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समण भगव महावीर एव वयासी—

[२] उस काल उस समय मे पार्श्वापत्य (पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य) गांगेय नामक अनगार थे । जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहा वे आए और श्रमण भगवान् महावीर के न अतिनिकट और न अतिदूर खडे रह कर उन्होने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार पूछा—

चौवीस दण्डकों मे सान्तर-निरन्तर-उपपात-उद्वर्तन-प्ररूपणा

३ सतर भंते ! नेरइया उववज्जति, निरतर नेरइया उववज्जति ?

गंगेया ! सतर पि नेरइया उववज्जति, निरतर पि नेरइया उववज्जति ।

[३ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर (सामयिक व्यवधान सहित) उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर (लगातार—बीच मे समय के व्यवधान बिना) उत्पन्न होते हैं ?

[३ उ] हे गांगेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी ।

४ [१] सतर भंते ! असुरकुमारा उववज्जति, निरतर असुरकुमारा उववज्जति ।

गंगेया ! सतर पि असुरकुमारा उववज्जति, निरतर पि असुरकुमारा उववज्जति ।

[४-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर असुरकुमार उत्पन्न होते हैं ?

[४-१ उ] गांगेय ! सान्तर भी असुरकुमार उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी असुरकुमार उत्पन्न होते हैं ।

[२] एव जाव थणियकुमारा ।

[४-२] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक जानना चाहिए ।

५ [१] संतर भंते ! पुढविकाइया उववज्जंति, निरंतर पुढविकाइया उववज्जंति ?
गंगेया ! नो संतर पुढविकाइया उववज्जंति, निरंतर पुढविकाइया उववज्जंति ।

[५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर पृथ्वीकायिक जीव उत्पन्न होते हैं ?

[५-१ उ] गांगेय ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नही होते किन्तु निरन्तर पृथ्वीकायिक जीव उत्पन्न होते हैं ।

[२] एव जाव वणस्सइकाइया ।

[५-२] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो तक जानना चाहिए ।

६ बेइंदिया जाव वेमाणिया, एते जहा णेरइया ।

[६] द्वीन्द्रिय जीवो से लेकर वमानिक देवो तक की उत्पत्ति के विषय मे नैरयिको के समान जानना चाहिए ।

७ संतर भंते ! नेरइया उव्वट्टंति, निरंतर नेरइया उव्वट्टंति ?
गंगेया ! संतर पि नेरइया उव्वट्टंति, निरंतर पि नेरइया उव्वट्टंति ।

[७ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव सान्तर उद्वर्तित होते (मरते) हैं या निरन्तर नैरयिक जीव उद्वर्तित होते हैं ?

[७ उ] गांगेय ! नरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्तित होते हैं और निरन्तर भी उद्वर्तित होते हैं ।

८ एव जाव थणियकुमारा ।

[८] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक (के उद्वर्त्तन के सम्बन्ध मे) जानना चाहिए ।

९ [१] संतर भंते ! पुढविक्काइया उव्वट्टंति० ? पुच्छा ।
गंगेया ! णो संतर पुढविक्काइया उव्वट्टंति, निरंतर पुढविक्काइया उव्वट्टंति ।

[९-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उद्वर्तित होते है या निरन्तर ?

[९-१ उ] गांगेय ! पृथ्वीकायिक जीवो का उद्वर्त्तन (मरण) सान्तर नही होता, किन्तु निरन्तर उद्वर्त्तन होता रहता है ।

[२] एव जाव वणस्सइकाइया नो संतर, निरंतर उव्वट्टंति ।

[९-२] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो तक (के उद्वर्त्तन के विषय मे) जानना चाहिए । ये सान्तर नही, निरन्तर उद्वर्तित होते हैं ।

१० संतर भंते ! बेइंदिया उव्वट्टंति, निरंतर बेंदिया उव्वट्टंति ?
गंगेया ! संतर पि बेइंदिया उव्वट्टंति, निरंतर पि बेइंदिया उव्वट्टंति ।

[१० प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो का उद्वर्त्तन (मरण) सान्तर होता है या निरन्तर होता है ?

[१० उ] गांगेय ! द्वीन्द्रिय जीवो का उद्वर्त्तन सान्तर भी होता है और निरन्तर भी होता है ।

११ एव जाव वाणमंतरा ।

[११] इसी प्रकार वाणव्यन्तरो तक जानना चाहिए ।

१२ संतरं भंते ! जोइसिया चयंति० ? पुच्छा ।

गंगेया ! संतरं पि जोइसिया चयंति, निरंतरं पि जोइसिया चयंति ।

[१२ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों का च्यवन (मरण) सान्तर होता है या निरन्तर होता है ?

[१२ उ.] गांगेय ! ज्योतिष्क देवों का च्यवन सान्तर भी और निरन्तर भी होता है ।

१३ एवं जाव वेमाणिया वि ।

[१३] इसी प्रकार वैमानिकों के (च्यवन के सम्बन्ध में भी) जान लेना चाहिए ।

विवेचन—उपपात उद्वर्त्तन परिभाषा—जीवों के जन्म या उत्पत्ति को उपपात और मरण या च्यवन को उद्वर्त्तन कहते हैं । वैमानिक और ज्योतिष्क देवों का मरण 'च्यवन' कहलाता है। नारकादि का मरण उद्वर्त्तन ।

सान्तर और निरन्तर—जीवों की उत्पत्ति आदि में समय आदि काल का अन्तर (व्यवधान) हो तो वह 'सान्तर' और उत्पत्ति आदि में समय आदि काल का अन्तर (व्यवधान) न हो, वह 'निरन्तर' कहलाता है ।

एकेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु—ये जीव प्रतिसमय उत्पन्न होते और प्रतिसमय मरते हैं । इसलिए उनकी उत्पत्ति और उद्वर्त्तन सान्तर नहीं, निरन्तर होता है । एकेन्द्रिय के सिवाय शेष सभी जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु में अन्तर सम्भव है । इसलिये वे सान्तर एवं निरन्तर, दोनों प्रकार से उत्पन्न होते और मरते हैं ।[1]

पासावच्चिज्जे—पार्श्वापत्य अर्थात्—पार्श्वनाथ भगवान् के सन्तानीय—शिष्यानुशिष्य ।[2]

प्रवेशनक चार प्रकार

१४ कइविहे णं भंते ! पवेसणए पण्णत्ते ?

गंगेया ! चउव्विहे पवेसणए पण्णत्ते, तं जहा—नेरइयपवेसणए तिरिक्खजोणियपवेसणए मणुस्सपवेसणए देवपवेसणए ।

[१४ प्र.] भगवन् ! प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१४ उ.] गांगेय ! प्रवेशनक चार प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) नैरयिक-प्रवेशनक, (२) तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक, (३) मनुष्य-प्रवेशनक और (४) देव-प्रवेशनक ।

विवेचन—प्रवेशनक—एक गति से दूसरी गति में प्रवेश करना—जाना, प्रवेशनक है । अर्थात्—एक गति से मर कर दूसरी गति में उत्पन्न होना प्रवेशनक कहलाता है । गतियाँ चार होने से प्रवेशनक भी चार प्रकार का ही है ।[3]

---

१ भगवतीसूत्र (अ.-विवेचन) भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १६१७

२ वही, पृ. १६१७

३ गत्यन्तरादुद्वृत्तस्य विजातीयगतौ जीवस्य प्रवेशनं उत्पाद इत्यर्थः ।—भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४४२

नैरयिक-प्रवेशनक निरूपण

१५ नेरइयपवेसणए ण भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गगेया ! सत्तविहे पन्नत्ते, त जहा—रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणए जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणए ।

[१५ प्र] भगवन् ! नैरयिक-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१५ उ] गागेय ! (नैरयिक-प्रवेशनक) सात प्रकार का कहा गया है, जैसे कि रत्नप्रभा-पृथ्वीनैरयिक-प्रवेशनक यावत् अध सप्तमपृथ्वीनैरयिक-प्रवेशनक ।

विवेचन—नैरयिक प्रवेशनक सात ही क्यो ?—नरक सात हैं और नैरयिक जीव रत्नप्रभा आदि नरको मे से किसी भी एक नरक मे उत्पन्न होता है, अत उसके सात ही प्रवेशनक हो सकते हैं । यथा—रत्नप्रभा-प्रवेशनक, शर्कराप्रभा-प्रवेशनक आदि ।[1]

एक नैरयिक के प्रवेशनक-भग

१६ एगे भंते ! नेरइए नेरइयपवेसणए ण पविसमाणे किं रयणप्पभाए होज्जा, सक्करप्पभाए होज्जा, जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा । ७ ।

[१६ प्र] भंते ! क्या एक नैरयिक जीव नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ रत्नप्रभा-पृथ्वी मे होता है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होता है ।

[१६ उ] गागेय ! वह नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी मे होता है, या यावत अध सप्तमपृथ्वी मे होता है ।

विवेचन—एक नैरयिक के असयोगी सात प्रवेशनक भग—यदि एक नारक रत्नप्रभा आदि नरको मे उत्पन्न (प्रविष्ट) हो तो उसके सात विकल्प होते हैं । जैसे कि—(१) या तो वह रत्नप्रभा-पृथ्वी मे उत्पन्न होता है, (२) या शर्कराप्रभापृथ्वी मे, (३ से ७) या इसी तरह आगे एक एक पृथ्वी मे यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होता है । इस प्रकार असयोगी सात भग होते है । उत्कृष्ट प्रवेशनक के सिवाय सभी नरकभूमियो मे असयोगी सात ही विकल्प होते है ।[2]

दो नैरयिको के प्रवेशनक-भग

१७ दो भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए ण पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा । ७ ।

अहवा एगे रयणप्पभाए होज्जा, एगे सक्करप्पभाए होज्जा १ । अहवा एगे रयणप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा २ । जाव एगे रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ३-४ ५-६ । अहवा एगे

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ४२२

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४२ (ख) भगवती (प घेवरचदजी) भा ४, पृ १६१९

सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए होज्जा ७ । जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ८-९-१० ११ । अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए होज्जा १२ । एव जाव अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, १३-१४-१५ । एव एक्केक्का पुढवी छड्डेयव्वा जाव अहवा एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, १६-१७-१८-१९-२०-२१ ।

[१७ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं ?

[१७ उ] गागेय ! वे दोनो (१) रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं, अथवा (२-७) यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं ।

अथवा (१) एक रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक शर्कराप्रभापृथ्वी मे । अथवा (२) एक रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक बालुकाप्रभापृथ्वी मे (३ ४-५-६) । अथवा यावत् एक रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक अध सप्तमपृथ्वी मे । (अर्थात्—एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक पंकप्रभापृथ्वी मे, एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक धूमप्रभापृथ्वी मे, एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक तम.प्रभापृथ्वी मे, या एक रत्नप्रभापृथ्वी मे और एक तमस्तम प्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है । इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ छह विकल्प होते है ।

(७) अथवा एक शर्कराप्रभा पृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक बालुकाप्रभा मे, अथवा (८-९-१०-११) यावत् एक शर्करापृथ्वी मे उत्पन्न होता है और एक अध सप्तमपृथ्वी मे । (अर्थात्—एक शर्कराप्रभा मे और एक पंकप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक तम प्रभा मे, अथवा एक शर्कराप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है । इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ पाच विकल्प हुए ।)

(१२) अथवा एक बालुकाप्रभा मे और एक पंकप्रभा मे उत्पन्न होता है, (१३-१४-१५) अथवा इसी प्रकार यावत् एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी म उत्पन्न होता है । (अर्थात्—अथवा एक बालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे, या एक बालुकाप्रभा मे और एक तम प्रभा मे, या एक बालुकाप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है । इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ चार विकल्प हुए) ।

(१६-१७-१८-१९-२०-२१) इसी प्रकार (पूर्व-पूर्व की) एक एक पृथ्वी छोड देनी चाहिए, यावत् एक तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है । (अर्थात्—एक पंकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे, एक पंकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे, या एक पंकप्रभा म और एक तमस्तम प्रभा मे, ये तीन विकल्प पंकप्रभा के साथ तथा एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा म या एक धूमप्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे, ये दो विकल्प धूमप्रभा के साथ तथा एक तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे उत्पन्न होता है, या एक विकल्प तम प्रभा के साथ होता है) ।

विवेचन—दो नैरयिको के प्रवेशनक-भग—दो नैरयिकों के कुल प्रवेशनक भग २८ होते हैं । जिनमे से एक-एक नरक मे दोनो नैरयिको के एक साथ उत्पन्न होने की अपेक्षा से ७ भग होते हैं । दो नरको मे एक-एक नैरयिक की एक साथ उत्पत्ति होने की अपेक्षा से द्विकसयोगी कुल २१ भग होते है, जिनमे रत्नप्रभा के साथ ६, शर्कराप्रभा के साथ ५, बालुकाप्रभा के साथ ४, पंकप्रभा के साथ ३,

धूमप्रभा के साथ २ और तम प्रभा के साथ १, इस प्रकार कुल मिलाकर २१ भग होते हैं। दो नैरयिकों के असयोगी ७ और द्विकसयोगी २१, ये दोनों मिला कर कुल २८ भग (विकल्प) होते हैं।[1]

तीन नैरयिकों के प्रवेशनक-भग

१८ तिण्णि भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणए ण पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए होज्जा ?

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा । ७ ।

अहवा एगे रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा १ । जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५-६ । अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए होज्जा १ । जाव अहवा दो रयणप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५-६ = १२ । अहवा एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा १ । जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५ = १७ । अहवा दो सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १ । जाव अहवा दो सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, २-३-४-५ = २२ । एव जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया तहा सव्वपुढवीण भाणियव्वा, जाव अहवा दो तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा । ४-४, ३-३, २-२, १-१ = ४२ ।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे पकप्पभाए होज्जा २ । जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ३-४-५ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए एगे पकप्पभाए होज्जा ६ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा ७ । एव जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ८-९ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा १० । जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, ११-१२ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा १३ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १४ । अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १५ । अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए होज्जा १६ । अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा १७ । जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, १८-१९ । अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा २० । जाव अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा, २१-२२ । अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा, २३ । अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे धूमप्प० एगे अहेसत्तमाए होज्जा २४ । अहवा एगे सक्करप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २५ । अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए होज्जा २६ । अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए, एगे तमाए

१ (क) भगवती अ वृत्ति पत्र ४४२, (ख) भगवती भा ४ (प घेवरचदजी), पृ १६२१

होज्जा २७। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे पंकप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २८। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा २९। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३०। अहवा एगे वालुयप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३१। अहवा एगे पंकप्पभा, एगे धूमप्पभाए, एगेतमाए होज्जा ३२। अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३३। अहवा एगे पंकप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३४। अहवा एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३५। ८४।

[१८ प्र] भगवन् ! तीन नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं ? अथवा यावत अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं ?

[१८ उ] गांगेय ! वे तीन नैरयिक (एक साथ) रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अध सप्तम मे उत्पन्न होते हैं।

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और दो शर्कराप्रभा मे, अथवा (२-३-४-५-६) यावत एक रत्नप्रभा मे और दो अध सप्तम पृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं। (इस प्रकार १-२ का रत्नप्रभा के साथ अनुक्रम से दूसरे नरको के साथ सयोग करने से छह भग होते हैं)।

(१) अथवा दो नैरयिक रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे उत्पन्न होते हैं। (२-३-४-५-६) अथवा यावत दो जीव रत्नप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार २-१ के भी पूर्ववत् ६ भग होते हैं)।

(१) अथवा एक शकराप्रभा मे और दो बालुकाप्रभा मे होते हैं, (२-३-४-५) अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (इस प्रकार शकराप्रभा के साथ १-२ के पाच भग होते हैं)।

(१) अथवा दो शकराप्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है, अथवा (२-३-४ ५) यावत् दो शकराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे उत्पन्न होता है। (इस प्रकार २ १ के पूर्ववत् पाच भग होते हैं)।

जिस प्रकार शकराप्रभा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार सातो नरको की वक्तव्यता, यावत् दो तम प्रभा में और एक तमस्तम प्रभा मे होता है, यहाँ तक जानना चाहिए। (इस प्रकार ६+६+५+५=२२ तथा ४-४, ३-३, २-२, १-१=कुल ४२ भग हुए)।

अथवा (१) एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा मे, (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है।

अथवा (३-४-५) यावत् एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार रत्नप्रभा और शकराप्रभा के साथ ५ विकल्प होते हैं।)

अथवा (६) एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। (७) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (८-९) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। इस प्रकार रत्नप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ ४ विकल्प होते हैं।

अथवा (१०) एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (११-१२) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार बालुकाप्रभा को छोडने पर रत्नप्रभा और पकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते हैं।)

अथवा (१३) एक रत्नप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है, (१४) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार पक-प्रभा को छोड देने पर, रत्नप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।)

(१५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (धूमप्रभा को छोड देने पर यह एक विकल्प होता है।) इस प्रकार रत्नप्रभा के ५+४+३+२+१= १५ विकल्प होते हैं।

(१६) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है, (१७) अथवा एक शकराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (१८-१९) यावत् अथवा एक शकराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार शकराप्रभा और बालुकाप्रभा के साथ चार विकल्प होते हैं।)

(२०) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (२१-२२) यावत अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार बालुकाप्रभा को छोड देने पर शकराप्रभा और पकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते हैं।)

(२३) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है।

(२४) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार पकप्रभा को छोड देने पर, शकराप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।)

(२५) अथवा एक शकराप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार धूमप्रभा को छोड देने पर एक विकल्प होता है। यो शकराप्रभा के साथ ४+३+२+१=१० विकल्प होते हैं।)

(२६) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२७) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है, (२८) अथवा एक बालुकाप्रभा में, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। अथवा (२९) एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३०) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (३१) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ ३+२+१= ६ विकल्प होते हैं।)

(३२) अथवा एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३३) अथवा एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो पकप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।) (३४) अथवा एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार पकप्रभा के साथ २+१=३ विकल्प होते हैं।)

(३५) अथवा एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस तरह धूमप्रभापृथ्वी के साथ एक विकल्प होता है।)

(र १५+श १०+वा ६+प ३+धू १, यो त्रिकसयोगी कुल भग ३५ होते है।)

विवेचन—तीन नैरयिकों के नरकप्रवेशनकभग—यदि तीन जीव नरक मे उत्पन्न हो तो उनके असयोगी (एक-एक) भग ७, द्विक सयोगी ४२ और त्रिक सयोगी ३५, ये सब मिल कर ८४ भग होते हैं। जो ऊपर बतला दिए गए हैं।[1]

चार नैरयिकों के प्रवेशनकभग

१९ चत्तारि भते ! नेरइया नेरइयपवेसणए ण पविसमाणा कि रयणप्पभाए होज्जा० ? पुच्छा।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा २। एव जाव[2] अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा ३-६। अहवा दो रयणप्पभाए, दो सक्करप्पभाए होज्जा १, एव जाव[3] अहवा दो रयणप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा २-६ = १२।

अहवा तिण्णि रयणप्पभाए एगे सक्करप्पभाए होज्जा १। एव जाव[4] अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २ ६ = १८।

अहवा एगे सक्करप्पभाए, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा १, एव जहेव रयणप्पभाए उवरिमाहि सम चारिय तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाहि सम चारियव्व २ १५ = ३३।

एव एक्केक्काए सम चारेयव्व जाव अहवा तिण्णि तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १५-१५ = ६३।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयण

---

१ भगवती—अ वृत्ति पत्र ४४२

२ 'जाव' पद से—'अहवा एगेरयणप्पभाए, तिण्णि पकप्पभाए होज्जा ३। अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि धूमप्पभाए होज्जा ४। अहवा एगे रयणप्पभाए, तिण्णि तमप्पभाए होज्जा ५।' इस प्रकार तृतीय चतुर्थ एव पचम भग समझना चाहिए।

३ इसी प्रकार 'जाव' पद से—'अहवा दो रयणप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा, २। अहवा दो रयणप्पभाए, दो पकप्पभाए होज्जा ३। अहवा दो रयणप्पभाए, दो धूमप्पभाए होज्जा ४। अहवा दो रयणप्पभाए, दो तमाए होज्जा।' इस प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम भग समझना चाहिए।

४ एव 'जाव' पद से—'अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए २। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे पकप्पभाए ३। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे धूमप्पभाए ४। अहवा तिण्णि रयणप्पभाए, एगे तमाए ५।' इस प्रकार द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम भग समझना।

प्पभाए, एगे सक्कर०, दो पंकप्पभाए होज्जा २। एव जाव एगे रयणप्पभाए, एगे सक्कर०, दो अहेसत्तमाए होज्जा ३-४-५।

अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १। एव जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २-३-४-५=१०।

अहवा दो रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १=११। एव जाव अहवा दो रयण०, एगे सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५=१५। अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, दो पकप्पभाए होज्जा १=१६। एव जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुय०, दो अहेसत्तमाए होज्जा २-३-४=१९। एव एएण गमएण जहा तिण्ह तियजोगो तहा भाणियव्वो जाव अहवा दो धूमप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १०५।

अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे पकप्पभाए होज्जा १। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे धूमप्पभाए होज्जा २। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे तमाए होज्जा ३। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, एगे वालुयप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पक०, एगे धूमप्पभाए १=५। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पकप्पभाए, एगे तमाए होज्जा २-६। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर० एगे पक०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३ ७। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे सक्कर०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा १=८। अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २-९। अहवा एगे रयण०, एगे सक्करप्पभाए, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १=१०, अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे धूमप्पभाए होज्जा १-११। अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे तमाए होज्जा २-१२। अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३-१३। अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा १-१४। अहवा एगे रयणप्पभाए, एगे वालुय०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २-१५। अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १-१६। अहवा एगे रयण०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा १-१७। अहवा एगे रयण०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २-१८। अहवा एगे रयण०, एगे पक०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १-१९। अहवा एगे रयण०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १-२०। अहवा एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे धूमप्पभाए होज्जा १ २१। एव जहा रयणप्पभाए उवरिमाओ पुढवीओ चारियाओ तहा सक्करप्पभाए वि उवरिमाओ चारियव्वाओ जाव अहवा एगे सक्कर०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १०-३०। अहवा एगे वालुय०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा १—३१। अहवा एगे वालुय०, एग पक०, एगे धूमप्पभाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २-३२। अहवा एगे वालुय०, एगे पक, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३-३३। अहवा एगे वालुय०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४-३४। अहवा एगे पक०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १-३५।

[१९ प्र] भगवन् ! नैरयिकप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए चार नैरयिक जीव क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[१९ उ] 'गागेय ! वे चार नैरयिक जीव रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे होते हैं। (इस प्रकार असयोगी सात विकल्प और सात ही भग होते हैं।)

(द्विकसयोगी तिरेसठ भग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और तीन शर्कराप्रभा मे होते हैं, (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे और तीन वालुकाप्रभा मे होते हैं, (३-४-५-६) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे और तीन अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ १-३ के ६ भग होते हैं।)

(७) अथवा दो रत्नप्रभा मे और दो शर्कराप्रभा मे होते हैं, (८-९-१०-११-१२) इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (यो रत्नप्रभा के साथ २-२ के छह भग होते हैं।)

(१३) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और एक शर्कराप्रभा मे होता है, (१४-१८) इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ ३-१ के ६ भग होते है। यो रत्नप्रभा के साथ कुल भग ६+६+६=१८ हुए।)

(१) अथवा एक शर्कराप्रभा मे और तीन वालुकाप्रभा मे होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभा का आगे की नरकपृथ्वियो के साथ सचार (योग) किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा का भी उसके आगे की नरको के साथ सचार करना चाहिए। (इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ १-३ के ५ भग, २-२ के ५ भग, एव ३-१ के ५ भग, यो कुल मिलाकर १५ भग हुए।)

इसी प्रकार आगे की एक एक (वालुकाप्रभा पकप्रभा, आदि) नरकपृथ्वियो के साथ योग करना चाहिए। (इस प्रकार वालुकाप्रभा के साथ भी १-३ के ४, २-२ के ४ और ३ १ के ४ यो कुल १२ भग पकप्रभा के साथ १-३ के ३, २-२ के ३ और ३-१ के ३, यो कुल ९ भग, तथा धूमप्रभा के साथ १-३ के २, २-२ के २, और ३-१ के २, तथा तम प्रभा के साथ १-३ का १, २-२ का १ और ३-१ का १ होता है। यावत् अथवा तीन तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए। (इस प्रकार द्विकसयोगी कुल ६३ भग हुए।)

(त्रिकसयोगी १०५ भग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो वालुकाप्रभा मे होते हैं।

(२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते हैं। (३-४-५) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते। (इस प्रकार १-१-२ के पाच भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे दो शर्कराप्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है, (२ से ५) इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे दो शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। इसी प्रकार १-२-१ के पाच भग हुए।

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है।

(२ से ५) इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार २-१-१ के पाच भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं (२-३-४)। (इस प्रकार रत्नप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ ४ भग होते हैं।)

इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा जैसे तीन नैरयिको के त्रिकसयोगी भग कहे, उसी प्रकार चार नैरयिको के भी त्रिकसयोगी भग जानना चाहिए, यावत् दो धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक तमस्तम प्रभा मे होता है। (इस प्रकार त्रिकसयोगी कुल १०५ भग हुए।)

(चतु सयोगी ३५ भग—) (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है, (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है।

(४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और एक अध-सप्तम पृथ्वी मे होता है। (ये चार भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार ये तीन भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार ये दो भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (यह एक भग हुआ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा म, एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (ये तीन भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा म, एक वालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है। (ये दो भग हुए।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है। (यह एक भग हुआ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (ये दो भग होते हैं।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यह एक भग) (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यह एक भग हुआ। इस प्रकार रत्नप्रभा के सयोग वाले ४+३+२+१, +३+२+१, +२+१+१=२० भग होते हैं।)

(१) अथवा एक शर्कराप्रभा मे एक बालुकाप्रभा मे एक पकप्रभा मे और एक धूमप्रभा मे होता है। जिस प्रकार रत्नप्रभा का उससे आगे की पृथ्वियो के साथ सचार (योग) किया उसी प्रकार शर्कराप्रभा का उससे आगे की पृथ्विया के साथ योग करना चाहिए यावत् अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार शर्कराप्रभा के सयोग वाले १० भग होते हैं।)

(१) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा म होता है। (२) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (३) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस तरह बालुकाप्रभा के सयोग वाले ४ भग हुए।)

(१) अथवा एक बालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा म और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है अथवा एक पकप्रभा मे एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे हाता है। इस प्रकार सब मिल कर चतु सयोगी भग २०+१०+४+१=३५ होते हैं। तथा चार नैरयिक, आश्रयी असयोगी ७, द्विकसयोगी ६३, त्रिकसयोगी १०५ और चतु सयोगी ३५, ये सब २१० भग होते हैं।)

विवेचन—चार नैरयिकों के प्रवेशनक भग—चार नरयिको के १-३, २-२, ३-१ इस प्रकार के द्विकसयोगी भग तीन होते हैं। उनमे से रत्नप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने से १-३ के ६, २-२ के ६, और ३-१ के ६, यों १८ भग हुए। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के साथ पूर्वोक्त तीनो विकल्पो के ५+५+५=१५ भग, इसी प्रकार बालुकाप्रभा के साथ पूर्वोक्त तीनो विकल्पो के ४+४+४=१२, भग होते हैं। तथा पकप्रभा के साथ पूर्वोक्त तीनो विकल्प भी ३+३+३=९ भग, एव धूमप्रभा के साथ २+२+२=६ भग तथा तम प्रभा के साथ १+१+१=३ भग होते है। सभी मिलकर द्विकसयोगी ६३ भग बताए गए। उनमे से रत्नप्रभा के साथ सयोग वाले १८ भग ऊपर बता दिये गए हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के साथ आगे की पृथ्विया का योग करने से १—३, के ५ भग होते हैं। यथा—एक शर्कराप्रभा मे और तीन बालुकाप्रभा आदि मे होते हैं। इसी तरह २—२ के भी पांच भग होते हैं—दो शर्कराप्रभा म और दो बालुकाप्रभा आदि मे होते हैं। यो शर्कराप्रभा के साथ सयोग वाले ५ भग हुए। इसी प्रकार ३—१ मे भी शर्कराप्रभा के सयोग वाले ५ भग होते हैं। यथा—तीन शर्कराप्रभा मे और एक बालुकाप्रभा आदि मे होता है। इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ सयोग वाले कुल १५ भग हुए। बालुकाप्रभा के साथ आगे की पृथ्विया का सयोग करने से ४ भग होते हैं, जो मूल पाठ मे बतला दिये हैं। उन्हे पूर्वोक्त तीन विकल्पो से गुणा करने पर कुल ४+४+४=१२ भग होते हैं। इसी प्रकार पकप्रभा के साथ आगे की पृथ्वियों का सयोग करने पर तथा तीन विकल्पो से गुणा करने पर कुल ९ भग होते हैं। इसी प्रकार धूमप्रभा के साथ ६ भग तथा तम प्रभा के साथ ३ भग होते हैं। यो उत्तरोत्तर आगे की पृथ्वियो के साथ सयोग करने से ऊपर

बताए अनुसार रत्नप्रभा के १८ शर्कराप्रभा के १५, बालुकाप्रभा के १२, पकप्रभा के ९, धूमप्रभा के ६ और तम प्रभा के ३, ये कुल मिलाकर चार नैरयिको के द्विसयोगी ६३ भग होते है।

चार नैरयिको के त्रिकसयोगी भग—१०५ होते हैं। यथा चार नैरयिका के १-१-२, १-२-१ और २-१-१ ये तीन भग एक विकल्प के होते हैं, इनको रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा के साथ बालुकाप्रभा आदि आगे की पृथ्वियो के साथ सयोग करने पर ५ विकल्प होते हैं। पूर्वोक्त तीन भगो के साथ गुणा करने पर १५ भग होते हैं। इसी प्रकार इन तीन भगो द्वारा रत्नप्रभा और बालुकाप्रभा का आगे की पृथ्वियो के साथ सयोग करने से कुल १२ भग होते हैं। रत्नप्रभा और पकप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने पर कुल ९ भग होते हैं। रत्नप्रभा और धूमप्रभा का सयोग करने पर ६ भग, तथा रत्नप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग करने पर तीन भग होते हैं। इस प्रकार रत्नप्रभा के सयोग वाले कुल भग १५+१२+९+६+३=४५ होते हैं। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा के साथ सयोग करने पर १२, शर्कराप्रभा और पकप्रभा के साथ सयोग करने पर ९, शर्कराप्रभा और धूमप्रभा के साथ सयोग करने पर ६, तथा शर्कराप्रभा और तम प्रभा का सयोग करने पर ३ भग होते हैं। इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ सयोग वाले कुल भग १२+९+६+३=३० होते है। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा बालुकाप्रभा और पकप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने पर ९, बालुकाप्रभा और धूमप्रभा के साथ ६ तथा बालुकाप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग करने से ३ भग होते हैं। इस प्रकार बालुकाप्रभा के साथ सयोग वाले कुल भग ९+६+३=१८ होते हैं। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा पकप्रभा और धूमप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो का सयोग करने पर ९, पकप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग वाले ३ भग होते हैं। यो पकप्रभा के सयोग वाले कुल भग ९+३=१२ होते हैं। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा पकप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग करने पर तीन भग होते हैं। पूर्वोक्त तीन विकल्पो द्वारा धूमप्रभा और तम प्रभा के साथ सयोग वाले ३ भग होते हैं। इस प्रकार त्रिकसयोगी समस्त भग ४५+३०+१८+९+३=१०५ होते है।[1]

उपर्युक्त पद्धति से चार नैरयिको के चतु सयोगी ३५ भग होते हैं, जिनका उल्लेख मूलपाठ मे कर दिया है।

यो चार नरयिको की अपेक्षा से असयोगी ७, द्विकसयोगी ६३, त्रिकसयोगी १०५ और चतु - सयोगी ३५, यो कुल २१० भग होते हैं।

पच नैरयिको के प्रवेशनकभग

२० पच भते! नेरइया नेरइयप्पवेसणए ण पविसमाणा कि रयणप्पभाए होज्जा? पुच्छा।

गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

पाच नैरयिको के द्विसयोगी भग

अहवा एगे रयण०, चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा १। जाव अहवा एगे रयण०, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा ६। अहवा दो रयण०, तिण्णि सक्करप्पभाए होज्जा१-७। एव जाव अहवा दो

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा-१ पृ ४२४ से ४२६ तक
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४२

रयणप्पभाए, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा ६ = १२ । अहवा तिण्णि रयण०, दो सक्करप्पभाए होज्जा १ १३ । एव जाव अहेसत्तमाए होज्जा ६ = १८ । अहवा चत्तारि रयण०, एगे सक्करप्पभाए होज्जा १-१९ । एव जाव अहवा चत्तारि रयण०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ६ = २४ । अहवा एगे सक्कर०, चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा १ । एव जहा रयणप्पभाए सम उवरिमपुढवीओ चारियाओ तहा सक्कर-प्पभाए वि सम चारेयव्वाओ जाव अहवा चत्तारि सक्करप्पभाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा २० । एव एक्केक्काए सम चारेयव्वाओ जाव अहवा चत्तारि तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ८४ ।

पाच नैरयिकों के त्रिसयोगी भग

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, तिण्णि वालुप्पभाए होज्जा १ । एव जाव अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, तिण्णि अहेसत्तमाए होज्जा ५ । अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, दो वालुयप्पभाए होज्जा १-६ । एव जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, दो अहेसत्तमाए होज्जा ५-१० । अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो वालुयप्पभाए होज्जा १-११ । एव जाव अहवा दो रयणप्पभाए, एगे सक्करप्पभाए, दो अहेसत्तमाए होज्जा ५-१५ । अहवा एगे रयण०, तिण्णि सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १-१६ । एव जाव अहवा एगे रयण०, तिण्णि सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५-२० । अहवा दो रयण०, दो सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १-२१ । एव जाव दो रयण०, दो सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए ५-२५ । अहवा तिण्णि रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुयप्पभाए होज्जा १-२६ । एव जाव अहवा तिण्णि रयण०, एगे सक्कर०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५-३० । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, तिण्णि पकप्पभाए होज्जा १-३१ । एव एएण कमेण जहा चउण्ह तियसजोगो भणितो तहा पचण्ह वि तियसजोगो भाणियव्वो, नवर तत्थ एगो सचारिज्जइ, इह दोण्णि, सेस त चेव, जाव अहवा तिण्णि धूमप्पभाए एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा २१० ।

पच नैरयिको के चतु सयोगी भग

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, दो पकप्पभाए होज्जा १ । एव जाव अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, दो अहेसत्तमाए होज्जा ४ । अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० दो वालुय०, एगे पकप्पभाए होज्जा १-५ । एव जाव अहेसत्तमाए ४-८ । अहवा एगे रयण०, दो सक्कर-प्पभाए, एगे वालुय०, एगे पकप्पभाए होज्जा १-९ । एव जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, एगे वालुय०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४-१२ । अहवा दो रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय० एगे पकप्पभाए होज्जा १-१३ । एव जाव अहवा दो रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४-१६ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पक०, दो धूमप्पभाए होज्जा १-१७ । एव जहा चउण्हं चउक्कसजोगो भणिओ तहा पचण्ह वि चउक्कसजोगो भाणियव्वो, नवर अब्भहिय एगो सचारेयव्वो, एव जाव अहवा दो पक०, एगे धूम०, एगे तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा १४० ।

अहवा १-१-१-१-१ एगे रयण०, सक्कर०, एगे वालुय, एगे पक०, एगे धूमप्पभाए होज्जा १ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे पक०, एगे तमाए होज्जा २ । अहवा एगे

रयण०, जाव एगे पंक० एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुयप्प-भाए, एगे धूमप्पभाए, एगे तमाए होज्जा ४ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे धूमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ६ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पंक०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा ७ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पंक०, एगे धूम० एगे अहेसत्तमाए होज्जा ८ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे पंक०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा ९ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, एगे धूम०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १० । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पंक०, एगे धूम०, एगे तमाए होज्जा ११ । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पंक०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १२ । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे पंक०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १३ । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, एगे धूम०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १४ । अहवा एगे रयण०, एगे पंक०, जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा १५ । अहवा एगे सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे तमाए होज्जा १६ । अहवा एगे सक्कर० एगे वालुय०, एगे पंक०, एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १७ । अहवा एगे सक्कर०, जाव एगे पंक०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १८ । अहवा एगे सक्कर०, एगे वालुय०, एगे धूम०, एगे तमाए, एगे अहेसत्तमाए होज्जा १९ । अहवा एगे सक्कर०, एगे पंक०, जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा २० । अहवा एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा २१ । ४६२ ।

[२० प्र] भगवन् ! पाच नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्न-प्रभा मे उत्पन होते हैं ? इत्यादि पृच्छा ।

[२० उ] गागेय ! रत्नप्रभा मे होते हैं, यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे उत्पन होते हैं । (इस प्रकार असयोगी सात भग होते हैं ।)

(द्विकसयोगी ८४ भग—) (१) अथवा एक रत्नप्रभा मे और चार शकराप्रभा मे होते हैं, (२-६) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे और चार अध सप्तम-पृथ्वी मे होते हैं । (इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ १ ४ शेष पृथ्वियो का योग करने पर ६ भग होते हैं ।

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे और तीन शर्कराप्रभा मे होते हैं, (२-६) इसी प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे और तीन अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं । (यो २ ३ से ६ भग होते हैं ।)

(१) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और दो शर्कराप्रभा मे होते हैं । २-६ इसी प्रकार यावत् अथवा तीन रत्नप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (यो ३-२ से ६ भग होते है ।)

(१) अथवा चार रत्नप्रभा मे और शकराप्रभा मे होता है, (२ ६) यावत् अथवा चार रत्नप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है । (इस प्रकार ४-१ से ६ भग होते है । यो रत्नप्रभा के साथ शेष पृथ्वियो के सयोग से कुल चौवीस भग होते हैं ।)

(१) अथवा एक शकराप्रभा मे और चार बालुकाप्रभा मे होते हैं । जिस प्रकार रत्नप्रभा के साथ (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से आगे की पृथ्वियो का सयोग किया, उसी प्रकार शकराप्रभा

के साथ सयोग करने पर बीस भग (५+५+५+५=२०) होते हैं। यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

इसी प्रकार वालुकाप्रभा आदि एक-एक पृथ्वी के साथ आगे की पृथ्वियो का (१-४, २-३, ३-२ और ४-१ से) योग करना चाहिए, यावत् चार तम प्रभा मे और एक अध सप्तम पृथ्वी मे होता है।

विवेचन—पाच नैरयिकों के द्विकसयोगी भग—इसके ४ विकल्प होते हैं यथा—१-४, २-३, ३-२, और ४-१। रत्नप्रभा के द्विकसयोगी ६ भगो के साथ ४ विकल्पो का गुणा करने पर २४ भग होते हैं। शर्कराप्रभा के साथ ५ भगो से ४ विकल्पो का गुणा करने पर २०, वालुकाप्रभा के साथ १६, पकप्रभा के साथ १२, धूमप्रभा के साथ ८ और तम प्रभा के साथ ४ भग होते हैं। इस प्रकार कुल २४+२०+१६+१२+८+४=८४ भग द्विकसयोगी होते हैं।[1]

(त्रिकसयोगी २१० भग—) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा मे होते हैं। इसी प्रकार यावत्—अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और तीन अध-सप्तम-पृथ्वी मे होते हैं। (इस प्रकार एक, एक और तीन के रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा के साथ सयोग से पाच भग होते है।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और दो वालुकाप्रभा मे होते ह, इसी प्रकार यावत अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (इस प्रकार एक, दो, दो के सयोग से पाच भग होते है।)

अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो वालुकाप्रभा मे होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और दो अध सप्तम पृथ्वी मे होते हैं। (या दो, एक, दो के सयोग से ५ भग होते हैं।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्कराप्रभा में, और एक वालुकाप्रभा मे होता है। इसी प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार एक, तीन, एक के सयोग से पाच भग होते हैं।)

अथवा दो रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है। इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (इस प्रकार दो, दो, एक के सयोग से ५ भग हुए।)

अथवा तीन रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक वालुकाप्रभा मे होता है। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और एक अध सप्तमापृथ्वी मे होता है। (यो ३-१-१ के सयोग से ५ भग होते हैं।)

विवेचन—पांच नरयिकों के त्रिकसयोगी भग—त्रिकसयोगी विकल्प ६ होते हैं। यथा—१-१ ३, १-२-२, २-१-२, १ ३-१, २ २-१ और ३-१-१ ये ६ विकल्प। प्रत्येक नरक के साथ

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४४

सयोग होने से प्रत्येक के ५-५ भग होते हैं। यो ७×५=३५ भग हुए। इन ३५ भगो को ६ विकल्पो के साथ गुणा करने से ३५×६=२१० भग कुल होते हैं।[1]

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और तीन पकप्रभा मे होते हैं। इस क्रम से जिस प्रकार चार नैरयिको के त्रिकसयोगी भग कहे हैं, उसी प्रकार पाच नैरयिको के भी त्रिकसयोगी भग जानना चाहिए। विशेष यह है कि वहाँ 'एक' का सचार था, (उसके स्थान पर) यहा दो का सचार करना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जान लेना चाहिए, यावत्—अथवा तीन धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है, यहा तक कहना चाहिए।

त्रिकसयोगी भग—इनमे से रत्नप्रभा के सयोग वाले ९०, शर्कराप्रभा के सयोग वाले ६०, बालुकाप्रभा के सयोगवाले ३६, पकप्रभा के सयोग वाले १८, और धूमप्रभा के सयोग वाले ६ भग होते हैं। ये सभी ९०+६०+३६+१८+६=२१० भग त्रिकसयोगी होते हैं।[2]

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और दो पकप्रभा मे होते है, इसी प्रकार (२-४) यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और दो अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (यो १-१-१-२ के सयोग से चार भग होते हैं।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। इसी प्रकार (२-४) यावत एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, दो बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो १-१-२-१ के सयोग से चार भग होते है।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होता है। इस प्रकार (२-४) यावत् एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक अध - सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो १-१-२-१ के सयोग से चार भग होते है।)

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक पकप्रभा मे होते है। इसी प्रकार यावत् (२-४) अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा मे, एक बालुकाप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (यो २-१-१-१ के सयोग से ४ भग होते हैं।)

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और दो धूमप्रभा मे होते हैं। जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहे है, उसी प्रकार पाच नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहना चाहिए, किन्तु यहाँ एक अधिक का सचार (सयोग) करना चाहिए। इस प्रकार यावत् दो पकप्रभा म, एक धूमप्रभा में, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है, यहाँ तक कहना चाहिए। (ये चतु सयोगी १४० भग होते हैं)।

विवेचन—पाच नरयिकों के चतु सयोगी भग—चतु सयोगी ४ विकल्प होते हैं, यथा—१-१-१-२, १-१-२-१, १-२-१-१ और २-१-१-१। सात नरको के चतु सयोगी पतीस भग होते हैं। इन पतीस को ४ से गुणा करने पर कुल १४० भग होते है। यथा—रत्नप्रभा मे सयोग वाले ८०,

---

१ भगवती अ वृत्ति, सूत्र ४४४

२ भगवती भाग ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १६४३

शर्कराप्रभा के सयोग वाले ४०, वालुकाप्रभा के सयोग वाले १६ और पकप्रभा के सयोग वाले ४, य सभी मिलकर पच नैरयिको के चतु सयोगी १४० भग होते हैं।

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा म और एक धूमप्रभा मे होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है, (३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

(४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

(६) अथवा एक रत्नप्रभा मे एक शकराप्रभा मे एक वालुकाप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है।

(७) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे, एक पकप्रभा में, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (८) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक पकप्रभा म, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (९) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१०) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (११) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक तम प्रभा मे होता है। (१२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१३) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा म एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१४) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध - सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१५) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१६) अथवा एक शकराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा म और एक तम प्रभा मे होता है। (१७) अथवा एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१८) अथवा एक शकराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (१९) एक शर्कराप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी में होता है। (२०) अथवा एक शकराप्रभा मे, एक पकप्रभा मे, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा मे और एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है। (२१) अथवा एक वालुकाप्रभा मे, एक पकप्रभा म, एक धूमप्रभा मे, एक तम प्रभा में और एक अध सप्तमपृथ्वी में होता है।

विवेचन—पच नरयिकों के पचसयोगी भग—पच नैरयिका का पचसयोगी विकल्प एव भग १-१-१-१-१ एक ही होता है। इस प्रकार सात नरको के पचसयोगी २१ ही विकल्प और २१ ही भग होते हैं। जिनमे मे रत्नप्रभापृथ्वी के सयोग वाले १५, शर्कराप्रभा के सयोग वाले ५ और

वालुकाप्रभा के सयोग वाला १ भग होता है । यो सभी मिलकर १५+५+१=२१ भग पचसयोगी होते है ।[1]

पाच नैरयिको के समस्त भग—पाच नैरयिक जीवो के असयोगी ७, द्विकसयोगी ८४, त्रिकसयोगी २१०, चतु सयोगी १४० और पचसयोगी २१, ये सभी मिलकर ७+८४+२१०+१४०+२१=४६२ भग होते हैं ।[2]

छह नैरयिको के प्रवेशनकभग

२१ छब्भते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणए ण पविसमाणा किं रयणप्पभाए होज्जा० ? पुच्छा ।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७ ।

अहवा एगे रयण०, पच सक्करप्पभाए वा होज्जा १ । अहवा एगे रयण०, पच वालुयप्पभाए वा होज्जा २ । जाव अहवा एगे रयण०, पच अहेसत्तमाए होज्जा ६ । अहवा दो रयण०, चत्तारि सक्करप्पभाए होज्जा १-७ । जाव अहवा दो रयण०, चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा ६-१२ । अहवा तिण्णि रयण०, तिण्णि सक्कर० १-१३ । एव एएण कमेण जहा पचण्ह दुयासजोगो तहा छण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो जाव अहवा पच तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा १०५ ।

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर० चत्तारि वालुयप्पभाए होज्जा १ । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, चत्तारि पकप्पभाए होज्जा २ । एव जाव अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० चत्तारि अहेसत्तमाए होज्जा ५ अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, तिण्णि वालुयप्पभाए होज्जा ६ । एव एएण कमेण जहा पचण्ह तियासजोगो भणिओ तहा छण्ह वि भाणियव्वो, नवर एक्को अब्भहिओ उच्चारेयव्वो, सेस त चेव । ३५० ।

चउक्कसजोगो वि तहेव । ३५० ।

पचगसजोगो वि तहेव, नवर एक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो जाव पच्छिमो भगो—अहवा दो वालुय०, एगे पक०, एगे धूम०, एगे तम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा । १०५ ।

अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० जाव एगे तमाए होज्जा १, अहवा एगे रयण० जाव एगे धूम०, एगे अहेसत्तमाए होज्जा २, अहवा एगे रयण० जाव० एगे पक एगे तमाए एगे अहेसत्तमाए होज्जा ३, अहवा एगे रयण० जाव एगे वालुय० एगे धूम० एगे अहेसत्तमाए होज्जा ४, अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० एगे पक० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ५, अहवा एगे रयण० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ६, अहवा एगे सक्करप्पभाए एगे वालुयप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा ७ । ९२४ ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४४

२ भगवती अ वत्ति पत्र ४४४

[२१ प्र] भगवन् ! छह नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्न-प्रभा में उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[२१ उ] गांगेय ! वे रत्नप्रभा में होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं। (इस प्रकार ये असंयोगी ७ भंग होते हैं)।

(द्विकसंयोगी १०५ भंग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच शर्कराप्रभा में होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभा में और पांच वालुकाप्रभा में होते हैं। अथवा (३-६) यावत् एक रत्नप्रभा में और पांच अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं। (१) अथवा दो रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में होते हैं, अथवा (२—६) यावत् दो रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं। (१) अथवा तीन रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में होते हैं। इस क्रम द्वारा जिस प्रकार पांच नैरयिक जीवों के द्विकसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार छह नैरयिकों के भी कहने चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ एक अधिक का संचार करना चाहिए, यावत् अथवा पांच तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है।

(त्रिकसंयोगी ३५० भंग)—(१) एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में और चार पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् (३—५) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और चार अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं। (६) अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस क्रम से जिस प्रकार पांच नैरयिक जीवों के त्रिकसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार छह नैरयिक जीवों के भी त्रिकसंयोगी भंग कहने चाहिए। विशेष इतना ही है कि यहाँ एक का संचार अधिक करना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए। (इस प्रकार त्रिकसंयोगी कुल ३५० भंग हुए।)

(चतुष्कसंयोगी ३५० भंग)—जिस प्रकार पांच नैरयिकों के चतुष्कसंयोगी भंग कहे गए, उसी प्रकार छह नैरयिकों के चतुःसंयोगी भंग जान लेने चाहिए।

(पंचसंयोगी १०५ भंग)—पांच नैरयिकों के जिस प्रकार पंचसंयोगी भंग कहे गए, उसी प्रकार छह नैरयिकों के पंचसंयोगी भंग जान लेने चाहिए, परन्तु इसमें एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए। यावत् अन्तिम भंग (इस प्रकार है—) दो वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है।

(इस प्रकार पंचसंयोगी कुल १०५ भंग हुए।)

(षट्संयोगी ७ भंग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में, यावत् एक तमःप्रभा में होता है, (२) अथवा एक रत्नप्रभा में, यावत् एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभा में, यावत् एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है। (४) अथवा एक रत्नप्रभा में, यावत् एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है। (५) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है। (६) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता है। (७) अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमपृथ्वी में होता।

विवेचन—छह नरयिको के प्रवेशनक भग—प्रस्तुत सू २१ मे छह नैरयिको के प्रवेशनक भगो का विवरण दिया गया है।

एक सयोगी ७ भग—प्रत्येक नरक मे ६ नैरयिको का प्रवेशनक होने से सात नरको के असयोगी भग ७ हुए।

द्विकसयोगी १०५ भग—द्विकसयोगी विकल्प ५ होते हैं—यथा—१-५, २-४, ३-३, ४-२, और ५-१। इन पाच विकल्पो को १—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा, २—रत्नप्रभा बालुकाप्रभा, ३—रत्नप्रभा-पकप्रभा, ४—रत्नप्रभा धूमप्रभा, ५—रत्नप्रभा तम प्रभा और ६—रत्नप्रभा-तम स्तम प्रभा, इन ६ से गुणाकार करने पर ६×५=३० भग रत्नप्रभा के सयोग वाले हुए। इसी प्रकार शकराप्रभा के सयोग वाले २५ भग होते हैं, बालुकाप्रभा के सयोग वाले २०, पकप्रभा के सयोग वाले १५, धूमप्रभा के सयोग वाले १० और तम प्रभा के सयोग वाले ५ भग होते हैं। ये सभी मिलकर ३०+२५+२०+१५+१०+५=१०५ भग होते है।

त्रिकसयोगी ३५० भग—त्रिकसयोगी विकल्प १० होते हैं, यथा—१-१-४, १-२-३, २-१-३, १-३-२, २-२-२, ३-१-२, १-४-१, २-३-१, ३-२-१, और ४-१-१। इन १० विकल्पो को रत्नप्रभा के सयोग वाले र श बा, र श प, र श धू, र श त, र श अध, र वा प, र वा धू, र बा त, र वा अध, र प धू, र प त, र प अध, र धू त, र धू अध, र त अध, १५ भगो से गुणा करने पर १५० भग होते हैं। इसी तरह १० विकल्पो को शकराप्रभा के सयोग वाले—श बा प, श बा ध, श बा त, श बा अध, श प धू, श प त, श प अध, श धू तम, श धू अध, श त अध, इन १० भगो के साथ गुणा करने पर १०० भग होते हैं। बालुकाप्रभा के सयोग वाले—वा प धू, बा प त, वा प अध, वा धू त, वा धू अध, वा [illegible] अध, इन ६ भगो को १० विकल्पो से गुणा करने पर ६० भग होते हैं। इसी प्रकार पकप्रभा के सयोग वाले—प धू त, प धू अध, प त अध, इन ३ भगो के साथ १० विकल्पो को गुणो करने से ३० भग होते हैं। धूमप्रभा के सयोग वाला सिफ एक भग धू त अध, होता है। इसे १० विकल्पो के साथ गुणा करने से १० भग होते हैं। इस प्रकार ये सभी मिल कर १५०+१००+६०+३०+१०=३५० भग त्रिकसयोगी होते हैं।

चतु सयोगी ३५० भग—चतु सयोगी विकल्प भी १० होते है। यथा—१-१-१-३, १-१-२ ?, १-२-१ २, २-१-१-२, १-१-३-१, १-२-२-१, २-१ २-१, १ ३-१-१, २-२-१-१ और ३-१-१-१। इन दस विकल्पो को रत्नप्रभा आदि के सयोग वाले पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर ३५० भग होते हैं।

पचसयोगी १०५ भग—पचसयोगी ५ विकल्प होते है। यथा—१-१-१-१-२, १ १-१-२-१, १-१ २ १-१, १-२-१-१-१, २-१-१-१-१। इन ५ विकल्पो को रत्नप्रभा के सयोग वाले (र श वा प धू, र श बा प त, र श वा प अध, र श वा धू त, र श वा धू अध, (र श ग त अध, र श प धू त, र श प धू अध, र श प त अध, र श धू त अध, र वा प धृ तम, र वा प धू अध, र वा प त अध, र वा धू त अध, र श धू त अध, इन १५ भगो के साथ गुणा करने पर ७५ भग होते हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा के सयोग

वाले—श वा प धू त, श वा प धू अध, श वा प त अध, श वा धू त अध, श प धू त अध, इन ५ भंगों को पूर्वोक्त ५ विकल्पों के साथ गुणा करने पर २५ भंग होते हैं। इसी तरह वालुकाप्रभा के वा प धू त अध, इस एक भंग के साथ ५ विकल्पों को गुणा करने पर ५ भंग होते हैं। ये सभी मिलकर ७५+२५+५=१०५ भंग पंचसंयोगी होते हैं।

षट्संयोगी ७ भंग—६ नैरयिकों का षट्संयोगी एक ही विकल्प होता है, उसके द्वारा सात नरकों के षट्संयोगी ७ भंग होते हैं। इस प्रकार ६ नैरयिक जीवों के असंयोगी ७ भंग, द्विकसंयोगी १०५, त्रिकसंयोगी ३५०, चतुष्कसंयोगी ३५०, पंचसंयोगी १०५ और षट्संयोगी ७, ये सब मिलकर ९२४ प्रवेशनक भंग होते हैं।[1]

सात नैरयिकों के प्रवेशनक-भंग

२२ सत्त भंते! नेरइया नेरइयपवेसणएणं पविसमाणा० पुच्छा।

गंगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयणप्पभाए, छ सक्करप्पभाए होज्जा। एवं एएणं कमेणं जहा छण्हं दुयासंजोगो तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वं नवरं एगो अब्भहिओ संचारिज्जइ। सेसं तं चेव।

तियासंजोगो, चउक्कसंजोगो, पंचसंजोगो, छक्कसंजोगो य छण्हं जहा तहा सत्तण्ह वि भाणियव्वो, नवरं एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो जाव छक्कगसंजोगो। अहवा दो सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा।

अहवा एगे रयण० एगे सक्कर० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा १। १७१६।

[२२ प्र] भगवन्! सात नैरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्न।

[२२ उ] गांगेय! वे सातों नैरयिक रत्नप्रभा में होते हैं, यावत् अथवा अध:सप्तम-पृथ्वी में होते हैं। (इस प्रकार असंयोगी ७ भंग होते हैं।)

(द्विकसंयोगी १२६ भंग)—अथवा एक रत्नप्रभा में और छह शर्कराप्रभा में होते हैं। इस क्रम से जिस प्रकार छह नैरयिक जीवों के द्विकसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार सात नैरयिक जीवों के भी द्विकसंयोगी भंग कहने चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए।

जिस प्रकार छह नैरयिकों के त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी और षट्संयोगी भंग कहे, उसी प्रकार सात नैरयिकों के त्रिकसंयोगी आदि भंगों के विषय में कहना चाहिए। विशेषता इतनी है कि यहाँ एक-एक नैरयिक जीव का अधिक संचार करना चाहिए। यावत्—षट्संयोगी का अन्तिम भंग इस प्रकार कहना चाहिए—अथवा दो शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, यावत् एक अध:सप्तमपृथ्वी में होता है। (यहाँ तक जानना चाहिए।)

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं, भा. १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ. ४३१-४३३

(ख) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४४५

सप्तसयोगी एक भग—अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है।

विवेचन—सात नैरयिकों के असयोगी ७ भग—नरक सात हैं, प्रत्येक नरक मे सातो नैरयिक प्रवेश करते हैं, इसलिए ७ भग हुए।

द्विकसयोगी १२६ भग—द्विकसयोगी ६ विकल्प होते हैं, यथा—१-६, २-५, ३-४, ४-३, ५-२, ६-१। इन ६ विकल्पो के साथ रत्नप्रभादि के सयोग से जनित २१ भगो का गुणाकार करने से १२६ भग द्विकसयोगी होते हैं।

त्रिकसयोगी ५२५ भग—सात नैरयिको के त्रिकसयोगी १५ विकल्प होते हैं। यथा—१-१-५, १-२-४, २-१-४, १-३-३, २-२-३, ३-१-३, १-४-२, २-३-२, ३-२-२, ४-१-२, १-५-१, २-४-१, ३-३ १, ४-२-१ और ५-१-१।

इन १५ विकल्पो को पूर्वोक्त त्रिकसयोगी ३५ विकल्पो के साथ गुणा करने से कुल ५२५ भग होते हैं।

चतु सयोगी ७०० भग—चतु सयोगी २० विकल्प होते है। यथा—१-१-१-४, १-१-४-१, १-४-१-१, ४-१-१-१, १-१-२-३, १-१-३-२, १-३-१-२, ३-१-१-२, १-२-१-३, २-१-१-३, ३-२-१-१, २-३-१-१, २-२-२-१, २-१-२-२, १-२-२-२, २-२-१-२, १-२-३-१, १-३-२-१, २-१-३-१ और ३-१-२-१।

इन २० विकल्पो को पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर चतु सयोगी कुल ७०० भग होते हैं।

पचसयोगी ३१५ भग—इसके १५ विकल्प होते हैं। यथा—१-१-१-१-३, १-१-१-३-१ इत्यादि। इन १५ विकल्पों को रत्नप्रभादि के सयोग से जनित २१ भगो के साथ गुणाकार करने पर पचसयोगी भगो की कुल सख्या ३१५ होती है।

षट्सयोगी ४२ भग—षट्सयोगी विकल्प ६ होते हैं। यथा—१-१-१-१-१-२, १-१-१-१-२-१, १-१-१-२-१-१, १-१ २-१-१-१, १-२-१-१-१-१, २-१-१-१-१-१। इन ६ विकल्पो के साथ रत्नप्रभादि के सयोग से जनित ७ भगो का गुणाकार करने पर षट्सयोगी भगो की कुल सख्या ४२ होती है।

सप्तसयोगी एक भग—१-१-१-१-१-१-१ इस प्रकार सप्तसयोगी एक ही भग होता है।

इस प्रकार सात नरयिको के नरकप्रवेशनक मे एकसयोगी ७, द्विकसयोगी १२६, त्रिकसयोगी ५२५, चतुष्कसयोगी ७००, पचसयोगी ३१५, षट्सयोगी ४२ और सप्तसयोगी १, यों कुल मिलाकर १७१६ भग होते हैं।[1]

आठ नैरयिको के प्रवेशनकभग

२३ अट्ठ भते! नेरतिया नेरइयपवेसणएण पविसमाणा० पुच्छा। गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४३४-४३५
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४५

अहवा १+७ एगे रयण० सत्त सक्करप्पभाए होज्जा १। एवं दुयासंजोगो जाव छक्कसंजोगो य जहा सत्तण्ह भणिओ तहा अट्ठण्ह वि भाणियव्वो, नवरं एक्केको अब्भहिओ संचारेयव्वो। सेसं तं चेव जाव छक्कसंजोगस्स। अहवा ३+१+१+१+१+१ तिण्णि सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव एगे तमाए दो अहेसत्तमाए होज्जा, अहवा एगे रयण० जाव दो तमाए एगे अहेसत्तमाए, एवं संचारेयव्वं जाव अहवा दो रयण० एगे सक्कर० जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। ३००३।

[२३ प्र] भगवन्! आठ नरयिक जीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्न।

[२३ उ] गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं, यावत् अथवा अध सप्तमपृथ्वी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और सात शर्कराप्रभा में होते हैं, इत्यादि, जिस प्रकार सात नरयिकों के द्विकसंयोगी त्रिकसंयोगी, चतु संयोगी, पंचसंयोगी और षट्संयोगी भंग कहे गए हैं, उसी प्रकार आठ नरयिकों के भी द्विकसंयोगी आदि भंग कहने चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि एक एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिए। शेष सभी षटसंयोगी तक पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिए। अन्तिम भंग यह है—अथवा तीन शर्कराप्रभा में, एक बालुकाप्रभा में यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी में होता है। (१) अथवा एक रत्नप्रभा में, यावत् एक तम प्रभा में और दो अध सप्तमपृथ्वी में होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् दो तम प्रभा में और एक अध सप्तमपृथ्वी में होता है। इसी प्रकार सभी स्थानों में संचार करना चाहिए। यावत्—अथवा दो रत्नप्रभा में एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी में होता है।

विवेचन—आठ नरयिकों में असंयोगी भंग सिर्फ ७ होते हैं।

द्विकसंयोगी १४७ भंग—इसके सात विकल्प होते हैं। यथा—१-७, २-६, ३-५, ४-४, ५-३, ६-२, ७-१। इन सात विकल्पों के साथ सात नरकों के २१ भंगों का गुणाकार करने पर कुल १४७ भंग होते हैं।

त्रिकसंयोगी ७३५ भंग—इसके २१ विकल्प होते हैं। यथा—१-१-६, १-२-५, १-३-४, १-४-३, १-५-२, १-६-१, ६-१-१, ५-२-१, २-१-५, २-२-४, २-३-३, २-४-२, २-५-१, ३-१-४, ३-२-३, ३-४-१, ३-३-२, ४-२-२, ४-३-१, ४-१-३, और ५-१-२। इन २१ विकल्पों के साथ सात नरकों के त्रिकसंयोगी (पूर्वोक्तवत्) ३५ भंगों का गुणाकार करने पर कुल ७३५ भंग होते हैं।

चतु संयोगी १२२५ भंग—इसके ३५ विकल्प होते हैं। यथा—१-१-१-५, १-१-२-४, १-२-१-४, २-१-१-४, १-१-३-३, १-२-२-३, २-१-२-३, १-३-१-३, २-२-१-३, ३-१-१-३, १-१-४-२, १-२-३-२, २-१-३-२, १-३-२-२, २-२-२-२, ३-१-२-२, १-४-१-२, २-३-१-२, ३-२-१-२, ४-१-१-२, १-१-५-१, १-२-४-१, २-१-४-१, १-३-३-१, २-२-३-१, ३-१-३-१, १-४-२-१, २-३-२-१, ३-२-२-१, ४-१-२-१, १-५-१-१, २-४-१-१, ३-३-१-१, ४-२-१-१ और ५-१-१-१। इन ३५ विकल्पों के साथ चतु संयोगी पूर्वोक्त ३५ भंगों का गुणाकार करने पर कुल १२२५ भंग होते हैं।

पचसयोगी ७३५ भग—इसके विकल्प ३५ होते है । यथा—१-१-१-१-४ इत्यादि क्रम से पूर्वापरसख्या के चालन से ३५ विकल्प पूववत् होते है । उन्हे सात नरकपदो से जनित २१ भगो के साथ गुणा करने से कुल भगो की सख्या ७३५ होती है ।

षट्सयोगी १४७ भग—इसके २१ विकल्प होते हैं । यथा—१-१-१-१-१-३ इत्यादि क्रम से पूर्वापर सख्याचालन से २१ विकल्प । इनके साथ सात नरकों के सयोग से जनित ७ भगो का गुणा करने से कुल भगो की सख्या १४७ होती है ।

सप्तसयोगी ७ भग—इनके २० विकल्प होते है । यथा—१-१-१-१-१-१-२, १-१-१-१-१-२-१, १-१-१-१-२-१-१, १-१-१-२-१-१-१, १-१-२-१-१-१, १-२-१-१-१-१-१, २-१-१-१-१-१-१ । इन सात विकल्पो का प्रत्येक नरक के साथ सयोग करने से केवल ७ भग होते हैं ।

इस प्रकार आठ नैरयिको के नरकप्रवेशनक के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी, १४७, त्रिकसयोगी ७३५, चतुष्कसयोगी १२२५, पचसयोगी, ७३५, षट्सयोगी १४७ और सप्तसयोगी ७ भग—कुल मिलाकर सब भग ३००३ होते हैं ।[1]

नौ नैरयिको के प्रवेशनकभग—

२४ नव भते ! नेरतिया नेरतियपवेसणएण पविसमाणा० पुच्छा ।

गगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७ ।

अहवा १-८ एगे रयण० अट्ठ सक्करप्पभाए होज्जा । एव दुयासजोगो जाव सत्तगसजोगो य जहा अट्ठण्ह भणिय तहा नवण्ह पि भाणियव्व, नवर एक्केक्को अब्भहिओ सचारेयव्वो, सेस त चेव । पच्छिमो आलावगो—अहवा तिण्णि रयण० एगे सक्कर० एगे वालुय० जाव एगे अहेसत्तमाए वा होज्जा । ५००५ ।

[२४ प्र] भगवन् ! नौ नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२४ उ] हे गागेय ! वे नौ नैरयिक जीव रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं ।

अथवा एक रत्नप्रभा मे और आठ शर्कराप्रभा मे होते हैं, इत्यादि जिस प्रकार आठ नैरयिका के द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतुष्कसयोगी, पचसयोगी, षट्सयोगी और सप्तसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार नौ नैरयिको के विषय मे भी कहना चाहिए । विशेष यह है कि एक एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए । शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए । अन्तिम भग इस प्रकार है—अथवा तीन रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे एक वालुकाप्रभा मे, यावत् एक अध सप्तम-पृथ्वी मे होता है ।

विवेचन—नौ नैरयिको के असयोगी भग—सात होते हैं ।

द्विकसयोगी १६८ भग—इनके १ ८, २-७, ३-६, ४ ५, ६-३, ५-४, ७-१, ८-१ ये ८ विकल्प

१ (क) भगवती अ वृत्ति पत्र ४४६

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४३६

होते हैं। इन ८ विकल्पों को सात नरकों के संयोग से जनित २१ भंगों से गुणा करने पर कुल भंगों की संख्या १६८ होती है।

त्रिकसंयोगी ९८० भंग—इसके २८ विकल्प होते हैं। यथा—१ १-७, २-३-४, ४-१-४, १-२-६, २-४-३, ४-२-३, १-३ ५, २-५-२, ४-३-२, १-४-४, २-६-१, ४-४-१, १-५-३, ३-१-५, ५ १-३, १-६-२, ३-२-४, ५-२-२, १-७-१, ३-३-३, ५-३-१, २-१-६, ३-४-२, ६-१-२, २-२-५, ३-५-१, ६-२ १ और ७-१-१।

इन २८ विकल्पों को सात नरकों के संयोग के जनित ३५ भंगों के साथ गुणा करने पर कुल भंगों की संख्या ९८० होती है।

चतुष्कसंयोगी १९६० भंग—इसके १-१ १-६ इस प्रकार चतुःसंयोगी ५६ विकल्प होते हैं। इन्हें सात नरकों के संयोग से जनित (पूर्वोक्त) ३५ भंगों के साथ गुणाकार करने पर भंगों की संख्या १९६० होती हैं।

पंचसंयोगी १४७० भंग—इसके पंचसंयोगी १-१-१-१-६ इत्यादि प्रकार से ७० विकल्प होते हैं। इन्हें सात नरकों के संयोग से जनित २१ भंगों के साथ गुणा करने पर कुल भंगों की संख्या १४७० होतीहैं।

षट्संयोगी ३९२ भंग—इसके १-१-१-१-१-४ इत्यादि प्रकार से ५६ विकल्प होते हैं। इन विकल्पों को सात नरकों के संयोग से जनित ७ भंगों के साथ गुणा करने पर कुल ३९२ भंग होते हैं।

सप्तसंयोगी २८ भंग—इसके १-१-१-१-१-१-३ इत्यादि प्रकार के २८ विकल्प होते हैं, इनका सात नरकों में से प्रत्येक के साथ संयोग करने से केवल २८ भंग ही होते हैं।

इस प्रकार नौ नैरयिकों के नरकप्रवेशनक के एक-संयोगी (असंयोगी) ७ भंग, द्विकसंयोगी १६८, त्रिकसंयोगी ९८०, चतुष्कसंयोगी १९६०, पंचसंयोगी १४७०, षट्संयोगी ३९२ और सप्तसंयोगी २८ भंग, ये सब मिलाकर ५००५ भंग हुए।[1]

वस नैरयिकों के प्रवेशनकभंग—

२५. दस भंते ! नेरइया नेरइयपवेसणएणं पविसमाणा० पुच्छा।

गंगेया ! रयणप्पभाए होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा १+९ एगे रयणप्पभाए, नव सक्करप्पभाए होज्जा। एवं दुयासंजोगो जाव सत्तसंजोगो य जहा नवण्हं, नवरं एक्केक्को अब्भहिओ संचारेयव्वो। सेसं तं चेव। अपच्छिमआलावगो—अहवा ४+१+१+१+१+१+१, चत्तारि रयण०, एगे सक्करप्पभाए जाव एगे अहेसत्तमाए होज्जा। ८००८।

[२५ प्र.] भगवन् ! दस नैरयिकजीव, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[२५ उ.] गांगेय ! वे दस नैरयिक जीव, रत्नप्रभा में होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं (७ असंयोगी भंग)।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ४३७

(ख) भगवती अ. वृत्ति पत्र ४४६

अथवा एक रत्नप्रभा मे और नौ शर्कराप्रभा मे होते हैं, इत्यादि जिस प्रकार नौ नैरयिक जीवो के द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी, चतु सयोगी, पचसयोगी, षट्सयोगी एव सप्तसयोगी भग कहे गए हैं, उसी प्रकार दस नैरयिक जीवो के भी (द्विकसयोगी यावत् सप्तसयोगी) भग कहने चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ एक-एक नैरयिक का अधिक सचार करना चाहिए, शेष सभी भग पूर्ववत् जानने चाहिए। उनका अन्तिम आलापक (भग) इस प्रकार है—अथवा चार रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे यावत् एक अध सप्तमपृथ्वी मे होता है (४+१+१+१+१+१+१)।

विवेचन—दस नैरयिको के असयोगी भग—केवल सात होते हैं।

द्विकसयोगी १८९ भग—इनके ९ विकल्प होते हैं। यथा १-९, २ ८, ३-७, ४-६, ५-५, ६-४, ७ ३, ८ २, ९ १। इन ९ विकल्पो के साथ सात नरको के सयोग से जनित २१ भगो को गुणा करने पर कुल १८९ भग होते हैं।

त्रिकसयोगी १२६० भग—इनके ३६ विकल्प होते हैं यथा—१-१-८, १-२-७, १-३-६, १-४-५, १ ५-४, १-६-३, १ ७-२, १-८-१, २-७ १, २-६-२, २-५-३, २-४-४, २ ३-५, २-२-६, २-१-७, ३-६-१, ३-५-२, ३-४-३, ३-३-४, ३-२-५, ३-१-६, ४-५-१, ४-४-२, ४-३-३, ४-२-४, ४-१-५, ५-४-१, ५-३-२, ५-२-३, ५-१-४, ६-३-१, ६-२ २, ६-१-३, ७-२-१, ७-१-२, और ८-१ १। इन ३६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणा करने पर कुल १२६० भग होते हैं।

चतुष्कसयोगी २९४० भग—इनके १-१-१-७ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से ८४ विकल्प होते है। इन ८४ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित पूर्वोक्त ३५ भगो के साथ गुणाकार करने पर कुल भगो की सख्या २९४० होती है।

पचसयोगी २६४६ भग—इनके १-१-१-१ ६ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से १२६ विकल्प होते है। इन १२६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से (पूर्ववत्) जनित २१ भगो के साथ गुणा करने पर १२६×२१=२६४६ कुल भग होते हैं।

षट्सयोगी ८८२ भग—इनके १-१-१-१-१-५ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन करने से १२६ विकल्प होते हैं। इन १२६ विकल्पो को सात नरको के सयोग से जनित ७ भगो के साथ गुणा करने पर भगो की कुल सख्या ८८२ होती है।

सप्तसयोगी ८४ भग—इनके १-१-१-१-१-१-४ इत्यादि प्रकार से अको के परस्पर चालन से ८४ विकल्प होते हैं। इन्हे सात नरको के समुत्पन्न एक भग के साथ गुणाकार करने पर ८४ भग कुल होते है।

इस प्रकार दस नैरयिको के नरकप्रवेशनक के असयोगी ७ भग, द्विकसयोगी १८९, त्रिकसयोगी १२६०, चतुष्कसयोगी २९४०, पचसयोगी २६४६, षट्सयोगी ८८२ और सप्तसयोगी ८४ भग, ये सभी मिलकर दस नैरयिक जीवो के कुल ८००८ भग होते हैं।[1]

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४३८

(ख) भगवती अ वृत्ति पत्र ४४७

संख्यात नैरयिकों के प्रवेशनकभंग

२६ संखेज्जा भंते ! नेरइया नेरइयप्पवेसणएणं पविसमाणा० पुच्छा ।

गंगेया ! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७ ।

अहवा एगे रयणप्पभाए संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा एगे रयणप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा दो रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए वा होज्जा, एवं जाव अहवा दो रयण०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा तिण्णि रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं एक्केक्को संचारेयव्वो जाव अहवा दस रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, एवं जाव अहवा दस रयण०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा, जाव अहवा संखेज्जा रयणप्पभाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे सक्कर० संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, एवं जहा रयणप्पभाए उवरिमपुढवीहिं समं चारिया एवं सक्करप्पभाए वि उवरिमपुढवीहिं समं चारेयव्वा । एवं एक्केक्का पुढवी उवरिमपुढवीहिं समं चारेयव्वा जाव अहवा संखेज्जा तमाए, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । २३१ ।

अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर० संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा । जाव अहवा एगे रयण०, एगे सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । जाव अहवा एगे रयण०, दो सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, तिण्णि सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं एक्केक्को संचारेयव्वो । अहवा एगे रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, जाव अहवा एगे रयण०, संखेज्जा वालुय०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा दो रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । जाव अहवा दो रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा तिण्णि रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं एक्केक्को रयणप्पभाए संचारेयव्वो, जाव अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा वालुयप्पभाए होज्जा, जाव अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्कर०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा, जाव अहवा एगे रयण०, एगे वालुय०, संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । अहवा एगे रयण०, दो वालुय०, संखेज्जा पंकप्पभाए होज्जा । एवं एएणं कमेणं तियासंजोगो चउक्कसंजोगो जाव सत्तगसंजोगो य जहा दसण्हं तहेव भाणियव्वो । पच्छिमो आलावगो सत्तसंजोगस्स—अहवा संखेज्जा रयण०, संखेज्जा सक्कर०, जाव संखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा । ३३३७ ।

[२६ प्र] भगवन् ! संख्यात नैरयिक जीव, नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२६ उ] गांगेय ! संख्यात नैरयिक रत्नप्रभा में होते हैं, यावत् अथवा अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं । (ये असंयोगी ७ भंग होते हैं ।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे होता है, और सख्यात शकराप्रभा मे होते हैं, (२-६) इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं। (ये ६ भग हुए।)

(१) अथवा दो रत्नप्रभा मे और सख्यात शकराप्रभा मे होते ह (२-६) इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा मे, और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है। (ये भी ६ भग हुए।)

(१) अथवा तीन रत्नप्रभा मे और सख्यात शर्कराप्रभा मे होते हैं। इसी प्रकार इसी क्रम से एक-एक नारक का सचार करना चाहिए। यावत् दस रत्नप्रभा मे और सख्यात शकराप्रभा मे होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दस रत्नप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते है।

अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे और सख्यात शकराप्रभा मे होते है। इस प्रकार यावत् सख्यात रत्नप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

अथवा एक शकराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभा-पृथ्वी का शेष नरकपृथ्वियो के साथ सयोग किया, उसी प्रकार शकराप्रभापृथ्वी का भी आगे की सभी नरक-पृथ्वियो के साथ सयोग करना चाहिए।

इसी प्रकार एक-एक पृथ्वी का आगे की नरक-पृथ्वियो के साथ सयोग करना चाहिए, यावत अथवा सख्यात तम प्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी म होते हैं। (इस प्रकार द्विकसयोगी भगो की कुल सख्या २३१ हुई।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक शर्कराप्रभा मे और सख्यात पकप्रभा मे होते हैं। इसी प्रकार यावत् (३-५) एक रत्नप्रभा मे, एक शकराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शकराप्रभा मे और सख्यात बालुकाप्रभा मे होते हैं, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, दो शर्कराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, तीन शकराप्रभा मे और सख्यात बालुकाप्रभा मे होते है। इस प्रकार इसी क्रम से एक-एक नारक का अधिक सचार करना चाहिए।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, सख्यात शकराप्रभा और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते ह, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, सख्यात बालुकाप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

अथवा दो रत्नप्रभा मे, सख्यात शकराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते है, यावत् अथवा दो रत्नप्रभा मे, सख्यात शकराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

अथवा तीन रत्नप्रभा मे, सख्यात शर्कराप्रभा मे और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते ह। इस प्रकार इस क्रम से रत्नप्रभा मे एक-एक नरयिक का सचार करना चाहिए, यावत् अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे, सख्यात शकराप्रभा म और सख्यात वालुकाप्रभा मे होते हैं, यावत् अथवा सख्यात रत्नप्रभा मे, सख्यात शकराप्रभा मे और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते ह।

अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा मे और सख्यात पकप्रभा मे होते ह, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा मे, एक वालुकाप्रभा म और सख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और संख्यात पंकप्रभा में होते हैं ।

इसी प्रकार इसी क्रम से त्रिकसंयोगी, चतुष्कसंयोगी, यावत् सप्तसंयोगी भंगों का कथन, दस नैरयिकसम्बन्धी भंगों के समान करना चाहिए । अन्तिम भंग (आलापक) जो सप्तसंयोगी है, यह है—अथवा संख्यात रत्नप्रभा में, संख्यात शर्कराप्रभा में यावत् संख्यात अधःसप्तमपृथ्वी में होते हैं ।

विवेचन—संख्यात का स्वरूप—आगमिक परिभाषानुसार यहाँ ग्यारह से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक की संख्या को संख्यात कहा गया है ।

असंयोगी ७ भंग—प्रत्येक नरक के साथ संख्यात का संयोग होने से असंयोगी या एकसंयोगी ७ भंग होते हैं ।

द्विकसंयोगी २३१ भंग—द्विकसंयोगी में संख्यात के दो विभाग किये गए हैं, इसलिए एक और संख्यात, दो और संख्यात, यावत् दस और संख्यात तथा संख्यात और संख्यात इस प्रकार एक विकल्प के ११ भंग होते हैं ।

ये विकल्प रत्नप्रभादि पृथ्वियों के साथ आगे की पृथ्वियों का संयोग करने पर एक से लेकर संख्यात तक ग्यारह पदों का संयोग करने से और शर्कराप्रभादि पृथ्वियों के साथ केवल 'संख्यात' पद का संयोग करने से बनते हैं ।

रत्नप्रभादि पूर्व-पूर्व की पृथ्वियों के साथ संख्यात पद का संयोग और आगे-आगे की पृथ्वियों के साथ एकादि पदों का संयोग करने से जो भंग होते हैं, उनकी विवक्षा यहाँ नहीं की गई है । अर्थात् एक रत्नप्रभा में और संख्यात शर्कराप्रभा में होते हैं तथा एक रत्नप्रभा में और संख्यात वालुकाप्रभा में होते हैं । यही क्रम यहाँ अभीष्ट है, न कि संख्यात रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होते हैं, संख्यात रत्नप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होते हैं, इत्यादि क्रम से भंग करना अभीष्ट नहीं है । पूर्वसूत्रों में भी यही क्रम ग्रहण किया गया है ।

यहाँ भी पहले की नरकपृथ्वियों के साथ एकादि संख्या का और आगे-आगे की नरकपृथ्वियों के साथ संख्यात राशि का संयोग करना चाहिए । इसमें आगे-आगे की नरकपृथ्वियों के साथ वाली संख्यात राशि में से एकादि संख्या को कम करने पर भी संख्यातराशि की संख्यातता कायम रहती है । इनमें से रत्नप्रभा के एक से लेकर संख्यात तक ११ पदों का और शेष पृथ्वियों के साथ अनुक्रम से 'संख्यात' पद का संयोग करने से ६६ भंग होते हैं । शर्कराप्रभा का शेष नरकपृथ्वियों के साथ संयोग करने से ५ विकल्प होते हैं । उन ५ विकल्पों को एकादि ग्यारह पदों से गुणा करने पर शर्कराप्रभा के संयोग वाले कुल ५५ भंग होते हैं । इसी प्रकार वालुकाप्रभा के संयोग वाले ४४ भंग, पंकप्रभा के संयोग वाले ३३ भंग, धूमप्रभा के संयोग वाले २२ भंग और तमःप्रभा के संयोग वाले ११ भंग होते हैं । ये सभी मिलकर द्विकसंयोगी ६६+५५+४४+३३+२२+११=२३१ भंग होते हैं ।

त्रिकसंयोगी ७३५ भंग—त्रिकसंयोगी में २१ विकल्प होते हैं । यथा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, और संख्यात वालुकाप्रभा में, यह प्रथम विकल्प है । अब पहली नरक में १ जीव और तीसरी नरक में संख्यात जीव, इस पद को कायम रखकर दूसरी नरक में अनुक्रम से संख्या का विन्यास किया जाता है । अर्थात्—दो से लेकर दस तक की संख्या का तथा 'संख्यात' पद का योग करने से कुल ११ भंग होते हैं तथा इसके बाद दूसरी और तीसरी पृथ्वी में संख्यात पद को कायम

रखकर पहली पृथ्वी मे दो से लेकर दस तक एव सख्यात पद का सयोग करने पर दस भग होते हैं। ये सब मिलकर २१ भग होते हैं। इन २१ विकल्पो के साथ पूर्वोक्त सात नरको के त्रिकसयोगी ३५ भगो को गुणा करने पर त्रिकसयोगी कुल ७३५ भग होते है।

चतु सयोगी १०८५ भग—पहले की चार नरकपृथ्वियो के साथ क्रमश १-१-१ और सख्यात इस प्रकार प्रथम भग होता है। इसके बाद पूर्वोक्त क्रम से तीसरी नरक मे, दो से लेकर सख्यात पद तक का सयोग करने से दूसरे १० विकल्प बनते है। इसी प्रकार दूसरी नरकपृथ्वी मे और प्रथम नरक-पृथ्वी मे भी दो से लेकर सख्यात पद तक का सयोग करने से बीस विकल्प होते है। ये सभी मिल कर ३१ विकल्प होते है। इन ३१ विकल्पो के साथ नरको के चतु सयोगी पूर्वोक्त ३५ विकल्पो को गुणा करने पर कुल १०८५ भग होते हैं।

पचसयोगी ८६१ भग—प्रथम की पांच नरकभूमियो के साथ १-१-१-१ और सख्यात, इस क्रम से पहला भग होता है। इसके पश्चात् पूर्वोक्त क्रम से चौथी नरकभूमि मे अनुक्रम से दो से लेकर सख्यात-पद तक का सयोग करना चाहिए। इस प्रकार तीसरी, दूसरी और पहली नरकपृथ्वी मे भी दो से लेकर सख्यात-पद तक का सयोग करना चाहिए। इस प्रकार सब मिल कर पचसयोगी ४१ भग होते हैं। उनके साथ पूर्वोक्त ७ नरक सम्बन्धी पचसयोगी २१ पदो का गुणा करने से कुल ८६१ भग होते हैं।

षट्सयोगी ३५७ भग—षट्सयोग मे पूर्वोक्त क्रमानुसार ५१ भग होते है। उनके साथ सात नरको के षट्सयोगी पूर्वोक्त ७ पदो का गुणा करने से कुल ३५७ भग होते हैं।

सप्तसयोगी ६१ भग—पूर्वोक्त रीति से ६१ भग समझने चाहिए। इस प्रकार सख्यात नरयिक जीव—आश्रयी ७+२३१+७३५+१०८५+८६१+३५७+६१=३३३७ कुल[1] भग होते हैं।

असख्यात नैरयिको के प्रवेशनक-भग

२७ असखेज्जा भते! नेरइया नेरइयपवेसणएण० पुच्छा।

गगेया! रयणप्पभाए वा होज्जा जाव अहेसत्तमाए वा होज्जा ७।

अहवा एगे रयण०, असखेज्जा सक्करप्पभाए होज्जा। एव दुयासजोगो जाव सत्तगसजोगो य जहा सखिज्जाण भणिओ तहा असखेज्जाण वि भाणियव्वो, नवर असखेज्जाओ अब्भहिओ भाणियव्वो, सेस त चेव जाव सत्तगसजोगस्स पच्छिमो आलावगो—अहवा असखेज्जा रयण० असखेज्जा सक्कर० जाव असखेज्जा अहेसत्तमाए होज्जा।

[२७ प्र] भगवन्! असख्यात नैरयिक, नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हैं? इत्यादि प्रश्न।

[२७ उ] गागेय! वे रत्नप्रभा मे होते है, अथवा यावत अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं, अथवा एक रत्नप्रभा मे और असख्यात शर्कराप्रभा मे होते हैं।

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ४४०
(ख) भगवती विवचनयुक्त (प घवरचदजी) भा ४, पृ १६६०-१६६१

जिस प्रकार सख्यात नरयिका के द्विकसयोगी यावत् सप्तसयोगी भग कहे, उसी प्रकार असख्यात के भी कहना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि यहाँ 'असख्यात' यह पद कहना चाहिए। (अर्थात्—बारहवाँ असख्यात पद कहना चाहिए।) शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। यावत—अतिम आलापक यह है—अथवा असख्यात रत्नप्रभा मे, असख्यात शर्कराप्रभा मे यावत् असख्यात अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं।

विवेचन—असख्यात पद के एकसयोगी भग—सात होते हैं। द्विकसयोगी से सप्तसयोगी तक भग—असख्यात के द्विकसयोगी २५२, त्रिकसयोगी ८०५, चतुष्कसयोगी ११९०, पचसयोगी ९४५, षटसयोगी ३९२ एव सप्तसयोगी ६७ भग होते हैं, इस प्रकार असख्यात नैरयिको के नरयिक-प्रवेशनक के कुल मिलाकर ३६५८ भग होते हैं।[1]

उत्कृष्ट नैरयिक-प्रवेशनक-प्ररूपणा

२८ उक्कोसा ण भते! नेरइया नेरतियपवेसणएणं० पुच्छा?

गगेया! सव्वे वि ताव रयणप्पभाए होज्जा ७।

अहवा रयणप्पभाए य सक्करप्पभाए य होज्जा। अहवा रयणप्पभाए य वालुयप्पभाए य होज्जा, जाव अहवा रयणप्पभाए य अहेसत्तमाए य होज्जा।

अहवा रयणप्पभाए य, सक्करप्पभाए य, वालुयप्पभाए य होज्जा। एव जाव अहवा रयण०, सक्करप्पभाए य, अहेसत्तमाए य होज्जा ५। अहवा रयण०, वालुय०, पकप्पभाए य होज्जा, जाव अहवा रयण०, वालुय० अहेसत्तमाए य होज्जा ४। अहवा रयण०, पकप्पभाए य, धूमाए य होज्जा। एव रयणप्पभ अमुयतेसु जहा तिण्ह तियासजोगो भणिओ तहा भाणियव्व जाव अहवा रयण०, तमाए य, अहेसत्तमाए य होज्जा १५।

अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुय०, पकप्पभाए य होज्जा। अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुय०, धूमप्पभाए य होज्जा, जाव अहवा रयणप्पभाए, सक्करप्पभाए, वालुय०, अहेसत्तमाए य होज्जा ४। अहवा रयण०, सक्कर०, पक०, धूमप्पभाए य होज्जा। एव रयणप्पभ अमुयतेसु जहा चउण्ह चउक्कसजोगो तहा भाणियव्व जाव अहवा रयण०, धूम०, तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा २०। अहवा रयण०, सक्कर०, वालुय०, पक०, धूमप्पभाए य होज्जा १। अहवा रयणप्पभाए जाव पक०, तमाए य होज्जा २। अहवा रयण०, जाव पक०, अहेसत्तमाए य होज्जा ३। अहवा रयण०, सक्कर०, वालुय०, धूम०, तमाए य होज्जा ४। एव रयणप्पभ अमुयतेसु जहा पचण्ह पचक्कसजोगो तहा भाणियव्व जाव अहवा रयण०, पकप्पभा, जाव अहेसत्तमाए होज्जा १५।

अहवा रयण०, सक्कर०, जाव धूमप्पभाए, तमाए य होज्जा १। अहवा रयण०, जाव धूम०, अहेसत्तमाए य होज्जा २। अहवा रयण० सक्कर०, जाव पक०, तमाए य अहेसत्तमाए य होज्जा ३। अहवा रयण, सक्कर०, वालुय०, धूमप्पभाए, तमाए, अहेसत्तमाए होज्जा ४। अहवा रयण०,

[1] वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण युक्त) भा १, पृ ४४०

सक्कर०, पक० जाव ग्रहेसत्तमाए य होज्जा ५ । ग्रहवा रयण०, वालुय०, जाव ग्रहेसत्तमाए होज्जा ६ । ग्रहवा रयणप्पभाए य, सक्कर०, जाव ग्रहेसत्तमाए होज्जा १ ।

[२८ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए उत्कृष्ट पद में क्या रत्नप्रभा मे उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२८ उ] गांगेय ! उत्कृष्टपद मे सभी नरयिक रत्नप्रभा मे होते हैं ।

(द्विकसयोगी ६ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा मे होते है । (२) अथवा रत्नप्रभा और वालुकाप्रभा मे होते है । इस प्रकार यावत् (३-६) रत्नप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं ।

त्रिकसयोगी १५ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा मे होते है । इस प्रकार यावत् (२-५) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं । (६) अथवा रत्न-प्रभा वालुकाप्रभा और पकप्रभा मे होते हैं । यावत् (७ ९) अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (१०) अथवा रत्नप्रभा, पकप्रभा और धूमप्रभा मे होते है । जिस प्रकार रत्नप्रभा को न छोडते हुए तीन नरयिक जीवो के त्रिकसयोगी भग कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत् (१५) अथवा रत्नप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं ।

(चतु सयोगी २० भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और पकप्रभा मे होते है । (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और धूमप्रभा मे होते है । यावत् (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (५) अथवा रत्नप्रभा, शर्करा-प्रभा, पकप्रभा और धूमप्रभा मे होते है । रत्नप्रभा को न छोडते हुए जिस प्रकार चार नैरयिक जीवो के चतु सयोगी भग कहे है, उसी प्रकार यहा भी कहना चाहिए, यावत् (२०) अथवा रत्नप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है ।

(पचसयोगी १५ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा और धूमप्रभा मे होते है । (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा और तम प्रभा मे होते हैं । (३) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, धूमप्रभा और तम पृथ्वी मे होते है । रत्नप्रभा को न छोडते हुए जिस प्रकार ५ नैरयिक जीवो के पचसयोगी भग कहे है, उसी प्रकार यहा भी कहना चाहिए, अथवा यावत् (१५) रत्नप्रभा, पकप्रभा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं ।

(षट्सयोगी ६ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और तम प्रभा मे होते हैं । (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् धूमप्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (३) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् पकप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी मे होते है । (५) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पकप्रभा, यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं । (६) अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा यावत् अध सप्तमपृथ्वी मे होते हैं ।

(सप्तसयोगी १ भग)—(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, यावत् अध सप्तम-पृथ्वी मे होते हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट पद के सभी मिल कर चौसठ (१+६+१५+२०+१५+६+१=६४) भग होते हैं ।

विवेचन—उत्कृष्ट पद मे नैरयिकप्रवेशनक भग—उत्कृष्ट पद मे सभी नरयिक रत्नप्रभा मे होते हैं। इसलिए रत्नप्रभा का प्रत्येक भग के साथ सयोग होता है।

द्विकसयोगी ६ भग—१-२, १-३, १-४, १-५, १ ६, १-७ ये ६ भग होते हैं।

त्रिकसयोगी १५ भग—१-२-३, १-२-४, १-२-५, १-२-६, १ २-७, १-३-४, १-३-५, १-३-६, १-३ ७, १-४ ५, १-४-६, १-४-७, १-५-६, १-५-७, और १-६-७।

चतुष्कसयोगी २० भग—१-२ ३-४, १-२-३-५, १-२-३-६, १-२-३-७, १-२-४-५, १-२-४-६, १-२-४-७, १-२-५-६, १-२-५-७, १-२-६-७, १-३-४-५, १-३-४-६, १-३-४-७, १-३-५-६, १-३-५-७, १-३ ६ ७, १-४-५-६, १-४ ५-७, १-४-६-७ और १-५-६-७।

पचमसयोगी १५ भग—१-२ ३-४-५, १ २ ३-४ ६, १-२-३-४ ७, १-२-३-५-६, १-२-३-५-७, १ २-३-६-७, १-२-४-५-६, १-२-४ ५-७, १-२-४-६-७, १-२-५-६-७, १-३-४-५ ६, १-३-४-५-७, १-३-४-६-७, १-३-५-६-७ और १-४-५ ६-७।

षट्सयोगी ६ भग—१-२-३ ४-५-६, १-२-३-४-५-७, १-२-३-४-६-७, १-२-३-५-६-७, १-२-४ ५ ६-७ और १-३-४-५-६-७।

सप्तसयोगी १ भग—१ २-३-४-५-६-७।[1]

रत्नप्रभादि नैरयिक प्रवेशनको का अल्पबहुत्व

२९ एयस्स ण भते! रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणगस्स सक्करप्पभापुढवि० जाव अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणगस्स य कयरे कयरेहितो अप्पा वा जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया! सव्वत्थोवे अहेसत्तमापुढविनेरइयपवेसणए, तमापुढविनेरइयपवेसणए असखेज्जगुणे, एव पडिलोमग जाव रयणप्पभापुढविनेरइयपवेसणए असखेज्जगुणे।

[२९ प्र] भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकप्रवेशनक, शर्कराप्रभापृथ्वी के नरयिक-प्रवेशनक, यावत् अध सप्तपृथ्वी के नरयिक-प्रवेशनक मे से कौन प्रवेशनक, किस प्रवेशनक मे अल्प, यावत् विशेषाधिक हैं ?

[२९ उ] गागेय! सबसे अल्प अध सप्तमपृथ्वी के नरयिक-प्रवेशनक हैं, उनसे तम प्रभा-पृथ्वी नरयिकप्रवेशनक असख्यातगुण है। इस प्रकार उलट क्रम से, यावत रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक-प्रवेशनक असख्यातगुण हैं।

विवेचन—अध सप्तमपृथ्वी मे जाने वाले जीव सबसे थोडे है। उनकी अपेक्षा तम प्रभा मे जाने वाले सख्यातगुण हैं। इस प्रकार विपरीत क्रम से एक-एक से[2] आगे के असख्यातगुणे हैं।

कठिन शब्दो का भावार्थ—एयस्स ण—इनमे से। पडिलोमग—प्रतिलोम—विपरीत क्रम से।[3]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४४१-४४२
२ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ४, पृ १६६६
३ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४ पृ १६६६

तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक प्रकार और भंग

३० तिरिक्खजोणियपवेसणए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गंगेया ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए ।

[३० प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३० उ.] गांगेय ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक ।

३१ एगे भंते ! तिरिक्खजोणिए तिरिक्खजोणियपवेसणएणं पविसमाणे किं एगिंदिएसु होज्जा जाव पंचिदिएसु होज्जा ?

गंगेया ! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा ।

[३१ प्र.] भगवन् ! एक तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है ?

[३१ उ.] गांगेय ! एक तिर्यञ्चयोनिक जीव, एकेन्द्रियों में होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होता है ।

३२ दो भंते ! तिरिक्खजोणिया० पुच्छा ।

गंगेया ! एगिंदिएसु वा होज्जा जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा ५ ।

अहवा एगे एगिंदिएसु होज्जा एगे बेइंदिएसु होज्जा । एवं जहा नेरइयपवेसणए तहा तिरिक्खजोणियपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असंखेज्जा ।

[३२ प्र.] भगवन् ! दो तिर्यञ्चयोनिक जीव, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[३२ उ.] गांगेय ! एकेन्द्रियों में होते हैं, अथवा यावत् पंचेन्द्रियों में होते हैं । अथवा एक एकेन्द्रिय में और एक द्वीन्द्रिय में होता है । जिस प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक के विषय में भी असंख्य तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक कहना चाहिए ।

विवेचन—तिर्यञ्चों के प्रवेशनक और उनके भंग—तिर्यञ्च एकेन्द्रिय भी होते हैं और पंचेन्द्रिय भी होते हैं । इसलिए उनका प्रवेशनक भी पांच प्रकार का बताया गया है । इसी प्रकार एक तिर्यञ्चयोनिक जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक में तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ उत्पन्न होता है ।[1]

एक और दो तिर्यञ्चयोनिक जीवों के प्रवेशनक भंग—एक जीव अनुक्रम से एकेन्द्रियादि पांच स्थानों में उत्पन्न हो तो उसके पांच भंग होते हैं । दो जीव भी एक-एक स्थान में साथ उत्पन्न हों तो उनके भी पांच भंग ही होते हैं । और द्विकसंयोगी १० भंग होते हैं ।[2]

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ४४२-४४३

२ भगवती विवेचन (पं. घेवरचन्दजी) भा. ४, पृ. १६७०

तीन से लेकर असंख्यात तिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक-भंग—तीन से लेकर असंख्यात तिर्यञ्चयोनिक जीवों के प्रवेशनक नैरयिकों के तीन से लेकर असंख्यात तक के प्रवेशनक के समान जानने चाहिए। अन्तर इतना ही है, कि नैरयिक जीव सात नरकपृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं, जबकि तिर्यञ्च जीव एकेन्द्रियादि पांच स्थानों में उत्पन्न होते हैं। इसलिए भंगों की संख्या में भिन्नता है। यह बुद्धिमानों को स्वयं ऊहापोह करके जान लेना चाहिए। यद्यपि एकेन्द्रिय जीव (वनस्पति व निगोद की अपेक्षा से) अनन्त उत्पन्न होते हैं, किन्तु उपर्युक्त प्रवेशनक का लक्षण असंख्यात तक ही घटित हो सकता है। इसलिए असंख्यात तक ही प्रवेशनक कहे गए हैं।[1]

शंका-समाधान—मूलपाठ में 'एक जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता है, यह बतलाया गया, किन्तु सिद्धान्तानुसार एक जीव एकेन्द्रियों में कदापि उत्पन्न नहीं होता, वहाँ (वनस्पतिकाय की अपेक्षा से) प्रतिसमय अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं, ऐसी स्थिति में उपर्युक्त शास्त्रवचन के साथ कैसे संगति हो सकती है? इसका समाधान वृत्तिकार यों करते हैं—विजातीय देवादि भव से निकल कर जो यहाँ (एकेन्द्रिय भव) में उत्पन्न होता है, उस एक जीव की अपेक्षा से एकेन्द्रिय में एक जीव का प्रवेशनक सम्भव है। वास्तव में प्रवेशनक का अर्थ ही यह है कि विजातीय देवादि भव से निकलकर विजातीय भव में उत्पन्न होना। सजातीय जीव सजातीय में उत्पन्न हो, वह प्रवेशनक नहीं कहलाता, क्योंकि वह (सजातीय) तो एकेन्द्रिय जाति (सजातीय) में प्रविष्ट है ही। अर्थात्—एकेन्द्रिय जीव मर कर एकेन्द्रिय में उत्पन्न हो, वह प्रवेशनक की कोटि में नहीं आता। और जो अनन्त उत्पन्न होते हैं, वे तो एकेन्द्रिय में से ही हैं।[2]

उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक प्ररूपणा

३३. उक्कोसा भंते ! तिरिक्खजोणिया० पुच्छा।

गंगेया ! सव्वे वि ताव एगिंदिएसु वा होज्जा। अहवा एगिंदिएसु वा बेइंदिएसु वा होज्जा। एवं जहा नेरतिया चारिया तहा तिरिक्खजोणिया वि चारेयव्वा। एगिंदिया अमुयंतेसु दुयासंजोगो तियासंजोगो चउक्कसंजोगो पंचसंजोगो उवउज्जिऊण भाणियव्वो जाव अहवा एगिंदिएसु वा बेइंदिय जाव पंचिंदिएसु वा होज्जा।

[३३ प्र.] भगवन्! उत्कृष्ट तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में पृच्छा।

[३३ उ.] गांगेय! वे सभी एकेन्द्रियों में होते हैं। अथवा एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रियों में होते हैं। जिस प्रकार नैरयिक जीवों में संचार किया गया है, उसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में भी संचार करना चाहिए। एकेन्द्रिय जीवों को न छोड़ते हुए द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, चतुःसंयोगी और पंचसंयोगी भंग उपयोगपूर्वक कहने चाहिए, यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवों में, द्वीन्द्रियों में, यावत् पंचेन्द्रियों में होते हैं।

---

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४५१

२. वही अ. वृत्ति पत्र ४५१

विवेचन—एकेन्द्रियो मे उत्कृष्टपद-प्रवेशनक—एकेन्द्रिय जीव प्रतिसमय अत्यधिक सख्या मे उत्पन्न होते हैं, इसलिए एकेन्द्रियो मे ये सभी होते हैं।[1]

द्विकसयोगी से पचसयोगी तक भग—प्रसगवश यहाँ उत्कृष्टपद से द्विकसयोगी चार प्रकार के, त्रिकसयोगी छह प्रकार के, चतु सयोगी चार प्रकार के और पचसयोगी एक ही प्रकार के होते है।[2]

एकेन्द्रियादि तिर्यञ्चप्रवेशनको का अल्पबहुत्व

३४ एयस्स ण भते ! एगिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणगस्स जाव पचिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणयस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्योवे पचिंदियतिरिक्खजोणियपवेसणए, चउरिंदियतिरिक्खजोणियप० विसेसाहिए, तेइदिय० विसेसाहिए, बेइदिय० विसेसाहिए, एगिंदियतिरिक्ख० विसेसाहिए।

[३४ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक से लेकर यावत पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक तक मे से कौन किससे अल्प-अल्प विशेषाधिक है ?

[३४ उ] गागेय ! सबसे अल्प पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक हैं, उनसे चतुरिन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं और उनसे एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक विशेषाधिक हैं।

विवेचन—तिर्यञ्च-प्रवेशनको का अल्पबहुत्व—विपरीत क्रम से अर्थात् पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवो के प्रवेशनक से एकेन्द्रियतिर्यञ्च-प्रवेशनक तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं।[3]

मनुष्य-प्रवेशनक प्रकार और भग

३५ मणुस्सपवेसणए ण भते ! कतिविहे पन्नत्ते ?

गगेया ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए, गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणए य।

[३५ प्र] भगवन् ! मनुष्यप्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३५ उ] गागेय ! मनुष्यप्रवेशनक दो प्रकार का है, वह इस प्रकार—(१) सम्मूर्च्छिम-मनुष्य प्रवेशनक और (२) गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक।

३६ एगे भते ! मणुस्से मणुस्सपवेसणए ण पविसमाणे कि सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा गब्भवक्कतियमणुस्सेसु होज्जा ?

गगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कतियमणुस्सेसु वा होज्जा।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५१

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५१

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १, पृ ४४३

[३६ प्र] भगवन् ! मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ एक मनुष्य क्या सम्मूर्च्छिम-मनुष्यों में उत्पन्न होता है, अथवा गर्भजमनुष्यों में उत्पन्न होता है ?

[३६ उ] हे गांगेय ! वह या तो सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होता है, अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

३७ दो भंते ! मणुस्सा० पुच्छा।

गंगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा। अहवा एगे सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा, एगे गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा। एवं एएणं कमेणं जहा नेरइयपवेसणए तहा मणुस्सपवेसणए वि भाणियव्वे जाव दस।

[३७ प्र] भगवन् ! दो मनुष्य, मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[३७ उ] गांगेय ! दो मनुष्य या तो सम्मूर्च्छिममनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और एक गर्भज मनुष्यों में होता है। इस क्रम से जिस प्रकार नरयिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार मनुष्य-प्रवेशनक भी यावत् दस मनुष्यों तक कहना चाहिए।

३८ संखेज्जा भंते ! मणुस्सा० पुच्छा।

गंगेया ! सम्मुच्छिममणुस्सेसु वा होज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा। अहवा एगे सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा। अहवा दो सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा। एवं एक्केक्कं ओसारिंतेसु जाव अहवा संखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा।

[३८ प्र] भगवन् ! संख्यात मनुष्य, मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३८ उ] गांगेय ! वे सम्मूर्च्छिममनुष्यों में होते हैं, अथवा गर्भजमनुष्यों में होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिममनुष्यों में होता है और संख्यात गर्भजमनुष्यों में होते हैं। अथवा दो सम्मूर्च्छिममनुष्यों में होते हैं और संख्यात गर्भजमनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक बढ़ाते हुए यावत् संख्यात सम्मूर्च्छिममनुष्यों में और संख्यात गर्भजमनुष्यों में होते हैं।

३९ असंखेज्जा भंते ! मणुस्सा० पुच्छा।

गंगेया ! सव्वे वि ताव सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा। अहवा असंखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु, एगे गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा। अहवा असंखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु, दो गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा। एवं जाव असंखेज्जा सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा, संखेज्जा गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु होज्जा।

[३९ प्र] भगवन् ! असंख्यात मनुष्य, मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए, इत्यादि प्रश्न।

[३९ उ] गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं। अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम

मनुष्यो मे होते है और एक गर्भज मनुष्यो मे होता है । अथवा असख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते हैं और दो गर्भज मनुष्यो मे होते हैं । अथवा इसी प्रकार यावत् असख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे होते हैं और सख्यात गर्भज मनुष्यो मे होते है ।

विवेचन—मनुष्य प्रवेशनक के प्रकार और भग—मनुष्य-प्रवेशनक के दो प्रकार हैं—सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक और गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक । इन दोनो की अपेक्षा एक से लेकर सख्यात तक भग पूर्ववत् समझना चाहिए । सख्यातपद मे द्विकसयोगी भग पूर्ववत ११ ही होते हैं । असख्यातपद मे पहले बारह विकल्प बताए गए हैं, लेकिन यहां ११ ही विकल्प (भग) होते हैं, क्योकि यदि सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे असख्यातपन की तरह गर्भजमनुष्यो मे भी असख्यातपन होता, तभी बारह भग बन सकते थे, किन्तु गर्भजमनुष्य असख्यात नही होते । अतएव उनके प्रवेशनक मे असख्यातपन नही हो सकता । अत असख्यातपद के सयोग से भी ११ ही विकल्प होते हैं ।[1]

उत्कृष्टरूप से मनुष्य-प्रवेशनक-प्ररूपणा

४० उक्कोसा भंते ! मणुस्सा० पुच्छा ।

गगेया ! सव्वे वि ताव सम्मुच्छिममणुस्सेसु होज्जा । अहवा सम्मुच्छिममणुस्सेसु य गब्भवक्कंतियमणुस्सेसु वा होज्जा ।

[४० प्र] भगवन् ! मनुष्य उत्कृष्टरूप से किस प्रवेशनक मे होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४० उ] गागेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिममनुष्यो मे होते हैं । अथवा सम्मूर्च्छिममनुष्यो मे और गर्भज मनुष्यो मे होते हैं ।

विवेचन—उत्कृष्टपद मे प्रवेशनक-विचार—उत्कृष्टपद मे सम्मूर्च्छिममनुष्य-प्रवेशनक कहा गया है, क्योकि सम्मूर्च्छिममनुष्य ही असख्यात हैं । इसलिए उनके प्रवेशनक भी असख्यात हो सकते हैं ।[2]

मनुष्य प्रवेशनको का अल्प-बहुत्व

४१ एयस्स ण भंते ! सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणगस्स गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणगस्स य कयरे कयरेहितो अप्पा वा जाव विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे गब्भवक्कतियमणुस्सपवेसणए, सम्मुच्छिममणुस्सपवेसणए असखेज्जगुणे ।

[४१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिममनुष्य प्रवेशनक और गर्भजमनुष्यप्रवेशनक, इन (दोनो मे) से कौन किस से अल्प, यावत् विशेषाधिक है ?

[४१ उ] गागेय ! सबसे थोडे गर्भजमनुष्य-प्रवेशनक हैं, उनसे सम्मूर्च्छिममनुष्य-प्रवेशनक असख्यातगुणे हैं ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५३

विवेचन—अल्पबहुत्व—सम्मूर्च्छिममनुष्य असंख्यात होने से गर्भजमनुष्यप्रवेशनक से उन (सम्मूर्च्छिममनुष्यों) के प्रवेशनक असंख्यातगुणे अधिक हैं।[1]

देव-प्रवेशनक प्रकार और भंग

४२ देवपवेसणए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

गंगेया ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—भवणवासिदेवपवेसणए जाव वेमाणियदेवपवेसणए।

[४२ प्र.] भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४२ उ.] गांगेय ! वह चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) भवनवासी देव प्रवेशनक, (२) वाणव्यन्तरदेव-प्रवेशनक, (३) ज्योतिष्कदेव प्रवेशनक और (४) वैमानिक देव-प्रवेशनक।

४३ एगे भंते ! देवे देवपवेसणए णं पविसमाणे किं भवणवासीसु होज्जा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु होज्जा ?

गंगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु वा होज्जा।

[४३ प्र.] भगवन् ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवों में होता है, वाणव्यन्तर देवों में होता है, ज्योतिष्क देवों में होता है, अथवा वैमानिक देवों में होता है ?

[४३ उ.] गांगेय ! एक देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ भवनवासी देवों में होता है, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवों में होता है।

४४ दो भंते ! देवा देवपवेसणए० पुच्छा।

गंगेया ! भवणवासीसु वा होज्जा, वाणमंतर-जोइसिय वेमाणिएसु वा होज्जा।

अहवा एगे भवणवासीसु, एगे वाणमंतरेसु होज्जा। एवं जहा तिरिक्खजोणियपवेसणए तहा देवपवेसणए वि भाणियव्वे जाव असंखिज्ज त्ति।

[४४ प्र.] भगवन् ! दो देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या भवनवासी देवों में, इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[४४ उ.] गांगेय ! वे भवनवासी देवों में होते हैं, अथवा वाणव्यन्तर देवों में होते हैं, या ज्योतिष्क देवों में होते हैं, अथवा वैमानिक देवों में होते हैं। अथवा एक भवनवासी देवों में होता है, और एक वाणव्यन्तर देवों में होता है। जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार देव-प्रवेशनक भी असंख्यात देव-प्रवेशनक तक कहना चाहिए।

विवेचन—देव प्रवेशनक प्ररूपणा—देव प्रवेशनक के चार प्रकार कहे गए हैं, जो प्रसिद्ध हैं। एक देव या दो देव भवनपतिदेवों में, वाणव्यन्तरदेवों में, ज्योतिष्क या वैमानिकदेवों में से किन्हीं में उत्पन्न हो सकते हैं। द्विकसंयोगी भंगों की गणना [illegible] की तरह ही समझनी चाहिए। देवों की संख्या ४ ही होती है, यह विशेष है।

---

१ भगवती अ. वृत्ति पत्र ४५३

तीन से लेकर असख्यात तक के प्रवेशनक भग— देवो के प्रवेशनक-भग ३ से असख्यात तक तिर्यंचो के प्रवेशनक-भग के समान समझने चाहिए ।[1]

उत्कृष्टरूप से देव-प्रवेशनक-प्ररूपणा

४५ उक्कोसा भते ! ० पुच्छा ।

गगेया ! सव्वे वि ताव जोइसिएसु होज्जा ।

अहवा जोइसिय भवणवासीसु य होज्जा । अहवा जोइसिय वाणमतरेसु य होज्जा । अहवा जोइसिय वेमाणिएसु य होज्जा ।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य होज्जा । अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वेमाणिएसु य होज्जा । अहवा जोइसिएसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा ।

अहवा जोइसिएसु य भवणवासीसु य वाणमतरेसु य वेमाणिएसु य होज्जा ।

[४५ प्र] भगवन् ! उत्कृष्टरूप से देव, देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए किन देवो म होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[४५ उ] गागेय ! वे सभी ज्योतिष्क देवो मे होते है ।

अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वाणव्यन्तर देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे होते हैं ।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणव्यन्तर दवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वमानिक देवो मे होते है, अथवा ज्योतिष्क, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते हैं ।

अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवो मे होते हैं ।

विवेचन—उत्कृष्ट देव प्रवेशनक प्ररूपणा– ज्योतिष्क देवो मे जाने वाले जोव बहुत होते हैं । इसलिए उत्कृष्टपद मे कहा गया है कि ये सभी ज्योतिष्क देवो मे होते हैं ।

द्विकसयोगी ३ भग—ज्यो वाण, ज्यो वै, या ज्यो भ देवो मे ।

त्रिकसयोगी ३ भग—ज्यो भ वा, ज्यो भ वै, एव ज्यो वा वै ।

चतुष्कसयोगी एक भग—ज्योतिष्क, भ, वा वैमा ।[2]

भवनवासी आदि देवो के प्रवेशनको का अल्पबहुत्व

४६ एयस्स ण भते ! भवणवासिदेवपवेसणगस्स वाणमतरदेवपवेसणगस्स जोइसियदेवपवेसणगस्स वेमाणियदेवपवेसणगस्स य कयरे कयरेहितो अप्पा वा विसेसाहिए वा ?

गगेया ! सव्वत्थोवे वेमाणियदेवपवेसणए, भवणवासिदेवपवेसणए असखेज्जगुणे, वाणमतरदेव पवेसणए असखेज्जगुणे, जोइसियदेवपवेसणए सखेज्जगुणे ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण युक्त) भा १, पृ ४४५

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४४५

[४६ प्र] भगवन् ! भवनवासीदेव-प्रवेशनक, वाणव्यन्तरदेव प्रवेशनक, ज्योतिष्कदेव प्रवेशनक और वैमानिकदेव-प्रवेशनक, इन चारों प्रवेशनकों में से कौन प्रवेशनक किस प्रवेशनक से अल्प, यावत् विशेषाधिक है ?

[४६ उ] गांगेय ! सबसे थोड़े वैमानिकदेव-प्रवेशनक हैं, उनसे भवनवासीदेव प्रवेशनक असंख्यातगुणे हैं, उनसे वाणव्यन्तरदेव प्रवेशनक असंख्यातगुणे हैं और उनसे ज्योतिष्कदेव-प्रवेशनक संख्यातगुणे हैं।

विवेचन—चारों देव प्रवेशनकों का अल्पबहुत्व—वैमानिकदेव सबसे कम होते हैं और उनमें जाने वाले (प्रवेशक) जीव भी सबसे थोड़े होते हैं, इसीलिए अल्पबहुत्व में पारस्परिक तुलना की दृष्टि से कहा गया है कि वैमानिकदेव-प्रवेशनक सबसे अल्प हैं।[1]

नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देव प्रवेशनकों का अल्पबहुत्व

४७. एयस्स णं भंते ! नेरइयपवेसणगस्स तिरिक्ख० मणुस्स० देवपवेसणगस्स य कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिए वा ?

गंगेया ! सव्वत्थोवे मणुस्सपवेसणए, नेरइयपवेसणए असंखेज्जगुणे, देवपवेसणए असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणियपवेसणए असंखेज्जगुणे।

[४७ प्र] भगवन् ! इन नैरयिक-प्रवेशनक, तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक, मनुष्य प्रवेशनक और देव-प्रवेशनक, इन चारों में से कौन किससे अल्प, यावत् विशेषाधिक है ?

[४७ उ] गांगेय ! सबसे अल्प मनुष्य-प्रवेशनक है, उससे नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है, और उससे देव-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है, और उससे तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणा है।

विवेचन—चारों गतियों के जीवों के प्रवेशनकों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प मनुष्य-प्रवेशनक हैं, क्योंकि मनुष्य सिर्फ मनुष्यक्षेत्र में ही है, जो कि बहुत ही अल्प हैं। उससे नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि नरक में जाने वाले जीव असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार देव प्रवेशनक और तिर्यञ्चयोनिक-प्रवेशनक के विषय में समझना चाहिए।[2]

चौबीस दण्डकों में सान्तर-निरन्तर उपपाद-उद्वर्तनप्ररूपणा

४८. संतरं भंते ! नेरइया उववज्जंति ? निरंतरं नेरइया उववज्जंति ? संतरं असुरकुमारा उववज्जंति ? निरंतरं असुरकुमारा जाव संतरं वेमाणिया उववज्जंति ? निरंतरं वेमाणिया उववज्जंति ? संतरं नेरइया उव्वट्टंति ? निरंतरं नेरतिया उव्वट्टंति ? जाव संतरं वाणमंतरा उव्वट्टंति ? निरंतरं वाणमंतरा उव्वट्टंति ? संतरं जोइसिया चयंति ? निरंतरं जोइसिया चयंति ? संतरं वेमाणिया चयंति ? निरंतरं वेमाणिया चयंति ?

---

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४५३
२. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४५३

गंगेया ! संतरं पि नेरइया उववज्जंति, निरंतरं पि नेरइया उववज्जंति जाव संतरं पि थणियकुमारा उववज्जंति, निरंतरं पि थणियकुमारा उववज्जंति। नो संतरं पुढविक्काइया उववज्जंति, निरंतरं पुढविक्काइया उववज्जंति, एवं जाव वणस्सइकाइया। सेसा जहा नेरइया जाव संतरं पि वेमाणिया उववज्जंति, निरंतरं पि वेमाणिया उववज्जंति, संतरं पि नेरइया उव्वट्टंति, निरंतरं पि नेरइया उव्वट्टंति, एवं जाव थणियकुमारा। नो संतरं पुढविक्काइया, उव्वट्टंति, निरंतरं पुढविक्काइया उव्वट्टंति, एवं जाव वणस्सइकाइया। सेसा जहा नेरइया, नवरं जोइसिय वेमाणिया चयंति अभिलावो, जाव संतरं पि वेमाणिया चयंति, निरंतरं पि वेमाणिया चयंति।

[४८ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर (अन्तरसहित) उत्पन्न होते हैं या निरन्तर (लगातार) उत्पन्न होते हैं ? असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर ? यावत् वैमानिक देव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

(इसी तरह) नैरयिक का उद्वर्तन सान्तर होता है अथवा निरन्तर ? यावत वाणव्यन्तर देवों का उद्वर्तन सान्तर होता है या निरन्तर ? ज्योतिष्क देवों का सान्तर च्यवन होता है या निरन्तर ? वैमानिक देवों का सान्तर च्यवन होता है या निरन्तर होता है ?

[४८ उ] हे गांगेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी, यावत् स्तनितकुमार सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं। शेष सभी जीव नैरयिक जीवों के समान सान्तर भी उत्पन्न होते है, निरन्तर भी, यावत् वैमानिक देव सान्तर भी उत्पन्न होते है, और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

नैरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्तन करते हैं, निरन्तर भी। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिए। पृथ्वीकायिक जीव सान्तर नहीं उद्वर्तते, निरन्तर उद्वर्तित होते है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों तक कहना चाहिए। शेष सभी जीवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए। इतना विशेष है कि ज्योतिष्क देव और वैमानिक देव च्यवते हैं, ऐसा पाठ (अभिलाप) कहना चाहिए यावत् वैमानिक देव सान्तर भी च्यवते है और निरन्तर भी।

विवेचन—शंका समाधान—यहाँ शंका उपस्थित होती है कि नैरयिक आदि की उत्पत्ति के सान्तर-निरन्तर आदि तथा उद्वर्तनादि का कथन प्रवेशनक-प्रकरण से पूर्व किया हो था, फिर यहाँ पुनः सान्तर-निरन्तर आदि का कथन क्यों किया गया है ? इसका समाधान यह है कि यहाँ पुनः सान्तर आदि का निरूपण नारकादि सभी जीवों के भेदों का सामुदायिक रूप से सामूहिक उत्पाद एवं उद्वर्तन की दृष्टि से किया गया है।[1]

प्रकारान्तर से चौबीस दण्डकों में उत्पाद-उद्वर्तना-प्ररूपणा—

४९. सओ भंते ! नेरइया उववज्जंति ? असओ भंते ! नेरइया उववज्जंति ?

गंगेया ! सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति। एवं जाव वेमाणिया।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

[४९ प्र] भगवन् ! सत् (विद्यमान) नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं या असत् (अविद्यमान) नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?

[४९ उ] गांगेय ! सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।

५० संतो भंते ! नेरइया उव्वट्टंति, असंतो नेरइया उव्वट्टंति ?

गंगेया ! संतो नेरइया उव्वट्टंति, नो असंतो नेरइया उव्वट्टंति। एवं जाव वेमाणिया, नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु 'चयंति' भाणियव्वं।

[५० प्र] भगवन् ! सत् नैरयिक उद्वर्तते हैं या असत् नैरयिक उद्वर्तते हैं ?

[५० उ] गांगेय ! सत् नैरयिक उद्वर्तते हैं किन्तु असत् नैरयिक उद्वर्तित नहीं होते। इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष इतना है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए 'च्यवते हैं', ऐसा कहना चाहिए।

५१ [१] संतो भंते ! नेरइया उववज्जंति, असंतो नेरइया उववज्जंति ? संतो असुरकुमारा उववज्जंति जाव संतो वेमाणिया उववज्जंति, असंतो वेमाणिया उववज्जंति ? संतो नेरइया उव्वट्टंति, असंतो नेरइया उव्वट्टंति ? संतो असुरकुमारा उव्वट्टंति जाव संतो वेमाणिया चयंति, असंतो वेमाणिया चयंति ?

गंगेया ! संतो नेरइया उववज्जंति, नो असंतो नेरइया उववज्जंति, संतो असुरकुमारा उववज्जंति, नो असंतो असुरकुमारा उववज्जंति, जाव संतो वेमाणिया उववज्जंति, नो असंतो वेमाणिया उववज्जंति। संतो नेरइया उव्वट्टंति, नो असंतो नेरइया उव्वट्टंति, जाव संतो वेमाणिया चयंति, नो असंतो वेमाणिया०।

[५१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं या असत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं ? असुरकुमार देव, सत् असुरकुमार देवों में उत्पन्न होते हैं या असत् असुरकुमार देवों में ? इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं या असत् वैमानिकों में ? तथा सत् नैरयिकों में से उद्वर्तते हैं या असत् नैरयिकों में से ? सत् असुरकुमारों में से उद्वर्तते हैं यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं या असत् वैमानिकों में से च्यवते हैं ?

[५१-१ उ] गांगेय ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु असत् नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते। सत् असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं, असत् असुरकुमारों में नहीं। इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं, असत् वैमानिकों में नहीं। (इसी प्रकार) सत् नैरयिकों में से उद्वर्तते हैं, असत् नैरयिकों में से नहीं। यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं असत् वैमानिकों में से नहीं।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ संतो नेरइया उववज्जंति, नो असंतो नेरइया उववज्जंति, जाव संतो वेमाणिया चयंति, नो असंतो वेमाणिया चयंति ?

से नूण गंगेया ! पासेण अरहया पुरिसादाणीएण सासए लोए बुइए, अणाईए अणवयग्गे जहा पचमे सए (स० ५ उ० ९ सु० १४ [२]) जाव जे लोक्कइ से लोए, से तेणट्ठेण गगेया ! एव वुच्चइ जाव सओ वेमाणिया चयति, नो असओ वेमाणिया चयति ।

[५१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिक सत् नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिको मे नही । इसी प्रकार यावत सत वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वमानिको मे से नहीं ?

[५१ २ उ] गागेय ! निश्चित ही पुरुषादानीय अर्हत् श्रीपार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत, अनादि और अनन्त कहा है इत्यादि, पचम शतक के नौवें उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए, यावत्—जो अवलोकन किया जाए, उसे लोक कहते हैं । इस कारण हे गागेय ! ऐसा कहा जाता है कि यावत सत् वैमानिको मे से च्यवते हैं, असत वैमानिको मे से नही ।

विवेचन—सत् ही उत्पन्न होने आदि का रहस्य—सत अर्थात्—द्रव्यार्थतया विद्यमान नैरयिक आदि ही नैरयिक आदि मे उत्पन्न होते है, सर्वथा असत (अविद्यमान) द्रव्य तो कोई भी उत्पन्न नही होता, क्योंकि वह तो गधे के सींग के समान असत् है । इन जीवो मे सत्त्व (विद्यमानत्व या अस्तित्व) जीवद्रव्य की अपेक्षा से, अथवा नारक पर्याय की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि भावी नारक-पर्याय की अपेक्षा से द्रव्यत नारक ही नारको मे उत्पन्न होते है । अथवा यहाँ से मर कर नरक मे जाते समय विग्रहगति मे नारकायु का उदय हो जाने से वे जीव भावनारक हो कर ही नैरयिको मे उत्पन्न होते है ।[1]

सत मे ही उत्पन्न होने आदि का रहस्य—जो जीव नरक मे उत्पन्न होते हैं, पहले से उत्पन्न हुए सत् नैरयिको मे समुत्पन्न होते है, असत् नैरयिको मे नही, क्योंकि लोक शाश्वत होने से नारक आदि जीवो का सदैव सद्भाव रहता है ।[2]

गागेय सम्मतसिद्धान्त के द्वारा स्वकथन की पुष्टि—भगवान् महावीर ने 'लोक शाश्वत है' ऐसा पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ ने भी फरमाया है, यह कह कर गागेय-मान्य सिद्धान्त के द्वारा स्वकथन की पुष्टि की है ।[3]

केवलज्ञानी आत्मप्रत्यक्ष से सब जानते हैं

५२ [१] सय भंते ! एतेव जाणह उदाहु असय ? असोच्चा एतेव जाणह उदाहु सोच्चा 'सओ नेरइया उववज्जति, नो असओ नेरइया उववज्जति जाव सओ वेमाणिया चयति, नो असओ वेमाणिया चयति ?'

गगेया ! सय एतेव जाणामि, नो असय, असोच्चा एतेव जाणामि, नो सोच्चा, 'सओ नेरइया उववज्जति, नो असओ नेरइया उववज्जति, जाव सओ वेमाणिया चयति, नो असओ वेमाणिया चयति ।'

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५
२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५
३ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५

[४९ प्र] भगवन् ! सत् (विद्यमान) नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं या असत् (अविद्यमान) नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?

[४९ उ] गांगेय ! सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।

५० सओ भंते ! नेरइया उव्वट्टंति, असओ नेरइया उव्वट्टंति ?

गंगेया ! सओ नेरइया उव्वट्टंति, नो असओ नेरइया उव्वट्टंति। एवं जाव वेमाणिया, नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु 'चयंति' भाणियव्वं।

[५० प्र] भगवन् ! सत् नैरयिक उद्वर्तते हैं या असत् नैरयिक उद्वर्तते हैं ?

[५० उ] गांगेय ! सत् नैरयिक उद्वर्तते हैं किन्तु असत् नैरयिक उद्वर्तित नहीं होते। इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष इतना है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए 'च्यवते हैं', ऐसा कहना चाहिए।

५१ [१] सओ भंते ! नेरइया उववज्जंति, असओ नेरइया उववज्जंति ? सओ असुरकुमारा उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया उववज्जंति, असओ वेमाणिया उववज्जंति ? सओ नेरइया उव्वट्टंति, असओ नेरइया उव्वट्टंति ? सओ असुरकुमारा उव्वट्टंति जाव सओ वेमाणिया चयंति, असओ वेमाणिया चयंति ?

गंगेया ! सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति, सओ असुरकुमारा उववज्जंति, नो असओ असुरकुमारा उववज्जंति, जाव सओ वेमाणिया उववज्जंति, नो असओ वेमाणिया उववज्जंति। सओ नेरइया उव्वट्टंति, नो असओ नेरइया उव्वट्टंति, जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया०।

[५१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं या असत् नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं ? असुरकुमार देव, सत् असुरकुमार देवों में उत्पन्न होते हैं या असत् असुरकुमार देवों में ? इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं या असत् वैमानिकों में ? तथा सत् नैरयिकों में से उद्वर्तते हैं या असत् नैरयिकों में से ? सत् असुरकुमारों में से उद्वर्तते हैं यावत् सत् वैमानिक में से च्यवते हैं या असत् वैमानिक में से च्यवते हैं ?

[५१-१ उ] गांगेय ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकों में उत्पन्न होते है, किन्तु असत् नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते। सत् असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं, असत् असुरकुमारों में नहीं। इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं, असत् वैमानिकों में नहीं। (इसी प्रकार) सत् नैरयिकों में से उद्वर्तते हैं, असत् नैरयिकों में से नहीं। यावत् सत् वैमानिकों में से च्यवते हैं असत् वैमानिकों में से नहीं।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सओ नेरइया उववज्जंति, नो असओ नेरइया उववज्जंति, जाव सओ वेमाणिया चयंति, नो असओ वेमाणिया चयंति ?

से नूण गंगेया ! पासेण अरहया पुरिसादाणीएण सासए लोए वुइए, अणाईए अणवयग्गे जहा पचमे सए (स० ५ उ० ९ सु० १४ [२]) जाव जे लोक्कइ से लोए, से तेणट्ठेणं गगेया ! एव वुच्चइ जाव सम्रो वेमाणिया चयंति, नो असम्रो वेमाणिया चयंति ।

[५१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिक सत् नैरयिकों मे उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिको मे नही । इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते हैं, असत् वैमानिको मे से नहीं ?

[५१-२ उ] गांगेय ! निश्चित ही पुरुषादानीय अर्हत् श्रीपार्श्वनाथ ने लोक को शाश्वत, अनादि और अनन्त कहा है इत्यादि, पचम शतक के नौवें उद्देशक मे कहे अनुसार जानना चाहिए, यावत्—जो अवलोकन किया जाए, उसे लोक कहते हैं । इस कारण हे गांगेय ! ऐसा कहा जाता है कि यावत् सत् वैमानिको मे से च्यवते हैं, असत वैमानिको मे से नही ।

विवेचन—सत ही उत्पन्न होने आदि का रहस्य—सत अर्थात्—द्रव्यार्थतया विद्यमान नैरयिक आदि ही नैरयिक आदि मे उत्पन्न होते है, सर्वथा असत् (अविद्यमान) द्रव्य तो कोई भी उत्पन्न नही होता, क्योकि वह तो गधे के सींग के समान असत् है । इन जीवो मे सत्त्व (विद्यमानत्व या अस्तित्व) जीवद्रव्य की अपेक्षा से, अथवा नारक पर्याय की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि भावी नारक पर्याय की अपेक्षा से द्रव्यत नारक ही नारको मे उत्पन्न होते है । अथवा यहां से मर कर नरक मे जाते समय विग्रहगति मे नारकायु का उदय हो जाने से वे जीव भावनारक हो कर ही नैरयिकों के उत्पन्न होते हैं ।[1]

सत मे ही उत्पन्न होने आदि का रहस्य—जो जीव नरक मे उत्पन्न होते हैं, पहले से उत्पन्न हुए सत् नैरयिको मे समुत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिको मे नहीं, क्योकि लोक शाश्वत होने से नारक आदि जीवो का सदैव सद्भाव रहता है ।[2]

गांगेय सम्मतसिद्धान्त के द्वारा स्वकथन की पुष्टि—भगवान् महावीर ने 'लोक शाश्वत है' ऐसा पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ ने भी फरमाया है, यह कह कर गांगेय-मान्य सिद्धान्त के द्वारा स्वकथन की पुष्टि की है ।[3]

केवलज्ञानी आत्मप्रत्यक्ष से सब जानते हैं

५२ [१] **सयं भंते ! एतेवं जाणह उदाहु असयं ? असोच्चा एतेवं जाणह उदाहु सोच्चा 'सम्रो नेरइया उववज्जंति, नो असम्रो नेरइया उववज्जंति जाव सम्रो वेमाणिया चयंति, नो असम्रो वेमाणिया चयंति ?'**

गंगेया ! सयं एतेवं जाणामि, नो असयं, असोच्चा एतेवं जाणामि, नो सोच्चा, 'सम्रो नेरइया उववज्जंति, नो असम्रो नेरइया उववज्जंति, जाव सम्रो वेमाणिया चयंति, नो असम्रो वेमाणिया चयंति ।'

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

२ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५

३ वही, अ वृत्ति, पत्र ४५५

[५२-१ प्र] भगवन् ! आप स्वयं इसे इस प्रकार जानते हैं, अथवा अस्वयं जानते हैं ? तथा बिना सुने ही इसे इस प्रकार जानते हैं, अथवा सुनकर जानते हैं कि 'सत नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक नहीं। यावत् सत वैमानिको मे से च्यवन होता है, असत् वैमानिकों मे नहीं ?'

[५२-१ उ] गांगेय ! यह सब इस रूप मे मैं स्वयं जानता हूँ, अस्वयं नहीं तथा बिना सुने ही मैं इसे इस प्रकार जानता हूँ, सुनकर ऐसा नहीं जानता कि सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत नैरयिक नहीं, यावत सत् वैमानिको मे से च्यवते है, असत् वैमानिको मे से नही।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ तं चेव जाव नो असओ वेमाणिया चयंति ?

गंगेया ! केवली णं पुरत्थिमेणं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ, दाहिणेणं एवं जहा सद्दुद्देसए (स० ५ उ० ४ सु० ४ [२])[1] जाव निव्वुडे नाणे केवलिस्स, से तेणट्ठेणं गंगेया ! एवं वुच्चइ तं चेव जाव नो असओ वेमाणिया चयंति।

[५२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है, कि मैं स्वयं जानता हूँ, इत्यादि, (पूर्वोक्तवत्) यावत् सत् वैमानिको में से च्यवते हैं, असत् वैमानिको मे से नहीं ?

[५२-२ उ] गांगेय ! केवलज्ञानी पूर्व (दिशा) मे मित (मर्यादित) भी जानते हैं अमित (अमर्यादित) भी जानते है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा मे भी जानते हैं। इस प्रकार शब्द-उद्देशक (भगवती श ५, उ ४, सू ४-२) मे कहे अनुसार कहना चाहिए। यावत् केवली का ज्ञान निरावरण होता है, इसलिए हे गांगेय ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मैं स्वयं जानता हूँ, इत्यादि, यावत् असत् वैमानिको मे से नही च्यवते।

विवेचन—केवलज्ञानी द्वारा समस्त स्वप्रत्यक्ष—प्रस्तुत सूत्र ५२ मे बताया गया है कि भगवान् की अतिशय ज्ञानसम्पदा की सम्भावना करते हुए गांगेय ने जो प्रश्न किया है, उसके उत्तर मे भगवान् ने कहा—'मैं अनुमान आदि के द्वारा नही, किन्तु स्वयं—आत्मा द्वारा जानता हूँ तथा दूसरे पुरुषो के वचनो को सुनकर अथवा आगमत सुनकर नहीं जानता, अपितु बिना सुने ही—आगमनिरपेक्ष होकर स्वयं, 'यह ऐसा है' इस प्रकार जानता हूँ, क्योकि केवलज्ञानी का स्वभाव पारमार्थिक प्रत्यक्ष रूप केवलज्ञान द्वारा समस्त वस्तुसमूह को प्रत्यक्ष (साक्षात्) करने का होता है। अत भगवान् द्वारा केवलज्ञान के स्वरूप और सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया गया है।[2]

कठिन शब्दों का भावार्थ—सयं—स्वत प्रत्यक्षज्ञान। असयं—अस्वयं, परत ज्ञान। अमियं—अपरिमित।

नैरयिक आदि की स्वयं उत्पत्ति

५३ [१] सयं भंते ! नेरइया नेरइएसु उववज्जंति ? असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति ?

गंगेया ! सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति।

[५३-१ प्र] हे भगवन् ! क्या नैरयिक, नैरयिको मे स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं उत्पन्न होते हैं ?

---

१ देखिये—भगवती सूत्र श ५, उ ४, सू ४-२ में

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५५

[५३-१ उ] गांगेय ! नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव उववज्जंति ?

गंगेया ! कम्मोदएणं कम्मगुरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसंभारियत्ताए, असुभाणं कम्माणं उदएणं, असुभाणं कम्माणं विवागेणं, असुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, नो असयं नेरइया नेरइएसु उववज्जंति, से तेणट्ठेणं गंगेया ! जाव उववज्जंति।

[५३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हैं कि यावत् अस्वयं उत्पन्न नहीं होते ?

[५३-२ उ] गांगेय ! कर्म के उदय से, कर्मों की गुरुता के कारण, कर्मों के भारीपन से, कर्मों के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, अशुभ कर्मों के उदय से, अशुभ कर्मों के विपाक से तथा अशुभ कर्मों के फलपरिपाक से नैरयिक, नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं (परप्रेरित) उत्पन्न नहीं होते। इसी कारण से हे गांगेय ! यह कहा गया है कि नैरयिक नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते।

विवेचन—नैरयिकों आदि की स्वयं उत्पत्ति—रहस्य और कारण—प्रस्तुत पांच सूत्रों (५३ से ५७ तक) में नैरयिक से लेकर वैमानिक तक २४ दण्डकों के जीवों की स्वयं उत्पत्ति बताई गई है, अस्वयं यानी पर-प्रेरित नहीं। इस सैद्धान्तिक कथन का रहस्य यह है, कतिपय मतावलम्बी मानते हैं कि 'यह जीव अज्ञ है, अपने लिए सुख दुःख उत्पन्न करने में असमर्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से यह स्वर्ग अथवा नरक में जाता है। जैनसिद्धान्त से विपरीत इस मत का यहाँ खण्डन हो जाता है, क्योंकि जीव कर्म करने में जैसे स्वतन्त्र है, उसी प्रकार कर्मों का फल भोगने के लिए वह स्वयं स्वर्ग या नरक में जाता है, किन्तु ईश्वर के भेजने से नहीं जाता।[1]

५४ [१] सयं भंते ! असुरकुमारा० पुच्छा।

गंगेया ! सयं असुरकुमारा जाव उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा जाव उववज्जंति।

[५४-१ प्र] भंते ! असुरकुमार, असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं या अस्वयं ? इत्यादि पृच्छा।

[५४-१ उ] गांगेय ! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते।

[२] से केणट्ठेणं तं चेव जाव उववज्जंति ?

गंगेया ! कम्मोदएणं कम्मविगतीए कम्मविसोहीए कम्मविसुद्धीए, सुभाणं कम्माणं उदएणं, सुभाणं कम्माणं विवागेणं, सुभाणं कम्माणं फलविवागेणं सयं असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जंति, नो असयं असुरकुमारा असुरकुमारत्ताए उववज्जंति। से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति। एवं जाव थणियकुमारा।

---

१ अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख दुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥
—भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४५५।

[५४-२ प्र] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है कि यावत् अस्वय उत्पन्न नही होते ?

[५४-२ उ] हे गागेय ! कर्म के उदय, से, (अशुभ) कर्म के अभाव से, कर्म की विशोधि से, कर्मों की विशुद्धि से, शुभ कर्मों के उदय से, शुभ कर्मों के विपाक से, शुभ कर्मों के फलविपाक से असुरकुमार, असुरकुमारो मे स्वय उत्पन्न होते हैं, अस्वय उत्पन्न नही होते। इसलिए हे गागेय! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है। इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक जानना चाहिए।

५५ [१] सय भते ! पुढविक्काइया० पुच्छा।

गगेया ! सय पुढविकाइया जाव उववज्जति, नो असय पुढविक्काइया जाव उववज्जति।

[५५-१ प्र] भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको मे स्वय उत्पन्न होते हैं, या अस्वय उत्पन्न होते हैं ?

[५५-१ उ] गागेय ! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको मे स्वय यावत् उत्पन्न होते है, अस्वय उत्पन्न नही होते हैं।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव उववज्जति ?

गगेया ! कम्मोदएण कम्मगुरुयत्ताए कम्मभारियत्ताए कम्मगुरुसभारियत्ताए, सुभासुभाण कम्माण उदएण, सुभासुभाण कम्माण विवागेण, सुभासुभाण कम्माण फलविवागेण सय पुढविकाइया जाव उववज्जति, नो असय पुढविकाइया जाव उववज्जति। से तेणट्ठेण जाव उववज्जति।

[५५-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि पृथ्वीकायिक स्वय उत्पन्न होते हैं, इत्यादि ?

[५५-२ उ] गागेय ! कर्म के उदय से, कर्मों की गुरुता से, कर्म के भारीपन से, कर्म के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, शुभाशुभ कर्मों के उदय से, शुभाशुभ कर्मों के विपाक से, शुभाशुभ कर्मों के फल-विपाक से पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते हैं, अस्वय उत्पन्न नही होते। इसलिए हे गागेय ! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

५६ एव जाव मणुस्सा।

[५६] इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक जानना चाहिए।

५७ वाणमतर-जोइसिय वेमाणिया जहा असुरकुमारा। से तेणट्ठेण गगेया ! एव वुच्चइ—सय वेमाणिया जाव उववज्जति, नो असय जाव उववज्जति।

[५७] जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय मे कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के विषय मे भी जानना चाहिए। इसी कारण हे गागेय ! मैं ऐसा कहता हूँ कि यावत वैमानिक, वैमानिकों मे स्वय उत्पन्न होते हैं, अस्वय उत्पन्न नही होते।

जीवो की नारक, देव आदि रूप मे स्वय उत्पत्ति के कारण—(१) कर्मोदयवश, (२) कर्मों की गुरुता से, (३) कर्मों के भारीपन से, (४) कर्मों के गुरुत्व और भारीपन की अतिप्रकर्षावस्था से,

(५) कर्मों के उदय से, (६) विपाक (यानी कर्मों के फलभोग) से, अथवा यथाबद्ध रसानुभूति से, फलविपाक से—रस की प्रकर्षता से।[1]

उपर्युक्त शब्दों में किञ्चित् अर्थभेद है अथवा ये शब्द एकार्थक हैं। अर्थ के प्रकर्ष को बतलाने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है।[2]

भगवान् के सर्वज्ञत्व पर श्रद्धा और पंचमहाव्रत धर्म-स्वीकार

५८ तप्पभिइं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणइ सव्वण्णू सव्वदरिसी।

[५८] तब से अर्थात् इन प्रश्नोत्तरों के समय से गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के रूप में पहचाना।

५९ तए णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं एवं जहा कालासवेसियपुत्तो (स० १ उ० ९ सु० २३-२४)[3] तहेव भाणियव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ गंगेयो समत्तो ॥ ९. ३२ ॥

[५९] इसके पश्चात् गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया। उसके बाद इस प्रकार निवेदन किया—

भगवन्! मैं आपके पास चातुर्यामरूप धर्म के बदले पंचमहाव्रतरूप धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ। इस प्रकार सारा वर्णन प्रथम शतक के नौवें उद्देशक में कथित कालस्यवेषिकपुत्र अनगार के समान जानना चाहिए यावत् (गांगेय अनगार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त) सर्वदुःखों से रहित बने।

हे भगवन् यह इसी प्रकार है! हे भगवन्! यह इसी प्रकार है!

विवेचन—भगवान् के सर्वज्ञत्व पर श्रद्धा और पंचमहाव्रत धर्म का स्वीकार—प्रस्तुत दो सूत्रों (५८-५९) में यह प्रतिपादन किया गया है कि जब गांगेय अनगार को भगवान् के सर्वज्ञत्व एवं सर्वदर्शित्व पर विश्वास हो गया, तब उन्होंने भगवान् से चातुर्यामधर्म के स्थान पर पंचमहाव्रतरूप धर्म स्वीकार किया और क्रमशः सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।

॥ नवम शतक : बत्तीसवां उद्देशक समाप्त ॥ □□

---

१ भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४५५

२ वही, अ. वृत्ति, पत्र ४५५

३ भगवतीसूत्र श. १ उ. ९ सू. २३-२४ में देखिये।

तेत्तीसइमो उद्देसो : तेतीसवाँ उद्देशक

कुडग्गामे : कुण्डग्राम

ऋषभदत्त और देवानन्दा

संक्षिप्त परिचय

१ तेण कालेण तेण समएण माहणकुडग्गामे नयरे होत्था। वण्णश्रो। बहुसालए चेतिए। वण्णश्रो।

[१] उस काल और उस समय मे ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर था। उसका वर्णन (औपपातिक सूत्रगत) नगर वर्णन के समान समझ लेना चाहिए। वहाँ बहुशाल नामक चैत्य (उद्यान) था। उसका वर्णन भी (औपपातिकसूत्र से) करना चाहिए।

२ तत्थ ण माहणकुडग्गामे नयरे उसभदत्ते नाम माहणे परिवसति—अड्ढे दित्ते वित्ते जाव[1] अपरिभूए। रिउवेद जजुवेद सामवेद अथव्वणवेद जहा खदश्रो (स० २ उ० १ सु० १२) जाव अन्नेसु य बहुसु बभण्णएसु नएसु सुपरिनिट्ठिए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे उवलद्धपुण्ण पावे जाव अप्पाण भावेमाणे विहरति।

[२] उस ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर मे ऋषभदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था। वह आढ्य (धनवान्), दीप्त (तेजस्वी), प्रसिद्ध, यावत् अपरिभूत था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मे निपुण था। (शतक २, उद्देशक १, सू १२ मे कथित) स्कन्दक तापस की तरह वह भी ब्राह्मणो के अन्य बहुत से नयो (शास्त्रो) मे निष्णात था। वह श्रमणो का उपासक, जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता, पुण्य-पाप के तत्त्व को उपलब्ध (हृदयगम किया हुआ), यावत आत्मा को भावित करता हुआ विहरण (जीवन-यापन) करता था।

३ तस्स ण उसभदत्तमाहणस्स देवाणदा नाम माहणी होत्था, सुकुमालपाणि पाया जाव पियदसणा सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा जाव विहरइ।

[३] उस ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी (धर्मपत्नी) थी। उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे, यावत उसका दर्शन भी प्रिय था। उसका रूप सुन्दर था। वह श्रमणोपासिका थी, जीव-अजीव आदि तत्त्वो की जानकार थी तथा पुण्य-पाप के रहस्य को उपलब्ध की हुई थी, यावत विहरण करती थी।

विवेचन—ब्राह्मणकुण्ड—यह 'क्षत्रियकुण्ड' के पास ही कोई कस्बा था। ब्राह्मणो की बस्ती अधिक होने से इसका नाम ब्राह्मणकुण्ड पड गया।[2]

---

१ जाव पद से सूचित पाठ—'विच्छिन्नविउलभवण-सयणासण जाव वाहणाइन्ने' इत्यादि।

२ भगवतीसूत्र तृतीय खण्ड (गुजरात विद्यापीठ), पृ १६२

ऋषभदत्त ब्राह्मणधर्मानुयायी था या श्रमणधर्मानुयायी ?—इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ऋषभदत्त पहले ब्राह्मण-संस्कृति का अनुगामी था, इसी कारण उसे चारों वेदों का ज्ञाता तथा अन्य अनेक ब्राह्मणग्रन्थों का विद्वान् बताया है। किन्तु बाद में भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानीय मुनियों के सम्पर्क से वह श्रमणोपासक बना। श्रमणधर्म का तत्त्वज्ञ हुआ।[1]

कठिन शब्दों का अर्थ—परिवसइ=निवास करता था, रहता था। वित्त=प्रसिद्ध। अपरिभूए-अपरिभूत=किसी से नहीं दबने वाला, दबंग। बंभण्णएसु=ब्राह्मण-संस्कृति की नीति (धर्म) में। सुपरिणिट्ठिए=परिपक्व, मँजा हुआ।[2]

भगवान् की सेवा में वन्दना-पर्युपासनादि के लिए जाने का निश्चय

४ तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा जाव पज्जुवासइ।

[४] उस काल और उस समय में (श्रमण भगवान् महावीर) स्वामी वहाँ पधारे। समवसरण लगा। परिषद् यावत् पर्युपासना करने लगी।

५ तए णं से उसभदत्ते माहणे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जाव हियए जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे जाव बहुसालए चेइए अहापडिरूवं जाव विहरइ। तं महाफलं खलु देवाणुप्पिए! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम-गोयस्स वि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण वंदण नमंसण पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिए! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो जाव पज्जुवासामो। एयं णं इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

[५] तदनन्तर इस (श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पदार्पण की) बात को सुनकर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण अत्यन्त हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, यावत् हृदय में उल्लसित हुआ और जहाँ देवानन्दा ब्राह्मणी थी, वहाँ आया और उसके पास आकर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिये! धर्म की आदि करने वाले यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर आकाश में रहे हुए चक्र से युक्त यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए यहाँ पधारे हैं, यावत् बहुशालक नामक चैत्य (उद्यान) में योग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरण करते हैं। हे देवानुप्रिये! उन तथारूप अरिहन्त भगवान् के नाम गोत्र के श्रवण से भी महाफल प्राप्त होता है, तो उनके सम्मुख जाने, वन्दन-नमस्कार करने, प्रश्न पूछने और पर्युपासना करने आदि से होने वाले फल के विषय में तो कहना ही क्या! एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन के श्रवण से महान् फल होता है, तो फिर विपुल अर्थ को ग्रहण करने से महाफल हो, इसमें तो कहना ही क्या है! इसलिए हे देवानुप्रिये! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमन करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। यह कार्य हमारे लिए इस भव में तथा परभव में

१ भगवतीसूत्र अर्थागम (हिन्दी) द्वितीय खण्ड, पृ. ८३९

२ भगवती भाग ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १६९०

हित के लिए, सुख के लिए, क्षमता (—सगतता) के लिए, नि श्रेयस् के लिए और आनुगामिकता (—शुभ अनुबन्ध) के लिए होगा।

६ तए ण सा देवाणदा माहणी उसभदत्तेण माहणेण एव वुत्ता समाणी हट्ठ जाव हियया करयल जाव कट्टु उसभदत्तस्स माहणस्स एयमट्ठ विणएण पडिसुणेइ।

[६] तत्पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मण से इस प्रकार का कथन सुन कर देवानन्दा ब्राह्मणी हृदय मे अत्यन्त हर्षित यावत् उल्लसित हुई और उसने दोनो हाथ जोड कर मस्तक पर अजलि करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

विवेचन—भगवान महावीर की सेवा मे दर्शन वन्दनादि के लिए जाने का निश्चय—प्रस्तुत सू ४ से ६ तक मे भगवान् महावीर का ब्राह्मणकुण्ड मे पदार्पण, ऋषभदत्त द्वारा हर्षित होकर देवानन्दा को शुभ समाचार सुनाया जाना तथा भगवान् के नाम-गोत्र श्रवण, अभिगमन, वन्दन-नमन, पृच्छा, पर्युपासना, वचनश्रवण, ग्रहण आदि का माहात्म्य एव फल बताकर दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने का विचार प्रस्तुत करना तथा इस कार्य को हितकर, सुखकर, श्रेयस्कर एव परम्परानुगामी बताना, यह सब सुनकर देवानन्दा द्वारा हर्षित होकर सविनय समर्थन एव दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने का दोनो का निश्चय क्रमश प्रतिपादित किया गया है।[1]

कठिन शब्दों के अर्थ—**इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे**=यह (—श्रमण भगवान् महावीर के कुण्डग्राम मे पदार्पण की) बात जान कर। **हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया**=अत्यन्त हृष्ट—प्रसन्न, सन्तुष्ट-चित्त एव आनन्दित। **आगासगएण चक्केण**=आकाशगत चक्र (धर्मचक्र) से युक्त। **अहापडिरूव**=अपने कल्प के अनुरूप। **खमाए**=क्षमता—सगतता के लिए। **आणुगामियत्ताए**=आनुगामिकता अर्थात्—परम्परा से चलने वाले शुभ अनुबन्ध के लिए।[2]

ब्राह्मणदम्पती की दर्शनवन्दनार्थ जाने की तैयारी

७ तए ण से उसभदत्ते माहणे कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, कोडुबियपुरिसे सद्दावेत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्त-जोइय-समखुर-वालिधाण-समलिहियसिंगएहिं जबूणयामयकलावजुत्तपइविसिट्ठएहिं रययामयघटसुत्तरज्जुयवरकचणनत्थपग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिरयणघटियाजालपरिगय सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुगपसत्थसुविरचितनिम्मिय पवरलक्खणोववेय धम्मिय जाणप्पवर जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

[७] तत्पश्चात् उस ऋषभदत्त ब्राह्मण ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को बुलाया और इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र चलने वाले, प्रशस्त, सदृशरूप वाले, समान खुर और पूछ वाले, एक समान सीग वाले, स्वर्णनिर्मित कलापो (आभूषणो) से युक्त, उत्तम गति (चाल) वाले, चादी की घटियो से युक्त स्वर्णमय नाथ (नासारज्जु) द्वारा नाथे हुए, नील कमल की कलगी वाले दो उत्तम युवा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १ पृ ४५०

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४५९ (ख) भगवती खण्ड ३ (गु विद्यापीठ) पृ १६२

बलो से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घंटियों के समूह से व्याप्त, उत्तम काष्ठमय जुए (धूसर) और जोत की उत्तम दो डोरियों से युक्त, प्रवर (श्रेष्ठ) लक्षणों से युक्त धार्मिक श्रेष्ठ यान (रथ) शीघ्र तैयार करके यहाँ उपस्थित करो और इस आज्ञा को वापिस करो अर्थात् इस आज्ञा का पालन करके मुझे सूचना करो।

८ तए णं ते कोडुंबियपुरिसा उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयल० एवं वयासी—सामी ! 'तहं' त्ताणाए विणएणं वयणं जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरण-जुत्त० जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेत्ता जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

[८] जब ऋषभदत्त ब्राह्मण ने उन कौटुम्बिक पुरुषों को इस प्रकार कहा, तब वे उसे सुन कर अत्यन्त हर्षित यावत् हृदय में आनन्दित हुए और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! आपकी यह आज्ञा हमें मान्य है—तथाऽस्तु (ऐसा ही होगा)। इस प्रकार कह कर विनयपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार किया और (ऋषभदत्त की आज्ञानुसार) शीघ्र ही द्रुतगामी दो बलों से युक्त यावत् श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके उपस्थित किया, यावत उनकी आज्ञा के पालन की सूचना दी।

९ तए णं से उसभदत्ते माहणे ण्हाए जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, साओ गिहाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढे।

[९] तदनन्तर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण स्नान यावत् अल्पभार (कम वजन के) और महामूल्य वाले आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत किये हुए अपने घर से बाहर निकला। घर से बाहर निकल कर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी और जहाँ श्रेष्ठ धार्मिक रथ था, वहाँ आया। आकर उस रथ पर आरूढ हुआ।

१०. तए णं सा देवाणंदा माहणी[1] ण्हाया जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं जाव[2] अंतेउराओ निग्गच्छइ, अंतेउराओ निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता जाव धम्मियं जाणप्प-वरं दुरूढा।

---

१ पाठान्तर में देवानन्दा-वर्णन—'अंतो अंतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता वरपादपत्तने-उरमणिमेहलाहाररइयउचियकडगखुड्डागएगावलीकंठसुत्तउरत्थगेवेज्जसोणिसुत्तगणाणामणिरयणभूसणविराइयंगी चीणंसुयवत्थपवरपरिहिया दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरया वरचंदणवंदिया वराभरण-भूसियंगी कालागुरुधूवधूविया सिरीसमाणवेसा।' —अ. वृत्ति पत्रांक ४५९

२ 'जाव' पद से निम्नलिखित पाठ समझना चाहिए—वामणियाहिं वडहियाहिं बब्बरियाहिं पओसियाहिं ईसिगणि-याहिं वासगणियाहिं जोण्हि ('जोणि' प्रत्य०) याहिं पल्हवियाहिं ल्हासियाहिं लउसियाहिं आरबीहिं दमिलीहिं सिंहलीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं नाणादेसिविदेसपरिपिंडियाहिं सदेसने-वत्थगहियवेसाहिं इंगियचिंतियपत्थियवियाणियाहिं कुसलाहिं विणीयाहिं, युक्ता इति गम्यते।

[१०] तब देवानन्दा ब्राह्मणी ने भी (अन्तःपुर में) स्नान किया, यावत् अल्पभार वाले महामूल्य आभूषणों से शरीर को सुशोभित किया। फिर बहुत सी कुब्जा दासियों तथा चिलात देश की दासियों के साथ यावत् अन्तःपुर से निकली। अन्तःपुर से निकल कर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ श्रेष्ठ धार्मिक रथ खड़ा था, वहाँ आई। उस श्रेष्ठ धार्मिक रथ पर आरूढ हुई।

विवेचन भगवान् के दर्शन-वन्दनादि के लिए जाने की तैयारी– प्रस्तुत सू. ७ से १० तक चार सूत्रों में क्रमशः कौटुम्बिक पुरुषों को श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके शीघ्र उपस्थित करने की आज्ञा दी, उन्होंने आज्ञा शिरोधार्य की और शीघ्र धार्मिक रथ तैयार करके प्रस्तुत किया।

तदनन्तर ऋषभदत्त ब्राह्मण तथा देवानन्दा ब्राह्मणी पृथक्-पृथक् स्नानादि से निवृत्त होकर वेशभूषा से सुसज्जित हुए और धार्मिक रथ में बैठे।[1]

कठिन शब्दों के अर्थ—कोडुंबियपुरिसा=कौटुम्बिक पुरुष (सेवक या कर्मचारी)। सद्दावेइ=बुलाए। खिप्पामेव=शीघ्र ही। लहुकरणजुत्त=शीघ्र गति करने वाले उपकरणों साधनों से युक्त। समखुर-वालिधाण=समानखुर और पूंछ वाले। समलिहियसिंगे=समान चित्रित सींगोंवाले। जंबूणयमयकलावजुत्त=जाम्बुनद-स्वर्ण से बने हुए कलापों व कण्ठ के आभूषणों से युक्त। परिविसिट्ठेहिं=प्रतिविशिष्ट—प्रधानरूप से फुर्तीले। रययामयघंट=चांदी की घंटियों से युक्त। सुत्तरज्जुपवरकंचणनत्थपग्गहोग्गहियएहिं=सोने के डोरी (सूत्र) की नाथ (नासारज्जु) से बंधे हुए। नीलुप्पलकयामेलएहिं=नील कमल की कलगी से युक्त। पवरगोणजुवाणएहिं=जवान श्रेष्ठ बैलों से। सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुगपसत्थ सुविरचितनिम्मिय=उत्तम काष्ठ के जुए और जोत की रस्सियों से सुनियोजित। पवरलक्खणोववेय=उत्कृष्ट लक्षणों से युक्त। जुत्तामेव=जोत कर। उवट्ठवेह=उपस्थित करो। एयमाणत्तिय=इस आज्ञा को। पच्चप्पिणह=प्रत्यर्पण करो—वापिस लौटाओ। तहत्ति=तथास्तु ऐसा ही होगा। खुज्जाहिं=कुब्जा दासियों के साथ। चिलाइयाहिं=चिलात (किरात) देश में उत्पन्न दासियों के साथ।[2]

११. तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढे समाणे णियगपरियालसंपरिवुडे माहणकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थकरातिसए पासइ, २ धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, २ समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा –सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए एवं जहा बितियसए (स० २ उ० ५ सु० १४) जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ।

[११] इसके पश्चात् वह ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा ब्राह्मणी के साथ श्रेष्ठ धार्मिक रथ पर आरूढ हो अपने परिवार से परिवृत्त होकर ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर के मध्य में होता हुआ

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. १ पृ. ४५२

२ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४५९
(ख) भगवती तृतीय खण्ड (गुजरात विद्यापीठ), पृ. १६३

निकला और बहुशालक नामक उद्यान मे आया । वहा तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयो को देखा । देखते ही उसने श्रेष्ठ धार्मिक रथ को ठहराया और उस श्रेष्ठ-धर्म-रथ से नीचे उतरा ।

रथ से उतर कर वह श्रमण भगवान् महावीर के पास पाच प्रकार के अभिगमपूर्वक गया । वे पाच अभिगम इस प्रकार है—(१) सचित्त द्रव्यो का त्याग करना इत्यादि, द्वितीय शतक (के पचम उद्देशक सू १४) मे कहे अनुसार यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना से उपासना करने लगा ।

१२ तए ण सा देवाणदा माहणी धम्मियाश्रो जाणप्पवराश्रो पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता० बहूर्याहि खुज्जाहिं जाव[1] महत्तरगवदपरिक्खित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, त जहा—सचित्ताण दव्वाण विश्रोसरणयाए १ अचित्ताण दव्वाण अविमोयणयाए २ विणयोणयाए गायलट्ठीए ३ चक्खुफासे अजलिपग्गहेण ४ मणस्स एगत्तीभावकरणेण ५ । जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता उसभदत्त माहण पुरश्रो कट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी णमसमाणी अभिमुहा विणएण पजलिउडा पज्जुवासइ ।

[१२] तदनन्तर वह देवानन्दा ब्राह्मणी भी धार्मिक उत्तम रथ से नीचे उतरी और अपनी बहुत सी दासियो आदि यावत महत्तरिका-वन्द से परिवृत्त हो कर श्रमण भगवान् महावीर के सम्मुख पचविध अभिगमपूर्वक गमन किया । वे पाँच अभिगम इस प्रकार हैं—(१) सचित्त द्रव्यो का त्याग करना, (२) अचित्त द्रव्यो का त्याग न करना, अर्थात् वस्त्र आदि को व्यवस्थित ढग से धारण करना, (३) विनय से शरीर को अवनत करना (नीचे झुकाना), (४) भगवान् के दृष्टिगोचर होते ही दोनो हाथ जोडना, (५) मन को एकाग्र करना । इन पाच अभिग्रहो द्वारा जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आई और उसने भगवान् को तीन वार आदक्षिण (दाहिनी ओर से) प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार के बाद ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे करके अपने परिवार सहित शुश्रूषा करती हुई, नमन करती हुई, सम्मुख खडी रह कर विनयपूर्वक हाथ जोड कर उपासना करने लगी ।

विवेचन—पाच अभिगम क्या और क्यों ?—त्यागी महापुरुषो के पास जाने की एक विशिष्ट मर्यादा को शास्त्रीय परिभाषा मे अभिगम कहते हैं । वे पाँच प्रकार के हैं परन्तु स्त्री और पुरुष के लिए तीसरे अभिगम मे अन्तर है । श्रावक के लिए है—एक पट वाले दुपट्टे का उत्तरासग करना, जबकि श्राविका के लिए है—विनय से शरीर को झुकाना । साधु-साध्वियो के पास जाने के लिए इन पाच अभिगमो का पालन करना आवश्यक है ।[2]

देवानन्दा की मातृवत्सलता और गौतम का समाधान

१३ तए ण सा देवाणदा माहणी आगयपण्हया पप्फुयलोयणा सवरियवलयबाहा कचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलवग पिव समूससियरोमकूवा समण भगव महावीर अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी देहमाणी चिट्ठइ ।

१ 'जाव' पद से यह पाठ—चेडियाचक्कवालवरिसधर थेरकचुइज्ज महत्तरयवदपरिक्खित्ता ।

२ भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७००

[१३] तदनन्तर उस देवानन्दा ब्राह्मणी के पाना चढा (अर्थात्—उसके स्तनो मे दूध आ गया)। उसके नेत्र हर्षाश्रुओ से भीग गए। हर्ष से प्रफुल्लित होती हुई उसकी बाहा को वलयो ने रोक लिया। (अर्थात्—उसकी भुजाओ के कडे—बाजूबद तग हो गए)। हर्षातिरेक से उसकी कञ्चुकी (कांचली) विस्तीर्ण हो गई। मेघ की धारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया। फिर वह श्रमण भगवान् महावीर को अनिमेप दृष्टि से (टकटकी लगाकर) देखती रही।

१४ 'भंते !' त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—किं ण भंते ! एसा देवाणदा माहणी आगयपण्हया त चेव जाव रोमकूवा देवणुप्पिय अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी चिट्ठइ ?

'गोयमा !' दि समणे भगव महावीरे भगव गोयम एव वयासी—एव खलु गोयमा ! देवाणदा माहणी मम अम्मगा, अह ण देवाणदाए माहणीए अत्तए। तेण एसा देवाणदा माहणी तेण पुव्वपुत्तसिणेहाणुरागेण आगयपण्हया जाव समूससियरोमकूवा मम अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी देहमाणी[1] चिट्ठइ।

[१४] (यह देखकर) भगवान् गौतम ने, 'भगवन् !' यो कह कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। उसके पश्चात इस प्रकार [प्रश्न] पूछा—भन्ते ! इस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनो मे दूध कैसे निकल आया ? यावत् इसे रोमाच क्यो हो आया ? और यह आप देवानुप्रिय को अनिमेप दृष्टि से देखती हुई क्यो खडी है ?

[उ] 'गौतम !' यो कह कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—हे गौतम ! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं देवानन्दा का आत्मज (पुत्र) हूँ। इसलिए देवानन्दा का पूर्व-पुत्रस्नेहानुरागवश दूध आ गया, यावत् रोमाञ्च हुआ और यह मुझे अनिमेप दृष्टि से देख रही है।

विवेचन—देवानन्दा माता और पुत्रस्नेह—भगवान महावीर को देखते ही देवानन्दा के स्तनो से दुग्धधारा फूट निकली, रोमाच हो गया। हर्ष से नेत्र प्रफुल्लित हो गए और वह भगवान महावीर की ओर अपलक दृष्टि से देखने लगी। इस विषय की गौतमस्वामी की शका का समाधान करते हुए भगवान् ने रहस्योद्घाटन किया—देवानन्दा मेरी माता है। प्रथम गर्भाधानकाल मे मैं उसके गर्भ मे रहा, इसलिए पुत्रस्नेह रूप अनुरागवश यह सब होना स्वाभाविक है।[2]

कठिन शब्दो का अर्थ—आगयपण्हया—आगतप्रश्रवा = स्तनो मे दूध आ गया। पप्फुयलोयणा प्रस्फुटितलोचना = हर्ष से नयन विकसित हो गए। सवरियवलयबाहा = हर्ष से फूलती हुए बाहो को बाजूबदो ने रोका। कचुयपरिक्खित्ता = कचुकी विस्तृत हो गई। धाराहयकलबगपिव = मेघधारा से विकसित कदम्बपुष्प के समान। समूससियरोमकूवा = रोमकूप विकसित हो गए। अम्मगा—अम्मा = माता। अत्तए = आत्मज—पुत्र। देहमाणी = देखती हुई।[3]

---

१ देहमाणी' के बदले 'पेहमाणी' पाठ अन्तकृत् आदि शास्त्रो मे अधिक प्रचलित है। अर्थ दोनो का समान है।

२ भगवती भा ४ (प घेव०), पृ १७००

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६०

ऋषभदत्त द्वारा प्रव्रज्याग्रहण एवं निर्वाणप्राप्ति

१५ तए णं समणे भगवं महावीरे उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदाए य माहणीए तीसे य महतिमहालियाए इसिपरिसाए जाव[1] परिसा पडिगया ।

[१५] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानन्दा ब्राह्मणी तथा उस अत्यन्त बड़ी ऋषिपरिषद् आदि को धर्मकथा कही, यावत् परिषद् वापस चली गई ।

१६ तए णं से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आया० जाव नमंसित्ता एवं वयासी—'एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते !' जहा खंदओ (स० २ उ० १ सु० ३४) जाव 'से जहेयं तुब्भे वदह' त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ, सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं जाव नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते[2] णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, एवं जहा खंदओ (स० २ उ० १ सु० ३४) तहेव पव्वइओ जाव सामाइयमाइयाइं इक्कारस अंगाइं अहिज्जइ जाव बहूहिं चउत्थ छट्ठ-ऽट्ठम-दसम जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावो जाव तमट्ठं आराहेइ, २ जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

[१६] इसके पश्चात् वह ऋषभदत्त ब्राह्मण, श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म-श्रवण कर और उसे हृदय में धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट होकर खड़ा हुआ । खड़े होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दन नमन करके इस प्रकार निवेदन किया—'भगवन् ! आपने कहा, वैसा ही है, आपका कथन यथार्थ है भगवन् !' इत्यादि (दूसरे शतक के प्रथम उद्देशक सू. ३४ में) स्कन्दक तापस-प्रकरण में कहे अनुसार, यावत्—'जो आप कहते हैं, वह उसी प्रकार है ।' इस प्रकार कह कर वह (ऋषभदत्त ब्राह्मण) ईशानकोण (उत्तरपूर्व-दिशाभाग) में गया । वहाँ जा कर उसने स्वयमेव आभूषण, माला और अलंकार उतार दिये । फिर स्वयमेव पंचमुष्टि केशलोच किया और श्रमण भगवान् महावीर के पास आया । भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की, यावत् नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन् ! (जरा और मरण से) यह लोक चारों ओर से प्रज्वलित हो रहा है भगवन् ! यह लोक चारों ओर से अत्यन्त जल रहा है, इत्यादि

---

१ 'जाव' पद से यहाँ—'मुणिपरिसाए, जइपरिसाए, अणेगसयाए अणेगसयविंदपरिवाराए', इत्यादि पाठ समझना चाहिए ।

२ पाठान्तर—'आलित्तपलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य, एवं एएणं कमेण इमं जहा खंदओ ।'

कह कर (द्वितीय शतक, प्रथम उद्देशक, सू ३४ मे) जिस प्रकार स्कन्दक तापस की प्रव्रज्या का प्रकरण है, तदनुसार (ऋषभदत्त ब्राह्मण ने) प्रव्रज्या ग्रहण की, यावत् सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया, यावत् बहुत-से उपवास (चतुर्थभक्त), बेला (षष्ठभक्त), तेला (अष्टमभक्त), चौला (दशमभक्त) इत्यादि विचित्र तप कर्मों से आत्मा को भावित करते हुए, बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (श्रमण-दीक्षा) का पालन किया और (अन्त मे) एक मास की सल्लेखना से आत्मा को सलिखित करके साठ भक्तो का अनशन से छेदन किया और ऐसा करके जिस उद्देश्य से नग्नभाव (निर्ग्रन्थत्व सयम) स्वीकार किया, यावत् उस निर्वाण रूप अर्थ की आराधना कर ली, यावत् वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त एव सर्वदु खो से रहित हुए।

विवेचन—भगवान् का धर्मोपदेश—श्रवण एव दीक्षाग्रहण—सू १५-१६ मे भगवान् की धर्म कथा सुनकर ससारविरक्त होकर ऋषभदत्त के द्वारा दीक्षाग्रहण, शास्त्राध्ययन, तपश्चरण और अत मे सल्लेखना—सथारापूर्वक, समाधिमरण की आराधनापूर्वक सिद्ध-बुद्ध-मुक्तदशा की प्राप्ति। यह जीवन का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है।[1]

कठिन शब्दो के अर्थ—इसिपरिसाए—क्रान्तदर्शी साधक मुनियो की सभा, ज्ञानी होते हैं, वे ऋषि हैं।[2] आलित्ते पलित्ते—आदीप्त=चारो ओर से जल रहा है, प्रदीप्त=विशेष रूप से जल रहा है। सामण्णपरियाय=श्रमणत्व दीक्षा को। अत्ताण झूसित्ता=अपनी आत्मा पर आए हुए कर्मावरणो को भस्म करके आत्मा को शुद्ध करके अथवा सल्लेखना से आत्मा के साथ लगे हुए कषायो को कृश करके। सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता=साठ टक के चतुर्विध आहाररूप भोजन के त्याग के रूप मे अनशन (यावज्जीवन आहारत्याग) से छेदन (कर्मों को छिन्न-भिन्न करके या मोहनीयादि घाति-अघाति सब कर्मों का क्षय) करके। नग्गभाव=नग्नभाव का तात्पर्य निर्ग्रन्थभाव है। विचित्तेहि तवोकम्मेहि=विविध प्रकार की तपश्चर्याओ से।[3]

देवानन्दा द्वारा साध्वी-दीक्षा और मुक्ति-प्राप्ति

१७ तए ण सा देवाणदा माहणी समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा० समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण जाव नमसित्ता एव वयासी—एवमेय भते!, तहमेय भते, एव जहा उसभदत्तो (सु० १६) तहेव जाव धम्ममाइक्खिय।

[१७] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी से धर्म सुन कर एव हृदयगम करके वह देवानन्दा ब्राह्मणी अत्यन्त हृष्ट एव तुष्ट (आनन्दित एव सन्तुष्ट) हुई और श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके यावत नमस्कार करके इस प्रकार बोली—भगवन्! आपने

---

१ भगवती (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ४५३

२ पश्यन्तीति ऋषय ज्ञानिन। —भग अ वृ, पत्र ४६०

३ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६०

(ख) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७०२-१७०३

जसा कहा है, वैसा ही है, भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है। इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त ने (सू १६ में) प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए निवेदन किया था, वैसे ही विरक्त देवानन्दा ने भी निवेदन किया, और—'धर्म कहा', यहाँ तक कहना चाहिए।

१८. तए ण समणे भगव महावीरे देवाणद माहणि सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मु डावेइ, सयमेव अज्जचदणाए अज्जाए सीसिणित्ताए दलयइ।

[१८] तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वयमेव प्रव्रजित कराया, स्वयमेव मुण्डित कराया और स्वयमेव आर्य चन्दना आर्या को शिष्यारूप में सौंप दिया।

१९. तए ण सा अज्जचदणा अज्जा देवाणद माहणि सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मु डावेइ, सयमेव सेहावेइ, एव जहेव उसभदत्तो तहेव अज्जचदणाए अज्जाए इम एयारूव धम्मिय उवदेस सम्म सपडिवज्जइ—तमाणाए तहा गच्छइ जाव सजमेण सजमइ।

[१९] तत्पश्चात् आर्य चन्दना आर्या ने देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वय प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुण्डित किया और स्वयमेव उसे (सयम की) शिक्षा दी। देवानन्दा (नवदीक्षित साध्वी) ने भी ऋषभदत्त के समान इस प्रकार के धार्मिक (श्रमणधर्मपालन सम्बन्धी) उपदेश को सम्यक् रूप से स्वीकार किया और वह उनकी (आर्या चन्दनबाला की) आज्ञानुसार चलने लगी, यावत् सयम (पालन) में सम्यक् प्रवृत्ति करने लगी।

२०. तए ण सा देवाणदा अज्जा अज्जचदणाए अज्जाए अतिय सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ। सेस त चेव जाव सव्वदुक्खप्पहीणा।

[२०] तदनन्तर आर्या देवानन्दा ने आर्य चन्दना आर्या से सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है, यावत् वह देवानन्दा आर्या (सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त और) समस्त दुःखो से रहित हुई।

विवेचन—देवानन्दा प्रव्रजित और मुक्त—ऋषभदत्त ब्राह्मण की तरह देवानन्दा को भी ससार से विरक्ति हुई, उसने भी भगवान् के समक्ष अपनी दीक्षाग्रहण की इच्छा व्यक्त की। योग्य समझ कर भगवान् ने उसे दीक्षा दी। साध्वी चन्दनबाला को शिष्या के रूप में सौंपी। आर्या चन्दना ने उसे शिक्षित किया, शास्त्राध्ययन कराया। देवानन्दा ने भी विविध तप किये और अन्त में सल्लेखना—सथारापूर्वक-समाधिपूर्वक शरीर त्याग किया और मुक्ति प्राप्त की।

इस पाठ से श्रमण-सस्कृति का सयम एव तप द्वारा कर्मक्षय करके मुक्त होने का सिद्धान्त स्पष्ट अभिव्यक्त होता है। वैदिक-सस्कृति-निरूपित, सयम में पुरुषार्थ किए बिना ही भगवान द्वारा स्वर्ग—मोक्ष प्रदान कर देने का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। (सू १८ में) भगवान् महावीर द्वारा देवानन्दा को प्रव्रजित-मुण्डित करने के उपरान्त पुन (सू १९ में) आर्या चन्दना द्वारा प्रव्रजित-मुण्डित करने का उल्लेख स्पष्ट करता है कि भ महावीर ने स्वय प्रव्रजित-मुण्डित नहीं करके आर्या चन्दना से प्रव्रजित-मुण्डित कराया और उसे शिष्या के रूप में सौंपा। आर्या चन्दना ने भगवदाज्ञा से उसे प्रव्रजित-मुण्डित किया।

जमालि-चरित

जमालि और उसका भोग-वैभवमय जीवन

२१ तस्स णं माहणकुण्डग्गामस्स नगरस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं खत्तियकुंडग्गामे नामं नगरे होत्था। वण्णओ।

[२१] उस ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर से पश्चिम दिशा में क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था। उसका यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए।

२२ तत्थ णं खत्तियकुंडग्गामे नयरे जमाली नामं खत्तियकुमारे परिवसइ अड्ढे दित्ते जाव अपरिभूए उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसतिबद्धेहिं नाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे पाउस-वासारत्त-सरद-हेमंत-वसंत-गिम्हपज्जंते छप्पि उऊ जहाविभवेणं माणेमाणे माणेमाणे कालं गालेमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

[२२] उस क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर में जमालि नाम का क्षत्रियकुमार रहता था। वह आढ्य (धनिक), दीप्त (तेजस्वी) यावत् अपरिभूत था। वह जिसमें मृदंग वाद्य की स्पष्ट ध्वनि हो रही थी, बत्तीस प्रकार के नाटकों के अभिनय और नृत्य हो रहे थे, अनेक प्रकार की सुन्दर तरुणियों द्वारा सम्प्रयुक्त नृत्य और गुणगान (गायन) बार-बार किये जा रहे थे, उसकी प्रशंसा से भवन गुंजाया जा रहा था, खुशियाँ मनाई जा रही थीं, ऐसे अपने उच्च श्रेष्ठ प्रासाद-भवन में प्रावृट (पावस), वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म, इन छह ऋतुओं में अपने वैभव के अनुसार आनन्द (उत्सव) मनाता हुआ, समय बिताता हुआ, मनुष्यसम्बन्धी पांच प्रकार के इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, वाले कामभोगों का अनुभव करता हुआ रहता था।

विवेचन— जमालि और उसका भोगमय जीवन—प्रस्तुत दो सूत्रों में जमालि कौन था, किस नगर का था, उसके पास वैभव और भोगसुखों का अम्बार किस प्रकार का लगा हुआ था, यह वर्णन किया गया है। 'जमालि' भगवान् महावीर का जामाता था, ऐसा उल्लेख तथा जमालि के माता पिता के नाम का उल्लेख मूल में या वृत्ति में कहीं भी नहीं किया गया है।[1]

कठिन शब्दों के अर्थ—पच्चत्थिमेणं = पश्चिम दिशा में, उप्पिं पासायवरगए = ऊपर के या उन्नत (उच्च) श्रेष्ठ प्रासाद में रहता हुआ। फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं = मृदंग के मस्तक (सिर) पर अत्यन्त शीघ्रता से पीटने से स्पष्ट आवाज कर रहे थे। उवनच्चिज्जमाणे = नृत्य किये जा रहे थे। उवगिज्जमाणे = गीत गाए जा रहे थे। उवलालिज्जमाणे = प्रशंसा से फुलाया (लडाया) जा

---

1 वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १ पृ. ४५५

रहा था। माणेमाणे=मनाया जाता हुआ। कालं गालेमाणे=समय बिताता हुआ। बत्तीसति-बद्धेहिं नाडएहिं=बत्तीस प्रकार के अभिनयों अथवा नाटक के पात्रों से सम्बद्ध नाटक।[1]

भगवान् का पदार्पण सुन कर दर्शन-वन्दनादि के लिए गमन

२३. तए णं खत्तियकुंडग्गामे नगरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर जाव[2] बहुजणसद्दे इ वा जहा उववाइए जाव[3] एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं जाव[4] विहरइ। तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं जहा उववाइए जाव[5] एगाभिमुहे खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नगरे जेणेव बहुसालए चेइए एवं जहा उववाइए जाव[6] तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति।

[२३] उस दिन क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर यावत् महापथ पर बहुत-से लोगों का कोलाहल हो रहा था, इत्यादि सारा वर्णन जिस प्रकार औपपातिकसूत्र में है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए, यावत् बहुत-से लोग परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, यावत् बता रहे थे कि 'देवानुप्रियो! आदिकर (धर्म तीर्थ की आदि करने वाले) यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर, इस ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान (चैत्य) में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। अतः हे देवानुप्रियो! तथारूप अरिहन्त भगवान् के नाम, गोत्र के श्रवण-मात्र से महान् फल होता है, इत्यादि वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए, यावत् वह जनसमूह तीन प्रकार की पर्युपासना करता है।

२४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स तं महया जणसद्दं वा जाव जणसन्निवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव[7] समुप्पज्जित्था—किं णं अज्ज खत्तिय-

---

१. भगवती अ. वृत्ति पत्र ४६२
२. 'जाव' पद सूचित पाठ—'चउम्मुह-महापह पहेसु'—अ. वृ.
३. औपपातिक सूत्र गत पाठ संक्षेप में—"जणवूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले ति वा जणुम्मी इ वा जणुक्कलिया इ वा जणसन्निवाए इ वा बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ।"
४. 'जाव' शब्द निर्दिष्ट पाठ—"उग्गहं ओगिण्हति, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे।"
५. 'जाव' शब्द सूचक पाठ—"नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए?, एगस्स वि आयरियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए?, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो, एयं णे पेच्चभवे हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता एवं भोगा राइन्ना खत्तिया भडा अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूयणवत्तियं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं कोउहलवत्तियं, अप्पेगइया 'जीयमेयं' ति कट्टु।"
६. जाव शब्द सूचित पाठ—"तेणामेव उवागच्छंति, तेणामेव उवागच्छित्ता छत्तादिए तित्थयरातिसए पासंति, जाण-वाहणाइं ठाइंति।"
७. 'जाव' शब्द से सूचित पाठ "चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे।"

कुडग्गामे नगरे इंदमहे इ वा, खंदमहे इ वा, मुगुंदमहे इ वा, नागमहे इ वा, जक्खमहे इ वा, भूयमहे इ वा, कूवमहे इ वा, तडागमहे इ वा, नईमहे इ वा, दहमहे इ वा, पव्वयमहे इ वा, रुक्खमहे इ वा, चेइयमहे इ वा, थूभमहे इ वा, ज णं एए बहवे उग्गा भोगा राइन्ना इक्खागा णाया कोरव्वा खत्तिया खत्तियपुत्ता भडा भडपुत्ता सेणावई सेणावईपुत्ता पसत्थारो २ लेच्छई २ माहणा २ इब्भा २[1] जहा उववाइए जाव[2] सत्थवाहप्पभिइओ ण्हाया कयबलिकम्मा जहा उववाइए जाव निग्गच्छंति ? एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेति, कंचुइज्जपुरिसं सद्दावेत्ता एवं वयासि—किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे नगरे इंदमहे इ वा जाव निग्गच्छंति ?

[२४] तब बहुत-से मनुष्यों के शब्द और उनका परस्पर मिलन (सन्निपात) सुन और देख कर उस क्षत्रियकुमार जमालि के मन में विचार यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ—'क्या आज क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर में इन्द्र का उत्सव है ?, अथवा स्कन्दोत्सव है ?, या मुकुन्द (वासुदेव) महोत्सव है ? नाग का उत्सव है, यक्ष का उत्सव है, अथवा भूतमहोत्सव है ? या किसी कूप का, सरोवर का, नदी का या द्रह का उत्सव है ?, अथवा किसी पर्वत का, वृक्ष का, चैत्य का अथवा स्तूप का उत्सव है ? जिसके कारण ये बहुत से उग्र (उग्रकुल के क्षत्रिय), भोग (भोगकुल या भोजकुल के क्षत्रिय), राजन्य, इक्ष्वाकु (कुलीन), ज्ञातृ (कुलीन), कौरव्य क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट (योद्धा), भटपुत्र, सेनापति, सेनापतिपुत्र, प्रशास्ता एवं प्रशास्तृपुत्र, लिच्छवी (लिच्छवीगण के क्षत्रिय), लिच्छवीपुत्र, ब्राह्मण (माहण), ब्राह्मणपुत्र एवं इभ्य (श्रेष्ठी) इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् सार्थवाह-प्रमुख, स्नान आदि करके यावत् बाहर निकल रहे हैं ?'

इस प्रकार विचार करके उसने कंचुकीपुरुष (सेवक) को बुलाया और उससे पूछा—'हे देवानुप्रियो ! क्या आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में इन्द्र आदि का कोई उत्सव है, जिसके कारण यावत् ये सब लोग बाहर जा रहे हैं ?'

२५. तए णं से कंचुइज्जपुरिसे जमालिणा खत्तियकुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० समणस्स भगवओ महावीरस्स आगमणगहियविणिच्छए करयल० जमालिं खत्तियकुमारं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—'णो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज खत्तियकुंडग्गामे नयरे इंदमहे इ वा जाव[3], निग्गच्छंति । एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी माहणकुंडग्गामस्स नगरस्स बहिया बहुसालए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरति, तए णं एए बहवे उग्गा भोगा जाव[3] अप्पेगइया वंदणवत्तियं जाव[4] निग्गच्छंति' ।

---

१ दो का अंक 'पुत्ता' शब्द का सूचक है, यथा—'सेणावई, सेणावईपुत्ता' आदि ।

२ 'जाव' शब्द से सूचित पाठ—"माहणा भडा जोहा मल्लई लेच्छई अन्ने य बहवे राईसर तलवर माडंबिय-कोडुंबिय इब्भ सेट्ठि सेणावइ ।"

३ जाव शब्द से सूचित पाठ—"कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सिरसाकंठेमालाकडा ।"

४ 'जाव' शब्द से सूचित पाठ—"अप्पेगइया पूयणवत्तियं एवं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं कोउहल्लवत्तियं असुयाइं सुणिस्सामो, सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो, मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, अप्पेगइया हयगया एवं गय रह सिबिया संदमाणियागया, अप्पेगइया पायविहारचारिणो पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता महता उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा खत्तियकुंडग्गामस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं ।"

[२५] तब जमालि क्षत्रियकुमार के इस प्रकार कहने पर वह कचुकी पुरुष अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर का (नगर मे) आगमन जान कर एव निश्चित करके हाथ जोड कर जय-विजय-ध्वनि से जमालि क्षत्रियकुमार को बधाई दी। तत्पश्चात् उसने इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बाहर इन्द्र आदि का उत्सव नही है, जिसके कारण यावत् लोग नगर से बाहर जा रहे हैं, किन्तु देवानुप्रिय ! आदिकर यावत सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशाल नामक उद्यान मे अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं, इसी कारण ये उग्रकुल, भोगकुल आदि के क्षत्रिय आदि तथा और भी अनेक जन वन्दन के लिए यावत् जा रहे हैं।'

२६ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे कचुइज्जपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, कोडु बियपुरिसे सद्दावइत्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

[२६] तदनन्तर कचुकीपुरुष से यह बात सुन कर और हृदय मे धारण करके जमालि क्षत्रियकुमार हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुला कर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही चार घण्टा वाले अश्वरथ को जोत कर यहाँ उपस्थित करो और मेरी इस आज्ञा का पालन करके सूचना दो।

२७ तए ण ते कोडु बियपुरिसा जमालिणा खत्तियकुमारेण एव वुत्ता समाणा जाय पच्चप्पिणति।

[२७] तब उन कौटुम्बिक पुरुषो ने क्षत्रियकुमार जमालि के इस आदेश को सुन कर तदनुसार काय करके निवेदन किया।

२८ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जहा[1] उववाइए परिसा-वण्णओ तहा भाणियव्व जाव चदणोक्खित्तगायसरीरे सव्वालकारविभूसिए मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह दुरुहेइ, चाउग्घट आसरह दुरुहित्ता सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भडचडगरपहकरवदपरिक्खित्ते खत्तियकु डग्गाम नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकु डग्गामे नगरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हेइ, तुरए निगिण्हित्ता रह ठवेइ, रह ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, रहाओ पच्चोरुहित्ता पुप्फ-तबोलाउहमादीय वाहणाओ य विसज्जेइ, वाहणाओ विसज्जित्ता एगसाडिय उत्तरासग करेइ, एगसाडिय उत्तरासग करेत्ता आयते चोक्खे परमसुइब्भूए अजलिमउलियहत्थे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेत्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासेइ।

---

1 औपपातिक सूत्र म परिषद वर्णन —"अणेगगणनायग दडनायग राईसर-तलवर-माडबिय-कोडु बिय-मति महामति गणग दोवारिय अमच्च चेड पीढमद्द नगर-निगम सेट्ठि-[सेणावइ]सत्थवाह दूय सधिवाल सद्धि सपरिवुडे।"

[२८] तदनन्तर वह जमालि क्षत्रियकुमार जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया और वहाँ आकर उसने स्नान किया तथा अन्य सभी दैनिक क्रियाएँ की, यावत् शरीर पर चन्दन का लेपन किया, समस्त आभूषणों से विभूषित हुआ और स्नानगृह से निकला आदि सारा वर्णन तथा परिषद् का वर्णन, जिस प्रकार औपपातिकसूत्र में है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए।

फिर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ सुसज्जित चातुर्घण्ट अश्वरथ था, वहाँ वह आया। उस अश्वरथ पर चढ़ा। कोरण्टपुष्प की माला से युक्त छत्र को मस्तक पर धारण किया हुआ तथा बड़े-बड़े सुभटों, दासों, पथदर्शकों आदि के समूह से परिवृत हुआ वह जमालि क्षत्रियकुमार क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य में से होकर निकला और ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर के बाहर जहाँ बहुशाल नामक उद्यान था, वहाँ आया। वहाँ घोड़ों को रोक कर रथ को खड़ा किया, वह रथ से नीचे उतरा। फिर उसने पुष्प, ताम्बूल, आयुध (शस्त्र) आदि तथा उपानह (जूते) वहीं छोड़ दिये। एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासंग (उत्तरीय धारण) किया। तदनन्तर आचमन किया हुआ और अशुद्धि दूर करके अत्यन्त शुद्ध हुआ जमालि मस्तक पर दोनों हाथ जोड़े हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुँचा। समीप जाकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, यावत् त्रिविध पर्युपासना की।

विवेचन—जमालि भगवान् महावीर की सेवा में—प्रस्तुत ६ सूत्रों (सू. २३ से २८ तक) में क्षत्रियकुमार जमालि ने जनता के मुख से नगर के स्थान स्थान पर चर्चा सुनी। उसके मन में जानने की उत्सुकता पैदा हुई। कंचुकी से पूछने पर पता चला कि भ. महावीर ब्राह्मणकुण्डग्राम में पधारे हैं। जमालि ने सेवकों को बुला कर अश्वरथ तैयार करने का आदेश दिया। रथ पर आरूढ होकर बड़े ठाठबाठ से क्षत्रियकुण्डग्राम से ब्राह्मणकुण्डग्राम के बाहर भ. महावीर के पास आया और वन्दना-पर्युपासना करने लगा।[1]

कठिन शब्दों के अर्थ—**सिंघाडग**=सिंघाड़े के आकार का मार्ग। **तिय**=तिराहा। **चउक्क**=चौक या चौराहा। **चच्चर**=चत्वर, चार से अधिक रास्ते जहाँ से निकलें, वह स्थान। **चाउग्घंट**—चार घण्टों वाला। **खंधमहे**=स्कन्ध-महोत्सव। **आगमण-गहियविणिच्छए**=आगमन की जानकारी का निश्चय करके। **चंदणोक्खित्तगायसरीरे**=शरीर पर चन्दन लेपन किया हुआ। **सकोरंटमल्लदामेण छत्तेणं**=कोरण्टपुष्प की माला युक्त छत्र को।[2]

जमालि द्वारा प्रवचन-श्रवण और श्रद्धा तथा प्रव्रज्या की अभिव्यक्ति

२९. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए इसि० जाव धम्मकहा जाव परिसा पडिगया।

[२९] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने उस क्षत्रियकुमार जमालि तथा उस बहुत बड़ी ऋषिगण आदि की परिषद् को यावत् धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुन कर यावत् परिषद वापस लौट गई।

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू. पा. टि.), भा. १, पृ. ४५६-४५८

२ भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४६२-४६३

३० तए ण से जमाली खत्तियकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता एव वयासी—सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयण, पत्तियामि ण भते ! निग्गथ पावयण, रोएमि ण भते ! निग्गथ पावयण, अब्भुट्ठेमि ण भते ! निग्गथ पावयण, एवमेय भते ! तहमेय भते ! अवितहमेय भते ! असदिद्धमेय भते ! जाव से जहेव तुब्भे वदह, ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मा-पियरो आपुच्छामि, तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिय मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयामि । अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध ।

[३०] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म सुन कर और उसे हृदयगम करके हर्षित और सन्तुष्ट क्षत्रियकुमार जमालि यावत् उठा और खडे होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर-स्वामी को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की यावत् वन्दन नमन किया और इस प्रकार कहा—'भगवन ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ । भगवन ! मै निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर प्रतीति (विश्वास) करता हूँ । भन्ते ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मे मेरी रुचि है । भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन के अनुसार चलने के लिए अभ्युद्यत हुआ हूँ । भन्ते ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन तथ्य है, सत्य (अवितथ) है, भगवन् ! यह असदिग्ध है, यावत् जसा कि आप कहते है । किन्तु हे देवानुप्रिय ! (प्रभो !) मैं अपने माता पिता को (घर जाकर) पूछता हूँ और उनकी अनुज्ञा लेकर (गृहवास का परित्याग करके) आप देवानुप्रिय के समीप मुण्डित हो कर अगारधर्म से अनगारधर्म मे प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।" (भगवान् ने कहा—) "देवानुप्रिय ! जसा तुम्हे सुख हो वसा करो ।"

विवेचन—जमालि द्वारा प्रवचन श्रवण, श्रद्धा और प्रव्रज्यासकल्प—प्रस्तुत दो सूत्रो (२९-३० सू) मे वर्णन है कि जमालि भगवदुपदेश सुन कर अत्यन्त प्रभावित हुआ, उसे ससार से विरक्ति हो गई । उसने विनयपूर्वक अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ अनगारधर्म मे दीक्षित होने की अभिलाषा व्यक्त की । भगवान् ने उसको बात सुन कर इच्छानुसार कार्य करने का परामर्श दिया ।[1]

अब्भुट्ठेमि आदि पदो का भावार्थ—अब्भुट्ठेमि = मैं अभ्युद्यत (तत्पर) हूँ । अवितह— अवितथ = सत्य । तहमेय = यह तथ्य-यथार्थ है । असदिद्ध—सदेहरहित है ।

'श्रद्धा' आदि पदों का भावार्थ—श्रद्धा—तर्करहित विश्वास, प्रतीति—तर्क और युक्तिपूर्वक विश्वास, रुचि—श्रद्धा के अनुसार चलने की इच्छा । अभ्युत्थानेच्छा = निर्ग्रन्थ-प्रवचनानुसार प्रवृत्ति के लिए उद्यत होने की इच्छा ।[2]

माता-पिता से दीक्षा की अनुज्ञा का अनुरोध

३१ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता तमेव चाउघट आसरह दुरूहेइ, दुरूहित्ता समणस्स

---

१ वियाहप (मू पा टि) भा १, पृ ४५८-४५९

२ भगवती भा ४ (प चे) पृ १७१२ १७१५

भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सकोरंट जाव धरिज्जमाणेणं महया भडचडगर० जाव परिक्खित्ते जेणेव खत्तियकुंडग्गामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हिइ, तुरए निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, रहं ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, रहाओ पच्चोरुहित्ता जेणेव अब्भितरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव अम्मा पियरो तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अम्मा पियरो जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी - एवं खलु अम्म ! ताओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए ।

[३१] जब श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि क्षत्रियकुमार से इस (पूर्वोक्त) प्रकार से कहा तो वह हर्षित और सन्तुष्ट हुआ । उसने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् नमस्कार किया । फिर उस चार घंटा वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ और रथारूढ हो कर श्रमण भगवान् महावीर के पास से, बहुशाल नामक उद्यान से निकला, यावत् मस्तक पर कोरंटपुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किए हुए महान् सुभटों इत्यादि के समूह से परिवृत्त होकर जहाँ क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था, वहाँ आया । वहाँ से वह क्षत्रियकुण्डग्राम के बीचोबीच होता हुआ, जहाँ अपना घर था और जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, वहाँ आया । वहाँ पहुँचते ही उसने घोड़ों को रोका और रथ को खड़ा कराया । फिर वह रथ से नीचे उतरा और आन्तरिक (अन्दर की) उपस्थानशाला में, जहाँ कि उसके माता-पिता थे, वहाँ आया । आते ही (माता-पिता के चरणों में नमन करके) उसने जय-विजय शब्दों से बधाया, फिर इस प्रकार कहा 'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुना है, वह धर्म मुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट और रुचिकर प्रतीत हुआ है ।'

३२. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा पियरो एवं वयासि— धन्ने सि णं तुमं जाया !, कयत्थे सि णं तुमं जाया, कयपुण्णे सि णं तुमं जाया !, कयलक्खणे सि णं तुमं जाया !, जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

[३२] यह सुन कर माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! तू धन्य है ! बेटा ! तू कृतार्थ हुआ है । पुत्र ! तू कृतपुण्य (भाग्यशाली) है । पुत्र ! तू कृतलक्षण है कि तूने श्रमण भगवान् महावीरस्वामी से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुझे इष्ट, विशेष प्रकार से अभीष्ट और रुचिकर लगा है ।

३३. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा पियरो दोच्चं पि एवं वयासी—एवं खलु मए अम्म ! ताओ ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते जाव अभिरुइए । तए णं अहं अम्म ! ताओ ! संसारभउव्विग्गे, भीए जम्मण मरणेणं, तं इच्छामि णं अम्म ! ताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

[३३] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि ने दूसरी बार भी अपने माता पिता से इस प्रकार कहा —हे माता पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से वास्तविक धर्म सुना, जो मुझे इष्ट, अभीष्ट

और रुचिकर लगा, इसलिए हे माता-पिता ! मैं ससार के भय से उद्विग्न हो गया हूँ, जन्म मरण से भयभीत हुआ हूँ। अत मैं चाहता हूँ कि आप दोनों की आज्ञा प्राप्त होने पर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर गृहवास त्याग करके अनगार धर्म मे प्रव्रजित होऊँ।

विवेचन—जमालि द्वारा ससारविरक्त एव दीक्षा की अनुमति का सकेत—भगवान् महावीर से धर्मोपदेश सुन कर जमालि सीधे माता-पिता के पास आया। उनके समक्ष भगवान् के धर्म-प्रवचन की प्रशसा की और उसके प्रभाव से स्वय को वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इसलिए माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा देने का अनुरोध किया। यह सू ३१ से ३३ तक वर्णन है।[1]

ससारभउव्विग्गे आदि पदो का भावार्थ—ससारभउव्विग्गे=जन्म-मरण रूप ससार के भय से सवेग प्राप्त हुआ है। **अब्भणुण्णाए समाणे**—आपके द्वारा अनुज्ञा प्रदान होने पर।[2]

प्रव्रज्या का सकल्प सुनते ही माता शोकमग्न

३४ तए ण सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माता त अणिट्ठ अकत अप्पिय अमणुण्ण अमणाम असुयपुव्व गिर सोच्चा निसम्म सेयागयरोमकूवपगलतविलीणगत्ता सोगभरपवेवियगमगी नित्तेया दीणविमणवयणा करयलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीरलायन्नसुन्ननिच्छाया गयसिरीया पसिढिलभूसणपडतखुण्णियसचुण्णियधवलवलयपब्भट्ठउत्तरिज्जा मुच्छावसणट्ठचेतगुरुई सुकुमालविकिण्णकेसहत्था परसुणियत्त व्व चपगलता निव्वत्तमहे व्व इदलट्ठी विमुक्कसधिबधणा कोट्टिमतलसि 'धस' त्ति सव्वगेहि सन्निवडिया।

[३४] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि की माता उसके उस (पूर्वोक्त) अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, मन को अप्रिय और अश्रुतपूर्व (आघातकारक) वचन सुनकर और अवधारण करके (शोकमग्न हो गई।) रोमकूप से बहते हुए पसीने से उसका शरीर भीग गया। शोक के भार से उसके अग-अग कापने लगे। (चेहरे की कान्ति) निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और उन्मना हो गया। हथेलियो से मसली हुई कमलमाला की तरह उसका शरीर तत्काल मुर्झा गया एव दुर्बल हो गया। वह लावण्यशून्य, कान्तिरहित और शोभाहीन हो गई। (उसके शरीर पर पहने हुए) आभूषण ढीले हो गए। उसके हाथो की धवल चूडियाँ (वलय) नीचे गिर कर चूर-चूर हो गई। उसका उत्तरीय वस्त्र (ओढना) अग से हट गया। मूर्च्छावश उसकी चेतना नष्ट हो गई। शरीर भारी भारी हो गया। उसकी सुकोमल केशराशि बिखर गई। वह कुल्हाडी से काटी हुई चम्पकलता की तरह एव महोत्सव समाप्त होने के बाद इन्द्रध्वज (दण्ड) की तरह शोभाविहीन हो गई। उसके सन्धिबन्धन शिथिल हो गए और वह एकदम धस करती हुई (धडाम से) सारे ही अगो सहित फर्श पर गिर पडी।

विवेचन—दीक्षा की बात सुनकर शोकमग्न माता—जमालिकुमार (पुत्र) की प्रव्रज्या ग्रहण करने की बात सुनते ही मोह-ममत्ववश माता की जो अवस्था हुई और वह मूर्च्छित हो कर गिर पडी, इसका वर्णन प्रस्तुत सूत्र मे है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १ पृ ४६९

२ भगवती अ वृत्ति पत्र ४६७

कठिन शब्दों का अर्थ—अमणाम=मन के विपरीत, अनिच्छनीय। अस्सुयपुव्व=पहले कभी नहीं सुनी हुई। सेयागय-रोमकूव-पगलंत विलीणगत्ता—रोमकूपों में से झरते हुए पसीने से शरीर तरबतर हो गया। सोगभरपवेवियंगमंगी=शोक के भार से अंग-अंग कांपने लगे। नित्तेया=निस्तेज (मुर्झाई हुई)। दीणविमणवयणा=उसका मुख दीन एवं विमन (उदास) हो गया। करयलमलिय व्व कमलमाला=हथेलियों से मर्दित की हुई कमलमाला के समान। तक्खण ओलुग्ग-दुब्बल सरीर-लायन्न-सुन्न निच्छाया=उसी क्षण जिसका शरीर ग्लान एवं दुर्बल, लावण्य से शून्य एवं प्रभारहित हो गया। गयसिरिया=वह श्री (शोभा)-रहित हो गई। पसिढिल भूसण-पडंत खुण्णिय-संचुण्णिय धवलवलय-पब्भट्ठ-उत्तरिज्जा=उसके आभूषण ढीले हुए, श्वेत वलय (कंगन) गिरकर चूर-चूर हो गए, शरीर से उत्तरीयवस्त्र (ओढना) सरक गया। मुच्छावसणट्ठ चेत-गुरुई=मूर्च्छावश उसकी चेतना (संज्ञा) नष्ट होने से शरीर भारी हो गया। सुकुमाल विकिण्ण केसहत्था=उसकी कोमल केशराशि बिखर गई। परसु-णियत्त व्व चंपगलता—कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपा की बेल की तरह। निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी=महोत्सव पूर्ण होने के बाद के इन्द्रध्वज (दण्ड) के समान। विमुक्कसंधिबंधणा=शरीर के संधिबन्धन ढीले हो गए। कोट्टिमतलंसि=आंगन (कुट्टिम) के तल (फर्श) पर।[1]

माता-पिता के साथ विरक्त जमालि का संलाप

३५. तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया ससंभमोयत्तियाए तुरियं कंचणभिंगार-मुहविणिग्गयसीयलजलविमलधारापसिच्चमाणनिव्ववियगायलट्ठी उक्खेवगतालियंटवीयणगजणियवा-एणं सफुसिएणं अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी रोयमाणी कंदमाणी सोयमाणी विलवमाणी जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी—तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविये हिययनंदि जणणे उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए किमंग पुण पासणयाए? तं नो खलु जाया! अम्हं इच्छामो तुब्भं खणमवि विप्पओगं, तं अच्छाहि ताव जाया! जाव ताव अम्हे जीवामो, तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवये वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

[३५] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि की व्याकुलतापूर्वक इधर-उधर गिरती हुई माता के शरीर पर शीघ्र ही दासियों ने स्वर्णकलश के मुख से निकली हुई शीतल एवं निर्मल जल-धारा का सिंचन करके शरीर को स्वस्थ किया। फिर (बांस के बने हुए) उत्क्षेपकों (पंखों) तथा ताड़ के पत्तों से बने पंखों से जलकणों (फुहारों) सहित हवा की। तदनन्तर (मूर्च्छा दूर होते ही) अन्तःपुर के परिजनों ने उसे आश्वस्त किया। (मूर्च्छा दूर होते ही) रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, शोक करती हुई, एवं विलाप करती हुई माता क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहने लगी—पुत्र! तू हमारा इकलौता पुत्र है, (इसलिए) तू हमें इष्ट है, कान्त है, प्रिय है,

---

१. भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी) पृ. १७१६-१७१७

मनोज्ञ है, मनसुहाता, है, आधारभूत है विश्वासपात्र है, (इस कारण) तू सम्मत, अनुमत और बहुमत है। तू आभूषणों के पिटारे (करण्डक) के समान है, रत्नस्वरूप है रत्नतुल्य है, जीवन या जीवितोत्सव के समान है, हृदय को आनन्द देने वाला है, उदुम्बर (गूलर) के फूल के समान तेरा नाम-श्रवण भी दुर्लभ है, तो तेरा दर्शन दुर्लभ हो, इसमें कहना ही क्या! इसलिए हे पुत्र! हम तेरा क्षण भर का वियोग भी नहीं चाहते। इसलिए जब तक हम जीवित रहें, तब तक तू घर में ही रह। उसके पश्चात् जब हम (दोनों) कालधर्म को प्राप्त (परलोकवासी) हो जाएँ, तेरी उम्र भी परिपक्व हो जाए, (और तब तक) कुलवंश की वृद्धि का कार्य हो जाए, तब (गृह-प्रयोजनों से) निरपेक्ष होकर तू गृहवास का त्याग करके श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर अनगारधर्म में प्रव्रजित होना।

विवेचन—माता की मूर्च्छा दूर होने पर जमालि के प्रति उद्गार—प्रस्तुत सूत्र में यह वर्णन है कि दासियों ने माता की मूर्च्छा विविध उपचारों से दूर की। परिजनों ने सान्त्वना दी, किन्तु फिर भी मोह-ममतावश जमालि को समझाने लगी कि हमारे जीवित रहने तक तुम दीक्षा मत लो।[1]

कठिन शब्दों का अर्थ—ससंभमोयत्तियाए—घबराहट के कारण छटपटाती हुई या गिरती हुई। **कंचणभिंगारमुहविणिग्गय-सीयलजल-विमलधारा परिसिंचमाण-निव्ववियगायलट्ठी**—सोने के कलश के मुख से निकलती हुई शीतल एवं विमल जलधारा से सिंचन करने से देह (गात्रयष्टि) स्वस्थ हुई। **उक्खेवग तालियंट वीयणगजणियवाएण सफुसिएण**—उत्क्षेपक (बांस से निर्मित पंखे) तथा ताड़ के पंखे से पानी के फुहारों से युक्त हवा करने से। **अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी** अन्तःपुर के परिजन से आश्वस्त की गई। **कंदमाणी**—चिल्लाती हुई। **वेसासिए**—विश्वासपात्र। **थेज्जे**—स्थिरता के योग्य। **सम्मए**—अनेक कार्यों में सम्मति देने योग्य। **अणुमए**—कार्य के अनुरूप या कार्य में विघात आने के बाद सलाह देने योग्य। **बहुमए**—बहुत से कार्यों में मान्य या बहुमान्य। **रयण**—रत्नरूप या (मनो) रंजक है। **जीवियऊसविये**—जीवित-उत्सवरूप अथवा जीवन के उच्छ्वास (प्राण)रूप।[2] **अच्छाहि**—रहो या ठहरो। **परिणयवये**—परिपक्व अवस्था होने पर। **वड्ढियकुलवंसतंतु-कज्जम्मि**—कुलवंशरूप तन्तु-पुत्रपौत्रादि से कुलवंश की वृद्धि का कार्य होने पर। **णिरवयक्खे**—गृहस्थकार्यों से निरपेक्ष होने पर।[3]

३६ तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा पियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्म! ताओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वदह 'तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते तं चेव जाव पव्वइहिसि', एवं खलु अम्म! ताओ! माणुस्सए भवे अणेगजाइ जरा-मरण रोग-सरीर माणसपकाम दुक्खवेयण वसण सतोवद्दवाभिभूए अधुवे अणितिए असासए संझब्भरागसरिसे जलबुब्बुदसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सुविणगदंसणोवमे विज्जुलयाचंचले अणिच्चे सडण पडण विद्धंसणधम्मे पुव्विं वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्म! ताओ! के पुव्विं गमणयाए? के

---

१ वियाहपण्णत्ति (मू पा टि) भा १ पृ ४६०

२ भगवती अ वृत्ति पत्र ४६८

३ भगवती अ वृत्ति पत्र ४६८

पच्छा गमणयाए ? त इच्छामि णं अम्म ! ताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए ।

[३६] तब क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! अभी जो आपने कहा कि—हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इष्ट, कान्त आदि हो, यावत् हमारे कालगत होने पर प्रव्रजित होना, इत्यादि, (उस विषय में मुझे यह कहना है कि) माताजी ! पिताजी ! यों तो यह मनुष्य-जीवन जन्म, जरा, मृत्यु, रोग तथा शारीरिक और मानसिक अनेक दुःखों की वेदना से और सैकड़ों व्यसनों (कष्टों) एवं उपद्रवों से ग्रस्त है। अध्रुव, (चचल) है, अनियत है, अशाश्वत है, सन्ध्याकालीन बादलों के रंग सदृश क्षणिक है, जल-बुदबुद के समान है, कुश की नोक पर रहे हुए जलबिन्दु के समान है, स्वप्नदर्शन के तुल्य है, विद्युत् लता की चमक के समान चचल और अनित्य है। सड़ने, पड़ने, गलने और विध्वस होने के स्वभाव वाला है। पहले या पीछे इसे अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा। अतः हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि कि हममें से कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा ? इसलिए हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि आपकी अनुज्ञा मिल जाए तो मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार कर लूं।

विवेचन—जमालि के वैराग्यसूचक उद्गार—प्रस्तुत में जमालि ने माता-पिता के समक्ष विविध उपमाओं द्वारा जीवन की क्षणभगुरता एवं अनित्यता का सजीव चित्र खींचा है।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—अणेगजाई-जरा मरण-रोग सारीर-माणस पकाम दुक्खवेयण वसण सतोवद्दवाभिभूए—अनेक जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शरीर एवं मन सम्बन्धी अत्यन्त दुःखों की वेदना और सैकड़ों व्यसनों (कष्टों) एवं उपद्रवों से अभिभूत (ग्रस्त) है। सझब्भरागसरिसे—सन्ध्याकालीन मेघों के रंग जैसा है। जलबुब्बुदसमाणे—जल के बुलबुलों के समान। सुविणगदसणोवमे—स्वप्न-दर्शन के तुल्य। विज्जुलयाचचले—विद्युत-लता की चमक के समान चचल है। सडण-पडण विद्धसणधम्मे—सड़ने, पड़ने और विध्वस होने के धर्म-स्वभाव वाला है। अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ—अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा।[2]

३७ तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा पियरो एव वयासी—इम च ते जाया ! सरीरगं पविसिट्ठरूवं लक्खण वजण-गुणोववेयं उत्तमबल वीरिय-सत्तजुत्तं विण्णाणवियक्खणं ससोहग्गगुणसमुस्सियं अभिजायमहक्खमं विविहवाहिरोगरहियं निरुवहयउदत्तलट्ठपचिंदियपडुं, पढमजोव्वणत्थं अणेगउत्तमगुणेहिं जुत्तं, तं अणुहोहि ताव जाव जाया ! नियगसरीररूवसोहग्गजोव्वणगुणे, तओ पच्छा अणुभूयनियगसरीररूवसोभग्गजोव्वणगुणे अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवये वड्ढियकुलवसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण), भा १ पृ ४६१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४६८

[३७] यह बात सुन कर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! तुम्हारा यह शरीर विशिष्ट रूप, लक्षणों, व्यंजनों (मस, तिल आदि चिह्नों) एवं गुणों से युक्त है, उत्तम बल, वीर्य और सत्त्व से सम्पन्न है, विज्ञान में विचक्षण है, सौभाग्य गुण से उन्नत है, कुलीन (अभिजात) है, महान् समर्थ (क्षमतायुक्त) है, विविध व्याधियों और रोगों से रहित है, निरुपहत, उदात्त, मनोहर और पांचों इन्द्रियों की पटुता से युक्त है तथा प्रथम (उत्कृष्ट) यौवन अवस्था में है, इत्यादि अनेक उत्तम गुणों से युक्त है। इसलिए, हे पुत्र ! जब तक तेरे शरीर में रूप, सौभाग्य और यौवन आदि उत्तम गुण हैं, तब तक तू इनका अनुभव (उपभोग) कर। इन सब का अनुभव करने के पश्चात् हमारे कालधर्म प्राप्त होने पर जब तेरी उम्र परिपक्व हो जाए और (पुत्र-पौत्रादि से) कुलवंश की वृद्धि का कार्य हो जाए, तब (गृहस्थ-जीवन से) निरपेक्ष हो कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित हो कर अगारवास छोड़ कर अनगारधर्म में प्रव्रजित होना।

विवेचन—माता पिता के द्वारा जमालि को गृहस्थाश्रम में रखने का पुनः उपाय—प्रस्तुत सूत्र में जमालि को यह समझाया गया है कि इतने उत्कृष्ट गुणों से युक्त शरीर और यौवन आदि का उपयोग करके बुढ़ापे में दीक्षित होना।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—पविसिट्ठरूवं—प्र-अति विशिष्ट रूप। अभिजाय-महक्खम—अभिजात—(कुलीन) है और महती क्षमताओं से युक्त है। निरुवहय-उदत्त-लट्ठ-पंचिंदियपडु—निरुपहत, उदात्त, सुंदर (लष्ट) एवं पंचेन्द्रिय-पटु है। पढमजोव्वणत्थ—उत्कृष्ट यौवन में स्थित है। अणुहोहि=अनुभव कर (उपभोग कर)। नियगसरीररूव-सोभग्ग जोव्वणगुणे=अपने शरीर के रूप, सौभाग्य, यौवन आदि गुणों का।[2]

३८. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा पियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्म ! ताओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वदह 'इमं च णं ते जाया ! सरीरग० तं चेव जाव पव्वइहिसि' एवं खलु अम्म ! ताओ ! माणुस्सगं सरीरं दुक्खाययणं विविहवाहिसयसन्निकेतं अट्ठियकट्ठुट्ठियं छिरा-ण्हारु-जालओणद्ध-संपिणद्धं मट्टियभंडं व दुब्बलं असुइसंकिलिट्ठं अणिट्ठवियसव्वकालसंठप्पयं जराकुणिम-जज्जरघरं व सडण पडण विद्धंसणधम्मं पुव्विं वा पच्छा वा अवस्स-विप्पजहियव्वं भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्म ! ताओ ! के पुव्विं० ? तं चेव जाव पव्वइत्तए।

[३८] तब क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! आपने मुझे जो यह कहा कि पुत्र ! तेरा यह शरीर उत्तम रूप आदि गुणों से युक्त है, इत्यादि, यावत् हमारे कालगत होने पर तू प्रव्रजित होना। (किन्तु) हे माता-पिता ! यह मानव शरीर दुःखों का घर (आयतन) है, अनेक प्रकार की सैकड़ों व्याधियों का निकेतन है, अस्थि-(हड्डी) रूप काष्ठ पर खड़ा हुआ है, नाड़ियों और स्नायुओं के जाल से वेष्टित है मिट्टी के बर्तन के समान दुर्बल (नाजुक) है। अशुचि (गंदगी) से संक्लिष्ट (बुरी तरह दूषित) है, इसको टिकाये (संस्थापित) रखने के लिए सदैव इसकी सम्भाल (व्यवस्था) रखनी पड़ती है, यह सड़े हुए शव के समान और जीर्ण घर के

1. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मू. पा. टि.) भा. १, पृ. ४६१
2. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४६९

समान है, सडना, पडना और नष्ट होना, इसका स्वभाव है। इस शरीर को पहले या पीछे अवश्य छोडना पडेगा, तब कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कौन ? इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्—इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं प्रव्रज्या ग्रहण कर लूँ।

विवेचन—जमालि द्वारा शरीर की अस्थिरता, दुःख एवं रोगादि की प्रचुरता का निरूपण—प्रस्तुत ३८वें सूत्र में जमालि द्वारा शरीर की अनित्यता, दुःख, व्याधि, रोग इत्यादि से शरीर ग्रस्तता आदि का वर्णन करके पुनः दीक्षा की आज्ञा-प्रदान करने के लिए माता-पिता से निवेदन है।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—दुक्खाययण—दुःखायतन-दुःखों का स्थान। विविहवाहि सय संनिकेय—सैकडों विविध व्याधियों का निकेतन=घर। अट्ठिय-कट्ठुट्ठियं—अस्थिरूपी काष्ठ पर उत्थित=खडा किया हुआ है। छिरा ण्हारु-जाल ओणद्ध,संपिणद्ध—शिराओं-नाडियों के जाल से वेष्टित और अच्छी तरह ढँका हुआ। मट्टियभंड व दुब्बल—मिट्टी के बर्तन की तरह कमजोर (टूटने वाला) है। असुइसंकिलिट्ठ—अशुचि (गंदगी) से संक्लिष्ट (दूषित या व्याप्त) है। अणिट्ठविय-सव्वकाल संठप्पय—अनस्थापित (टिकाऊ न) होने से सदा टिकाए रखना पडता है। जराकुणिम-जज्जरघर—जीर्ण शव और जीर्ण घर के समान।[2]

३९. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा-पियरो एवं वयासी—इमाओ य ते जाया! विपुलकुलबालियाओ[3] कलाकुसलसव्वकाललालियसुहोचियाओ मद्दवगुणजुत्तनिउणविणओवयारपंडियवियक्खणाओ मंजुलमियमहुरभणियविहसियविप्पेक्खियगतिविलासचिट्ठियविसारदाओ अविकलकुलसीलसालिणीओ विसुद्धकुलवंससंताणतंतुवद्धणपगब्भवयभाविणीओ मणाणुकूलहियइच्छियाओ अट्ठ तुज्झ गुणवल्लभाओ उत्तमाओ निच्चं भावाणुरत्तसव्वंगसुंदरीओ भारियाओ, तं भुंजाहि ताव जाया! एताहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी विसयविगयवोच्छिन्नकोउहल्ले अम्हेहिं कालगएहिं जाव पव्वइहिसि।

[३९] तब क्षत्रियकुमार जमालि के माता पिता ने उससे इस प्रकार कहा—पुत्र! ये तेरी गुणवल्लभा, उत्तम, तुझमें नित्य भावानुरक्त, सर्वांगसुन्दरी आठ पत्नियाँ हैं, जो विशाल कुल में उत्पन्न बालिकाएँ (नवयौवनाएँ) हैं, कलाकुशल हैं, सदैव लालित (लाड प्यार में रही हुई) और सुखभोग के योग्य हैं। ये मार्दवगुण से युक्त, निपुण, विनय-व्यवहार (उपचार) में कुशल एवं विचक्षण हैं। ये मंजुल, परिमित और मधुर भाषिणी हैं। ये हास्य, विप्रेक्षित (कटाक्षपात) गति, विलास और चेष्टाओं में विशारद हैं। निर्दोष कुल और शील से सुशोभित हैं, विशुद्ध कुलरूप वंशतन्तु की वृद्धि करने में समर्थ एवं पूर्णयौवन वाली हैं। ये मनोनुकूल एवं हृदय को इष्ट हैं। अतः हे पुत्र! तू इनके साथ मनुष्यसम्बन्धी विपुल कामभोगों का उपभोग कर और बाद में जब तू भुक्तभोगी हो जाए

1. वियाहपण्णत्ति सुत्त (मू. पा. टिप्पण) भा. १, पृ. ४६१
2. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४६९
3. अधिक पाठ—"सरित्तयाओ सरिव्वयाओ सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोववेयाओ सरिसएहिंतो कुलेहिंतो आणिएल्लियाओ।"

और विषय-विकारों में तेरी उत्सुकता समाप्त हो जाए, तब हमारे कालधर्म को प्राप्त हो जाने पर यावत् तू प्रव्रजित हो जाना।

विवेचन—माता-पिता द्वारा भुक्तभोगी होने के बाद दीक्षा लेने का अनुरोध—प्रस्तुत सूत्र में माता-पिता द्वारा जमालि को समझाया गया है किन्तु अपनी उन आठ सर्वगुणसम्पन्ना सर्वांगसुन्दरी पत्नियों के साथ मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का उपभोग करके भुक्तभोगी होने के पश्चात् दीक्षित होना।'[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—विपुलकुलबालियाओ—विशाल कुल की बालाएँ। कलाकुसल-सव्वकाललालिय-सुहोचियाओ—कलाओं में दक्ष, सदैव लाड प्यार में पली एवं सुखशील। मद्दवगुणजुत्त निउण विणओवयारपंडिय-वियक्खणाओ—मृदुता के गुणों से युक्त, निपुण एवं विनय-व्यवहार में पण्डिता तथा विचक्षणा हैं। मंजुल-मिय-महुर भणिय विहसिय विप्पेक्खिय गति विलास चिट्ठिय विसारदाओ—मंजुल, परिमित एवं मधुरभाषिणी हैं, हास्य, प्रेक्षण, गति (चाल), विलास एवं चेष्टाओं में विशारद हैं। अविकलकुलसीलसालिणीओ—निर्दोष कुल और शील से सुशोभित हैं। विसुद्धकुलवंससंताणतंतुवद्धण पगब्भ-वय-भाविणीओ—विशुद्ध कुल की वंश-परम्परा रूपी तन्तु को बढ़ाने वाली एवं प्रगल्भ—पूर्ण यौवन वय वाली हैं। मणाणुकूल-हियइच्छियाओ=मनोनुकूल हैं और हृदय को अभीष्ट हैं। भावाणुरत्तसव्वंगसुंदरीओ—ये तेरी भावनाओं में अनुरक्त हैं और सर्वांगसुन्दरी हैं। विसयविगयवोच्छिन्नकोउहल्ले—विषय विकारों (विकृतों) सम्बन्धी उत्सुकता क्षीण हो जाने पर।[2]

४० तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्म ! ताओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह 'इमाओ ते जाया ! विपुलकुल० जाव पव्वइहिसि' एवं खलु अम्म ! ताओ ! माणुस्सगा कामभोगा[3] उच्चार पासवण खेल सिंघाणग वंत-पित्त-पूय-सुक्क-सोणियसमुब्भवा अमणुण्णदुरूव मुत्त-पूइयपुरीसपुण्णा मयगंधुस्सासअसुभनिस्सासा उव्वेयणगा बीभच्छा अप्पकालिया लहुसगा कलमलाहिवासदुक्खबहुजणसाहारणा परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा अबुहजणसेविया सदा साहुगरहणिज्जा अणंतसंसारवद्धणा कडुयफलविवागा चुडलि व्व अमुच्चमाण दुक्खाणुबंधिणो सिद्धि-गमणविग्घा, से केस णं जाणइ अम्म ! ताओ ! के पुव्वि गमणयाए ? के पच्छा गमणयाए ? तं इच्छामि णं अम्म ! ताओ ! जाव पव्वइत्तए।

[४०] माता-पिता के पूर्वोक्त कथन के उत्तर में जमालि क्षत्रियकुमार ने अपने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! तथापि आपने जो यह कहा कि विशाल कुल में उत्पन्न तेरी ये आठ पत्नियाँ हैं, यावत् भुक्तभोग और वृद्ध होने पर तथा हमारे कालधर्म को प्राप्त होने पर दीक्षा लेना, किन्तु माताजी और पिताजी ! यह निश्चित है कि ये मनुष्य-सम्बन्धी कामभोग [अशुचि (अपवित्र) और अशाश्वत हैं] मल (उच्चार), मूत्र, श्लेष्म (कफ), सिंघाण (नाक का मल—लींट), वमन, पित्त, मवाद (पूति), शुक्र और शोणित (रक्त या रज) से उत्पन्न होते हैं, ये अमनोज्ञ और दुरूप (असुन्दर)

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा १, पृ ४६२

२ भगवती अ वत्ति पत्र ४७०

३ अधिक पाठ—"असुई वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा।"

मूत्र तथा दुर्गन्धयुक्त विष्ठा से परिपूर्ण है, मृत कलेवर के समान गन्ध वाले उच्छ्वास एवं अशुभ निःश्वास से युक्त होने से उद्वेग (ग्लानि) पैदा करने वाले हैं। ये बीभत्स है, अल्पकालस्थायी है, तुच्छस्वभाव के है, कलमल (शरीर मे रहा हुआ एक प्रकार का अशुभ द्रव्य) के स्थानरूप होने से दुःखरूप हैं और बहुजनसमुदाय के लिए भोग्यरूप से साधारण हैं, ये अत्यन्त मानसिक क्लेश से तथा गाढ शारीरिक कष्ट से साध्य हैं। ये अज्ञानी जनो द्वारा ही सेवित हैं, साधु पुरुषो द्वारा सदैव निन्दनीय (गर्हणीय) हैं, अनन्त ससार की वृद्धि करने वाले हैं, परिणाम मे कटु फल वाले हैं, जलते हुए घास के पूले की आग के समान (एक बार लग जाने के बाद) कठिनता से छूटने वाले तथा दुःखानुबन्धी हैं, सिद्धि (मुक्ति) गमन मे विघ्नरूप हैं। अतः हे माता-पिता! यह भी कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जाएगा, कौन पीछे? इसलिए हे माता-पिता! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

विवेचन—काम-भोगों से विरक्ति सम्बन्धी उद्गार—जमालि ने प्रस्तुत सूत्र मे काम भोगो की बीभत्सता, परिणाम मे दुःखजनकता, ससारपरिवर्धकता बताई है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—पूइयपुरीसपुण्णा—मवाद अथवा दुर्गन्धित विष्ठा से भरपूर हैं। मयगंधुस्सास-असुभनिस्सासा उव्वेयणगा—मृतक सी गन्ध वाले उच्छ्वास और अशुभ निःश्वास से उद्वेगजनक हैं। लहुसगा—लघु—हलकी कोटि के हैं। कलमलाहिवासदुक्खबहुजणसाहारणा—शरीरस्थ अशुभ द्रव्य के रहने से दुःखद हैं और सर्वजनसाधारण हैं। परिकिलेस-किच्छदुक्खसज्झा—परिक्लेश-मानसिक-क्लेश तथा गाढ शारीरिक दुःख से साध्य है। चुडलि व्व अमुच्चमाण—घास के प्रज्वलित पूले के समान बहुत कष्ट से छूटने वाले हैं। दुक्खाणुबंधिणो—परम्परा से दुःखदायक हैं।[2] 'कामभोग' शब्द का आशय—यहाँ 'काम-भोग' शब्द से उनके आधारभूत स्त्रीपुरुषों के शरीर का ग्रहण करना अभिप्रेत है।[3]

४१ तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा पियरो एव वयासी—इमे य ते जाया! अज्जय पज्जय पिउपज्जयागए सुबहुहिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य विउलधणकणग० जाव[4] सतसारसाय एज्जे अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकाम दातु, पकाम भोत्तु, पकाम परिभाएउ, त अणुहोहि ताव जाया! विउले माणुस्सए इड्डिसक्कारसमुदए, तओ पच्छा अणुहूयकल्लाणे वड्डियकुलत ततु जाव पव्वइहिसि।

[४१] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि से उसके माता पिता ने इस प्रकार कहा—"हे पुत्र! तेरे पितामह, प्रपितामह और पिता के प्रपितामह से प्राप्त यह बहुत सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य उत्तम वस्त्र (दूष्य) विपुल धन, कनक यावत् सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह द्रव्य इतना है कि सात पीढी (कुलवंश) तक प्रचुर (मुक्त हस्त से) दान दिया जाय, पुष्कल भोगा जाय और बहुत सा बाटा जाय, तो भी पर्याप्त है (समाप्त नहीं हो सकता)। अतः हे पुत्र! मनुष्य-सम्बन्धी इस विपुल ऋद्धि और

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा १, पृ ४६२

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ६७०

३ वही पत्र ६७०, 'इह कामभोगग्रहणेन तदाधारभूतानि स्त्रीपुरुषशरीराण्यभिप्रेतानि।'

४ 'जाव' पद सूचित पाठ—"रयण मणि-मोत्तिय सख सिल प्पवाल रत्तरयणमाइए।"

सत्कार (सत्काय) समुदाय का अनुभव कर। फिर इस कल्याण (सुखरूप पुण्यफल) का अनुभव करके और कुलवंशतन्तु की वृद्धि करने के पश्चात् यावत् तू प्रव्रजित हो जाना।

४२ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी तहा—वि ण त अम्म! ताओ! ज ण तुब्भे मम एव वदह—'इमे य ते जाया! अज्जग पज्जग० जाव पव्वइहिसि' एव खलु अम्म! ताओ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावएज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए मच्चुसाहिए दाइयसाहिए अग्गिसामन्ने जाव दाइयसामन्ने अधुवे अणितिए असासए पुव्वि वा पच्छा वा अवस्स विप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस ण जाणइ० त चेव जाव पव्वइत्तए।

[४२] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आपने जो यह कहा कि तेरे पितामह, प्रपितामह आदि से प्राप्त द्रव्य के दान, भोग आदि के पश्चात यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना आदि, किन्तु हे माता-पिता! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् सारभूत द्रव्य अग्नि साधारण, चोर-साधारण, राज-साधारण, मृत्यु-साधारण, एव दायाद साधारण (अधीन) है, तथा अग्नि सामान्य यावत् दायाद-सामान्य (अधीन) है। यह (धन) अध्रुव है, अनित्य है और अशाश्वत है। इसे पहले या पीछे एक दिन अवश्य छोडना पडेगा। अत कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा और कौन पीछे जाएगा? इत्यादि पूर्ववत् कथन जानना चाहिए, यावत् आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाए तो मेरी दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा है।

विवेचन—माता पिता द्वारा द्रव्य के दान-भोगादि का प्रलोभन और जमालि द्वारा धन की पराधीनता और अनित्यता का कथन—प्रस्तुत ४१-४२वं सूत्र मे माता पिता द्वारा प्रचुर धन के उपयोग का प्रलोभन दिया गया है, जबकि जमालि ने धन के प्रति वैराग्यभाव प्रदर्शित किया है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अज्जय=आर्य—पितामह, पज्जय—प्रार्य—प्रपितामह, पिउपज्जय—पिता के प्रपितामह। दूसे दूष्य—बहुमूल्य वस्त्र। सतसारसावएज्जे—स्वायत्त विद्यमान सारभूत स्वापतेय—धन। आसत्तमाओ कुलवसाओ—सात कुलवशो (पीढी) तक। अलाहि—पर्याप्त। पकाम—प्रचुर। परिभाएउ—विभाजित करने के लिए। अग्गिसाहिए—अग्नि द्वारा साधारण या साध्य—नष्ट हो जाने वाला। दाइय=बन्धु आदि भागीदार। सामन्ने—सामान्य—साधारण।[2]

४३ तए ण त जमालि खत्तियकुमार अम्म-ताओ जाहे नो सचाएति विसयाणुलोमाहि बहूहि आघवणाहि य पण्णवणाहि य सन्नवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सन्नवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि संजमभयुव्वेयणकरीहि पण्णवणाहि पण्णवेमाणा एव वयासी—एव खलु जाया! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले जहा आवस्सए[3] जाव सव्वदुक्खाणमत करेंति, अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गगा वा महानदी पडिसोयगमणयाए, महासमुद्दे वा भुजाहि दुत्तरे, तिक्ख कमियव्व, गरुय

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १, पृ ४६३

२ भगवती अ वृत्ति पत्र ४७०

३ आवश्यकसूत्रगत पाठ—"सत्तगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे अवितह अविसधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति।"

लवेयव्व, असिधारग वत चरियव्व, नो खलु कप्पइ जाया ! समणाण निग्गथाण आहाकम्मिए इ वा, उद्देसिए इ वा, मिस्सजाए इ वा, अज्झोयरए इ वा, पूइए इ वा, कीए इ वा, पामिच्चे इ वा, अच्छेज्ज इ वा, अणिसट्ठे इ वा, अभिहडे इ वा, कतारभत्ते इ वा, दुब्भिक्खभत्ते इ वा, गिलाणभत्ते इ वा, वद्दलियाभत्ते इ वा, पाहुणगभत्ते इ वा, सेज्जायरपिंडे इ वा, रायपिंडे इ वा, मूलभोयणे इ वा, कद भोयणे इ वा, फलभोयणे इ वा, बीयभोयणे इ वा, हरियभोयणे इ वा, भुत्तए वा पायए वा। तुम सि च ण जाया ! सुहसमुचिते णो चेव ण दुहसमुचिते, नाल सीय, नाल उण्ह, नाल खुहा, नाल पिवासा, नाल चोरा, नाल वाला, नाल दसा, नाल मसगा, नाल वाइय पित्तिय-सेंभिय सन्निवाइए विविहे रोगायके परीसहोवसग्गे उदिण्णे अहियासेत्तए। त नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो तुज्झ खणमवि विप्पयोग, त अच्छाहि ताव जाया ! जाव ताव अम्हे जीवामो, तओ पच्छा अम्हेहिं जाव पव्वइहिसि।

[४३] जब क्षत्रियकुमार जमालि को उसके माता पिता विषय मे अनुकूल बहुत सी उक्तियो, प्रज्ञप्तियो, सज्ञप्तियों और विज्ञप्तियो द्वारा कहने, बतलाने और समझाने-बुझाने मे समर्थ नही हुए, तब विषय के प्रतिकूल तथा सयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली उक्तियो से समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य, अनुत्तर, (अद्वितीय, परिपूर्ण न्याययुक्त, सशुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धिमार्ग मुक्तिमार्ग, निर्याणमार्ग और निर्वाणमार्गरूप है। यह अवितथ (असत्यरहित, असदिग्ध) आदि आवश्यक के अनुसार यावत् (सवदु खो का अन्त करने वाला है। इसमे तत्पर जीव सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं एव समस्त दु खो का अन्त करते हैं। परन्तु यह (निर्ग्रन्थधर्म) सर्प की तरह एकान्त (चारित्र पालन के प्रति निश्चय) दृष्टि वाला है, छुरे या खड्ग आदि तीक्ष्ण शस्त्र की तरह एकान्त (तीक्ष्ण) धार वाला है। यह लोहे के चने चबाने के समान दुष्कर है, बालु (रेत) के कौर (ग्रास) की तरह स्वादरहित (नीरस) है। गगा आदि महानदी के प्रतिस्रोत (प्रवाह के सम्मुख) गमन के समान अथवा भुजाओ से महासमुद्र तैरने के समान पालन करने मे अतीव कठिन है। (निर्ग्रन्थधर्म पालन करना) तीक्ष्ण (तलवार की तीखी) धार पर चलना है, महाशिला को उठाने के समान गुरुतर भार उठाना है। तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान व्रत का आचरण करना (दुष्कर) है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणो के लिए ये बाते कल्पनीय नही हैं। यथा—(१) आधाकर्मिक, (२) औद्देशिक, (३) मिश्रजात, (४) अध्यवपूरक, (५) पूतिक (पूतिकर्म), (६) क्रीत, (७) प्रामित्य, (८) अछेद्य, (९) अनिसृष्ट, (१०) अभ्याहृत, (११) कान्तारभक्त (१२) दुर्भिक्षभक्त, (१३) ग्लानभक्त, (१४) वर्दलिकाभक्त, (१५) प्राघूर्णकभक्त, (१६) शय्यातरपिण्ड और (१७) राजपिण्ड, (इन दोषो से युक्त आहार साधु को लेना कल्पनीय नही है।) इसी प्रकार मूल, कन्द, फल, बीज और हरित—हरी वनस्पति का भोजन करना या पीना भी उसके लिए अकल्पनीय है। हे पुत्र ! तू सुख मे पला, सुख भोगने योग्य है, दु ख सहन करने योग्य नही है। तू (अभी तक) शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा को तथा चोर, व्याल (सर्प आदि हिंस्र प्राणियों), डास, मच्छरो के उपद्रव को एव वात पित्त, कफ एव सन्निपात सम्बन्धी अनेक रोगो के आतक को और उदय मे आए हुए परीषहों एव उपसर्गो को सहन करने मे समर्थ नहीं है। हे पुत्र ! हम तो क्षणभर भी तेरा वियोग सहन करना नहीं चाहते। अत पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं तब तक तू गृहस्थवास में रह। उसके बाद हमारे

कालगत हो जाने पर, यावत् प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

विवेचन—माता पिता द्वारा निर्ग्रन्थधर्माचरण की दुष्करता का प्रतिपादन क्षत्रियकुमार जमालि को जब उसके माता-पिता विविध युक्तियों आदि द्वारा समझा नहीं सके, तब निरुपाय होकर वे निर्ग्रन्थ प्रवचन (धर्म) की भयंकरता, दुष्करता, दुश्चरणीयता आदि का प्रतिपादन करते हैं। प्रस्तुत सूत्र में यही वर्णन हैं।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—**नो संचाएंति** समर्थ नहीं हुए। **विसयाणुलोमाहिं** शब्दादि विषयों के अनुकूल। **आघवणाहिं**—सामान्य उक्तियों से, **पण्णवणाहिं**—प्रज्ञप्तियों—विशेष उक्तियों से, **सन्नवणाहिं**—संज्ञप्तियों—विशेष रूप में समझाने बुझाने से, **विण्णवणाहिं**- विज्ञप्तियों से—प्रेमपूर्वक अनुरोध करने से। **संजमभयुव्वेवणकरीहिं**—संयम के प्रति भय और उद्वेग पैदा करने वाली। **अहीव एगंतदिट्ठीए**—जैसे सर्प की एक ही (आमिषग्रहण की) ओर दृष्टि रहती है, वैसे ही निर्ग्रन्थप्रवचन में एकमात्र चारित्रपालन के प्रति एकान्तदृष्टि होती है। **तिक्खं कमियव्वं**- खड्गादि तीक्ष्णधारा पर चलना। **गरुयं लंबेयव्वं**—महाशिलावत् गुरुत्तर (महाव्रत) भार उठाना। **असिधारग वतं चरियव्वं** तलवार की धार पर चलने के समान व्रताचरण करना होता है।[2]

आधाकर्मिक आदि का भावार्थ—**आधाकर्मिक**—किसी खास साधु के निमित्त सचित्त वस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना। **औद्देशिक**—सामान्यतया याचकों और साधुओं के उद्देश्य से आहारादि तैयार करना। **मिश्रजात**—अपने और साधुओं के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार। **अध्यवपूरक**—साधुओं का आगमन सुनकर अपने बनते हुए भोजन में और मिला देना। **पूतिकर्म**—शुद्ध आहार में आधाकर्मादि का अंश मिल जाना। **क्रीत**—साधु के लिए खरीदा हुआ आहार। **प्रामित्य**—साधु के लिए उधार लिया हुआ आहारादि। **आछेद्य**—किसी से जबरन छीनकर साधु को आहारादि देना। **अनिसृष्ट**—किसी वस्तु के एक से अधिक स्वामी होने पर सबकी इच्छा के बिना देना। **अभ्याहृत**—साधु के सामने लाकर आहारादि देना। **कान्तारभक्त**—वन में रहे हुए भिखारी आदि के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **दुर्भिक्षभक्त** दुष्काल पीडित लोगों को देने के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **ग्लानभक्त**—रोगियों के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **वार्दलिकाभक्त** दुर्दिन या वर्षा के समय भिखारियों के लिए तैयार किया हुआ आहारादि। **प्राघूर्णकभक्त**—पाहुनों के लिए बनाया हुआ आहारादि। **शय्यातरपिण्ड** साधुओं को मकान देने वाले के यहाँ का आहार लेना। **राजपिण्ड**—राजपिण्ड—राजा के लिए बने हुए आहारादि में से देना। **'सुहसमुचिते' आदि पदों के अर्थ**—सुहसमुचिते—सुख में संवर्द्धित—पला हुआ अथवा सुख के योग्य (समुचित)। **वाला**- व्याल (सर्प) आदि हिंस्र जन्तुओं को। **संभिय**- श्लेष्म सम्बन्धी। **सन्निवाइए** सन्निपातजन्य। **अहियासेत्तए**—सहन करने में। **उदिण्णे** उदय में आने पर।[3]

४४ तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा पियरो एवं वयासी तहा वि णं तं अम्म! ताओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वदह—एवं खलु जाया! निग्गंथे पावयणे अणुत्तरे केवले त चेव

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ४६३
२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७१
३ भगवती अ वृत्ति पत्र ४७१

जाव पव्वइहिसि। एवं खलु अम्म! ताओ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगपरम्मुहाणं विसयतिसियाणं दुरणुचरे, पागयजणस्स, धीरस्स निच्छियस्स ववसियस्स नो खलु एत्थ किंचि वि दुक्करं करणयाए, तं इच्छामि णं अम्म! ताओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए।

[४४] तब क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता को उत्तर देते हुए इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आप मुझे यह जो कहते हैं कि यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, अनुत्तर है, अद्वितीय है, यावत् तू समय नहीं है इत्यादि यावत् बाद में प्रव्रजित होना, किन्तु हे माता-पिता! यह निश्चित है कि क्लीबों (नामर्दों), कायरों, कापुरुषों तथा इस लोक में आसक्त और परलोक से पराङ्मुख एवं विषयभोगों की तृष्णा वाले पुरुषों के लिए तथा प्राकृतजन (साधारण व्यक्ति) के लिए इस निर्ग्रन्थ प्रवचन (धर्म) का आचरण करना दुष्कर है, परन्तु धीर (साहसिक), कृतनिश्चय एवं उपाय में प्रवृत्त पुरुष के लिए इसका आचरण करना कुछ भी दुष्कर नहीं है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मुझे (प्रव्रज्याग्रहण की) आज्ञा दे दें तो मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ले लूं।

विवेचन—जमालि के द्वारा उत्साहपूर्ण उत्तर—जमालि क्षत्रियकुमार ने माता पिता के द्वारा निर्ग्रन्थधर्म-पालन की दुष्करता का उत्तर देते हुए कहा कि संयमपालन कायरों के लिए। कठिन है, वीरों एवं दृढनिश्चय पुरुषों के लिए नहीं। अतः आप मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान करें।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—कीवाणं—क्लीब (मन्द संहनन वाले) लोगों के लिए। कापुरिसाण—डरपोक मनुष्यों के लिए। इहलोगपडिबद्धाणं—इस लोक में आबद्ध—आसक्त। पागयजणस्स—प्राकृतजन—साधारण मनुष्य के लिए। दुरणुचरे—आचरण करना दुष्कर है। धीरस्स—धीर—साहसिक पुरुष के लिए। निच्छियस्स—यह अवश्य करना है, इस प्रकार के दृढ निश्चय वाले। ववसियस्स—व्यवसित—उपाय में प्रवृत्त के लिए। करणयाए—संयम का आचरण करना।[2]

जमालि को प्रव्रज्याग्रहण की अनुमति दी

४५. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा-पियरो जाहे नो संचाएंति विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य बहूहि य आघवणाहि य पण्णवणाहि य सन्नवणाहि य विण्णवणाहि य आघवेत्तए वा जाव विण्णवेत्तए वा ताहे अकामाइं चेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स निक्खमणं अणुमन्नित्था।

[४५] जब क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता विषय के अनुकूल और विषय के प्रतिकूल बहुत-सी उक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों द्वारा उसे समझा-बुझा न सके, तब अनिच्छा से उन्होंने क्षत्रियकुमार जमालि को दीक्षाभिनिष्क्रमण (दीक्षाग्रहण) की अनुमति दे दी।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मू. पा. टिप्पण), भा. १, पृ. ४६४

२ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४६२

(ख) भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १७३१

विवेचन—निरुपाय माता-पिता द्वारा जमालि को दीक्षा की अनुमति—प्रस्तुत सूत्र ४५ में यह निरूपण किया गया है कि जमालि के माता-पिता जब अनुकूल और प्रतिकूल युक्तियों, तर्कों, हेतुओं एवं प्रेमानुरोधों से समझा-बुझा चुके और उस पर कोई प्रभाव न पड़ा, तब निरुपाय होकर उन्होंने दीक्षाग्रहण करने की अनुमति दे दी।[1]

कठिन शब्दों के भावार्थ—अकामाइ—अनिच्छा से, अनमने भाव से। निक्खमणं अणुमन्नित्था—दीक्षा ग्रहण करने के लिए अनुमति दी।[2]

जमालि के प्रव्रज्याग्रहण का विस्तृत वर्णन

४६. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! खत्तियकुंडग्गामं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसियसम्मज्जिओवलित्तं जहा उववाइए[3] जाव पच्चप्पिणंति।

[४६] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के अन्दर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़/बुहार कर जमीन की सफाई करके उसे लिपाओ, इत्यादि औपपातिक सूत्र में अंकित वर्णन के अनुसार यावत् कार्य करके उन कौटुम्बिक पुरुषों ने आज्ञा वापस सौंपी।

४७. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह।

[४७] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने दुबारा उन कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और फिर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही जमालि क्षत्रियकुमार के महार्थ, महामूल्य, महार्ह (महान् पुरुषों के योग्य) और विपुल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो।

४८. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति।

[४८] इस पर कौटुम्बिक पुरुषों ने उनकी आज्ञानुसार काम करके आज्ञा वापस सौंपी।

विवेचन—कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा नगर की सफाई एवं निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी—प्रस्तुत तीन सूत्रों (४६ से ४८ तक) में जमालि के पिता ने दीक्षा की आज्ञा देने के बाद नगर को पूर्ण साफ-सुथरा बनाने का और दीक्षाभिषेक की विधिवत् तैयारी का कौटुम्बिक पुरुषों को आदेश दिया, जिसका पालन उन्होंने किया।[4]

---

1. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. १, पृ. ४६४
2. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४७२
3. उववाईसूत्र के अनुसार पाठ इस प्रकार है—'सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसित्त-सित्तसुइयसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं मंचाइमंचकलियं णाणाविहरागउच्छियज्झय-पडागाइपडागमंडियं, इत्यादि।" औपपातिक सूत्र पत्र ६१ सू. २९
4. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मू. पा. टिप्पण) भा. १, पृ. ४६५

कठिन शब्दों का भावार्थ—सब्भिंतरबाहिरियं—अन्दर बाहर को। आसिय=पानी से सींचो (छिड़काव करो)। सम्मज्जिय—झाड़ू आदि से सफाई करो। उवलित्त—लीपा। महत्थ—महाप्रयोजन वाला। महग्घ=महामूल्यवान्। महरिह=महान् पुरुषों के योग्य या महापूज्य। निक्खमणाभिसेय—निष्क्रमणाभिषेक सामग्री को। उवट्ठवेह—उपस्थित करो या तैयार करो।

४९. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं निसीयावेंति, निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं जहा रायप्पसेणइज्जे[1] जाव[2] अट्ठसएणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव[3] रवेणं महया महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचइ, निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचित्ता करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी—भण जाया! किं देमो? किं पयच्छामो? किणा वा ते अट्ठो?

[४९] इसके पश्चात् जमालि क्षत्रियकुमार के माता-पिता ने उसे उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बिठाया। फिर एक सौ आठ सोने के कलशों से इत्यादि जिस प्रकार राजप्रश्नीयसूत्र में कहा है, तदनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्वऋद्धि (ठाठबाठ) के साथ यावत (बाद्यों के) महाशब्द के साथ निष्क्रमणाभिषेक किया।

निष्क्रमणाभिषेक पूर्ण होने के बाद (जमालिकुमार के माता-पिता ने) हाथ जोड़ कर जय-विजय शब्दों से उसे बधाया। फिर उन्होंने उससे कहा—'पुत्र! बताओ, हम तुम्हें क्या दें? तुम्हारे किस कार्य में क्या, (सहयोग) दें? तुम्हारा क्या प्रयोजन है?'

५०. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा पियरो एवं वयासी—इच्छामि णं अम्म! ताओ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवगं च सद्दाविउं।

[५०] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता पिता! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगवाना चाहता हूँ और नापित को बुलाना चाहता हूँ।

५१. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय सयसहस्सेणं सयसहस्सेणं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेह, सयसहस्सेण च कासवगं सद्दावेह।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४७९

२ राजप्रश्नीयसूत्रानुसार पाठ यह है—"अट्ठसएणं सुवण्णमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण-मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्प मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण रुप्प मणिमयाणं कलसाणं॥'

—रायप्पसेणइज्ज (गुर्जर ग्रन्थ) पृ. २४१-२४२ कण्डिका १३५

३ 'जाव' शब्दसूचित पाठ—"सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दसंनिनाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय जमगसमगप्पवाइएणं संख पणव-पडह भेरि झल्लरि खरमुहि हुडुक्क-मुरय मुइंग-दुंदुहिनिग्घोसनाइय॥" —भगवती अ. वृ.

[५१] तब क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा--"देवानुप्रियो ! शीघ्र ही श्रीघर (भण्डार) से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ (सोनैया) निकाल कर उनमें से एक-एक लाख सोनैया दे कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा (शेष) एक लाख सोनैया देकर नापित को बुलाओ।"

५२. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति।

[५२] क्षत्रियकुमार जमालि के पिता की उपर्युक्त आज्ञा सुन कर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत ही हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर यावत् स्वामी के वचन स्वीकार किए और शीघ्र ही श्रीघर (भण्डार) से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ निकाल कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नापित को बुलाया।

विवेचन—निष्क्रमणाभिषेक तथा दीक्षा के उपकरणादि की माग—प्रस्तुत सू. ४९ से ५२ तक में जमालि के माता-पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा उसका निष्क्रमणाभिषेक कराया और फिर जमालि की इच्छानुसार रजोहरण, पात्र मंगवाए और नापित को बुलाया।[1]

निष्क्रमणाभिषेक—दीक्षा के पूर्व प्रव्रजित होने वाले व्यक्ति का माता पिता आदि द्वारा स्वर्ण आदि के कलशों से अभिषेक (मस्तक पर जलसिंचन करके स्नान) करना निष्क्रमणाभिषेक है।

कठिन शब्दों का विशेषार्थ—सिरिघराओ—श्रीघर—भण्डार से। कासवग=नापित को। भोमिज्जाण=मिट्टी से बने हुए। सव्विड्ढीए—समस्त छत्र आदि राजचिह्नरूप ऋद्धिपूर्वक। पयच्छामो—विशेषरूप से क्या दें?

कुत्रिकापण—कुत्रिक, अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों पृथ्वियों में सम्भवित वस्तु मिलने वाली देवाधिष्ठित दुकान।[2]

५३. तए णं से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठे तुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता करयल० जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्जं।

[५३] फिर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के आदेश से कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा नाई को बुलाए जाने पर वह बहुत ही प्रसन्न और तुष्ट हुआ। उसने स्नानादि किया, यावत् शरीर को अलंकृत किया, फिर जहाँ क्षत्रियकुमार जमालि के पिता थे, वहाँ आया और उन्हें जय-विजय शब्दों से बधाया, फिर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! मुझे करने योग्य कार्य या आदेश दीजिये।"

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १ पृ. ४६५-४६६

२. भगवती अ. वृत्ति पत्र ४७९

कठिन शब्दों का भावार्थ—सब्भितरबाहिरिय—अन्दर बाहर को । आसिय=पानी से सींचो (छिडकाव करो) । सम्मज्जिय—झाड़ू आदि से सफाई करो । उवलित्त—लीपना । महत्थ—महाप्रयोजन वाला । महग्घ=महामूल्यवान् । महरिह=महान् पुरुषों के योग्य या महापूज्य । निक्खमणाभिसेय—निष्क्रमणाभिषेक सामग्री को । उवट्ठवेह—उपस्थित करो या तैयार करो।

४९ तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मा पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं निसीयावेंति, निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं जहा रायप्पसेणइज्जे[2] जाव अट्ठसएणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए जाव[3] रवेणं महया महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचइ, निक्खमणाभिसेगेण अभिसिंचित्ता करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी—भण जाया ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? किणा वा ते अट्ठो ?

[४९] इसके पश्चात् जमालि क्षत्रियकुमार के माता-पिता ने उसे उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बिठाया । फिर एक सौ आठ सोने के कलशों से इत्यादि जिस प्रकार राजप्रश्नीयसूत्र में कहा है, तदनुसार यावत एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्वऋद्धि (ठाठबाठ) के साथ यावत (वाद्यों के) महाशब्द के साथ निष्क्रमणाभिषेक किया ।

निष्क्रमणाभिषेक पूर्ण होने के बाद (जमालिकुमार के माता-पिता ने) हाथ जोड कर जय-विजय शब्दों से उसे बधाया । फिर उन्होंने उससे कहा—'पुत्र ! बताओ, हम तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे किस कार्य में क्या, (सहयोग) दें ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?'

५० तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मा पियरो एवं वयासी--इच्छामि णं अम्म ! ताओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवगं च सद्दाविउं ।

[५०] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता पिता ! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगवाना चाहता हूँ और नापित को बुलाना चाहता हूँ ।

५१ तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी - खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय सयसहस्सेणं सयसहस्सेणं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेह, सयसहस्सेण च कासवगं सद्दावेह ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७६

२ राजप्रश्नीयसूत्रानुसार पाठ यह है—''अट्ठसएणं सुवण्णमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण-रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्णमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्प मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्ण रुप्प मणिमयाणं कलसाणं ॥'

—रायप्पसेणइज्ज (गुर्जर ग्रन्थ) पृ २८१-२८२ कण्डिका १३५

३ जाव शब्दसूचित पाठ—''सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फ गंध मल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दसन्निनाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय जमगसमगप्पवाइएणं संख पणव पडह भेरि झल्लरि खरमुहि हुडुक्क-मुरय मुइंग दुंदुहिनिग्घोसनाइय ।'' —भगवती अ वृ

[५१] तब क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा—"देवानुप्रियो ! शीघ्र ही श्रीघर (भण्डार) से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ (सोनैया) निकाल कर उनमें से एक-एक लाख सोनैया दे कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा (शेष) एक लाख सोनैया देकर नापित को बुलाओ।"

५२. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयल जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति।

[५२] क्षत्रियकुमार जमालि के पिता की उपर्युक्त आज्ञा सुन कर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत ही हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर यावत् स्वामी के वचन स्वीकार किए और शीघ्र ही श्रीघर (भण्डार) से तीन लाख स्वर्णमुद्राएँ निकाल कर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नापित को बुलाया।

विवेचन—निष्क्रमणाभिषेक तथा दीक्षा के उपकरणादि की मांग—प्रस्तुत सू. ४९ से ५२ तक में जमालि के माता-पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा उसका निष्क्रमणाभिषेक कराया और फिर जमालि की इच्छानुसार रजोहरण, पात्र मंगवाए और नापित को बुलाया।[1]

निष्क्रमणाभिषेक—दीक्षा के पूर्व प्रव्रजित होने वाले व्यक्ति का माता पिता आदि द्वारा स्वर्ण आदि के कलशों से अभिषेक (मस्तक पर जलसिंचन करके स्नान) करना निष्क्रमणाभिषेक है।

कठिन शब्दों का विशेषार्थ—सिरिघराओ—श्रीघर—भण्डार से। कासवग=नापित को। भोमिज्जाण=मिट्टी से बने हुए। सव्विड्ढीए—समस्त छत्र आदि राजचिह्नरूप ऋद्धिपूर्वक। पयच्छामो—विशेषरूप से क्या दें?

कुत्रिकापण—कुत्रिक, अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों पृथ्वियों में सम्भवित वस्तु मिलने वाली देवाधिष्ठित दुकान।[2]

५३. तए णं से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठे तुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता करयल० जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्जं।

[५३] फिर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के आदेश से कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा नाई को बुलाए जाने पर वह बहुत ही प्रसन्न और तुष्ट हुआ। उसने स्नानादि किया, यावत् शरीर को अलंकृत किया, फिर जहाँ क्षत्रियकुमार जमालि के पिता थे, वहाँ आया और उन्हें जय-विजय शब्दों से बधाया, फिर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! मुझे करने योग्य कार्य का आदेश दीजिये।"

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १ पृ. ४६५-४६६

२. भगवती. अ. वृत्ति पत्र ४७६

५४ तए ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया त कासवग एव वयासी—तुम ण देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेण जत्तण चउरगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि ।

[५४] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उस नापित से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! क्षत्रियकुमार जमालि के निष्क्रमण के योग्य अग्रकेश (सिर के आगे-आगे के बाल) चार अगुल छोड कर अत्यन्त यत्न पूवक काट दो ।

५५ तए ण से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयल जाव एव सामी ! तहत्ताणाए विणएण वयण पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गधोदएण हत्य पावे पक्खालेइ, सुरभिणा गधोदएण हत्थ पादे पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुह बधइ, मुह बधित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेण जत्तेण चउरगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेइ ।

[५५] क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के द्वारा यह आदेश दिये जाने पर वह नापित अत्यन्त हर्षित एव तुष्ट हुआ और हाथ जोड कर यावत् (इस प्रकार) बोला—'स्वामिन् ! आपकी जैसी आज्ञा है, वैसा ही होगा," इस प्रकार उसने विनयपूवक उनके वचनो को स्वीकार किया । फिर सुगन्धित ग धोदक से हाथ पर धोए, आठ पट वाले शुद्ध वस्त्र से मुह बाधा और अत्यन्त यत्नपूवक क्षत्रिय कुमार जमालि के निष्क्रमणयोग्य अग्रकेश को चार अगुल छोड कर काटा ।

विवेचन—नापित द्वारा जमालि का अग्रकेशकत्तन=प्रस्तुत तीन सूत्रा मे जमालि के पिता द्वारा नाई को बुला कर जमालि के निष्क्रमणयोग्य अग्रकेश काटने का आदेश देने पर वह बहुत प्रसन्न हुआ और विनयपूवक आदेश शिरोधाय करके नहा-धोकर शुद्ध वस्त्र मुह पर बाध कर यत्नपूवक उसने जमालि कुमार के अग्रकेश काटे ।[१]

कठिन शब्दो का विशेषाथ—सदिसतु—आदेश दीजिए, बताइए । परेण जत्तेण=अत्यन्त यत्नपूवक । णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे -दीक्षित होने वाले व्यक्ति के आगे के केश चार अगुल छोड कर काटे जाते थे, ताकि गुरु अपने हाथ से उनका लुञ्चन कर सकें, इसे निष्क्रमणयोग्य केशकतन कहा जाता है । कप्पेहि—काटो । अट्ठपडलाए पोत्तीए—आठ पटल (परत या तह) वाली पोतिका (मुखवस्त्रिका) से ।[२]

५६ तए ण सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएण पक्खालेइ सुरभिणा गधोदएण पक्खालेत्ता अग्गेहि वरेहि गधेहि मल्लेहि अच्चेति, अच्चित्ता सुद्धवत्थेण बधेइ, सुद्धवत्थेण बधित्ता रयणकरडगसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइ सुयवियोगदूसहाइ असूइ विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एव वयासी—एस ण अम्ह जमालिस्स खत्तियकुमारस्स बहूसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सति इति कट्टु ओसीसगमूले ठवेइ ।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टिप्पण) पृ ४६६

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४७६ (ख) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी) पृ ७४७

[५६] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने शुक्लवर्ण के या हंस-चिह्न वाले वस्त्र की चादर (शाटक) में उन अग्रकेशों को ग्रहण किया। फिर उन्हें सुगन्धित गन्धोदक से धोया, फिर प्रधान एवं श्रेष्ठ गन्ध (द्रव्य) एवं माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र में उन्हें बांध कर रत्नकरण्डक (रत्नों के पिटारे) में रखा। इसके बाद जमालिकुमार की माता हार, जलधारा सिन्दुवार के पुष्पों एवं टूटी हुई मोतियों की माला के समान पुत्र के दुःसह (असह्य) वियोग के कारण आंसू बहाती हुई इस प्रकार कहने लगी—"ये (जमालिकुमार के अग्रकेश) हमारे लिए बहुत सी तिथियों, पर्वों, उत्सवों और नागपूजादिरूप यज्ञों तथा (इन्द्र-) महोत्सवादिरूप क्षणों में क्षत्रियकुमार जमालि के अन्तिम दर्शनरूप होंगे"—ऐसा विचार कर उन्हें अपने तकिये के नीचे रख दिया।

विवेचन—माता ने जमालिकुमार के अग्रकेश सुरक्षित रखे—प्रस्तुत सूत्र में जमालिकुमार के उन अग्रकेशों को अर्चित करके रत्नपिटक में सुरक्षित रखने का वर्णन है। साथ ही यह बताया गया है कि उन्हें सुरक्षित रखने का कारण माता की ममता है कि भविष्य में जमालि के ये केश ही उसके दर्शन या स्मृति के प्रतीक होंगे।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—पडिच्छइ—ग्रहण किये। हंसलक्खणेणं पडसाडएणं—हंस के समान श्वेत अथवा हंसचिह्न वाले पट-शाटक—वस्त्र की चादर अथवा पल्ले में। पक्खिवइ—रखे। अग्गेहिं—प्रधान (अग्र)। वरेहिं—श्रेष्ठ। सिंदुवार—सिन्दुवार (निर्गुण्डी) के सफेद फूल। छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइं—टूटी हुई मुक्तावली (मोतियों की माला) के समान। तिहीसु—तिथियों—मदनत्रयोदशी आदि तिथियों में, पव्वणीसु—कार्तिक पूर्णिमा आदि पर्वों में। उस्सवेसु—प्रियजनों के समागमादि समारोहों में। जण्णेसु—नागपूजा आदि यज्ञों में। छणेसु—इन्द्रमहोत्सवादिरूप क्षणों—अवसरों पर। अपच्छिमे दरिसणे—अन्तिम दर्शन। ओसीसगमूले—तकिये के नीचे। ठवेइ—रख देती है।[2]

५७ तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मा-पियरो दुच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, दुच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावित्ता जमालिं खत्तियकुमारं सेयापीतएहिं कलसेहिं ण्हार्णेति, से० २[3] पम्हसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाइए गायाइं लूहेंति, सुरभीए गंधकासाइए गायाइं लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपति गायाइं अणुलिंपित्ता नासानिस्सासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवलं कणगखचियंतकम्मं महरिहं हंसलक्खणं पडसाडगं परिहिंति, परिहित्ता हारं पिणद्धेंति, २ अद्धहारं पिणद्धेंति, अ० पिणद्धित्ता एवं जहा सूरियाभस्स[4] अलंकारो तहेव जाव चित्तं रयणसंकडुक्कडं मउडं पिणद्धंति, किं बहुणा ? गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघातिमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसियं करेंति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. १, पृ. ४६७

२ (क) भगवती अ. वृत्ति पत्र ४७७ (ख) भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी) पृ. १७३७

३ पूरा पाठ—"सेयापीतएहिं कलसेहिं ण्हाणेत्ता।"

४ राजप्रश्नीय में सूर्याभदेव के अलंकार का वर्णन—"एगावलिं पिणद्धंति, एवं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं अंगयाइं केऊराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तयं दसमुद्दयाणंतयं वच्छसुत्तं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुंडलाइं चूडामणिं।" —भगवती अ. वृ. ४७७, पत्र रायप्पसेणइज्ज (गुर्जर) पृ. २५१-२५२ कण्डिका १३७

[५७] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के माता पिता ने दूसरी बार भी उत्तरदिशाभिमुख सिंहासन रखवाया और क्षत्रियकुमार जमालि को श्वेत और पीत (चांदी और सोने के) कलशों से स्नान करवाया। फिर रुएँदार सुकोमल गन्धकाषायित सुगन्धियुक्त वस्त्र (तौलिये या अंगोछे) से उसके अंग (गात्र) पोंछे। उसके बाद सरस गोशीर्षचन्दन का अंग प्रत्यंग पर लेपन किया। तदनन्तर नाक के निःश्वास की वायु से उड़ जाए, ऐसा बारीक, नेत्रों को आह्लादक (या आकर्षक) लगने वाला, सुन्दर वर्ण और कोमल स्पर्श से युक्त, घोड़े के मुख की लार से भी अधिक कोमल, श्वेत और सोने के तारों से जुड़ा हुआ, महामूल्यवान् एवं हंस के चिह्न से युक्त पटशाटक (रेशमी वस्त्र) पहिनाया। फिर हार (अठारह लड़ी वाला हार) एवं अर्द्धहार (नवसरा हार) पहिनाया। जैसे राजप्रश्नीयसूत्र में सूर्याभदेव के अलंकारों का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए, यावत् विचित्र रत्नों से जटित मुकुट पहनाया। अधिक क्या कहें! ग्रन्थिम (गूंथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम—पूरी हुई—भरी हुई और संघातिम (परस्पर सांधी हुई) रूप से तैयार की हुई चारों प्रकार की मालाओं से कल्पवृक्ष के समान उस जमालिकुमार को अलंकृत एवं विभूषित किया।

विवेचन—वस्त्राभूषणों से सुसज्जित जमालिकुमार—प्रस्तुत ५७ वें सूत्र में दीक्षाभिलाषी जमालिकुमार को उसके माता-पिता द्वारा स्नानादि करवा कर बहुमूल्य वस्त्रों और सोने चांदी आदि के आभूषणों से सुसज्जित करने का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दों का विशेषार्थ—उत्तरावक्कमणं—उत्तराभिमुख—उत्तरदिशा की ओर। **रयावेंति**—रचवाया या रखवाया। **सेयापीतएहि**—श्वेत (चांदी) और पीत (सोने) के। **पम्हलसुकुमालाए**—रोएंदार मुलायम वस्त्र (तौलिये) से। **गायाइं लूहेंति**—शरीर पोंछा। **अणुलिंपति**—लेपन किया। **नासा निस्सास-वायवोज्झं**—नासिका के श्वास से उड़ जाए ऐसा बारीक। **चक्खुहरं**—नेत्रों को आनन्द देने वाला, आकर्षक। **हयलालापेलवातिरेगं**—घोड़े के मुँह की लार से भी अधिक नरम। **कणगखचितंतकम्मं**—जिसके किनारों पर सोने के तार जड़े हुए थे। **पिणद्धेंति**—धारण कराया। **रयणसंकडुक्कडं**—रत्नों से जटित। **पूरिम**—पिरोई हुई। **संघातिम**—परस्पर जोड़ी हुई। **मल्लेण**—माला से।[2]

५८ तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासि—*खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसयसंनिविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं जहा रायप्प*सेणइज्जे[3] विमाणवण्णओ जाव मणिरयणघंटियाजालपरिखित्तं पुरिससहस्सवाहणीयं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ. ४६७

२ भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १७४०

३ राजप्रश्नीय में वर्णित विमानवर्णन यह है—"ईहामिय-उसभ-तुरग-नर मगर वालग विहग किन्नर रुरु-सरभ-चमर-कुंजर वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं, खंभुग्गयवइरवेइयापरिगताभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालिणीयं, रूवगसहस्सकलियं, भिसमाणं भिब्भिसमाणं, चक्खुलोयणलेसं, सुहफासं सस्सिरीयरूवं घंटावलिचलियमहुरमणहरसरं, सुहं कंतं दरिसणिज्जं निउणोवियमिसिमिसितमणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं।" —रायप्पसेणइज्जसुत्तं (गुर्जर) पृ. १५५ से १७

[५८] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही अनेक सैकड़ों खंभों से युक्त, लीलापूर्वक खड़ी हुई पुतलियों वाली, इत्यादि, राजप्रश्नीयसूत्र में वर्णित विमान के समान यावत्-मणि-रत्नों की घंटियों के समूह से चारों ओर से घिरी हुई, हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने योग्य शिविका (पालकी) (तयार करके) उपस्थित करो और मेरी इस आज्ञा का पालन करके मुझे सूचित करो।

५९. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

[५९] इस आदेश को सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार की शिविका तयार करके यावत् (उन्हें) निवेदन किया।

६०. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे केसालंकारेणं वत्थालंकारेणं मल्लालंकारेणं आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठेत्ता सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे।

[६०] तत्पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार और आभरणालंकार इन चार प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर तथा प्रतिपूर्ण अलंकारों से सुसज्जित हो कर सिंहासन से उठा। वह दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़ा और श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुंह करके आसीन हुआ।

६१. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, सीयं दुरुहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सन्निसण्णा।

[६१] फिर क्षत्रियकुमार जमालि की माता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलंकृत करके हंस के चिह्न वाला पटशाटक लेकर दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़ी और जमालिकुमार की दाहिनी ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठी।

६२. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा रयहरणं च पडिग्गहं च गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, सीयं दुरुहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सन्निसण्णा।

[६२] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि की धायमाता ने स्नानादि किया, यावत् शरीर को अलंकृत करके रजोहरण और पात्र ले कर दाहिनी ओर से (अथवा शिविका की प्रदक्षिणा करती हुई) शिविका पर चढ़ी और क्षत्रियकुमार जमालि के बाईं ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठी।

६३. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय गय जाव[1] रूवजोव्वणविलासकलिया सुंदरथण०[2] हिम-रयत कुमुद-कुंदेंदुप्पगासं सकोरेंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं धारेमाणी धारेमाणी चिट्ठइ।

१. 'जाव' पद-सूचित पाठ—"संगय-गय-हसिय भणिय चिट्ठिय विलास-संलावुल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसला।"

२. 'सुंदरथण' इत्यनेन — 'सुंदरथण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-लायण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेय त्ति।'

—अ. वृ.

[६३] फिर क्षत्रियकुमार जमालि के पृष्ठभाग मे (पीछे) शृंगार के घर के समान, सुंदर वेष वाली, सुंदर गतिवाली, यावत् रूप और यौवन के विलास से युक्त तथा सुन्दर स्तन, जघन (जांघ), वदन (मुख), कर, चरण, लावण्य, रूप एवं यौवन के गुणो से युक्त एक उत्तम तरुणी हिम (बर्फ), रजत (चांदी), कुमुद, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान, कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त, श्वेत छत्र (आतपत्र) हाथ में लेकर लीला-पूवक धारण करती हुई खडी हुई।

६४ तए ण तस्स जमालिस्स उभयोपासिं दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारु जाव कलियाओ नाणामणि कणग-रयण विमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ संखक-कुंदेंदु दगरय अमयमहियफेणपुंजसन्निकासाओ चामराओ गहाय सलील वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठंति।

[६४] तदनन्तर जमालिकुमार के दोनो (दाहिनी तथा बाई) ओर शृंगार के घर के समान, सुंदर वेष वाली यावत् रूप यौवन के विलास से युक्त दो उत्तम तरुणियां हाथ मे चामर लिए हुए लीलासहित ढुलाती हुई खडी हो गइ। वे चामर अनेक प्रकार की मणियां, कनक, रत्नो तथा विशुद्ध एवं महामूल्यवान् तवनीय (लाल स्वर्ण) से निर्मित उज्ज्वल एवं विचित्र दण्ड वाले तथा चमचमाते हुए (देदीप्यमान) थे और शख, अकरत्न, कुन्द-(मोगरा के) पुष्प, चन्द्र, जलबिन्दु, मथे हुए अमृत के फेन के पुंज के समान श्वेत थे।

६५ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारागार जाव कलिया सेयं रयतामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकितिसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ।

[६५] और फिर क्षत्रियकुमार जमालि के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) मे शृंगार के गृह के समान, उत्तम वेष वाली यावत् रूप, यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ तरुणी पवित्र (शुद्ध) जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हाथी के महामुख के आकार के समान श्वेत रजतनिर्मित कलश (भृंगार) (हाथ मे) लेकर खडी हो गई।

६६ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारागार जाव कलिया चित्तं कणगदंडं तालयंटं गहाय चिट्ठइ।

[६६] उसके बाद क्षत्रियकुमार जमालि के दक्षिणपूर्व (आग्नेय कोण) मे शृंगार गृह के तुल्य यावत् रूप यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ युवती विचित्र स्वर्णमय दण्ड वाले एक ताडपत्र के पंखे को लेकर खडी हो गई।

विवेचन—जमालिकुमार परिजनो आदि सहित शिविकारूढ हुआ—प्रस्तुत सात सूत्रों (६० से ६६ सू. तक) मे जमालिकुमार तथा उसकी माता, धायमाता तथा अन्य तरुणियों के शिविका पर चढ कर यथास्थान स्थित हो जाने का वर्णन है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा. १ पृ. ४६८-४६९

कठिन शब्दों का विशेषार्थ—सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी दो अर्थ—(१) शिविका की प्रदक्षिणा करते हुए (२) दक्षिण की ओर से शिविका पर चढी। पुरत्थाभिमुहे—पूर्व की ओर मुख करके। सण्णिसण्णे—बैठा। भद्दासणवरंसि—उत्तम भद्रासन पर। 'केसालंकारेण' इत्यादि का भावार्थ—कुश, वस्त्र, माला और आभूषणों को यथास्थान साजसज्जा में युक्त किया। पडिग्गह—पात्र। वामे पासे—बाएं पार्श्व में। पिट्ठओ—पृष्ठभाग में—पीठ के पीछे। सिंगारागार—शृंगार का घर, अथवा शृंगारप्रधान आकृति। विलासकलिया—विलास—नेत्रजनितविकार से युक्त। कणग—पीला सोना। तवणिज्ज—लाल सोना। महरिह—महामूल्य। सन्निकासाओ—समान। पगास—समान। आयवत्त—छत्र। सलील—लीला सहित। धारेमाणी—धारण करती हुई। वीयमाणीओ—डुलाती हुई। सगय-गय—सगत—व्यवस्थित गति (चाल) इत्यादि। विमलसलिलपुण्ण—जल से पूर्ण। मत्तगय-महामुहाकितिसमाण—उन्मत्त गज के मुख की स्वच्छ आकृति के समान। भिंगार—कलश या झारी। उत्तरपुरत्थिमेण—उत्तर-पूर्व दिशा में। दाहिणपुरत्थिमेण—दक्षिणपूर्व दिशा (आग्नेयकोण) में। चित्त कणगदंड—विचित्र स्वर्णमय दण्ड (हत्थे) वाले। तालयंट—ताडपत्र से पखे को।[१]

६७ तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, कोडुंबियपुरिसे सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरित्तयं सरित्तयं सरिव्वयं सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोववेयं एगाभरणवसणगहियनिज्जोयं कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सद्दावेह।

[६७] इसके पश्चात् क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही एक सरीखे, समान त्वचा वाले, समान वय वाले समान लावण्य, रूप और यौवन-गुणों से युक्त, एक सरीखे आभूषण, वस्त्र और परिकर धारण किये हुए एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक तरुणों को बुलाओ।'

६८ तए णं कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सरित्तयं सरित्तयं जाव सद्दावेंति।

[६८] तब वे कौटुम्बिक पुरुष स्वामी के आदेश को यावत् स्वीकार करके शीघ्र ही एक सरीखे, समान त्वचा वाले यावत् एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्बिक तरुणों को बुला लाए।

६९ तए णं ते कोडुंबियपुरिस (? तरुणा) जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता एगाभरणवसणगहियनिज्जोया जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं अम्हेहिं करणिज्जं।

---

१ (क) भगवती भाग ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १७४०-१७४३
(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४७८

[६९] जमालि क्षत्रियकुमार के पिता के (आदेश से) कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये हुए वे एक हजार तरुण सेवक हर्षित और सन्तुष्ट हो कर, स्नानादि से निवृत्त हो कर बलिकर्म, कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त करके एक सरीखे आभूषण और वस्त्र तथा वेष धारण करके जहाँ जमालि क्षत्रियकुमार के पिता थे, वहाँ आए और हाथ जोड़ कर यावत् उन्हें जय-विजय शब्दों से बधा कर इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! हमें जो कार्य करना है, उसका आदेश दीजिए।

७०. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया ते कोडुंबियवरतरुणसहस्सं एवं वयासी — तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियनिज्जोगा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहह।

[७०] इस पर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उन एक हजार तरुण सेवकों को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम स्नानादि करके यावत् एक सरीखे वेष में सुसज्ज होकर जमालिकुमार की शिविका को उठाओ।

७१. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा (? तरुणा) जमालिस्स खत्तियकुमारस्स जाव पडिसुणेत्ता ण्हाया जाव गहियनिज्जोगा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहंति।

[७१] तब वे कौटुम्बिक तरुण क्षत्रियकुमार जमालि के पिता का आदेश शिरोधार्य करके स्नानादि करके यावत् एक सरीखी पोशाक धारण किये हुए (उन तरुण सेवकों ने) क्षत्रियकुमार जमालि की शिविका उठाई।

विवेचन—कौटुम्बिक तरुणों को शिविका उठाने का आदेश—प्रस्तुत ५ सूत्रों (६७ से ७१ तक) में जमालिकुमार के पिता द्वारा एक हजार तरुण सेवकों को बुलाकर शिविका उठाने का आदेश देने और उनके द्वारा उसका पालन करने का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—एगाभरण वसण-गहिय-निज्जोया—एक-से आभरणों और वस्त्रों का (निर्योग) परिकर धारण किये हुए।

७२. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तं०—सोत्थिय सिरिवच्छ जाव दप्पणा[3]। तदणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं जहा उववाइए[4] जाव गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। एवं जहा[5] उववाइए तहेव भाणियव्वं जाव आलोयं च करेमाणा 'जय जय' सद्दं च

1. वियाहपण्णत्तिसुत्तं, भा. १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ. ४६९-४७०
2. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४७९
3. 'जाव' पद सूचित पाठ—"नंदियावत्त-वद्धमाणग भद्दासण कलस मच्छ।" —भ. वृ.
4. औपपातिकसूत्र में पाठ इस प्रकार है—"दिव्वा य छत्तपडागा सचामरादंसरइयआलोयदरिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंती य ऊसिया गगणतलमणुलिहंती।"
—औपपातिकसूत्र, कूणिकनृपतिनिर्गमनवर्णन प. ६९ प्रथमभाग सू. ३१।
5. औपपातिकसूत्र में वर्णित पाठ इस प्रकार है—"तयाणंतरं च णं वेरुलियभिसंतविमलदंडं, पलंबकोरंटमल्लदामोवसोहियं चंदमंडलनिभं समूसियं विमलमायवत्तं पवरं सीहासणं च मणिरयणपायपीढं सपाउयाजुगसमाउत्तं बहुकिंकरकम्मगरपुरिसपायत्तपरिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं। तयाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा

पउजमाणा पुरम्रो ग्रहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। तदणतर च ण बहवे उग्गा भोगा जहा[1] उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरा परिक्खित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरम्रो य मग्गम्रो य पासम्रो य ग्रहाणुपुव्वीए सपट्ठिया।

[७२] हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने योग्य उस शिविका पर जब जमालि क्षत्रियकुमार आदि सब आरूढ हो गए, तब उस शिविका के आगे-आगे सवप्रथम ये आठ मगल अनुक्रम से चले, यथा—(१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्द्यावर्त्त, (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य और (८) दपण। इन आठ मगलो के अन तर पूर्ण कलश चला, इत्यादि, औपपातिकसूत्र के कहे अनुसार यावत् गगनतलचुम्बिनी वैजयन्ती (ध्वजा) भी आगे यथानुक्रम से रवाना हुई। इस प्रकार जैसे औपपातिक सूत्र मे कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए, यावत् आलोक करते हुए और जय जयकार शब्द का उच्चारण करते हुए अनुक्रम से आगे चले। इसके पश्चात् बहुत से उग्रकुल के, भोगकुल के क्षत्रिय, इत्यादि औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार यावत् महापुरुषो के वग से परिवृत होकर क्षत्रियकुमार जमालि के आगे, पीछे और आसपास चलने लगे।

७३ तए ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव विभूसिए हत्थि खधवरगए सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय रह-पवरजोहकलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडे महया भड-चडगर जाव परिक्खित्ते जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिट्ठम्रो पिट्ठम्रो अणुगच्छइ।

छत्तगाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा चावग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढयग्गाहा वीणग्गाहा कूवयग्गाहा हडप्पगाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया। तयाणतर च बहवे दडिणो मुडिणो सिहडिणो—जडिणो पिछिणो हासकरा डमरकरा दवकरा चाडुकरा, कदप्पिया कोक्कुइआ वायता य गायता य हासता य भासिता य सासिता य सावेंता य रक्खता य ।" —औपपातिक सूत्र ३१-३२ प ६४, ७४।

एतच्च वाचनान्तरे प्राय साक्षाद् दृश्यते एव। तयेदमपर तद्वोवाधिकम—तयाणतर च ण जच्चाण वरमल्लिहाणाण चचुच्चियललियपुलयविक्कमविलासियगईण हरिमेलामउलमल्लियच्छाण चासगपमिलाणचमरगड परिमडियकडीण अट्ठसय वरतुरगाण पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च ण ईसिदताण ईसिमत्ताण ईसिउच्छगविसालधवलदताण कचणकोसीपविट्ठदताण अट्ठसय गयकलहाण पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च ण सच्छत्ताण सज्झयाण सघटाण सपडागाण सतोरणवराण सनदिघोसाण सखिखिणीहेमजालपेरतपरिक्खित्ताण हेमवयचित्ततिणिसकणगनिज्जुत्तदारुगाण सुसविद्धचक्कमडलधुराण कालायससुकयनेमिजतकम्माण आइण्णवरतुरगसुसपउत्ताण कुसलनरच्छेयसारहिसुसपग्गहियाण सरसतबत्तीसतोणपरिमडियाण सकडवडेंसगाण सचावसरपहरणावरणभरियजुद्धसज्जाण अट्ठसय रहाण पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च असि-सत्ति कोत-तोमर-सूल-लउड भिडिमाल धणु-बाणसज्ज पायत्ताणीय पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिय। तयाणतर च बहवे राईसर तलवर-कोडु बिय-माडबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइओ अप्पेगइया हयगया अप्पेगइया गयगया अप्पेगइया रहगया पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्ठिया।

१ औपपातिक सूत्र मे यह पाठ इस प्रकार है—"राइण्णा खत्तिया इक्खागा णाया कोरव्वा।"
—औपपातिक सू २७ प ५८-५९

[७३] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने स्नान आदि किया। यावत् वे विभूषित होकर उत्तम हाथी के कंधे पर चढे और कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, श्वेत चामरो से विजाते हुए, घोडे, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओ से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर तथा महासुभटो के समुदाय से घिरे हुए यावत् क्षत्रियकुमार के पीछे-पीछे चल रहे थे।

७४ तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ महं आसा आसव (वा) रा, उभओ पासि णागा णागवरा, पिट्ठओ रहा रहसंगेल्ली।

[७४] साथ ही उस जमालि क्षत्रियकुमार के आगे बडे-बडे और श्रेष्ठ घुडसवार तथा उसके दोनो बगल (पार्श्व) मे उत्तम हाथी एव पीछे रथ और रथसमूह चल रहे थे।

विवेचन—शिविका के आगे पीछे एव आसपास चलने वाले मगलादि एव जनवर्ग—प्रस्तुत सूत्रो मे यह वर्णन है कि सहस्रपुरुषवाहिनी शिविका पर सबके आरूढ होने पर-उसके आगे-आगे अष्ट मगल, छत्र, पताका, चामर, विजयवैजयन्ती आदि तथा क्रमश पीठ, सिंहासन तथा अनेक किंकर, कर्मकर, एव यष्टि, भाला, चामर, पुस्तक, पीठ, फलक, वीणा, कुतप (कुप्पी) आदि लेकर चलने वाले एव उनके पीछे दण्डी, मुण्डी, शिखण्डी, जटी, पिच्छी हास्यादि करने वाले लोग गाते-बजाते, हसते-हसाते चले जा रहे थे। निष्कर्ष यह कि जमालिकुमार की शिविका के साथ-साथ अपार जनसमूह चल रहा था।

उसके पीछे जमालिकुमार के पिता चतुरंगिणी सेना एव भटादिवर्ग के साथ चल रहे थे। उनके पीछे श्रेष्ठ घोडे घुडसवार, उत्तम हाथी, रथ तथा रथसमुदाय चल रहे थे।[1]

७५ तए ण से जमाली खत्तियकुमारे अब्भुग्गयभिगारे पग्गहियतालियंटे ऊसवियसेतछत्ते पवीइतसेतचामरवालवीयणीए सव्विड्ढीए जाव[2] णादितरवेण खत्तियकुडग्गाम नगर मज्झमज्झेण जेणेव माहणकुडग्गामे नयरे जेणेव बहुसालए चेइए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

[७५] इस प्रकार (दीक्षाभिलाषी) क्षत्रियकुमार जमालि सर्व ऋद्धि (ठाठ-बाठ) सहित यावत् बाजे गाजे के साथ (वाद्यो के निनाद के साथ) चलने लगा। उसके आगे कलश और ताडपत्र का पखा लिये हुए पुरुष चल रहे थे। उसके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। उसके दोनो ओर श्वेत चामर और छोटे पखे बिजाए जा रहे थे। [इनके पीछे बहुत-से लकडी, भाला, पुस्तक यावत् वीणा आदि लिए हुए लोग चल रहे थे। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी आदि, फिर लाठी, खड्ग, भाला आदि, लिये हुए पदाति (पैदल चलने वाले) पुरुष तथा उनके पीछे बहुत से युवराज, धनाढ्य,

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ ४७१-४७२

२ 'जाव' पद सूचित पाठ—"*तयाणतर च ण बहवे लट्ठिग्गाहा कु तग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा जाव वीणग्गाहा। तयाणतर च ण अट्ठसय गयाण अट्ठसय तुरगाण अट्ठसय रहाण। तयाणतर च ण लउड असि-कोतहत्थाण बहूण पायत्ताणीण पुरओ सपट्ठिय। तयाणतर च ण बहवे राईसर-तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ सपट्ठिया जाव णादितरवेण।*" —औपपातिक सू ३२, पत्र ७२

यावत् सार्थवाह प्रभृति तथा बहुत से लोग यावत् गाते-बजाते, हसते-खेलते चल रहे थे।] (इस प्रकार) क्षत्रियकुमार जमालि क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य में से होकर जाता हुआ, ब्राह्मणकुण्डग्राम के बाहर जहा बहुशालक नामक उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उस ओर गमन करने लगा।

विवेचन—जमालिकुमार का सर्वऋद्धि सहित भगवान् की ओर प्रस्थान—प्रस्तुत सू. ७५ मे अत्यन्त ठाठ-बाठ, राजचिह्नो एव सभी प्रकार के जनवर्ग के साथ भगवान् महावीर की सेवा मे ब्राह्मणकुण्ड की ओर विरक्त जमालिकुमार के प्रस्थान का वर्णन है।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—अब्भुग्गयभिगारे—आगे कलश सिर पर ऊचा उठाए हुए। पग्गहियतालियटे—ताडपत्र के पखे लिए हुए। ऊसवियसेतछत्ते—ऊचा श्वेत छत्र धारण किया हुआ। पवीइत सेत चामर-वालवीयणीए—श्वेत चामर और छोटे पखे दोनो ओर विजाते हुए। णाइत-रवेण—वाद्यो के शब्दो सहित। पहारेत्थ गमणाए—गमन करने लगा।[2]

७६. तए ण तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स खत्तियकुडग्गाम नगर मज्झमज्झेण निग्गच्छमाणस्स सिंघाडग-तिग चउक्क जाव[3] पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा[4] उववाइए जाव अभिनदता य अभित्थुणता य एव वयासी—जय जय णदा! धम्मेण, जय जय णदा! तवेण, जय जय णदा! भद्द ते, अभग्गेहि णाण-दसण-चरित्तमुत्तमेहि अजियाइ जिणाहि इदियाइ, जिय च पालेहि समणधम्म, जियविग्घो वि य वसाहि त देव! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि या राग-दोसमल्ले तवेण धितिधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेण उत्तमेण सुक्केण, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडाग च धीर! तिलोक्क-रगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तर केवल च णाण, गच्छ य मोक्ख पर पद जिणवरोवदिट्ठेण सिद्धि-मग्गेण अकुडिलेण, हता परीसहचमु, अभिभविय गामकटकोवसग्गा ण, धम्मे ते अविग्घमत्थु। त्ति कट्टु अभिनदति य अभिथुणति य।

[७६] जब क्षत्रियकुमार जमालि क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य में से होकर जा रहा था, तब शृगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों पर बहुत से-अर्थार्थी (धनार्थी), कामार्थी इत्यादि लोग, औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार इष्ट, कान्त, प्रिय आदि शब्दो से यावत् अभिनन्दन एव स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—'हे नन्द (आनन्ददाता)! धर्म द्वारा तुम्हारी जय हो! हे नन्द! तप के

1 वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. १ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ. ४७२
2 भगवती भा. ४ (प. घेवरचन्दजी), पृ. १७४६
3 'जाव' पद सूचित पाठ—'चच्चर चउम्मुह-महापह।'
4 औपपातिक सूत्र मे वर्णित पाठ यावत् अभिनदता, तक—"कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया इड्ढिसिया किट्टिसिया कारोडिया कारवाहिया सखिया चक्किया नगलिया मुहमगलिया वद्धमाणा पूसमाणगा ताहि इट्ठाहि कताहि पियाहि मणुण्णाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मगल्लाहि सस्सिरीयाहि हियगमणिज्जाहि हिययपल्हायणिज्जाहि मिय-महुर-गभीरगाहियाहि अट्ठसइयाहि ताहि अपुणरुत्ताहि वग्गूहि अणवरय अभिनदता य।" —औपपातिक सू. ३२ पत्र ७१

द्वारा तुम्हारी जय हो ! हे नन्द ! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो ! हे देव ! अखण्ड-उत्तम-ज्ञान दर्शन-चारित्र द्वारा (अब तक) अविजित इन्द्रियों को जीतो और विजित श्रमणधर्म का पालन करो। हे देव ! विघ्नों को जीतकर सिद्धि (मुक्ति) में जाकर बसो ! तप से धैर्य रूपी कच्छ को अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक बांधकर राग-द्वेष रूपी मल्लों को पछाड़ो ! उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा अष्टकर्मशत्रुओं का मर्दन करो ! हे धीर ! अप्रमत्त होकर त्रैलोक्य के रंगमंच (विश्वमण्डप) में आराधनारूपी पताका ग्रहण करो (अथवा फहरा दो) और अन्धकार रहित (विशुद्ध प्रकाशमय) अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करो ! तथा जिनवरोपदिष्ट सरल (अकुटिल) सिद्धिमार्ग पर चलकर परमपदरूप मोक्ष को प्राप्त करो ! परीषह सेना को नष्ट करो तथा इन्द्रियग्राम के कण्टकरूप (प्रतिकूल) उपसर्गों पर विजय प्राप्त करो ! तुम्हारा धर्माचरण निर्विघ्न हो !' इस प्रकार से लोग अभिनन्दन एवं स्तुति करने लगे।

विवेचन—विविध जनों द्वारा जमालिकुमार को आशीर्वाद, अभिनन्दन एवं स्तुति—प्रस्तुत सू. ७६ में निरूपण है कि क्षत्रियकुण्ड से ब्राह्मणकुण्ड जाते हुए जमालिकुमार को मार्ग में बहुत से धनार्थी, कामार्थी, भोगार्थी, कापालिक, भाण्ड, मागध, भाट आदि ने विविध प्रकार से अपने उद्देश्य में सफल होने का आशीर्वाद दिया, उसका अभिनन्दन एवं स्तवन किया।[1]

विशेषार्थ—अजियाइं जिणाहि—नहीं जीती हुई (इन्द्रियों) को जीतो। अभग्गेहिं—अखण्ड। णिहणाहि—नष्ट करो। णदा धम्मेण—धर्म से बढ़ो। णंदा—जगत को आनन्द देने वाले। धितिधणियबद्धकच्छे—धैर्यरूपी कच्छे को दृढ़ता से बांधकर। मद्दाहि—मर्दन करो। हराहि दो अर्थ—(१) ग्रहण करो, (२) फहरा दो। तिलोक्करंगमज्झे—त्रिलोकरूपी रंगमंडप में। पावय—प्राप्त करो। परिसहचमू—परीषहरूपी सेना को। अभिभविय गामकंटकोवसग्गा—इन्द्रिय-ग्रामों के कंटकरूप प्रतिकूल उपसर्गों को हरा कर। अविग्घमत्थु—निर्विघ्न हो।[2]

७७ तए णं से जमाली खत्तियकुमारे नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं जहा उववाइए[3] कूणिओ जाव णिग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुंडग्गामे नगरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, ठवित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. १ (मू. पा. टि.), पृ. ४७२-४७३

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४८१-४८२

३ औपपातिकसूत्रगत पाठ—'णयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, हिययमालासहस्सेहिं अभिनंदिज्जमाणे अभिनंदिज्जमाणे, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे, कंति रूव-सोहग्गजोव्वण गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे, दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे, भवणपंत्तिसहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे, तंती तल-ताल गीयवाइयरवेणं महुरेणं मणहरेण 'जय-जय' सद्दुग्घोसमीसएणं मंजुमंजुणा घोसेणं अपडिबुज्झमाणे कंदरगिरिविवरकुहर गिरिवर-पासादुद्धघणभवण-देवकुल सिंघाडग तिग-चउक्क चच्चर-आराम-उज्जाण-काणण सभ-प्पवप्पदेसभागे-देसभागे-समइच्छमाणे कंदर-दरि-कुहर-विवर-गिरि-पायारऽट्टाल-चरिय-दार-गोउर-पासाय-दुवार-भवण-देवकुल-आरामुज्जाण-काणण सभ-पएसे-पडिसुयासयसहस्ससंकुले करेमाणे करेमाणे, हयहेसिय-हत्थिगुलुगुलाइअ-रहघणघणाइय सद्दमीसएण महया कलकलरवेण य जणस्स सुमहुरेणं पूरेंतो अंबर,

[७७] तब औपपातिकसूत्र मे वर्णित कूणिक के वर्णनानुसार क्षत्रियकुमार जमालि (दीक्षार्थी के रूप मे) हजारो (व्यक्तियो) की नयनावलियो द्वारा देखा जाता हुआ यावत (क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बीचोबीच होकर) निकला। फिर ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशालक नामक उद्यान के निकट आया और ज्यो ही उसने तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयो को देखा, त्यो ही हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने वाली उस शिविका को ठहराया और स्वय उस सहस्रपुरुषवाहिनी शिविका से नीचे उतरा।

७८ तए ण त जमालिं खत्तियकुमार अम्मा-पियरो पुरओ काउ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता, समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता एव वदासी – एव खलु भते! जमाली खत्तियकुमारे अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते जाव किमग पुण पासणयाए? से जहानामए उप्पले इ वा पउमे इ वा जाव[1] सहस्सपत्ते इ वा पके जाए जले सवुड्ढे णोवलिप्पइ पकरएण णोवलिप्पइ जलरएण एवामेव जमाली वि खत्तियकुमारे कामेहिं जाए भोगेहिं सवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएण णोवलिप्पइ भोगरएण णोवलिप्पइ मित्त णाइ-नियग-सयण सबधि परिजणेण, एस ण देवाणुप्पिया! ससारभउव्विग्गे, भीए जम्मण मरणेण देवाणुप्पियाण अतिए मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयइ, त एय ण देवाणुप्पियाण अम्हे सीसभिक्ख दलयामो, पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया! सीसभिक्ख।

[७८] तदनन्तर क्षत्रियकुमार जमालि को आगे करके उसके माता-पिता, जहा श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहा उपस्थित हुए और श्रमण भगवान् महावीर को दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा की, यावत् वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन्! यह क्षत्रियकुमार जमालि, हमारा इकलौता, इष्ट, कान्त और प्रिय पुत्र है। यावत्—इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो दर्शन दुर्लभ हो, इसमे कहना ही क्या! जसे कोई कमल (उत्पल), पद्म या यावत् सहस्रदलकमल कीचड मे उत्पन्न होने और जल मे सवर्द्धित (बडा) होने पर भी पकरज से लिप्त नही होता, न जलकण (जलरज) से लिप्त होता है, इसी प्रकार क्षत्रियकुमार जमालि भी काम मे उत्पन्न हुआ भोगो म सवर्द्धित (बडा) हुआ, किन्तु काम मे रजमात्र भी लिप्त (आसक्त) नही हुआ और न ही भोग क अशमात्र से लिप्त (आसक्त) हुआ और न यह मित्र, ज्ञाति, निज सम्बन्धी, स्वजन सम्बन्धी और परिजनो मे लिप्त हुआ है।

हे देवानुप्रिय! यह ससार—(जन्म-मरणरूप) भय से उद्विग्न हो गया है, यह जन्म-मरण (के चक्र) के भय से भयभीत हो चुका है। अत आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो कर, अगारवास

समता सुगधवरकुसुमचुण्ण उव्विद्धवासरेणुमइल णम करेते कालागुरु-पवरकुदुरुक्क-तुरुक्क धूवनिवहेण जीयलोय इव वासयते, समतओ खुभियचक्कवाल, पउरजण-बाल वुड्ढपमुइयतुरियपहावियविउलाउलबोलबहुल णम करेते खत्तियकुडग्गामस्स नयरस्स मज्झमज्झेण।"

—भगवती अ वत्ति, पत्र ४८०-४८२, औपपातिकसूत्र सू ३१-३२, पत्र ६८ ७४

१ 'जाव' पद सूचित पाठ—कुमुदे इ वा नलिणे इ वा सुभगे इ वा सोगधिए इ वा इत्यादि।

—भगवती अ वृत्ति पत्र ४८३

छोड कर अनगार धर्म मे प्रव्रजित हो रहा है। इसलिए हम आप देवानुप्रिय को यह शिष्यभिक्षा देते हैं। आप देवानुप्रिय ! इस शिष्य रूप भिक्षा को स्वीकार करें।

विवेचन—दीक्षार्थी जमालिकुमार भगवान् के चरणो मे समर्पित—प्रस्तुत दो (७७ ७८) सूत्रो मे वर्णन है कि शिविकाद्वारा जमालिकुमार के भगवान् की सेवा म पहुँचने पर उसके माता-पिता ने भगवान् के चरणो मे शिष्यभिक्षा के रूप मे समर्पित किया।[1]

७९ तए ण समणे भगव महावीरे त जमालिं खत्तियकुमार एव वयासी—'अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध।'

[७९] इस पर श्रमण भगवान महावीर ने उस क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वसा करो, किन्तु (धर्मकार्य मे) विलम्ब मत करो।"

८० तए णं से जमाली खत्तियकुमारे समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव नमसित्ता उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालकार ओमुयइ।

[८०] भगवान् के ऐसा कहने पर क्षत्रियकुमार जमालि हर्षित और तुष्ट हुआ, तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा कर यावत् वन्दना-नमस्कार कर, उत्तर-पूर्वदिशा (ईशानकोण) म गया। वहाँ जा कर उसने स्वय ही आभूषण, माला और अलकार उतार दिये।

८१ तते ण से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण आभरण-मल्लालकार पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव[2] विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी जमालिं खत्तियकुमार एव वयासी—'घडियव्व जाया !, जइयव्व जाया !, परक्कमियव्व जाया !, अस्सि च ण अट्ठे णो पमायेतव्व' ति कट्टु जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मा-पियरो समण भगव महावीर वदति णमसति, वदित्ता णमसित्ता, जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस पडिगया।

[८१] तत्पश्चात जमालि क्षत्रियकुमार की माता ने उन आभूषणों, माला एव अलकारो को हस के चिह्न वाले एक पटशाटक (रेशमी वस्त्र) मे ग्रहण कर लिया और फिर हार, जलधारा इत्यादि के समान यावत् आसू गिराती हुई अपने पुत्र से इस प्रकार बोली—हे पुत्र ! सयम मे चेष्टा करना, पुत्र ! सयम म यत्न करना, हे पुत्र ! सयम मे पराक्रम करना। इस (सयम के) विषय मे जरा भी प्रमाद न करना।

इस प्रकार कह कर क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे वापस चले गए।

विवेचन- भगवान् द्वारा दीक्षा की स्वीकृति, माता द्वारा जमालि को सयमप्रेरणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ७९ से ८१ तक) मे भ महावीर द्वारा जमालि की दीक्षा की स्वीकृति के सकेत,

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पण) भा १ पृ ४७८

२ 'जाव' पद द्वारा सूचित पाठ धारा सिंदुवार छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइ असूणि। —अ वृ

जमालि द्वारा आभूषणादि न उतारे जाने तथा माता द्वारा संयम में पुरुषार्थ करने की प्रेरणा का वर्णन किया गया है।[1]

कठिन पदों के विशेषार्थ—नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे—हजारों नेत्रों द्वारा देखा जाता हुआ। संवुड्ढे—संवर्धित हुआ, बड़ा हुआ। पंकरएणं—कीचड़ के लेशमात्र से। काम-रएण—कामरूप रज से या काम के अंशमात्र से अथवा कामानुराग से। सीसभिक्ख—शिष्यरूप भिक्षा। ओमुयइ—उतारता है। घडियव्वं—संयम पालन की चेष्टा करना। जइयव्वं—संयम में यत्न करना। परक्कमियव्वं—पराक्रम करना। णो पमायेतव्वं—प्रमाद न करना। विणिम्मुयमाणी—विमोचन करती हुई। भोगेहिं—गन्ध-रस-स्पर्शों में। कामेहिं—शब्दादि रूप कामों में।[2]

८२. तए णं से जमालि खत्तियकुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेति, करित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता एवं[3] जहा उसभदत्तो (सु. १६) तहेव पव्वइओ, नवरं पंचहिं पुरिससएहिं सद्धिं तहेव सव्वं जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-ऽट्ठम जाव मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

[८२] इसके पश्चात् जमालिकुमार ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया, फिर श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ और ऋषभदत्त ब्राह्मण (सू. १६ में वर्णित) की तरह भगवान् के पास प्रव्रज्या अंगीकार की। विशेषता यह है कि जमालि क्षत्रियकुमार ने ५०० पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की, शेष सब वर्णन पूर्ववत् है, यावत् जमालि अनगार ने फिर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत-से उपवास, बेला (छट्ठ), तेला (अट्ठम), यावत् अर्द्धमास, मासखमण (मासिक) इत्यादि विचित्र तप कर्मों से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।

जमालिकुमार की प्रव्रज्या, अध्ययन और तपस्या—जमालिकुमार ने स्वयं लोच किया, भगवान् से अपनी विरक्त दशा निवेदन करके पांच सौ पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या ग्रहण के बाद जमालि अनगार ने ११ अंगशास्त्रों का अध्ययन तथा अनेक प्रकार का तपश्चरण किया, जिसका उल्लेख प्रस्तुत सूत्र में है।[4]

'पंचमुट्ठियं' आदि पदों का विशेषार्थ—पंचमुट्ठियं—पांचों अंगुलियों की मुट्ठी बांध कर लोच करना पंचमुष्टिक लोच कहलाता है। अप्पाणं भावेमाणे—आत्मभावों में रमण करता हुआ अथवा आत्मचिन्तन—आत्मभावना करता हुआ। तवोकम्मेहिं—तप कर्मों से—तपश्चर्याओं से।

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मू. पा. टिप्पण) भा. १ पृ. ४७४-४७५

२. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४८४

३. 'जहा उसभदत्तो' द्वारा सूचित पाठ—तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते णं भंते! लोए इत्यादि।

भ. ९, उ. ३३ सू. १६

४. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. १, पृ. ४७५

भगवान् की विना आज्ञा के जमालि का पृथक् विहार

८३ तए ण से जमाली अणगारे अन्नया कयाई जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पचहिं अणगारसएहिं सद्धि बहिया जणवय विहार विहरित्तए ।

[८३] तदनन्तर एक दिन जमालि अनगार श्रमण भगवान् महावीर के पास आए और भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं पाच सौ अनगारो के साथ इस जनपद से बाहर (अन्य जनपदो मे) विहार करना चाहता हूँ ।

८४ तए ण से समणे भगव महावीरे जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठ णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए सचिट्ठइ ।

[८४] यह सुनकर श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार की इस बात (माग) को आदर (महत्त्व) नही दिया, न स्वीकार किया । वे मौन रहे ।

८५ तए ण से जमाली अणगारे समण भगव महावीर दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—इच्छामि ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पचहि अणगारसएहिं सद्धि जाव विहरित्तए ।

[८५] तब जमालि अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर से दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा—भते ! आपकी आज्ञा मिल जाए तो मैं पाच सौ अनगारो के साथ अन्य जनपदो मे विहार करना चाहता हूँ ।

८६ तए ण समणे भगव महावीरे जमालिस्स अणगारस्स दोच्च पि तच्च पि एयमट्ठ णो आढाइ जाव तुसिणीए सचिट्ठइ ।

[८६] जमालि अनगार के दूसरी बार और तीसरी बार भी वही बात कहने पर श्रमण भगवान् महावीर न इस बात का आदर नही किया, यावत वे मौन रहे ।

८७ तए ण से जमाली अणगारे समण भगव महावीर वदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पचहिं अणगारसएहिं सद्धि बहिया जणवयविहार विहरइ ।

[८७] तब (ऐसी स्थिति मे) जमालि अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया और फिर उनके पास से, बहुशालक उद्यान से निकला और फिर पाच सौ अनगारो के साथ बाहर के (अन्य) जनपदो मे विचरण करने लगा ।

विवेचन—गुरु-आज्ञा विना जमालि अनगार का विचरण - प्रस्तुत ५ सूत्रो (सू ८३ से ८७ तक) के वर्णन से प्रतीत होता है कि जमालि अनगार द्वारा पाच सौ अनगारो को लेकर स्वतन्त्र विचरण की महत्त्वाकाक्षा एव सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् द्वारा उसके स्वतन्त्र विचरण के पीछे अहकार, महत्त्वाकाक्षा एव अधैर्य के प्रादुर्भाव होने की और भविष्य मे देव-गुरु आदि के विरोधी बन जाने की

संभावना देख कर स्वतन्त्र विहार की अनुज्ञा नहीं दी गई। किन्तु इस बात की अवहेलना करके जमालि अनगार भगवान महावीर से पृथक् विहार करने लगे।[1]

विशेषार्थ--बहिया जणवयविहार—बाहर के जनपदों मे विहार। णो आढाइ - आदर (महत्त्व) नहीं किया। णो परिजाणाइ—अच्छा नहीं जाना या स्वीकार नहीं किया। तुसिणीए संचिट्ठइ—मौन रहे। अंतियाओ पास से। सद्धिं —साथ।[2]

जमालि अनगार का श्रावस्ती में और भगवान् का चंपा में विहरण

८८ तेण कालेण तेण समएण सावत्थी नाम णयरी होत्था। वण्णओ। कोट्ठए चेइए। वण्णओ।[3] जाव वणसडस्स।

[८८] उस काल उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उसका वर्णन (कर लेना चाहिए) वहाँ कोष्ठक नामक उद्यान था, उसका और वनखण्ड तक का वर्णन (जान लेना चाहिए)।

८९ तेण कालेण तेण समएण चंपा नाम नयरी होत्या। वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए। वण्णओ। जाव पुढविसिलावट्टओ।

[८९] उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। उसका वर्णन (औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।) वहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उसका वर्णन (समझ लेना चाहिए) तथा यावत् उसमें पृथ्वीशिलापट्ट था।

९० तए णं जमाली अणगारे अन्नया कयाइ पचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

[९०] एक बार वह जमालि अनगार, पाँच सौ अनगारों के साथ संपरिवृत्त होकर अनुक्रम से विचरण करता हुआ और ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ श्रावस्ती नगरी में जहाँ कोष्ठक उद्यान था, वहाँ आया और मुनियों के कल्प के अनुरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।

९१ तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नगरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

[९१] उधर श्रमण भगवन् महावीर भी एक बार अनुक्रम से विचरण करते हुए यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहाँ चम्पानगरी थी और पूर्णभद्र नामक चैत्य था, वहाँ पधारे, तथा

---

१ 'भाविअपायत्वेनोपेक्षणीयत्वात्स्यति।' —भगवती अ. वृत्ति पत्र ४८६

२ (क) भगवती अ. वृत्ति पत्र ४८६ (ख) भगवती भा. ४ (पं० घेवरचन्दजी) पृ. १७५३

३ देखो "उववाइयसुत्त" में नगरी और पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन। —उव. पत्र १-१ और ४-२

श्रमणो के अनुरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे।

विवेचन—श्रावस्ती मे जमालि और चम्पा मे भगवान् महावीर—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ८८ से ९१ तक) मे जमालि का भगवान् महावीर से पृथक् विहार करके श्रावस्ती मे पहुँचने का तथा भगवान् महावीर का चम्पा मे पधारने का वर्णन है।[1]

विशेषार्थ—**अहापडिरूव**—मुनियों के कल्प के अनुरूप। **उग्गह**—अवग्रह—यथापर्याप्त *आवासस्थान तथा पट्ट-चौकी आदि की याचना करके ग्रहण करना।*[2]

जमालि अनगार के शरीर मे रोगातक की उत्पत्ति

९२ तए ण तस्स जमालिस्स अणगारस्स तेहिं अरसेहि य विरसेहि य अतेहि य पतेहि य लूहेहि य तुच्छेहि य कालाइक्कतेहि य पमाणाइक्कतेहि य सीतएहि य पाण भोयणेहि अन्नया कयाइ सरीरगसि विउले रोगातके पाउब्भूए-उज्जले तिउले पगाढे कक्कसे कडुए चडे दुक्खे दुग्गे तिव्वे दुरहियासे पित्तज्जरपरिगतसरीरे दाहवक्कतिए यावि विहरइ।

[९२] उस समय जमालि अनगार को अरस, विरस, अन्त प्रान्त, रूक्ष और तुच्छ तथा कालातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त एव ठडे पान (पेय पदार्थों) और भोजनो (भोज्य पदार्थों) (के सेवन) से एक बार शरीर मे विपुल रोगातक उत्पन्न हो गया। वह रोग उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, चण्ड, दु ख रूप, दुर्ग (कष्टसाध्य), तीव्र और दु सह था। उसका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त होने के कारण दाह से युक्त हो रहा था।

विवेचन—जमालि, महारोगपीडित—जमालि अनगार को रूक्ष, अन्त, प्रान्त, नीरस आदि प्रतिकूल आहार-पानी करने के कारण महारोग उत्पन्न हो गया, जिसके फलस्वरूप उसके सारे शरीर मे जलन एव दाहज्वर के कारण असह्य पीडा हो उठी।[3]

कठिन शब्दो का भावार्थ—**अरसेहि**—हीग आदि के बघार बिना का, बिना रसवाले—बस्वाद। **विरसेहि**—पुराने होने से खराब रस वाले—विकृत रस वाले। **अतेहि**—अरस होने से सब धान्यो से रद्दी (अन्तिम) धान्य—वाल, चने आदि। **पतेहि**—बचा-खुचा बासी आहार। **लूहेहि**—रूक्ष। **तुच्छेहि**—थोड-से, या हल्की किस्म के। **कालाइक्कतेहि** दो अर्थ—जिसका काल व्यतीत हो चुका हो ऐसा आहार, अथवा भूख-प्यास का समय बीत जाने पर किया गया आहार। **पमाणाइक्कतेहि**—भूख-प्यास की मात्रा के अनुपात मे जो आहार न हो। **सीतएहि**—ठडा आहार। **विउले**—विपुल—समस्त शरीर मे व्याप्त। **पाउब्भूए**—उत्पन्न हुआ। **रोगातके**—रोग—व्याधि और आतक—पीडाकारी या उपद्रव। **उज्जले**—उत्कट ज्वलन—(दाह) कारक। **पगाढे**—तीव्र या प्रबल। **कक्कसे**—कठोर या अनिष्टकारी। **चडे**—रौद्र-भयकर। **दुक्खे**—दु खरूप। **दुग्गे**—कष्टसाध्य। **दुरहियासे**—

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १, पृ ४७६

२ भगवतीसूत्र तृतीय खण्ड (प० भगवानदास दोशी), पृ १७९

३ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा १, पृ ४७६

दुस्सह। पित्तज्जरपरिगयसरीरे—पित्तज्वर से व्याप्त शरीर वाला। दाहवक्कंतिए—दाह (जलन) उत्पन्न हुआ।[1]

रुग्ण जमालि को शय्यासंस्तारक के निमित्त से सिद्धान्त-विरुद्ध-स्फुरणा और प्ररूपणा

९३ तए णं से जमाली अणगारे वेयणाए अभिभूए समाणे समणे णिग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सेज्जासंथारगं संथरेह।

[९३] वेदना से पीडित जमालि अनगार ने तब (अपने साथी) श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुला कर उनसे कहा—हे देवानुप्रियो ! मेरे सोने (शयन) के लिए तुम संस्तारक (बिछौना) बिछा दो।

९४ तए णं ते समणा णिग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जमालिस्स अणगारस्स सेज्जासंथारगं संथरेंति।

[९४] तब श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार की यह बात विनय पूर्वक स्वीकार की और जमालि अनगार के लिए बिछौना बिछाने लगे।

९५ तए णं से जमाली अणगारे बलियतरं वेदणाए अभिभूए समाणे दोच्चं पि समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावित्ता दोच्चं पि एवं वयासी—ममं णं देवाणुप्पिया ! सेज्जासंथारए किं कडे ? कज्जइ ? तए णं ते समणा निग्गंथा जमालिं अणगारं एवं वयासी—णो खलु देवाणुप्पियाणं सेज्जासंथारए कडे, कज्जति।

[९५] किन्तु जमालि अनगार प्रबलतर वेदना से पीडित थे, इसलिए उन्होंने दुबारा फिर श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुलाया और उनसे इस प्रकार पूछा—देवानुप्रियो ! क्या मेरे सोने के लिए संस्तारक (बिछौना) बिछा दिया या बिछा रहे हो ? इसके उत्तर में श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय के सोने के लिए बिछौना (अभी तक) बिछा नहीं, बिछाया जा रहा है।

९६ तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जं णं समणे भगवं महावीरे एवं आइक्खइ जाव एवं परूवेइ—'एवं खलु चलमाणे चलिए उदीरिज्जमाणे उदीरिए जाव निज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे' तं णं मिच्छा, इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ सेज्जासंथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए, जम्हा णं सेज्जासंथारए कज्जमाणे अकडे संथरिज्जमाणे असंथरिए तम्हा चलमाणे वि अचलिए जाव निज्जरिज्जमाणे वि अणिज्जिण्णे। एवं संपेहेइ, एवं संपेहेत्ता समणे निग्गंथे सद्दावेइ, समणे निग्गंथे सद्दावेत्ता एवं वयासी—जं णं देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे एवं आइक्खइ जाव परूवेइ—एवं खलु चलमाणे चलिए तं चेव सव्वं जाव णिज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे।

[९६] श्रमणों की यह बात सुनने पर जमालि अनगार के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय (निश्चयात्मक विचार) यावत् उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते हैं, यावत्

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४८६

प्ररूपणा करते है कि चलमान चलित है, उदीयमाण उदीरित है, यावत निर्जीयमाण निर्जीर्ण है, यह कथन मिथ्या है, क्योकि यह प्रत्यक्ष दीख रहा है कि जब तक शय्या-संस्तारक बिछाया जा रहा है, तब तक वह बिछाया गया नही है, (अर्थात्—) बिछौना जब तक 'बिछाया जा रहा हो', तब तक वह 'बिछाया गया' नही है। इस कारण 'चलमान' 'चलित' नही, किन्तु 'अचलित' है, यावत 'निर्जीयमाण' 'निर्जीर्ण' नहीं, किन्तु 'अनिर्जीर्ण' है। इस प्रकार विचार कर श्रमण-निर्ग्रन्थो को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर जो इस प्रकार कहते हैं, यावत प्ररूपणा करते है कि 'चलमान' 'चलित' (कहलाता) है, (इत्यादि पूर्ववत् सब कथन करना) यावत् (वस्तुत) निर्जीयमाण निर्जीर्ण नही, किन्तु अनिर्जीर्ण है।

विवेचन—जमालि को शय्यासंस्तारक के निमित्त से सिद्धान्त-विरुद्ध स्फुरणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू ९३ से ९६ तक) मे निरूपण है कि प्रबलवेदनाग्रस्त जमालि अनगार के आदेश पर श्रमण बिछौना बिछाने लगे। अभी बिछाने का कार्य समाप्त नही हुआ था, तभी जमालि के पुन पूछने पर उन्होने कहा कि बिछौना बिछा नही, बिछाया जा रहा है, इस पर जमालि को सिद्धान्त-विरुद्ध एकान्त स्फुरणा हुई कि भगवान् महावीर का 'चलमान' को 'चलित' कहने का सिद्धान्त मिथ्या है, मेरा सिद्धान्त यथार्थ है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष है कि जो बिछौना बिछाया जा रहा है, उसे 'बिछाया गया' नही कहा जा सकता है।[1]

विशेषार्थ—बलियतर वेयणाए अभिभूए—प्रबलतर वेदना से अभिभूत। सेज्जासंथारग—शयन के लिए संस्तारक (बिछौना) कज्जमाणे अकडे—जो क्रियमाण है, वह कृत नही। संथरिज्जमाणे असंथरिए—बिछाया जा रहा है, वह बिछाया गया नही है।[2]

कुछ श्रमणो द्वारा जमालि के सिद्धान्त का स्वीकार, कुछ के द्वारा अस्वीकार

९७ तए ण तस्स जमालिस्स अणगारस्स एव आइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स अत्थेगइया समणा निग्गथा एयमट्ठ सद्दहति पत्तियति रोयति। अत्थेगइया समणा निग्गथा एयमट्ठ णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोयति। तत्थ ण जे ते समणा निग्गथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठ सद्दहति पत्तियति रोयति ते ण जमालि चेव अणगार उवसपज्जित्ताण विहरति। तत्थ ण जे ते समणा निग्गथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठ णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोयति ते ण जमालिस्स अणगारस्स अतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगाम दूइज्जमाणा जेणेव चपानयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेंति, करित्ता वदति, णमसति २ समण भगव महावीर उवसपज्जित्ताण विहरति।

[९७] जमालि अनगार द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर यावत् प्ररूपणा किये जाने पर कई श्रमण-निर्ग्रन्थो ने इस (उपर्युक्त) बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की तथा कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थो ने इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि नहीं की। उनमे से जिन श्रमण-निर्ग्रन्थो ने जमालि अनगार

१ वियाहपण्णत्ति भा १, मू पा टि, पृ ४७७
२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८६-४८७

की इस (उपर्युक्त) बात पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि की, वे जमालि अनगार को आश्रय करके (निश्राय में) विचरण करने लगे और जिन श्रमण निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगार की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की, वे जमालि अनगार के पास से, कोष्ठक उद्यान से निकल गए और अनुक्रम से विचरते हुए एवं ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, चम्पा नगरी के बाहर जहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ उनके पास पहुँचे। उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा की, फिर वन्दना-नमस्कार करके वे भगवान् का आश्रय (निश्राय) स्वीकार कर विचरने लगे।

विवेचन—जमालि के सिद्धान्त का स्वीकार: अस्वीकार—प्रस्तुत सूत्र ९७ में बताया गया है कि जमालि की जिनवचन विरुद्ध प्ररूपणा पर जिन साधुओं ने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की, वे उसके पास रहे और जिन साधुओं ने जमालि-प्रतिपादित सिद्धान्त पर श्रद्धा नहीं की, वे वहाँ से विहार करके भगवान् की सेवा में लौट गए।[1]

'चलमान चलित' भगवान् का सिद्धान्त है—इसका सयुक्तिक विवेचन भगवतीसूत्र के प्रथम शतक के प्रथम उद्देशक में कर दिया गया है। जमालि अनगार ने इस सिद्धान्त के विरुद्ध एकान्तदृष्टि से प्ररूपणा की, इसलिए यह सिद्धान्त अयथार्थ है। इसका विशेष विवेचन विशेषावश्यकभाष्य में है।[2]

विशेषार्थ—चलमाणे चलिए—'जो चल रहा हो, वह 'चला।' उवसंपज्जित्ताणं—आश्रय करके (निश्राय में)। अत्थेगइया—कोई कोई—कितने ही।[3]

जमालि द्वारा सर्वज्ञता का मिथ्या दावा

९८. तए णं से जमाली अणगारे अन्नया कयाइ ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के हट्ठे जाए अरोए बलियसरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—जहा णं देवाणुप्पियाणं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था भवेत्ता छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंता, णो खलु अहं तहा छउमत्थे भवित्ता छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंते, अहं णं उप्पन्नणाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कंते।

[९८] तदनन्तर किसी समय जमालि अनगार उस (पूर्वोक्त) रोगातंक से मुक्त और हृष्ट (पुष्ट) हो गया तथा नीरोग और बलवान शरीर वाला हुआ, तब श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान से निकला और अनुक्रम से विचरण करता हुआ एवं ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ, जहाँ चम्पा नगरी थी और जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था जिसमें कि श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, उनके

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं, भा. १ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. ४७८

२ (क) भगवतीसूत्र प्रथमखण्ड, श. १ (युवाचार्य श्री मधुकरमुनि) पृ. १६-१७
(ख) विशेषावश्यकभाष्य, निह्नववाद (ग) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४८७-४८८

३ भगवती. भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १७१७

पास आया। वह भगवान् महावीर से न तो अत्यन्त दूर और न अतिनिकट खड़ा रह कर भगवान से इस प्रकार कहने लगा— जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के बहुत से शिष्य छद्मस्थ रह कर छद्मस्थ अवस्था मे ही (गुरुकुल मे) निकल कर विचरण करते हैं, उस प्रकार मैं छद्मस्थ रह कर छद्मस्थ अवस्था मे निकल कर विचरण नही करता, मैं उत्पन्न हुए केवलज्ञान—केवलदर्शन को धारण करने वाला अर्हत, जिन, केवली हो कर केवली (अवस्था मे निकल कर केवली-) विहार से विचरण कर रहा हूँ, अर्थात मैं केवली हो गया हूँ।

विवेचन—केवलज्ञानी का झूठा दावा—प्रस्तुत सू ९८ मे यह निरूपण किया गया है कि जमालि अनगार स्वस्थ एव सशक्त होने पर श्रावस्ती से भगवान के पास चपा पहुँचा और उनके समक्ष अपने आपको केवलज्ञान प्राप्त होने का दावा करने लगा।[1]

कठिन शब्दो का भावार्थ—हट्ठे—हृष्टपुष्ट। बलियसरीरे—शरीर से बलिष्ठ। छउमत्था अवक्कमणेण अवक्कते—छद्मस्थ=असर्वज्ञ रूप से अपक्रमण (अर्थात् गुरुकुल से निकल) कर विचरण करते हैं। केवलिअवक्कमणेण अवक्कते—सर्वज्ञ (केवली) रूप से अपक्रमण करके विचर रहा हूँ।[2]

गौतम के दो प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ जमालि का भगवान् द्वारा सैद्धान्तिक समाधान

९९ तए ण भगवं गोयमे जमालिं अणगार एव वयासि—णो खलु जमाली! केवलिस्स णाणे वा दसणे वा सेलसि वा थभसि वा थूभसि वा आवरिज्जइ वा णिवारिज्जइ वा। जइ ण तुम जमाली! उप्पन्नणाण दसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेण अवक्कते तो ण इमाइ दो वागरणाइ वागरेहि, 'सासए लोए जमाली! असासए लोए जमाली! ? सासए जीवे जमाली! असासए जीवे जमाली! ?'

[९९] इस पर भगवान् गौतम ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—हे जमालि! केवली का ज्ञान या दर्शन पर्वत (शैल), स्तम्भ अथवा स्तूप (आदि) आदि से अवरुद्ध नही होता और न इनसे रोका जा सकता है। तो हे जमालि! यदि तुम उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत, जिन और केवली हो कर केवली रूप से अपक्रमण (गुरुकुल से निर्गमन) करके विचरण कर रहे हो तो इन दो प्रश्नो का उत्तर दो—(१) जमालि! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है? एव (२) जमालि! जीव शाश्वत है अथवा अशाश्वत है?

१०० तए ण से जमाली अणगारे भगवया गोयमेण एव वुत्ते समाणे सकिए कखिए जाव कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था, णो सचाएइ भगवओ गोयमस्स किंचि वि पमोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीए सचिट्ठइ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४७८

२ (क) भगवती भा ४ (प घेवरचन्दजी), पृ १७५९

(ख) छउमत्थावक्कमणेण नि-छद्मस्थाना सतामपक्रमण—गुरुकुलान्निर्गमन छद्मस्थापक्रमण तेन।

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ४८८

[१००] भगवन् गौतम द्वारा इस प्रकार (दो प्रश्नो के) जमालि अनगार से कहे जाने पर वह (जमालि) शकित एव काक्षित हुआ, यावत् कलुषित परिणाम वाला हुआ। वह भगवान् गौतमस्वामी को (इन दो प्रश्नो का) किञ्चित् भी उत्तर देने मे समर्थ न हुआ। (फलत) वह मौन होकर चुपचाप खडा रहा।

१०१ 'जमाली' त्ति समणे भगव महावीरे जमालिं अणगार एव वयासी—अत्थि ण जमाली! मम बहवे अतेवासी समणा निग्गथा छउमत्था जे ण पभू एय वागरण वागरित्तए जहा ण अह, नो चेव ण एयप्पगार भास भासित्तए जहा ण तुम। सासए लोए जमाली! ज ण कयावि णासि ण, कयावि ण भवति ण, न कदाचि ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे। असासए लोए जमाली! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ, उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ।

सासए जीवे जमाली! ज ण न कयाइ णासि जाव णिच्चे। असासए जीवे जमाली! ज ण नेरइए भवित्ता तिरिक्खजोणिए भवइ, तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ, मणुस्से भवित्ता देवे भवइ।

[१०१] (तत्पश्चात) श्रमण भगवान् महावीर ने जमालि अनगार को सम्बोधित करके यो कहा—जमालि! मेरे बहुत-से श्रमण निर्ग्रन्थ अन्तेवासी (शिष्य) छद्मस्थ (असवज्ञ) हैं जो इन प्रश्नो का उत्तर देने मे उसी प्रकार समर्थ हैं, जिस प्रकार मैं हूँ, फिर भी (जिस प्रकार तुम अपने आपको सवज्ञ अर्हत् जिन और केवली कहते हो,) इस प्रकार की भाषा वे नही बोलते। जमालि! लोक शाश्वत है, क्योकि यह कभी नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा भी नही और कभी न रहेगा, ऐसा भी नही है, किन्तु लोक था, है और रहेगा। यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत अक्षय, अव्यय अवस्थित और नित्य है। (इसी प्रकार) हे जमालि! (दूसरी अपेक्षा से) लोक अशाश्वत (भी) है, क्योकि अवसर्पिणी काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है, फिर उत्सर्पिणी काल (व्यतीत) होकर अवसर्पिणी काल होता है।

हे जमालि! जीव शाश्वत है, क्योकि जीव कभी (किसी समय) नही था, ऐसा नही है, कभी नही है, ऐसा नही है और कभी नही रहेगा, ऐसा भी नही है, इत्यादि यावत जीव नित्य है। (इसी प्रकार) हे जमालि! (किसी अपेक्षा से) जीव अशाश्वत (भी) है, क्योकि वह नैरयिक होकर तिर्यञ्चयोनिक हो जाता है, तिर्यञ्चयोनिक होकर मनुष्य हो जाता है और (कदाचित्) मनुष्य हो कर देव हो जाता है।

विवेचन—गौतम द्वारा प्रस्तुत दो प्रश्नो का उत्तर देने मे असमर्थ जमालि का भगवान् द्वारा समाधान—प्रस्तुत सूत्रो मे यह प्रतिपादन किया गया है कि जमालि अनगार के सवज्ञता के दावे को असत्य सिद्ध करने हेतु गौतमस्वामी केवलज्ञान का स्वरूप बताकर दो प्रश्न प्रस्तुत करते हैं, जिसका उत्तर न देकर जमालि मौन हो जाता है। फिर भ महावीर उसे सवज्ञता के झूठे दावा न करने के लिए समझाकर उसे लोक और जीव की शाश्वतता—अशाश्वतता समझाते हैं।[१]

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा १ (मू पा टिप्पण), पृ ४७९

भगवान् ने लोक को कथञ्चित् शाश्वत और कथञ्चित् अशाश्वत बताया है, इसी प्रकार जीव को भी कथञ्चित् शाश्वत और कथञ्चित् अशाश्वत सिद्ध किया है।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—कलुससमावन्ने—कालुष्य से युक्त। सेलंसि—शैल—पर्वत से। थूभंसि—स्तूप से। आवरिज्जइ—आवृत होता है। णिवारिज्जइ—रोका जाता है। वागरणाइं वागरेहि—व्याकरणों—प्रश्नों का व्याकरण=समाधान या उत्तर दो। णो संचाएइ—समर्थ नहीं हुआ। पमोक्ख—उत्तर या समाधान। एयप्पगारं—इस प्रकार की। अव्वए—अव्यय। अवट्ठिए—अवस्थित।[2]

मिथ्यात्वग्रस्त जमालि की विराधकता का फल

१०२. तए णं से जमाली अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव एवं परूवेमाणस्स एयमट्ठं णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे दोच्चं पि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ आयाए अवक्कमइ, दोच्चं पि आयाए अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, अ० झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमठितीएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने।

[१०२] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा जमालि अनगार को इस प्रकार कहे जाने पर, यावत् प्ररूपित करने पर भी उसने (जमालि ने) इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की और श्रमण भगवान् महावीर की इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं करता हुआ जमालि अनगार दूसरी बार भी स्वयं भगवान् के पास से चला गया।

इस प्रकार भगवान् से स्वयं पृथक् विचरण करके जमालि ने बहुत से असद्भूत भावों को प्रकट करके तथा मिथ्यात्व के अभिनिवेशों (हठाग्रहों) से अपनी आत्मा को, पर को तथा उभय (दोनों) को भ्रान्त (गुमराह) करते हुए एवं मिथ्याज्ञानयुक्त करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन किया। अन्त में अर्द्धमास (१५ दिन) की संलेखना द्वारा अपने शरीर को कृश करके तथा अनशन द्वारा तीस भक्तों का छेदन (त्याग) करके, उस स्थान (पूर्वोक्त मिथ्यात्वगत पाप) की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय में काल (मृत्यु प्राप्त) करके लान्तककल्प (देवलोक) में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्बिषिक देवों में किल्बिषिक देवरूप में उत्पन्न हुआ।

विवेचन—भगवद्वचनों पर अश्रद्धालु मिथ्यात्वग्रस्त जमालि की मति-गति—प्रस्तुत सू. १०२ में प्रतिपादन किया गया है कि भगवान् महावीर द्वारा सद्भावनावश समझाने एवं सत्-सिद्धान्त बताने पर भी जमालि मिथ्यात्वग्रस्त होने के कारण मिथ्या प्ररूपणा करने लगा, उसने जनता

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ. ४७९

२ भगवतीसूत्रम् तृतीय खण्ड (पं. भगवानदास दोशी) १८१

को अज्ञान के अन्धेरे में अकेला। फलत अंतिम समय में उक्त पाप का आलोचन-प्रतिक्रमण न करने से मर कर लान्तककल्प में किल्विषी देव हुआ।[1]

कठिन शब्दों का भावार्थ—**आयाए**—अपने आप, स्वयमेव। **अवक्कमइ**—चला गया। **असब्भावुब्भावणाहिं**—असद्भावों की उदभावनाओं से—प्रकट करने से। **मिच्छत्ताभिणिवेसेहिं**—मिथ्यात्व के अभिनिवेशों से (असत्य के दृढ हठाग्रह से)। **वुग्गाहेमाणे**—भ्रान्त (गुमराह) करता हुआ या सिद्धान्तविरुद्ध हठाग्रह युक्त करता हुआ। **वुप्पाएमाणे**—विरुद्ध (मिथ्या) ज्ञानयुक्त या दुर्विदग्ध करता हुआ। **अणालोइय पडिक्कंते**—आलोचना और प्रतिक्रमण नहीं करने से। **अत्ताणं झूसेइ**—अपने शरीर को झाक दिया। **तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता**—अनशन से तीस बार के भोजन का छेदन करते (भोजन से सम्बन्ध काटते हुए)।[2]

किल्विषिक देवों में उत्पत्ति का भगवत्समाधान

१०३. तए णं से भगवं गोयमे जमालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुसिस्से जमाली णामं अणगारे, से णं भंते! जमाली अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने? 'गोयमा' दि समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! मम अंतेवासी कुसिस्से जमाली नामं अणगारे से णं तदा मम एवं आइक्खमाणस्स ४ एयमट्ठं णो सद्दहइ णो पत्तियइ णो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे दोच्चं पि ममं अंतियाओ आयाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं तं चेव जाव देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने।

[१०३] तदनन्तर जमालि अनगार को कालधर्म प्राप्त हुआ जान कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर के पास आए और भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—[प्र०] भगवन्! यह निश्चित है कि जमालि अनगार आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य था। भगवन्! वह जमालि अनगार काल के समय काल करके कहाँ गया है, कहाँ उत्पन्न हुआ है? [उ०] हे गौतम! इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतमस्वामी से इस प्रकार कहा—गौतम! मेरा अन्तेवासी जमालि नामक अनगार वास्तव में कुशिष्य था। उस समय मेरे द्वारा (सत्सिद्धान्त) कहे जाने पर यावत् प्ररूपित किये जाने पर उसने मेरे कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की थी। उस (पूर्वोक्त) कथन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करता हुआ दूसरी बार भी वह अपने आप मेरे पास से चला गया और बहुत-से असद्भावों के प्रकट करने से, इत्यादि पूर्वोक्त कारणों से यावत् वह काल के समय काल करके किल्विषिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा. १ (मूलपाठ टिप्पण), पृ. ४७९

२ (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ४८९
(ख) भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. १७६२

विवेचन—जमालि की गति के विषय मे प्रश्नोत्तर—प्रस्तुत सू १०३ मे जमालि अनगार की मृत्यु के बाद गौतमस्वामी के द्वारा उसकी उत्पत्ति और गति के विषय मे पूछे जाने पर भगवान् ने उसका समाधान किया है।

सिद्धान्त निष्कर्ष—इस पाठ से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कोई साधक चाहे जितनी ऊँची क्रिया करे, कठोर चारित्र-पालन करे, किन्तु यदि उसकी दृष्टि एव मति मिथ्यात्वग्रस्त हो गई है, अज्ञानतिमिर से व्याप्त है, मिथ्याभिनिवेशवश वह मिथ्यासिद्धान्त को पकड़े हुए है, सरलता और जिज्ञासापूर्वक समाधान पाने की रुचि उसमे नहीं है, तो वह देवलोक मे जाने पर भी निम्नकोटि का देव बनता है और ससारपरिभ्रमण करता है।[1]

किल्विषिक देवो के भेद, स्थान एव उत्पत्तिकारण

१०४ कतिविहा ण भते! देवकिब्बिसिया पण्णत्ता ?

गोयमा! तिविहा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, त जहा—तिपलिओवमट्ठिईया, तिसागरोवमट्ठिईया, तेरससागरोवमट्ठिईया।

[१०४ प्र] भगवन्! किल्विषिक देव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१०४ उ] गौतम! किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) तीन पल्योपम की स्थिति वाले, (२) तीन सागरोपम की स्थिति वाले और (३) तेरह सागरोपम की स्थिति वाले।

१०५ कहि ण भते! तिपलिओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसति ?

गोयमा! उप्पि जोइसियाण, हिट्ठि सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु, एत्थ ण तिपलिओवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया परिवसति।

[१०५ प्र] भगवन्! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ?

[१०५ उ] गौतम! ज्योतिष्क देवो के ऊपर और सौधर्म-ईशान कल्पो (देवलोको) के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

१०६ कहि ण भते! तिसागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया परिवसति ?

गोयमा! उप्पि सोहम्मीसाणाण कप्पाण, हिट्ठि सणकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ ण तिसागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया परिवसति।

[१०६ प्र] भगवन्! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ?

[१०६ उ] गौतम! सौधर्म और ईशान कल्पो के ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के नीचे तीन सागरोपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

१०७ कहि ण भते! तेरससागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया देवा परिवसति ?

गोयमा! उप्पि बभलोगस्स कप्पस्स, हिट्ठि लतए कप्पे, एत्थ ण तेरससागरोवमट्ठिईया देवकिब्बिसिया देवा परिवसति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण), भा १, पृ ४८०

[१०७ प्र] भगवन्! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ?

[१०७ उ] गौतम! ब्रह्मलोककल्प के ऊपर तथा लान्तककल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

१०८ देवकिब्बिसिया णं भंते! केसु कम्मादाणेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति ?

गोयमा! जे इमे जीवा आयरियपडिणीया उवज्झायपडिणीया कुलपडिणीया गणपडिणीया, संघपडिणीया, आयरिय-उवज्झायाणं अयसकरा अवण्णकरा अकित्तिकरा बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहिं य अप्पाणं च परं च उभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवकिब्बिसिएसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—तिपलिओवमट्ठितीएसु वा तिसागरोवमट्ठितीएसु वा तेरससागरोवमट्ठितीएसु वा।

[१०८ प्र] भगवन्! किन कर्मों के आदान (ग्रहण या निमित्त) से किल्विषिकदेव, किल्विषिकदेव के रूप में उत्पन्न होते हैं ?

[१०८ उ] गौतम! जो जीव आचार्य के प्रत्यनीक (द्वेषी या विरोधी) होते हैं, उपाध्याय के प्रत्यनीक होते हैं, कुल, गण और संघ के प्रत्यनीक होते हैं तथा आचार्य और उपाध्याय का अयश (अपयश) करने वाले, अवर्णवाद बोलने वाले और अकीर्ति करने वाले हैं तथा बहुत से असत्य भावों (विचारों या पदार्थों) को प्रकट करने से, मिथ्यात्व के अभिनिवेशों (कदाग्रहों) से अपनी आत्मा को, दूसरों को और स्व पर दोनों को भ्रान्त और दुर्बोध करने वाले बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके उस अकार्य (पाप) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना काल के समय काल करके निम्नोक्त तीन में (से) किन्हीं किल्विषिकदेवों में किल्विषिकदेव रूप में उत्पन्न होते हैं। जैसे कि—(१) तीन पल्योपम की स्थिति वालों में, (२) तीन सागरोपम की स्थिति वालों में, अथवा (३) तेरह सागरोपम की स्थिति वालों में।

१०९ देवकिब्बिसिया णं भंते! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?

गोयमा! जाव चत्तारि पंच नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइं संसारं अणुपरियट्टित्ता तओ पच्छा सिज्झंति बुज्झंति जाव अंतं करेंति। अत्थेगइया अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टंति।

[१०९ प्र] भगवन्! किल्विषिक देव उन देवलोकों से आयु का क्षय होने पर, भवक्षय होने पर और स्थिति का क्षय होने के बाद च्यवकर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[१०९ उ] गौतम! कुछ किल्विषिकदेव, नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के चार पांच भव करके और इतना संसार-परिभ्रमण करके तत्पश्चात् सिद्ध—बुद्ध होते हैं, यावत् सब-दुःखों का अन्त करते हैं और कितने ही किल्विषिकदेव अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले चार गतिरूप संसार-कान्तार (संसार रूपी अटवी) में परिभ्रमण करते हैं।

विवेचन—किल्विषिक देव : प्रकार, निवास एवं उत्पत्तिकारण—प्रस्तुत ६ सूत्रों (सू. १०४ से १०९ तक) में किल्विषिक देवों के प्रकार, उनके निवासस्थान और उनके किल्विषिक रूप में उत्पन्न होने के कारण बताए गए हैं। अन्त में किल्विषिक देवों की अनन्तर गति का निरूपण किया गया है।[1]

किल्विषिक देव : स्वरूप और गतिविषयक समाधान—किल्विषिक देव उन्हें कहते हैं, जो पाप के कारण देवों में चाण्डालकोटि के देव होते हैं। वे देवसभा में चाण्डाल की तरह अपमानित होते हैं। देवसभा में जब कुछ बोलने के लिए मुंह खोलते हैं तो महर्द्धिक देव उन्हें अपमानित करके बिठा देते हैं, बोलने नहीं देते। कोई देव उनका आदर-सत्कार नहीं करता।

सू. १०९ में जो यह कहा गया है कि किल्विषिक देव, नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देव के ४-५ भव ग्रहण करके मोक्ष जाते हैं, यह सामान्य कथन है। वस्तुतः देव और नारक मर कर तुरन्त देव और नारक नहीं होते। वे वहाँ से मनुष्य या तिर्यञ्च में उत्पन्न होते हैं, इसके पश्चात् देवों या नारकों में उत्पन्न हो सकते हैं।[3]

कठिन शब्दों का अर्थ—उप्पि—ऊपर, हिट्ठि—नीचे। पडिणीया—प्रत्यनीक—शत्रु या विद्वेषी। अवण्णकरा—निन्दा करने वाले। अणुपरियट्टित्ता—परिभ्रमण करके। दीहमद्धं—दीर्घमार्ग रूप। चाउरंतससारकंतारं—चार गतियों वाले संसाररूप महारण्य को। अणवदग्गं—अनन्त। कम्मादाणेसु—कर्मों के आदान=कारण से। उववत्तारो—उत्पन्न होते हैं।[2]

किल्विषिक देवों में जमालि की उत्पत्ति का कारण

११०. जमाली णं भंते! अणगारे अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लूहाहारे तुच्छाहारे अरसजीवी विरसजीवी जाव तुच्छजीवी उवसंतजीवी पसंतजीवी विवित्तजीवी ?

हंता, गोयमा! जमाली णं अणगारे अरसाहारे विरसाहारे जाव विवित्तजीवी।

[११० प्र.] भगवन्! क्या जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, रूक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरसजीवी यावत् तुच्छजीवी, उपशान्तजीवी, प्रशान्तजीवी और विविक्तजीवी था ?

[११० उ.] हाँ, गौतम! जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्त-जीवी था।

१११. जति णं भंते! जमाली अणगारे अरसाहारे विरसाहारे जाव विवित्तजीवी कम्हा णं भंते! जमाली अणगारे कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमट्ठितीएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने ?

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ४८०-४८१
२. भगवती (पं. बेचरदासजी) भा. ४, पृ. १७६५-१७६६
३. वही, भा. ४ पृ. १७६८

गोयमा ! जमाली णं अणगारे आयरियपडिणीए उवज्झायपडिणीए आयरिय-उवज्झायाणं अयसकारए जाव वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे जाव उववन्ने।

[१११ प्र.] भगवन् ! यदि जमालि अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्तजीवी था, तो काल के समय काल करके वह लान्तककल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव के रूप में क्यों उत्पन्न हुआ ?

[१११ उ.] गौतम ! जमालि अनगार आचार्य का प्रत्यनीक (द्वेषी), उपाध्याय का प्रत्यनीक तथा आचार्य और उपाध्याय का अपयश करने वाला और उनका अवर्णवाद करने वाला था, यावत् वह मिथ्याभिनिवेश द्वारा अपने आपको, दूसरों को और उभय को भ्रान्ति में डालने वाला और दुर्विदग्ध (मिथ्याज्ञान के अहंकार वाला) बनाने वाला था, यावत् बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिक संलेखना से शरीर को कृश करके तथा तीस भक्त का अनशन द्वारा छेदन (छोड़) कर उस अकृत्यस्थान (पाप) की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही, उसने काल के समय काल किया, जिससे वह लान्तक देवलोक में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देवरूप में उत्पन्न हुआ।

विवेचन—स्वादजयी अनगार किल्विषिक देव क्यों ?—प्रस्तुत दो सूत्रों (११०-१११) में श्री गौतमस्वामी द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने पर कि जमालि जैसा स्वादजयी, प्रशान्तात्मा एवं तपस्वी अनगार लान्तककल्प में किल्विषिक देवों में क्यों उत्पन्न हुआ ? भगवान् ने उस आवृत रहस्य को स्पष्टरूप से खोल कर रख दिया है कि इतना त्यागी, तपस्वी होने पर भी देव-गुरु का द्वेषी, मिथ्या-प्ररूपक एवं मिथ्यात्वग्रस्त होने से किल्विषिकदेव हुआ।[1]

कठिन शब्दों का विशेषार्थ—उवसंतजीवी—जिसके जीवन में कषाय उपशान्त हो या अन्तर्वृत्ति से शान्त। पसंतजीवी—बहिर्वृत्ति से प्रशान्त जीवन वाला। विवित्तजीवी—पवित्र और स्त्री पशु-नपुंसकसंसर्गरहित एकान्त जीवन वाला।[2]

जमाली का भविष्य

११२. जमाली णं भंते ! देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! जाव पंच तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइं संसारं अणुपरियट्टित्ता ततो पच्छा सिज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ जमाली समत्तो ॥ ९.३३ ॥

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ. ४८१

२. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९०

[११२ प्र.] भगवन् ! वह जमालि देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर यावत् कहाँ उत्पन्न होगा ?

[११२ उ.] गौतम ! तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव के पाच भव ग्रहण करके और इतना संसार-परिभ्रमण करके तत्पश्चात् वह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् सर्व दुःखो का अन्त करेगा।[1]

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करने लगे।

विवेचन—जमालि को परम्परा से सिद्धिगति प्राप्ति—प्रस्तुत सू. ११२ मे जमालि के भविष्य के विषय मे पूछे जाने पर भगवान् ने भविष्य मे तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के ५ भव ग्रहण करने के पश्चात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने का कथन किया है।

शंका-समाधान—यहाँ शका उपस्थित होती है कि भगवान् सर्वज्ञ थे और जमालि के भविष्य मे प्रत्यनीक होने की घटना को जानते थे, फिर भी उसे क्यो प्रव्रजित किया ? इसका समाधान वृत्तिकार इस प्रकार करते हैं—अवश्यम्भावी भवितव्य को महापुरुष भी टाल नही सकते अथवा इसी प्रकार ही उन्होंने गुणविशेष देखा होगा। अर्हन्त भगवान् अमूढलक्षी होने से किसी भी क्रिया मे निष्प्रयोजन प्रवृत्त नही होते।[2]

॥ नवम शतक : तेतीसवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त), भा. १, पृ. ४८१

२ भगवती अ. वृत्ति पत्र ४९०

चउत्तीसइमो उद्देसो : पुरिसे

चौतीसवाँ उद्देशक : पुरुष

पुरुष और नोपुरुष का घातक

उपोद्घात

१ तेण कालेण तेण समएण रायगिहे जाव एव वदासी—

[१] उस काल और उस समय मे राजगृह नगर था । वहाँ भगवान् गौतम ने यावत् भगवान् से इस प्रकार पूछा—

पुरुष के द्वारा अश्वादिघात सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

२ [१] पुरिसे ण भते ! पुरिस हणमाणे कि पुरिस हणति, नोपुरिस हणति ?

गोयमा ! पुरिस पि हणति, नोपुरिसे वि हणति ।

[२-१ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष, पुरुष की घात करता हुआ क्या पुरुष की ही घात करता है अथवा नोपुरुष (पुरुष के सिवाय अन्य जीवो) की भी घात करता है ?

[२-१ उ] गौतम ! वह (पुरुष) पुरुष की भी घात करता है और नोपुरुष की भी घात करता है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'पुरिस पि हणइ, नोपुरिसे वि हणइ' ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवइ—'एव खलु अह एग पुरिस हणामि' से ण एग पुरिस हणमाणे अणेगे जीवे हणइ । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ 'पुरिस पि हणइ नोपुरिसे वि हणइ ।'

[२-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वह पुरुष को भी घात करता है, नोपुरुष की भी घात करता है ?

[२-२ उ] गौतम ! (घात करने के लिए उद्यत) उस पुरुष के मन मे ऐसा विचार होता है कि मैं एक ही पुरुष को मारता हूँ, किन्तु वह एक पुरुष को मारता हुआ अन्य अनेक जीवो को भी मारता है । इसी दृष्टि से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वह घातक, पुरुष को भी मारता है और नोपुरुष को भी मारता है ।

३ [१] पुरिसे ण भते ! आस हणमाणे कि आस हणइ, नोआसे वि हणइ ?

गोयमा ! आस पि हणइ, नोआसे वि हणइ ।

[३-१ प्र] भगवन ! अश्व को मारता हुआ कोई पुरुष क्या अश्व को ही मारता है या नो-अश्व (अश्व के सिवाय अन्य जीवो को भी) मारता है ?

[३-१ उ] गौतम ! वह (अश्वघात के लिए उद्यत पुरुष) अश्व को भी मारता है और नो-अश्व (अश्व के अतिरिक्त दूसरे जीवो) को भी मारता है ।

[२] से केणट्ठेण ? अट्ठो तहेव ।

[३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[३-२ उ] गौतम ! इसका उत्तर पूर्ववत् समझना चाहिए ।

४ एय हत्थि सीह वग्घ जाव चिल्ललग ।

[४] इसी प्रकार हाथी, सिंह, व्याघ्र (बाघ) चित्रल तक समझना चाहिए ।

५ [१] पुरिसे ण भते ! अन्नयर तसपाण हणमाणे कि अन्नयर तसपाण हणइ, नोअन्नयरे तसे पाणे हणइ ?

गोयमा ! अन्नयर पि तसपाण हणइ, नोअन्नयरे वि तसे पाणे हणइ ।

[५-१ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष किसी एक त्रस प्राणी को मारता हुआ क्या उसी त्रसप्राणी को मारता है, अथवा उसके सिवाय अन्य त्रसप्राणियो को भी मारता है ।

[५-१ उ] गौतम ! वह उस त्रसप्राणी को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रसप्राणियो को भी मारता है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ 'अन्नयर पि तसपाण [हणइ] नोअन्नयरे वि तसे पाणे हणइ' !

गोयमा ! तस्स ण एव भवइ—एव खलु अह एग अन्नयर तस पाण हणामि, से ण एग अन्नयर तस पाण हणमाणे अणेगे जीवे हणइ । से तेणट्ठेण गोयमा ! त चेव । सव्वे वि एक्कगमा ।

[५-२ प्र] भगवन् ! किस हेतु स आप ऐसा कहते हैं कि वह पुरुष उस त्रसजीव को भी मारता है और उसके सिवाय अन्य त्रसजीवो को भी मार देता है ।

[५-२ उ] गौतम ! उस त्रसजीव को मारने वाले पुरुष के मन मे ऐसा विचार होता है कि मैं उसी त्रसजीव को मार रहा हूँ, किन्तु वह उस त्रसजीव को मारता हुआ, उसके सिवाय अन्य अनेक त्रसजीवो को भी मारता है । इसलिए, हे गौतम ! पूर्वोक्तरूप स जानना चाहिए । इन सभी का एक समान पाठ (आलापक) है ।

६ [१] पुरिसे ण भते ! इसि हणमाणे कि इसि हणइ, नोइसि हणइ ?

गोयमा ! इसि पि हणइ नोइसि पि हणइ ।

[६-१ प्र] भगवन् ! कोई पुरुष, ऋषि को मारता हुआ क्या ऋषि को ही मारता है, अथवा नोऋषि (ऋषि के सिवाय अन्य जीवो) को भी मारता है ?

[६-१ उ] गौतम ! वह (ऋषि को मारने वाला पुरुष) ऋषि को भी मारता है, नोऋषि को भी मारता है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ जाव नोइसि पि हणइ ?

गोयमा ! तस्स ण एव भवइ—एव खलु अह एग इसि हणामि, से ण एग इसि हणमाणे अणते जीवे हणइ से तेणट्ठेण निक्खेवओ ।

[६-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है कि ऋषि को मारने वाला पुरुष ऋषि को भी मारता है और नोऋषि को भी ?

[६-२ उ.] गौतम ! ऋषि को मारने वाले उस पुरुष के मन में ऐसा विचार होता है कि मैं एक ऋषि को मारता हूँ, किन्तु वह एक ऋषि को मारता हुआ अनन्त जीवों को मारता है। इस कारण हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

विवेचन—प्राणिघात के सम्बन्ध में सापेक्ष सिद्धान्त—(१) कोई व्यक्ति किसी पुरुष को मारता है तो कभी केवल उसी पुरुष का वध करता है, कभी उसके साथ अन्य एक जीव का और कभी अन्य जीवों का वध भी करता है, यों तीन भंग होते हैं, क्योंकि कभी उस पुरुष के आश्रित जूं, लीख, कृमि-कीडे आदि या रक्त, मवाद आदि के आश्रित अनेक जीवों का वध कर डालता है। शरीर को सिकोडने-पसारने आदि में भी अनेक जीवों का वध सम्भव है।

(२) ऋषि का घात करता हुआ व्यक्ति अनन्त जीवों का घात करता है, यह एक ही भंग है। इसका कारण यह है कि ऋषि अवस्था में वह सर्वविरत होने से अनन्त जीवों का रक्षक होता है किन्तु मर जाने पर वह अविरत होकर अनन्त जीवों का घातक बन जाता है। अथवा जीवित रहता हुआ ऋषि अनेक प्राणियों को प्रतिबोध देता है, वे प्रतिबोधप्राप्त प्राणी क्रमशः मोक्ष पाते हैं। मुक्त जीव अनन्त संसारी प्राणियों के अघातक होते हैं। अतः उन अनन्त जीवों की रक्षा में जीवित ऋषि कारण है। इसलिए कहा गया है कि ऋषिघातक व्यक्ति अन्य अनन्त जीवों की घात करता है।[1]

घातक व्यक्ति को वैरस्पर्श की प्ररूपणा

७. [१] पुरिसे णं भंते ! पुरिसं हणमाणे किं पुरिसवेरेणं पुट्ठे, नोपुरिसवेरेणं पुट्ठे ?

गोयमा ! नियमा ताव पुरिसवेरेणं पुट्ठे १, अहवा पुरिसवेरेण य णोपुरिसवेरेण य पुट्ठे २, अहवा पुरिसवेरेण य नोपुरिसवेरेहि य पुट्ठे ३।

[७-१ प्र.] भगवन् ! पुरुष को मारता हुआ कोई भी व्यक्ति क्या पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा नोपुरुष-वैर (पुरुष के सिवाय अन्य जीव के साथ वैर) से स्पृष्ट भी होता है ?

[७-१ उ.] गौतम ! वह व्यक्ति नियम से (निश्चित रूप से) पुरुषवैर से स्पृष्ट होता ही है। अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुषवैरों (पुरुष के अतिरिक्त अनेक जीवों के वैर) से स्पृष्ट होता है।

[२] एवं आसं, एवं जाव चिल्ललगं जाव अहवा चिल्ललगवेरेण य णोचिल्ललगवेरेहि य पुट्ठे।

[७-२] इसी प्रकार अश्व से लेकर यावत् चित्रल के विषय में भी जानना चाहिए, यावत् अथवा चित्रलवैर से और नोचित्रलवैरों से स्पृष्ट होता है।

८. पुरिसे णं भंते ! इसिं हणमाणे किं इसिवेरेणं पुट्ठे, णोइसिवेरेणं पुट्ठे ?

गोयमा ! नियमा ताव इसिवेरेणं पुट्ठे १, अहवा इसिवेरेण य णोइसिवेरेण य पुट्ठे २, अहवा इसिवेरेण य नोइसिवेरेहि य पुट्ठे ३।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति ४०१ (ख) भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी) पृ. १७१६

[८ प्र] भगवन् ! ऋषि को मारता हुआ कोई पुरुष, क्या ऋषिवैर से स्पृष्ट होता है, या नोऋषिवैर से स्पृष्ट होता है ?

[८ उ] गौतम ! वह (ऋषिघातक) नियम से ऋषिवैर और नोऋषिवैरों से स्पृष्ट होता है।

विवेचन—घातक व्यक्ति के लिए वैरस्पर्शप्ररूपणा—(क) पुरुष को मारने वाले व्यक्ति के लिए वैरस्पर्श के तीन भंग होते हैं—(१) वह नियम से पुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, (२) पुरुष को मारते हुए किसी दूसरे प्राणी का वध करे तो एक पुरुषवैर से और एक नोपुरुषवैर से स्पृष्ट होता है, (३) यदि एक पुरुष का वध करता हुआ, अन्य अनेक प्राणियों का वध करे तो वह पुरुषवैर से और अन्य अनेक नोपुरुषवैरों से स्पृष्ट होता है। हस्ती, अश्व आदि के सम्बन्ध में भी सर्वत्र ये ही तीन भंग होते हैं। (ख) सोपक्रम आयुवाले ऋषि का कोई वध करे तो वह प्रथम और तृतीय भंग का अधिकारी बनता है। यथा—वह ऋषिवैर से तो स्पृष्ट होता ही है, किन्तु जब सोपक्रम आयु वाले अचरमशरीरी ऋषि का पुरुष का वध होता है तब उसकी अपेक्षा से यह तीसरा भंग कहा गया है।[1]

एकेन्द्रिय जीवों की परस्पर श्वासोच्छ्वाससम्बन्धी प्ररूपणा

९. पुढविकाइए णं भंते ! पुढविकायं चेव आणमति वा पाणमति वा ऊससति वा नीससति वा ?

हंता गोयमा ! पुढविक्काइए पुढविक्काइयं चेव आणमति वा जाव नीससति वा।

[९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है ?

[९ उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है।

१०. पुढविक्काइए णं भंते ! आउक्काइयं आणमति वा जाव नीससति वा ?

हंता, गोयमा ! पुढविक्काइए आउक्काइयं आणमति वा जाव नीससति वा।

[१० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को यावत् श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ?

[१० उ] हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को (आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में) ग्रहण करता और छोड़ता है।

११. एवं तेउक्काइयं वाउक्काइयं। एवं वणस्सइकाइयं।

[११] इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव को भी यावत् ग्रहण करता और छोड़ता है।

१२. आउक्काइए णं भंते ! पुढविक्काइयं आणमति वा पाणमति वा० ? एवं चेव।

---

१. भगवतीसूत्र अ. वृत्ति, पत्र ४९१

[१२ प्र.] भगवन् ! अप्कायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं ?

[१२ उ.] गौतम ! पूर्वोक्तरूप से ही जानना चाहिए।

१३. आउक्काइए णं भंते ! आउक्काइयं चेव आणमंति वा० ? एवं चेव।

[१३ प्र.] भगवन् ! अप्कायिक जीव, अप्कायिक जीव को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ?

[१३ उ.] (हाँ, गौतम !) पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए।

१४. एवं तेउ-वाउ-वणस्सइकाइयं।

[१४] इसी प्रकार तेजस्कायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के विषय में भी जानना चाहिए।

१५. तेउक्काइए णं भंते ! पुढविक्काइयं आणमंति वा ? एवं जाव वणस्सइकाइए णं भंते ! वणस्सइकाइयं चेव आणमंति वा० ? तहेव।

[१५ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक जीव पृथ्वीकायिकजीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिक जीव को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ?

[१५ उ.] (गौतम !) यह सब पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिए।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवों की श्वासोच्छ्वास सम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रों (९ से १५ तक) में बताया गया है कि पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं। इसी प्रकार अप्कायिकादि चारों स्थावर जीव भी पृथ्वीकायिकादि पांचों स्थावर जीवों को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हैं। इन पांचों के २५ आलापक (सूत्र) होते हैं। जैसे वनस्पति एक के ऊपर दूसरी स्थित हो कर उसके तेज को ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि भी अन्यान्य सम्बद्ध होने से उस रूप में श्वासोच्छ्वास (प्राणापान) आदि कर लेते हैं।[1]

आणमंति पाणमंति भावार्थ—आभ्यन्तर श्वास और उच्छ्वास लेता है।[2]

ऊससंति नीससंति—बाह्य श्वास और उच्छ्वास ग्रहण करते-छोड़ते हैं।[3]

पृथ्वीकायिकादि द्वारा पृथ्वीकायिकादि को श्वासोच्छ्वास करते समय क्रिया-प्ररूपणा

१६. पुढविक्काइए णं भंते ! पुढविकाइयं चेव आणममाणे वा पाणममाणे वा ऊससमाणे वा नीससमाणे वा कइकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

---

१. (क) भगवती भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी) पृ. १७८१ (ख) भगवती अ. वृत्ति पत्र ४९२

२. वही, पत्र ४९२ ३. वही, पत्र ४९२

[१६ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[१६ उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं।

१७ पुढविक्काइए णं भंते ! आउक्काइयं आणममाणे वा० ? एवं चेव।

[१७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीवों को आभ्यन्तर एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[१७ उ] हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना चाहिए।

१८ एवं जाव वणस्सइकाइयं।

[१८] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए।

१९ एवं आउक्काइएण वि सव्वे वि भाणियव्वा।

[१९] इसी प्रकार अप्कायिक जीवों के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि सभी का कथन करना चाहिए।

२० एवं तेउक्काइएण वि।

[२०] इसी प्रकार तेजस्कायिक के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि का कथन करना चाहिए।

२१ एवं वाउक्काइएण वि।

[२१] इसी प्रकार वायुकायिक जीवों के साथ भी पृथ्वीकायिक आदि का कथन करना चाहिए।

२२ वणस्सइकाइए णं भंते ! वणस्सइकाइयं चेव आणममाणे वा० ? पुच्छा।

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

[२२ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीवों को आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२२ उ] गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं।

विवेचन—श्वासोच्छ्वास में क्रियाप्ररूपणा—पृथ्वीकायिकादि जीव पृथ्वीकायिकादि जीवों को श्वासोच्छ्वासरूप में ग्रहण करते हुए, छोड़ते हुए, जब तक उनको पीड़ा उत्पन्न नहीं करते, तब तक कायिकी आदि तीन क्रियाएँ लगती हैं, जब पीड़ा उत्पन्न करते हैं तब पारितापनिकी सहित चार क्रियाएँ लगती हैं और जब उन जीवों का वध करते हैं तब प्राणातिपातिकी सहित पांचों क्रियाएँ लगती हैं।[1]

१ (क) पांच क्रियाएँ इस प्रकार हैं—(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५) प्राणातिपातिकी।

(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९२

वायुकाय को वृक्षमूलादि कपाने-गिराने संबंधी क्रिया

२३ वाउक्काइए ण भंते ! रुक्खस्स मूल पचालेमाणे वा पवाडेमाणे वा कइकिरिए ?

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए ।

[२३ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीव, वृक्ष के मूल को कपाते हुए और गिराते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

[२३ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित चार क्रिया वाले और कदाचित पाच क्रिया वाले होते है ।

२४ एव कद ।

[२४] इसी प्रकार कद को कपाने आदि के सम्बन्ध मे जानना चाहिए ।

२५ एव जाव बीय पचालेमाणे वा० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

॥ चउत्तीसइमो उद्देसो समत्तो ॥९ ३४॥

॥ नवम सत समत्त ॥९॥

[२५ प्र] इसी प्रकार यावत् बीज को कपाते या गिराते हुए आदि की क्रिया से सम्बन्धित प्रश्न ।

[२५ उ] गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले, कदाचित् पाच क्रिया वाले होते हैं ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर यावत गौतमस्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—वायुकायिकों द्वारा वृक्षादि कम्पन-पातन-सम्बन्धी क्रिया—वायुकायिक जीव वृक्ष के मूल को तभी कम्पित कर सकते हैं या गिरा सकते हैं, जबकि वृक्ष नदी के किनारे हो और उसका मूल पृथ्वी से ढंका हुआ न हो।

शका-समाधान—वृक्ष के मूल को गिराने मात्र मे पारितापनिकी सहित तीन क्रियाएँ वायुकायिकजीवों को कैसे लग सकती हैं ? इसका समाधान वृत्तिकार यो करते हैं 'प्रवचनसूत्र की प्रमाणता से तीन क्रियाएँ सम्भव हैं ।[1]

॥ नवम शतक चौतीसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ नवम शतक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति पत्र ४९२

दसमं सयं : दशम शतक

प्राथमिक

- भगवतीसूत्र के दसवें शतक में कुल चौतीस उद्देशक हैं, जिनमें मनुष्य जीवन से तथा दिव्य जीवन से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

- दिशाएँ, मानव के लिए ही नहीं, समस्त सज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों के लिए अत्यन्त मार्गदर्शक बनती हैं, विशेषतः जल, स्थल एवं नभ से यात्रा करने वाले मनुष्य को अगर दिशाओं का बोध न हो तो वह भटक जाएगा, पथभ्रष्ट हो जाएगा। जिस श्रावक ने दिशापरिमाणव्रत अंगीकार किया हो, उसके लिए तो दिशा का ज्ञान अतीव आवश्यक है। प्राचीनकाल में समुद्रयात्री कुतुबनुमा (दिशादर्शक-यन्त्र) रखते थे, जिसकी सुई सदैव उत्तर की ओर रहती है। योगी जन रात्रि में ध्रुव तारे को देखकर दिशा ज्ञात करते हैं। इसीलिए श्री गौतमस्वामी ने भगवान् से प्रथम उद्देशक में दिशाओं के स्वरूप के विषय में प्रश्न किया है कि वे कितनी हैं ? वे जीवरूप हैं या अजीवरूप ? उनके देवता कौन-कौन से हैं जिनके आधार पर उनके नाम पड़े हैं ? दिशाओं को भगवान ने जीवरूप भी बताया है, अजीवरूप भी। विदिशाएँ जीवरूप नहीं, किन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश रूप हैं तथा रूपी अजीवरूप भी हैं, अरूपी अजीवरूप भी हैं, इत्यादि वर्णन पढ़ने से यह स्पष्ट प्रेरणा मिलती है कि प्रत्येक साधक को दिशाओं में स्थित जीव या अजीव की किसी प्रकार से आशातना या असंयम नहीं करना चाहिए। अन्तिम दो सूत्रों में शरीर के प्रकार एवं उससे सम्बन्धित तथ्यों का अतिदेश किया है।

- द्वितीय उद्देशक में कषायभाव में स्थित संवृत अनगार को विविध रूप देखते हुए साम्परायिकी और अकषायभाव में स्थित को ऐर्यापथिकी क्रिया लगने का सयुक्तिक प्रतिपादन है। साथ ही योनियों और वेदनाओं के भेद-प्रभेद एवं स्वरूप का तथा मासिक भिक्षुप्रतिमा की यथार्थ आराधना का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके पश्चात् अकृत्यसेवी भिक्षु की आराधना-अनाराधना का सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है। यह उद्देशक साधकों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण व प्रेरक है।

- तृतीय उद्देशक में देवों और देवियों की, एक दूसरे के मध्य में होकर गमन करने की सहज शक्ति और अपरा शक्ति (वैक्रियशक्ति) का निरूपण किया गया है। १८वें सूत्र में दौड़ते हुए घोड़े की खु-खु ध्वनि का हेतु बताया गया है और अन्तिम १९वें सूत्र में असत्यामृषाभाषा के १२ प्रकार बताकर उनमें से बैठे रहेंगे, सोयेंगे, खड़े होंगे आदि भाषा को प्रज्ञापनी बताकर भगवान् ने उसके मृषा होने का निषेध किया है।

- चतुर्थ उद्देशक के प्रारम्भ में गणधर गौतमस्वामी से श्यामहस्ती अनगार के त्रायस्त्रिंशक देवों के अस्तित्व हेतु तथा सदाकाल स्थायित्व के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर हैं। अन्त में गौतम-

स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे स्वय भगवान् बताते हैं कि द्रव्यार्थिकनय मे त्रायस्त्रिशक देव प्रवाह-रूप से नित्य हैं, किन्तु पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिगत रूप मे पुराने देवा का च्यवन हो जाता है, उनके स्थान पर नये त्रायस्त्रिशक देव जन्म लेते हैं। त्रायस्त्रिशक देव बनने के जो कारण बताए हैं, उनमे दो बाते स्पष्ट होती हैं—[१] जो भवनपति देवो के इन्द्रो के त्रायस्त्रिशक देव हुए, वे पूवजन्म मे पहले तो उग्रविहारी शुद्धाचारी श्रमणोपासक थे, किन्तु बाद मे शिथिलाचारी प्रमादी बन गए तथा अन्तिम समय मे सल्लेखना-सथारा के समय आलोचना प्रतिक्रमणादि नही किया तथा [२] जो वैमानिक देवेन्द्रो के त्रायस्त्रिशक देव हुए, वे पूवजन्म मे पहले और पीछे उग्रविहारी शुद्धाचारी श्रमणोपासक रहे और अन्तिम समय मे सलेखना-सथारा के दौरान उन्होने आलोचना, प्रतिक्रमणादि करके आत्मशुद्धि कर ली। इस समग्र पाठ से यह स्पष्ट है कि वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवो मे त्रायस्त्रिशक देव नही होते।

☐ पचम उद्देशक मे चमरेन्द्र आदि भवनवासी देवेन्द्रो तथा उनके लोकपालो का, पिशाच आदि व्यन्तरजातीय देवो के इन्द्रो की, चन्द्रमा, सूय एव ग्रहो की एव शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियो की सख्या, प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार की सख्या एव अपने-अपने नाम के अनुरूप राजधानी एव सिहासन पर बैठकर अपनी अपनी सुधर्मा सभा मे स्वदेवीवग के साथ मैथुन निमित्तक भोग भोगने की असमथता का निरूपण किया है।

☐ छठे उद्देशक मे शक्रेन्द्र की सौधमकल्प स्थित सुधर्मासभा की लम्बाई-चौडाई, विमाना की सख्या तथा शक्रेन्द्र के उपपात, अभिषेक, अलकार, अचनिका, स्थिति, यावत् आत्मरक्षक इत्यादि परिवार के समस्त वणन का अतिदेश किया गया है। अन्तिम सूत्र मे शक्रेन्द्र की ऋद्धि, द्युति, यश, प्रभाव, स्थिति, लेश्या, विशुद्धि एव सुख आदि का निरूपण भी अतिदेशपूवक किया गया है।

☐ सातवें से चौतीसवें उद्देशक तक मे उत्तरदिशावर्ती २८ अन्तर्द्वीपो का निरूपण भी जीवा-जीवाभिगम सूत्र के अतिदेशपूवक किया गया है।[1]

☐ कुल मिलाकर पूरे शतक मे मनुष्यो और देवो की आध्यात्मिक, भौतिक एव दिव्य शक्तियो का निर्देश किया गया है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, विसयाणुक्कमो पृ ३७-३८

दसमं सयं : दशम शतक

संग्रहणी–गाथार्थ

दशम शतक चौंतीस उद्देशकों की संग्रहगाथा

१ दिस १ संवुडअणगारे २ आइड्ढी ३ सामहत्थि ४ देवि ५ सभा ६ ।

उत्तर अंतरदीवा ७-३४ दसमम्मि सयम्मि चोत्तीसा ॥ १ ॥

[१] दसवें शतक के चौंतीस उद्देशक इस प्रकार हैं—

(१) दिशा, (२) संवृत अनगार, (३) आत्मऋद्धि, (४) श्यामहस्ती, (५) देवी, (६) सभा और (७ से ३४ तक) उत्तरवर्ती अन्तर्द्वीप।

विवेचन—दशम शतक के चौंतीस उद्देशक—प्रस्तुत सूत्र (१) में दसवें शतक के चौंतीस उद्देशकों का नामोल्लेख किया गया है। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है (१) प्रथम उद्देशक में दिशाओं के सम्बन्ध में निरूपण है। (२) द्वितीय उद्देशक में संवृत अनगार आदि के विषय में निरूपण है। (३) तृतीय उद्देशक में देवावासों को उल्लंघन करने में देवों की आत्मऋद्धि (स्वशक्ति) का निरूपण है। (४) चतुर्थ उद्देशक में श्रमण भगवान् महावीर के 'श्यामहस्ती' नामक शिष्य के प्रश्नों से सम्बन्धित कथन है। (५) पंचम उद्देशक में चमरेन्द्र आदि इन्द्रों की देवियों (अग्रमहिषियों) के सम्बन्ध में निरूपण है। (६) छठे उद्देशक में देवों की सुधर्मासभा के विषय में प्रतिपादन है और ७ वें से ३४ वें उद्देशक में उत्तरदिशा के २८ अन्तर्द्वीपों के विषय में २८ उद्देशक हैं।

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९२

पढमो उद्देसओ प्रथम उद्देशक

'दिस' : दिशाओ का स्वरूप

उपोद्घात

२ रायगिहे जाव एव वदासी—

[२] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने (श्रमण भगवान महावीर स्वामी से) यावत् इस प्रकार पूछा—

दिशाओं का स्वरूप

३ किमिय भते ! पाईणा ति पवुच्चति ?

गोयमा ! जीवा चेव अजीवा चेव ।

[३ प्र] भगवन् ! यह पूर्वदिशा क्या कहलाती है ?

[३ उ] गौतम ! यह जीवरूप भी है और अजीवरूप भी है ।

४ किमिय भते ! पडीणा ति पवुच्चति ?

गोयमा ! एव चेव ।

[४ प्र] भगवन् ! यह पश्चिमदिशा क्या कहलाती है ?

[४ उ] गौतम ! यह भी पूर्वदिशा के समान जानना चाहिए ।

५ एव दाहिणा, एव उदीणा, एव उड्ढा, एव अहा वि ।

[५] इसी प्रकार दक्षिणदिशा, उत्तरदिशा, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा के विषय मे भी जानना चाहिए ।

विवेचन—दिशाएँ जीव अजीवरूप क्यों ?—प्रस्तुत तीन सूत्रो (३-४-५) मे पूर्वादि छहो दिशाओ के स्वरूप के सम्बन्ध मे गौतमस्वामी द्वारा पूछे जाने पर भगवान् ने उन्हे जीवरूप भी बताया है और अजीवरूप भी बताया है । पूर्व आदि सभी दिशाएँ जीवरूप इसलिए है कि उनमे एकेन्द्रिय आदि जीव रहे हुए हैं और अजीवरूप इसलिए हैं कि उनमे अजीव (धर्मास्तिकायादि) पदार्थ रहे हुए हैं ।[1] पूर्वदिशा का 'प्राची' और पश्चिमदिशा का 'प्रतीची' नाम भी प्रसिद्ध है ।

दूसरे दार्शनिको—विशेषत नैयायिक वैशेषिकों ने दिशा को द्रव्यरूप माना है, कई दर्शन-परम्पराओ मे दिशाओ को देवतारूप मान कर उनकी पूजा करने का विधान किया है । तथागत बुद्ध ने द्रव्यदिशाओ की अपेक्षा भावदिशाओ की पूजा का स्वरूप बताया है । किन्तु भगवान् महावीर ने पूर्वोक्त कारणो से इन्हे जीव अजीवरूप बताया है ।[2]

---

१ भगवती अ वृत्ति पत्र ६९२

२ (क) पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नव । —तर्कसग्रह सू २

(ख) सिगालसुत्त जातक

दिशाओं के दस भेद

६ कति णं भंते ! दिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमा १ पुरत्थिमदाहिणा २ दाहिणा ३ दाहिणपच्चत्थिमा ४ पच्चत्थिमा ५ पच्चत्थिमुत्तरा ६ उत्तरा ७ उत्तरपुरत्थिमा ८ उड्ढा ९ अहा १० ।

[६ प्र.] भगवन् ! दिशाएँ कितनी कही गई हैं ?

[६ उ.] गौतम ! दिशाएँ दस कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) पूर्व, (२) पूर्व-दक्षिण (आग्नेयकोण), (३) दक्षिण, (४) दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण), (५) पश्चिम, (६) पश्चिमोत्तर (वायव्यकोण), (७) उत्तर, (८) उत्तरपूर्व (ईशानकोण), (९) ऊर्ध्वदिशा और (१०) अधोदिशा ।

विवेचन—दस दिशाओं के नाम—प्रस्तुत छठे सूत्र में दश दिशाओं के नामों का उल्लेख किया गया है। पूर्वसूत्र में ६ दिशाएँ बताई गई थीं। इसमें चार विदिशाओं के ४ कोणों (पूर्वदक्षिण, दक्षिणपश्चिम, पश्चिमोत्तर एवं उत्तरपूर्व) को जोड़ कर १० दिशाएँ बताई गई हैं।[1]

दिशाओं का यन्त्र—

दश दिशाओं के नामान्तर

७ एयासि णं भंते ! दसण्हं दिसाणं कति णामधेज्जा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

इंदऽग्गेयी १ २ जम्मा य ३ नेरती ४ वारुणी ५ य वायव्वा ६ ।
सोमा ७ ईसाणी या ८ विमला य ९ तमा य १० बोधव्वा ॥२॥

[७ प्र.] भगवन् ! इन दस दिशाओं के कितने नाम कहे गए हैं ?

[७ उ.] गौतम ! (इनके) दस नाम हैं, वे इस प्रकार—

[गाथार्थ]—(१) ऐन्द्री (पूर्व), (२) आग्नेयी (अग्निकोण), (३) याम्या (दक्षिण) (४) नैर्ऋती (नैऋत्यकोण), (५) वारुणी (पश्चिम), (६) (वायव्या वायव्यकोण), (७) सौम्या (उत्तर), (८) ऐशानी (ईशानकोण), (९) विमला (ऊर्ध्वदिशा) और (१०) तमा (अधोदिशा), ये दस (दिशाओं के) नाम समझने चाहिए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा. २, पृ. ४८५

विवेचन—दिशाओं के ये दस नामान्तर क्यों ? प्रस्तुत ७वें सूत्र में दिशाओं के दूसरे नामों का उल्लेख किया गया है। पूर्वदिशा (ऐन्द्री) इसलिए कहलाती है क्योंकि उसका स्वामी (देवता) इन्द्र है। इसी प्रकार अग्नि, यम, नैऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान देवता स्वामी होने से इन दिशाओं को क्रमशः आग्नेयी, याम्या, नैऋती, वारुणी, वायव्या, सौम्या और ऐशानी कहते हैं। प्रकाश-युक्त होने से ऊर्ध्वदिशा को 'विमला' और अन्धकारयुक्त होने से अधोदिशा को 'तमा' कहते हैं।[1]

दश दिशाओं की जीव-अजीव सम्बन्धी वक्तव्यता

८. इंदा णं भंते ! दिसा किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपदेसा ?

गोयमा ! जीवा वि, तं चेव जाव अजीवपएसा वि। जे जीवा ते नियमं एगिंदिया बेइंदिया जाव पंचिंदिया, अणिंदिया। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा जाव अणिंदियदेसा। जे जीवपएसा ते नियमं एगिंदियपएसा जाव अणिंदियपएसा। जे अजीवा, ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूविअजीवा य, अरूविअजीवा य। जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—खंधा १ खंधदेसा २ खंधपएसा ३ परमाणुपोग्गला ४।

जे अरूविअजीवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—नो धम्मत्थिकाये, धम्मत्थिकायस्स देसे १ धम्मत्थिकायस्स पदेसा २, नो अधम्मत्थिकाये, अधम्मत्थिकायस्स देसे ३ अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ४, नो आगासत्थिकाये, आगासत्थिकायस्स देसे ५ आगासत्थिकायस्स पदेसा ६ अद्धासमये ७।

[८ प्र.] भगवन् ! ऐन्द्री पूर्व दिशा जीवरूप है, जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप है, अथवा अजीवरूप है, अजीव के देशरूप है या अजीव के प्रदेशरूप है ?

[८ उ.] गौतम ! वह (ऐन्द्री दिशा) जीवरूप भी है, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह अजीवप्रदेशरूप भी है।

उसमें जो जीव हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, यावत् पंचेन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय (केवलज्ञानी) हैं। जो जीव के देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय जीव के देश हैं, यावत् अनिन्द्रिय जीव के देश हैं। जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं, यावत् अनिन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं। उसमें जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के हैं, यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीवों के चार भेद हैं यथा—(१) स्कन्ध, (२) स्कन्धदेश, (३) स्कन्धप्रदेश और (४) परमाणु-पुद्गल। जो अरूपी अजीव हैं, वे सात प्रकार के हैं, यथा—(१) (स्कन्धरूप समग्र) धर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश है, (२) धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, (३) (स्कन्धरूप) अधर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश है (४) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं, (५) (स्कन्धरूप) आकाशास्तिकाय नहीं, किन्तु आकाशास्तिकाय का देश है, (६) आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं और (७) अद्धासमय अर्थात् काल है।

---

1 इन्द्रो देवता यस्याः सा ऐन्द्री। अग्निर्देवता यस्याः साऽऽग्नेयी ... ईशानदेवता ऐशानी। विमलतया विमला। तमा रात्रिस्तदाकारत्वात्तमा—अन्धकारेत्यर्थः। —भगवती अ. वृत्ति पत्र ४९३

विवेचन—दिशा विदिशाओं का आकार एवं व्यापकत्व—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ये चारों महादिशाएँ गाडी (शकट) की उद्धि (ओढण) के आकार की हैं और आग्नेयी, नैऋती, वायव्या और ऐशानी ये चार विदिशाएँ मुक्तावली (मोतियों की लडी) के आकार की हैं। ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा रुचकाकार हैं, अर्थात्—मेरुपर्वत के मध्यभाग में ८ रुचकप्रदेश हैं, जिनमें से चार ऊपर की ओर और चार नीचे की ओर गोस्तनाकार हैं। यहीं से दस दिशाएँ निकली हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ये चारों दिशाएँ मूल में दो-दो प्रदेशी निकली हैं और आगे दो-दो प्रदेश की वृद्धि होती हुई लोकान्त तक एवं अलोक में चली गई हैं। लोक में असंख्यात प्रदेश तक और अलोक में अनन्त प्रदेश तक बढी हैं। इसलिए इनकी आकृति गाडी के ओढण के समान है। चारों विदिशाएँ एक एक प्रदेश वाली निकली हैं और लोकान्त तक एकप्रदेशी ही चली गई हैं। ऊर्ध्व और अधोदिशा चार-चार प्रदेशी निकली हैं और लोकान्त तक एवं अलोक में भी चली गई हैं। पूर्वदिशा जीवादिरूप है किन्तु यहाँ समग्र धर्मास्तिकायादि नहीं, किन्तु धर्म, अधर्म एवं आकाश का एक देशरूप और असंख्यप्रदेशरूप हैं तथा अद्धा-समयरूप है। इस प्रकार अरूपी अजीवरूप सात प्रकार की पूर्वदिशा है।[1]

९ अग्गेयी णं भंते ! दिसा किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा० पुच्छा।

गोयमा ! णो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा। अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसे १, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसा २, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा ३। अहवा एगिंदियदेसा य तेइंदियस्स देसे, एवं चेव तियभंगो भाणियव्वो। एवं जाव अणिंदियाणं तियभंगो। जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियपदेसा। अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियस्स पदेसा, अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियाण य पदेसा। एवं आदिल्लविरहिओ जाव अणिंदियाणं।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूविअजीवा य अरूविअजीवा य। जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—खंधा जाव[2] परमाणुपोग्गला ४। जे अरूविअजीवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—नो धम्मत्थिकाये, धम्मत्थिकायस्स देसे १ धम्मत्थिकायस्स पदेसा २, एवं अधम्मत्थिकायस्स वि ३-४, एवं आगासत्थिकायस्स वि जाव आगासत्थिकायस्स पदेसा ५-६, अद्धासमये ७।

[९ प्र] भगवन् आग्नेयीदिशा क्या जीवरूप है, जीवदेशरूप है, अथवा जीवप्रदेशरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[९ उ] गौतम ! वह (आग्नेयीदिशा) जीवरूप नहीं, किन्तु जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप भी है तथा अजीवरूप है और अजीव के प्रदेशरूप भी है।

इसमें जीव के जो देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और द्वीन्द्रिय का एक देश है १, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश एवं द्वीन्द्रिय के बहुत देश हैं २,

---

1 "सगडुद्धिसंठियाओ महादिसाओ हवंति चत्तारि। मुत्तावलीव चउरो दो चेव य होंति रुयगनिभे ॥"
—भगवती अ. वृत्ति पत्र ४९४

2 'जाव' पद-सूचित पाठ "खंधदेसा, खंधपएसा।"

अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत देश हैं ३ (ये तीन भंग हैं, इसी प्रकार) एकेन्द्रियों के बहुत देश और एक त्रीन्द्रिय का एक देश है १, इसी प्रकार से पूर्ववत् त्रीन्द्रिय के साथ तीन भंग कहने चाहिए। इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय तक के भी क्रमशः तीन तीन भंग कहने चाहिए। इसमें जीव के जो प्रदेश है, वे नियम से एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं। अथवा एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश और बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत प्रदेश हैं। इसी प्रकार सर्वत्र प्रथम भंग को छोड़ कर दो-दो भंग जानने चाहिए, यावत् अनिन्द्रिय तक इसी प्रकार कहना चाहिए। अजीवों के दो भेद हैं, यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। जो रूपी अजीव हैं, वे चार प्रकार के हैं, यथा—स्कन्ध से लेकर यावत् परमाणु पुद्गल तक। अरूपी अजीव सात प्रकार के हैं, यथा—धर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय नहीं, किन्तु आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय (काल)। (विदिशाओं में जीव नहीं है, इसलिए सर्वत्र देश-प्रदेश-विषयक भंग होते हैं।)

आग्नेयी विदिशा का स्वरूप—आग्नेयी विदिशा जीवरूप नहीं है, क्योंकि सभी विदिशाओं की चौड़ाई एक-एक प्रदेशरूप है। वे एकप्रदेशी ही निकली हैं और अन्त तक एकप्रदेशी ही रही हैं और एक प्रदेश में समग्र जीव का समावेश नहीं हो सकता, क्योंकि जीव की अवगाहना असंख्य-प्रदेशात्मक है।[1]

जीवदेश सम्बन्धी भंगजाल—एकेन्द्रिय सकललोकव्यापी होने से आग्नेयी दिशा में नियमतः एकेन्द्रिय देश तो होते ही हैं। अथवा एकेन्द्रिय सकललोकव्यापी होने से और द्वीन्द्रिय अल्प होने से यहाँ एक की भी संभावना है। इसलिए कहा गया—एकेन्द्रियों के बहुत देश और एक द्वीन्द्रिय का देश, इस प्रकार द्विकसंयोगी प्रथम भंग हुआ। यों तीन भंग होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के साथ तीन तीन भंग होते हैं।[2]

१० जम्मा णं भंते ! दिसा किं जीवा० ?

जहा इंदा (सु. ८) तहेव निरवसेसं।

[१० प्र.] भगवन् ! याम्या (दक्षिण)-दिशा क्या जीवरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१० उ.] (गौतम !) ऐन्द्रीदिशा के समान सभी कथन (सू. ८ में उक्त) जानना चाहिए।

११ नेरई जहा अग्गेयी (सु. ९)।

[११] नैऋती विदिशा का (एतद्विषयक समग्र) कथन (सू. ९ में उक्त) आग्नेयी विदिशा के समान जानना चाहिए।

१२ वारुणी जहा इंदा (सु. ८)।

[१२] वारुणी (पश्चिम)-दिशा का (इस सम्बन्ध में कथन) (सू. ८ में उक्त) ऐन्द्रीदिशा के समान जानना चाहिए।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९४

२ वही, पत्र ४९४

विवेचन—दिशा-विदिशाओं का आकार एवं व्यापकत्व—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ये चारों महादिशाएँ गाडी (शकट) की उद्धि (ओढण) के आकार की हैं और आग्नेयी, नैऋती, वायव्या और ऐशानी ये चार विदिशाएँ मुक्तावली (मोतियों की लडी) के आकार की हैं। ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा रुचकाकार है, अर्थात्—मेरुपर्वत के मध्यभाग में ८ रुचकप्रदेश हैं, जिनमें से चार ऊपर की ओर और चार नीचे की ओर गोस्तनाकार हैं। यहाँ से दस दिशाएँ निकली हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ये चारों दिशाएँ मूल में दो-दो प्रदेशी निकली हैं और आगे दो-दो प्रदेश की वृद्धि होती हुई लोकान्त तक एवं अलोक में चली गई हैं। लोक में असंख्यात प्रदेश तक और अलोक में अनन्त प्रदेश तक बढी हैं। इसलिए इनकी आकृति गाडी के ओढण के समान है। चारों विदिशाएँ एक-एक प्रदेश वाली निकली हैं और लोकान्त तक एकप्रदेशी ही चली गई हैं। ऊर्ध्व और अधोदिशा चार-चार प्रदेशी निकली हैं और लोकान्त तक एवं अलोक में भी चली गई हैं। पूर्वदिशा जीवादिरूप है किन्तु वहाँ समग्र धर्मास्तिकायादि नहीं, किन्तु धर्म, अधर्म एवं आकाश का एक देशरूप और असंख्यप्रदेशरूप हैं तथा अद्धा-समयरूप है। इस प्रकार अरूपी अजीवरूप सात प्रकार की पूर्वदिशा है।[1]

९ अग्गेयी णं भंते ! दिसा किं जीवा, जीवदेसा, जीवपदेसा० पुच्छा।

गोयमा ! णो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा। अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसे १, अहवा एगिंदियदेसा बेइंदियस्स देसा २, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा ३। अहवा एगिंदियदेसा य तेइंदियस्स देसे, एवं चेव तियभंगो भाणियव्वो। एवं जाव अणिंदियाणं तियभंगो। जे जीवपदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा। अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियस्स पदेसा, अहवा एगिंदियपदेसा य बेइंदियाण य पएसा। एवं आदिल्लविरहिओ जाव अणिंदियाणं।

जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूविअजीवा य अरूविअजीवा य। जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—खंधा जाव[2] परमाणुपोग्गला ४। जे अरूविअजीवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—नो धम्मत्थिकाये, धम्मत्थिकायस्स देसे १ धम्मत्थिकायस्स पदेसा २, एवं अधम्मत्थिकायस्स वि ३-४, एवं आगासत्थिकायस्स वि जाव आगासत्थिकायस्स पदेसा ५ ६, अद्धासमये ७।

[९ प्र] भगवन् आग्नेयीदिशा क्या जीवरूप है, जीवदेशरूप है, अथवा जीवप्रदेशरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[९ उ] गौतम ! वह (आग्नेयीदिशा) जीवरूप नहीं, किन्तु जीव के देशरूप है, जीव के प्रदेशरूप भी है तथा अजीवरूप है और अजीव के प्रदेशरूप भी है।

इसमें जीव के जो देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और द्वीन्द्रिय का एक देश है १, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश एवं द्वीन्द्रियों के बहुत देश हैं २,

१ "सगडद्धिसंठियाओ महादिसाओ हवंति चत्तारि। मुत्तावलीय चउरो दो चेव य होंति रुयगनिभे॥"

—भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९४

२ 'जाव' पद सूचित पाठ—"खंधदेसा, खंधपएसा।"

अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत देश हैं ३ (ये तीन भंग हैं, इसी प्रकार) एकेन्द्रियों के बहुत देश और एक त्रीन्द्रिय का एक देश है १, इसी प्रकार से पूर्ववत् त्रीन्द्रिय के साथ तीन भंग कहने चाहिए। इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय तक के भी क्रमशः तीन तीन भंग कहने चाहिए। इसमें जीव के जो प्रदेश हैं, वे नियम से एकेन्द्रियों के प्रदेश हैं। अथवा एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश और बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत प्रदेश हैं। इसी प्रकार सर्वत्र प्रथम भंग को छोड़ कर दो-दो भंग जानने चाहिए, यावत् अनिन्द्रिय तक इसी प्रकार कहना चाहिए। अजीवों के दो भेद हैं, यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। जो रूपी अजीव हैं, वे चार प्रकार के हैं, यथा—स्कन्ध से लेकर यावत् परमाणु पुद्गल तक। अरूपी अजीव सात प्रकार के हैं, यथा—धर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, आकाशास्तिकाय नहीं, किन्तु आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकाय के प्रदेश और अद्धासमय (काल)। (विदिशाओं में जीव नहीं है, इसलिए सर्वत्र देश-प्रदेश-विषयक भंग होते हैं।)

आग्नेयी विदिशा का स्वरूप—आग्नेयी विदिशा जीवरूप नहीं है, क्योंकि सभी विदिशाओं की चौड़ाई एक-एक प्रदेशरूप है। वे एकप्रदेशी ही निकली हैं और अन्त तक एकप्रदेशी ही रही हैं और एक प्रदेश में समग्र जीव का समावेश नहीं हो सकता, क्योंकि जीव की अवगाहना असंख्यप्रदेशात्मक है।[1]

जीवदेश सम्बन्धी भंगजाल—एकेन्द्रिय सकललोकव्यापी होने से आग्नेयी दिशा में नियमतः एकेन्द्रिय देश तो होते ही हैं। अथवा एकेन्द्रिय सकललोकव्यापी होने से और द्वीन्द्रिय अल्प होने से वहीं एक की भी सम्भावना है। इसलिए कहा गया—एकेन्द्रियों के बहुत देश और एक द्वीन्द्रिय का देश, इस प्रकार द्विकसंयोगी प्रथम भंग हुआ। यों तीन भंग होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के साथ तीन तीन भंग होते हैं।[2]

१० जम्मा णं भंते ! दिसा किं जीवा० ?

जहा इंदा (सु. ८) तहेव निरवसेसं।

[१० प्र.] भगवन् ! याम्या (दक्षिण)-दिशा क्या जीवरूप है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१० उ.] (गौतम !) ऐन्द्रीदिशा के समान सभी कथन (सू. ८ में उक्त) जानना चाहिए।

११ नेरई जहा अग्गेयी (सु. ९)।

[११] नैऋती विदिशा का (एतद्विषयक समग्र) कथन (सू. ९ में उक्त) आग्नेयी विदिशा के समान जानना चाहिए।

१२ वारुणी जहा इंदा (सु. ८)।

[१२] वारुणी (पश्चिम)-दिशा का (इस सम्बन्ध में कथन) (सू. ८ में उक्त) ऐन्द्रीदिशा के समान जानना चाहिए।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९४

२ वही, पत्र ४९४

१३ वायव्वा जहा अग्गेयी (सु ९)।

[१३] वायव्या विदिशा का कथन आग्नेयी के समान है।

१४ सोमा जहा इदा।

[१४] सौम्या (उत्तर)-दिशा का कथन ऐन्द्रीदिशा के समान जान लेना चाहिए।

१५ ईसाणी जहा अग्गेयी।

[१५] ऐशानी विदिशा का कथन आग्नेयी के समान जानना चाहिए।

१६ विमलाए जीवा जहा अग्गेईए, अजीवा जहा इदाए।

[१६] विमला (ऊर्ध्व)-दिशा मे जीवो का कथन आग्नेयी के समान है तथा अजीवो का कथन ऐन्द्रीदिशा के समान है।

१७ एव तमाए वि, नवर अरूवी छव्विहा। अद्धासमयो न भण्णति।

[१७] इसी प्रकार तमा (अधोदिशा) का कथन भी जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि तमादिशा मे अरूपी-अजीव के ६ भेद ही हैं, वहाँ अद्धासमय नही है। अत अद्धासमय का कथन नही किया गया।

शेष दिशा विदिशाओ की जीव-अजीवप्ररूपणा—सू १० से १७ तक आठ सूत्रो मे निरूपित तथ्य का निष्कर्ष यह है कि शेष तीनो दिशाओ का जीव-अजीव सम्बन्धी कथन पूर्वदिशा के समान और शेष तीनो विदिशाओ का जीव-अजीव सम्बन्धी कथन आग्नेयीदिशा के समान जानना चाहिए। ऊर्ध्वदिशा मे जीवो का कथन आग्नेयी के समान तथा अजीव-सम्बन्धी कथन ऐन्द्री के समान जानना चाहिए। तमा (अधो)-दिशा का भी जीव-अजीव-सम्बन्धी कथन ऊर्ध्वदिशावत है किन्तु वहाँ गतिमान् सूर्य का प्रकाश न होने से अद्धासमय का व्यवहार सम्भव नही है। अत वहाँ अद्धासमय (काल) नही है। यद्यपि ऊर्ध्वदिशा मे भी गतिमान् सूर्य का प्रकाश न होने से अद्धासमय का व्यवहार सभव नही है, तथापि मेरुपर्वत के स्फटिककाण्ड मे गतिमान् सूर्य के प्रकाश का सक्रमण होता है। इसलिए वहा समय का व्यवहार सम्भव है।[1]

शरीर के भेद-प्रभेद तथा सम्बन्धित निरूपण

१८ कति ण भते ! सरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पच सरीरा पण्णत्ता, त जहा—ओरालिए जाव कम्मए।

[१८ प्र] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१८ उ] गौतम ! शरीर पाच प्रकार के कहे गए हैं। यथा—औदारिक, यावत् (वैक्रिय, आहारक, तैजस और) कार्मण शरीर।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९४

१९ ओरालियसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? एवं ओगाहणसंठाणपदं निरवसेसं भाणियव्वं जाव अप्पाबहुगं ति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ दसमे सए पढमो उद्देसो समत्तो ॥१० १ ॥

[१९ प्र.] भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९ उ.] (गौतम !) यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के (२१वें) अवगाहना-संस्थान पद में वर्णित समस्त वर्णन अल्पबहुत्व तक करना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है !

विवेचन—शरीर : प्रकार तथा अवगाहनादि— प्रस्तुत दो सूत्रों (१८-१९) में शरीर सम्बन्धी प्ररूपणा प्रज्ञापनासूत्र के २१वें अवगाहन संस्थानपद का अतिदेश करके की गई है। वहाँ शरीर के औदारिक आदि ५ प्रकार, उनका संस्थान (आकार), प्रमाण, पुद्गलचय, शरीरों का पारस्परिक संयोग, द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ तथा अल्पबहुत्व एवं शरीरों की अवगाहना आदि द्वारों के माध्यम से विस्तृत वर्णन किया गया है । वही समग्र वर्णन अल्पबहुत्व तक यहाँ करना चाहिए ।[1]

॥ दशम शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र अवगाहन-संस्थानपद २१, सू. १४७४-१५६६, पृ. ३२८-३८९ (महा. जै. विद्यालय)

(ख) संग्रहगाथा—'वइ १ संठाण २ पमाणं ३, पोग्गलचिणणा ४ सरीरसंजोगो ५ ।

दव्व पएसऽप्पबहुं ६ सरीरोगाहणाए य ॥१॥' —भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९५

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

संवुडअणगारे : संवृत अनगार

उपोद्घात

१ रायगिहे जाव एवं वयासी ।

[१] राजगृह में (श्रमण भगवान् महावीर से) यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

वीचिपथ और अवीचिपथ स्थित संवृत अनगार को लगने वाली क्रिया

२ [१] संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स वीयी पथे ठिच्चा पुरओ रूवाइं निज्झायमाणस्स, मग्गतो रूवाइं अवयक्खमाणस्स, पासतो रूवाइं अवलोएमाणस्स, उड्ढं रूवाइं ओलोएमाणस्स, अहे रूवाइं आलोएमाणस्स तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स वीयी पथे ठिच्चा जाव तस्स णं णो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ।

[२-१ प्र.] भगवन् ! वीचिपथ (कषायभाव) में स्थित होकर सामने के रूपों को देखते हुए, पीछे रहे हुए रूपों को देखते हुए, पार्श्ववर्ती (दोनों बगल में) रहे हुए रूपों को देखते हुए, ऊपर के (ऊर्ध्वस्थित) रूपों का अवलोकन करते हुए एवं नीचे के (अधः स्थित) रूपों का निरीक्षण करते हुए संवृत अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

[२-१ उ.] गौतम ! वीचिपथ (कषायभाव) में स्थित होकर सामने के रूपों को देखते हुए यावत नीचे के रूपों का अवलोकन करते हुए संवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, किन्तु साम्परायिकी क्रिया लगती है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—संवुड० जाव संपराइया किरिया कज्जइ ?

गोयमा ! जस्स णं कोह-माण माया लोभा एवं जहा सत्तमसए पढमोद्देसए (स. ७ उ. १ सु. १६ [२]) जाव से णं उस्सुत्तमेव रीयइ, से तेणट्ठेणं जाव संपराइया किरिया कज्जइ ।

[२-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि वीचिपथ में स्थित यावत् संवृत अनगार को यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती है ?

[२-२ उ.] गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया एवं लोभ व्युच्छिन्न हो गए हों, उसी को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, इत्यादि (संवृत अनगारसम्बन्धी) सब कथन सप्तम शतक के प्रथम उद्देशक में कहे अनुसार, यह संवृत अनगार सूत्रविरुद्ध (उत्सूत्र) आचरण करता है, यहाँ तक जानना चाहिए। इसी कारण हे गौतम ! कहा गया कि यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है।

३ [१] संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स अवीयी पथे ठिच्चा पुरतो रूवाइं निज्झायमाणस्स जाव तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ० ? पुच्छा ।

गोयमा ! संवुड० जाव तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ ।

[३-१ प्र] भगवन् ! अवीचिपथ (अकषायभाव) में स्थित संवृत अनगार को सामने के रूपों को निहारते हुए यावत् नीचे के रूपों का अवलोकन करते हुए क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, अथवा साम्परायिकी क्रिया लगती है ? , इत्यादि प्रश्न ।

[३-१ उ] गौतम ! अकषायभाव में स्थित संवृत अनगार को उपयुक्त रूपों का अवलोकन करते हुए ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, (किन्तु) साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? जहा सत्तमसए सत्तमुद्देसए (स ७ उ ७ सु १ [२]) जाव से णं अहासुत्तमेव रीयइ, से तेणट्ठेणं जाव नो संपराइया किरिया कज्जइ ।

[३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ?

[३-२ उ] गौतम ! सप्तम शतक के सप्तम उद्देशक में वर्णित (जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो गए हों) – ऐसा जो संवृत अनगार यावत् सूत्रानुसार आचरण करता है, (उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती है ।) इसी कारण मैं कहता हूँ, यावत् साम्परायिक क्रिया नहीं लगती ।

ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी क्रिया के अधिकारी— सप्तम शतक में प्रतिपादित जैनसिद्धान्त का अतिदेश करके यहाँ बताया गया है कि जो आगे-पीछे के, अगल-बगल के ऊपर नीचे के रूपों का अवलोकन करते हुए चलता है, किन्तु जिसका कषायभाव व्युच्छिन्न नहीं हुआ है, ऐसे सूत्र विरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले संवृत अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है, किन्तु जिसका कषायभाव व्युच्छिन्न हो गया है यावत् जो सूत्रानुसार प्रवृत्ति करता है, उस संवृत अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है । [१-२]

वीयीपथे चार रूप चार अर्थ—(१) वीचिपथे—वीचि का यहाँ अर्थ है—सम्प्रयोग, अत भावार्थ हुआ—कषायों और जीव का सम्बन्ध । वीचिमान् का अर्थ कषायवान् के और पथे का अर्थ 'मार्ग में' है । (२) विचिपथ—विचिर् धातु पृथक्भाव अर्थ में है । अत भावार्थ हुआ जो यथाख्यात-संयम से पृथक् होकर कषायोदय के मार्ग में है । (३) विचिंतिपथे—जो रागादि विकल्पों के विचिन्तन के पथ में है और (४) विकृतिपथे- जिस स्थिति में सरागता होने से विरूपा कृति – क्रिया है उस विकृति के मार्ग में ।

अवीयीपथे—चाररूप चार अर्थ—(१) अवीचिपथे—अकषाय सम्बन्ध वाले मार्ग में, (२) अविचिपथे=यथाख्यातसंयम से अपृथक् मार्ग में, (३) अविचिंतिपथे रागादि विकल्पों के

---

१ २ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९५ का सारांश

अविचिन्तन पथ में और (४) अविकृतिपथे—अविकृतिरूप पथ में यानी वीतराग होने से जिस पथ में क्रिया अविकृत हो।[1]

'पुरओ' आदि शब्दों का भावार्थ—**पुरओ**—आगे के। **निज्झायमाणस्स**—निहारते या चिन्तन करते हुए। **मग्गओ**—पीछे के। **अवयक्खमाणस्स**—अवकांक्षा—अपेक्षा करते हुए, या प्रेक्षण करते हुए। **अवलोएमाणस्स**—अवलोकन करते हुए। **संपराइया**—साम्परायिकी-कषायसम्बन्धी। **उस्सुत्तमेव रीयइ**—उत्सूत्र—सूत्रविरुद्ध ही चलता है। **अहासुत्त**—यथासूत्र—सूत्रानुसार। **ईरियावहिया किरिया**—ऐर्यापथिकी क्रिया, जो केवल योगप्रत्यया कर्मबन्धक्रिया हो।[2]

योनियों के भेद-प्रभेद प्रकार एवं स्वरूप

४. कतिविधा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—सीया उसिणा सीतोसिणा। एवं जोणीपयं निरवसेसं भाणियव्वं।

[४ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[४ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—शीत, उष्ण, शीतोष्ण। यहाँ (प्रज्ञापनासूत्र का नौवाँ) योनिपद सम्पूर्ण कहना चाहिए।

विवेचन—योनिसम्बन्धी निरूपण—प्रस्तुत चौथे सूत्र में योनि के प्रकार, भेदाभेद, संख्या, वर्णादि का विवरण जानने के लिए प्रज्ञापनासूत्रगत योनिपद का अतिदेश किया गया है।[3]

योनि का निर्वचनार्थ—योनिशब्द 'यु मिश्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है। अतः इसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ हुआ—जिसमें तैजस कार्मणशरीर वाले जीव औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्गलस्कन्ध-समुदाय के साथ मिश्रित होते हैं, उसे योनि कहते हैं।[4]

योनि के सामान्यतया तीन प्रकार—प्रस्तुत मूल पाठ में योनि तीन प्रकार की बताई गई है—शीत, उष्ण, शीतोष्ण। शीतस्पर्श के परिणाम वाली शीतयोनि, उष्णस्पर्श के परिणाम वाली उष्णयोनि और उभय-स्पर्श के परिणाम वाली शीतोष्णयोनि कहलाती है। प्रज्ञापना के योनिपद के अनुसार नारकों की शीत और उष्ण दो प्रकार की योनियाँ हैं, देवों और गर्भज जीवों की शीतोष्ण योनियाँ हैं। तेजस्काय की उष्णयोनि होती है तथा शेष जीवों के तीनों प्रकार की योनियाँ होती हैं।

---

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९६

२. वही पत्र ४९६

३. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा. २, पृ. ४८८-४८९
(ख) प्रज्ञापनासूत्र (म. जै. विद्यालय) ९वाँ योनिपद सू. ७३८-७३, पृ. १९०-९२

४. 'युवन्ति तैजस-कार्मणशरीरवन्त औदारिकादिशरीरयोग्यस्कन्धसमुदायेन मिश्रीभवन्ति जीवा यस्यां सा योनिः।'
—भगवती अ. वृ., पत्र ४९६

प्रकारान्तर से योनि के तीन भेद—इस प्रकार है—सचित्त (जीव-प्रदेशों से सम्बन्धित) अचित्त (सर्वथा जीवरहित) और मिश्र। नारकों और देवों की योनियाँ अचित्त होती हैं। गर्भज जीवों की सचित्ताचित्त (अर्थात् जीवप्रदेश सहित और अर्थात् जीवप्रदेश-रहित) योनि होती है और शेष जीवों की तीनों प्रकार की योनि होती है।

अन्य प्रकार से योनि के तीन भेद ये हैं—संवृत (जो उत्पत्तिस्थान ढँका हुआ—गुप्त हो, वह), विवृत (जो उत्पत्तिस्थान खुला हुआ हो, वह), एवं संवृत-विवृत (जो कुछ ढँका हुआ और कुछ खुला हुआ हो, वह) योनि। नारकों, देवों और एकेन्द्रिय जीवों के संवृतयोनि, गर्भज जीवों के संवृत-विवृतयोनि और शेष जीवों के विवृतयोनि होती है।

उत्कृष्टता निकृष्टता की दृष्टि से योनि के तीन प्रकार- कूर्मोन्नता (कछुए की पीठ की तरह उन्नत), शंखावर्ता—(शंख के समान आवर्त वाली) और वंशीपत्रा—(बांस के दो पत्तों के समान सम्पुट मिले हुए हों)। चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी की शंखावर्त्ता योनि। तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषों की माता के कूर्मोन्नता योनि तथा शेष समस्त संसारी जीवों की माता के वंशीपत्रा योनि होती है।[1]

चौरासी लाख जीवयोनियाँ —वास्तव में योनि कहते हैं —जीवों के उत्पत्तिस्थान को। वह योनि प्रत्येक जीवनिकाय के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भेद से अनेक प्रकार की है। यथा - पृथ्वीकाय अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय का प्रत्येक की ७-७ लाख योनियाँ हैं, प्रत्येक वनस्पतिकाय की १० लाख, साधारण वनस्पतिकाय की १४ लाख, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की प्रत्येक की ४-४ लाख और मनुष्य की १४ लाख योनियाँ हैं। ये सब मिलाकर ८४ लाख योनियाँ होती हैं। यद्यपि व्यक्तिभेद की अपेक्षा से अनन्त जीव होने से जीवयोनियों की संख्या अनन्त होती है, किन्तु यहाँ समान वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली योनियों को जातिरूप से सामान्यतया एक योनि मानी गई है। इस दृष्टि से योनियों की कुल ८४ लाख जातियाँ (किस्म) हैं।[2]

विविध वेदना : प्रकार एवं स्वरूप

५. कतिविधा णं भंते! वेदणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा वेदणा पण्णत्ता, तं जहा—सीता उसिणा सीतोसिणा। एवं वेदणापदं भाणितव्वं जाव—

नेरइया णं भंते! किं दुक्खं वेदणं वेदेंति, सुहं वेदणं वेदेंति, अदुक्खमसुहं वेदणं वेदेंति?

गोयमा! दुक्खं पि वेदणं वेदेंति, सुहं पि वेदणं वेदेंति, अदुक्खमसुहं पि वेदणं वेदेंति।

[५ प्र.] भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

---

१ (क) प्रज्ञापना ९ वाँ योनिपद

(ख) भगवती अ. वृत्ति पत्र ४९६-४९७

२ भगवती विवेचन (पं. घेवरचन्दजी) भा. ४ पृ. १७९५

'समवण्णाई समेया बहवो वि हु जोणिभेयलक्खा उ।
सामन्ना घेप्पंति हु एक्कजोणीए गहणेणं॥"

[५ उ] गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है । यथा—शीता उष्णा और शीतोष्णा । इस प्रकार यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण पैंतीसवाँ वेदनापद कहना चाहिए, यावत्—[प्र] 'भगवन् ! क्या नैरयिक जीव दु खरूप वेदना वेदते हैं, या सुखरूप वेदना वेदते हैं, अथवा अदु ख-असुखरूप वेदना वेदते हैं ?' [उ] हे गौतम ! नैरयिक जीव दु खरूप वेदना भी वेदते हैं, सुखरूप वेदना भी वेदते हैं और अदु ख-असुखरूप वेदना भी वेदते हैं ।

विवेचन—वेदनापद के अनुसार वेदना-निरूपण—प्रस्तुत ५वें सूत्र मे प्रज्ञापनासूत्रगत वेदनापद का अतिदेश करके वेदना सम्बन्धी समग्र निरूपण का सकेत किया गया है ।[1]

वेदना स्वरूप और प्रकार—जो वेदी (अनुभव की) जाए उसे वेदना कहते है । प्रस्तुत मे वेदना के तीन प्रकार बताए गए हैं—शीतवेदना, उष्णवेदना और शीतोष्णवेदना । नरक मे शीत और उष्ण दोनो प्रकार की वेदना पाई जाती है । शेष असुरकुमारादि से वैमानिक तक २३ दण्डको मे तीनो प्रकार की वेदना पाई जाती हैं । दूसरे प्रकार से वेदना ४ प्रकार की है—द्रव्यत , क्षेत्रत , कालत और भावत । पुद्गल द्रव्यो के सम्बन्ध से जो वेदना होती है वह द्रव्यवेदना, नरकादि क्षेत्र से सम्बन्धित वेदना क्षेत्रवेदना, पाचवें और छठे आरे सम्बन्धी वेदना कालवेदना, शोक-क्रोधादिसम्बन्ध जनित वेदना भाववेदना है । समस्त ससारी जीवो के ये चारो प्रकार की वेदनाएँ होती हैं ।[2]

प्रकारान्तर से त्रिविधवेदना—शारीरिक, मानसिक और शारीरिक-मानसिक वेदना । १६ दण्डकवर्ती समनस्क जीव तीनो प्रकार की वेदना वेदते है । जबकि पाच स्थावर एव तीन विकलेन्द्रिय इन ८ दण्डको के असज्ञी जीव शारीरिक वेदना वेदते हैं ।

वेदना के पुन तीन भेद—सातावेदना, असातावेदना और साता-असाता वेदना । चौवीस दण्डको मे यह तीनो प्रकार की वेदना पाई जाती हैं । वेदना के पुन तीन भेद हैं—दु खा, सुखा और अदु खसुखा वेदना । तीनो प्रकार की वेदना चौवीस ही दण्डको मे पाई जाती हैं । साता-असाता तथा सुखा-दु खा वेदना मे अन्तर यह है कि साता-असाता क्रमश उदयप्राप्त वेदनीयकर्म पुद्गलो की अनुभवरूप वेदनाएँ हैं, जबकि सुखा दु खा दूसरे के द्वारा उदीर्यमाण वेदनीय के अनुभवरूप वेदनाएँ हैं।

वेदना के दो भेद—अन्य प्रकार से भी हैं, यथा—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी । स्वय कष्ट को स्वीकार करके वेदी जाने वाली आभ्युपगमिकी वेदना है, यथा—केशलोच आदि तथा औपक्रमिकी वेदना वह है, जो स्वय उदीर्ण (उदय मे आई हुई, ज्वरादि) वेदना होती है, अथवा जिसमे उदीरणा करके उदय म लाई वेदना का अनुभव किया जाता है । तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और मनुष्य मे दोनो प्रकार की वेदनाएँ होती हैं, शेष बाईस दण्डको मे एकमात्र औपक्रमिकी वेदना होती है ।

वेदना के दो भेद प्रकारान्तर से—निदा और अनिदा । विवेकसहित जो वेदी जाए वह निदावेदना है और विवेकपूर्वक न वेदी जाए वह अनिदावेदना है । नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय एव मनुष्य ये १४ दण्डको के जीव दोनो प्रकार की वेदनाएँ वेदते हैं । इनमे जो सज्ञीभूत

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण युक्त) भा २ पृ ४८९

(ख) प्रज्ञापनासूत्र (म ज विद्यालय) ३५ वाँ वेदनापद, सू २०५४-८४, पृ ४२४-२७

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९७

(ख) प्रज्ञापना ३५ वाँ वेदनापद

हैं, वे निदा और जो असञ्ज्ञीभूत हैं वे अनिदा वेदना वेदते हैं, यथा—असञ्ज्ञीभूत पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय। ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के दो प्रकार हैं—मायी मिथ्यादृष्टि और अमायी सम्यग्दृष्टि। मायी मिथ्यादृष्टि अनिदावेदना वेदते हैं और अमायी सम्यग्दृष्टि निदावेदना वेदते हैं।[1]

वेदनासम्बन्धी विस्तृत वर्णन प्रज्ञापनागत वेदनापद में है।

मासिक भिक्षुप्रतिमा की वास्तविक आराधना

६ मासियं णं भंते ! भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं वोसट्ठे काये चियत्ते देहे, एवं मासिया भिक्खुपडिमा निरवसेसा भाणियव्वा जहा दसाहिं जाव आराहिया भवति।

[६ प्र.] भगवन् ! मासिक भिक्षुप्रतिमा जिस अनगार ने अंगीकार की है तथा जिसने शरीर (के प्रति ममत्व) का त्याग कर दिया है और (शरीरसंस्कार आदि के रूप में) काया का सदा के लिए व्युत्सर्ग कर दिया है, इत्यादि दशाश्रुतस्कन्ध में बताए अनुसार (बारहवीं भिक्षुप्रतिमा तक) मासिक भिक्षु प्रतिमा सम्बन्धी समग्र वर्णन करना चाहिए, यावत् (तभी) आराधित होती है आदि तक कहना चाहिए।

विवेचन—भिक्षुप्रतिमा की वास्तविक आराधना—यहाँ छठे सूत्र में मासिक भिक्षुप्रतिमा को स्वीकार किये हुए भिक्षु की भिक्षुप्रतिमाऽऽराधना के विषय में दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा का हवाला देकर यह बताया है कि ऐसा भिक्षु स्नानादि शरीरसंस्कार के त्याग के रूप में काया का व्युत्सर्ग कर देता है तथा शरीर के प्रति ममत्व का त्याग कर देता है, ऐसी स्थिति में जो कोई परिषह या देवकृत, मनुष्यकृत या तिर्यञ्चकृत उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, उन्हें सम्यक् प्रकार से सहता है, ध्यान से विचलित न होकर क्षमाभाव धारण कर लेता है, दीनता न लाकर तितिक्षा करता है, समभाव से मन वचन-काया से सहता है, तो उसकी भिक्षुप्रतिमा आराधित होती है।[2]

भिक्षुप्रतिमा स्वरूप और प्रकार—साधु की एक प्रकार की प्रतिज्ञा (अभिग्रह) विशेष को भिक्षुप्रतिमा कहते हैं। यह बारह प्रकार की है। पहली से लेकर सातवीं प्रतिमा तक क्रमशः एक मास से लेकर सात मास की हैं। आठवीं, नौवीं और दसवीं प्रतिमा प्रत्येक सात-अहोरात्र की होती हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा एक अहोरात्र की और बारहवीं भिक्षुप्रतिमा केवल एक रात्रि की होती है। इसका विस्तृत वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा में है।

भावार्थ—वोसट्ठे काए—स्नानादि शरीरसंस्कार त्याग कर काय का व्युत्सर्ग कर दिया।

चियत्ते देहे—(१) कोई भी व्यक्ति मारे-पीटे या शरीर पर प्रहार करे तो भी निवारण न करे, इस प्रकार से शरीर के प्रति ममत्व का त्याग कर दिया हो, अथवा चियत्ते—देह को धर्मसाधन के रूप में प्रधानता से मान कर।[4]

---

१ (क) प्रज्ञापना ३५ वाँ वेदनापद
(ख) भगवती अ. वृत्ति पत्र ४९७

२ (क) दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं साधुप्रतिमादशा पत्र ४४-४६। (मणिविजयगणिग्रन्थमाला-प्रकाशन)
(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९८

३ (क) वही, पत्र ४९८ (ख) भगवती विवेचन भा. ४ (पं. घेवरचन्दजी) पृ. १७११

४ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९८

अकृत्यसेवी भिक्षु कब अनाराधक, कब आराधक ?

७ [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कते काल करेइ नत्थि तस्स आराहणा।

[७-१] कोई भिक्षु किसी अकृत्य (पाप) का सेवन करके यदि उस अकृत्यस्थान की आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर (मर) जाता है तो उसके आराधना नही होती।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते काल करेति अत्थि तस्स आराहणा।

[७-२] यदि वह भिक्षु उस सेवित अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है।

८ [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, तस्स ण एव भवइ पच्छा वि ण अह चरिमकालसमयसि एयस्स ठाणस्स आलोएस्सामि जाव पडिवज्जिस्सामि, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते जाव नत्थि तस्स आराहणा।

[८-१] कदाचित किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया, किन्तु बाद मे उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न हो कि मैं अपने अन्तिम समय मे इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूगा यावत तपरूप प्रायश्चित्त स्वीकार करूगा, परन्तु वह उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाए तो उसके आराधना नही होती।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा।

[८-२] यदि वह (अकृत्यस्थानसेवी भिक्षु) आलोचन और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है।

९ [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, तस्स ण एव भवइ—'जइ ताव समणोवासगा वि कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति किमग पुण अह अणपन्नियदेवत्तण पि नो लभिस्सामि ?', त्ति कट्टु से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कते काल करेइ नत्थि तस्स आराहणा।

[९-१] कदाचित् किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया हो और उसके बाद उसके मन मे यह विचार उत्पन्न हो कि श्रमणोपासक भी काल के अवसर पर काल करके किन्ही देवलोकों मे देवरूप मे उत्पन्न हो जाते हैं, तो क्या मै अणपन्निक देवत्व भी प्राप्त नही कर सकूगा?, यह सोच कर यदि वह उस अकृत्य स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है तो उसके आराधना नही होती।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०

॥ दसमे सए बीओ उद्देसओ समत्तो ॥१०-२॥

[९ २] यदि वह (अकृत्यसेवी साधु) उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन—आराधक-विराधक भिक्षु—प्रस्तुत तीन सूत्रों (७-८-९) में आराधक और विराधक भिक्षु की ६ कोटियां बताई गई हैं—

(१) अकृत्यस्थान का सेवन करके आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही काल करने वाला अनाराधक (विराधक)।

(२) अकृत्यस्थान का सेवन करके आलोचना प्रतिक्रमण कर काल करने वाला आराधक।

(३) अकृत्यस्थानसेवी, अन्तिम समय में आलोचनादि करके प्रायश्चित्त स्वीकार करने की भावना करने वाला, किन्तु आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही काल करने वाला अनाराधक।

(४) अकृत्यस्थानसेवी, अन्तिम समय में आलोचनादि करने का भाव और आलोचना प्रतिक्रमण करके काल करने वाला आराधक।

(५) अकृत्यस्थानसेवी, श्रमणोपासकवत् देवगति प्राप्त कर लूंगा, इस भावना से आलोचनादि किये बिना ही काल करने वाला अनाराधक।

(६) अकृत्यस्थानसेवी, श्रमणोपासकवत् देवगति प्राप्ति की भावना, किन्तु आलोचनादि करके काल करने वाला आराधक।[1]

॥ दशम शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं, (मूलपाठ-टिप्पण), भा. २, पृ. ४८९-४९०

अकृत्यसेवी भिक्षु कब अनाराधक, कब आराधक ?

७ [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते काल करेइ नत्थि तस्स आराहणा ।

[७-१] कोई भिक्षु किसी अकृत्य (पाप) का सेवन करके यदि उस अकृत्यस्थान की आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर (मर) जाता है तो उसके आराधना नही होती ।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते काल करेति अत्थि तस्स आराहणा ।

[७-२] यदि वह भिक्षु उस सेवित अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है ।

८ [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, तस्स ण एव भवइ पच्छा वि ण अहं चरिमकालसमयसि एयस्स ठाणस्स आलोएस्सामि जाव पडिवज्जिस्सामि, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते जाव नत्थि तस्स आराहणा ।

[८-१] कदाचित किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया, किन्तु बाद मे उसके मन मे ऐसा विचार उत्पन्न हो कि मैं अपने अतिम समय मे इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूगा यावत् तपरूप प्रायश्चित्त स्वीकार करूगा, परन्तु वह उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाए तो उसके आराधना नही होती ।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा ।

[८-२] यदि वह (अकृत्यस्थानसेवी भिक्षु) आलोचन और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है ।

९ [१] भिक्खू य अन्नयर अकिच्चट्ठाण पडिसेवित्ता, तस्स ण एव भवइ—'जइ जाव समणोवासगा वि कालमासे काल किच्चा अन्नयरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति किमग पुण अह अणपन्नियदेवत्तण पि नो लभिस्सामि ?, त्ति कट्टु से ण तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते काल करेइ नत्थि तस्स आराहणा ।

[९-१] कदाचित् किसी भिक्षु ने किसी अकृत्यस्थान का सेवन कर लिया हो और उसके बाद उसके मन मे यह विचार उत्पन्न हो कि श्रमणोपासक भी काल के अवसर पर काल करके किन्ही देवलोको मे देवरूप मे उत्पन्न हो जाते हैं, तो क्या मैं अणपन्निक देवत्व भी प्राप्त नहीं कर सकूगा ?, यह सोच कर यदि वह उस अकृत्य स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाता है तो उसके आराधना नही होती ।

[२] से ण तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०

॥ दसमे सए बीओ उद्देसओ समत्तो ॥१०-२॥

[९ २] यदि वह (अकृत्यसेवी साधु) उस अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन—आराधक-विराधक भिक्षु—प्रस्तुत तीन सूत्रो (७-८-९) मे आराधक और विराधक भिक्षु की ६ कोटिया बताई गई हैं—

(१) अकृत्यस्थान का सेवन करके आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही काल करने वाला अनाराधक (विराधक)।

(२) अकृत्यस्थान का सेवन करके आलोचना प्रतिक्रमण कर काल करने वाला आराधक।

(३) अकृत्यस्थानसेवी, अन्तिम समय मे आलोचनादि करके प्रायश्चित स्वीकार करने की भावना करने वाला, किन्तु आलोचना-प्रतिक्रमण किये विना ही काल करने वाला अनाराधक।

(४) अकृत्यस्थानसेवी, अन्तिम समय मे आलोचनादि करने का भाव और आलोचना प्रतिक्रमण करके काल करने वाला आराधक।

(५) अकृत्यस्थानसेवी, श्रमणोपासकवत् देवगति प्राप्त कर लूगा, इस भावना से आलोचनादि किये विना ही काल करने वाला अनाराधक।

(६) अकृत्यस्थानसेवी, श्रमणोपासकवत् देवगति प्राप्ति की भावना, किन्तु आलोचनादि करके काल करने वाला आराधक।[१]

॥ दशम शतक द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ टिप्पण), भा २, पृ ४८९-४९०

तइओ उद्देसओ : तृतीय उद्देशक

आइड्ढी : आत्मऋद्धि

देव की उल्लघनशक्ति

पोद्घात

१ रायगिहे जाव एव वदासि—

[१] राजगृह नगर मे (श्री गौतमस्वामी ने भगवान महावीर से) यावत इस प्रकार पूछा—

वों की देववासो की उल्लघनशक्ति अपनी और दूसरी

२ ग्राइड्ढीए ण भते ! देवे जाव चत्तारि पच देवावासतराइ वीतिक्कते तेण पर परिड्ढीए ?

हता, गोयमा ! ग्राइड्ढीए ण०, त चेव ।

[२ प्र] भगवन ! देव क्या ग्रात्मऋद्धि (अपनी शक्ति) द्वारा यावत् चार-पाच देवावासान्तरो का उल्लघन करता है और इसके पश्चात दूसरी शक्ति द्वारा उल्लघन करता है ?

[२ उ] हा, गौतम ! देव ग्रात्मशक्ति से यावत् चार पाच देवासो का उल्लघन करता है और उसके उपरान्त दूसरी (वैक्रिय) शक्ति (पर-ऋद्धि) द्वारा उल्लघन करता है ।

३ एव ग्रसुरकुमारे वि । नवर ग्रसुरकुमारावासतराइ, सेस त चेव ।

[३] इसी प्रकार ग्रसुरकुमारो के विषय मे भी समझ लेना चाहिए । विशेष यह है कि वे असुरकुमारो के ग्रावासो का उल्लघन करते हैं । शेष पूर्ववत जानना चाहिए ।

४ एव एएण कमेण जाव थणियकुमारे ।

[४] इसी प्रकार इसी क्रम से स्तनितकुमारपर्यन्त जानना चाहिए ।

५ एव वाणमतरे जोतिसिए वेमाणिए जाव तेण पर परिड्ढीए ।

[५] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवपर्यन्त जानना चाहिए कि यावत ग्रात्मशक्ति से चार-पाच ग्रन्य देवावासो का उल्लघन करते हैं, इसके उपरान्त परऋद्धि (स्वाभाविक शक्ति से ग्रतिरिक्त दूसरी वैक्रियशक्ति) से उल्लघन करते हैं ।

विवेचन—ग्रात्मऋद्धि और परऋद्धि से देवो की उल्लघनशक्ति—प्रस्तुत ४ सूत्रो (२ से ५ तक) मे गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने यह बताया है कि सामान्य देव, यहाँ तक कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव ग्रात्मऋद्धि (स्वकीय स्वाभाविकशक्ति) से अपनी-अपनी जाति के चार-पाच ग्रन्य देववासो का उल्लघन कर सकते हैं, इसके उपरान्त वे पर-ऋद्धि यानि स्वाभाविक शक्ति के ग्रतिरिक्त दूसरी (वैक्रिय) शक्ति से उल्लघन करते हैं ।[1]

---

1 वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण), भा २, पृ ४९०

कठिन शब्दो का भावार्थ—आइड्ढोए—स्वकीय शक्ति से अथवा जिसमे आत्मा की (अपनी) ही ऋद्धि है, वह आत्मऋद्धिक होकर। परिड्ढीए—पर (दूसरी-वैक्रिय) शक्ति से। वीइक्कते—उल्लघन करता है। देवावासतराइ—देवावास विशेषो को।[1]

देवो का मध्य मे से होकर गमनसामर्थ्य

६ अप्पिड्ढीए ण भते ! देवे महिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीतीवइज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[६ प्र] भगवन् ! क्या अल्पऋद्धिक (अल्पशक्तियुक्त) देव, महर्द्धिक (महाशक्ति वाले) देव के बीच मे हो कर जा सकता है ?

[६ उ] गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है। (वह, महर्द्धिक देव के बीचोबीच हो कर नही जा सकता।)

७ [१] समिड्ढीए ण भते ! देवे समिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेण वीतीवएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे। पमत्त पुण वीतीवएज्जा।

[७-१ प्र] भगवन् ! समर्द्धिक (समान शक्ति वाला) देव समर्द्धिक देव के बीच मे से हो कर जा सकता है ?

[७ १ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है, परन्तु यदि वह (दूसरा समर्द्धिक देव) प्रमत्त (असावधान) हो तो (बीचोबीच हो कर) जा सकता है।

[२] से ण भते ! किं विमोहित्ता पभू, अविमोहित्ता पभू ?

गोयमा ! विमोहेत्ता पभू नो अविमोहेत्ता पभू।

[७-२ प्र] भगवन् ! क्या वह देव, उस (सामने वाले समर्द्धिक देव) को विमोहित करके जा सकता है, या विमोहित किये विना जा सकता है ?

[७-२ उ] गौतम ! वह देव, सामने वाले समर्द्धिक देव को विमोहित करके जा सकता है, विमोहित किये विना नही जा सकता।

[३] से भते ! किं पुव्वि विमोहेत्ता पच्छा वीतीवएज्जा ? पुव्वि वीतीवएत्ता पच्छा विमोहेज्जा ?

गोयमा ! पुव्वि विमोहेत्ता पच्छा वीतीवएज्जा, णो पुव्वि वीतीवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा।

[७-३ प्र] भगवन् ! क्या वह देव, उस देव को पहले विमोहित करके बाद मे जाता है, या पहले जा कर बाद मे विमोहित करता है ?

[७ ३ उ] गौतम ! वह देव, पहले उसे विमोहित करता है और बाद मे जाता है, परन्तु पहले जा कर बाद मे विमोहित नही करता।

---

१ भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्र ४९९

८ [१] महिड्ढीए णं भंते ! देवे अप्पिड्ढीयस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीतीवएज्जा ?
हंता, वीतीवएज्जा।

[८-१ प्र] भगवन् ! क्या महर्द्धिक देव, अल्पऋद्धिक देव के बीचोंबीच में से हो कर जा सकता है ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! जा सकता है।

[२] से भंते ! किं विमोहित्ता पभू, अविमोहित्ता पभू ?
गोयमा ! विमोहित्ता वि पभू, अविमोहित्ता वि पभू।

[८-२ प्र] भगवन् ! वह महर्द्धिक देव, उस अल्पऋद्धिक देव को विमोहित करके जाता है, अथवा विमोहित किये बिना जाता है ?

[८-२ उ] गौतम ! वह विमोहित करके भी जा सकता है और विमोहित किये बिना भी जा सकता है।

[३] से भंते ! किं पुव्विं विमोहेत्ता पच्छा वीतीवइज्जा ? पुव्विं वीतीवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा ?
गोयमा ! पुव्विं वा विमोहित्ता पच्छा वीतीवएज्जा, पुव्विं वा वीतीवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा।

[८-३ प्र] भगवन् ! वह महर्द्धिक देव, उसे पहले विमोहित करके बाद में जाता है, अथवा पहले जा कर बाद में विमोहित करता है ?

[८-३ उ] गौतम ! वह महर्द्धिक देव, पहले उसे विमोहित करके बाद में भी जा सकता है और पहले जा कर बाद में भी विमोहित कर सकता है।

९ [१] अप्पिड्ढीए णं भंते ! असुरकुमारे महिड्ढीयस्स असुरकुमारस्स मज्झंमज्झेणं वीतीवएज्जा ?
णो इणट्ठे समट्ठे।

[९-१ प्र] भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक असुरकुमार देव, महर्द्धिक असुरकुमार देव के बीचोंबीच में से हो कर जा सकता है ?

[९-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

[२] एवं असुरकुमारेण वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जहा ओहिएणं देवेणं भणिया।

[९-२] इसी प्रकार सामान्य देव के आलापकों की तरह असुरकुमार के भी तीन आलापक कहने चाहिए।

[३] एवं जाव थणियकुमारेणं।

[९-३] इसी प्रकार स्तनितकुमार तक तीन-तीन आलापक कहना चाहिए।

१० वाणमंतर जोतिसिय वेमाणिएण एवं चेव (सु ९)।

[१०] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे भी इसी प्रकार (सू ९ के अनुसार) कहना चाहिए।

विवेचन--अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और समर्द्धिक देवो का एक दूसरे के मध्य मे से हो कर जाने का गमनसामर्थ्य—प्रस्तुत पाच सूत्रो (६ से १० तक) मे मध्य मे से हो कर जाने के गमनसामर्थ्य के विषय मे मुख्यतया ४ आलापक प्रस्तुत किये हैं—(१) अल्पऋद्धिक देव महर्द्धिक देव के साथ, (२) समर्द्धिक समर्द्धिक के साथ (३) महर्द्धिक देव का अल्पर्द्धिक देव के साथ और (४) अल्पर्द्धिक चारो जाति के देवो का स्व-स्व जातीय महर्द्धिक देवो के साथ। इनका निष्कर्ष यह है कि अल्पर्द्धिक देव महर्द्धिक देव के बीचोबीच मे से हो कर नही जा सकते किन्तु महर्द्धिक देव अल्पर्द्धिक देव के बीचोबीच मे से हो कर पहले या पीछे विमोहित करके या विमोहित किये बिना भी जा सकते हैं। समर्द्धिक समर्द्धिक देव के बीचोबीच मे से हो कर पहले उसे विमोहित करके जा सकता है, बशर्ते कि जिसके बीचोबीच मे से होकर जाना है, वह असावधान हो।[1]

विमोहित करने का तात्पर्य—विमोहित का यहाँ प्रसगवश अर्थ है—विस्मित करना, अर्थात् महिका (धू अर) आदि के द्वारा अन्धकार करके मोह उत्पन्न कर देना। उस अन्धकार को देख कर सामने वाला देव विस्मय मे पड जाता है कि यह क्या है? ठीक उसी समय उसके न देखते हुए ही बीच मे से निकल जाना, विमोहित करके निकल जाना कहलाता है।[2]

देव-देवियो का एक दूसरे के मध्य मे से होकर गमनसामर्थ्य

११ अप्पिड्ढीए ण भंते! देवे महिड्ढीयाए देवीए मज्झमज्झेणं वीतीवएज्जा?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[११ प्र] भगवन्! क्या अल्प ऋद्धिक देव, महर्द्धिक देवी के मध्य मे से हो कर जा सकता है?

[११ उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही।

१२ समिड्ढीए ण भंते! देवे समिड्ढीयाए देवीए मज्झमज्झेणं० ? एवं तहेव देवेण य देवीए य दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाए।

[१२ प्र] भगवन्! क्या समर्द्धिक देव, समर्द्धिक देवी के बीचोबीच मे से हो कर जा सकता है?

[१२ उ] गौतम! पूर्वोक्त प्रकार से (सू ७ के अनुसार) देव के साथ देवी का भी दण्डक वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

१३ अप्पिड्ढिया ण भंते! देवी महिड्ढीयस्स देवस्स मज्झमज्झेणं० ? एवं एसो वि तइओ दंडओ भाणियव्वो जाव महिड्ढिया वेमाणिणी अप्पिड्ढियस्स वेमाणियस्स मज्झमज्झेणं वीतीवएज्जा?

हंता, वीतीवएज्जा।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९

२ वही, पत्र ४९९

[१३ प्र] भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी, महर्द्धिक देव के मध्य में से हो कर जा सकती है ?

[१३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

इस प्रकार यहाँ भी यह तीसरा दण्डक कहना चाहिए यावत्—(प्र) भगवन् ! महर्द्धिक वैमानिक देवी, अल्प-ऋद्धिक वैमानिक देव के बीच में से होकर जा सकती है ? [उ] हाँ, गौतम ! जा सकती है।

१४ अप्पिड्ढीया णं भंते ! देवी महिड्ढियाए देवीए मज्झंमज्झेणं वीतीवएज्जा ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[१४ प्र] भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवी के मध्य में से होकर जा सकती है ?

[१४ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

१५ एवं समिड्ढिया देवी समिड्ढियाए देवीए तहेव।

[१५] इसी प्रकार सम ऋद्धिक देवी का सम ऋद्धिक के साथ (सू ■ के अनुसार) पूर्ववत् आलापक कहना चाहिए।

१६ महिड्ढिया देवी अप्पिड्ढियाए देवीए तहेव।

[१६] महर्द्धिक देवी का अल्प-ऋद्धिक देवी के साथ (सू ८ के अनुसार) आलापक कहना चाहिए।

१७ एवं एक्केक्के तिण्णि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा जाव महिड्ढीया णं भंते ! वेमाणिणी अप्पिड्ढीयाए वेमाणिणीए मज्झंमज्झेणं वीतीवएज्जा ? हंता, वीतीवएज्जा। सा भंते ! किं विमोहित्ता पभू ? तहेव जाव पुव्विं वा वीइवइत्ता पच्छा विमोहेज्जा। एए चत्तारि दंडगा।

[१७] इसी प्रकार एक एक के तीन-तीन आलापक कहने चाहिए, यावत्—(प्र) भगवन् ! वैमानिक महर्द्धिक देवी, अल्प-ऋद्धिक वैमानिक देवी के मध्य में से होकर जा सकती है ? [उ] हाँ गौतम ! जा सकती है, यावत्—(प्र) क्या वह महर्द्धिक देवी, उसे विमोहित करके जा सकती है या विमोहित किए बिना भी जा सकती है ? तथा पहले विमोहित करके बाद में जाती है, अथवा पहले जा कर बाद में विमोहित करती है ? (उ) हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप से कि पहले जाती है और पीछे भी विमोहित करती है, तक कहना चाहिए। इस प्रकार के चार दण्डक कहने चाहिए।

विवेचन—महर्द्धिक-समर्द्धिक अल्पर्द्धिक देव-देवियों का एक दूसरे के मध्य में से गमन सामर्थ्य—प्रस्तुत ७ सूत्रों (११ से १७ तक) में पूर्ववत् गमनसामर्थ्य के विषय में ७ आलापक प्रस्तुत किये गए हैं। यथा—(१) अल्पर्द्धिक देव का महर्द्धिक देवी के साथ, (२) समर्द्धिक देव का समर्द्धिक देवी के साथ, (सभी जातियों के देवों का स्व-स्वजातीय देवियों के साथ), (३) अल्प ऋद्धिक देवी का महर्द्धिक देव के साथ, (४) महर्द्धिक चतुर्निकायगत देवी अल्प-ऋद्धिक चारों जाति के देवों के साथ, (५) अल्प ऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवी के साथ, (६) सम-ऋद्धिक देवी समर्द्धिक देवी के साथ और (७) महर्द्धिक देवी का अल्प-ऋद्धिक देवी के साथ। (भवनपति से वैमानिक तक महर्द्धिक देवियां

का अल्पर्द्धिक देवियो के साथ)। इन सबका निष्कर्ष यह है कि जैसे पहले अल्प-ऋद्धिक, महर्द्धिक और समर्द्धिक देवो के विषय मे कहा है, वैसे ही देव-देवियो के तथा देवियो-देवियो के विषय मे भी कहना चाहिए। शेष सभी पूर्ववत् समझना चाहिए।

दौडते हुए अश्व के 'खु-खु' शब्द का कारण

१८ आसस्स ण भते ! धावमाणस्स किं 'खु खु' त्ति करेइ ?

गोयमा ! आसस्स ण धावमाणस्स हिययस्स य जगयस्स य अतरा एत्थ ण कब्बडए नाम वाए समुट्ठइ, जे ण आसस्स धावमाणस्स 'खु खु' त्ति करेति।

[१८ प्र] भगवान् ! दौडता हुआ घोडा 'खु-खु' शब्द क्यो करता है ?

[१८ उ] गौतम ! जब घोडा दौडता है तो उसके हृदय और यकृत् के बीच मे कर्कट नामक वायु उत्पन्न होती है, इससे दौडता हुआ घोडा 'खु-खु' शब्द करता है।

विवेचन—घोडे की 'खु-खु' आवाज क्यो और कहाँ से ?—प्रस्तुत सूत्र १८ मे दौडते हुए घोडे की 'खु खु' आवाज का कारण हृदय और यकृत के बीच मे कर्कटवायु का उत्पन्न होना बताया है।[१]

कठिन शब्दो का भावार्थ—आसस्स—अश्व के। धावमाणस्स—दौडते हुए। जगयस्स—यकृत=(लीवर—पेट के दाहिनी ओर का अवयव विशेष, प्लीहा) के। हिययस्स—हृदय के। कब्बडए—कर्कट। समुट्ठइ—उत्पन्न होता है।[३]

प्रज्ञापनी भाषा मृषा नहीं

१९ अह भते ! आसइस्सामो सइस्सामो चिट्ठिस्सामो निसिइस्सामो तुयट्टिस्सामो,

आमतणि १ आणमणी २ जायणि ३ तह पुच्छणी ४ य पण्णवणी ५।

पच्चक्खाणी भासा ६ भासा इच्छाणुलोमा य ७ ॥१॥

अणभिग्गहिया भासा ८ भासा य अभिग्गहम्मि बोधव्वा ९।

ससयकरणी भासा १० वोयड ११ मव्वोयडा १२ चेव ॥२॥

पण्णवणी ण एसा भासा, न एसा भासा मोसा ?

हता, गोयमा ! आसइस्सामो० त चेव जाव न एसा भासा मोसा।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ दसमे सए तइओ उद्देसो समत्तो ॥१० ३॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९

(ख) भगवती (विवेचन) प १८६, भा ४

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टिप्पणयुक्त), भा २ पृ ४९३

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ४९९

[१९ प्र] भगवन् ! १ आमंत्रणी, २ आज्ञापनी, ३ याचनी, ४ पृच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छानुलोमा, ८ अनभिगृहीता, ९ अभिगृहीता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृता और १२ अव्याकृता, इन बारह प्रकार की भाषाओं में 'हम आश्रय करेंगे, शयन करेंगे, खड़े रहेंगे, बैठेंगे, और लेटेंगे' इत्यादि भाषण करना क्या प्रज्ञापनी भाषा कहलाती है और ऐसी भाषा मृषा (असत्य) नहीं कहलाती है ?

[१९ उ] हाँ, गौतम ! यह (पूर्वोक्त) आश्रय करेंगे, इत्यादि भाषा प्रज्ञापनी भाषा है, यह भाषा मृषा (असत्य) नहीं है।

हे भगवान् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है ! ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—'आश्रय करेंगे' इत्यादि भाषा की सत्यासत्यता का निर्णय—प्रस्तुत सू. १९ में लौकिक व्यवहार की प्रवृत्ति का कारण होने से आमंत्रणी आदि १२ प्रकार की असत्यामृषा (व्यवहार) भाषाओं में से 'आश्रय करेंगे' इत्यादि भाषा प्रज्ञापनी होने से मृषा नहीं है, ऐसा निर्णय दिया गया है।[1]

बारह प्रकार की भाषाओं का लक्षण—मूलतः चार प्रकार की भाषाएँ शास्त्र में बताई गई हैं। यथा—सत्या, मृषा (असत्या), सत्यामृषा और असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा। प्रज्ञापनासूत्र के ग्यारहवें भाषापद में असत्यामृषाभाषा के १२ भेद बताए हैं, जिनका नामोल्लेख मूलपाठ में है। उनके लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) **आमंत्रणी**—किसी को आमन्त्रण-सम्बोधन करना। जैसे—हे भगवन् !

(२) **आज्ञापनी**—दूसरे को किसी कार्य में प्रेरित करने वाली। यथा—बैठो, उठो आदि।

(३) **याचनी**—याचना करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा। जैसे—मुझे सिद्धि प्रदान करें।

(४) **पृच्छनी**—अज्ञात या संदिग्ध पदार्थों को जानने के लिए पृच्छा व्यक्त करने वाली। जैसे—'इसका अर्थ क्या है ?'

(५) **प्रज्ञापनी**—उपदेश या निवेदन करने के लिए प्रयुक्त की गई भाषा। जैसे—मृषावाद अविश्वास का हेतु है। अथवा ऐसे बैठेंगे, लेटेंगे इत्यादि।

(६) **प्रत्याख्यानी**—निषेधात्मक भाषा। जैसे—चोरी मत करो अथवा मैं चोरी नहीं करूंगा।

(७) **इच्छानुलोमा**—दूसरे की इच्छा का अनुसरण करना अथवा अपनी इच्छा प्रकट करना।

(८) **अनभिगृहीता**—प्रतिनियत (निश्चित) अर्थ का ज्ञान न होने पर उसके लिए बोलना।

(९) **अभिगृहीता**—प्रतिनियत अर्थ का बोध कराने वाली भाषा।

(१०) **संशयकरणी**—अनेकार्थवाचक शब्द का प्रयोग करना।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण), भा. २, पृ. ४९३

(११) व्याकृता—स्पष्ट अर्थवाली भाषा।

(१२) अव्याकृता—अस्पष्ट उच्चारण वाली या गंभीर अर्थ वाली भाषा।

'हम आश्रय करेंगे', इत्यादि भाषा यद्यपि भविष्यत्कालीन है, तथापि वर्तमान सामीप्य होने से प्रज्ञापनी भाषा है, जो असत्य नहीं है।[1]

॥ दशम शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ४९९-५००

चउत्थो उद्देसओ : चतुर्थ उद्देशक

सामहत्थी · श्यामहस्ती

उपोद्घात

१ तेण कालेण तेण समएण वाणियगामे नाम नगरे होत्था । वण्णओ । दूतिपलासए चेतिए । सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया ।

[१] उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था । उसका यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए । वहाँ द्युतिपलाश नामक उद्यान था । (एक बार) वहाँ श्रमण भगवान् महावीर का समवसरण हुआ यावत् परिषद् आई और वापस लौट गई ।

२ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नाम अणगारे जाव उड्ढजाणू जाव विहरइ ।

[२] उस काल और उस समय में, (वहाँ श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में) श्रमण भगवान् महावीरस्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति (गौतम) नामक अनगार थे । वे ऊर्ध्वजानु यावत् विचरण करते थे ।

३ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतेवासी सामहत्थी नाम अणगारे पगतिभद्दए जहा रोहे जाव उड्ढजाणू विहरइ ।

[३] *उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के एक अन्तेवासी (शिष्य) थे—* श्यामहस्ती नामक अनगार । वे प्रकृतिभद्र, प्रकृतिविनीत, यावत् रोह अनगार के समान ऊर्ध्वजानु, यावत् विचरण करते थे ।

४ तए ण से सामहत्थी अणगारे जायसड्ढे जाव उट्ठाए उट्ठेइ, उ० २ जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ भगवं गोयमं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—

[४] एक दिन उन श्यामहस्ती नामक अनगार को श्रद्धा, यावत् (संशय, विस्मय आदि उत्पन्न हुए तथा यावत् वे) *अपने स्थान से उठे और उठ कर जहाँ भगवान् गौतम विराजमान थे, वहाँ आए।* भगवान् गौतम के पास आकर वन्दना नमस्कार कर यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछने लगे—

विवेचन—श्यामहस्ती अनगार परिचय एवं प्रश्न का उत्थान—प्रस्तुत ४ सूत्रों में बताया गया है कि उस समय श्रमण भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम नगर में द्युतिपलाश नामक उद्यान में विराजमान थे । उनके पट्टशिष्य इन्द्रभूति गौतमस्वामी भी उन्हीं की सेवा में थे । वहीं भगवान् महावीर की सेवा में उनके एक शिष्य श्यामहस्ती थे, जो प्रकृति से भद्र, नम्र एवं विनीत थे । एक

दिन श्यामहस्ती अनगार के मन मे कुछ प्रश्न उठे। उनके मन मे श्री गौतमस्वामी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति जागी। उद्भूत प्रश्नो का समाधान पाने के लिए उनके कदम बढे और जहा गौतमस्वामी थे, वहा आकर उन्होने वन्दना नमस्कारपूर्वक सविनय कुछ प्रश्न पूछे। श्यामहस्ती अनगार के प्रश्न होने से इस उद्देशक का नाम भी श्यामहस्ती है।[1]

कठिन शब्दार्थ—पगतिभद्दए—प्रकृति से भद्र। जयसड्ढे—श्रद्धा उत्पन्न हुई।[2]

चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव अस्तित्व, कारण एव सर्वेव स्थायित्व

५ [१] अत्थि ण भते! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा? हता, अत्थि।

[५-१ प्र] भगवन्! क्या असुरकुमारो के राजा, असुरकुमारो के इन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव है?

[५-१ उ] हा, (श्यामहस्ती! चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव) हैं।

[२] से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति—चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा?

एव खलु सामहत्थी! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कायदी नाम नगरी होत्था। वण्णओ। तत्थ ण कायदीए नयरीए तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा परिवसति अड्ढा जाव अपरिभूया अभिगयजीवाऽजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा जाव विहरति। तए ण ते तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासया पुव्वि उग्गा उग्गविहारी सविग्गा सविग्गविहारी भवित्ता तओ पच्छा पासत्था पासत्थविहारी ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाछदा अहाछदविहारी बहूइ वासाइ समणोवासगपरियाग पाउणति, पा० २ अद्धमासियाए सलेहणाए अत्ताण झूसेंति, झू० २ तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेंति, छे० २ तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कता कालमासे काल किच्चा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगदेवत्ताए उववन्ना।

[५-२ प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि असुरकुमारो के राजा असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं?

[५-२ उ] हे श्यामहस्ती! (असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिशक देव होने का) कारण इस प्रकार है—उस काल उस समय मे इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष मे काकन्दी नाम की नगरी थी। उसका वर्णन यहा समझ लेना चाहिए। उस काकन्दी नगरी मे (एक-दूसरे के) सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक (श्रावक) रहते थे। वे धनाढ्य यावत् अपरिभूत थे। वे जीव-अजीव के ज्ञाता एव पुण्य-पाप को हृदयगम किए हुए विचरण (जीवन-यापन) करते थे। एक समय था, जब वे परस्पर सहायक गृहपति श्रमणोपासक पहले उग्र (उत्कृष्ट-आचारी), उग्र-विहारी, सविग्न, सविग्नविहारी थे, परन्तु तत्पश्चात वे पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, यथाच्छन्द और यथाच्छन्दविहारी हो गए। बहुत वर्षो तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन कर, अर्धमासिक

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा २ पृ ४९३-४९४

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ५०२

संलेखना द्वारा शरीर को (अपने आप को) कृश करके तथा तीस भक्तों का अनशन द्वारा छेदन (छोड) करके, उस (प्रमाद-) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल के अवसर पर काल कर के (तीसों ही) असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

[३] जप्पभिति च णं भंते ! ते कायंदगा तावत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासगा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसदेवत्ताए उववन्ना तप्पभितिं च णं भंते ! एवं वुच्चति 'चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा' ? ।

[५ ३ प्र] (श्यामहस्ती गौतमस्वामी से)—भगवन् ! जब से काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देवरूप में उत्पन्न हुए हैं, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि असुरराज असुरेन्द्र चमर के (ये) तेतीस देव त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? (क्या इससे पहले उनके त्रायस्त्रिंशक देव नहीं थे ?)

६ तए णं भगवं गोयमे सामहत्थिणा अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे संकिते कंखिए वितिगिंछिए उट्ठाए उट्ठेइ, उ० २ सामहत्थिणा अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, ते० उ० २ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वं० २ एवं वयासी—

[६] तब श्यामहस्ती अनगार के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर भगवान् गौतमस्वामी शंकित, कांक्षित एवं विचिकित्सित (अतिसंदेहग्रस्त) हो गए। वे वहाँ से उठे और श्यामहस्ती अनगार के साथ जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आए। तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीरस्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार पूछा—

७ [१] अत्थि णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हंता, अत्थि।

[७-१ प्र] (गौतमस्वामी ने भगवान् से—) भगवन् ! क्या असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

[७ १ उ] हाँ, गौतम हैं।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, एवं तं चेव सव्वं (सु ५ २) भाणियव्वं, जाव तावत्तीसगदेवत्ताए उववण्णा।

[७-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? इत्यादि पूर्ववत् (५-२ के अनुसार) प्रश्न।

[७ २ उ] उत्तर में पूर्वकथित त्रायस्त्रिंशक देवों का समस्त वृत्तान्त कहना चाहिए यावत् वे ही (काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक मर कर) चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंश देव के रूप में उत्पन्न हुए।

[३] भंते ! तप्पभितिं च णं एवं वुच्चइ चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा तावत्तीसगा देवा ?

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तावत्तीसगाणं देवाणं सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, जं न कदायि नासी, न कदायि न भवति, जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठताए। अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति।

[७-३ प्र.] भगवन् ! जब से वे (काकन्दीनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक असुरराज असुरेन्द्र चमर के) त्रायस्त्रिंशक देवरूप में उत्पन्न हुए हैं, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? (क्या इससे पूर्व उसके त्रायस्त्रिंशक देव नहीं थे ?)

[७-३ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, (अर्थात्—ऐसा सम्भव नहीं है) असुरराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के नाम शाश्वत कहे गए हैं। इसलिए किसी समय नहीं थे, या नहीं है, ऐसा नहीं है और कभी नहीं रहेंगे, ऐसा भी नहीं है। यावत् अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा से वे नित्य है, (किन्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से) पहले वाले च्यवते हैं और दूसरे उत्पन्न होते हैं। (उनका प्रवाहरूप से कभी विच्छेद नहीं होता।)

विवेचन—असुरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों की नित्यता-अनित्यता का निर्णय—प्रस्तुत तीन सूत्रों (५-६-७) में बताया गया है कि श्यामहस्ती अनगार द्वारा असुरराज चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों के अस्तित्व तथा त्रायस्त्रिंशक होने के कारणों के सम्बन्ध में गौतमस्वामी से पूछा। गौतमस्वामी ने उनका पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया। किन्तु जब श्यामहस्ती ने यह पूछा कि क्या इससे पूर्व असुरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव नहीं थे ? इस पर विनम्र गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर के चरणों में जा कर अपनी इस शंका को प्रस्तुत करके समाधान प्राप्त किया कि द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से त्रायस्त्रिंशक देव शाश्वत एवं नित्य हैं, किन्तु पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से पूर्व के त्रायस्त्रिंशक देव आयु समाप्त होने पर च्यवन कर जाते हैं, उनके स्थान पर नये त्रायस्त्रिंशक देव उत्पन्न होते हैं। परन्तु त्रायस्त्रिंशक देवों का प्रवाहरूप से कभी विच्छेद नहीं होता।[1]

'**उग्गा आदि शब्दों का भावार्थ**—**उग्गा**—भाव से उदात्त या उदारचरित। **उग्गविहारी**—उदार आचार वाले। **संविग्गा**—मोक्षप्राप्ति के इच्छुक अथवा संसार से भयभीत। **संविग्गविहारी**—मोक्ष के अनुकूल आचरण करने वाले। **पासत्था**—पाशस्थ—शरीरादि मोहपाश में बंधे हुए या पार्श्वस्थ—ज्ञानादि से बहिर्भूत। **पासत्थविहारी**—मोहपाशग्रस्त होकर व्यवहार करने वाले अथवा ज्ञानादि से बहिर्भूत प्रवृत्ति करने वाले। **ओसन्ना**—उत्तर आचार का पालन करने में आलसी। **ओसन्नविहारी**—जीवनपर्यन्त शिथिलाचारी। **कुसीला**—ज्ञानादि आचार की विराधना करने वाले। **कुसीलविहारी**—जीवनपर्यन्त ज्ञानादि आचार के विराधक। **अहाछंदा**—अपनी इच्छानुसार सूत्रविरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले। **अहाछंदविहारी**—जीवनपर्यन्त स्वच्छन्दाचारी।[2]

त्रायस्त्रिंशक देवों का लक्षण—जो देव मंत्री और पुरोहित का कार्य करते हैं, वे त्रायस्त्रिंशक

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. २, पृ. ४९४-४९५

२ भगवती अ. वृत्ति पत्र ५०२

कहलाते हैं, ये तेतीस की संख्या में होते हैं।[1] सहाया के दो रूप : दो अर्थ—(१) सहाया —परस्पर सहायक। (२) सभाजा —परस्पर प्रीतिभाजन।[2]

बलीन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों की नित्यता का प्रतिपादन

८ [१] अत्थि णं भंते ! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हंता, हत्थि।

[८-१ प्र] भगवन् ! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

[८-१ उ] हाँ, गौतम ! हैं।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—बलिस्स वइरोयणिंदस्स जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बिभेले णामं सन्निवेसे होत्था। वण्णओ। तत्थ णं बेभेले सन्निवेसे जहा चमरस्स जाव उववन्ना। जप्पभिइं च णं भंते ! ते बिभेलगा तावत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासगा बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सेसं तं चेव (सु ७ [२]) जाव निच्चे अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए। अन्ने चयंति, अन्ने उववज्जंति।

[८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

[८-२ उ] गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में बिभेल नामक एक सन्निवेश था। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार करना चाहिए। उस बिभेल सन्निवेश में परस्पर सहायक तेतीस गृहस्थ श्रमणोपासक थे, इत्यादि जैसा वर्णन चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशकों के लिए (४-२ में) किया गया है, वैसा ही जानना चाहिए, यावत् वे त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए।

[प्र] भगवन् ! जब से वे बिभेल सन्निवेशनिवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक बलि के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए, क्या तभी से ऐसा कहा जाता है कि वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[उ] (इसके उत्तर में) शेष सभी वर्णन (सू ७-२ के अनुसार) पूर्ववत् जानना चाहिए। वे अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा नित्य हैं। (किन्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा) पुराने (त्रायस्त्रिंशक देव) च्यवते रहते हैं, (उनके स्थान पर) दूसरे (नये) उत्पन्न होते रहते हैं,—यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—बलीन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवों की नित्यता अनित्यता का निर्णय—प्रस्तुत ८ वें सूत्र में वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक देवों के अस्तित्व, उत्पत्ति एवं द्रव्यार्थिकनय की

---

१ 'त्रायस्त्रिंशा—मन्त्रिकल्पा।'—भगवती अ वृत्ति, पत्र २०२

२ (क) सहाया — परस्परेण सहायकारिणः। —वही पत्र ५०२

(ख) सभाजा —परस्पर प्रीतिभाजः।—वियाहप सु पा टि, भा २, पृ ४९४

दृष्टि से नित्यता और पर्यायार्थिक-दृष्टि से व्यक्तिगत रूप से अनित्यता किन्तु प्रवाहरूप से अविच्छिन्नता का प्रतिपादन पूर्वसूत्रो के अतिदेश द्वारा किया गया है।[1]

धरणेन्द्र से महाघोषेन्द्र-पर्यन्त के त्रायस्त्रिशक देवो की नित्यता का निरूपण

९ [१] अत्थि ण भते ! धरणस्स नागकुमारिदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

हता, अत्थि।

[९-१ प्र] भगवन् ! क्या नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिशक देव है ?

[९ १ उ] हां, गौतम ! हैं।

[२] से केणट्ठेण जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

गोयमा ! धरणस्स नागकुमारिदस्स नागकुमाररण्णो तावत्तीसगाण देवाण सासए नामधेज्जे पण्णत्ते, ज न कदायि नासी, जाव अन्ने चयति, अन्ने उववज्जति।

[९-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के त्रायस्त्रिशक देव हैं ?

[९-२ उ] गौतम ! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिशक देवो के नाम शाश्वत कहे गये है। वे किसी समय नही थे, ऐसा नही है, नही रहेगे—ऐसा भी नही, यावत पुराने च्यवते हैं और (उनके स्थान पर) नये उत्पन्न होते हैं। (इसलिए प्रवाहरूप से वे अनादिकाल से हैं)।

१० एव भूयाणदस्स वि। एव जाव महाघोसस्स।

[१०] इसी प्रकार भूतानन्द इन्द्र, यावत महाघोष इन्द्र के त्रायस्त्रिशक देवो के विषय मे जानना चाहिए।

विवेचन - धरणेन्द्र मे महाघोषेन्द्र तक के त्रायस्त्रिशक देवों की नित्यता—सूत्र ९ एव १० मे प्रतिपादित है।

शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक के त्रायस्त्रिशक कौन और कैसे ?

११ [१] अत्थि ण भते ! सक्कस्स देविदस्स देवरण्णो० पुच्छा।

हता, अत्थि।

[११-१ प्र] भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिशक देव हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[११-१ उ] हा, गौतम ! हैं।

[२] से केणट्ठेण जाव तावत्तीसगा देवा, तावत्तीसगा देवा ?

एव खलु गोयमा ! तेण कालेण तेण समएण इहेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वालाए नाम सन्निवेसे होत्था। वण्णओ। तत्थ ण वालाए सन्निवेसे तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा जहा चमरस्स जाव विहरति। तए ण ते तावत्तीस सहाया गाहावती समणोवासगा पुव्वि पि पच्छा वि उग्गा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ४९५

उग्गविहारी संविग्गा संविग्गविहारी बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेंति, झू० २ सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, छे० २ आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा जाव उववन्ना । जप्पभिंति च णं भंते ! ते बालागा तावत्तीसं सहाया गाहावती समणोवासगा सेसं जहा चमरस्स जाव अन्ने उववज्जंति ।

[११-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि देवेन्द्र देवराज शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

[११-२ उ] गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के, भारतवर्ष में बालाक (अथवा पलाशक) सन्निवेश था । उसका वर्णन करना चाहिए । उस बालाक सन्निवेश में परस्पर सहायक (अथवा प्रीतिभाजन) तेतीस गृहपति श्रमणोपासक रहते थे, इत्यादि सब वर्णन चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशकों (सू. ५—१२) के अनुसार करना चाहिए, यावत् विचरण करते थे । वे तेतीस परस्पर सहायक गृहस्थ श्रमणोपासक पहले भी और पीछे भी उग्र, उग्रविहारी एवं संविग्न तथा संविग्नविहारी होकर बहुत वर्षों तक श्रमणोपासकपर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना से शरीर को कृश करके, साठ भक्त का अनशन द्वारा छेदन करके, अन्त में आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल के अवसर पर समाधिपूर्वक काल करके यावत् शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए । 'भगवन् ! जब से वे बालाक निवासी परस्पर सहायक गृहपति श्रमणोपासक शक्र के त्रायस्त्रिंशों के रूप में उत्पन्न हुए क्या तभी से शक्र के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?' इत्यादि प्रश्न एवं उसके उत्तर में शेष समग्र वर्णन पुराने च्यवते हैं और नये उत्पन्न होते हैं, तक चमरेन्द्र के समान करना चाहिए ।

१२ अत्थि णं भंते ! ईसाणस्स० । एवं जहा सक्कस्स, नवरं चंपाए नगरीए जाव उववन्ना । जप्पभिंति च णं भंते ! चंपिच्चा तावत्तीसं सहाया० सेसं तं चेव जाव अन्ने उववज्जंति ।

[१२ प्र उ] भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? इत्यादि प्रश्न का उत्तर शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए । इतना विशेष है कि ये तेतीस श्रमणोपासक चम्पानगरी के निवासी थे यावत् ईशानेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उत्पन्न हुए । (इसके पश्चात्) जब से ये चम्पानगरी निवासी तेतीस परस्पर सहायक श्रमणोपासक त्रायस्त्रिंशक बने, इत्यादि (प्रश्न और उसके उत्तर में) शेष समग्र वर्णन पूर्ववत् पुराने च्यवते हैं और नये (अन्य) उत्पन्न होते हैं तक करना चाहिए ।

१३ [१] अत्थि णं भंते ! सणंकुमारस्स देविंदस्स देवरण्णो० पुच्छा । हंता, अत्थि ।

[१३-१ प्र] भगवन् ! क्या देवराज देवेन्द्र सनत्कुमार के त्रायस्त्रिंशक देव हैं ?

[१३-१ उ] हाँ गौतम हैं ।

[२] से केणट्ठेणं० ? जहा धरणस्स तहेव ।

[१३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? इत्यादि समग्र प्रश्न तथा उसके उत्तर में जैसे धरणेन्द्र के विषय में कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिए ।

१४ एव जाव पाणतस्स । एव अच्चुतस्स जाव अन्ने उववज्जति ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति ।

॥ दसमस्स चउत्थो ॥१० ४॥

[१४] इसी प्रकार प्राणत (देवेन्द्र) तक के त्रायस्त्रिंशक देवो के विषय मे जान लेना चाहिए और इसी प्रकार अच्युतेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देवो के सम्बन्ध मे भी कि पुराने च्यवते है और (उनके स्थान पर) नये (त्रायस्त्रिंशक देव) उत्पन्न होते हैं, तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! यो कह कर गौतमस्वामी यावत विचरण करते है ।

विवेचन—शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता—प्रस्तुत ४ सूत्रो (११ से १४ तक) मे पूर्वोक्त सूत्रो का अतिदेश करके शक्रेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक १० प्रकार के कल्पो के वैमानिक देवेन्द्रो के त्रायस्त्रिंशक देवो की नित्यता का प्रतिपादन किया है। प्राय सभी का वर्णन एक-सा है। केवल त्रायस्त्रिंशको के पूर्वजन्म मे उग्र उग्रविहारी, सविग्न एव सविग्नविहारी श्रमणोपासक थे और अन्तिम समय मे इन्होने सलेखना एव अनशनपूर्वक एव आलोचना—प्रायश्चित्त करके आत्मशुद्धिपूर्वक समाधिमरण (पण्डितमरण) प्राप्त किया था ।[1]

त्रायस्त्रिंशक देव किन देवनिकायो मे ?—देवो के ४ निकाय हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक । इनमे से वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्क देवो मे त्रायस्त्रिंशक नही होते, किन्तु भवनपति एव वैमानिक देवो मे होते है । इसीलिए यहाँ भवनपति और वैमानिक देवो के त्रायस्त्रिंशक देवो का वर्णन है ।[2]

॥ दशम शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१ वियाहपण्णत्ति सुत्त (मूलपाठ-टिप्पण), भा २, पृ ४९६-४९७

२ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १८१९

पंचमो उद्देसओ : पंचम उद्देशक

देवी : अग्रमहिषीवर्णन

उपोद्घात

१ तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नाम नगरे गुणसिलए चेइए जाव परिसा पडिगया।

[१] उस काल और समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक उद्यान था। (वहाँ श्रमण भगवान् महावीरस्वामी का समवसरण हुआ।) यावत् परिषद् (धर्मोपदेश सुन कर) लौट गई।

२ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवंतो जाइसपन्ना जहा अट्ठमे सए सत्तमुद्देसए (स ८ उ ७ सु ३) जाव विहरति।

[२] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के बहुत-से अन्तेवासी (शिष्य) स्थविर भगवान् जातिसम्पन्न इत्यादि विशेषणो से युक्त थे, आठवें शतक के सप्तम उद्देशक के अनुसार अनेक विशिष्ट गुणसम्पन्न, यावत् विचरण करते थे।

३ तए ण ते थेरा भगवंतो जायसड्ढा जायससया जहा गोयमसामी जाव पज्जुवासमाणा एव वयासी—

[३] एक बार उन स्थविरो (के मन) में (जिज्ञासायुक्त) श्रद्धा और शंका उत्पन्न हुई। अत उन्होंने गौतमस्वामी की तरह, यावत् (भगवान् की) पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा—

विवेचन—स्थविरों द्वारा पृच्छा—प्रस्तुत तीन सूत्रो में इस उद्देशक की उत्थानिका प्रस्तुत करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि एक बार जब भगवान् महावीर राजगृहस्थित गुणशीलक उद्यान में विराजमान थे, तब उनके शिष्यस्थविरो के मन में कुछ जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुईं। उनका समाधान पाने के लिए उन्होंने अपनी प्रश्नावली श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष सविनय प्रस्तुत की।[1]

४ चमरस्स ण भंते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

अज्जो! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—काली रायी रयणी विज्जू मेहा। तत्थ ण एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं अट्ठट्ठ देवीसहस्साइ परियार विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेण चत्तालीस देवीसहस्सा, से त तुडिए।

[४ प्र] भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी अग्रमहिषियाँ (पटरानियाँ—मुख्यदेवियाँ) कही गई हैं?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पणयुक्त) भा २ पृ ४९७

[४ उ] आर्यो ! (चमरेन्द्र की) पाच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। वे इस प्रकार—(१) काली, (२) राजी, (३) रजनी, (४) विद्युत और (५) मेघा। इनमे से एक-एक अग्रमहिषी का आठ-आठ हजार देविया का परिवार कहा गया है।

एक-एक देवी (अग्रमहिषी) दूसरी आठ-आठ हजार देवियो के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर (पाच अग्रमहिषियो के परिवार मे) चालीस हजार देवियाँ है। यह एक त्रुटिक (वर्ग) हुआ।

विवेचन—चमरेन्द्र की अग्रमहिषियो का परिवार—प्रस्तुत चौथे सूत्र मे चमरेन्द्र की ५ अग्रमहिषियो तथा उनके प्रत्येक के ८-८ हजार देवियो का परिवार तथा कुल ४० हजार देविया बताई गई है। इन सबका एक वर्ग (त्रुटिक) कहलाता है।

कठिन शब्दार्थ —अग्गमहिसी – अग्रमहिषी (पटरानी या प्रमुख देवी)। अट्ठट्ठदेवीसहस्साइ— आठ आठ हजार देविया।[1]

अपनी सुधर्मा सभा मे चमरेन्द्र की मैथुननिमित्तक भोग की असमर्थता

५ [१] पभू ण भते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरसि सीहासणसि तुडिएण सद्धि दिव्वाइ भोगभोगाइ भु जमाणे विहरित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[५-१ प्र] भगवन् ! क्या असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर अपनी चमरचचा राजधानी की सुधर्मासभा मे चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर (पूर्वोक्त) त्रुटिक (स्वदेवियो के परिवार) के साथ भोग्य दिव्य भोगो को भोगने मे समर्थ है ?

[५-१ उ] (हे आर्यो !) यह अर्थ समर्थ नही।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—नो पभू चमरे असुरिंदे चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए ?

अज्जो ! चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अन्नेसि च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वदणिज्जाओ नमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासणिज्जाओ भवति, तेसि पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठण अज्जो ! एव वुच्चइ—नो पभू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचचाए जाव विहरित्तए।

[५ २ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर चमरचचा राजधानी की सुधर्मासभा मे यावत् भोग्य दिव्य भोगो को भोगने मे समर्थ नही है ?

[५-२ उ] आर्यो ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की चमरचचा नामक राजधानी की सुधर्मासभा मे माणवक चैत्यस्तम्भ मे, वज्रमय (हीरो के) गोल डिब्बो मे जिन भगवन् की बहुत सी अस्थियाँ रखी हुई हैं, जो कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज तथा अन्य बहुत-से असुरकुमार देवो

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १८२१

और देवियों के लिए अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारयोग्य एवं सम्मानयोग्य हैं। वे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप एवं पर्युपासनीय हैं। इसलिए उन (जिन भगवान् की अस्थियों) के प्रणिधान (सान्निध्य) में वह (असुरेन्द्र, अपनी राजधानी की सुधर्मासभा में) यावत् भोग भोगने में समर्थ नहीं है। इसीलिए हे आर्यो! ऐसा कहा गया है कि असुरेन्द्र यावत् चमर, चमरचंचा राजधानी में यावत् दिव्य भोग भोगने में समर्थ नहीं है।

[३] पभू णं अज्जो! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तावत्तीसाए जाव अन्नेहि य बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाऽहय जाव[1] भुंजमाणे विहरित्तए, केवलं परियारिड्ढीए, नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

[५-३ उ] परन्तु हे आर्यो! वह असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर, अपनी चमरचंचा राजधानी की सुधर्मासभा में चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर चौसठ हजार, सामानिक देवों, त्रायस्त्रिंशक देवों और दूसरे बहुत-से असुरकुमार देवों और देवियों से परिवृत होकर महानिनाद के साथ होने वाले नाट्य, गीत, वादित्र आदि के शब्दों से होने वाले (राग-रंग रूप) दिव्य भोग्य भोगों का केवल परिवार की ऋद्धि से उपभोग करने में समर्थ है, किन्तु मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं।

विवेचन—चमरेन्द्र सुधर्मासभा में मैथुननिमित्तक भोग भोगने में असमर्थ—प्रस्तुत पांचवें सूत्र में सुधर्मासभा में मैथुन-निमित्तक भोग भोगने की चमरेन्द्र की असमर्थता का सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है।[2]

कठिन शब्दों का भावार्थ—वइरामएसु—वज्रमय (हीरों के बने हुए), गोलवट्टसमुग्गएसु—वृत्ताकार गोल डिब्बों में। जिणसकहाओ—जिन भगवान् की अस्थियाँ। अच्चणिज्जा—अर्चनीय। पज्जुवासणिज्जाओ—उपासना करने योग्य। पणिहाए—प्रणिधान—सान्निध्य में। मेहुणवत्तियं—मैथुन के निमित्त। परियारिड्ढीए—परिवार की ऋद्धि से अर्थात्—अपने देवी परिवार की स्त्री शब्द-श्रवण-रूपदर्शनादि परिचारणा रूप ऋद्धि से।[3]

चमरेन्द्र के सोमादि लोकपालों का देवी-परिवार

६. चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कणगा कणगलया चित्तगुत्ता वसुंधरा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देविसहस्सं परिवारो पन्नत्तो। पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नं एगमेगं देविसहस्सं परिवारं विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेणं चत्तारि देविसहस्सा, से त्तं तुडिए।

---

१ जाव पद सूचित पाठ—"नट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं ति"। —भ. सू. व्याख्या पत्र ५०६

२ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पण) भा. २ पृ. ४९८

३ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ५०५-५०६

[६ प्र] भगवन् ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल सोम महाराज की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[६ उ] आर्यो ! उनके चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा—कनका कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा। इनमें से प्रत्येक देवी का एक-एक हजार देवियों का परिवार है। इनमें से प्रत्येक देवी एक एक हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिल कर चार हजार देवियाँ होती हैं। यह एक त्रुटिक (देवी-वर्ग) कहलाता है।

७ पभू ण भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमे महाराया सोमाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए सोमंसि सीहासणंसि तुडिएण० ? अवसेसं जहा चमरस्स, नवरं परियारो जहा सूरियाभस्स,[1] सेसं तं चेव जाव णो चेव णं मेहुणवत्तियं।

[७ प्र] भगवन् ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर का लोकपाल सोम महाराजा, अपनी सोमा नामक राजधानी की सुधर्मासभा में, सोम नामक सिंहासन पर बैठकर अपने उस त्रुटिक (देवियों के परिवारवर्ग) के साथ भोग्य दिव्य-भोग भोगने में समर्थ है ?

[७ उ] (हे आर्यो !) जिस प्रकार असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के सम्बन्ध में कहा गया, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए, परन्तु इसका परिवार, राजप्रश्नीयसूत्र में वर्णित सूर्याभदेव के परिवार के समान जानना चाहिए। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह सोमा राजधानी की सुधर्मा सभा में मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है।

८ चमरस्स णं भंते ! जाव रण्णो जमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ० ? एवं चेव, नवरं जमाए रायहाणीए सेसं जहा सोमस्स।

[८ प्र] भगवन् ! चमरेन्द्र के यावत् लोकपाल यम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[८ उ] (आर्यो !) जिस प्रकार सोम महाराजा के सम्बन्ध में कहा है, उसी प्रकार यम महाराजा के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए, किन्तु इतना विशेष है कि यम लोकपाल की राजधानी यमा है। शेष सब वर्णन सोम महाराजा के समान जानना चाहिए।

९ एवं वरुणस्स वि, नवरं वरुणाए रायहाणीए।

[९] इसी प्रकार (लोकपाल) वरुण महाराजा का भी कथन करना चाहिए। विशेष यहाँ है कि वरुण महाराजा की राजधानी का नाम वरुणा है। (शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।)

१० एवं वेसमणस्स वि, नवरं वेसमणाए रायहाणीए। सेसं तं चेव जाव णो चेव णं मेहुणवत्तियं।

[१०] इसी प्रकार (लोकपाल) वैश्रमण महाराजा के विषय में भी जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि वैश्रमण की राजधानी वैश्रमणा है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्—वे वहाँ मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं हैं।

---

१ यहाँ राजप्रश्नीयसूत्रगत सूर्याभदेव का वर्णन जान लेना चाहिए।

विवेचन—चमरेन्द्र के चार लोकपालों का देवीपरिवार तथा सुधर्मासभा में भोग असमर्थता—प्रस्तुत ५ सूत्रों (६ से १० तक) में चमरेन्द्र के चारों लोकपालों (सोम, यम, वरुण, वैश्रमण) की अग्रमहिषियों तथा तत्सम्बन्धी देवीवर्ग की संख्या का निरूपण किया गया है। साथ ही अपनी अपनी राजधानी की सुधर्मा सभा में बैठकर अपने देवीवर्ग के साथ सबकी, मैथुननिमित्तक भोग की असमर्थता बताई गई है। सबकी राजधानी और सिंहासन का नाम अपने-अपने नाम के अनुरूप है।[1]

बलीन्द्र एवं उसके लोकपालों का देवीपरिवार

११ बलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स० पुच्छा।

अज्जो ! पंच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—सुंभा निसुंभा रंभा निरंभा मदणा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ० सेसं जहा चमरस्स, नवरं बलिचंचाए रायहाणीए परियारो जहा मोउद्देसए (स ३ उ १ सु ११-१२),[2] सेसं तं चेव, जाव मेहुणवत्तियं।

[११ प्र] भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[११ उ] आर्यो ! (बलीन्द्र की) पांच अग्रमहिषियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं—शुम्भा, निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा और मदना। इनमें से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के आठ-आठ हजार देवियों का परिवार है, इत्यादि शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के देवीवर्ग के समान जानना चाहिए। विशेष इतना है कि बलीन्द्र की राजधानी बलिचंचा है। इनके परिवार का वर्णन तृतीय शतक के प्रथम मोक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्—वह (सुधर्मा सभा में) मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है।

१२ बलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—मीणगा सुभद्दा विजया असणी। तत्थ णं एगमेगाए देवीए० सेसं जहा चमरसोमस्स, एवं जाव वेसमणस्स।

[१२ प्र] भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[१२ उ] आर्यो ! (सोम महाराजा की) चार अग्रमहिषियाँ हैं ? वे इस प्रकार—(१) मेनका, (२) सुभद्रा, (३) विजया और (४) अशनी। इनकी एक एक देवी का परिवार आदि समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल सोम के समान जानना चाहिए। इसी प्रकार वैरोचनेन्द्र बलि के लोकपाल वैश्रमण तक सारा वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

विवेचन—वैरोचनेन्द्र एवं उसके चार लोकपालों की अग्रमहिषियों आदि का वर्णन—प्रस्तुत दो (११-१२) सूत्रों में वैरोचनेन्द्र बली एवं पूर्वोक्त नाम के चार लोकपालों की अग्रमहिषियों तथा

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा २ पृ ४९८-४९९

२ यहाँ भगवतीसूत्र के शतक ३ उ १ के 'मोका' उद्देशक में उल्लिखित वर्णन समझ लेना चाहिए।

उनके देवी-परिवार का वणन है, माथ ही उनकी अपनी-अपनी राजधानी की सुधर्मा सभा मे अपने देवी वग के साथ उनकी मथुननिमित्तक असमथता का भी अतिदेश किया गया है।[1]

धरणेन्द्र और उसके लोकपालो का देवी-परिवार

१३ धरणस्स ण भते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ?

अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—अला[2] मक्का सतेरा सोयामणी इदा घणविज्जुया। तत्थ ण एगमेगाए देवीए छ छ देविसहस्सा परियारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइ छ छ देविसहस्साइ परियार विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेण छत्तीस देविसहस्सा, से त तुडिए।

[१३ प्र] भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की कितनी अग्रमहिषिया कही गई हैं ?

[१३ उ] आर्यो ! (धरणेन्द्र की) छह अग्रमहिषियाँ हैं। यथा—(१) अला (इला), (२) मक्का (शुक्रा), (३) सतारा, (४) सौदामिनी (५) इन्द्रा और (६) घनविद्युत। उनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी के छह-छह हजार देवियो का परिवार कहा गया है। इनमे से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी), अन्य छह छह हजार देवियो के परिवार की विकुवणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर छत्तीस हजार देवियो का यह त्रुटिक (वग) कहा गया है।

१४ पभू ण भते ! धरणे ? सेस त चेव, नवर धरणाए रायहाणीए धरणसि सीहासणसि सओ परियारो,[3] सेस त चेव।

[१४ प्र] भगवन् ! क्या धरणेन्द्र (सुधर्मा सभा मे देवीपरिवार के साथ) यावत भोग भोगने मे समथ है ? इत्यादि प्रश्न।

[१४ उ] पूववत् समग्र कथन जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि (धरणेन्द्र की) राजधानी धरणा मे धरण नामक सिंहासन पर (बठ कर) स्वपरिवार शेष सब वणन पूववत् समझना चाहिए।

१५ धरणस्स ण भते ! नागकुमारिंदस्स कालवालस्स लोगपालस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—असोगा विमला सुप्पभा सुदसणा। तत्थ ण एगमेगाए० अवसेस जहा चमरलोगपालाण। एव सेसाण तिण्ह वि लोगपालाण।

[१५ प्र] भगवन् ! नागकुमारेन्द्र धरण के लोकपाल कालवाल नामक महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ४९९

२ पाठान्तर—दूसरी प्रति म 'अला' के स्थान मे 'इला' तथा 'मक्का' के स्थान म 'सुक्का' पाठ मिलता है।

३ धरणेन्द्र का स्वपरिवार—इस प्रकार है—"छहि सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसाए, चउहिं लोगपालेहिं, छहि अग्गमहिसीहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउवीसाए आयरक्खसाहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहि नागकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धि सपरिवुडेसि।"

—जीवाभिगमसूत्र भगवती अ वृत्ति पत्र ५०६

[१५ उ] आर्यो ! (धरणेन्द्र के लोकपाल कालवाल की) चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा—अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना। इनमें से एक-एक देवी का परिवार आदि वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान समझना चाहिए। इसी प्रकार (धरणेन्द्र के) शेष तीन लोकपालों के विषय में भी कहना चाहिए।

विवेचन—धरणेन्द्र तथा उसके चार लोकपालों का देवीपरिवार तथा सुधर्मासभा में भोग असमर्थता की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों (१३-१४-१५) में धरणेन्द्र तथा उसके लोकपालों की अग्रमहिषियों सहित देवीवर्ग की संख्या तथा सुधर्मा सभा में उनकी भोग असमर्थता का प्रतिपादन किया गया है।[1]

भूतानन्दादि भवनवासी इन्द्रों तथा उनके लोकपालों का देवीपरिवार

१६. भूयाणंदस्स णं भंते ! ० पुच्छा। अज्जो ! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—रूया रूयंसा सुरूया रूयगावती रूयकंता रूयप्पभा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए० अवसेसं जहा धरणस्स।

[१६ प्र] भगवन् ! भूतानन्द (भवनपतीन्द्र) की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[१६ उ] आर्यो ! भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ हैं। यथा—रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकान्ता और रूपप्रभा। इनमें से प्रत्येक देवी—अग्रमहिषी के परिवार आदि का तथा शेष समस्त वर्णन धरणेन्द्र के समान जानना चाहिए।

१७. भूयाणंदस्स णं भंते ! नागवित्तस्स० पुच्छा। अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—सुणंदा सुभद्दा सुजाया सुमणा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए० अवसेसं जहा चमरलोगपालाणं। एवं सेसाण तिण्ह वि लोगपालाणं।

[१७ प्र] भगवन् ! भूतानन्द के लोकपाल नागवित्त के कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? इत्यादि पृच्छा।

[१७ उ] आर्यो ! (नागवित्त की) चार अग्रमहिषियाँ हैं। वे इस प्रकार—सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता और सुमना। इनमें प्रत्येक देवी के परिवार आदि का शेष वर्णन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान जानना चाहिए। इसी प्रकार शेष तीन लोकपालों का वर्णन भी (चमरेन्द्र के शेष तीन लोकपालों के समान) जानना चाहिए।

१८. जे दाहिणिल्ला इंदा तेसिं जहा धरणस्स। लोगपालाण वि तेसिं जहा धरणलोगपालाणं। उत्तरिल्लाणं इंदाणं जहा भूयाणंदस्स। लोगपालाण वि तेसिं जहा भूयाणंदस्स लोगपालाणं। नवरं इंदाणं सव्वेसिं रायहाणीओ, सीहासणाणि य सरिसणामगाणि, परियारो जहा मोउद्देसए (स. ३ उ. १ सु. १४)।[2] लोगपालाणं सव्वेसिं रायहाणीओ सीहासणाणि य सरिसनामगाणि, परियारो जहा चमरलोगपालाणं।

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मू. पा. टिप्पण) भा. २ पृ. ५००
२. देखिये—भगवतीसूत्र शतक ३ मोका नामक प्रथम उद्देशक सू. १४

[१८] जो दक्षिणदिशावर्ती इन्द्र हैं, उनका कथन धरणेन्द्र के समान तथा उनके लोकपालों का कथन धरणेन्द्र के लोकपालों के समान जानना चाहिए। उत्तरदिशावर्ती इन्द्रों का कथन भूतानन्द के समान तथा उनके लोकपालों का कथन भी भूतानन्द के लोकपालों के समान जानना चाहिए। विशेष इतना है कि सब इन्द्रों की राजधानियों और उनके सिंहासनों का नाम इन्द्र के नाम के समान जानना चाहिए। उनके परिवार का वर्णन भगवती सूत्र के तीसरे शतक के प्रथम मोक उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए। सभी लोकपालों की राजधानियों और उनके सिंहासनों का नाम लोकपालों के नाम के सदृश जानना चाहिए तथा उनके परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के परिवार के वर्णन के समान जानना चाहिए।

विवेचन—भूतानन्द, दक्षिण-उत्तरवर्ती इन्द्र एवं उनके लोकपालों के देवी परिवार का वर्णन—प्रस्तुत तीन सूत्रों (१६-१७-१८) में अतिदेशपूर्वक किया गया है। प्रायः सारा वर्णन समान है, केवल राजधानियों, सिंहासनों तथा व्यक्तियों के नामों में अन्तर है। राजधानियों और सिंहासनों के नाम प्रत्येक इन्द्र के अपने अपने नाम के अनुसार हैं। सुधर्मा सभा में प्रत्येक इन्द्र की अपने देवी-परिवार के साथ मैथुननिमित्तक असमर्थता भी साथ-साथ ध्वनित कर दी है।[1]

व्यन्तरजातीय देवेन्द्रों के देवी परिवार आदि का निरूपण

१९. [१] कालस्स णं भंते! पिसायिंदस्स पिसायरण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कमला कमलप्पभा उप्पला सुदंसणा। तत्थ णं एगमेगाए देवीए एगमेगं देविसहस्सं, सेसं जहा चमरलोगपालाणं। परियारो तहेव, नवरं कालाए रायहाणीए कालंसि सीहासणंसि, सेसं तं चेव।

[१९-१ प्र.] भगवन्! पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं?

[१९-१ उ.] आर्यो! (कालेन्द्र की) चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा—कमला, कमलप्रभा, उत्पला और सुदर्शना। इनमें से प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के एक-एक हजार देवियों का परिवार है। शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान जानना चाहिए एवं परिवार का कथन भी उसी के परिवार के सदृश करना चाहिए। विशेष इतना है कि इसके 'काला' नाम की राजधानी और काल नामक सिंहासन है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

[२] एवं महाकालस्स वि।

[१९-२] इसी प्रकार पिशाचेन्द्र महाकाल का एतद्विषयक वर्णन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

२०. [१] सुरूवस्स णं भंते! भूइंदस्स भूयरण्णो० पुच्छा। अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—रूववती बहुरूवा सुरूवा सुभगा। तत्थ णं एगमेगाए० सेसं जहा कालस्स।

[२०-१ प्र.] भगवन्! भूतेन्द्र भूतराज सुरूप की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं?

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. २, पृ. ५००-५०१

[२०-१ उ] आर्यो ! (सुरूपेन्द्र भूतराज की) चार अग्रमहिषियां हैं, यथा—रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा। प्रत्येक देवी (अग्रमहिषी) के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान है।

[२] एवं पडिरूवगस्स वि।

[२०-२] इसी प्रकार प्रतिरूपेन्द्र के (देवी परिवार आदि के) विषय में भी जानना चाहिए।

२१ [१] पुण्णभद्दस्स णं भंते ! जक्खिदस्स० पुच्छा।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—पुण्णा बहुपुत्तिया उत्तमा तारया। तत्थ णं एगमेगाए० सेसं जहा कालस्स०।

[२१-१ प्र] भगवन् ! यक्षेन्द्र यक्षराज पूर्णभद्र की कितनी अग्रमहिषियां हैं ?

[२१-१ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियां हैं, यथा- पूर्णा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका। प्रत्येक के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान है।

[२] एवं माणिभद्दस्स वि।

[२१-२] इसी प्रकार माणिभद्र (यक्षेन्द्र) के विषय में भी जान लेना चाहिए।

२२ [१] भीमस्स णं भंते ! रक्खसिंदस्स० पुच्छा।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—पउमा पउमावती कणगा रयणप्पभा। तत्थ णं एगमेगा० सेसं जहा कालस्स।

[२२-१ प्र] भगवन् ! राक्षसेन्द्र राक्षसराज भीम के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं ?

[२२-१ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, यथा—पद्मा, पद्मावती, कनका और रत्नप्रभा। प्रत्येक के परिवार आदि का वर्णन कालेन्द्र के समान है।

[२] एवं महाभीमस्स वि।

[२२-२] इसी प्रकार महाभीम (राक्षसेन्द्र) के विषय में भी जान लेना चाहिए।

२३ [१] किन्नरस्स णं भंते !० पुच्छा।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—वडेंसा केतुमती रतिसेणा रतिप्पिया। तत्थ णं० सेसं तं चेव।

[२३-१ प्र] भगवन् ! किन्नरेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियां हैं ?

[२३-१ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियां हैं, यथा—१ अवतंसा, २ केतुमती, ३ रतिसेना और ४ रतिप्रिया। प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार के विषय पूर्ववत् जानना चाहिए।

[२] एवं किंपुरिसस्स वि।

[२३-२] इसी प्रकार किम्पुरुषेन्द्र के विषय में कहना चाहिए।

२४ [१] सप्पुरिसस्स णं० पुच्छा।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा रोहिणी नवमिया हिरी पुप्फवती। तत्थ णं एगमेगा०, सेसं तं चेव।

[२४-१ प्र] भगवन् ! सत्पुरुषेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियां हैं ?

[२४-१ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियां है, यथा—१ रोहिणी, २ नवमिका, ३ ह्री और ४ पुष्पवती । इनके देवी-परिवार का वर्णन पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए ।

[२] एव महापुरिसस्स वि ।

[२४-२] इसी प्रकार महापुरुषेन्द्र के विषय मे भी समझ लेना चाहिए ।

२५ [१] अतिकायस्स ण भते ! ० पुच्छा ।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—भुयगा भुयगवती महाकच्छा फुडा । तत्थ ण०, सेस त चेव ।

[२५-१ प्र] भगवन् ! अतिकायेन्द्र की कितनी अग्रमहिषियां हैं ?

[२५-१ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियां है, यथा—१ भुजगा, २ भुजगवती, ३ महाकच्छा और ४ स्फुटा । प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी परिवार का वर्णन पूर्वोक्तरूप से जानना चाहिए ।

[२] एव महाकायस्स वि ।

[२५-२] इसी प्रकार महाकायेन्द्र के विषय मे भी समझ लेना चाहिए ।

२६ [१] गीतरतिस्स ण भते ! ० पुच्छा ।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—सुघोसा विमला सुस्सरा सरस्सती । तत्थ ण०, सेस त चेव ।

[२६-१ प्र] भगवन् ! गीतरतीन्द्र की कितनी अग्रमहिषियां है ?

[२६-१ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियां है—१ सुघोषा, २ विमला, ३ सुस्वरा और ४ सरस्वती । प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन पूर्ववत जानना चाहिए ।

[२] एव गीयजसस्स वि । सव्वेसि एतेसि जहा कालस्स, नवर सरिसनामियाओ रायहाणीओ सीहासणाणि य । सेस त चेव ।

[२६-२] इसी प्रकार गीतयश-इन्द्र के विषय मे भी जान लेना चाहिए ।

इन सभी इन्द्रों का शेष सम्पूर्ण वर्णन कालेन्द्र के समान जानना चाहिए । राजधानियों और सिंहासनों का नाम इन्द्रों के नाम के समान है । शेष सभी पूर्ववत् (एक सरीखा) है ।

विवेचन—व्यन्तरेन्द्रों के देवी परिवार आदि वर्णन—प्रस्तुत ८ सूत्रों (सू १९ से २६ तक) मे आठ प्रकार के व्यन्तर देवों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों तथा उनकी देवियों की सख्या एव अपनी-अपनी सुधर्मा सभा मे देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने की असमर्थता का अतिदेश किया गया है ।[1]

व्यन्तरजातीय देवों के ८ प्रकार—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किम्पुरुष (७) महोरग एव (८) गन्धर्व ।[2]

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ५०१-५०२

२ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४

(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ४ सू १२ व्यन्तरा किन्नर-किम्पुरुष महोरग-गन्धर्व-यक्ष राक्षस भूत पिशाचा ।

इन आठों के प्रत्येक समूह के दो दो इन्द्रों के नाम—(१) पिशाच के दो इन्द्र—काल और महाकाल, (२) यक्ष के दो इन्द्र—पूर्णभद्र और माणिभद्र, (३) भूत के दो इन्द्र—सुरूप और प्रतिरूप, (४) राक्षस के दो इन्द्र—भीम और महाभीम, (५) किन्नर के दो इन्द्र—किन्नर और किम्पुरुष, (६) किम्पुरुष के दो इन्द्र—सत्पुरुष और महापुरुष, (७) महोरग के दो इन्द्र—अतिकाय और महाकाय तथा (८) गन्धर्व के दो इन्द्र—गीतरति और गीतयश।[1]

इनके प्रत्येक के चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं और प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार की संख्या एक एक हजार है। अर्थात्—प्रत्येक इन्द्र के चार-चार हजार देवी-वर्ग है। इन इन्द्रों की राजधानी और सिंहासन का नाम अपने अपने नाम के अनुरूप होता है। ये सभी इन्द्र अपनी अपनी सुधर्मा सभा में अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग नहीं भोग सकते।[2]

चन्द्र-सूर्य-ग्रहों के देवीपरिवार आदि का निरूपण

२७. चंदस्स णं भंते ! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो० पुच्छा।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा। एवं जहा जीवाभिगमे[3] जोतिसियउद्देसए तहेव।

[२७ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[२७ उ.] आर्यो ! ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ हैं। वे इस प्रकार—(१) चन्द्रप्रभा, (२) ज्योत्स्नाभा, (३) अर्चिमाली एवं (४) प्रभंकरा। शेष समस्त वर्णन जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के द्वितीय उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए।

२८. सूरस्स वि सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमाली पभंकरा। सेसं तं चेव जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

[२८] इसी प्रकार सूर्य के विषय में भी जानना चाहिए। सूर्येन्द्र की चार अग्रमहिषियाँ ये हैं—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा। शेष सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् वे अपनी राजधानी की सुधर्मा सभा में सिंहासन पर बैठ कर अपने देवीपरिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं हैं।

२९. इंगालस्स णं भंते ! महग्गहस्स कति अग्ग० पुच्छा।

अज्जो ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—विजया वेजयंती जयंती अपराजिया। तत्थ णं एगमेगाए देवीए०, सेसं जहा चंदस्स नवरं इंगालवडेंसए विमाणे इंगालगंसि सीहासणंसि। सेसं तं चेव।

[२९ प्र.] भगवन् ! अंगार (मंगल) नामक महाग्रह की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ?

[२९ उ.] आर्यो ! (अंगार-महाग्रह की) चार अग्रमहिषियाँ हैं। वे इस प्रकार—(१) विजया, (२) वैजयन्ती, (३) जयन्ती और (४) अपराजिता। इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी-परिवार का वर्णन चन्द्रमा के देवी-परिवार के समान जानना चाहिए। परन्तु इतना विशेष है कि इसके विमान

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ टिप्पणयुक्त) भा. २, पृ. ५०१-५०२

२ वही पृ. ५०२

३ देखिये—जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उ. २, सू. २०३-४, पत्र ३७५-८५ (आगमोदय)

का नाम अगारावतसक और सिंहासन का नाम अगारक है, (जिस पर बैठ कर वह देवी परिवार के साथ मैथुननिमित्तक भोग नही भोग सकता) इत्यादि शेप समग्रवणन पूववत् जानना चाहिए।

३० एव वियालगस्स वि। एव अट्ठासीतीए वि महागहाण भाणियव्व जाव भावकेउस्स। नवर वडेंसगा सीहासणाणि य सरिसनामगाणि। सेस त चेव।

[३०] इसी प्रकार व्यालक नामक ग्रह के विषय मे भी जानना चाहिए। इसी प्रकार ८८ महाग्रहो के विषय मे भावकेतु ग्रह तक जानना चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि अवतसको और सिंहासनो का नाम इन्द्र के नाम के अनुरूप है। शेष सब वणन पूववत् जानना चाहिए।

विवेचन—चन्द्र, सूय और ग्रहो की देवियो की सख्या—प्रस्तुत ४ सूत्रो (२७ से ३० तक) में चन्द्र, सूय, अगारक, व्यालक आदि ८८ महाग्रहो की अग्रमहिषियो तथा देवी-परिवार आदि का अतिदेशपूवक निरूपण किया गया है।[1]

शक्रेन्द्र और उसके लोकपालो का देवी-परिवार

३१ सक्कस्स ण भते! देविंदस्स देवरण्णो० पुच्छा। अज्जो! अट्ठ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पउमा सिवा सुयो अजू अमला अच्छरा नवमिया रोहिणी। तत्थ ण एगमेगाए देवीए सोलस सोलस देविसहस्सा परियारो पन्नत्तो। पभू ण ताओ एगमेगा देवी अन्नाइ सोलस सोलस देविसहस्सा परियार विउव्वित्तए। एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठावीसुत्तर देविसयसहस्स, से त तुडिए।

[३१ प्र] भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी अग्रमहिषिया है?

[३१ उ] आर्यो! आठ अग्रमहिषिया है, यथा—(१) पद्मा, (२) शिवा, (३) श्रेया, (४) अजू, (५) अमला, (६) अप्सरा, (७) नवमिका और (८) रोहिणी। इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी का सोलह-सोलह हजार देवियो का परिवार कहा गया है। प्रत्येक देवी सोलह-सोलह हजार देवियो के परिवार की विकुवणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिला कर एक लाख अट्ठाइस हजार देविया का परिवार होता है। यह एक त्रुटिक (देवियो का वग) कहलाता है।

३२ पभू ण भते! सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कसि सीहासणसि तुडिएण सद्धि० सेस जहा चमरस्स (सु ६ ७)। नवर परियारो जहा मोउद्देसए (स ३ उ १ सु १५)।

[३२ प्र] भगवन्! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, सौधमकल्प मे, सौधमावतसक विमान मे, सुधर्मासभा मे, शक्र नामक सिंहासन पर बैठ कर अपने (उक्त) त्रुटिक के साथ भोग भोगने मे समथ है?

[३२ उ] आर्यो! इसका समग्र वणन चमरेन्द्र के समान (सू ६-७ के अनुसार) जानना चाहिए। विशेष इतना है कि इसके परिवार का कथन भगवतीसूत्र के तीसरे शतक के 'मोका' नामक प्रथम उद्देशक (सू १५) के अनुसार जान लेना चाहिए।

३३ सक्कस्स ण देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो कति अग्गमहिसीओ० पुच्छा।

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, त जहा—रोहिणी मदणा चित्ता सोमा। तत्थ ण

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ५०२-५०३

एगमेगा०, सेस जहा चमरलोगपालाण (सु ८-१३)। नवर सयपभे विमाणे सभाए सुहम्माए सोमसि सीहासणसि, सेस त चेव। एव जाव[1] वेसमणस्स, नवर विमाणाइ जहा ततियसए (स ३ उ ७ सु ३)।

[३३ प्र] भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं?

[३३ उ] आर्यो! चार अग्रमहिषियाँ हैं। वे इस प्रकार—(१) रोहिणी, (२) मदना, (३) चित्रा और (४) सोमा। इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी के देवी परिवार का वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के समान (सू ८-१३ के अनुसार) जानना चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि स्वयम्प्रभ नामक विमान में, सुधर्मासभा में, सोम नामक सिंहासन पर बैठ कर मैथुननिमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए। इसी प्रकार वैश्रमण लोकपाल तक का कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि इनके विमान आदि का वर्णन (भगवती) तृतीयशतक के सातवें उद्देशक (सू ३) में कहे अनुसार जानना चाहिए।

विवेचन—शक्रेन्द्र तथा उसके लोकपालों की देवियों आदि का वर्णन—प्रस्तुत तीन सूत्रों में शक्रेन्द्र की अग्रमहिषियों तथा उनके अधीनस्थ देवियों के परिवार का एव सुधर्मा सभा में उनके साथ मैथुननिमित्तक भोग भोगने की असमर्थता का प्रतिपादन किया गया है।[2]

ईशानेन्द्र तथा उसके लोकपालों का देवी-परिवार

३४ ईसाणस्स ण भते! ० पुच्छा।

अज्जो! अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—कण्हा कण्हराई रामा रामरक्खिया वसू वसुगुत्ता वसुमित्ता वसुधरा। तत्थ ण एगमेगाए०, सेस जहा सक्कस्स।

[३४ प्र] भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशान की कितनी अग्रमहिषियाँ हैं?

[३४ उ] आर्यो! ईशानेन्द्र की आठ अग्रमहिषियाँ हैं। यथा—(१) कृष्णा, (२) कृष्णराजि, (३) रामा, (४) रामरक्षिता, (५) वसु, (६) वसुगुप्ता, (७) वसुमित्रा, (८) वसुन्धरा। इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी की देवियों के परिवार आदि का शेष समस्त वर्णन शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए।

३५ ईसाणस्स ण भते! देविदस्स सोमस्स महारण्णो कति० पुच्छा।

अज्जो! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पुढवी राती रयणी विज्जू। तत्थ णं०, सेस जहा सक्कस्स लोगपालाण। एव जाव वरुणस्स, नवर विमाणा जहा चउत्थसए (स ४ उ १ सु ३)। सेस त चेव जाव नो चेव ण मेहुणवत्तिय।

सेव भते! सेव भते! त्ति जाव विहरइ।

॥ दसमे सए पचमो उद्देसो समत्तो ॥

---

१ 'जाव' पद से यहाँ सब वरुण' समझना चाहिए

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ टिप्पण) भा २ पृ ५०३

[३५ प्र] भगवन् ! देवेन्द्र ईशान के लोकपाल सोम महाराजा की कितनी अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ?

[३५ उ] आर्यो ! चार अग्रमहिषियाँ हैं, यथा—पृथ्वी, रात्रि, रजनी और विद्युत् । इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी को देवियो के परिवार आदि शेष समग्र वणन शक्रेन्द्र के लोकपालो के समान है । इसी प्रकार वरुण लोकपाल तक जानना चाहिए । विशेष यह है कि इनके विमानो का वणन चौथे शतक के प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए । शेष पूववत, यावत्— वह मैथुननिमित्तक भोग भोगने मे समर्थ नही है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कह कर आर्य स्थविर यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—ईशानेन्द्र एव उसके लोकपालो का देवी-परिवार—प्रस्तुत दो सूत्रो (३४-३५) मे ईशान्द्र (द्वितीय देवलोक के इन्द्र) तथा उसके लोकपालो की अग्रमहिषियो आदि का वणन पूवसूत्र का अतिदेश करके किया गया है । चूँकि वैमानिक देवो मे केवल पहले और दूसरे देवलोक तक ही देवियां उत्पन्न होती हैं, इसलिए यहा प्रथम और द्वितीय देवलोक के इन्द्रो और उनके लोकपालो की अग्र-महिषियो का वणन किया गया है ।[1]

॥ दशम शतक पचम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ४, पृ १८३९

छट्ठो उद्देसओ : छठा उद्देशक

सभा : सभा (शक्रेन्द्र की सुधर्मा सभा)

१ कहि णं भंते ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सभा सुहम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए एवं जहा रायप्पसेणइज्जे जाव पंच वडेंसगा पन्नत्ता, तं जहा—असोगवडेंसए जाव[1] मज्झे सोहम्मवडेंसए। से णं सोहम्मवडेंसए महाविमाणे अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं।

एवं जह सूरियाभे तहेव माणं तहेव उववातो।
सक्कस्स य अभिसेओ तहेव जह सूरियाभस्स ॥१॥

अलंकार अच्चणिया तहेव जाव आयरक्ख त्ति, दो सागरोवमाइं ठिती।

[१ प्र.] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की सुधर्मासभा कहाँ है ?

[१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूभाग से अनेक कोटाकोटि योजन दूर ऊँचाई में सौधर्म नामक देवलोक में सुधर्मा सभा है, इस प्रकार सारा वर्णन राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार जानना, यावत् पांच अवतंसक विमान कहे गए हैं, यथा—अशोकावतंसक यावत् मध्य में सौधर्मावतंसक विमान है। वह सौधर्मावतंसक महाविमान लम्बाई और चौड़ाई में साढ़े बारह लाख योजन है।

[गाथार्थ—] (राजप्रश्नीयसूत्रगत) सूर्याभविमान के समान विमान प्रमाण तथा उपपात अभिषेक, अलंकार तथा अर्चनिका, यावत् आत्मरक्षक इत्यादि सारा वर्णन सूर्याभदेव के समान जानना चाहिए। उसकी स्थिति (आयु) दो सागरोपम की है।

२ सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया केमहिड्ढीए जाव[2] केमहासोक्खे ?

गोयमा ! महिड्ढीए जाव महासोक्खे, से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं जाव विहरइ, एमहिड्ढीए जाव[3] एमहासोक्खे सक्के देविंदे देवराया।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ दसमे सए छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥१०-६॥

---

१ जाव पद सूचित पाठ—"सत्तवण्णवडेंसए चंपयवडेंसए चूयवडेंसए।" —अ. वृ.
२ जाव पद सूचित पाठ—"केमहज्जुईए केमहाणुभागे केमहायसे केमहाबले त्ति।" —अ. वृ.
३ जाव पद सूचित पाठ—"चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं जाव अन्नेसिं च बहूणं जाव देवाण देवीण य आहेवच्चं जाव करेमाणे पालेमाणे त्ति।" —अ. वृ.

[२ प्र.] भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी महती ऋद्धि वाला यावत् कितने महान् सुख वाला है ?

[२ उ.] गौतम ! वह महा ऋद्धिशाली यावत् महासुखसम्पन्न है। वह वहाँ बत्तीस लाख विमानों का स्वामी है, यावत् विचरता है। देवेन्द्र देवराज शक्र इस प्रकार की महाऋद्धि से सम्पन्न और महासुखी है।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है !, इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—सूर्याभ के अतिदेशपूर्वक शक्रेन्द्र तथा उसकी सुधर्मासभा आदि का वर्णन—राजप्रश्नीयसूत्र में सूर्याभदेव का विस्तृत वर्णन है। यहाँ शक्रेन्द्र के उपपात आदि के वर्णन के लिए उसी का अतिदेश किया गया है। अतः इसका समग्र वर्णन सूर्याभदेववत् समझना चाहिए। यहाँ पिछले सूत्र में सूर्याभदेववत् शक्र की ऋद्धि सुख, द्युति आदि का वर्णन किया गया है।[1]

॥ दशम शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) राजप्रश्नीयसूत्र (गुर्जरग्रन्थ) प. १५२-५४
(ख) वियाहपण्णत्ति (मू. पा. टि.), भा. २, प. ५०४

सत्तमाइ-चोत्तीसइम पज्जंता उद्देसा

सातवें से चौंतीसवें तक के उद्देशक

उत्तर-अंतरदीवा उत्तरवर्ती (अट्ठाईस) अन्तर्द्वीप

१ कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे नामं दीवे पन्नत्ते ? एवं जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेसं जाव सुद्धदंतदीवो त्ति । एए अट्ठावीसं उद्देसगा भाणियव्वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

॥ दसमे सए सत्तमाइ-चोत्तीसइम पज्जंता उद्देसा समत्ता ॥१०. ७-३४॥

॥ दसमं सयं समत्तं ॥

[१ प्र.] भगवान् ! उत्तरदिशा में रहने वाले एकोरुक मनुष्यों का एकोरुकद्वीप नामक द्वीप कहाँ है ?

[१ उ.] गौतम ! एकोरुकद्वीप से लेकर यावत् शुद्धदन्तद्वीप तक का समस्त वर्णन जीवाभिगमसूत्र में कहे अनुसार जानना चाहिए । (प्रत्येक द्वीप के सम्बन्ध में एक एक उद्देशक है ।) इस प्रकार अट्ठाईस द्वीपों के ये अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ! भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—उत्तरदिशावर्ती अट्ठाईस अन्तर्द्वीप—प्रस्तुत सूत्र में उत्तरदिग्वर्ती अट्ठाईस अन्तर्द्वीपों का निरूपण जीवाभिगमसूत्र के अतिदेशपूर्वक किया गया है ।

इससे पूर्व नौवें शतक के तीसरे से तीसवें उद्देशक तक में दक्षिणदिशा के अन्तर्द्वीपों का वर्णन किया जा चुका है । प्रस्तुत दशम शतक के ७ वें से ३४ वें उद्देशक तक में उत्तरदिशा के अन्तर्द्वीपों का निरूपण किया गया है जो दक्षिणदिग्वर्ती अन्तर्द्वीपों के ही समान है । २८ नाम भी समान हैं ।[1]

॥ दशम शतक : सातवें से चौंतीसवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

॥ दशम शतक सम्पूर्ण ॥

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा. २ पृ. ५०५
(ख) जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति ३, उद्देशक १, पत्र १४४-५६ (आगमोदय) में विस्तृत वर्णन देखिये

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपर्युक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१ उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३ गर्जित—बादलो के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यंत अनध्याय नही माना जाता।

५ निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७ यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे-थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८ धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध पडती है। वह धूमिका कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१० रज-उद्‌घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४ अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७ सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८ पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९ राजव्युदग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करें।

२० औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते ह। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२ प्रात, साय, मध्याह्न और अधरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

□□

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस. किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खींवराजजी चोरडिया मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस. बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे. दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस. रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर. शांतिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचंदजी, सागरमलजी संचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५ श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटंगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४ श्री शा० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७ श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९ श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) जाडन
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जबरचन्दजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चोपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साढ, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क.) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बंगलोर
४७ श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बंगलोर
४९ श्री भंवरलालजी नवरतनमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४ श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९ श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
६२ श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा, राजनांदगांव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८ श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचंदजी थानचन्दजी सुराट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी सुराट, गोहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भरुंदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बंगलौर
९५ श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अशोकचंदजी रूपकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगांव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखवचन्दजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३ सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी वरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निमलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरूदा
१११ श्री मांगीलालजी शातिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडतासिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकवरबाई धमपत्नी श्री चादमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री मांगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बेंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धमपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वद्ध मान स्थानकवासी जन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क, बेंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड □□

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री ओकचदजी हेमराजजी सोनी, दुग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बेंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड स स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मातीलालजी गादिया, बगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसव तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागोर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२ श्री हरखचदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३ श्री च दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगांव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वद्ध मान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानच दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिहजी मोहनसिहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भरूदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इ द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इ दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दोर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इ दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरच दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बगलोर
९५ श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धमपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनच दजी सचेती, राजनादगांव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजो श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३ सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरू दा
१११ श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडतासिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क , बेंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड □□